
यस्य मूलनव तथा लाम्बीकी कृत समस्त ग्रन्थों का
प्राप्ति स्थान—
वैदिक पुस्तकालय, अजमेर ।

॥ श्रीॐ ॥

अथ सत्यार्थप्रकाशस्य सूचीपत्रम् ॥

विषयाः पृष्ठ-१४८५ । विषयाः पृष्ठ-१४८५

१ समुद्रायः ॥ १-१ ४ समुद्रायः ॥

ईशान्यामन्त्रा	१-१०	समावर्तमन्त्रिका	२१
मन्त्राचार्यमन्त्रा	१०-१८	मन्त्रा विद्यामन्त्रा	२१

२ मङ्गलम् ॥

अथर्ववेदविषयः	११-२१	अथर्ववेदविषयः	११-२१
अथर्ववेदविषयः	२१-२२	अथर्ववेदविषयः	२१-२२
अथर्ववेदविषयः	२२-२३	अथर्ववेदविषयः	२२-२३

३ मङ्गलम् ॥

[illegible]

विषयाः	पृष्ठतः-पृष्ठम्	विषयाः	पृष्ठतः-पृष्ठम्
५ समुद्रासः ॥		७ समुद्रासः ॥	
यानप्रत्यक्षिधिः	१०-१८	ईश्वरविषयः	१४१-१५७
संन्यासाधर्मविधिः	१८-१ ८	ईश्वरविषये प्रसोक्तविधि	१४१-१४२
६ समुद्रासः ॥		ईश्वरस्युत्पत्त्यर्थमोपासना	१४२-१४२
राजधर्मविषयः	१० -१४०	ईश्वरज्ञानप्रप्तरा	१४ -१४१
साम्यप्रत्यक्षविषयः	१ ४	ईश्वरस्यस्तित्वम्	१४१-१४२
राजधर्मविषयः	११ -१११	ईश्वरकृतविषयः	१४२-१४४
द्वयधर्मविषयः	१११-११२	जीवस्य स्थितिव्यवस्था	१४४
राजधर्मविषयः	११२-११४	जीवस्यस्योक्तिव्यवस्था	१४४-१४५
अष्टादशधर्मसप्तविधेः	११४-११५	ईश्वरस्य सत्त्वनिर्गुणव्यवस्था	१४५
मन्त्रनृपादिराजपुत्र- व्यवस्था	११५-११७	वैश्वदेवविचारः	१४५-१४७
मन्त्रविधिः अर्पणविधिः	११७-११८	८ समुद्रासः ॥	
दुर्धर्मादिव्यवस्था	११७-११८	सत्त्वगुणव्यवस्थाविधिः	१४८-१४९
मुद्राकरव्यवस्था	११८-१२०	ईश्वरमित्राणां प्रत्यक्षद्वय	
राज्यकारव्यवस्थाविधिः	१२ -१२२	राज्यकारव्यवस्था	१४८-१४९
प्रत्यक्षविषयविधिर्विषयः	१२२-१२३	सही नास्तिक्यमत-	
करव्यवस्था	१२३-१२४	मित्राकरव्यवस्था	१४९-१५०
मन्त्रकरव्यवस्था	१२४-१२५	मनुष्याणामाविर्भूतैः	
आसन्नविषयगुणव्यवस्था	१२५-१२६	व्यवस्थाविधिर्विषयः	१५१
राज्यमित्राणांसीमयगुणव्यवस्था	१२६-१२७	आर्थस्येष्टव्यवस्थाविधिर्विषयः	१५१-१५२
राज्यमित्राणांसीमयगुणव्यवस्था	१२७-१२८	ईश्वरस्य अमराधारव्यवस्था	१५२-१५३
आसन्नविषयगुणव्यवस्था	१२८-१२९	९ समुद्रासः ॥	
आसन्नविषयगुणव्यवस्था	१२९-१३०	विषयऽविषयविषयः	१५ १५३
आसन्नविषयगुणव्यवस्था	१३०-१३१	अमराधारविषयः	१५४ २११
आसन्नविषयगुणव्यवस्था	१३१-१३२	१० समुद्रासः ॥	
आसन्नविषयगुणव्यवस्था	१३२-१३३	आचारऽआचारविधिः	२१२-२२
आसन्नविषयगुणव्यवस्था	१३३-१३४	अमराधारविषयः	२२ -२२४

भूमिका

— १ —

त्रिम समय में 'सर्वप्रमाण' ब्रह्मा या उस समय और उससे पूर्व संस्कृत व्याख्या करने पठन-पाठन में संस्कृत ही बोझने और ब्रह्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी । अब भाषा बोझने और लिखने का सम्बाध हो गया है । इसलिये इस ग्रन्थ को आपास्याकरालुसार छद्म करके दूसरी बार प्रकाशित है । इसमें २ शब्द कायप रचना का भेद हुआ है तो करना अचिन्त था क्योंकि इसके भेद किये बिना भाषा की परिपटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो जिला गया है । दो ओ प्रथम करने में नहीं १ भूल रही थी वह विद्यालय कोचकर डीक १ कर दी गई है ॥

यह ग्रन्थ १० (चौदह) समुदास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है । इसमें १ (दश) समुदास पूर्वाह्न और ४ (चार) उत्तराह्न में बने हैं परन्तु ग्रन्थ के दो समुदास और चरचात् स्वसिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं हुए उनके थे अब वे भी प्रकाश किये हैं ॥

- १—प्रथम समुदास में ईश्वर के आहूतादि नामों की व्याख्या ।
- २—द्वितीय समुदास में सन्तानों की शिक्षा ।
- ३—तृतीय समुदास में ब्रह्मचर्य पठन-पाठन व्यवस्था सम्बन्धित प्रश्नों के नाम और पढ़ने पढ़ाने की रीति ।
- ४—चतुर्थ समुदास में विवाह और गृहाध्ययन का व्यवहार ।
- ५—पञ्चम समुदास में यागप्रत्य और सम्वासाधर्म की विधि ।
- ६—छठे समुदास में शाश्वत ।
- ७—सातम समुदास में वैश्वानर विनय ।
- ८—अष्टम समुदास में जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय ।
- ९—नवम समुदास में विद्या अधिष्ठा बन्ध और मोक्ष की व्याख्या ।
- १०—दशम समुदास में आचार अनाचार और महाप्राप्त्य विनय ।
- ११—एकादश समुदास में आपावर्णीय मतमतान्तर का लक्षण प्रत्यक्ष विनय ।

१२—ब्राह्मण समुदास में चार्वाक बौद्ध और जैनमत का विषय ।

१३—ज्योतिष समुदास में ईसाई मत का विषय ।

१४—बौद्धों समुदास में मुसलमानों के मत का विषय । और बौद्ध समुदासों के अन्त में आर्यों के समागत वद्विहित मत की विरोधता क्या क्या सिद्धी है जिसको मैं भी यथायत् मानता हूँ ।

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य १ अर्थ का प्रकाश करना है चर्चाएँ जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करता, सत्य अर्थ का प्रकाश समझ है । वह सत्य नहीं कहता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय । किन्तु जो पक्षार्थ देता है उसको वैसा ही कहा किजना और मानना सत्य कहता है । जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता । इसीलिये विद्वान् ज्यों का वही मुख्य काम है कि उपदेश का खेच द्वारा सब मनुष्यों के सम्मने सत्तासत्य का स्वरूप समर्पित करें, परन्तु वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का प्रवृद्ध और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा भ्रामण्य में रहें । मनुष्य का भ्रमण्य सत्तासत्य का जानने काका है । तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि इस दुरात्म और अविद्यहि दोषों से सत्य को जोड़ असत्य में मुक्त करता है । परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुष्कला का किन्नी की हानि पर तात्पर्य है । किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो सत्तासत्य को मनुष्य लोग मानकर सत्य का प्रवृद्ध और असत्य का परित्याग करें । क्योंकि सत्योपदेश के विना भ्रमण्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का करण्य नहीं है ॥

इस ग्रन्थ में जो कही १ मूल शूक से आगता शोचने तथा आपने में धुल शूक रह जाय उसको आगने आगने पर जैसा वह सत्य होया वैसा हो कर दिया जायगा । और जो कोई पक्षपात से आगता शूक न खरकन मरकन करण्य उस पर ध्याय न दिया जायगा । हों जो वह मनुष्यमान्य का द्वितीय होकर कुछ ज्ञानयोग उसको सत्य सत्य समझने पर उसका मत संशुद्ध होया ॥

तथापि आत्रकज बहुतेरे विद्वान् श्रत्येक मर्ती में हैं वे पक्षपात को उत्तर्यन्त सिद्धांत चर्चाएँ जो १ बातें सत्य के अनुकूल सत्य में सत्य हैं उनका प्रवृद्ध और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उनका श्रम्य कर परस्पर श्रुति से बर्तें बर्तें हैं ता जगत् का पूर्ण दित होवे । क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और श्रुत की हानि होती है । इस हानि ने, या कि ल्याथो मनुष्यों को मित्र है सब मनुष्यों को दुःखसागर में डूबा दिया है । इसमें से जो कोई सार्थक नक दित श्रम्य में भर प्रवृत्त होया है उससे स्वार्थ शोय शिराव करने में तयार होकर अनेक प्रकार विजय कात है । परन्तु

‘सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः’ ॐ अर्थात् सर्वज्ञ सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विश्वानों का मार्ग वितृत होता है। इस एक मिश्रण के आकाशमय से आसछोग परोपकार करने से बड़ासीन होकर कभी सत्यार्थप्रकार करने से नहीं हटते। यह बड़ा एक विषय है कि ‘यत्तदग्रे विपमिय परिणामऽमृतोपमम्’ यह गीता १ का वचन है। इसका अर्थमय यह है कि जो २ विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं वे उपम करने में विप के तुल्य और पञ्चान् समान के सम्यक् होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धर के मैंने इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता व पाठकमय भी प्रथम प्रेम से देख के इस ग्रन्थ का सत्य २ तत्त्वपूर्ण जानकर सम्यक् कर ॥

इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो २ धर्म मतों में सत्य २ बातें हैं वे २ सच में अभिव्यक्त होने से बनकर स्वीकार करके जो २ मध्यममार्गों में मिथ्या बातें हैं उन २ का खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि सच मध्यममार्गों की गुप्त का प्रकट पुरी बातों का प्रकाश कर विशुद्ध अभिप्राय सच साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है जिससे सबसे सच का विचार होकर परस्पर प्रेमी होके एक सत्य मत्तल्य होंगे ॥

कद्यपि मैं आर्षावर्त देरा में अल्प बुद्धि और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मध्यममार्गों की पुरी बातों का पक्षपात न कर बायातथ्य प्रकट करता हूँ वैसे ही दूसरे देशत्व का मतोवर्ति बायों के साथ भी वर्तता हूँ। वैसा स्वदेश बायों के साथ मनुष्योवर्ति के विषय में वर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को वर्तता योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आत्मकर्म के स्वमत की स्तुति मचान और प्रचार करते और दूसरे मत को निन्दा हासि और पण्ड करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होना परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बहार हैं। क्योंकि जैसे पशु भक्षण होकर निर्बलों को दुःख देत और मार भी खाते हैं यव मनुष्य शरीर पावे बैसा ही कर्म करत हैं तो व मनुष्य स्वमात्रपुत्र नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलपण्ड होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाना है और जो स्वार्थवश होकर पराहानिमात्र करता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है ॥

अब आर्षावर्तियों के विषय में विरापकर ११ प्रकारहमें समुद्रास तक विप्राय है। इन समुद्रासों में जो कि सत्यमत प्रकटित किया है वह वेदोक्त होने से मुक्तको सर्वथा मन्तव्य है। और जो वर्णाश पुराण तन्त्रादि ग्रन्थोक्त बातों का खण्डन किया है वे अथव्य हैं ॥

जो १२ प्रकारहमें समुद्रास में दशाया आर्षाक का मत कद्यपि इस समय जीव्यान्तता है और यह आर्षाक बोद्ध जैन से बहुत संबन्ध धर्मीधरवादि में रचना है। यह आर्षाक सचसे बड़ा नास्तिक है। उसकी चेष्टा का रोचना अथव्य है। क्योंकि जो मिथ्या बात न रोधी जाय तो संसार में बहुत से धर्म

प्रकृत हो जायें। चार्वाक का जो मत है वह तथा बौद्ध और शैव का जो मत है वह भी १२ वें समुदास में संक्षेप से लिखा गया है। और बौद्धों तथा शैवियों का भी चार्वाक के मत के साथ मेल है और कुछ जोड़ा विशेष भी है। और शैव भी बहुत से ग्रंथों में चार्वाक और बौद्धों के साथ मेल रक्खा है और बोद्धिवादी ग्रंथों में मेल है। इसलिये शैवों की मित्र शाखा सिद्धी जाती है। वह मेह १२ बारहवें समुदास में लिखा गया है यद्यप्योन्म वहीं समझ लेना। जो इसका मेह है सो २ बारहवें समुदास में लिखा गया है। बौद्ध और शैव मत का विषय भी लिखा है ॥

इनमें से बौद्धों के दोषदोषादि आचार्य ग्रंथों में बौद्धमत-संग्रह सर्वदोषसंग्रह में लिखा गया है जहाँ से वहाँ लिखा है। और शैवियों के विप्रलिखित सिद्धांतों के पुस्तक है, जहाँ से—

चार मूल सूत्र जैसे—१ अक्षरवक्तृसूत्र २ विशेष आशयवक्तृसूत्र ३ दशवैकल्यसूत्र और ४ पादिकसूत्र ॥

११ (व्यासह) अक्षर जैसे—१ आचार्यसूत्र २ सुगमसूत्र ३ अर्थाक्षर सूत्र ४ समस्तार्थसूत्र ५ आशयसूत्र ६ आशयवक्तृसूत्र ७ अक्षरवक्तृसूत्र ८ अक्षरवक्तृसूत्र ९ अक्षरवक्तृसूत्र १० अक्षरवक्तृसूत्र ११ अक्षरवक्तृसूत्र ॥

१२ (बारह) उपांग जैसे—अक्षरसूत्र, २ अक्षरसूत्र ३ अक्षरसूत्र ४ अक्षरसूत्र ५ अक्षरसूत्र, ६ अक्षरसूत्र ७ अक्षरसूत्र ८ अक्षरसूत्र ९ अक्षरसूत्र १० अक्षरसूत्र ११ अक्षरसूत्र १२ अक्षरसूत्र ॥

२ (पांच) अक्षरसूत्र जैसे—१ अक्षरवक्तृसूत्र २ अक्षरवक्तृसूत्र ३ अक्षरवक्तृसूत्र ४ अक्षरवक्तृसूत्र और ५ अक्षरवक्तृसूत्र ॥

३ (छ) अक्षर जैसे—१ अक्षरवक्तृसूत्र २ अक्षरवक्तृसूत्र ३ अक्षरवक्तृसूत्र ४ अक्षरवक्तृसूत्र ५ अक्षरवक्तृसूत्र ६ अक्षरवक्तृसूत्र ७ अक्षरवक्तृसूत्र ८ अक्षरवक्तृसूत्र ९ अक्षरवक्तृसूत्र १० अक्षरवक्तृसूत्र ११ अक्षरवक्तृसूत्र १२ अक्षरवक्तृसूत्र ॥

१० (दश) अक्षरसूत्र जैसे—१ अक्षरवक्तृसूत्र २ अक्षरवक्तृसूत्र ३ अक्षरवक्तृसूत्र ४ अक्षरवक्तृसूत्र ५ अक्षरवक्तृसूत्र ६ अक्षरवक्तृसूत्र ७ अक्षरवक्तृसूत्र ८ अक्षरवक्तृसूत्र ९ अक्षरवक्तृसूत्र १० अक्षरवक्तृसूत्र ११ अक्षरवक्तृसूत्र १२ अक्षरवक्तृसूत्र ॥

५ पञ्चाङ्ग जैसे—१ पूर्व सप्त ग्रंथों की टीका २ निरुक्ति ३ अक्षर ४ अक्षर के अक्षर अक्षर और सप्त सूत्र मिश्रित पञ्चाङ्ग कहते हैं ॥

इनमें इतिहास अक्षरों को नहीं मानते। और इनसे मित्र की अक्षर ग्रंथ है कि मित्रको शैवी लोग मानते हैं। इनके मत पर विशेष विचार १२ (बारहवें) समुदास में देख लीजिये ॥

जीवियों के प्रान्तों में जहाँ पुनरुत्पत्ति होप है और इनका वह भी सम्भव है कि जो अपना प्रान्त दूसरे मनुष्य के हाथ में डो या चुपा हो तो कोई २ इस प्रान्त को अपनाया करते हैं वह बात उचित सिद्ध है। क्योंकि जिसको कोई माले कोई नहीं हसने वह प्रान्त जीव मनु से बाहर नहीं हो सकता। हाँ, जिसको कोई न माले और न कभी किसी जीव ने माला हो तब तो सम्भव हो सकता है परन्तु ऐसा कोई प्रान्त नहीं है कि जिसको कोई भी जीव नहीं मालता हो। इसलिये जो जीव प्रान्त को मालता होगा उस प्रान्तका विषयक व्यवस्था व्यवहार भी उसी के विषये सम्भव जाता है। परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि इस प्रान्त को मालते मालते ही तो भी मनुष्य का संघर्ष में पड़ता करते हैं, इसी हेतु से जीव को अपना प्रान्तों को बिना रहते हैं। और दूसरे मतका भी न होते न मुक्त और न पकते इसलिये कि उनमें ऐसी २ अवस्थाएँ होती हैं जिसका कोई भी उत्तर जीवियों में से नहीं दे सकता। मृत बात को जोड़ देना ही उत्तर है ॥

१३ में समुदाय में ईसाइयों का मत लिखा है। वे लोग वास्तविक को व्यवस्था धर्मपुस्तक मानते हैं। इनका विशेष सम्पादन इसी १३ में समुदाय में देखिये। और १४ चौदहवें समुदाय में मुसलमानों के मत विषय में लिखा है वे लोग इस्लाम को अपने मत का मूलपुस्तक मानते हैं। इनका भी विशेष व्यवहार १४ में समुदाय में देखिये। और इनके आगे वैदिक मत के विषय में लिखा है ॥

जो कोई इसे प्रान्तकर्ता के तात्पर्य से विच्छेद मालता से देखेगा उसको कुछ भी चमत्कार दिखित न होगा। क्योंकि वास्तविकता में बार बार होते हैं—वास्तविकता, योग्यता, आसक्ति और तात्पर्य। जब हम जहाँ कहीं पर व्याप देकर जो पुनः प्रान्त को देखता है तब उसको प्रान्त का चमत्कार वास्तविकता दिखित होता है ॥

‘आकाङ्क्षा’ किसी विषय पर लब्ध की और वास्तविकता की आकाङ्क्षा परस्पर होती है। ‘योग्यता’ वह मालती है कि जिससे जो हो सके जैसे लक्ष का सीधता। ‘आसक्ति’ जिस पर क साध जिसका सम्बन्ध हो लक्ष के समीप उस पर का कोलना का लिखना। ‘तात्पर्य’ जिसके विषये लब्ध ने वास्तविकता का लेख किया हो उसी के लक्ष उस लब्ध का लेख को पुनः करण ॥

पुनः से इसी द्वारा ही मनुष्य होते हैं कि जो मनुष्य के चमत्कार से विच्छेद व्यवस्था किया करते विरोधकर मत बाह्य लोग। क्योंकि मत के सम्पादन में लक्ष की बुद्धि वास्तविकता में लक्ष के लक्ष हो जाती है। इसलिये जिस में पुनः जीवियों के प्रान्त वास्तविक और इस्लाम को प्रथम ही पुरी छवि से न देखकर उनमें से पुनः का प्रमाण और दोषों का व्याप तथा प्रान्त मनुष्य आदि की दृष्टि के विषये प्रमाण करता है जिस सब को करता योग्य है ॥

इन मतों के बोधे २ ही दोष प्रकटित किये हैं जिसको देखकर मनुष्य को सम्पादन मत का निर्धारण कर सके और सत्य का प्रमाण तथा वास्तविकता का व्याप करने करने में समर्थ होवें। क्योंकि एक मनुष्यव्यक्ति में लक्ष्य कर

विपद् बुद्धि कराके, पण्ड वृषार को प्रसू बना कहा मारना विद्वानों के स्वभाव से नहीं है । बल्कि इस ग्रन्थ को देखकर भक्तवत्सल लोग सम्मान ही विचारेंगे तथापि बुद्धिमान् लोग वक्तव्योक्त इसका अभिप्राय समझेंगे । इसविषये मैं अपने परिश्रम को ब्रह्म समझता और अपना अभिप्राय सब राजाओं के सामने बरता हूँ । इसको देन दिव्यता के मेरे भय की सहाय करें और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा वा सच महाशयों मुख्य कर्तव्य कर्म है ॥

अबममा सब गतप्राप्ती अक्षिराजन्त परमात्मा अपनी कृपा से इस व्यापक को विस्तृत और चिरकाली करे ॥

अन्नमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु ।

॥ इति श्रुमिका ॥

स्वान महापद्मस्वामी का उद्घरणपुर } (स्वामी) दयानन्दसरस्वती
मात्रपद शुद्धपद संवत् १९३१ }

• ओ३म् •

मन्त्रिज्ञानन्दरत्नराय ममो नमः

अथ सत्यार्थप्रकाशः



प्रथमसमुद्भास

ओ३म् शन्नो मित्र श परंणः शन्नो भवत्वप्पमा ।

शन्न इन्द्रो वृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुद्रभ्रमः ॥

नमा प्रक्षय नमस्ते वाया त्वमेव प्रत्यक्ष प्रक्षीति ।

स्यामेव प्रत्यक्षं प्रक्षं वदिप्यामि श्रुते वदिप्यामि सत्य वदिप्यामि ।

वमामवतु तद्भक्तारमवतु अवतु मामवतु वृक्षारम् ॥

ओ३म् शान्तिरशान्तिरशान्तिः ॥ १ ॥

अर्थ—(ओ३म्) यह ओङ्कार वाक् परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें ओ अ उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओम्) समुदाय हुआ है, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं । जैसे अक्षर से किरम्, अग्नि और विष्मदि । अक्षर से हिरण्यगर्भ बाहु और तीक्ष्णदि । मक्षर से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञदि नामों का आचक और प्राज्ञक है । उसका ऐसा ही वैश्वदेव सत्यराश्यों में स्पष्ट व्याख्या किन्ना है कि अक्षरवाहुकृष्ण के सब नाम परमेश्वर ही के हैं ॥

प्रश्न—परमेश्वर से मिल आती के आचक किरम् आदि नाम क्यों नहीं ?
प्रश्न—वृक्षार वृषिणी आदि मूल इन्द्रादि देवता और वैद्यकशास्त्र में रुद्रादि ओषधियों के भी ये नाम हैं वा नहीं ?

उत्तर—है परन्तु परमात्मा के भी हैं ॥

प्रश्न—केवल वैश्व का प्रत्यक्ष रूप नामों से करते हो वा नहीं ?

उत्तर—आपके प्रत्यक्ष करने में क्या प्रमाण है ?

प्रश्न—देव सब प्रसिद्ध और वे अज्ञान भी हैं, इससे मैं उनका प्रत्यक्ष करता हूँ ।

उत्तर—क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई अज्ञान भी है ? मुझ के नाम परमेश्वर के भी क्यों नहीं मानने ? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे तुम्ह भी कोई नहीं हो उससे अज्ञान कोई नहींकर हो कहेगा ? इससे आपका यह

कदापि नहीं। क्योंकि आपने इस कदम में बहुत ही शोच भी करते हैं, जैसे—“अपस्वितं परित्यज्यानुपस्वितं याच्यत इति बाधितव्याय” किसी ने किसी के बिने भोजन का पदार्थ रख के कहा कि आप भोजन कीजिये और वह जो उसको जोड़ के अग्रास भोजन के बिने वहाँ तहाँ भ्रमण करे उसको तुष्टिमान् व वागमय चाहिये क्योंकि वह अपस्वित नाम क्षमीय प्रसन्न रूप पदार्थ को जोड़ के अनुपस्वित अर्थात् अग्रस पदार्थ की प्राप्ति के बिने भ्रम करता है। इसलिये जैसा वह पुरुष तुष्टिमान् नहीं होता ही आपका कथन बुद्धा क्योंकि आप इन किम्बद्दिनादि नामों के जो प्रसिद्ध प्रमाणसिद्ध परमेश्वर और ब्रह्मावधारि अपस्वित अर्थों का परिहारा करके असम्भव और अनुपस्वित देवादि के प्रत्यक्ष में भ्रम करते हैं इसमें कोई भी प्रमाण या पुष्टि नहीं। जो आप ऐसा कहें कि किसी वहाँ प्रकरण है वहाँ उधो का प्रत्यक्ष करना योग्य है जैसे किसी ने किसी से कहा कि ‘हे सुहृत् ! त्वं सौम्यप्रमाणम्’ अर्थात् तू सौम्य कर लेना। तब उसको समझ अर्थान् प्रकरण का विचार करना अवसर है क्योंकि सौम्य नाम जो पदार्थों का है एक बोधे और दूसरे अर्थ का। जो स्वस्वामी का गमन समय हो तो बोधे और भोजनकाक हो तो अर्थ को लेना उचित है। और जो समय समय में अर्थ और भोजन-समय में बोधे को लेना उचित हो उसका स्वामी उस पर कह देकर कहेगा कि तू विदुषः पुरुष है। समय समय में अर्थ और भोजनकाल में बोधे के लाने का क्या प्रयोजन था ? तू प्रयत्नविद् नहीं है, वहीं तो जिस समय में जिसको जाना चाहिये या उधो को जाना। जो तुझ को प्रकरण का विचार करना अवसरक का वह तूने नहीं किया इससे तू मूर्ख है मेरे पास से जाना जा। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जिसका प्रत्यक्ष करना उचित हो वहाँ उधो अर्थ का प्रत्यक्ष करना चाहिये। तो ऐसा ही हम और आप सब जोयी को मारना और करना भी चाहिये ॥

अथ मन्त्रार्थः—

ओम् नमोऽस्तुते ॥ १ ॥ वक्तुं न शक्यं ॥ १० ॥

देहिने देही में देते १ प्रकरणी में ‘ओम्’ आदि परमेश्वर के नाम हैं।

ओमित्येतद्वक्ष्यमुपुषीयमुपासीत ॥ २ ॥

काम्यम् उपविक्तुं ॥ अ १। अ १। म १॥

ओमित्येतद्वक्ष्यमिदं सर्वं तस्योपपत्त्यापानम् ॥ ३ ॥ मातृहन्ता [म १] ॥

सर्वे ब्रह्मा यत्प मामनन्ति तथाऽसि सर्वाणि च यद्वहन्ति ।

यदिच्छन्ती प्रपन्नार्थं करन्ति तसे पदं संग्रह्यं यदीम्योमित्येतत् ॥ ४ ॥

क्योवमिदं क्यो १। म १२ ॥

प्रयासितारं सर्वेनामयीयांसमक्षोरपि ।

कथमार्थं स्वप्नधीगम्यं विधातुं पुरुषं परम ॥ ५ ॥

पतमहि यद्वस्त्येके मनुमस्ये प्रजापतिम्

इन्द्रमथ परे प्राक्ष्मपरे प्राक्ष्म शान्धतम् ॥ ६ ॥

मनु अ १२ वको १२२। १२३ ॥

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्त शिवस्तोऽक्षरस्त परमः स्वराट् ।
स इन्द्रस्त काळामिस्त यम्भुमा ॥ ७ ॥ कैवल्य उपनिषत् ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमभिमाहुरयो विष्णुस्त सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यम मातृस्थिनिमाहु ॥ ८ ॥

अ. मं १। सू. १६७। मं ४६॥

भूरसि भूमिरस्यादितिरसि विश्वाद्या विश्वस्य भुधनस्य धुर्वी ।

पृथिवी यंश्च पृथिवी दृष्टिह पृथिवी मा हिंसी ॥ ९ ॥

बहुः अ. १३। मं १८॥

इन्द्रो महा रोदसी पप्रथञ्छ्व इन्द्रं सूर्यमराजयत् ।

इन्द्रे ह विश्वा भुधनानि येमिन्द्र इन्द्रे भ्यानास इश्वः ॥ १० ॥

सामवेद प्रभा ६। त्रिक ८। मं २०

प्राज्ञाय नमो यस्य सर्वमिदं वर्णं ।

यो मूढः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रविष्टिवम् ॥ ११ ॥

अथर्ववेद अथर्व ११। अ. २। सू. ७। मं १॥

अर्थ—वहो हम प्रमाथों के लिखने में उत्कर्ष नहीं है कि जो ऐसे २ प्रमाथों में जोहाराहि नामों से परमात्मा का प्रकट होता है वह लिख आवे । तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अवर्णक नहीं । सीसे लोक में वरिष्ठो जाति के धनपति धादि नाम होते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि कहीं गौथिक, कहीं कार्मिक और कहीं त्यागवैदिक प्रभों के वाचक हैं ॥

‘ओ३इ’ जाति नाम सार्थक है त्रिस (तीन) ‘अवतीत्योम् आकाशमिव व्यापकत्वात् काम सर्वेभ्यो ब्रह्मत्वात् प्रज्ञा’ रका करने से (ओ३इ) व्यापकत्व व्यापक होने से (यम्) और सब से बढ़ा होने से (ब्रह्म) ईश्वर का नाम है ॥ १ ॥ (ओमित्ये) (ओ३म्) त्रिसका नाम इ और जो कमी वह नहीं होता उसी की उपासना करती योग्य है धाम्य की नहीं ॥ २ ॥ (ओमित्ये) सब वैरादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रभाव और निज नाम (ओ३इ) को कहा है धाम्य सब दौष्टिक नाम हैं ॥ ३ ॥ (सर्वे वैरा) क्योंकि सब वैरा धर्मोनुद्धारक उपश्रव्य त्रिसका कर्म और मान्य करते और त्रिसकी प्रसिद्धि की इच्छा करके ब्रह्मचर्याभ्रम करते हैं उसका नाम ‘ओ३इ’ है ॥ ४ ॥ (प्रयासिता) जो सबको शिक्षा देवैहारा ब्रह्म से सूक्ष्म स्थानाश्रयक सदाबिम्ब बुद्धि से मानने योग्य है उसको परमपुरुष जानना चाहिये ॥ ५ ॥ और स्थानाश्रय होने से “अग्नि” मिश्रान-स्वरूप होने से ‘भनु’ सब का पास्तन करने से ‘प्रजापति’ और परमिधर्वबान् होने से ‘भृगु’, सब का जीवनमूक होने से ‘मासु’ और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम ‘ब्रह्म’ है ॥ ६ ॥ (स ब्रह्मा स विष्णु) सब जगत् के बनाने से ‘ब्रह्मा’ सर्वत्र व्यापक होने से ‘विष्णु’

हुओं को इन्हें देके कबाली से 'रुद्र' मन्त्रप्रमाण और सब का व्यवस्थापन होने से
 'शिव' 'य' सधर्मश्रुत न क्षरति न विनश्यति तदक्षरम्" ॥ १ ॥
 "य" स्वयं राक्षस स क्षरति" ॥ २ ॥ 'योऽग्निरिष काल' कल्पिता
 प्रलयकर्ता स कालाग्निरीश्वर" ॥ ३ ॥ (अक्षर) को सर्वत्र जगत्
 अविनाशी (स्वरूप) स्वयं प्रकाशस्वरूप और (कालाग्नि) प्रलय में सब का
 काल और काल का भी काल है इसलिये परमेश्वर का नाम "कालाग्नि" है ॥ ४ ॥
 (इन्द्र मित्र) को एक अद्वितीय सत्य महा बलु है उसी के इन्द्रादि सब
 नाम हैं। 'इयुषु शुखेषु पदार्थेषु भवो दिव्य' "शोभनानि पर्णानि
 पाद्वनानि पूर्वानि कर्माणि वा यस्य स सुपर्ण" 'यो गुर्वात्मा स गहनमान्"
 'यो मातरिभ्या वत्सपुरिष बलवान् स मातरिभ्यः' । (दिव्य) को प्रकृषादि
 दिव्य पदार्थों में व्याप्त (सुपर्ण) जिसके बलम पाद्वन और पृथ्वी कर्म हैं
 (गहनमान्) जिसका आत्मा घर्वात् स्वरूप महान् है (मातरिभ्या) को धनु के समान
 बलवान् बलवान् है इसलिये परमात्मा के "दिव्य" "सुपर्ण" "गहनमान्" और
 'मातरिभ्या' से नाम हैं। रोष नामों का अर्थ जाले बिछेनी ॥ ५ ॥ (सुमिरसि)
 'मन्त्रस्ति भूतानि यस्या सा भूमि' जिसमें सब भूत प्राणी होते हैं,
 इसलिये ईश्वर का नाम "भूमि" है। रोष नामों का अर्थ जाले बिछेनी ॥ ६ ॥
 (इन्द्रा मन्त्र) इस मन्त्र में 'इन्द्र' परमेश्वर ही का नाम है इसलिये वह
 प्रमाद्विषय है ॥ ७ ॥ (प्राक्वात्) जैसे प्राय के वध में सब शरीर और
 इन्द्रिया होती हैं वैसे परमेश्वर के वध में सब जगत् रहता है ॥ ८ ॥

इन्द्रादि प्रमाद्विषयों के ठीक ठीक अर्थों के जानने से इन नामों करके परमेश्वर
 ही का प्रत्यक्ष होता है ॥ क्योंकि जो ईश्वर और जगत्प्रादि नामों के मुख्य अर्थ से
 परमेश्वर ही का प्रत्यक्ष होता है। वैसे कि जगत्प्राय विस्मय व्यापक, सुखदि
 अपि सुखिनी के जगत्प्रायों से परमेश्वर का प्रत्यक्ष देखने में आता है वैसे प्रत्यक्ष
 कर्मा प्रकल्पे बोध है। परन्तु "ओ ईश्वर" वह तो केवल परमात्मा ही का नाम
 है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के प्रत्यक्ष में प्रकल्प और विशेषण विवक्ष-
 यत्करक हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ १ श्रुति सर्वथा वक्ष्यमाण सर्वथा
 व्यापक शुद्ध, सचाक्ष्य और सङ्किर्ता आदि विशेषण विद्ये हैं, वहीं २ इन
 नामों से परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है। और जहाँ १ ऐसे प्रकल्प हैं कि—

ततो विराट्पायत विराजो अग्निपूर्वः ॥ १ ॥ ऋक् ३१।२ ॥
 ओजस्तुपुर्णं प्राक्वात् शुक्लादुमिरजायत ॥ २ ॥ ऋक् ३१।१५ ॥
 तेन देवा अभ्यजन्त ॥ ३ ॥ पृथ्वाभूमिर्मयी पुरा ॥ ४ ॥ ऋक् ३१।४ ॥

तस्माच्छा पतञ्जलात्मन आकाशं सम्भूतं । आकाशास्तु ।
 वायो रग्निः । अग्निरापः । अद्भुतः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः ।
 ओषधिम्योऽक्षम् । अन्नाद्यतः । ऐतस्य पुरुषः । स वा पयः
 पुरुषोऽक्षरसमयः ॥ वैशिष्टी जगत्प्रमाण वही जगत् ॥ १ ॥

यह वैशिष्ट्योपनिषद् का बचन है। ऐसे प्रमाणों में विरम् प्रत्यक्ष देख, प्राकृत्य वायु अग्नि जल भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं। क्योंकि जहाँ १ उत्पत्ति स्थिति प्रलय विलय जब हरण आदि विशेषण भी मिले हैं। वहाँ १ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता। यह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से प्रथम है। और उपरोक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं इसी से यहाँ विरम् आदि नामों से १ माया का ग्रहण न होकर संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है। किन्तु जहाँ १ सर्वज्ञादि विशेषण हों वहाँ १ परमात्मा और वहाँ १ इच्छा इव प्रथम सुख दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहाँ १ जीव का ग्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये। क्योंकि परमेश्वर का कर्म प्रत्यक्ष कभी नहीं होता। इससे विरम् आदि नाम और ज्ञानादि विशेषणों से जगत् के जल और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है परमेश्वर का नहीं।

अब निम्न प्रकार विरम् आदि नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है यह प्रकर नीचे लिखे प्रमाणों से—

अथ ओङ्कारार्थः—(वि) उपसर्गपूर्वक (रामु दीक्षी) इस वाच्य से किम् प्रत्यक्ष करने से 'विरम्' शब्द सिद्ध होता है। 'यो विविधं नाम चराऽचर जगद्राज्यपति प्रकाशपति स विरम्' विविध अर्थात् जो बहुत प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे इससे 'विरम्' नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है ॥

(अन्तु एति पूज्यतोः) (अथ अति इव गत्यर्थक) वाच्य है इससे 'अग्नि' शब्द सिद्ध होता है। 'गतस्तपोऽर्था' ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः' । "योऽहति अच्युतेऽगस्त्यहतीति वा सोम्यमग्निः" जो ज्ञानस्वरूप सर्वत्र जागने प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम 'अग्नि' है ॥

(विम प्रकेशे) इस वाच्य से 'विम' शब्द सिद्ध होता है। 'विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विम्व ईश्वरः' । जिसमें आकाशादि सब मूल प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें व्याप्त होकर प्रविष्ट हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'विम्व' है। इत्यादि नामों का ग्रहण सम्भवमान से होता है ॥

'ज्योतिर्षि हिरण्यं तज्जो ये हिरण्यमिष्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे' 'यो हिरण्यगर्भः सूर्यादीनां तैजसां गर्भ उत्पत्तिमिमित्तमधिकारः स हिरण्यगर्भः' जिसमें सूर्यादि तेजकाके लोक उत्पन्न होकर जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवासस्थान है इससे उस परमेश्वर का नाम 'हिरण्यगर्भः' है। इसमें बह्वेद के मन्त्र का प्रमाण है—

हिरण्यगर्भः सर्ववर्षताम्रे भूतस्य जात पतिरेव आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं चागृतेमां कस्मिं देवाय हविषां विधेम ॥

इत्यादि कर्मों में “हिरण्यगर्भ” से परमेश्वर ही का प्रत्यक्ष होता है ॥

(वा गतिगन्धर्वाः) इस वातु से ‘वायु’ शब्द सिद्ध होता है । (गन्धर्व
हिसकम्) ‘यो वाति शराऽधरञ्जगद्वरति वक्षिर्ना वक्षिष्ठ स वायु’
को शराऽधर जगत् का कारण जीवन और प्रलय करता और सब ब्रह्मजनों से
ब्रह्मवाक् है इससे उस ईश्वर का नाम ‘वायु’ है । (त्रिंश विंशत्ये) इस वातु
से ‘तेजः’ और इससे तद्विषय † करने से ‘तैजस्’ शब्द सिद्ध होता है । जो
वायु स्वर्गप्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी कोशों का प्रकाश करने वाला है इससे
उस ईश्वर का नाम ‘तैजस्’ है । इत्यादि नामार्थ उद्धारमात्र से श्रव्य होते हैं ॥

(ईश देखें) इस वातु से “ईश्वर” शब्द सिद्ध होता है । ‘य ईष्टे
सर्वैर्भार्यवान् वर्तते स ईश्वर’ जिसका सब विचारणीय ज्ञान और अनन्त
देवार्थ है इससे उस परमात्मा का नाम ‘ईश्वर’ है । (यो धर्मव्यवहारे) इस
वातु से ‘अद्विती’ और इससे तद्विषय † करने से ‘आदित्य’ शब्द सिद्ध होता
है । ‘न विद्यते विनाशो यस्य सोऽपमद्विती’ अद्वितीरेव आदित्य’
जिसका विनाश कभी न हो उसी ईश्वर की ‘आदित्य’ संज्ञा है । (वा धर्मव्यवहारे)
‘म’ पूर्वक इस वातु से “मय” और इससे तद्विषय † करने से ‘मय’ शब्द
सिद्ध होता है । “य” प्रकृष्टतया शराऽधरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स
प्रम्य प्रम्य एव प्रम्य” जो निजान्त ज्ञानयुक्त सब शराऽधर जगत् के व्यवहार को
बयाबत् जानता है इससे ईश्वर का नाम ‘प्रम्य’ है । इत्यादि नामार्थ मन्त्र स
पूरीत होते हैं । जैसे एक २ मात्रा से तीन २ अर्थ यही व्याख्यात किन्ने हैं वैसे
ही अन्य नामार्थ भी जोड़कर से जाने जाते हैं ॥

जो (शब्दो निष्ठा शं व) इस मन्त्र में निजार्थ नाम हैं वे भी परमेश्वर के
हैं । क्योंकि स्तुति प्रार्थना उपासना भेद ही की कीमती है । भेद उपासना
कहते हैं जो गुण कर्म स्वभाव और सत्त्व सत्त्व व्यवहारों में सब से अधिक हो ।
उन सब भेदों में भी जो अत्यन्त भेद उसको परमेश्वर कहते हैं । जिसके गुण
कोई न दुष्टा न है और न होया । जब गुण नहीं तो उससे अधिक कभीकर
हो सकता है ? जैसे परमेश्वर के सत्त्व ज्ञान इया सर्वसामर्थ्य और सर्वशुद्धादि
अनन्त गुण हैं कैसे अन्य किसी जगत् पदार्थ वा जीव के नहीं हैं । जो पदार्थ सत्य
है उसके गुण कर्म स्वभाव भी सत्त्व होते हैं । इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि
परमेश्वर ही की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें उससे भिन्न की कभी न करें ।
क्योंकि मद्रा विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महात्मज विष्णु, देव राजादि
निष्ठ मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विचार करके
उसी की स्तुति प्रार्थना और उपासना करी उससे भिन्न की नहीं की । विदे
हम सब को करना योग्य है । इसका विशेष विचार मुक्ति और उपासना
विषय में किया जायगा ॥

प्रश्न—मित्रादि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के मस्तक व्यवहार देखने से इन्हीं का प्रवचन करना चाहिये ।

उ०—यहाँ उक्तका प्रवचन करना योग्य नहीं क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है वही सखा का शत्रु और किसी से उदासीन भी देखने में आता है । इससे मुख्यार्थ में सखा आदि का प्रवचन नहीं हो सकता । किन्तु जैसा परमेश्वर सब कथन का निमित्त मित्र न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है इससे मित्र काई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता । इसलिये परमात्म्य ही का प्रवचन बड़ा होता है । ह्रीं गौत्र अर्थ में मित्रादि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का प्रवचन होता है ॥

(मिमिक्षा स्नेहने) इस वाक्य से प्रौढादिक 'मित्र' प्रत्यय होने से मित्र शब्द सिद्ध होता है । 'मद्यति स्निह्यति स्निह्यते वा न मित्र' जो सब से स्नेह करने और सब का प्रीति करने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम 'मित्र' है ॥

(हृन् करणं वा ईप्सायाः) इन वाक्यों से उदादि शब्द प्रत्यय होने से 'वदन्' शब्द सिद्ध होता है । 'य' सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून् धर्मात्मनो वृक्षोऽप्ययथा यं शिष्टैः मुमुक्षुनिर्जमात्मनिवियते यय्यते वा स वदन् परमेश्वर' जो धर्मात्मनो शिष्टान्, मुक्ति की इच्छा करेवाले मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकृत करता अथवा जो शिष्ट सुमुक्त मुक्त और धर्मात्माओं से प्रवचन किया जाता है वह ईश्वर 'वदन्' संबद्ध है । अथवा वदन्तो नाम वरं अष्ट' जिसलिये परमेश्वर सब से मेह है इसीलिये उसका नाम 'वदन्' है ॥

(अ गतिमापन्नताः) इस वाक्य से वत् प्रत्यय करने से अर्थ शब्द सिद्ध होता है और 'अर्थ' पुरुष (मातृ माने) इस वाक्य से कश्चिद् प्रत्यय होने से अर्थता शब्द सिद्ध होता है । योऽर्थान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीतं माभ्यान् करोति योऽर्थमा जो सब न्याय के करनेवाले मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करने वालों को पाप और पुण्य के फलों का वचनवत् शब्द १ विधायकता है इसी से उस परमेश्वर का नाम 'अर्थमा' है ॥

(इति परमेश्वर) इस वाक्य से इत् प्रत्यय करने से इन्द्र शब्द सिद्ध होता है । 'य इन्द्रति परमेश्वर्यवान् भवति स इन्द्र परमेश्वर' जो अधिक ऐश्वर्यवान् है इसी से उस परमात्मा का नाम 'इन्द्र' है ॥

'बृहत्' शब्दपूर्वक (पारश्व इत्यप्यतु से इति वसन् बृहत् के तत्पर का ओप और सुहागम होय स बृहत्पति' शब्द सिद्ध होता है । 'यो बृहतामाका शार्दीया पति' स्वामी पालयिता स बृहत्पति' जो बड़ी से बड़ी वृद्धा और बड़े अश्वप्रादि मछानदी का स्वामी है इससे उस परमेश्वर का नाम 'बृहत्पति' है ॥

(विष्णु व्याप्ती) इस वाक्य से 'जु' प्रत्यय होकर 'विष्णु' शब्द सिद्ध हुआ है । पशुपि व्याप्नातिस्व इत्यर्थ जगत् स विष्णु' वर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम 'विष्णु' है ॥

'उदर्सिहान् क्रम पराक्रमो यस्य स उदक्रम' अन्त पराक्रम पुत्र होने से परमात्मा का नाम 'उदक्रम' है ॥

जो परमात्मा (उद्यममा) महापरात्मबुद्ध (मित्रा) सब का सुख
प्रबिरोधी है वह (यम्) सुखकारक वह (वदया) सर्वोत्तम, वह (यम्)
सुखस्वरूप, वह (यममा) व्यापारीय वह (यम्) सुखप्रकारक वह (इन्द्रः)
जो सकल देवर्षयः वह (यम्) सकल देवर्षयः वह (बृहस्पतिः) सब का
प्रबिरोधी (यम्) विद्याग्रह और (विष्णुः) जो सब में व्यापक परमेश्वर है वह
(यः) इमारा कल्याणकारक (यम्) हो ॥

(यमो ते मय्येव नमोऽस्तु) (बृह बृद्धि बृद्धी) इन बातों से मया सम्बन्ध
सिद्ध होता है । जो सब के ऊपर विराजमान सब से बड़ा अनन्तव्यक्तबुद्ध
परमात्मा है उस मया को हम नमस्कार करते हैं । हे परमेश्वर ! (त्वमेव सर्वार्थ
ब्रह्मसि) आप ही अन्तर्बौद्धिक से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो (त्वामेव सर्वार्थं ब्रह्म वदित्वा)
मैं आप ही को सर्वत्र ब्रह्म कहूँगा क्योंकि आप सब जगत् में व्याप्त होने से सब को
मित्र ही प्राप्त है, (यत् वदित्वा) जो आप की वैश्व व्यापक आज्ञा है
वही का मैं सब के लिये उपदेश और आकरण भी कहूँगा (सर्वं वदित्वा)
सब को ही सब माया और सब ही कल्याण (त्वयामकम्) जो आप मेरी
रक्षा कीजिये (त्वत्कारणम्) सो आप मुझ जगत् सत्यवत्ता की रक्षा कीजिये
कि जिससे आपकी आज्ञा में मेरी वृद्धि स्थिर होकर विरह कभी न हो । क्योंकि
जो आप की आज्ञा है वही धर्म और जो उससे विरह वही अधर्म है । (यत्
नमस्तु वदित्वा) वह दूसरी बार बात अधिकार्थ के लिये है । जैसे 'कश्चित्
कश्चित् प्रति वदति त्वं प्रथमं गच्छ गच्छ' इत्यादि दो बार श्रुति के उद्यम
से तू शीघ्र ही प्रथम को का प्रथम सिद्ध होता है । ऐसे ही वहाँ कि आप मेरी
कल्याण रक्षा करो धर्मात् धर्म से सुविश्रित और अधर्म से बूझा सदा कदा ऐसी
कृपा मुझ पर कीजिये मैं आपका बड़ा बपकार मानूँगा । (श्रीराम शान्ति
शान्ति शान्ति) इस में तीन बार शान्तिपत्र का वह प्रयोग है कि त्रिविक्रारा
अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं—एक 'आध्यात्मिक' जो आत्मा
स्वीर में अभिन्न राग, द्वय दुर्लभ और और पीड़ादि होते हैं । दूसरा
'आधिभौतिक' जो शत्रु व्याध और संपत्ति से प्राप्त होता है । तीसरा
'आधिदैविक' अर्थात् जो अतिवृद्धि अतिशीत अति उन्मत्ता सब और
वृद्धि की अतिविधि से होता है । इन तीन प्रकार के लोको से सब हम लोगों
को बुरा करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रहिये । क्योंकि आप ही
कल्याणस्वरूप सब संसार के कल्याणकर्ता और धार्मिक श्रुतियों को कल्याण
के दाता हैं । इसलिये आप स्वयं आपकी कल्याण से सब जीवों के हृदय में
प्रकाशित वृद्धि कि जिससे सब जीव धर्म का आकरण और अधर्म को दोष के
परमात्मन को प्राप्त हों और बुद्ध से पूरक रहें ॥

'सूर्य्य आरमा जगत्तस्तस्युपश्रव' इस महर्षि (१३१३) के वचन से जो
जगत् नाम आधी केतव और जगत् अर्थात् जो चखते फिरते हैं 'उपश्रव'
जगत् की अर्थात् कल्याण जगत् अर्थात् प्रकृति प्राणि हैं उन सब के व्याप्ता होने
और स्वकारण सब के प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम 'सूर्य्य' है ॥

(अथ सातन्त्र्यमर्थे) इस वाक्य से 'आत्मा' शब्द सिद्ध होता है। "योऽस्ति स्यान्नोति स आत्मा" जो सब जीवादि जगत् में निरन्तर व्यापक हो रहा है। "परमासावात्मा स य आत्मस्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोतिसूक्ष्मः स परमात्मा" जो सब जीव आदि से बड़का और जीव प्रकृति तथा आकाश से भी अति सूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्गामी आत्मा है इससे ईश्वर का नाम 'परमात्मा' है ॥

सामर्थ्यवाक्ये का नाम ईश्वर है। 'य ईश्वरं पु समर्थं पु परमं भूतं स परमेश्वरः' जो ईश्वरों प्रणीत समर्थों में समर्थ, जिसके लक्षण कोई भी न हो इसका नाम 'परमेश्वर' है ॥

(तुम् अविज्ञे पृष्ट्वा प्राधिगर्भविमोक्षने) इस वाक्यों से 'सविता' शब्द सिद्ध होता है। 'अमियव' प्राधिगर्भविमोक्षनं चोत्पादयन्। यश्चराचरं जगत् सृजोति सृत् चोत्पादयति स सविता परमेश्वरः' जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है इसलिये परमेश्वर का नाम 'सविता' है ॥

(विदुर्जीव्यविशिषीयान्ब्रह्मरूपितस्तुतिमोहमहत्स्वप्नकल्पितानि) इस वाक्य से 'देव' शब्द सिद्ध होता है। (जीवा) जो हृद जगत् को जीवा कराने (विशिषीया) आत्मिकी को जिससे की इच्छाशुभ (ज्योतिर) सब जगत् के साबनोपसाधनों का दाता (सृति) स्वर्गमन्त्रास्वरूप सब का प्रकाशक (स्तुति) प्रार्थना के योग्य (मोह) आप आत्मन्स्वरूप और दूसरों को आत्मन् देवेद्वारा (मह) महोत्सवों का ताड़नी इतरा (स्वप्न) सब के सबकार्य रात्रि और प्रकाश का करने इतरा (कल्पित) कामना के योग्य और (व्यति) ज्ञानस्वरूप है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'देव' है। अन्वय 'यो जीव्यति जीव्यति स देवः' जो अपने स्वयं में आत्मन् से आप ही जीव कर अन्वय किसी के सहज के बिना जीवन्त सहज स्वयं से सब जगत् को बचाता या सब जीवों का आहार है। 'विशिषीयते स देव' जो सब का जीतने इतरा स्वयं अपने प्रणीत जिसको कोई भी न जीत सके 'व्यावहारयति स देवः' जो ज्ञान और ज्ञानास्वरूप व्यवहारों का आत्मने दाता और उपदेश 'यश्चराचरं जगत् सृजोति' जो सब का प्रकाशक 'यस्तूयत स देवः' जो सब मनुष्यों को प्रार्थना के योग्य और किसी के योग्य न हो "यो मोक्षयति त्वं" जो स्वयं आत्मन्स्वरूप और दूसरों को आत्मन् करता जिसको हृत् का क्षेत्र भी न हो "यो माधयति स देवः" जो सारा हर्षित योग्यहित और दूसरों को हर्षित करने और दुःखों से पृथक् रखनेवाला "यः क्षापयति स देवः" जो प्रकाश समस्त जगत् में सब जीवों को बुझता "यः कामयते कामयते वा स देवः" जिसके सब काम काम और जिसकी प्राप्ति की कामना सब सिद्ध करते हैं, तथा 'यो राक्षयति गम्यते वा स देवः' जो सब में व्याप्त और आत्मने के योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम 'देव' है ॥

(हृदि प्राप्तायने) इस वाक्य से "कुम्भर" शब्द सिद्ध होता है। यः सर्वं कुपति स्वध्याप्याब्धावयति स कुम्भरो जगदीश्वरः" जो अपनी प्रकृति से सब का आकादन कर इससे उस परमेश्वर का नाम 'कुम्भर' है ॥

(यं विलारे) इस वाक्य से “पृथिवी” शब्द सिद्ध होता है। “यं प्रपत सद्यग्माद्विमुखाति स पृथिवी” जो सब विलुप्त जगत् का विलार करने वाला है इसलिये उस परमेश्वर का नाम “पृथिवी” है ॥

(यस्य जलने) इस वाक्य से “जल” शब्द सिद्ध होता है। “जलति प्रस्तपति दुष्टान् संघातयति। अभ्यक्त परमात्मादीन् तद् ग्रहा जलम्” जो दुष्टों का तपन और अभ्यक्त तथा परमात्माओं का धम्मोद्वेग संयोग का विनोप करता है वह परमात्मा “जल” संज्ञक कहाता है ॥

(यस्य दीप्तौ) इस वाक्य से “आकाश” शब्द सिद्ध होता है। “यं सर्वत सर्वे जगत् प्रकाशयति न आकाश” जो सब ओर से जगत् का प्रकाशक है इसलिये उस परमेश्वर का नाम “आकाश” है ॥

(यद् यजये) इस वाक्य से “अग्नि” शब्द सिद्ध होता है ॥

अद्यत्तंति न भूतानि तस्मात्सर्वं तदुच्यते ॥ १ ॥

अहमग्रमहमग्रमहमग्रम् । अहमग्रमहमग्रमहमग्रमहमग्रम् ॥ २ ॥

तैत्तिरीयसि ब्रह्मसूक्त १।१ ॥

अन्ता अन्तराग्रमहमग्रम् ॥ वैराग्यदर्शने अ १। पा २। सू ३ ॥

वह अस्तमयि हुई आतीरिक सूत्र है। जो सब को नीतर रखने का सब को ग्रहण करने योग्य आकार जगत् का ग्रहण करने वाला है इससे ईश्वर के “अन्त” “अन्तरा” और “अन्ता” नाम हैं और जो इनमें तीन बार पाठ है सो आकार के बिन्दु है। जैसे गूँघर के कक्ष में कृमि उत्पन्न होते उसी में रहते और वह हो अन्ते हैं वैसे परमेश्वर के बीच में सब जगत् की प्रत्यक्ष है ॥

(यस्य विमाने) इस वाक्य से “वसु” शब्द सिद्ध हुआ है। “यस्यमि भूतानि यस्मिन्नयवा य सर्वेषु भूतेषु वसति स वसुरीभर” जिसमें सब आकाशवादि भूत अस्त हैं और जो सब में वास कर रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम “वसु” है ॥

(सदिर जम् विमाने) इस से “विष् ०” प्रमाण होने से “रुद्र” शब्द सिद्ध होता है। “यो रोक्षयत्यम्यायकारिणा ज्ञानं स रुद्र” जो दुष्ट कर्म करनेहारों को नष्टाता है इससे उस परमेश्वर का नाम “रुद्र” है ॥

यमममसा ध्यायति तद्वावा यदति यद्वावा यदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तद्मिसम्ययत ॥

वह बहुरूप के आकाश का वचन है। जीव जिसका मन से ध्यान करता उसको अपनी से बोलता जिसको अपनी से बोलता उसको कर्म से करता जिसको कर्म से करता उसी को पाठ होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव बेसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। वह दुष्ट कर्म करने वाले को ईश्वर की न्यायरूपी न्यायता से दुष्टारूप फल पाते सब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उनको नष्टाता है इसलिये परमेश्वर का नाम “रुद्र” है ॥

आपो मारा इति प्रोक्ता आपो वै मरस्त्वय ।

ता यदस्यायत्नं पूर्वं तेन मारायणं स्मृतं ॥ मनु अ १ ब्रह्म १० ८
ब्रह्म और जीवों का नाम मारा है वे अथवा अर्थात् निवासस्थान हैं जिसके
इसलिये सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम 'मारायण' है ।

(यदि आह्वये) इस वातु से 'चन्द्र' शब्द सिद्ध होता है । 'यद्व्यवृत्ति
व्यवृत्ति वा स चन्द्र' को आकाशस्वरूप और सब को आकाश देवताका है,
इसलिये ईश्वर का नाम 'चन्द्र' है ॥

(मणि शब्दार्थ) वातु से 'मण्डल' शब्द सिद्ध होता है । 'यो मण्डति मण्डपति वा मंगल' को आप मंगलस्वरूप और सब
जीवों के मंगल का कारण है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'मंगल' है ॥

(बुध शब्दार्थ) इस वातु से 'बुध' शब्द सिद्ध होता है । 'यो बुध्यते
बोधयति वा स बुध' को सर्व बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का
कारण है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'बुध' है ॥

बृहस्पति शब्द का अर्थ कह दिया ॥

(ईश्वर पृथिव्ये) इस वातु से 'शुक्र' शब्द सिद्ध हुआ है । 'य
शुष्यति शोषयति वा स शुक्र' को अत्यन्त पवित्र और जिसके संघ से
जीव भी पवित्र हो जाता है, इसलिये ईश्वर का नाम 'शुक्र' है ॥

(वर पृथिव्ये) इस वातु से 'शनि' शब्द सिद्ध हुआ है । 'य
शनेत्यति स शनि' को सब में
संहार से अत्यन्त वैरभाव है, इससे उस परमेश्वर का नाम 'शनि' है ॥

(राह आये) इस वातु से 'राहु' शब्द सिद्ध होता है । 'यो रहति
परित्यजति दुष्टान्, राहयति स्वाग्रयति वा स राहुरीश्वर' को
पञ्चमस्वरूप जिसके स्वरूप में दूसरा वर्या संयुक्त नहीं जो इहाँ को बौद्धों
और अन्य को मुझाईदारा है इससे परमेश्वर का नाम 'राहु' है ॥

(किं निवासे रोषपनयने च) इस वातु से 'केतु' शब्द सिद्ध होता है ।
'य' कठपति विक्रिस्तति वा स केतुरीश्वर' को सब जगत् का
निवासस्थान सब रोगों से रहित और सुमुमुक्षुओं को मुक्ति प्रदान में सब रोगों से
मुक्तता है, इसलिये उस परमात्मा का नाम 'केतु' है ॥

(यत्र देवप्राज्ञावृत्तिर्यथावृत्तिषु) इस वातु से 'यज्ञ' शब्द सिद्ध होता
है । 'यज्ञो ये विष्णुः †' वह ब्रह्मायाम्य का अर्थ है । 'यो यज्ञति
विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञ' को सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और
सब विद्याओं का पूज्य है और ब्रह्मा से छोटे सब जगत् सृष्टियों का पूज्य या है और
होय इससे उस परमात्मा का नाम 'यज्ञ' है । क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है ॥

(इह जगत्पदयोः आवासे केयेके) इस वातु 'होता' शब्द सिद्ध हुआ
है । 'यो जुहोति स होता' को जीवों को देने योग्य पदार्थों का दत्ता और
पूज्य करने योग्य का अर्थ है इससे उस ईश्वर का नाम 'होता' है ॥

(बन्ध बन्धने) इससे 'बन्धु' शब्द सिद्ध होता है। 'य' स्वस्मिन् कारात्वरं जगद्व्यपन्नाति बन्धुबन्धमात्मना भुक्त्या सहोपाया वर्तते स बन्धु" जिससे अपने में सब धोखेबोझधरों को नियमी से बन्ध कर रखने और सहोपाय के समान सहान्वक है इसी से अपनी २ परिधि का भिन्न का उत्खनन नहीं कर सकते। जैसे माता भ्रातृणी का सहान्वकरी होता है ऐसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि छोटी के साथ रखने और मुक्त देने से 'बन्धु' संज्ञक है ॥

(पा रक्ष्य) इस बन्धु से 'पिता' शब्द सिद्ध हुआ है। 'य' परति सयान् स पिता" को सबका रक्षक जैसे पिता अपने संतानों पर सदा कृपावृत्त होकर उचित चाहता है वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है इससे उक्त नाम 'पिता' है ॥

'य' पितृणां पिता स पितामह" को पिताओं का भी पिता है इससे उस परमेश्वर का नाम 'पितामह' है ॥

'य' पितामहाना पिता स प्रपितामह" को पिताओं के पिताओं का पिता है इससे परमेश्वर का नाम 'प्रपितामह' है ॥

'यो मिमीते मानयति सर्वाङ्गीषान् स माता" जैसे पूर्वकृपापुत्र बननी अपने संतानों का मुक्त और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बख्ती चाहता है इससे परमेश्वर का नाम 'माता' है ॥

(पर गतिमवबोधोः) आश्चर्य्यक इस बन्धु से 'आचार्य' शब्द सिद्ध होता है। 'य आचारं प्राहयति सर्वा विद्याबोधयति स आचार्य ईश्वर" को सब आचार का प्रवृत्त करनेवाला और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होने से सब विद्या प्राप्त करता है इससे परमेश्वर का नाम 'आचार्य' है ॥

(यु क्तने) इस बन्धु से 'गुरु' शब्द बना है। 'यो बर्म्हान् सम्भान् शूयात्पुपक्षति स गुरुः ॥

स पूर्ववामपि गुरुः काळेमानवच्छेदात् ॥ बोम स समाधिपन्ने स २६ ॥

यह बोधगुरु है। जो सबबर्म्हमतिप्रवृत्त सबका विद्यापुत्र वेदी का उपदेष्टा करवा छद्म की प्राप्ति में जति काय, आदिना जज्ञिना और मन्त्रादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाम कमी नहीं होता इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'गुरु' है ॥

(जज्ञ पतिषेपव्योः कवी मातृभावे) इस बन्धुओं से 'जज्ञ' शब्द बनता है। 'योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वां प्रकृत्पात्रीन् पदार्थान् प्रक्षिपति ज्ञानाति वा कदाचिन्न ज्ञायते सोऽजः" को सब प्रकृति के भगवन् समकर्मपदि भूत परमात्माओं को बन्धनोन्म मिताता शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके ज्ञान देता और तब कमी ज्ञान नहीं होता इससे उक्त ईश्वर का नाम 'जज्ञ' है ॥

(वृद्ध इति वृद्धी) इस बन्धुओं से 'ब्रह्म' शब्द सिद्ध होता है। 'योऽकिन्न जगच्चिर्मायेम सृ इति वर्जयति स ब्रह्मा" को सम्पूर्ण बन्धु को रच के काटा है इसलिये परमेश्वर का नाम 'ब्रह्मा' है ॥

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह वैशिरीबोद्धिबद्ध का वचन है। 'सन्तीति स्मृतस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्त्वम्। यथागतिं यथाऽप्यर्थं जयस्तज्ज्ञानम्।

सा सरस्वती" जिसको विविध पिछाव अर्थात् कर्म अर्थ सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान बधान्त होने इससे इस परमेस्वर का नाम 'सरस्वती' है ॥

'सर्वा' शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वर" जो अपने कर्म करने में किसी शक्त की सहायता की इच्छा नहीं करता अपने ही सामर्थ्य से अपने सब कर्म पूरे करता है इसलिये उस परमात्म्य का नाम 'सर्वशक्तिमान्' है ।

(बीन् प्रपञ्चे) इस प्राप्ति से “न्याय” शब्द सिद्ध होता है। ‘प्रमाप्यैर्यं परीक्ष्यं न्याय’” यह वाक्य न्यायशून्यों पर कल्पनात्मकमुक्तिमत् मन्त्र का है। ‘पक्षपात राहित्याच्चरन् न्याय’” जो प्रत्यक्षादि प्रमायों की परीक्षा से सत्य २ सिद्ध हो तथा पक्षपातरहित धर्मकर्म आचरण है यह ‘न्याय’ कहा जाता है। न्यायं कर्तुं शीघ्रमस्य स न्यायकारीप्रवर” जिसका न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का स्वभाव है इससे उक्त ईश्वर का नाम ‘न्यायकारी’ है ॥

(यद्यपि शास्त्रातिरिक्तवर्तिसाधारणे) इत्युक्तं चेत् “व्याप्तं” इत्यत्र सिद्धं भवति ।
 ‘व्याप्तं वृद्धाति व्याप्ताति गच्छति रसति द्विजस्ति यथा सा व्याप्ता वल्ली
 व्याप्ता विद्यते यस्य स व्याप्ता’ परमेश्वर” को शब्दस्य व्याप्ता सत्यस्य
 सर्वविधार्थों को आधारे कथं व्याप्ता की रक्षा करने और दुर्बो को व्याप्तास्य व्याप्ता
 देने व्याप्ता है इससे परमेश्वर को व्याप्ता ‘व्याप्ता’ है ॥

‘इषोर्माबो ह्याम्यामितं सा द्वितीया द्वीतं वा सौच तन्म वा द्वैतम्, न
 पिद्यत द्वैतं द्वितीयस्वरमाबो पश्मिस्तद्वैतम्’ अर्थात् ‘सम्यक्तीयविज्ञा
 तमिस्त्वागतमेवदुस्यं द्रष्टुं’ वो क्य होया वा दोबी से पुक होया क्य द्वितीया वा
 द्वीत अथवा द्वैत इससे को रहित है सम्यक्तीय जैसे मनुष्य का सम्यक्तीय ब्रह्मा
 मनुष्य होता है, विज्ञातीय जैसे मनुष्य से मित्र वासिष्ठया बृह पापय्यादि,
 स्वागत अर्थात् शरीर में जैसे जीवा पाक कन्य आदि अन्तर्बी का मेव है जैसे
 दूसरे सम्यक्तीय ईश्वर विज्ञातीय ईश्वर वा अथवा अज्ञाना में तन्मन्तर अन्तर्बी से
 रहित एक पत्मेकर है इससे परमात्मा का नाम ‘अतीत’ है ॥

‘नारपन्त पं ठ गुणा वा यैर्गुण्यमस्ति तं गुणा’ यो गुणम्यो निर्गतः
 स निर्गुण इत्यत्र कितने सत्त्व रज तम रूप रस स्पर्श मन्धादि जब के
 गुण अभिन्न अपरकृता रमा होच बीर अभिन्नहि न्येस बीर के गुण हैं उनसे
 ओ इच्छ है इसमें ‘अशुद्धमस्पर्शमरूपमप्ययम्’ † इत्यादि उपनिषदों का
 मन्त्र है । ओ शब्द स्पर्श रसादि गुण रहित है इस्ते परमात्मा का
 नाम “निर्गुण” है ॥

“यो गुणैः सह यत्तत् स सगुणः” जो सब का ज्ञान सबकुछ परिष्कृत प्रकृत व्यपदि गुणों से युक्त है इसलिये परमेश्वर का नाम सगुण है ॥

वैद्ये प्रविष्टो यन्मयि गुणो से "सगुण" और इन्द्रियप्रति गुणो से रहित होने से "निगुण" है। वैद्ये जगत् और जीव के गुणो से प्रयुक्त होने से परमेश्वर "निगुण" और सर्वशक्ति गुणो से सहित होने "सगुण" है। अर्थात् ऐसा कोई

धीर न कमी करीर धारण करता है इसलिये परमेश्वर का नाम “निराकार” है ॥

(अथ च्छायाविकल्पकस्तिगतिषु) इस वाक्य से “अन्धकार” सम्य धीर विरुपसर्ग के बोध से “निरन्जन” सम्य सिद्ध होता है । “अज्ञानं व्यक्तिस्सर्वत्र कुक्काम इन्द्रियैः प्रतिबोधयन्माद्यो निर्गुणं सूक्ष्मभूतं स निरन्ध्रः” को व्यक्ति बोधोत् प्राप्ति मेष्यकृत्वा हृदयमग्ना धीर चक्षुरादि इन्द्रियों के निरन्ध्र के पक्ष से प्रकट है इससे ईश्वर का नाम “निरन्ध्र” है ॥

(मय संख्याने) इस वाक्य से “मय” सम्य सिद्ध होता है और इससे पदो “ईश” वा “पति” सम्य रहने से “गणेश” और “गणपति” सम्य सिद्ध होते हैं । ये प्रकृत्याद्यो अङ्गा जीवाश्च गण्यन्ते ईश्वर्यायन्तं तेषाम्भीष्टं सामी पतिं पाकको वा” को ज्ञानादि सब धीर सय जीव ज्ञानात् परार्थों का स्वामी वा पाकन करनेहारा है इससे उक्त ईश्वर का नाम “गणेश” वा “गणपति” है ॥

यो विष्णुमीदं स विद्महेतुः” को संसार का संचालक है इससे उक्त परमेश्वर का नाम “विश्वेश्वर” है ॥

‘य’ कृतेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्वरूपेयैव तिष्ठति न कृत्स्न परमेश्वर” को सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार होने की किसी व्यवहार में अथवा स्वस्व को नहीं बदलता इससे परमेश्वर का नाम “कृत्स्न” है ॥

विद्यते देव” सम्य के अर्थ लिखे हैं उद्यते ही “देवी” सम्य के भी हैं ॥ परमेश्वर के लीची विज्ञी में नाम है, वैसे—“प्रज्ञा चित्तिरीश्वर्योति” जब ईश्वर का विशेषण होता तब “देव” का चित्ति का होता जब “देवी” इससे ईश्वर का नाम “देवी” है ॥

(अथ सत्की) इस वाक्य से “शक्ति” सम्य बनता है । ‘य सर्वं ज्ञात् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः’ को सब जगत् के बंधने में समर्थ है, इसलिये उक्त परमेश्वर का नाम “शक्ति” है ॥

(त्रिन् सेवकान्) इस वाक्य से “श्री” सम्य सिद्ध होता है । “यं श्रियत सेव्यत सर्वेषु जगता विद्वद्भिर्गोमिमिभ्यः स श्रीरीश्वरः” त्रिभुवन सेवक सब ब्रह्म विद्वान् और गोपीजन करते हैं उक्त परमेश्वर का नाम “श्री” है ॥

(अथ इरावतुवचोः) इस वाक्य से “अक्षयी” सम्य सिद्ध होता है । यो अक्षयति परमेश्वर्युते विद्ययति अराधरं जगद्व्याप्य वैराग्यैर्गामिमिभ्यः यो अक्षयत स अक्षयी सर्वप्रियेश्वरः” को सब अराधर ब्रह्म को देखता चिह्नित ब्रह्मोत् द्रव ब्रह्मात्, जैसे शरीर के भेष नासिक धीर हृत् के पत्र, पुष्प चन्द्र मूक शिखी जल के कृष्ण रक्त, रक्त शक्ति काव्य चन्द्र सूर्यादि चिह्न ब्रह्मात्, तथा सबको देखता सब शोभाओं की शोभा और जो वैराग्य शरणा का धार्मिक विद्वान् शोभिषों का अक्षय सर्वात् देखने योग्य है इससे उक्त परमेश्वर का नाम “अक्षयी” है ॥

(नृ मतो) इस वाक्य से “महत्” उद्यते मनुष्य धीर जीव प्रकट होने से “महत्” सम्य सिद्ध होता है । “सरो विविधं ज्ञानं विद्यत परमं चित्तो

सा सगम्बती" जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान पचासत् होने इससे उस परमात्म का नाम 'सरस्वती' है ॥

सर्वा शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीम्बर" जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरे करता है इसलिये उस परमात्म का नाम 'सर्वशक्तिमान्' है ॥

(बीन प्रपञ्चे) इस वाक्य से 'व्याप' शब्द सिद्ध होता है । "प्रमाद्वैरर्थं परीक्षार्थं व्याप्य" यह वचन व्यापसूत्रों पर आत्मत्वमुक्तिवृत्त मध्य का है । 'पक्षपात राहित्याप्यर्थं व्याप्य' जो प्रत्येकवि प्रमाद्यों की परीक्षा से स्वयं रहित हो तथा पक्षपातरहित कर्मकम आचरण है यह 'व्याप' कहा जाता है । "व्याप्यं कर्तुं शीघ्रमस्य स व्यापकारीम्बर" जिसका व्याप अर्थात् पक्षपातरहित कर्म करने ही का स्वभाव है इससे उस ईश्वर का नाम 'व्यापकारी' है ॥

(द्रव वायुतिरव्यवस्थितराशेपु) इस वाक्य से 'व्याप' शब्द सिद्ध होता है । द्रवत द्वाति अनाति गच्छति रक्षति द्विनस्ति यथा सा द्रवा वल्ली द्रवा विद्यत यस्य स द्रवाणु परमेम्बर" जो अमल का द्रव्य सम्पन्नसम सर्वव्यापी को जानने सब सबकों की रक्षा करने और वृक्षों को बचाने के द्रव देने वाला है इससे परमात्म का नाम 'व्यापु' है ॥

'द्वयोर्मायो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तद्व्य वा द्वैतम्, न विद्यत द्वैतं द्वितीयस्वरमात्रो यस्मिन्तद्वैतम्" अर्थात् 'सद्वैतीयविद्या तन्मिस्वगतमेव शून्यं ब्रह्म" को का होना वा दोहों से युक्त होना यह द्विता वा द्वैत अथवा द्वैत इससे वा रहित है सद्वातीय जैसे मनुष्य का सद्वातीय दूसरा मनुष्य होता है, मित्रवातीय जैसे मनुष्य से मित्र वासिष्ठका वृक्ष पाकवादि, स्वयं अर्थात् शरीर में जैसे जीव प्राक काय वासिष्ठ अन्तरों का भेद है ऐसे दूसरे स्ववातीय ईश्वर मित्रवातीय ईश्वर वा अपने अन्तर में तन्वातर वस्तुओं से रहित एक परमेवर है इससे परमात्म का नाम 'द्वैत' है ॥

'गणयन्ते ये तं गुण्यं वा यैर्गुण्यमि तं गुण्यं यो गुण्येभ्यो निर्गतं स निर्गुण ईम्बर" जिसने सब सब तम सब रस रस रस रस रस रस रस के गुण अर्थवा अत्यन्तता राम होच और अर्थवादि प्रत्येक जीव के गुण हैं उनसे जो वृक्ष है इसमें अग्रगण्यमस्पर्शमरूपमप्ययम्" † इसवादि उपविपरीत का प्रमाण है । जो शब्द स्वरी अर्थात् गुण रहित है इससे परमात्म का नाम "निर्गुण" है ॥

'यो गुणैः सह यत्तत स सगुण्य" जो सब का ज्ञान सबसुख पवित्रता अकर्म ब्रह्मादि गुणों से युक्त है इसलिये परमेवर का नाम 'सगुण्य' है ॥

जैसे प्रथिमी अर्थवादि गुणों से 'सगुण्य' और इन्द्रादि गुणों से रहित होने से 'निर्गुण्य' है । जैसे अमल और जीव के गुणों से वृक्ष होने से परमेवर 'निर्गुण्य' और अर्थवादि गुणों से अहित होने 'सगुण्य' है । अर्थात् वेदा कोई

मी परार्थ नहीं है जो सगुणत्व और निगुणता से पूरक हो। ऐसे केवल के गुणों से पूरक होने से जब परार्थ निगुण और अपने गुणों से परिणत होने से सगुण जैसे ही जब के गुणों से पूरक होने से जीव निगुण और हृन्मदि अपने गुणों से परिणत होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी सम्ममगा चाहिये।

“अमृतयेन्तु नियन्तु शीर्षं यस्य सोऽप्यमन्तर्यामी” जो सब पावी और अमृतिकम् अमृत के मीठ आपक होते सब का नियम करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम “अमन्तर्यामी” है।

“या धर्मे राजते स धर्मराजः” जो धर्म ही में प्रकटमान और धर्म से रहित धर्म ही का प्रकट कर्ता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम “धर्मराज” है।

(यत् उपरमे) इस यत् से “यम्” सम्बन्धित होता है। “य” सर्वात् प्राप्तिनो नियच्छति स यम्” जो सब प्राप्तिनों का कर्ता होने की शक्तता करता और सब प्राप्तिनों से पूरक रहता है इसलिये परमात्म का नाम “यम्” है।

(यत् सकलम्) इस यत् से “यम्” इससे मनुष्य होने से “सकलम्” सिद्ध होता है। “यम्” सकलैश्वर्य सेवन वा विद्यते यस्य स भगवान्” जो समस्त पदार्थों से पूरक का मन्त्र के योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम “भगवान्” है।

(यत् ज्ञाने) यत् से “यम्” सम्बन्धित है। “यो मन्यत स मनुः” जो मनु ज्ञान् विज्ञानकील और ज्ञान के योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम “मनुः” है।

(यत् पावनपुण्ययो) इस यत् से “पुण्य” सम्बन्धित हुआ है। “य” स्वाध्यायस्य चराचरं अमृतं पूषति पूरयति वा स पुरुषः” जो सब अमृत में पूर्ण हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम “पुरुष” है।

(यत् धारकपोषणयो) विद्य पूर्वक इस यत् से “विद्यमान” सम्बन्धित होता है। “यो विद्वं विमर्ति धरति पुष्पाति वा स विद्वन्भरो जगदीश्वरः” जो अमृत का धारक और पोषक करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम “विद्वन्भरः” है।

(यत् संकल्पने) इस यत् से “काल” सम्बन्धित है। “कल्पयति संकल्पति सर्वात् पदार्थान् स कालः” जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संकल्प करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम “कालः” है।

(यत् विवेक) इस यत् से “शेष” सम्बन्धित होता है। “य” शिष्यतः स गुरुः” जो शिष्य और गुरु के शेष अर्थात् सब रहता है इसलिये उस परमात्मा का नाम “शेषः” है।

(यत् प्रज्ञा) इस यत् से “ज्ञा” सम्बन्धित होता है। “य” सर्वात् धर्मात्मन अप्नोति वा सर्वधर्मात्मनिगम्यत सुखादिरहितः स ज्ञातः” जो प्रलोकेतक सकल विद्यनुक सब धर्ममायी को प्राप्त होता और धर्मोपमायी के प्राप्त होने का सब कष्ट कष्टदि से रहित है इसलिये उस परमात्मा का नाम “ज्ञातः” है।

(इहम् करण) 'शब्' पूर्वक इस बात से 'शङ्कर' शब्द सिद्ध हुआ है। 'य' शङ्कस्यार्थं सुखं करोति स शङ्करः" जो कल्याण अर्थात् सुख का करनेवाला है इससे उस ईश्वर का नाम 'शङ्कर' है।

महत् शब्द पूर्वक 'देव' शब्द से 'महादेव' शब्द सिद्ध होता है। 'यो महात्मा दैव' स महादेव" जो महात्मा देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान् सुधीं पदार्थों का प्रकल्पक है इसलिये उस परमात्मा का नाम 'महादेव' है ॥

(प्रीम् तर्पये कन्ती च) इस बात से 'प्रिय' शब्द सिद्ध होता है। "य' पूज्यति प्रियत वा स प्रिय" जो सब धर्मात्माओं सुमुखों और शिष्टों को प्रिय करता और सब को कल्याण के योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम 'प्रिय' है ॥

(नृ ललाप्यम्) 'स्वयं' पूर्वक इस बात से स्वयम्भू शब्द सिद्ध होता है। 'य' स्वयमव्यति स स्वयम्भूरीश्वर" जो आप स आप ही है किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ है इससे उस परमात्मा का नाम 'स्वयम्भू' है ॥

(कु लम्) इस बात से 'कवि' शब्द सिद्ध होता है। 'य' कीर्ति शब्दयति सया विद्या स कचिरीश्वर" जो कदाचित् सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है। इसलिये उस परमेश्वर का नाम "कवि" है ॥

(शिवु कल्याण) इस बात से 'शिव' शब्द सिद्ध होता है। "मनुज मत्प्रियश्चानम्" इससे शिवु बात मन्वा जाता है जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करनेवाला है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "शिव" है ॥

ये ही नाम परमेश्वर के लिये हैं। परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं क्योंकि जिस परमेश्वर के अकल्प गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे उनके अनन्त नाम भी हैं उन्में से प्रत्येक गुण कर्म और स्वभाव का एक १ नाम है। इससे वे मेरे लिये नाम समुद्र के सामने किण्वत् हैं क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण कर्म स्वभाव व्याख्यात किये हैं। उनके पढ़ने बड़ाने से बोध हो सकता है। और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को प्राप्त हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं ॥

प्र०—ऐसे अनेक प्रत्येक नाम जो मन्वा और अन्त में मन्वाचारण करते हैं वैसे आपसे कुछ भी न सिद्ध न किया !

उ०—ऐसा हमको करना योग्य नहीं क्योंकि जो आपदि मन्वा और अन्त में मन्वा करेगा तो उसके प्रीति में आपदि मन्वा तथा अन्त के बीच में जो कुछ बंध होगा वह अमन्वा ही रहेगा इसलिये 'मन्वासाधरार्थं शिष्टाचारान् फलदर्शनादुत्पत्तिरूपेति" यह शोक्य शास्त्र (ज २। सू १) का वचन है। इसका वह अविमर्श है कि जो मन्वा पक्षपातरहित सब बहोक ईश्वर को प्रार्थना है उसी का कथावत् सर्वज्ञ और सदा व्यापार्य करवा मन्वाचारण करता है। मन्वा के आरम्भ से अनेक समाप्तिरूपेण सत्येश्वर का करवा ही मन्वाचारण है, न कि कहीं मन्वा और कहीं अमन्वा सिद्धता। दृष्टि मन्वा मन्वा के बीच को—

यात्पतवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ।

तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मी १ । अणु० ११४

हे सम्तापो । जो "अथवा अभिम्बनीय जगत् कर्ममुख कर्म है वे ही तुमको करने योग्य हैं जगर्ममुख नहीं । इसलिये जो आधुनिक ग्रन्थों में "भीमवेत्यादि यमः सीधाराधना यमः" "राधाकृष्णाय यमः" "श्रीगुरु-वरद्वारविष्णवा यमः" "इत्युक्ते यमः" "दुर्गाय यमः" "बहुलाय यमः" "भैरवाय यमः" शिवाय यमः "सरस्वती यमः" "नारायणाय यमः" इत्यादि कुछ देखने में आते हैं इन्हें बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मित्या ही समझते हैं क्योंकि वेद और जपियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मन्त्र-वचन देखने में नहीं आता और आपग्रन्थों में जो ईश्वर तथा "अथ" शब्द तो देखने में आता है । देखो—

"अथ शम्भुशक्तसमम्" अथेत्यर्थं शम्भोऽधिकारार्थं प्रयुज्यते ॥

यह शम्भुशक्त महाशक्त ॥

अथातो धर्मविज्ञासा अथेत्यात्मन्तर्गे वदाम्ययनात्मन्तरम् ॥

यह धर्मविज्ञासा ॥

'अथातो धर्म व्याख्यास्यामः अथेति धर्मव्याख्यात्मन् धर्मव्याख्या

विशेषज्ञ व्याख्यास्यामः' ॥ यह वैदिक दर्शन ॥

'अथ योगानुशासनम्' अथेत्ययमधिकारार्थं ॥ यह योगशास्त्र ॥

'अथ त्रिपिण्डु-कात्यन्तविदुत्तरात्मन्तर्गुण्याय' सांसारिक विषय-
भागात्मन्तर्ग त्रिपिण्डु-कात्यन्तविदुत्तरार्थं प्रयत्नः कर्तव्यः ॥

यह सांख्यशास्त्र ॥

'अथातो ब्रह्मविज्ञासा' अथुपयसाधनसम्पत्त्यन्तरं ब्रह्मविज्ञास्यम् ॥

यह ब्रह्म सूत्र है ॥

"ओमित्येकद्वन्द्वरमुद्गीयमुपासीत ॥ यह यजुर्वेद उपनिषद् का वचन है ॥

"ओमित्येकद्वन्द्वरमिदं सर्वं तस्योपध्याकथनम् ॥

यह मातृहृन् उपनिषद् के आरम्भ का वचन है ॥

देखे ही जगत् जपि मुनिजनों के ग्रन्थों में "ओ ईम्" और "अथ" शब्द मिलते हैं, जैसे ही (अग्नि इह अग्नि य त्रिपसा परिपुष्टि०) वे शम्भु ज्यों वेदों के जपि में मिलते हैं । "भीमवेत्यादि यमः" इत्यादि शब्द कहीं नहीं । और जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में "हरि ओ ईम्" मिलते और पढ़ते हैं यह शैतनिक और तान्त्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से जीव है । ब्रह्मदि शास्त्रों में "हरि" शब्द आदि में कहीं नहीं । इसलिये ओ ईम् या 'अथ' शब्द ही ग्रन्थ के आदि में मिलना चाहिये । यह भिन्नभिन्नग्रन्थ ईश्वर के विषय में लिखा हुआ है अथेति के विषय में लिखा जायगा ॥

इति भीमहृन्मन्दसरस्वतीसामिदं सत्यार्थप्रकाशं शुभापायिभूयित

इत्येतन्मपिपय प्रथमं समुद्रासं सम्पूर्णं ॥ १ ॥

अथ द्वितीयसमुत्तनासारम्भ

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

मातृमान् पितृमानाचार्यान् पुरुषा वद ॥

यह श्लोक मातृमान् का बचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होने लगी मनुष्य ज्ञानका होता है। यह कुछ अन्य! यह सन्तान बना सामान्य! जिसके माता और पिता धार्मिक शिक्षा हों। जिसका माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम [और] उत्तम हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता इसलिये (मातृमान्) अर्थात् “प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यत यस्य स मातृमान्” अर्थ यह माता है कि जो धर्मोपाय से लेकर जल तक पूरी विद्या न हो तक तक सुखीकता का उपदेश करे। माता और पिता को यदि उचित है कि गम्भाधान के पूर्व, अन्य और पश्चात् मातृक प्रथम मध्य पुर्णक रूप बुद्धिमानक पदार्थों को जोड़ के जो शक्ति आरोप्य बड़ा बुद्धि पराक्रम और सुखीकता स सम्पत्ता का प्राप्त कर देने का कुछ कुछ मित्र ब्रह्मप्राप्त पारि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन कर जिससे राजस्वीर्ष भी शीघ्र से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों। जिसका अनुगमन की शिक्षा अर्थात् राजोदर्यम के पाँचों विषय से लेकर सोचने से लेकर तक अनुगमन देने का समय है जब दिनों में न प्रथम के चार दिन लग्य हैं रहे १२ दिन इसमें एकदली और जलोदरी को दोष के बाधे। रात्रियों में गम्भाधान करना उत्तम है। और राजोदर्यम के दिन स बड़े १२ की रात्रि के पश्चात न समाप्त करना। पुन जलक अनुगमन का समय पूर्वोक्त न जान तकनक और धर्मश्रुति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों जब हमों के शरीर में आरोप्य परस्पर प्रसन्नता किसी प्रकार का शाक न हो। जिस चरक और सुभुत में मातृक दारुण का विद्या और अनुसृष्टि में भी पुरुष की सम्पत्ता की रीति मिलती है उसी प्रथम करें और करें गम्भाधान के पश्चात् भी को बहुत आवश्यकता से भोजन दारुण करना चाहिये। पश्चात् एक वर्ष पूर्वत भी पुरुष का क्षय न कर। बुद्धि, बड़ा रूप आरोप्य पराक्रम शक्ति पारि गुणकरक रूपों ही का सेवन भी करती रहे कि जलक सन्तान का जन्म न हो ॥

जब जन्म हो तब अर्धे मुनिप्रियुक्त जल से बाधक को रणाय शरीरद्वय का के मुनिप्रियुक्त पृथग्वि के दोम > और भी के भी रणाय भोजन का पथाधोम प्रथम कर कि जिससे बाधक और भी का शरीर प्रथम। आरोप्य और पुन

० बाधक के जन्म समय में “अपक्वसंस्कार” होता है उसमें हवनारि वरोक्त करने होते हैं, व “संस्कार विधि” में समिलित विधि दिने हैं।

होता था। ऐसा पदार्थ उसकी मत्ता या चाबी माने कि जिससे दूध में जी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध का दिन तक वाक्य को दिखावे ज्ञात चाबी दिखावा करे वस्तु चाबी को उत्तम पदार्थों का ज्ञान-प्राप्त मत्ता प्राप्त करावे। जो कोई दृष्टि हों, चाबी को न रख सके तो वे दूध या बकरी के दूध में उत्तम ओषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम आशान्व करनेवाली हों उनको दूध बक में मित्रो छोटा दान के दूध के समान बक मित्र के वाक्य को दिखावे। जन्म के पश्चात् वाक्य और उसकी मत्ता को दूसरे ज्ञान में कहाँ का बकु दूध हो कहाँ रखें, सुशान्व तथा दर्शनीय पदार्थ भी रखें और उच्च देख में भ्रमण करावा उचित है कि जहाँ का बकु दूध हो। और कहाँ चाबी गन्ध कभी धारि का दूध न मित्र सके कहाँ बीसा उचित समर्थ है। क्योंकि प्रसूता की के लीर के जन्म से वाक्य का लीर होता है इसी से भी प्रसूतमन्त्र विवेक हो जाती है इसलिये प्रसूता की दूध न दिखावे। दूध रोकने के विवेक लक्ष के मित्र पर उस ओषधि का खेप करे जिससे दूध कल्पित न हो। ऐसे करने से दूसरे मन्त्रों में [की] पुनरपि पुनरी हो जाती है। तत्काल पुनः मन्त्रार्थ के वीर्य का विमल रक्ते। इस प्रकार जो की का पुनः करेंगे उनके उत्तम सन्तान वीर्यानु क प्रसूता की बुद्धि होती ही रहेगी कि जिससे सब सन्तान उत्तम सब पराक्रमयुक्त वीर्यानु धर्मिक हों। की बोधि संकोच्य सोच्य और पुनः वीर्य का सम्मन्त्र करे पुनः सन्तान मिलने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे।

वाक्यों को मत्ता सत्ता उत्तम विद्या कर जिससे सन्तान सन्त्र हों वीर्य किसी भक्त से कुवेष्ट न करने पावे। जब बोधने करो तब उसकी मत्ता वाक्य की विद्या प्राप्त मन्त्र कोमल होकर लक्ष उच्चारण कर सके हैसा उत्तम करे कि जो विद्या बर्ष का ज्ञान प्रत्यक्ष वाक्य है। 'य' इत्यन्त छोटा कमान और स्पष्ट प्रत्यक्ष दोनों छोटी को मित्राकर बोधना इत्य वीर्य पुनः वाक्यों को मन्त्र १ बोध प्रकृत मन्त्र गम्भीर सुन्दर स्वर अक्षर मात्रा पद कल्प संविद्या धर्मसन्त्र मित्र २ कल्प होते। जब वह पुनः २ बोधने और समझने को तब सुन्दर वाणी और बने छोटे, मन्त्र पिता मत्ता प्रकृत विद्या धारि से मन्त्र उत्तम बर्षमान और उनके प्रकृत वेधने धारि की भी विद्या करें, जिससे कहाँ उत्तम प्रकृत व्यवहार न हो के लक्ष्य प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान मित्रेन्द्र विद्यामित्र और सन्त्रा में कधि करें हैसा प्रत्यक्ष करते हैं। वीर्य कीदा रोदन हाल कर्षार्थ हर्ष कोमल, किसी पदार्थ में कोतुपता ईर्ष्या होधनि न करें। उपरमेन्द्र के लक्ष्य और मर्त्य से वीर्य की नीचता, नपुंसकता होती और इत्य में दुरन्ध भी होता है इससे उत्तम स्पर्श न करें। सदा सब माय्य शीर्ष के प्रसन्नकृत धारि गुर्बी की धारि मित्र मन्त्र हा करावे।

जब पांच १ वर के कर्षण प्रकृति हों तब देवतागरी वाक्यों का धर्मप्र कराने धर्म देवीय मन्त्राओं के वाक्यों का भी। उसके पश्चात् जिससे धर्मको विद्या विद्या धर्म परमेवर मन्त्र पिता धार्या विद्या धारि पिता मन्त्र कुतुम्भ कर्ष भूमिवा कर्ष धारि धर्म के १ कर्षवा दूध वाक्यों के मन्त्र कोमल, दूध पय पय

भी धर्म सहित कष्टकर करावें। जिससे सन्ताप किसी पूर्ण के बहकाने में प
जावें और जो १ विद्याधर्मविद्वद् आश्रित्यास में गिरानेका व्यवहार है उनका
भी उपदेश करें जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमर्ध समाधरन् ।

प्रेतहारीः सर्वं तत्र कुरारात्रेषु शुष्यति ॥ मनु अ २। १२ ॥

अर्थ—जब गुरु का प्राधान्य हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेत है
उसका राह करनेकरा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठानेवालों के साथ
रहने दिन शुद्ध होता है ॥

और जब उस शरीर का राह हो चुका तब उसका नाम भूत होता है अर्थात्
यह अनुकूलता युक्त था। शिवसे उत्पन्न हों अतमान में था क न रहें व मृतत्व
होने से उनका नाम भूत है। ऐसा प्रजा से छेक आश्रित्य एवं विद्वानों का
सिद्धान्त है। परन्तु जिसको शत्रु कुर्षव कुर्षस्वर होता है उसको सब और
शत्रुकुल भूत प्रेत आदिभी आदि आदि अनेक सम्प्रदाय दुःखदायक होते हैं ॥

इसो जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जन्म पाप पुण्य के बराबर
परमेश्वर की व्यवस्था से कुछ दुःख के फल मोक्ष के धर्म अन्तर्गत धारण करता
है। क्या इस अधिकांशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है ?
अज्ञानी लोग विद्वानों का परमेश्वर के बहने सुनने और विचार से रहित
होकर तद्विपरीत अराष्ट्रिक और उन्मादकादि मानस रोगों का घम मृत
प्रत्यादि धरते हैं। उनका जीवनसमय और पश्चादि उचित व्यवहार न करके उन
पूर्ण पावनवती महामूर्ख जगन्नाथी, स्वर्गों मयी चमार शत्रु अन्धकार पर
भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के होम दण्ड कष्ट और उच्छिष्ट मोक्षन और
धन्य आदि मिथ्या मन्त्र वन्त्र बोधत वषणत फिरते हैं अपने धर्म का घम
सम्पन्न आदि की दुर्गता और रोगों को बढ़ा कर दुःख दण्ड फिरते हैं। जब जन्म
के जन्म और मर्त्य के पूरे उन कुछ दि पापी स्वर्गियों के पास आकर पड़ते हैं कि
“महामात्र ! इस बहक बहक की भी और पुण्य को न जाने क्या हो गया है ?”
तब वे बोझते हैं कि इसके शरीर में बड़ा भूत प्रेत भ्रष्ट, शीतला आदि दबी
आग है अथवा कुछ इसका उपाय न करोगे तबतक वे न धर्म और प्रत्यक्ष भा
वेजवे। आ नुम मन्त्री का इसकी भेंट हाता हम मन्त्र उर पुरस्कार से
भय है हमको मिथ्या है”। तब वे अपने और उनके सम्बन्धी बाधते हैं कि

महाराज ! यदि हमारा सकल ज्ञानो परन्तु इनको जगद्गुरु कर दीजिये”। तब
तो उनकी वन पड़ती है। वे पूर्ण कहते हैं “अप्राप्त आया इसकी माममी इनकी
दक्षिणा रेखा को भेंट और प्रदशन कराओ”। अर्थ मूर्ख लोग प्यको मुके
उसके सामने बजाने गस्त और उनमें से एक पावनवती सम्पन्न होके पाप दूर के
करता है “मैं इसका पाप हो से लूँ” तब वे जन्म उन पापी चमार आदि
भीषक के फलों में पड़ के कहते हैं “आप आदि मो दीजिये इसके बचाव”। तब
वह पूछ बोझता है “मैं इतना ही हूँ, जाना पड़ी मिथ्या बज मिरर सच मर
का रोड और बाध अन्ध”। मैं दबी का नरक हूँ आया शीघ्र बानस मर

धीन मुझी पांच कदरे मिझई धीर बस' । जब ये कहते हैं कि 'जो चाहो सो को तब तो वह पयस्य बहुत बाधने करने लगता है । परन्तु का कोई इतिमत्त उधकी मर पांच बड़ा दण्ड व बाधता बात मारे तो उसके इतुमत्त देवी धीर मरव मर मरव होकर मरव जाते हैं क्योंकि वह पयस्य केवल बचादि हस्त करने के प्रयोजनार्थ ही है ॥

और जब किसी महाप्रसन्न प्रहस्य मनोविचित्रभास के पास जाके वे कहते हैं "हे महाप्रसन्न ! इसको क्या है ?" तब वे कहते हैं कि "इस पर सुषारि मर मर रहे हैं । जो तुम इसकी स्तम्भितपाद रुका, हाथ कराओ तो इसको सुख होजाय नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मरजाय तो भी सम्भव नहीं" ॥

उ०—कहिने ओतिविचि । बेसी यह धुषिणी बह है किसे ही सुषारि कोक है । व हाथ धीर मरजादि से मित्र कुछ भी नहीं कर सकते । क्या वे चेतन हैं जो कोषित होके हुला धीर मरव होके सुख से सके ॥

प्र०—क्या जो वह संसार में राजा मर सुखी दुखी हो रहे हैं वह मर्दों का क्या नहीं है ?

उ०—वही वे सब पाप पुण्यों के फल हैं ॥

प्र०—तो क्या ओतिविचारा सुख है ?

उ०—वही, जो उसमें बहुत बीज देखलाहित मित्र है वह सब सबी ओ फल की बीजा है वह सब सुखी है ॥

प्र०—क्या जो वह जन्मपत्र है सो निष्कल है ?

उ०—हां वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उद्यम नाम 'सात्त्विक' रसका चाहिये क्योंकि जब मन्ताय का जन्म होता है तब सब की सम्पन्न होता है परन्तु वह धावन्त तबतक होता है कि जन्मक जन्मपत्र बनके मर्दों का फल व सुखे जब पुराहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता, पिता पुराहित से कहते हैं 'महाप्रसन्न ! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये' जो धन्य हो वा बहुतसी साध पीछी देखायी ले मित्र विचित्र धीर निर्जन हो तो साधारण रीति में जन्मपत्र बनाने मुनाने का जाता है । तब उसके भी काय ओतिपीजी के सामने बैठ व कहते हैं "इसका जन्मपत्र अच्छा तो है ?" ओतिपीजी कहता है "जो है सो सुख रता है । इसके जन्म मर बहुत अच्छे धीर मित्रम भी बहुत अच्छे हैं मित्रका फल बसाध्य धीर प्रतिद्वन्द्व, मित्र सभा में जा बैठेगा वा घरके ऊपर इच्छा तब परेगा लीज मर धावन्त धीर सम्पन्नानी हाथ" । इत्यादि कई सुखके पिता मरि बाधत है "काह १ ओतिपीजी काय बहुत अच्छे हो" । ओतिपीजी समझत है इन बातों से कार्य छिड़ नहीं होता । तब ओतिपीजी सोचता है कि 'वह मर तो बहुत अच्छे हैं परन्तु वह मर मर हैं क्योंकि मराने १ मर व योग से ८ वर्ष में इसका जन्मयोग है' । इसको सुखके माता पितादि पुत्र व जन्म व धावन्त की जोड़ के साक्षरभास में हुक्कर ओतिपीजी से कहत है कि 'महाप्रसन्न ! जब इस क्या करें ?' तब ओतिपीजी कहते हैं उद्यम को मरव पुत्र क्या उपाय की ? ओतिपीजी मरव बन बाधत है कि एता १

दान करो। यह क मन्त्र का अप कराओ और भिन्न ब्राह्मणों को भाजन करायाय तो अनुमान है कि नब्रह्मों के बिना इट आयेगे। अनुमान यह इसलिये है कि जो मर जायाय तो कहेगे हम क्या करें परमेश्वर के ऊपर कोह नहीं है हमने तो बहुतसा पाप किया और तुमसे कराया उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो नब्रह्म तो कहते हैं कि देखो हमारा मन्त्र देखा और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है। तुम्हारे सबके को नया दिया। यहाँ यह बात होनी चाहिये कि जो इसके अप पाठ से कुछ न हो तो कृने तिरुवे कपने इन पुत्रों से छे छेने चाहिये। और नब्रह्म तो भी छ छेने चाहिये क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं। किम गृहस्थ भी कहें कि 'यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम न नया है तुम्हारे करने से नहीं' ॥

और तामर गुह्य चाहि भी पुनपदान करा के आप छे सत हैं तो उनको भी यही उत्तर देना जो ज्योतिषियों को दिया था ॥

यह रह गई सीखना और मन्त्र तन्त्र यन्त्र चाहि। ये भी ऐसे ही होम नचाते हैं। कोई कहता है कि जा इस मन्त्र पर क बोरा वा पन्ना बना दें तो हमारा देखा और और उस मन्त्र बन्ध के प्रभाव से उसको कोई बिना नहीं होवे दूत। इसके यही उत्तर देना चाहिये कि क्या तुम खुद परमेश्वर के नियम और कर्म का स मा नया प्रयोग? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही सबके मर जाय है और तुम्हारे कर में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरने से बच सकोगे? तब से कुछ भी नहीं कह सकते और वे पूर्व जन्म छेते हैं कि यहाँ हमारी हाथ नहीं गलगी। इसका इन सब मिथ्या व्यवहारों का जोड़कर धार्मिक सब दूत के उपकारकता मिथ्यपत्ता से सबका दिया पढ़ाने वाले उत्तम विद्वान् जोधों का अनुपकार करके जैसा वे ज्ञात का उपकार करते हैं इस काम को कभी न छोड़ना चाहिये। और जिसकी सीखा रसायन मारवा मोहन, उचाटन कठीकरवा चाहि करना कहते हैं उनको भी महापामर समझना चाहिये। इत्यादि मिथ्या कर्तों का उपरत वास्तविकता ही है सन्तानों के हृदयों में बाध है कि जिससे स्वयन्त्याव किसी के भ्रमजाल में पड़े के दुःख न पारें ॥

और बीर्य की रक्षा में बाबन्ध और काय करने में दुःखप्रति भी जन्म रही चाहिये। जिस 'देवा' जिसके शरीर में मुरचित बीर्य रहता है तब उसको प्यारोग्य बुद्धि सब पराक्रम सब बहुत मुक्त की प्रति होती है। इसके रचय में यही शक्ति है कि बिचनों की कथा बिचनी छात्रों का सर्व विषयों का ज्ञान की का दर्शन पचमत्त सब संभावना और रस्य चाहि कर्म न मद्रपारी काय रूपक। इकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में बीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलजयी और जिसको मन्द रोम होता है वह नुबंख निम्नेत्र मिथुन, उन्माद साहस पर्व सब पराक्रमहि मुषों से रहित हाकर मर हो जाता है जो गुप्त सत्य मुनिपा और विद्या के ग्रहण बीर्य की रक्षा कान में इस समय नचाय तो पुन इस जन्म में मुसको यह समुद्रय समय मस नहीं हो सक्य। जब तक हम काम गृहस्थों के कान बाध जीत है तभी तक

तुमका विद्याभ्युदय और शरीर का भय बहावा चाहिये" । इसी प्रकार की बात १ शिक्षा भी माता और पिता करें । इसीविषये मनुस्मृत्युक्तिम् "तन्मया कस्य च उक्तं बचनं मे किया है अर्थात् जन्म से २ बें वर्ष तक पाककों को माता ६ बें वर्ष से ८ बें वर्ष तक पिता शिक्षा कर और ९ बें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने छात्रागों का उपनयन करके आचार्यकुल में भर्षात् जहाँ पूर्ण विद्या और पूर्ण विदुषी की शिक्षा और विद्याभ्यास करये जाती हो वहाँ सबके और सबके को भेज दें और गृहस्थ वर्ष उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के बिना गुरुकुल में भेज दें ।

उन्हीं के सन्तान विद्या सत्य और सुविहित होते हैं जो बचने में सन्तानों का साधन कभी नहीं करते किन्तु उपनयन ही करते रहते हैं । इसमें आचार्य मन्त्राचार्य का आशय है—

सामृतैः पश्चिमिर्भूमि गुरवो न विपोक्षिते ।

आज्ञाताभयिषो वोपास्ताहनाभयिषो गुप्ता ॥ महा ८।१।८ ॥

अर्थ—जो माता पिता और आचार्य सन्तान और शिक्षा का साधन करते हैं वे जाया करने सन्तान और शिक्षा को अपने हाथ से अत्यन्त पिका रहें हैं और जो सन्तानों का शिक्षा का साधन करते हैं वे अपने सन्तानों और शिक्षा को विप पिका के सह भय कर दते हैं । क्योंकि साधन से सन्तान और शिक्षा दोषमुक्त तथा सत्य से गुणयुक्त होते हैं । और सन्तान और शिक्षा जाया की साधन से सत्य और अत्यन्त से अत्यन्त सदा रहा करें । परन्तु माता पिता तथा आचार्य को भय है जो वेप से साधन न करें किन्तु ऊपर से मन्त्राचार्य और नीतर से उपनयन रखें ॥

इसी अर्थ शिक्षा की वैसी चोरी करी अत्यन्त अत्यन्त मातृ कुल विद्याभ्यास विद्या कृत्य है जो वेप से अत्यन्त सदा रहे और सन्तानों के अत्यन्त करने की शिक्षा करें । क्योंकि जिस युक्त वे जिसके समवे एक घर चोरी, करी विद्याभ्यासकारि कर किया उसकी प्रतिष्ठा उसके समवे मनुस्मृत्युक्ति में होती । वैसी हाथ प्रतिष्ठा विद्या करने वाले की होती है वैसी अर्थ किसी की नहीं । इससे जिसके सत्य वैसी प्रतिष्ठा करनी उसके सत्य सती ही करी करी चाहिये अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि— 'मैं तुमको का तुम मुक्त से अत्यन्त समय में मिलूँगा का मित्रता करवा अत्यन्त अत्यन्त समय में तुमको मैं दूँगा' इसको वैसी ही पूरी करे नहीं तो उसकी मति को ही न करेगा । इसविषये सदा सत्यमय और सत्यमयिषुक्त सब को होना चाहिये । किसी को अविमान न करवा चाहिये । कुछ अर्थ का अत्यन्त से अत्यन्त ही अत्यन्त सुविहित होता है तो दूसरे की सत्य सत्य कहनी चाहिये । 'कुल' और 'अर्थ' उसको कहते हैं जो नीतर और ऊपर और सब दूसरे को मोह में रख और दूसरे की हाथ पर अत्यन्त न देकर स्वयंभोजन सिद्ध करवा । 'इत्यन्त' अर्थका कहते हैं कि किसी के बिना हुए उपनयन को न मानवा । अर्थात् दोष और अत्यन्त को दोष सत्य और अत्यन्त सत्य ही बोले और अत्यन्त न करे । अत्यन्त बोधना चाहिये उससे अत्यन्त का अधिक न बोले । वहाँ को अत्यन्त

हे, उनके सामने उठकर जा के उच्चासन पर बैठाने प्रथम "पमस्ते" करो । उनके सामने उच्चासन पर न बैठे । समा में बैठ करान पर बैठ प्रैसी अपनी योग्यता हा और दूसरा कोई न उठाने । विराध किसी से न करो । सम्पन्न होकर गुणों का प्रदूषण और दोषों का व्यापन करने । सुखों का संग और दुःखों का त्याग अपने मन्त्र पिता और आचार्य की तन मन और धनार्थ उच्चम उच्चम पदार्थों से पीतिपूर्वक खनन करो ॥

पाम्यस्माकऽ सुस्वरिताभि तानि त्वयोपाम्यानि नो हतराणि ॥

तृति कस्यो १ । मनु ११ ॥

इसका वह अर्थ है कि माता पिता आचार्य अपने सन्तान और शिष्यों का सेवा सम्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो २ प्रकार धर्मपुत्र कर्म हैं उनका प्रदूषण करो धर्म जो २ बुद्ध कर्म हैं उनका त्याग कर दिया करो । जो २ सम करने उन २ का प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष करें । किसी पाप्मन् की दुष्टाचारी मनुष्य पर विचार न करें और जिस २ उच्चम कर्म के लिये माता पिता और आचार्य आज्ञा दें उस २ का प्रयोग प्रारम्भ करें । जिस माता पिता न करें लिये अपने आचार्य के श्लोक "विषयं निवृत्तं गृह्यान्वासी" अपना सम्य मूल का वेदमन्त्र कथन करने हैं उन २ का पुनः सर्व विचारों को विरहित कराने । जैसे प्रथम समुदास में परमेश्वर का व्याख्यान किया है उसी प्रकार माता पिता को उपासना करें । जिस प्रकार आरोग्य विद्या और कष्ट प्रसन्न हा उसी प्रकार भोजन प्रारम्भ और व्यवहार करें कदाचित् भयात् विरहो बुधा हो उससे कुछ भ्रम भोजन करें । मद्य मांसादि के सबन से बचन रहें । अज्ञान गम्भीर जल में प्रस्था न करें क्योंकि जलजन्तु का किसी अन्य पदार्थ से बुद्ध और जो तरना न जाने वा दूध ही जा सकता है । "अविज्ञान जलजन्तु" यह मनु का वचन है अविज्ञान जलजन्तु में प्रविष्ट होके स्मार्थादि न करें ॥

दृष्टिपूर्तं भ्यस्तत्पार्थ यत्नपूर्तं अर्धं पिबत् ।

सस्यपृता पशुद्वार्य मनः पूर्तं समान्तरत् ॥ मनु च ६ । ४६ ॥

अर्थ—बीच दृष्टि कर ऊँच बीचे कथन को देन के कष्ट कष्ट से ज्ञान के जब पीच मन्त्र से प्रविष्ट करक वचन बाधे मन से विचार के आचरण कर ॥

मातापितृ पिता पौरी यम वाळा न पाठिनः ।

न शोभत सभामध्य ईसमध्य पक्षा यथा ॥ अथर्व वे २ । श्लोक ११ ॥

॥ माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्व बैठी हैं शिष्टीने उनको विद्या की प्रशिक्षण न कराई ॥ विद्वानों को सभा में बैस तिरस्कृत और कुपार्थिन हात है जैस ईसो के बीच में अंगुली ॥

पहले माता पिता का कथन कर्म परमार्थ और कीर्ति का कथन है जो अपने सन्तानों को मन मन धन न विद्या धर्म सम्पत्ति और उच्चम शिष्यपुत्र बनना ।

॥ ४६ काव्यिका में आइता शिष्टा करने हा न बुद्धिमान् साथ बहुत सम्य प्रेम ॥

इति धर्महृदयसंसारमूर्तीकामिह न मत्पर्यप्रकाश सुभाषाधिभूषित बाजशिपायिपद द्वितीयः समुदासः सम्पूरा ॥ ५ ॥

अथ तृतीयसमुद्भासारम्भ

अथाऽध्यायताभ्यापनविधिं व्याख्यास्यामः

अब तीसरे समुद्भाग में पहले पहाने का प्रकार लिखते हैं। सन्तानों को उत्तम विद्या शिक्षा शुद्ध कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराया जाता किन्तु आचार्य और सम्प्रदायियों का मुख्य कर्म है। सोने चाँदी मादिक मोती रत्न आदि रत्नानि से पुष्क आभूषणों का धारण करावे सं मनुष्य का ध्याना सुसूचित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों का धारण करने से वेदव्य वेदामिमान विपदासक्ति और चोर आदि का भय तथा क्षुब्ध का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के बोझ से वाहनधारियों का मृत्तु बुद्धों के हाथ से होता है ॥

विद्याविज्ञासम्पन्नसो भूतशीलशिक्षाः, सत्यवता रहितमनस्तन्नापहन्ता ।
संसारबुद्धदक्षरैश्च सुसूचिता यं धम्या नरा विहितकर्मपरोपकरा ॥

जिन पुरुषों का मन विद्या के विद्यारम्भ में उत्तर रहता सुन्दर शीलस्वभावपुष्ट, सम्प्रदायवादि विषमपाठनपुष्ट और जो सम्प्रदाय अपवित्रता से रहित धर्म की महीबता के कारण सम्प्रदाय से ससारी जनों के बुद्धों के दूर करने से सुसूचित अवशिष्ट कर्मों से पराये उत्कर्ष करने में रहते हैं वे नर और नारी धर्म हैं। इसलिये वाद कर्म के हों सभी कष्टकों को कष्टकों की और कष्टकों को कष्टकों की पाठशाळा में भेज दें। जो धर्मपुरुष पुरुष या की बुद्धाचार्य हों उनसे शिक्षा न लिखें। किन्तु जो पूर्ण विद्यपुष्ट धार्मिक हों वे ही पहले और शिक्षा देने योग्य हैं। जिन अपने घर में कष्टकों का सम्प्रदाय और कल्याणों का भी पयानोग्य संस्कार करके बपोष्ठ आचार्यपुष्ट धर्मोत्तु अपनी ५ पाठशाळा में भेज दें ॥

विद्या पहले का ध्याय पञ्चम्य देत में होना चाहिये और वे कष्टों और कष्टकों की पाठशाळा हो कोस एक नूसरे से दूर होनी चाहियें। जो वहाँ सम्प्रदाय और सम्प्रदाय पुरुष या भूत अपुष्ट हों वे कल्याणों की पाठशाळा में सब की और पुरुषों की पाठशाळा में पुरुष हों। विद्या की पाठशाळा में पाँच वर्ष का कष्ट और पुरुषों की पाठशाळा में पाँच वर्ष को कष्ट की भी न जाने पढ़ें। अपना एक एक वे कष्टाचारी का कष्टाचारिकी रहें तबतक की का पुरुष का दर्शन स्वर्ग पञ्चम्यसेवन आनन्द विषयकता परस्परकीया विषय का ध्याय और स्तन दन पाठ प्रथम के विद्युत्तों से आनन्द रहें और सम्प्रदाय लोग उनको इन बातों से बचें जिससे उत्तम विद्या शिक्षा शील स्वभाव शरीर और ध्याना से बलपुष्ट हुके आनन्द को विद्या बना लें। पाठशाळाओं से एक बोझ धर्मोत्तु चार कोस दूर ध्याय का नगर रहे। सब को पुरुष वध ध्याय पाठ ध्याय दिने

जाने जाये वह राजकुमार का राजकुमारी हो जाये इति के सम्यक् हों सब को उपस्थी होना चाहिये । उनके माता पिता अपने सम्राटों से वा सम्राज्य अपने सम्राटों से न मित्र सखें और न किसी प्रकार का पत्रपरिहार एक दूसरे से कर सकें, जिससे संवारी विम्वर वा इति हाकर केवल विद्या बचने की विम्वर रहें जब प्रमथ करने को जायें तब उनके साथ अभ्यास हों जिससे किसी प्रकार की कुपेक्षा न कर सकें और न आशय प्रमाद करें ॥

काम्यान्तं समग्रद्वारं वा कुमारान्तां वा रघुणम् ॥ मनु ७। १२३ ॥

इसका अन्तिम यह है कि इसमें समग्रविषय और कामविषय होना चाहिये कि पौर्णवे संवत्त चाटवें वर्ष से जाने कोई अपने सबकों और सबियों को घर में न रख सके । परमाशा में अन्तर मेत्र हों जो न मेत्र वह इष्टनीव हो । प्रथम सबकों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा परमाशा में आचर्यद्वार में हो । पिता मता का अभ्यास अपने सबका सबियों को अर्थसाहित मामनी मन्त्र का उपदेश करें । वह मन्त्र यह है—

ओ३म् भूर्भुव स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो न प्रचोदयात् ॥ मनु अ० ३६। मं ३ ॥

इस मन्त्र में जो प्रथम (ओ३म्) है उसका अर्थ प्रथमसमुद्रास में कर दिया है वही से जान लेना । अब तीस महाभ्यासविषयों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं । “भूरिति वे प्राणः” वा प्राणवति चराचर जगत् स भू स्वप्नप्राणरा” जो सब जगत् के जीवन का प्राणम प्राण से भी शिव और स्वप्न है उस प्राण का वाचक होके “भू” परमेश्वर का नाम है । “भुवरित्य पानः” का अर्थ दुग्धमपानवति ओ३पाका” जो सब दुग्धों से रहित जिसके सब से जीव सब दुग्धों से मृत जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम “भुवा” है । “स्वर्गति व्यानः” “वो विविर् जगद् व्यानवति व्यानेति स व्यानः” जो व्यानविषय जगत् में व्यापक हाके सब का चराचर करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम “स्वा” है । ये तीनों ब्रह्म तैत्तिरीय आरम्भक (मनु ७। मनु २] के हैं । (चण्डिः) “वा मुनीमुत्तरवति सर्व जगत् स चरित्य तत्” जो सब जगत् का उत्तरक और सब देवर्ष का रक्षा है (देवर्ष) “वो दीव्यति दीव्यते वा स इव” जो सर्व गुणों का देनेहार और जिसकी प्राप्ति को कामना कर कर है उस परमात्म्य का जो (बोधवत्) “बभु महत्” स्वीकार करने बोध वति बोध (धर्मः) “दुदस्वरुप” दुदस्वरुप और दक्षिण करनेहार काम मन्त्ररुप है (भू) इसी परमात्म्य के स्वरुप को हम बोध (धीमहि) “वोमहि” धार्य करें । जिस पञ्चोक्त के लिये कि (वा) “जगद्भरा” जो चरित्य सब परमात्म्य (वा) “जगत्भर” हमारी (विद्या) “पुरी” पुरी (को) (जगद्भर) “मेरवे” मरका करें जगत् पुरे जगत् से बुद्धात्त जगत् जगत् में प्रवृत्त करें ॥

“हे परमेश्वर ! हे सन्निवाक्यमन्त्रस्वरूप ! हे विष्णुस्वरूपमुत्तरस्वरूप ! हे भक्त विरंजन विनिर्वाह ! हे सर्वान्तर्नामिन् ! हे सर्वोच्चार जगत्पते ! सकल-
वस्तुस्वरूप ! हे अघाते ! निघम्भर ! सर्वनामिन् ! हे कल्याणस्वरूपिणे !
सन्निर्देवता तव वदोन्मृग्युक्तः स्मरितव्यं सर्वोऽस्ति तद्वत् धीमहि इपीमहि
परमहि आमेव वा । कस्मी प्रयोस्यथैकशाह । हे प्रयाग ! वा सविता देव
परमेश्वरो मयाकस्मात् विभः प्रचोदयत् । छ पुत्राज्जात् कृप्य उपपादवीय इहैव
मस्तु वातोऽन्व मयसुखं मयतोऽधिकं न कश्चिन्नु कदापिभ्यम्यमहे” ॥

हे मनुजो ! जो सब समर्थों में समर्थ सन्निवाक्यमन्त्रस्वरूप विष्णु
हृन्, विष्णु पुत्र, विष्णुस्वरूपमन्त्रवाद्या कृपासागर डीक १ न्याय का करने
हारा मन्मथरादि क्लेशहरित आन्तर रहित सब के अट १ का प्राप्ति
वाला सब का सर्वो पिता उत्प्रादक आन्तरि से विष्णु का प्रोक्त कल्याण
सकल ऐक्यरूपक जगत् का निर्माता हृन्स्वरूप और जो प्रसिद्धि की कामना करने
योग्य है इस परमेश्वर का जो हृन् प्रोक्तस्वरूप है उसी को हम प्रारम्भ करें ।
इस प्रोक्त के बिना कि वह परमेश्वर हमारे अन्तर और बुद्धि की सम्पूर्ण-
स्वरूप हम को हृन्वाच्य आचमनरूप मार्ग से हृन् के अन्तर अन्त मार्ग में
प्राप्ति, उसके आचमन हृन्वाच्य किसी वस्तु का प्रयास हम छोड़ नहीं करें ।
क्योंकि न कोई उसके हृन्वाच्य और न अधिक है । वही हमारा पिता राजा न्याय
योग्य और सब सुखों का ईश्वर है ॥

इस प्रकार हृन्वाच्यमन्त्र का उपदेश करके सम्बोधनार्थ की जो स्तुति आच
मन प्रार्थनामन्त्रादि विष्णु हैं सिद्धांतों । प्रथम स्तुति इसप्रकार है कि जिस
शरीर के अन्त अन्तर्नाम की बुद्धि और आत्मा आदि होते हैं । इसमें प्रत्यक्ष—
अन्तिर्गात्रादि शुभ्यन्ति मन्त्रः सत्येन शुभ्यन्ति ।

विष्णुस्तपोन्मां भूतस्त्व बुद्धिर्ज्ञानेन शुभ्यति ॥ मनु २।१।४ ॥

वह मनुस्मृति का श्लोक है । जब से शरीर के बाहर के अन्तर्नाम, सम्बन्ध
से सब विष्णु और सब अन्तर्नाम सब अन्तर के अन्त ही सब के अन्त ही के अन्त
करने से अन्तर्नाम आचमन और शुद्धि से के अन्त परमेश्वर परमेश्वर पदार्थों के विवेक
से बुद्धि का विवेक प्रसिद्ध होता है । इससे स्तुति आचमन के पूर्व अन्तर्नाम
हृन्वाच्यमन्त्र इसमें प्रत्यक्ष—

योगाज्ञानुत्तमानादुत्तिष्ठत ध्यानवीतिराविवेककथ्यत ॥ को वा सू १८२

वह योगज्ञान का सूत्र है । जब मनुज अन्तर्नाम करता है तब अन्तर्नाम
उत्तरोत्तर अन्त में अन्तर्नाम का अन्त और अन्त का अन्त होता जाता है ।
अन्तर्नाम मुक्ति न हो तन्नाम उसके अन्तर्नाम का अन्त अन्तर्नाम अन्तर्नाम ॥

इहान्त भ्याममानायां धातूनां हि यथा मन्त्राः ।

तथेन्द्रियाणां इहान्त दोषाः प्राप्नुयन्ति निग्रहात् ॥ मनु० अ० १।०१ ॥

वह मनुस्मृति का श्लोक है । जैसे अग्नि में तपाने से सुखीदि धातुओं
का मन्त्र नष्ट होकर हृन्वाच्य होते हैं वैसे अन्तर्नाम करने के मन्त्र अग्नि में
होने की वजह से निर्मल हो जाते हैं ॥

प्राणायाम की विधि—

प्रचक्षुर्वनविधारणाम्या वा प्राणस्य ॥ नमो समाधिपते स् ॥ ३० ॥

ऐसे समस्त देश से समस्त होकर सब सब बाहर निकल जाता है ऐसे प्राण को सब से बाहर फेंक के बाहर ही बधायति रोक देने । जब बाहर निकलना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ठपर नीचे रखके तबतक प्राण बाहर रहता है । इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक दूर तक रहता है । जब प्रसाह्य हो तब धीरे २ मीटर धनु को छोके फिर भी ऐसे ही करता जाय कितना सामर्थ्य और इच्छा हो । धीरे मन में (ओ३५) इसका जप करता जाय । इस प्रकार करने से प्राण भी मन की एविग्रह और कितना होती है । एक “बाह्यकण्ठ” अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना । दूसरा “साम्यन्तर” अर्थात् भीतर कितना प्राण रोक जाय उतना रोक के । तीसरा “साम्यन्तर” अर्थात् एक ही बार जहाँ का तहाँ प्राण को बधायति रोक देना । चौथा “बाह्यस्यन्तरावेपी” अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उसके निकट व निकलने देने के छिने बाहर से भीतर ले और जब बाहर छ मीटर जाने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को प्रत्यक्ष देकर रोकता जाय । ऐसे एक घुघरे के निकट किया करें तो दोनों की गति एककर प्राण अपने कण में होने से सब धीरे इन्द्रिय भी स्थायी होते हैं । जब पुनश्चार्थ बदकर बुद्धि तीव्र सुखक्य हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सुख विषय को भी तीव्र प्रहण करती है । इससे मनुष्य-शरीर में शीघ्र बुद्धि को प्राप्त होकर फिर सब पराक्रम कियेन्द्रियता सब शक्तियों को बोधे ही कण में सम्यक् कर उपलब्ध कर लेता । स्त्री भी इसी प्रकार योगसाधन करे ।

बोझन क्षुद्रक लेने उठने सोखने पाछने क्ये छोरे से यत्नोपयन्धद्वार करने का उपदेश करें । सन्तोपासन जिसको प्रहणत भी करते हैं । “अधमर्ष” उठने सब को हुनेकी में छोके उसके सुख और मध्यदेश में छोड दिया के करे कि वह सब कण के नीचे इत्य तब पङ्कजे व उससे अधिक व म्भूय । इससे कण्डक कण और विल की विवृति बोधीनी होती है । पश्चात् “मर्षव” अर्थात् मध्यमा और अधमिका शक्तियों के अधमता से नेपथि अर्द्धों पर सब दिवके । उसके प्राकृत्य दूर होता है । जो प्राकृत्य और सब प्राप्त न हो तो न करे । पुनः समस्तक प्राणावाम भवसापविशमस्य उपकाम पौङ्ग परमेवर की शक्ति मर्षका और उपसत्या की रीति धिक्छाये । पश्चात् “अधमर्षव” अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कमी न करे । यह सन्तोपासन एकमत देश में एकप्रविष्ट ले करे ॥

अथा समीपे निपतो नैसिक्तं विधिमास्थितः ।

सावित्रीमन्त्रधीनित यत्पारम्यं समाहितः ॥ मनु १। १४ ॥

ब्रह्म में अर्थात् एकमत देश में जा साधन हो के सब के समीप स्थित हो के निष्कर्ष को करता हुआ सावित्री अध्यात् व्यापत्री मन्त्र का उपचारक सर्वज्ञ और उसके अनुसार अपने पात्र चक्षण को करे परन्तु वह जब सब से करवा उत्तम है ॥

“हे परमेश्वर ! हे सविद्यामन्त्रात्मकस्वरूप ! हे विमलशुद्धसुखमुत्पन्नभाव ! हे सब विरजित निर्मल ! हे सर्वान्वर्णमय ! हे सर्वान्वर कण्ठफले ! सकल जन्मुत्पादक ! हे संपन्न ! विद्यामय ! सर्वान्वर्ण ! हे कल्याणमुत्पन्नरिपे ! सकलित्वेवम तव ब्रह्मसमुत्पन्नः स्वर्गोक्तं मर्गोद्विष्टं तद्वत् यमीमहि इमीमहि धर्माहि ज्ञामेव वा । कस्मै प्रयोक्तव्यमेवाह । हे भगवन् ! वा सविता देवः परमेश्वरो मयावस्माकं विद्याः प्रयोक्तव्यः स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इत्येतेन मन्त्रेण वातोऽम्बं भवतु सर्वं भक्तोऽधिकं न कल्पितुं कदाचित्प्रमत्तमहे” ।

हे मनुष्यो ! जो सब समयों में समर्थ सविद्यामन्त्रात्मकस्वरूप विमल शुद्ध, विमल शुद्ध, विमलसुखमन्त्रात्मक कृपासागर कीक १ स्थापना करने द्वारा अन्तर्मनसादि नक्षेत्रादित आकाश रहित सब के मत १ का ज्ञानने वाक्ता सब का प्रती पित्त जन्मादक, आकादि से विद्या का पोषण करनेवाला सकल वैश्वर्षिक कर्म का विनाशक शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने पोषक है उस परमत्मा का जो शुद्ध केवलस्वरूप है उसी को हम आराध करें । इस प्रयोग के द्वारे कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धिों का अन्तर्गमि-स्वरूप हम को बुद्धिमान आधमपुत्र मार्ग से इष्ट के मोक्षफल सब मार्ग में आकारे प्रत्यक्ष जोषकर दूसरे किसी कष्ट का ज्ञान हम को नही करें । क्योंकि न कोई कष्टसे तुल्य और न अधिक है । यही हमारा पित्त तथा आत्मा कीक और सब सुखों का हेतुमान है ।

इस प्रकार उपनिषद्मन्त्र का उपदेश करके सम्बोधनार्थ की जो स्थापना मन्त्र प्रस्तावना आदि विद्या है विद्यावाक्य । प्रथम स्थापना इत्युक्ति है कि विमल शरीर के बाह्य कण्ठों की बुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं । इसमें आत्म—

अग्निर्गात्राणि शुध्यन्ति मन्त्रः सत्येन शुध्यति ।

विद्यातपोम्यां मृतस्मा बुद्धिधनिन शुध्यति ॥ मनु २।१३॥

वह मनुस्मृति का श्लोक है । बाह्य से शरीर के बाहर के कण्ठ, सद्यचार्य से मन्त्र विद्या और तप आर्षात् सब प्रकार के कष्ट भी सब के कर्म ही के अनुष्ठान करने से जीवन्मा ज्ञान आर्षात् शुद्धि से बड़े परमेश्वर वर्णित वस्तुओं के विवेक से बुद्धि का विमल रहित होता है । इससे स्नात मोक्ष के पूर्व अन्तर्गमन करना । दूसरा प्रस्तावना इसमें आत्म—

योगाज्ञानुष्ठाभादुद्दिष्टं ध्यानदीप्तिरायिनेककपालं ॥ यो वा सू १२॥

वह योगशास्त्र का सूत्र है । जब मनुष्य प्रस्तावना करता है तब प्रतीक उच्छोष काय में अग्नि का बाध और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है । अन्तर्गमन न हो तबतक उसके आत्मा का ज्ञान बढ़कर बढ़ता जाता है ।

इहान्त ध्यापमानार्थं ध्यात्वा हि यथा मखाः ।

तपेन्द्रियाणां दहन्त शोषां प्राणस्य निग्रहात् ॥ मनु ७० १।११॥

वह मनुस्मृति का श्लोक है । जैसे अग्नि में जलाने से सुषोमि पशुओं का मल नष्ट होकर छूट जाता है वैसे प्रस्तावना करने मन्त्र आदि इन्द्रियों के शोष जीव होकर निर्मल हो जाते हैं ।

उ०—जो हम पदार्थ विद्यमान होते तो कभी ऐसी बात न करते क्योंकि किसी इन्द्र के अभाव नहीं होता । देखो जहाँ होम होता है वहाँ से दूर दूर में स्थित पुनः के अस्तित्व से सुगन्ध का ग्रहण होता है कैसे दुर्गन्ध का भी । इतने ही से समझो कि अग्नि में खाया हुआ पदार्थ सूक्ष्म हो के ईश के वायु के द्वारा दूर दूर में जाकर दुर्गन्ध की विनिर्मुक्ति करता है ॥

प्र०—अब ऐसा ही है तो कैसा करना सुगन्धित पुनः और अंतर बाह्य के पर में रहने से सुगन्धित वायु होकर सुगन्धकारक होगा ॥

उ०—उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहका वायु को बाहर निकाल कर दूर वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को द्रव्य मिल और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश करा देता है ॥

प्र०—तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है ?

उ०—मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के काम सिद्ध हो जाय और मन्त्रों की आहुति होने से कण्डूय एवं वैद पुस्तकों का पत्र पत्र और रत्ना भी होने ॥

प्र०—क्या हम होम करने के बिना पाप होता है ?

उ०—हां क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से कितना दुष्गन्ध उत्पन्न हो के वायु और जल को व्याप्त कर रोमोत्पत्ति का विमिश्र होने से प्राणिमों को दुःख प्राप्त करता है इतना ही पाप उस मनुष्य को होता है । इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उक्त सुगन्ध का उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये । और जिससे पिछाने से उछी एक व्यक्ति को कुछ विशेष होता है । जिसका घुस और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है इतने इन्द्र के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है । परन्तु जो मनुष्य लोग कृपादि उच्च पदार्थ न कावे तो उनके शरीर और आत्मा के लक्ष की उच्छिष्ट न हो सके, इससे अपने पदार्थ निश्चय पितृभ्य भी चाहिये परन्तु उससे होम अधिक करना अहित है इसलिये होम करना अत्यन्त आवश्यक है ॥

प्र०—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक १ आहुति का कितना परिमाण है ?

उ०—प्रत्येक मनुष्य को सोलह १ आहुति और पुं २ माते पूरति एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है । इसलिये आर्षेयशिरोग्रन्थि महायज्ञ अग्नि महर्षि राज महायज्ञे ओम् अनुष्ठान होम करत और कराते य । अब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्षेयार्च देव रोगों से रहित और सुखों से परित था अब भी प्रचार हो जा दिया ही होऊँगा । ये दो यज्ञ अर्थात् महायज्ञ जो पशु पक्षी सम्बन्धीयता ईश्वर की स्तुति आर्चना अर्पणना करवा दूधता देवयज्ञ जो अग्निदेव से ले के अग्नेय पर्यन्त ब्रह्म और विद्याओं की सेवा अर्पण करवा परन्तु महायज्ञ में देवयज्ञ और अग्निदेव का ही करना होता है ॥

इष्टतः देववज्र—जो अग्निहोत्र और विद्वानों का एक धैर्यादिक से होता है। सम्पन्न और अग्निहोत्र प्राप्त हो ही काम में करे। जो ही रात दिन की सम्मिश्रण है अथवा नहीं। न्यून से न्यून एक कथन ज्ञान करवा करे। जैसे अग्निहोत्र होकर योगी योग परमात्मा का ज्ञान करते हैं ऐसे ही सम्बोधनत्व भी किया करे। तथा सुबोधन के बजाय और सुबोधन के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है, इसके लिए एक किसी वायु या मही के ऊपर १२ या १६ अंगुल चौकोन उत्तरी ही मही और नीचे ३ या ३ अंगुल परिमाण से बेरी इष्ट प्रकार बनावे



अथवा १० ऊपर बितवी चौड़ी हो उसकी अनुबोधन नीचे चौड़ी रहे। उसमें जलक पत्राण या आकाश के अथवा कहीं के दुकाने उसी बेरी के परिमाण से बने बड़े बने उसमें रखे उसके मध्य में अग्नि रक्त के पुष्पा उस पर समिधा अर्घ्यत् पूज्योक्त इन्द्रज रक्त दे एक

मोक्षवीपक  पैदा और तीसरा मन्त्रोपाय 

इष्ट प्रकार का और एक

कुल रखने का पात और

खोले चांदी या काँच का



इष्ट प्रकार की जलरत्नादी अर्घाव

कमल  पैदा

वक्ता के प्रबोधन और मोक्षवी में

बहुत तथा कुलपात्र में कुल रक्त के कुल को तथा खेदे। मन्त्रोपाय जल रखने और मोक्षवी इसलिये है कि उससे जल बोले को जल सेवा सुगम है। बजाय उस भी को बच्चे प्रकार देक लेव। फिर इन मन्त्रों से होय करे—

ओमूरक्षये प्राणाय स्वाहा ॥ मुखर्षापवेत्तपानाय स्वाहा ॥ स्वरदित्याय म्या
मय स्वाहा ॥ मूर्ध्नि स्वरदित्याय स्वादित्येभ्यः प्राणायामम्यानेभ्यः स्वाहा ॥

इत्यदि अग्निहोत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़कर एक १ आहुति देने और जो अधिक आहुति देना हो सो—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परां सुव । यत्रत्रं तन्न आसुव ॥

यत्तु न १ । १ ॥

इस मन्त्र और पुरोंक पावनी मन्त्र से आहुति देने ॥

“ओं मू” और “प्रणा” आदि ने सब काम परमेस्वर के हैं। इनके अर्थ कह चुके हैं। “स्वाहा” अर्थ का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान ज्ञान्य में हो जैसा ही जीव से बोले विपरीत मही। जैसे परमेस्वर ने सब अग्निहोत्रों के मुख के अर्थ इस सब अर्थ के परार्थ रहे हैं ऐसे मनुष्यों को भी वरोपकार करवा चाहिये ॥

प्र०—होम से क्या उपकार होता है ?

उ०—अब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धबुद्धि वायु और बह से रोम रोम से अग्निहोत्रों को दुग्ध और सुगन्धित वायु तथा जल से चारोप और रोम के बह होने से मुख प्राप्त होता है ॥

प्र०—अथवा जिसके किसी के जगने या बुद्धि जाने को देने तो क्या उपकार हो। अग्नि में जल कर अर्थ यह करवा बुद्धिमानों का काम मही ॥

उ०—जो तुम पदार्थ विषय जायते तो कभी ऐसी बात न करते क्योंकि किसी द्रव्य का अद्रव्य नहीं होता । देखो जहाँ होम होता है वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष के अधिकार से सुगन्ध का ग्रहण होता है जैसे दुर्गन्ध का भी । इतने ही से समझो कि अग्नि में खाया हुआ पदार्थ सूक्ष्म हो के देश के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की विवृति करता है ॥

प्र०—जब ऐसा ही है तो कैसा करता है सुगन्धित पुष्प और अंतर आदि के कर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुलभकरक होगी ॥

उ०—इस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि पृथक् वायु को बाहर निकाल कर दूर वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को द्विज मिल और हल्ल करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश करा देता है ॥

प्र०—तो मन्त्र पत्र के होम करने का क्या प्रयोजन है ?

उ०—मन्त्रों में वह व्याख्या है कि जिससे होम करने के काम सिद्ध हो कार्य और मन्त्रों की आहुति होने से कल्याण रहे वेद पुस्तकों का पठन अध्ययन और रक्षा भी होने ॥

प्र०—क्या इस होम करने के विषय पाप होता है ?

उ०—हाँ क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से कितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो के वायु और जल को विषाद कर रोमोत्पत्ति का विमिश्र होने से ग्रन्थियों को दुःख प्राप्त करता है इतना ही पाप उस मनुष्य को होता है । इसलिये उस पाप के विनाशार्थ उक्त सुगन्ध का उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये । और सिद्धात्वे विद्वान्ने से उसी एक व्यक्ति को कुछ भिन्न होता है । कितना मूल और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उसने द्रव्य के होम से खाई मनुष्यों का उपकार होता है । परन्तु जो मनुष्य छोटा बूढ़ादि उच्च पदार्थ न खावे तो उसके शरीर और आत्मा के लक्ष की उन्नति न हो सके इससे अन्धे पदार्थ विनाश विनाश भी चाहिये परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिये होम करना अत्यावश्यक है ॥

प्र०—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक २ आहुति का कितना परिमाण है ?

उ०—प्रत्येक मनुष्य को साकल्य १ आहुति और वृद्ध २ मरते पुरुषदि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है । इसलिये आर्षव्यतिरोक्त्यि महाशय अग्नि महर्षि राजे महाशये होम बहुलका होम करते और बताते थे । जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक धर्मार्थक से देश लोगों से रहित और सुखों से परित था जब भी प्रचार हो तो फैला ही होकर । वे ही यज्ञ अर्थात् ब्रह्मज्ञ को पढ़ना पढ़ाया दान्योपासना ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपसना करना दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र से से के अन्तर्गत पर्यन्त ब्रह्म और विद्वानों की सेवा संग करना परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मचर्य और अग्निहोत्र का ही करना होता है ॥

ब्राह्मणस्य पात्रं वर्षाभामुपमयं कर्त्तव्यमिति । रात्र्यो द्वयस्य ।
वैश्यो वैश्यस्यैवेति । शूद्रमपि कुक्षिशुक्लसम्पर्कं मन्त्रवर्त्मनुपनीतमभ्या-
पयेदित्येके ॥ वह सुभक्त के सुभक्त्यार के धारे चान्द्रा का वचन है—

ब्राह्मण तीनों वर्ष ब्राह्मण कश्चित् और वैश्य, कश्चित् कश्चित् और वैश्य,
तथा वैश्य एक वैश्य वर्ष का ब्रह्मोपनीत कराके पढ़ सकता है और जो कुक्षीय
शुक्लचययुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्रसंहिता ब्रह्म के सब शास्त्र पढ़ाये, वह
पढ़े पढ़ाने उपवास उपवसन व करने वह मन्त्र चान्द्रा का वचन है । पश्चात्
शर्चों या धर्मों वर्ष से उसके धर्मों की परम्पराका मैं और उसके धर्मों
की परम्पराका मैं धर्म और निम्नलिखित विषयपूर्ण ब्राह्मण का धारण करें—

पटुनिशदाधिकं चर्चो गुरो ब्रह्मेदिकं मतम् । तदधिकं पादिकं वा
ब्राह्मणस्तिक मेव वा ॥ मनु स ३ । १ ॥

वर्ष—धर्मों वर्ष से चान्द्रा कृतीछर्चों वर्ष पर्यन्त चर्चाएँ वृत्त २ वेद के
कर्मोपनिषद् पढ़ने में ब्राह्मण ० वर्ष मिक्ष के कृतीस और चान्द्रा मिक्ष के चर्चाछर्च
चान्द्रा चर्चाएँ वर्षों का ब्राह्मण और चान्द्रा पूर्व के मिक्ष के कृतीस का भी वर्ष
तथा वर्ष तक मिक्ष पूरी ब्राह्मण व कर लेवे तत्काल ब्राह्मण वर्ष ॥

पुरुषो वाच यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तस्मात्सर्वान्
चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्राप्तं सर्वान् तस्य ब्रह्मोऽन्यायत्ता
मात्रं वाच वस्तु पठेद्दीर्घं सर्वं वासपति ॥ १ ॥

तश्चेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपस्त ब्रूयात्प्राज्ञा यज्ञा इव म
प्राप्तं सर्वान् माध्यन्दिनश्चमयनमनुसन्तनुतेति माहं प्राज्ञानां पत्न्यां मध्य
यज्ञो विलोप्सीयेत्पुनरेव तत् पर्यगदो ह भवति ॥ २ ॥

अथ यानि चतुर्विंशतिशतवर्षाणि तस्मात्प्राप्तं सर्वान् चतुर्विं-
शत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्राप्तं तस्य ब्रह्मोऽन्यायत्ता
मात्रं वाच यज्ञा पठेद्दीर्घं सर्वं वासपति ॥ ३ ॥

तं चेदतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपस्त ब्रूयात्प्राज्ञा यज्ञा इव म
प्राप्तं सर्वान् माध्यन्दिनश्चमयनमनुसन्तनुतेति माहं प्राज्ञानां पत्न्यां मध्य
यज्ञो विलोप्सीयेत्पुनरेव तत् पर्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥

अथ यानि चतुर्विंशतिशतवर्षाणि तस्मात्प्राप्तं सर्वान् चतुर्विं-
शत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्राप्तं तस्य ब्रह्मोऽन्यायत्ता
मात्रं वाच यज्ञा पठेद्दीर्घं सर्वं वासपति ॥ ५ ॥

तं चेदतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपस्त ब्रूयात्प्राज्ञा यज्ञा इव म
प्राप्तं सर्वान् माध्यन्दिनश्चमयनमनुसन्तनुतेति माहं प्राज्ञानां पत्न्यां मध्य
यज्ञो विलोप्सीयेत्पुनरेव तत् पर्यगदो ह भवति ॥ ६ ॥

वह ब्राह्मणोपनिषद् (प्रपाठक ३ । श्रवण १६) का वचन है ॥
ब्राह्मण तीनों वर्ष का होता है—कश्चित् मध्यम और उच्च । धर्मों छ
कश्चित्—जो पुरुष ब्राह्मण्यार वेद और पुरि चर्चाएँ वेद में उपवास करनेका
और मध्य वृत्त चर्चाएँ चर्चाएँ चर्चाएँ तत्काल और तत्काल है इसका

आमरयक है कि २४ वर्ष पर्यन्त त्रितेजस्र धर्मोत्पन्न मन्त्रकारी रहकर वेदादि विद्या और मुनिशा का ग्रहण करे और निषाद करके भी सम्पत्ता न करे तो उसके शरीर में प्राण पञ्चबान् होकर सब शुभगुणों के वास करावे वास्ते होते हैं। इस प्रथम वय में जो उसके विद्याभ्यास में संलग्न करे और वह आचार्य ऐसा ही उपदेश किया करे और मन्त्रकारी ऐसा विनम्र रखे कि जो भी प्रथम अवस्था में शीक १ मन्त्रकारी रहूँगा तो मेरा शरीर और आत्मा आरोग्य बलवान् होने शुभगुणों को बसावेवास्ते मेरे प्राण होंगे। हे मनुष्यों! तुम इस प्रकार से सुखों का विस्तार करो जो भी मन्त्रार्थ का शोष न करे। २४ वर्ष के पश्चात् गृहाचम करूँगा तो प्रसिद्ध है कि रोगरहित रहूँगा और आयु भी मेरी ७० या ८० वर्ष तक रहणी। अथवा मन्त्रार्थ यह है—जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त मन्त्रकारी रहकर वेदाभ्यास करता है उसके प्राण इन्द्रियों सम्पन्नकर और आत्मा बलवान् होके सब दुखों को दूरकरे और भोगों का पञ्चन करने हारे होते हैं। जो भी इसी प्रथम वय में प्रिया आप कहते हैं कुछ उपवास कर तो मेरे वे श्रवण प्राणबुद्धि यह प्रथम मन्त्रार्थ सिद्ध होय। हे मन्त्रकारी ब्रह्मो! तुम इस मन्त्रार्थ को ब्रह्मो जैसे मैं इस मन्त्रार्थ का शोष न करके पञ्चस्वरूप होय। और उसी आचार्यकुल का जाता और शेष रहित होता है जैसा कि वह मन्त्रकारी अन्धा काम करता है वसा तुम किया करो। उचम मन्त्रार्थ ४८ वर्ष पर्यन्त का तीसरे प्रकार का होता है जैसे ४८ वयस की जपती ऐसे जो ४८ वर्ष पर्यन्त वयसत् मन्त्रार्थ करता है उसके प्राण अनुबल होकर सब विद्याओं का ग्रहण करते हैं। जो आचार्य और माता पिता अपने सम्पत्तियों में प्रथम वय में विद्या और गुणग्रहण के विषे उपलब्धि कर और उद्योग का उपस्य करें और वे सम्पत्त आप ही आप अनवरित मन्त्रार्थ शेष से तीसरे उचम मन्त्रार्थ का धरक कर। एवं अन्तर्गत बारसी वर्ष पर्यन्त आयु को ब्रह्मों जैसे तुम भी ब्रह्मो। क्योंकि जो मनुष्य इस मन्त्रार्थ को ग्रहण होकर आप नहीं करते वे सब प्रकार के रागा से रहित होकर धर्म धर्म काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥

अथऽस्याऽवस्थाः शरीरस्य पुनरिर्वाणं संपूयता किञ्चित्परिहृयिष्यति। आपोऽप्यानुपूयि। आपश्चाप्यशतपर्ययम्। आचक्षतेऽपि ततः संपूयता। ततः किञ्चित्परिहृयिष्यति ॥

पश्चादपि ततो यत् पुमान् नारी तु योऽयम् ।

सम्पत्तागतर्वापि तो अनीयान्गुणो भिषक् ॥

यह सुश्रुत के अनुसार ३२ आयु का वयस है ॥

इस शरीर की चार अवस्था है—१६ (हृदि) को १६ वें वर्ष से ऐसे १६ वें वर्ष पर्यन्त सब पञ्चगुणों की ब्रह्मो होती है। शरीर (वयस) को १६ व वर्ष के अन्त और २४ वें वर्ष के आदि में पुनर्बल का आरम्भ होता है। तीसरी (मन्त्रार्थ) ४८ वर्षों के वर्ष का इसके बाद ४८ वर्ष पर्यन्त सब पञ्चगुणों की पुनर्ब्रह्म होती है। चौथी (किञ्चित्परिहृयि) अब सब पञ्चगुण शरीर का अवस्था पात्रु हुए होके शरीर को ग्रहण होत है। अन्तर्गत जो आयु ब्रह्म है वह शरीर में

कही रहता किन्तु स्वयं मन्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है। कही ४ को वर्ष उन्नत समझ लिया है। क्योंकि उन्नतोन्नत तो अत्यन्तही उन्नत वर्ष में लिया गया है।

प्र०—क्या वह ब्रह्मचर्य का विषय भी था पुनः दोनों का पुनः ही है ?

उ०—हाँ, जो २२ वर्ष पूर्णतः पुनः ब्रह्मचर्य करे तो १५ (ओकह) वर्ष पूर्णतः कर्म को पुनः ३ वर्ष पूर्णतः ब्रह्मचारी रहे तो भी १० वर्ष की पुनः १५ वर्ष तक रहे तो एही १८ वर्ष को पुनः २ वर्ष पूर्णतः ब्रह्मचर्य करे तो भी २ वर्ष को पुनः २० वर्ष पूर्णतः ब्रह्मचर्य करे तो भी २२ वर्ष को पुनः २५ वर्ष ब्रह्मचर्य करे तो भी २४ वर्ष पूर्णतः ब्रह्मचर्य केवल एको जहाँ २८ में वर्ष से जहाँ पुनः और २४ में वर्ष से जहाँ की को ब्रह्मचर्य व रचना आदिसे पान्त वह विषय लिया करते करते पुनः और किसी का है और जो लिया करता ही व वहीं वे मरने पूर्णतः ब्रह्मचारी रह सकते हैं। तो मने ही हैं पान्त वह कम पूर्व विचारोंसे विवेचित्र और विज्ञान बोधी की और पुनः का है। यह कहा करिज कम है कि जो कम के क्षेत्र को ज्ञान के इन्द्रियों को अपने कर्म में रचना ॥

आतं व साध्यायप्रवचने च । सत्यं च साध्यायप्रवचने च । तपस्य साध्यायप्रवचने च । दमस्त साध्यायप्रवचने च । शमस्त साध्यायप्रवचने च । अमनसस्त साध्यायप्रवचने च । आग्निहोत्रस्त साध्यायप्रवचने च । अतिथयस्त साध्यायप्रवचने च । मानुषं च साध्यायप्रवचने च । प्रज्य च साध्यायप्रवचने च । प्रज्जस्त साध्यायप्रवचने च । प्रजातिस्त साध्यायप्रवचने च ॥ यह तैत्तिरीयोपनिषद् ? (वसुकी १ अनु ६) का वचन है ।

वे पढ़ने पढ़ानेवालों के लिये हैं । (आतं) अर्थात् आचर्य से पढ़े और पढ़ावें । (सत्यं) सत्यवाच्य से सत्य विचारों को पढ़ें या पढ़ावें (तपः) तपस्वी अर्थात् कर्तव्य करने हुए वेदविदों को पढ़ें और पढ़ावें (दमः) दम इन्द्रियों को दूरे आचर्य से शोक के पढ़े और पढ़ावें (शमः) शम को रुचि को सब प्रकार के दोषों से दूर के पढ़ते पढ़ाते आतं (अमनसः) आहूत आदि अग्नि और विष्णु आदि को ज्ञान के पढ़ते पढ़ाते आतं और (आग्निहोत्रं) आग्निहोत्र करते हुए पढ़ते और पढ़ावें करते । (अतिथयः) अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें (मानुषं) मनुष्यसम्बन्धी व्यवहारों को पढ़ावे करने करते हुए पढ़ते पढ़ाते रहें (प्रज्य) प्रजापति और राजा का पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते आतं (प्रजस्त) प्रजा की रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ते पढ़ाते आतं (प्रजातिः) पढ़ते प्रजापति और विष्णु का पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते आतं । यमान् संवेत सततं न नियमान् केवलान् मुधः ।

यमान् तस्य कुर्वाणो नियमान् केवलान् प्रजन् ॥ मनु० ४।१४४

यम शब्द प्रकर के होते हैं—

तत्रार्हिसास्त्यास्तेयमब्रह्मचर्यापरिमहायमा” ॥ योग शास्त्र सू १ ४

अर्थात् (अहिंसा) अहिंसा (अस्त्य) अस्त्य (अमनसः) अमनसः अमनसः अमनसः और सत्य ही करना (अस्तेय) अर्थात् यम शब्द कर्म से बोली गयी (ब्रह्मचर्य)

अर्थात् उपस्थेभिश्च का संवत् (अपरिग्रह) अस्मत् कोत्तुपता स्वस्वामिभारहित
होय । इय पांच वर्षों का सेवन सदा कर्म केवल नियमों का सेवन अर्थात्—

शौचसन्तोषतपः आध्यात्मैश्वर्यप्रणिधानानि नियमाः ॥ बौ० धा० ३२ ॥

(शौच) अर्थात् स्वाध्यादि से परिश्रिता (सन्तोष) सम्पत् प्रसन्न होकर
विदग्ध रहना सन्तुष्ट नहीं किन्तु पुनरावर्ष मितना हो सके उतना करना हाकि
स्वाम में हर्ष का लोभ न करना (तप) अर्थात् कष्टसेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों
का अनुष्ठान (स्वाध्याय) पढ़ना पढ़ाना (ईश्वरप्रणिधान) ईश्वर की भक्ति विशेष
से अध्ययन को अर्पित रहना ये पांच विषय कहते हैं । वर्षों के बिना केवल इय
विषयों का सेवन न करे किन्तु इय वर्षों का सेवन किया कर जो वर्षों का
सेवन शोध के केवल नियमों का सेवन करता है वह उन्नति को नहीं प्राप्त होता
किन्तु अचोपेति अर्थात् संसार में गिरा रहता है ॥

कामाभिमता न प्रशस्ता न स्वयहास्यकामता ।

काम्यो हि वदधिगमः कामयागश्च धैर्यिकः ॥ मनु ३ । २१ ॥

अर्थ—अस्मत् कामाभिमता और निष्कामता किसी के लिए भी श्रेष्ठ नहीं,
क्योंकि जो कामना न करे तो वैश्व का ज्ञान और बहुचिन्तित कर्मोंदि उत्तम कर्म
किसी से न होसकें । इत्यर्थः—

साध्यायश्च यतःहर्मिस्त्रैयिदुपनेज्यया सुतः ।

महापद्मैश्च यद्विद्वद्वाङ्मयं विपतं तनुः ॥ मनु ३ । २२ ॥

अर्थ—(स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ने पढ़ाने (यतः) यत्नय सत्य
वचनदि विषय पालने (होम) अग्निहोत्रादि होम कृत का प्रत्यक्ष अस्तन का
स्वयं और अन्य विद्याओं का ज्ञान देने (त्रैयिदुप) ब्रह्म कर्मोपसना ज्ञान
विद्या के प्रत्यक्ष (इत्यया) पञ्चेन्द्रियादि करने (मुनैः) सन्त्यानोत्पत्ति (महापद्मैः)
ब्रह्म देव विदुः, ईशदेव और अतिविशेषों के सेवन कर पञ्चमहावक्त्र और (वक्त्रैः)
अग्निहोत्रादि तथा अिन्दुविद्या विद्यावादि वक्त्रों के सबन से इस शरीर को प्रबुद्धी
अर्थात् ब्रह्म और परमेश्वर की भक्ति का आधारक्य प्राप्त्य का शरीर किया जाता
है । इतने साधनों के बिना ब्रह्मण्य शरीर नहीं बन सकता ॥

इन्द्रियाणां विपरता विषयप्लवहारिषु ।

सपथ यत्प्रमातिष्ठद्विद्वान् यन्तप पात्रिनाम् ॥ मनु ३ । २३ ॥

अर्थ—वैश्वे विश्व साक्षी कोही को निबन्ध में रखता है ईश्वर मन और
ध्याना को कोड़े कर्मों में धैर्यनेकासे विरतों में विचरती हुई इन्द्रियों के विषय में
अथवा सब प्रकार से करे । क्योंकि—

इन्द्रियाणां प्रसंगन दोषमुच्छ्रयसरायम् ।

सप्रियम् तु ताम्यय ततः धिदि नियच्छति ॥ मनु ३ । २४ ॥

अर्थ—जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके विभिन्न वें १ दोषों का प्रत्यक्ष होता
है और जब इन्द्रियों को जगने वश में करता है तभी धिदि को प्राप्त होता है ॥

पदास्त्यापद्य यथाध्य नियमस्य तपांसि च ।

न विप्रमुद्रभापस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिपिन् ॥ मनु ३ । २५ ॥

जो दुहाचरी अभिलेखिब पुरख है उरके बेव, कय नख निबन और
तब तब नय नय के काम कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते ॥

बन्धोपकरले येव स्वाध्याय येव नैस्यिके ।

गानु रोधोऽस्त्यभावाये होममन्त्रेषु येव हि ॥ १ ॥

नैस्यिके नास्त्यभावायो ब्रह्मसर्प हि तस्मृतम् ।

ब्रह्मातुतिगुता पुरायममभ्यापयपट्टकृतम् ॥ २ ॥ मनु २।१२।११ ॥

वेद के पात्रे पात्रे अन्धोपसमाधि वस्त्रमण्डपों के करने और होममन्त्री
में अन्धभाव विरक्त अनुरोध (चाप) नहीं है क्योंकि ॥ १ ॥ निष्कर्म म
अन्धत्व नहीं होगा । जैसे अन्ध अन्ध सदा बिने जाते हैं फल नहीं मिले
जा सकते, ऐसे निष्कर्म प्रतिदिन करना चाहिए न किसी दिन होकर
क्योंकि अन्धत्व में भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्यकर्म होता
है । जैसे कूट चोखने में सदा पाप और सब नाकने में सदा पुण्य होता है
ऐसे ही पुरे कर्म करने में सदा अन्धत्व और अन्धे कर्म करने में सदा
तत्त्वाव ही होता है ॥ १ ॥

अग्निबादसहीभरा तिसां ब्रह्मोपसेविन ।

नत्वादित तथा पराश्र आयुर्विद्या परो ब्रह्मम् ॥ मनु २।१२।१२ ॥

जो धरा मन्त्र गुरीक विद्वत् और ब्रह्म की सेवा करता है उसके पास
विद्वत् कीर्ति और ब्रह्म के चर सदा बसते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके
पास प्रादि जात नहीं जाते ॥

अहिंसयव भूतामां कार्य भयांशुशासनम् ।

पाकू येव मधुरा स्वरूपा प्रवाग्या भममिच्छता ॥ १ ॥

यस्य पाकान्तं शुद्धे सम्यगुप्त च सर्वदा ।

य ये सर्वमप्राप्ति यदाम्बोपगत फलम् ॥ २ ॥ मनु २।१२।१३ ॥

विद्वत् और निष्कर्मिणी को बोध है कि विष्णुवि घोष के सब मनुष्यों का
कल्याण के मार्ग का उपदेश करें और वनेछ भरा मधुर गुरीकवापुष्य कभी
बोले । जो धर्म की उन्नति चाहे वह सदा सब में बड़े और सब ही का उपदेश
को ॥ १ ॥ जिस मनुष्य के कधी और मन छद्म तथा सुरक्षित सदा रहते हैं
वही सब वेदमन्त्र कर्माणि सब वेदों के सिद्धान्तकर्म सब को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

सम्मानाहु ब्राह्मणो नित्यमुद्विज्जित विपद्विष ।

ब्रह्मतत्त्वस्य वाकाकुरोऽवमानस्य सर्वदा ॥ यजु २।१३१ ॥

वही ब्राह्मण कयम वेद और परमेश्वर है जो प्रति ॥

गुरु बरा दाता है और अश्वमेध की इष्ट प्रमाण दि ॥

अनन कर्मयोग्यु र्यस्मृतात्मा दिव्य

गुरी बस ३ ॥

इसी प्रकार

और १ वेदादि

३०

→

→

→

आचार्य अन्तेकसी जगत् अपने शिष्य और शिष्याओं को इस प्रकार उपदेश करे कि तु सदा सब बोज धर्माचार्य कर प्रमादरहित होने पर परम पूर्ण भगवत् के समस्त शिष्याओं को प्रह्व और आचार्य के शिष्य शिष्य बन देकर शिष्या करके अन्ताधोपति कर प्रमाद से बचने की कमी मत बोज, प्रमाद से बचन का आग मत कर प्रमाद से आशेष और अतुराई को मत बोज प्रमाद से उत्तम देवर्ष की बुद्धि को मत बोज प्रमाद से करने और पढ़ाई को कमी मत बोज देवर्षिद्वारा और माता पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर । जैसे ब्रह्म का सम्कार करने उड़ी प्रकर माता पिता आचार्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर । जो अयमित्त धर्मपुत्र कर्म हैं उन सब आचर्यादि को किया कर उन से शिष्य शिष्याध्यायि कमी मत कर । जो हमारे सुचरित्र जगत् धर्मपुत्र कर्म हैं उनका प्रह्व कर और जो हमारे पापाचार्य हैं उनको कमी मत कर जो कोई हमारे मध्य में उत्तम शिष्या कर्मात्मा आश्रय है, उन्हीं के धर्माप बैठ और उन्हीं का शिष्यास किया कर अच्छा से सेवा अच्छा से सेवा खोला से सेवा, बजा से सेवा मय से सेवा और प्रतिष्ठा से भी सेवा चाहिये । सब कमी तुल्य को कर्म का शीघ्र तथा उपसन्ध आग में किसी प्रकार का संतन बलत्व हो तो जो वे शिष्यासीक एकपराहित बोलो अलोमी धार्मिक धर्म की कमाना करने वाले धर्मप्रसा जन ही होते वे धर्ममार्ग में चले होते तु भी चला कर । यही आदेश आज्ञा यही उपदेश यही वेद की वचनित ५ और यही शिष्या है । इसी प्रकार वर्त्तना और अपना आचरणसुचारण चाहिये ॥

अकामस्य क्रिया काश्चिद् द्रव्यत वेद कश्चिचित् ।

यद्यपि कुरुत किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ मनु १।४ ॥

मनुष्यों को विनय करना चाहिये कि विनयसुख में देवी का अहोच विनय का होना भी सर्वथा असम्भव है इससे यह सिद्ध होता है कि जो १ कुल भी करता है वह १ सेवा कामस्य के विनय चली है ॥

आचार्य परमो धर्म भुक्त्युक्त स्मार्त एव यः ।

नक्षत्राक्षिप्सदा युक्तो नित्यं स्यात्सम्मान्यः द्विजः ॥ १ ॥

आचार्यादिष्व्युतो विप्रो न वक्ष्यमश्नुते ।

आचार्येण तु संयुक्तः सम्पूर्णं फलमागमन्तु ॥ २ ॥ मनु १।१ ८।१ २ ॥

काने तुल्ये तुल्ये पढ़ने पढ़ाये का फल यही है कि जो वेद और ब्रह्मपुत्र स्युतिनों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना इसलिये धर्माचार्य में परा सुख रहे ॥ १ ॥ क्योंकि जो धर्माचार्य से रहित है वह वेदप्रतिपादित धर्मप्रसा सुखस्य फल को प्राप्त नहीं हो सकता और जो शिष्य वद के धर्माचार्य करता है वही सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

वाच्यमप्यत त मूस द्वेगुणाभाध्यायु द्विजः ।

स साधुभिर्वादिष्कायां नास्तिको वदनिम्बकः ॥ मनु १।११ ॥

जो वेद और वेदानुसूक्त प्राप्त पुस्तकों के किये शास्त्रों का अध्ययन करता है उस वैदिकवादी वास्तविक को जाति पंक्ति और वेद से बाहर कर देना चाहिये ॥ क्योंकि—

वेद स्मृति सदाचार लस्य च प्रियमात्मनः ।

एतच्चतुर्विधं ब्राह्म साक्षात्प्रमस्य ज्ञानसम् ॥ मनु २।१२०

वेद स्मृति वेदानुसूक्त आश्रित मनुस्मृति आदि शास्त्र अनुसूक्तों का अध्ययन जो प्रजापति अध्याय वेदव्यास परमेश्वरप्रतिपादित कर्म और अपने आत्मा में प्रिय धर्मों के अन्तर्गत आत्मा चाहता है जिस कि सत्यवाचक वे चार धर्म के अन्तर्गत धर्मों से धर्मोपधर्म का मिश्रण होता है । जो पञ्चपात रहित अथवा सत्य का प्रत्यक्ष अन्तर्गत का सर्वथा परिकल्पना का आधार है उन्हीं का नाम धर्म और इससे विपरीत जो पञ्चपातवर्हित अथवा आचार्य सत्य का त्याग और अन्तर्गत का प्रत्यक्ष कर्म है उन्हीं को अधर्म कहते हैं ॥

अर्थकामेन्द्रियसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।

धर्मं विद्यात्समात्मानां प्रमाणं परमं भुक्तिः ॥ मनु २।१३॥

जो पुण्य (कर्म) अनुसूक्तों के रूप और (कर्म) जीवनेवादि में नहीं कहते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का विचार करें क्योंकि धर्मोपधर्म का मिश्रण बिना वेद के होकर नहीं होता ॥

इस प्रकार आचार्य अपने विषय को उपदेश करे और विशेषकर राजा इतर अथवा वैश्य और उत्तम सुदृढों को भी विद्या का अध्ययन करवें । क्योंकि जो अध्ययन है वे ही केवल विद्याभ्यास करें और अविद्यादि न करें तो विद्या धर्म राज्य और धन्यादि की बुद्धि कमी नहीं हो सकती । क्योंकि अध्ययन तो केवल पढ़ने पढ़ने और अविद्यादि से जीविक के प्राप्त होने जीवन बरकरार कर सकते हैं । जीविक के आशौच और अविद्यादि के अज्ञानादिक और अज्ञान परीक्षा दृष्टकृता न होने से अध्ययन विद्या सब कर्म पावनक ही में कह सकते हैं और जब अविद्यादि विद्या होते हैं तब अध्ययन भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में कहते हैं और जब अविद्यादि विद्याओं के सामने पावनक पूरा अध्ययन भी नहीं कर सकते और जब अविद्यादि अविद्या होते हैं तो वे जिस अपने मन में पाता है जिस ही करते करते हैं । इसलिये अध्ययन भी अपना अध्ययन नहीं तो अविद्यादि को वैदिक सत्यवाचक का अध्ययन अधिक प्रयत्न से करवें । क्योंकि अविद्यादि ही विद्या धर्म राज्य और धन्यादि की बुद्धि करनेवाले हैं वे कमी भिन्नबुद्धि नहीं करते इसलिये वे विद्याभ्यास में पड़पाती भी नहीं हो सकते । और जब जब कहीं भी विद्या सुविधा होती है तब कोई भी पावनक रूप धर्मपथ सिद्धा अध्ययन को नहीं कहा सकता इससे क्या सिद्ध हुआ कि अविद्यादि को विद्या में कहने के लिये अध्ययन और संन्यासी तथा अध्ययन और संन्यासी को सुविद्या में कहनेवाले अविद्यादि होते हैं । इसलिये सब कर्मों के भी पुस्तों में विद्या और धर्म का अन्तर अन्तर होना चाहिये ॥

पिता पत्न्यादि में पूरा को देख के अग्नि कर्मात् में मुख्य मुख्य देख के प्रारम्भ का ज्ञान होता है । वह अनुमान तीन प्रकार का है । एक — ‘कर्त्तव्य’ जैसे कर्त्तव्यों को देख के नहीं, विवाह को देख के सम्प्राप्तोत्पत्ति पड़ते हुए विधियों को देख के निष्पत्ति होने का विम्वर होता है इत्यादि जहाँ २ कारण को देख के कार्य का ज्ञान हो वह ‘पूर्वगत’ । दूसरा — ‘रोक्कत्’ अर्थात् जहाँ कार्य को देख के कारण का ज्ञान हो जैसे मही के पचाह की कड़वी देखके ऊपर हुई क्यों का पुत्र को देख के पिता का यहि को देख के अमादि कारण का तथा कर्त्ता ईश्वर का और पाप पुण्य के आचरण देख के सुकतुच्छ का ज्ञान होता है । इसी को ‘रोक्कत्’ कहते हैं । तीसरा — ‘सम्प्राप्तोत्पत्ति’ जो कोई किसी का कार्य कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधन्य एक दूसरे के साथ हो जैसे कोई भी बिना कबे दूसरे स्थान को नहीं जा सकता ऐसे ही दूसरी का भी स्थानान्तर में जाया बिना प्रयत्न के कभी नहीं हो सकता । अनुमान तब्य का अर्थ यही है कि “अनु अर्थ्यात् प्रत्यक्षस्य पञ्चात्मन्यस्य ज्ञाप्यत यत् तदनुमानम्” जो प्रत्यक्ष के पश्चात् अन्तर्गत जैसे ज्ञान के प्रत्यक्ष देखे बिना अगस्त अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता ॥

तीसरा उपमान—

प्रसिद्धसाधम्यान्साध्यसाधनमुपमानम् ॥

म्याय० अ० १ । भा० १ । सू० ६ ॥

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधन्य स साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान का सिद्धि करने का साधन हा उसको उपमान कहते हैं । उपमीयत येन तदुपमानम्’ जैसे किसी ने किसी भूत स कहा कि ‘तुविन्दुमित्र को बुझाया’ यह बोला कि ‘मैंने उसका कभी नहीं दृष्टा’ उसके स्थानी ने कहा कि ‘जैसा यह देखदत्त है वैसे ही वह विन्दुमित्र है’ या किसी यह वाय है किसी ही प्रत्यक्ष अर्थात् नीलपाय होटी है अब वह कहा गया और दृष्टत् के सत्य उसको देख विम्वर कर किया कि वही विन्दुमित्र है उसको से जाना । अथवा किसी जंगल में जिस पक्ष को वाय के मुख्य देखा उसको निम्न्य का किया कि इसी का नाम गवय है ॥

चौथा शब्दप्रमाण—

आतोपदेशः शब्दः ॥ म्याय० अ० १ । भा० १ । सू० ७ ॥

जो अगस्त अर्थात् पूर्ण विज्ञान, धर्मव्या परोपकारविम सम्पदारी पुष्टार्थों अतिशय पुष्ट प्रीति अपने साम्या में जानता हो और जिससे सुख पाया हो इसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपरोहा जो अर्थात् [जो] अतिने प्रथिनी स सेके परमेश्वर परमेश्वर परार्थों का ज्ञान प्राप्त हन्व उपरोहा होता है । जो ऐसे पुष्ट और पूर्ण अगस्त परमेश्वर के उपरोहा है उन्ही को शब्दप्रमाण आता ॥

और पाप पुण्य के आचरण का मुख्य मुख्य दृष्टके ज्ञान होता है ॥

पांशयां पेशिह्य—न चतुष्टयमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावात्प्रामाण्यत्वात् * ।

ग्याय त्र २। प्या २। सु १॥

जो इति इ अर्थात् इस प्रकार का यह अर्थ है इस प्रकार किन्ना अर्थात् किन्ना के अर्थ अर्थात् यह नाम अर्थात् है ।

कस्य अर्थापत्ति—

“अर्थादापयते सा अर्थापत्तिः” केनचित्कुर्यात् ‘सास्तु घनेषु वृष्टिः सति कारणे कार्यं भवतीति किमत्र प्रसज्यत असस्तु घनेषु वृष्टिरसति कारणे च कार्यं न भवति’ इति विद्यावेदिव्यासे कदाचिद् बहस्ये के हाने से क्या और कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है” इससे विद्या कहे वह दूसरी बात सिद्ध होती है कि विद्या बहस कभी और विद्या कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता ।

साखी सम्भव—

सम्ममति पश्मिन् स सम्ममत्' कोई कहे कि 'ममता पिता के विषय सम्ममतेत्यपि [हुई] ? किसी के मुख्य विद्याये पण्डित बनने सम्ममत् में पण्डित बनने सम्ममत् के हुकमे किने परमेश्वर का पण्डित हुकम मनुष्य के लिये है और सम्ममत् के पुत्र और पुत्री का विद्याह विद्या' इत्यादि सब सम्ममत् है क्योंकि ये सब बातें सविष्णु से निकल हैं । और जो बात सविष्णु के अनुकूल हो वही सम्ममत् है ॥

साठवाँ अध्याय—

‘न भवति यस्मिन् साक्षात्’ जैसे किसी रेकिली से कहा कि हाथी से घा’ वह वहाँ हाथी का जमान देखकर कहा हाथी था वहाँ से ले आया :

ये साठ प्रमाण । इसमें से को राज्य में पवित्र और अनुमान में अधीरपति सम्मान और धन्य की मज्जा करें तो चार प्रमाण यह करते हैं । इन सांच मकर की परीक्षाओं से जानासना का विचार अनुभव कर सकता है जानका नहीं ॥

धर्मविशेष प्रवृत्ताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां
साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानाभिधेयसम् ॥

क्रि.सं. ११७४११५४

यह अनुपम धर्म के पराधीन अनुष्ठान करने से शक्ति होकर "साधनी" जगत् को सुख धर्म है जैसा धृतिवी जगत् और जगत् की जगत् "साधनी" जगत् धृतिवी कठोर और जगत् कोमल इसी प्रकार से प्रत्यक्ष, सुख, कर्म सामान्य विशेष और समस्त इस जगत् पराधीन के लक्षणों से जगत् स्वयंसेवक से "विशेषज्ञ" मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

पृथिव्याऽपस्थज्जोषायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥

नि. अ. ११ अ. ११ अ. २१

इधरी जस तेज कानु, जाकथ कपल दिवा जाधम जोर मखवे मखमुज है म

प्रिया गुरुभस्मभाषिण्यारणमिति द्रव्यसङ्ग्रहम्

वि. सं. ११४४ ११४५ ११४६

* सुधार्य—वृद्धि प्रशंसति इत्यत्र चार प्रत्यय ह्य चार का भी प्रत्यय होने से प्रत्यय केवल चार ही नहीं है।

“किंवाद्य गुणस्य विद्यते परिमितात् किंवाद्यवत्” जिसमें किंवाद्य और केवल गुण हैं उसको द्वय कहते हैं। उसमें से पृथिवी जल, तेज वायु, मन और आत्मा ये चार द्वय किंवा और गुणवाले हैं। तथा आकाश काज भीर दिशा ये तीन किंवाहित गुणवाले हैं। (समवायि) “समवायि” शीर्ष यस्य तत् समवायि प्राप्नुवित्वं कारणं समायायि च तत्कारणं च समायायि फारस्मू” ‘व्यस्यते नेत्र तद्व्यस्यम्’ जो मिथ्या के स्वभावपुत्र कर्म से कारण पूर्वकत्व हो उसी को द्वय कहते हैं। जिससे खल जाना जाय जैसा प्राण च रूप जाया जाता है उसको द्वय कहते हैं ॥

रूपरसगन्धस्पर्शयती पृथिवी ॥ वै अ २।आ १।सू १॥

रूप रस गन्ध स्पर्शवाली पृथिवी है। उसमें रूप रस और स्पर्श अग्नि जल और वायु के योग से हैं ॥

न्यवस्थितं पृथिव्यां गन्धं ॥ वै अ २।आ २।सू २॥

पृथिवी में गन्ध गुण स्वाभाविक है। जिस ही जलमें रस अग्नि में रूप वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द स्वाभाविक हैं ॥

रूपरसस्पर्शयत्य आपो ब्रूयां स्निग्धा ॥ वै अ २।आ ३।सू २॥

रूप रस और स्पर्शवान् प्रवीणत और कोमल बल कहलाते हैं पानी इसमें जल च रस स्वाभाविक गुण तथा रूप स्पर्श अग्नि और वायु के योग से हैं ॥

अन्तु शीतता ॥ वै अ २।आ २।सू २॥

और जल में शीतत्व गुण भी स्वाभाविक है ॥

तत्रो रूपस्पर्शयत् ॥ वै अ २।आ २।सू ३॥

जो रूप और स्पर्शवाला है वह तेज है। पानी इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायु के योग से है ॥

स्पर्शयान् वायु ॥ वै अ २।आ ३।सू ४॥

स्पर्श गुणवाला वायु है पानी इसमें भी गन्धवा शीतत्ववा तेज और जल च योग से रहते हैं ॥

त आकाशं न विद्यन्ते ॥ वै अ २।आ ३।सू २॥

रूप, रस गन्ध और स्पर्श आकाश में नहीं हैं किन्तु शब्द ही आकाश का गुण है ॥ निष्कर्मणं प्रवृत्तमित्याकाशस्य चिह्नम् ॥ वै अ २।आ ३।सू २॥

जिसमें प्रवेष्ट और विक्रान्त होता है वह आकाश का चिह्न है ॥

कार्यान्तराप्रानुमायाश्च शब्दं स्पर्शयतामगुणं ।

वै अ २।आ ३।सू २२॥

गन्ध पृथिवी आदि कार्यों से प्रकट न होने से शब्द स्पर्श गुणवाले भूमि आदि का गुण नहीं है किन्तु शब्द आकाश ही का गुण है ॥

अपरस्मिन्नपरं युगपद्विरं छिन्नमिति फालजिह्वाभि ॥

वै अ २।आ २।सू २॥

जिसमें अपर पर युगपत एकद्वार (चिरम्) विद्यमान (चिरम्) शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको काज करते हैं ॥

नित्येष्वमायादानित्येषु मायात्कारणे काशाव्येति ॥

वै० अ० १।आ० २।सू० ३॥

जो बिना पदार्थों में न हो और अनित्यों में हो इच्छित्वे कारण में ही अन्त संशय है ॥

इत इदमिति यतस्त्वद्विषयं विद्वन् ॥ वै० अ० १।आ० २।सू० १॥

वहाँ से वह पूरा, इच्छित्वे पश्चिम उत्तर ऊपर नीचे जिसमें वह व्यवहार होता है वही को दिखा करते हैं ॥

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताश्च प्राची ॥

वै० अ० १।आ० २।सू० १४॥

जिस ओर प्रथम आदित्य का संयोग हुआ है, होम उदयको पूर्व दिशा करते हैं। और वहाँ अस्त हो इसको पश्चिम करते हैं। पूर्वमिदं मनुष्य के आदिनी ओर इच्छित्वे और वहाँ ओर उत्तर दिशा करता है ॥

एतत्तद्दिग्गन्तव्यकामि व्याख्यातानि ॥ वै० अ० २।आ० २।सू० १५॥

इससे पूर्व इच्छित्वे के बीच की दिशा को आग्नेयी इच्छित्वे पश्चिम के बीच को वैश्वति पश्चिम उत्तर के बीच को अग्नेयी और उत्तर पूर्व के बीच को देव्यायी दिशा करते हैं ॥

इच्छित्वेपप्रयत्नसुखदुःखज्ञानाभ्यासमनो विद्वमिति ॥ न्य० अ० १।सू० १॥

जिसमें (इच्छित्वे) राग, (इच्छित्वे) वैर (प्रयत्न) प्रयत्नार्थ सुख दुःख (ज्ञान) ज्ञान का सुख हो वह जीवन्मा (व्याख्या) है ॥ वैश्वतिक में इच्छित्वे विरोध है—

प्राज्ञाऽपानमिमं पोष्मेपजीवनमनोमतीन्द्रियास्तर्षिकाय सुखदुःख
इच्छित्वेपप्रयत्नसुखदुःखज्ञानाभ्यासमनो विद्वमिति ॥ वै० अ० २।आ० २।सू० १॥

(प्रयत्न) नीचे से ऊपर को निष्कारणा (अराग) बाहर से ऊपर को भीतर लेना (निमेष) आन्त को नीचे अन्तर्मा (अन्तर्मा) आन्त की ऊपर उदयना (जीवन्) प्रयत्न का कारण करण (मत्त) मत्त विच्छित्वे अर्थात् ज्ञान (यति) यत्ने प्रयत्न करण (इच्छित्वे) इच्छित्वे का विच्छित्वे में अन्तर्मा उदये विच्छित्वे का प्रयत्न करण (अन्तर्मा) सुख दुःख और पीड़ा आदि विच्छित्वे का होना सुख दुःख इच्छित्वे इच्छित्वे और प्रयत्न के प्रयत्न आन्त के विच्छित्वे अर्थात् करण और सुख है ॥

युगपद्व्यानादुत्पत्तिमनसो विद्वन् ॥ न्य० अ० १।आ० १।सू० १६॥

जिससे एक अन्त में दो पदार्थों का प्रयत्न (अर्थात्) ज्ञान नहीं होता उदयको मत्त करते हैं ॥

वह प्रयत्न का स्वयं और उदयका अन्त अन्त में करते हैं—

ऊपरसमन्वयस्पर्शाः सौम्यापरिमाणाणि पृथक्तत्वं संयोजयिमासी

परत्वाऽपरत्वं सुखदुःखं इच्छित्वेपप्रयत्नसुखदुःखं ॥

वै० अ० १।आ० १।सू० १७॥

ऊपर, रस मत्त तत्त्वं संयोजयिमासी पृथक्तत्वं, संयोजयिमासी परत्वं सुख, सुख दुःख इच्छित्वे, इच्छित्वे प्रयत्न सुख प्रयत्न स्नेह संयोजयिमासी और अन्त के १७ सुख करते हैं ॥

द्रव्याद्यभ्यगुणवाम् संयोगविभागोपकारश्चमलपेक्ष इति गुणसम्बन्धम् ॥

वे. अ. १। अ. २। सू. १९॥

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्य के व्यापन रहे अन्य गुण का धारण न करे संयोग और विभाग में कारण न हो (अवपेक्ष) अर्थात् एक दूसरे की अपेक्षा न करे ॥

भोत्रोपलब्धिर्वुद्धिनिर्वाहः प्रयोगेष्वाऽभिप्रेक्षित आकाशश्च' इत्यम् ॥

महामाध्वे प्रपञ्चार सू. १। आह्निक १॥

विद्यारी जोहों से प्रक्षिप्त जो बुद्धि से ग्रहण करने योग्य और प्रयोग से अभ्यसित तथा व्यापक विभक्त्य देश है वह द्रव्य कहलाता है। जेब से विद्यार्थ्य ग्रहण हो वह वन विद्य से विद्य विद्यार्थि अनेक प्रकार का ग्रहण होता है वह रस आदिक से विभक्त्य ग्रहण हो वह मन्त्र मन्त्र से विभक्त्य ग्रहण होता है वह स्वर्ण एक द्वि इत्यादि पञ्चक विभक्त्य होती है वह संज्ञा विभक्त्य से तोष अर्थात् इहक्य भारी विदित होता है वह परिग्रह्य एक दूसरे से अलग होना वह पृथक् एक दूसरे के साथ मिलना वह संयोग एक दूसरे से मिले हुए के अनेक टुकड़े होना वह विभाग इससे यह पर है वह पर उल्लेख यह करे है वह अन्तर, विभक्त्य अन्ते हुए का अन्त होता है वह बुद्धि, आकाश का नाम गुण लक्ष्य का नाम गुण इत्यादि—राज द्वेच—विशेष (प्रकृत) अनेक प्रकार का वन पुरुषार्थ (गुण्य) भारीपन (द्रव्य) पिच्छकाय (स्वेद) प्रीति और चिन्तापन (संस्कार) दूसरे के योग से आकाश का होना (वर्त) अन्तर्गत्य और कर्मिन्विद्यार्थि, (अन्तर्) अन्तर्गत्य और कर्मिन्विद्यार्थि से विद्य कोमलता ने चोरीत (१७) गुण है ॥

उत्प्रेषणमप्युत्प्रेषणमकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्मणि ॥

वे. अ. १। अ. १। सू. २०॥

'उत्प्रेषण' ऊपर को फेंक करना 'अवप्रेषण' नीचे को फेंक करना 'अकुञ्चन' सङ्कोच करना 'प्रसारण' फैलावा 'गमन' जाना आना वृत्तयः अपरि इन्को कर्म कहते हैं ३ अर्थ कर्म का अर्थ—

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागोपकारश्चकारणमिति कर्मैवस्तस्यम् ॥

वे. अ. १। अ. १। सू. १०॥

"एकद्रव्यमाधय आधारी यस्य तदेकद्रव्यं न विद्यत गुणो यस्य यस्मिन् या तद्गुणं संयोगयु विभागयु आपेक्षारहितं कारणं तत्कर्म सप्तसुम्" अथ "यत् क्रियते तत्कर्म कल्पते यम तद्गुणम् कर्मणो असायं कर्मैवस्तस्यम्" द्रव्य के व्यापित गुणों से रहित संयोग और विभाग होने में अपेक्षारहित कारण हो उसको कर्म कहते हैं ॥

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥ वे. अ. १। अ. १। सू. १८॥

जो कर्म द्रव्य गुण और कर्म का कारण द्रव्य है वह सामान्य द्रव्य है ॥

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥ वे. अ. १। अ. १। सू. २१॥

जो द्रव्यों का कर्म द्रव्य है वह कार्यपन स सब कर्मों में सामान्य है ॥

द्रव्यस्य गुणस्य कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च ॥

बै अ १।आ० २।सू २॥

द्रव्यों में द्रव्यपण गुणों में गुणपण कर्मों में कर्मपण ये सब सामान्य और विशेष कहते हैं क्योंकि द्रव्यों में द्रव्यत्व सामान्य और गुणत्व कर्मत्व से द्रव्यत्व विशेष है इसी प्रकार सर्वत्र ज्ञानत्वा ॥

सामान्यं विशेष इति बुद्धयपेक्षम् ॥ बै अ १।आ २।सू २॥

सामान्य और विशेष बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। जैसे—मनुष्य व्यक्तियों में मनुष्यत्व सामान्य और बहुरूप्यदि से विशेष तथा जीव और पुष्पत्व इन्में प्राण्यत्व चक्षुष्यत्व श्रवणत्व सूत्रत्व भी विशेष हैं। प्राण्यत्व व्यक्तियों में प्राण्यत्व सामान्य और चक्षुष्यादि से विशेष है इसी प्रकार सर्वत्र ज्ञानो ॥

इहेवमिति यत् कार्यकारणयोः स समवायः ॥

बै अ० ७।आ १।सू २६॥

कर्मत्व धर्मत्व धन्यत्वों में कर्मत्वों धर्मों में किन्तु किन्तुत्व गुण गुणों काति अति कर्मत्व धर्मत्व धन्यत्व धन्यत्वों इत्येव किन्तु धन्यत्व होने से समवाय कहात्वा है और जो बुद्धता द्रव्यों का परस्पर सम्बन्ध होता है वह संयोग धर्मत्व धन्यत्व है ॥

द्रव्यगुणयोः सञ्जातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् ॥

बै अ १।आ १।सू ३॥

जो द्रव्य और गुण का उभाव जातीयक कर्म का आरम्भ होता है उसको साधर्म्य कहते हैं। जैसे पृथिवी में लक्षण धर्म और अग्नि कर्मोत्पत्तकत्व स्वस्त्यत्त धर्म है जैसे ही लक्ष में भी लक्षण और हिम अग्नि स्वस्त्यत्त कर्म का आरम्भ पृथिवी के साथ लक्ष का और जल के साथ पृथिवी का तुल्य धर्म है अर्थात् 'द्रव्यगुणयोर्बिम्बतायादम्भकत्ववैधर्म्यम्' यह सिद्ध हुआ है कि जो द्रव्य और गुण का किन्तु धर्म और कर्म का आरम्भ है उसको वैधर्म्य कहते हैं। जैसे पृथिवी में अग्नित्व गुणत्व और लक्षणत्व धर्म लक्ष से किन्तु और लक्ष का द्रव्य कोमलता और लक्षणबुद्धता पृथिवी से किन्तु है ॥

कारणमाधात्कार्यमायः ॥ बै अ ७।आ १।सू २॥

कारण के होने ही से कार्य होता है ॥

न तु कार्याभावात्कारणमायः ॥ बै अ १।आ २।सू २॥

कार्य के अभाव से कारण का अभाव नहीं होता ॥

कारणाभावात्कार्याभायः ॥ बै अ १।आ २।सू ३॥

कारण न होने से कार्य कभी नहीं होता ॥

कारणगुणपूषकः कार्यगुणो ह्यह ॥ बै अ २।आ १।सू २४॥

जैसे कारण में गुण होते हैं वैसे ही कार्य में होते हैं ॥ परिचयम दो प्रकार का है—

अथ महदिति तस्मिन्विशेषमावादिशेषाभावात् ॥

बै अ ७।आ० १।सू ११॥

(अष्ट) सूक्ष्म (महत्) तथा जैसे ब्रह्मरेख बिजा से स्रोत्र और एकाग्र से
बना है तथा पहाड़ पृथिवी से बने और वृक्षों से बने हैं ॥

सहिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥ वै अ १। अ २। सू ७ ॥

७ जो द्रव्य गुण और कर्मों के सत् शब्द अभिहित रहता है अर्थात् सत्
द्रव्यम् सत्गुणम्—सत्कर्म” सत् द्रव्य सत् गुण सत् कर्म अर्थात् कर्मान
अवस्थाही शब्द का अन्वय सत् के साथ रहता है ॥

मायोऽनुसृत्तरय हेतुत्यात्सामान्यमेव ॥ वै अ १। अ २। सू ४ ॥

जो सब के साथ अनुसृत्तमान होने से सामान्य मान है सो महासामान्य
कहाता है यह कम सामान्य द्रव्यों का है ॥

जो अन्वय है वह पांच प्रकार का होता है—

क्रियागुणव्यपदेशाभावाप्रागसत् ॥ वै अ १। अ ३। सू १ ॥

क्रिया और गुण के विशेष विहित के अन्वय से प्राक् अर्थात् पूर्व (अष्ट)
४ का जैसे यह कदाहि उत्पत्ति के पूर्व नहीं ये इसका नाम प्रागन्वय ॥

दूसरा—सदसत् ॥ वै अ १। अ ३। सू २ ॥

जो होके न रहे जैसे यह उत्पन्न होके नष्ट हो जाय वह सर्वसामान्य कहा है ॥

तीसरा—सदासत् ॥ वै अ १। अ ३। सू ३ ॥

जो होवे और न होवे जैसे “अपीरबीडनको गौड” यह बोका नाम नहीं और
मय बोका नहीं अर्थात् जोड़े में नाम का और नाम में जोड़े का अन्वय और नाम
में नाम जोड़े में जोड़े का नाम है वह अन्वयान्वय कहाता है ॥

चौथा—यथाव्यवस्थितस्तदसत् ॥ वै अ १। अ ३। सू ४ ॥

जो पूर्वोक्त तीनों अन्वयों से भिन्न है उसको अवस्थान्वय करते हैं । जिस—
“नान्त” अर्थात् मनुष्य का सीमा “नपुण्य” आत्मन का कुछ और “अप्यनुत्”
अप्य का कुछ इत्यादि ॥

पांचवां—नास्ति घटो गच्छ इति मनो घटस्य गच्छसामप्रतिपक्ष ॥

व अ १। अ ३। सू १ ॥

अ में प्रका नहीं अर्थात् अव्यय ॥ अ के साथ बने का सामान्य नहीं है
ये पांच अन्वय करते हैं ॥

इन्द्रियदोषास्तरुकारवायाधायिदा ॥ वै अ १। अ ३। सू १ ॥

इन्द्रियों और संस्कार के दोष का अधिका उत्पन्न होती है ॥

तद्दुष्टजानम् ॥ वै अ १। अ ३। सू ११ ॥

जो कुछ अर्थात् विरहीत जान है उसको अधिका करते हैं ॥

अनुत् विद्या ॥ वै अ १। अ ३। सू १२ ॥

जो अनुत् अर्थात् अकार्य जान है उसको विद्या करते हैं ॥

गृधिप्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानिस्वप्नादनिस्वप्ना ॥

व अ १। अ ३। सू २ ॥

७ अर्थात्—जिस कारण से ॥ १ यह अर्थ है ॥ यह ‘संशयोन्वय’ है ॥

एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥ वे अ ७। पा १। सू ३ ॥

जो कार्यरूप शुक्तिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप रस गन्ध स्पर्श गुण हैं वे सब ब्रह्मों के अधिक होने से अधिक हैं और जो इसके कारणरूप शुक्तिव्यादि विभिन्न ब्रह्मों में व्याप्य हैं वे नित्य हैं ॥

सदकारण्यवधिस्तम् ॥ वे अ ७। पा १। सू १ ॥

जो निरन्तर हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह नित्य है अर्थात् "सम्बन्धव्यवधिस्तम्" जो कारण वाले कार्यरूप गुण हैं वे अधिक कहते हैं ॥

अस्यैवं कार्यं कारणं संयोगिविरोधिं सम्पापि चेति तैजिकम् ॥

वे अ ७। पा २। सू १ ॥

इसका वह कार्य या कारण है इत्यादि सम्पापि संयोगि & एकत्वसम्बन्धि और विरोधी यह चार प्रक्रम का वैज्ञानिक अर्थात् चित्तावृत्ति के सम्बन्ध से ज्ञान होता है ॥ सम्बन्धि" जैसे सामान्य परिचयमहा है 'संयोगि' जैसे सारि सम्बन्धका है इत्यादि का नित्य संबन्ध है "एकत्वसम्बन्धि" एक कार्य में दो कारण जैसे कार्यरूप स्पर्श रूप का चित्त अर्थात् ब्रह्मवेत्तका है "विरोधी" जैसे दूर दृष्टि होने वाली दृष्टि का विरोधी चित्त है ॥

'व्याप्ति' — निर्यतधर्मसाहित्यमुत्पत्तयेकतरस्य वा व्याप्तिः ॥

निर्मलकस्युद्भवमित्यन्वयार्थाः ॥ आधेयशक्ति धोग इति पञ्चशिक्षा ॥

सांख्यसूत्र अ २। सू २२। २३। २४ ॥

जो दोषों छात्र साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिससे सिद्ध किया जाय जब दोषों कायका बुद्ध, साधनमार्ग का विविध पदों का सहकार है उन्हीं को व्याप्ति कहते हैं जैसे धूम और आगि का सहकार है ॥ २३ ॥ तथा व्याप्य जो धूम इसकी निम्न लक्षि से उत्पन्न होता है अर्थात् जब देहान्तर में दूर धूम उत्पन्न है तब निम्न अधिबोध के भी धूम स्वयं रहता है । इसी का नाम व्याप्ति है अर्थात् आगि के देहान्तर में देह सम्बन्ध से ब्रह्मादि पदार्थ धूमरूप प्रकट होता है ॥ २४ ॥ जैसे महाकायों में प्रकृत्यादि की व्यापकता बुद्ध्यादि में व्यापकता धर्म के सम्बन्ध का नाम व्याप्ति है । जैसे शक्ति आधेयक्य और शक्तिमान् आधारक्य का सम्बन्ध है ॥ २५ ॥ इत्यादि साधों के प्रमाणादि से परीक्षा करने परें और पदार्थ जगत्वा विचारकों को ज्ञान योग कभी नहीं हो सकता । प्रिष्ठ १ प्रश्न को पदार्थ उद्य १ की पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा करके जो सत्य उद्ये वह २ प्रश्न पदार्थ जो १ इन परीक्षाओं के सिद्ध हों जब २ प्रश्नों को ५ पदार्थ क्योंकि—

अस्तुप्रमाणान्या वस्तुसिद्धिः ॥

सचय—जैसा कि गण्यवती श्रुति जो श्रुति है वह गण्यवती है उसे जगत् और प्रमाणादि प्रमाण इनसे सत्याऽसत्य और पदार्थों का निर्णय हो जाता है इसके बिना कुछ भी नहीं होता ।

मूल में ऐसे चकार पर जो इसका प्रत्यय होता है ॥

आद्य पठनपाठमविधि

अब पहले पढ़ाने का प्रकार सिखाते हैं—प्रथम पाणिनिमुद्रित शिवा को कि सुप्रसन्न है उसकी रीति बर्णित इस अक्षर का यह स्थान यह प्रत्यय यह करवा है जैसे 'प' इसका जोड़ स्थान सृष्ट प्रत्यय और प्राप्ति तथा जीम की क्रिया करनी करवा कहाता है। इसी प्रकार ब्याजोक्त सब अक्षरों का उच्चारण माला पित्रा आचार्य सिद्धांतों। तदनन्तर व्याकरण जर्नात् प्रथम आद्याभ्यासी के मुखों का पाठ जैसे वृद्धिरादेष् चिर पदपुद्गल नीत वृद्धि भात् ऐष् वा आदेष् चिर सध्यात् आदेष् ऐष् आदेष् चिर अर्धजैसे आदेष् वृद्धिसंज्ञा क्रियत् बर्णित या ऐ, ओ की वृद्धिसंज्ञा [की जाती] है त परा यस्मात्सु तपरस्तादपि परस्तपर तकार जिससे परे और जो तकार स भी परे हो वह तपर कहाता है इससे क्या सिद्ध हुआ जो आकार से पर त और त से परे पुष् दोनों तपर ई तपर का प्रमाण यह है कि इत्य और प्युत की वृद्धिसंज्ञा न हुई।

उच्चारण (आद्य) यहाँ 'अम्' धातु से 'अम्' प्रत्यय के परे अ, अ की इच्छा होकर जोप होयना पद्यात् 'अम्' का यहाँ उकार के पूर मकारोत्तर अकार की वृद्धिसंज्ञक आकार होयना है। तो नाम् पुनः 'अ' को ग् हो, अकार के स्थान सिद्ध है 'अम्' ऐसा प्रथम हुआ।

अप्यात् यहाँ अतिपूर्वक इत् धातु के इत्य इ के स्थान में 'अम्' प्रत्यय के परे अ' वृद्धि और उसको 'अम्' हो सिद्ध है 'अप्यात्' ॥

आयक यहाँ जीम धातु के दीर्घ ईकार के स्थान में 'अम्' प्रत्यय के परे 'अ' वृद्धि और उसको 'अम्' होकर सिद्ध है आयक। और अयक यहाँ 'अम्' धातु से 'अम्' प्रत्यय होकर इत्य उकार के स्थान में 'अ' वृद्धि 'अम्' आद्य होकर आकार में सिद्ध गया तो 'अयक' ॥

(इम्) धातु से आये 'अम्' प्रत्यय अ की इच्छा होके जोप 'अ' के स्थान में अक आदेष् और अकार के स्थान में आर् वृद्धि होकर अयक सिद्ध हुआ ॥

जो १ सूत्र आये पीपु के स्थान में जेपि उकार कार्य सब अक्षराणा आद्य और स्नेह अथवा अक्षरों के यह पर दिखता १ के कया रूप धर के जैसे 'अम्+अम्+मु' इस प्रकार धर प्रथम अक्षर का फिर अ की जोप होके 'अम्+अम्+मु' ऐसा रहा फिर अ की आकार वृद्धि और अ के स्थान में 'अ' होने से अम्+अम्+मु पुनः अकार में सिद्ध जाने से अम्+मु' रहा अब उकार की इच्छा अ के स्थान में 'अ' होकर पुनः उकार की इच्छा और आद्य के पद्यात् अम्' ऐसा रहा अब ईक के स्थान में () विस्मयनीय होकर 'अम्' यह रूप सिद्ध हुआ ॥

जिस १ सूत्र से जो १ कार्य होता है उक्त उसको यह पत्र के और दिखता यह कार्य कहाता जाय। इस प्रकार पहले पढ़ाने का बहुत सीमा यह बोध होता है। एक बात इसी प्रकार अक्षराणा पीपु के धातुआद्य अर्धसहित और एत अक्षरों के रूप तथा अधिक सहित सूत्रों के अभ्यास जर्नात् आद्याभ्यास मूल जिस अक्षरवत् कार्य उपरह प्रत्यक्ष का आद्याभ्यास से अम् प्रत्यय हो जैसे

मग्न को जो नहीं जानता वह जन्मेदादि से क्या कुछ कुछ को मग्न हो सकता है ? नहीं । किन्तु जो वेदों को पद के समझना बोधी होकर उस मग्न को जानते हैं वे सब परमेश्वर में स्थित होके सुखिह्वली परमात्मन् को प्राप्त होते हैं । इसलिये जो कुछ पढ़ना या पढ़ाया हो वह अर्थज्ञान सहित चाहिये ।

इस प्रकार सब वेदों को पद के आनुवंशिक अर्थों को चरक सुमुत्त आदि अपि सुविमर्शित ज्ञेयक शास्त्र है उसको अर्थ ज्ञिया, शास्त्र ज्ञेयक ज्ञेयक, ज्ञेय विविधता विज्ञान औपच पथ्य शरीर, वेद काक धीर वस्तु के गुण ज्ञानपूर्वक ४ (चार) वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें । तदनन्तर अनुवंशिक अर्थों को राजसम्बन्धी ज्ञान करना है इसके दो मेद एक विज्ञ राजसुखसम्बन्धी और दूसरा महासम्बन्धी होता है । राजसम्बन्धी में सत्ता सेवा के सम्बन्ध शास्त्रिक ज्ञिया बाबा प्रकार के व्यूहों का अध्ययन आगेत जिसको अध्ययन ज्ञानपूर्वक कहते हैं जो कि शत्रुओं से छद्माई के समय में किया करनी होती है उसको पञ्चकत् सीखें और जो २ मग्न के पञ्चक और बुद्धि करने का प्रकार है उसके सीख के ज्ञानपूर्वक सब मग्न को प्रसन्न रखें वृद्धों को यथायोग्य वृद्ध ज्ञेयों के पाठन का प्रकार सब प्रकार सीखें ॥

इस राजविद्या को वा २ वर्ष में सीखकर ज्ञानपूर्वक कि जिसको राजविद्या कहते हैं उस में स्वर राग समिन्धी समय ताक प्रम ताक आदिन मूल गीत आदि को पञ्चकत् सीखें परन्तु मुख्य करके समवेद का भाग अविज्ञानपूर्वक सीखें और आरक्षसहिता आदि को २ वर्ष प्रम है उसके पढ़ें परन्तु मग्न के वरक और विपक्षसम्बन्धक वरागिनी के पर्यन्तसम्बन्धक अर्थ आचार्य कमी न करें ।

अर्थवेद कि जिसको विज्ञापिका कहते हैं उसको पञ्चक गुण विज्ञान ज्ञिया-कीलक आचार्यिक पञ्चकों का निर्माण श्रुतिवी से लेके आत्मसत् पर्यन्त की विद्या को पञ्चकत् सीख के अर्थ अर्थों को वेदों को ज्ञानपूर्वक है इस विद्या को सीख के दो वर्ष में ज्योतिषप्रमन्न धर्मविज्ञानादि जिसमें जीवपञ्चित अंक, भूषण ज्ञानाक और भूषणविद्या है, इसके पञ्चकत् सीखें । तदनन्तर सब प्रकार की इस ज्ञिया वरकम्बिता आदि को सीखें । परन्तु जितने मग्न, वरक जन्मपत्र ज्ञिया सुहृत् आदि क ज्ञान के विधायक प्रम है उसके सुरु प्रमथ के ज्ञानों न पढ़ें और पढ़ाव । वेद प्रमथ पढ़ने और पढ़ाव आये करें कि जिससे बीस या इकोस वर्ष के भीतर समस्त विज्ञ उच्चम ज्ञिया प्रम होके समुप्य योग्य इत्यमम हाकर प्रम भावम् में रहें । जिसकी विद्या इस रीति से बीस या इकीस वर्षों में हो सकती है उसकी ज्ञान प्रकार से शतवर्ष में भी नहीं हो सकती ।

अविमर्शित ज्ञानों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि न वह विद्वान् धन शास्त्रविद् और भयमेया से और अनुवि अर्थों या ज्ञान शास्त्र पढ़े है और ज्ञान का भाग पञ्चपाठसहित है उसके बचने हुए ग्रंथ भी बिल ही हैं ।

पृथ्वीमांसा पर व्यासमुनिवृत्त ज्ञान्या वैदिक पर गौतममुनिवृत्त भाव-सूत्र पर आस्त्यायनमुनिवृत्त भाव्य पतञ्जलिमुनिवृत्त सूत्र पर व्यासमुनिवृत्त भाव-

अपिचमुनिवृत्त सांख्यसूत्र पर भगवद्गीतासमुनिवृत्त माध्यम्य व्यासमुनिवृत्त वेदान्तसूत्र पर ब्रह्मसूत्रसमुनिवृत्त माध्यम्य अथवा श्रीधरसमुनिवृत्त माध्यम्य वृत्तिसहित पूर्व पद्यार्थ । इत्यादि सूत्रों को कल्प ग्रन्थ में भी गिनकर चाहिये जैसे आर्यवत्, साम और धर्मार्थ चारों वेद ईश्वरवृत्त हैं वैसे वेदान्त ग्रन्थ पर साम और गोपथ चारों ब्राह्मण शिक्षा कल्प व्याकरण निघण्टु, निरुक्त ज्योतिष और ज्योतिष सूत्र वेदों के ग्रन्थ मीमांसादि हैं । आत्म वेदों के उपग्रन्थ आयुर्वेद धनुर्वेद गणपर्ववेद और अथर्ववेद चार वेदों के उपग्रन्थ सब यदि मुनि के किये ग्रन्थ हैं इन्हीं में जो १ वेद विरुद्ध प्रतीत हों उन २ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरवृत्त होने से विज्ञानित स्वतन्त्रग्रन्थ अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है । आद्यवादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण्य अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है । वेद की विशेष व्याख्या जाम्बवेदिसिद्धान्तप्रमाण्य में देखा जायिजे और इस ग्रन्थ में भी आगे लिखेंगे ॥

अब जो परिचाय के बोधक ग्रन्थ हैं उनका परिचायक संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो २ बीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह १ आद्यग्रन्थ समग्रग्रन्थ चाहिये । व्याकरण में अठारह सारस्वत, जम्बिका मुण्यबोध कौमुदी ठेकर मनोरमादि । कोश में अमरकोशदि । ज्योतिष्य में बृहत्संहितादि । शिक्षा में 'आद्य शिक्षां प्रयक्ष्यामि पाणिनीर्यमर्थं यथा' इत्यादि । ज्योतिष्य में श्रीमन्बोध मुहूर्तचिन्तामणि आदि । कल्प में मयिकल्पवेद, कुम्भकल्पग्रन्थ रघुवंश माघ किमताहर्षोपादि । मीमांसा में बर्मसिन्धु प्रकाशदि । ब्योम्बिक में तर्कसंग्रहादि । न्याय में जगदीश्वरी आदि । बौद्ध में इन्द्रदीपिकादि । सांख्य में सांख्यतन्त्रकौमुद्यादि । ब्रह्मन्त में बोधव्यसिद्ध पञ्चदश्यादि । वैद्यक में चार्ङ्गपद्यादि । स्मृतिर्षों में मनुस्मृति के अष्टसिद्ध भोज और अन्य सब स्मृति सब तन्त्रग्रन्थ सब पुराण सब उपपुराण तुलसीदासकृत भगवद्गीतासमायज्य अविमर्शमहाकादि और स व्यासग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं ॥

प्र — क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ?

उ०—बोधा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुतसा असत्य भी है इससे 'विदसमृत्काप्रयम् स्याज्या' जैसे जगुत्तम अथ विष से पुक होने से बोधने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं ॥

प्र०—क्या आप पुराण इतिहास को नहीं मानते ?

उ०—हां मानते हैं परन्तु सत्य को मानते हैं मिथ्या को नहीं ॥

प्र —कौन सत्य और कौन मिथ्या है ?

उ०—आद्यगुणीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथाभाग्यसंग्रहानि ॥

यह गृह्यसूत्रादि का बचन है । जो पुराण ग्रन्थवादि ब्राह्मण विषय ग्रन्थ इन्हीं के इतिहास, पुराण अन्य गाथा और गायत्रीगीता का नाम है भीमत्रय गीतादि का नाम पुराण नहीं ॥

प्र० —जो व्यास ग्रन्थों में सत्य है उसका प्रमाण क्यों नहीं करत ?

‘कुम्भकार’ पदार्थ अपवाद सूत्र जैसे ‘आतोभ्युक्तस्य क’ उत्तर में किन्तु कर्म उपपद कया हो तो आकारान्त धातु से ‘क’ प्रत्यय होवे अर्थात् जो बहुव्यापक मिला कि कर्मोपपद कया हो तो सब धातुओं से ‘अम्’ प्राप्त होता है उससे विशेष अर्थात् अल्प विषय उसी पूर्व सूत्र के विषय में से आकारान्त धातु को ‘क’ प्रत्यय ने ग्रहण कर लिया जैसे उत्तरार्ध के विषय में अपवाद सूत्र की प्रवृत्ति होती है ऐसे अपवाद सूत्र के विषय में उत्तरार्ध सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे चाकनर्त्त राग्य के राग्य में मावर्द्धिक और भूमिवादी की प्रवृत्ति होती है ऐसे मावर्द्धिक राग्य के राग्य में चाकनर्त्त की प्रवृत्ति नहीं होती ॥

इसी प्रकार पाणिनि महर्षि ने सहस्र स्तोकों ५ के बीच में अष्टाध्यायी नामक और शास्त्रों की विद्या प्रतिपादित कर दी है। वातुपाठ के पञ्चम उच्चारण के पढ़ने में सर्व सुकृत का विषय अम् प्रत्यय पदा के पुनः दूसरी बार सप्त सप्त धान कर्त्तिक, करिका परिभाषा की अन्तर्गत अष्टाध्यायी की द्वितीयाध्यायी पढ़ावे। तदनन्तर महात्म्य पढ़ावे। अर्थात् जो बुद्धिमान् पुस्तकें किन्तुपरी विद्यावृद्धि के आशयेच्छे किन्तु पूर्ण पढ़ावे तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महात्म्य पद के तीन वर्ष में पूर्ण व्याकरण होकर वैदिक और श्रौतिक शास्त्रों का व्याकरण से बोध कर पुनः सप्त शास्त्रों को शीघ्र ग्रहण में पढ़ पढ़ सकते हैं।

किन्तु मिला क्या परिधाम व्याकरण में होता है कसा अम अम्य शास्त्रों में करवा नहीं पड़ता और जिसका बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बांध कुम्भ अर्थात् सारस्वत चन्द्रिका कौमुदी मयोरमर्षि के पढ़ने से पञ्चस वर्षों में भी नहीं हो सकता। तर्किक जो महात्म्य महर्षि कोमी ने सहस्रश से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है किता इय बुद्धिमान् मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में नहीं कर हो सकता है। महर्षि कोमी का व्याकरण, कहाँ तक हो सके वहाँ तक, सुषम और जिसके ग्रन्थ में समय बोधा बोधे इस प्रकार का होता है और बुद्धिमान् कोमी की महत्ता देखी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कर्मि रचना करनी जिसको बड़े परिधाम से पढ़ के अल्प काम उक्त सके जैसे पहाड़ का कोरवा कौड़ी का काम होता। और आप ग्रन्थों का पढ़ना देखा है कि मिला एक पोसा सम्माना बहुपुत्र मोठियों का पदार्थ ॥

व्याकरण की पढ़ के वास्तव्युक्तिगत विवरण और विवरण का या जात महीन में साधक पूर्ण और पदार्थ। अम्य वास्तव्युक्ति अमरकोषादि में अनेक वर्ष धर्म न कोरे। तदनन्तर विज्ञानार्थार्थार्थ बुद्धिमत्ता जिससे वैदिक श्रौतिक ग्रन्थों का परिज्ञान बनीम रचना और श्लोक बनावे की शक्ति भी बधावर्त्त सीधे। इस ग्रन्थ और श्लोक की रचना तथा प्रकाश को पार महीने में सीधे पढ़ पढ़ सकते हैं। और बुद्धिमत्ता यदि अल्प बुद्धिमत्तापित ग्रन्थों में अनेक वर्ष न कोरे। तदनन्तर मनुष्य विषयीकीय सम्यक् और महत्कार के इच्छापर्याप्तर्गत विदुषीति यदि अल्प २ प्रकार विनसे पुनः धर्मन दूर हो और उत्तमता

• साम्य है पढ़ने अष्टाध्यायी व्याकरण हो ॥

सम्पत्ता प्राप्त हो कैसे को अन्वरीति से अर्थात् पदार्थों पर पदार्थिक अन्वय मिलेप्य विरोध और अन्वय को अन्वयक योग अर्थात् और विद्यार्थी योग अर्थात् अर्थात् । इनको वर्ग के भीतर पढ़ें ॥

तदनन्तर पूर्वमीमांसा वैशेषिक न्याय योग सांख्य और वेदान्त अर्थात् वहाँ तक वन सके वहाँ तक अपिष्ट न्यायसहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरस न्यायानुक्त धर्मशास्त्रों को पढ़ें पढ़ावें । परन्तु वेदान्त सूत्रों के पढ़ने के पूरा देश केन कद मस मुपलब्ध आकाशक पेशेय विचिरीय अन्वय और अन्वयक इन वक्त उपविषयों को पढ़ के पढ़ें : शास्त्रों के भाष्य वृत्तिसहित सूत्रों को दो वर्ष के भीतर पढ़ावें और पढ़ लें । पश्चात् का वर्गों के भीतर चारों ब्राह्मण अथवा पेशेय शतपथ साम और गोपथ ब्राह्मणों के सहित चारों वेदों के स्वर सन्ध अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रिया सहित पढ़ना योग्य है ॥ इसमें प्रमाण—

स्याष्टुरय भारद्वाजः क्लिप्तमृदुधीत्य वेदु न विमानाति योर्ध्वम् ।
योर्ध्वम् इत्यकल मद्रमरनुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥

विश्व १ । १८ ॥

यह विश्व में मन्त्र है । जो वेद को स्वर और अन्वय पढ़ के अर्थ नहीं समझता वह वैसा बूढ़ बाली पड़े फल कुछ और अन्वय पढ़ अन्वय अर्थ का मन्त्र समझता है कैसे मन्त्रवाह अर्थात् मन्त्र का उद्देश्यवाक्य है और जो वेद को पठता और उद्देश्य वाक्यवाह अर्थ समझता है वही सम्पूर्ण ज्ञानम् को प्राप्त होवे वेदान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र अर्थात् चरम के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होखे ॥

उत्त त्वु पर्युक्त ददर्शु धार्चमुत्त त्वः श्रुयवन्न मृषोत्पेनाम् ।

इतो त्वस्मै त्वन्वु विस्सै जायेष पत्यं अष्टुती सुवासाः ॥

अ म १ । ५ ॥ ११ । म ७ ॥

जो अधिज्ञान है वे सुवत हुप नहीं सुवते वेवते हुप नहीं वेवत बोवते हुप नहीं बोवत अर्थात् अधिज्ञान ज्ञान इस विद्या अर्थी के रहस्य को नहीं जान सकता । किन्तु जो अन्व अर्थ और सम्बन्ध का ज्ञानने जाना है उसके विवे विद्या जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पति की कमाना करती हुई की अपना शरीर और स्वल्प का प्रकाश पति के सामने करती है ऐसे विद्या विद्वान् के विवे अपने स्वल्प का प्रकाश करती है अधिज्ञानी के विवे नहीं ॥

श्रुचो अचरे परमे क्यौमुन् यस्मिन्नेवा अधिविषे निपेदुः ।

यस्तन्न वेदु किमुचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥

अ म १ । ५ ॥ १६ । म ११ ॥

यिस व्यापक अधिमाणी सर्वोक्त परमेश्वर में सब विद्वान् और श्रुति मूल अधि सब लोक स्थित है कि जिसमें सब वेदों का मुख्य सम्पूर्ण है उस

अभिधुमिभूत सांख्यसूत्र पर आधुनिसुमिभूत भाष्य व्याससुमिभूत वेदान्तसूत्र पर
 शरदधनसुमिभूत भाष्य अथवा बीषाधनसुमिभूत भाष्य युक्तिसहित पूर्व पदार्थों।
 इत्यादि सूत्रों को कल्प अङ्ग में भी गिनना चाहिये जैसे ब्रह्मसूत्र साम और अथर्व
 श्रौतों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे वेदारेण शतपथ साम और गोपथ श्रौतों आद्यस्य शिष्या
 कल्प व्याकरण विषयक विद्वत् कर्मों और श्रौतिय का वेदों के अङ्ग मीमांसादि
 का शास्त्र वेदों के उपरान्त आयुर्वेद धनुर्वेद गान्धर्ववेद और अथर्ववेद चार वेदों
 के उपरान्त सब अथर्व मुनि के किये ग्रन्थ हैं, इसमें भी जो १ वेद विद्वत् प्रतीत हैं
 उक्त १ को जोड़ द्वा प्रतीति वेद ईश्वरकृत होने से मिश्रान्त स्वतन्त्रमात्र अर्थात्
 वेद का प्रमाण्य वेद ही से होता है। आद्यस्यादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण्य अर्थात्
 इनका प्रमाण्य वेदधीन है। वेद की विशेष व्याख्या आग्नेयदिभाष्यमूमिका में
 देन लीजिये और इस ग्रन्थ में भी आगे लिखेंगे ॥

अब जो परिष्कार के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिचयक संक्षेप से किया जाता
 है अर्थात् जो १ लीके ग्रन्थ लिखेंगे वह १ आद्यग्रन्थ समझना चाहिये। व्याकरण
 में कसना छरत्पत्त, अत्रिक्क सुप्रबोध कौमुदी लेखक यमोरमादि। कोश में
 अमरकोशादि। कन्दोग्रन्थ में वृत्तराकाशादि। शिष्या में 'अथ शिष्या प्रबक्ष्यामि
 पाणिनीयं मतं यथा' इत्यादि। श्रौतिय में शीघ्रबोध मुहूर्तचिन्तामणि अदि। काव्य
 में नाटिकावेद, कुमहवाचनम् रघुवंश भाष्य किरातातु नीत्यादि। मीमांसा में
 धर्मसिन्धु अथर्वसिन्धु। वैदिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में आपदीपी अदि।
 योग में हठमहीपिकादि। सांख्य में सांख्यतन्त्रकौमुद्यादि। वेदान्त में भोगवसिष्ठ
 पञ्चदश्यादि। वैद्यक में चार्ङ्गपरादि। स्मृतिषी में मनुस्मृति के अर्पित श्लोक
 और ग्रन्थ सब स्मृति सब तन्त्रग्रन्थ सब पुराण सब उपपुराण तुलसीदासकृत
 आचारामायण कविमयीमञ्जुषादि और स व्याप्यग्रन्थ वे सब कर्षोक्तकस्वित
 मिथ्या ग्रन्थ हैं ॥

॥ — क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ?

उ०—बोदा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुतसा असत्य भी है इससे
 'पितृसम्भूताग्रपण् स्याज्या' जैसे आनुष्ठम अथवा विष से बुक होने से जापने
 भोग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं ॥

प्र०— क्या आप पुराण इतिहास को नहीं मानते ?

उ०— हाँ मानते हैं परन्तु सत्य को मानते हैं मिथ्या को नहीं ॥

प्र — कौन सत्य और कौन मिथ्या है ?

उ०— प्रातःपुनर्निनिहासान् पुराणानि कल्पान् माया नागार्जुनीरिति ॥

वह पुराणों का बचन है। जो एतरेय शतपथदि आद्यस्य विषय जाने
 उन्ही के इतिहास, पुराण कल्प माया और कसारांभी पाँच नाम हैं भीमत्राय
 रादि का नाम पुराण नहीं ॥

प्र० — जो व्याप्य ग्रन्थों में सत्य है उसका प्रत्यक्ष सबो नहीं करत ?

उ०—जो १ वधार्थे सत्य है सो २ वेदादि सत्य भावों का है और मिथ्या वधार्थे भर का है । वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सत्य सत्य का प्रत्यक्ष हो जाता है । जो कोई इन मिथ्या प्रमाणों से सत्य का प्रत्यक्ष करता चाहे तो मिथ्या भी वसने पड़े छिपट जावे । इसलिये 'असत्यमिदं सत्यं पुरतस्त्यज्यमिति' प्रकृत्य से कुछ प्रत्यक्ष सत्य को भी कैसे जोड़ देना चाहिये वैसे विवक्षित प्रश्न को ॥

प्र०—तुम्हारा मत क्या है ?

उ०—वेद अर्थात् जो १ वेद में करते और जोड़ने की विधा की है, उस १ का हम परमात्म्य करता जोड़ना मानते हैं । इसलिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है । ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष को ऐक्यत्व होकर रहना चाहिये ॥

प्र०—जैसा सत्तात्म्य और दूसरे प्रमाणों का परस्पर विरोध है वैसे अन्य शास्त्रों में भी है जैसा छद्म विषय में ब्रह्म शास्त्रों का विरोध है—मीमांसा कर्म कैटोपनिषद् का अन्वय परमात्म्य, योग पुस्तक में सत्य प्रकृति और वेदान्त प्रमाण से छद्म की उत्पत्ति मानता है, क्या यह विरोध नहीं है ?

उ०—प्रथम तो किन्तु सत्य और वेदान्त के दूसरे चार शास्त्रों में छद्म की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं किसी और इनमें विरोध नहीं, क्योंकि तुम्हारे विरोधविरोध का ज्ञान नहीं । मैं तुमसे पूछता हूँ कि विरोध किन्तु स्पष्ट में होता है ? क्या एक विषय में अनेक मित्र २ विषयों में ?

प्र०—एक विषय में अनेकों का परस्पर विरोध कबन हो उसका विरोध करते हैं वहाँ भी छद्म एक ही विषय है ॥

उ०—क्या विषय एक है या दो एक है जो एक है तो अकारण वैयर्थ ज्योतिष् अदि का मित्र २ विषय क्यों है ? जैसा एक विषय में अनेक विषय के अकारणों का एक दूसरे से मित्र प्रतिपादन होता है वैसे ही छद्मविषय के मित्र मित्र ब्रह्म अकारणों का शास्त्रों में प्रतिपादन करने के इनमें कुछ भी विरोध नहीं । जैसे बने के बनाने में कर्म समस्त मित्री सर्वोप विषयोपदि का पुस्तक, प्रकृति के गुण और गुणार करण है वैसे ही छद्म का जो वर्म करण है उसकी व्याख्या मीमांसा में समस्त की व्याख्या कैटोपनिषद् में उपादान करण की व्याख्या न्याय में पुस्तक की व्याख्या योग में तत्त्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या सौम्य में और निमित्तकारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदान्तशास्त्र में है इससे कुछ भी विरोध नहीं । जैसे वैयर्थशास्त्र में निदान, चिकित्सा आदि शास्त्र और पद्म के प्रक्रम मित्र २ कथित हैं परन्तु सब का सिद्धांत रोम को विवृति है वैसे ही छद्म के ब्रह्म करण है इनमें से एक १ करण की व्याख्या एक २ शास्त्रकार वे की है इसलिये इनमें कुछ भी विरोध नहीं, इसकी विवृति व्याख्या छद्मकरण में करेंगे ॥

जो विषय पढ़ने पढ़ाने के विषय हैं उनका जोड़ दें, जैसा कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयों का संग दुष्टत्वसंग जैसा मध्यादि अन्न और वेदपाठमध्यादि, अन्वयव्या में विद्या अर्थात् पक्षीघने वन से पूर्व पुष्प और सोखने वन से पूर्व की का विद्या

होना पृथक् पृथक् होना शक्य, माता पिता और विद्वानों का प्रेम, बेरादि शास्त्र के प्रचार में न होकर अतिमोक्षक अतिममार्गक करना पड़ने पड़ाने परीक्षा लेने या देने में आवश्यक का कष्ट करना सर्वोपरि विद्या का ज्ञान न समझना मद्यार्थ से बच बुद्धि, पराक्रम आरोग्य राज्य, धन की बुद्धि न मानना ईश्वर का ज्ञान जोड़ अन्य पापपादादि बड़ मूर्ति के दर्शन पूजन में धर्म का ब्रह्म को माता, पिता प्रतिधि और आचार्य, विद्वान् इनको सत्य मूर्ति मानकर सेवा सख्त न करना बर्षाभय के धर्म को जोड़ ऊर्ध्वगुण, तिष्ठक कष्टी माताभारत पञ्चदशी वयोदशी आदि ब्रह्म करना कष्टपादि तीर्थ और राम कृष्ण मारापण तिष्ठ, भगवद्गीता, गच्छेद्यादि के नाम स्मरण से पाप दूर होने का विचार पाण्डित्यों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अमन्य का होना विद्या धर्म बोग परमेश्वर की उपमन्य के बिना मिथ्या पुराणमामक मायकादि की कथादि से मुक्ति का मानना ब्रह्म से ब्रह्मादि में प्रवृत्त होकर विद्या में प्रीति न रखना इधर उधर धर्म धर्म पुराने पुराने इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में ब्रह्म के मद्यार्थ और विद्या के ज्ञान से रहित होकर रोमी और मूर्ख बने रहते हैं ॥

आत्मका के संवहानी और स्वार्थी मद्यार्थ आदि जो दूसरों को विद्या सख्त से हटा और अपने शास्त्र में ब्रह्म के उक्त का सब सब धन बच कर देते हैं और कहते हैं कि जो ब्रह्मादि ब्रह्म पढ़कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाण्डित्यका से बूढ़ और हमारे ब्रह्म को जानकर हमारा अपमान करेंगे। इत्यादि विद्वानों को, राजा और मन्त्रा दूर करके अपने ब्रह्मों और ब्रह्मियों को विद्वान् करने के लिये सब सब धन से प्रयत्न किया करें ॥

प्र०—क्या की और सुद्ध भी वेद पढ़ें ? या वे पढ़ें तो हम फिर क्या करेंगे ? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है ब्रह्म वह विषय है—

स्त्रीयुद्धी माधीपातामिति श्रुत ॥

स्त्री और सुद्ध न पढ़ें वह मूर्ति है ॥

उ०—सब की और सुद्ध अर्थात् अनुष्णमात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुछ में पढ़ो और वह मूर्ति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है। किसी प्रमाणिक प्रमाण की नहीं। और सब अनुष्णों के बेरादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण ब्रह्म के ब्रह्मियों के आख्या में दूसरा मन्त्र है—

यथेमां वाचं कल्प्यामीमावदानि जनेभ्यः ।

अद्वराजन्त्याम्पाथी शूद्राय चार्याय च स्वाय चारिषाय ॥

ब्रह्म अ २६।२॥

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्य) सब अनुष्णों के द्विप (इमां) इस (कल्प्यामीम्) कल्पना अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेदारी (वाचम्) आदेशादि आर्यों वेदों की वाची का (या चारिषी) उपदेश करता हूँ जैसे तुम भी किया करो ॥

यहाँ कोई चेष्टा न्ही करे कि जहाँ राज्य से शिर्षों का प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं है वहाँ तक राज्य की शक्ति नहीं फैलती।

३०—(अष्टाध्याय्याख्या) इत्यादि वेदों परमेस्वर स्वयं कहेता है कि हमने माण्डूक्य, पञ्चि (अथर्व) वैश्व (यजुष्य) यजुष्य और (साम्य) साम्ये मुख्य या सिद्धादि (अथर्व) और अतिशुद्धादि के विषये भी वेदों का प्रकट किया है। जहाँ-तब सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ और मुख मुखकर विद्या को ब्रह्म के जगदीश्वरों का प्रह्लाद और सारी जगती का उद्धार करने हुए लौं से बूट कर आकाश को प्राप्त हो। कहिये अब तुम्हारी बात मर्ने का परमेस्वर की ? परमेस्वर की बात समस्त माण्डूक्य है। इससे पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा। क्योंकि 'नास्तिको तन्मिच्छकः' वेदों का मिच्छक और न मानने वाला नास्तिक कहलाता है। क्या परमेस्वर खुदों का ब्रह्मा करता नहीं पढ़ता ? क्या ईश्वर पढ़पढ़ी है कि वेदों को पढ़ने सुनने का खुदों के विषये निषेध और हिंसा के विषये विधि करे ? जो परमेस्वर का अधिपत्य यजुष्य आदि के पढ़ने सुनने का न होता तो इनके शरीर में बाक और ओषध इन्द्रिय नहीं रहता ? जैसे परमात्मा ने पुमिषी बाक अपि यजुष्य यजुष्य स्वयं और अन्नादि पदार्थ सब के विषये ब्रह्मने हैं जैसे ही वेद भी सब के विषये प्रकटित किये हैं। और कही कही निषेध किया है इसका अधिपत्य यह है कि जिसको पढ़ने पढ़ने से कुछ भी न पड़े वह विदुषि और मूर्ख होने से यजुष्य कहाता है। उसका पढ़ना पढ़ना व्यर्थ है। और जो किसी के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता स्वार्थता और विदुषिता का प्रमाण है। वेदों वेद में कल्याणों के पढ़ने का प्रमाण—

हृद्यचर्य्येण कन्याः सुवान् विन्दते पतिम् ॥

अथर्व ॥ अ० ११।४ १४। अ ३। मं १८४

जैसे जड़के मध्यार्ध सेवक से पूर्व विद्या और सुविद्या को प्राप्त होके बुधवि विदुषी अपने अनुकूल मित छात्र दिव्यों के साथ विद्या करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (मध्यार्धक) मध्यार्ध सेवक से वैशाख सातवें को पत्र पूर्व विद्या और इक्षम विद्या को प्राप्त सुविधि होके पूर्व बुधवक्ष्य में अपने छात्र मित विद्वान् (बुधवक्ष्य) पूर्व बुधवक्ष्यनुक पुरुष को (विद्वान्) प्राप्त होने । इसदिने रित्रों को भी मध्यार्ध और विद्या का प्रदत्त अवश्य करना चाहिये ॥

प्र०—क्या सत्री आत्म भी बेहो को पढ़ें ?

४०—अथर्व वेदो धीशमृषादि मेः—

इमं मन्त्रं पृथी पठेत् ॥

जबोई राजो वज्र में इस मन्त्र का पढ़ । जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होव
तो वज्र में स्वरमहिम्न मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैस कर सक ?

मन्त्रार्चन की स्त्रियों में भूषणरूप गर्भी आदि वैद्यादि शास्त्री को पढ़ के पूर्व विदुषी हुई थी यह शतपथब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। मन्त्रा को पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो विष्मति देवामुर अग्रिम पर में मन्त्र रहे फिर कुछ कहाँ ? इसलिये जो स्त्री व पढ़ें तो कम्बार्चों की पाठशाळा में अध्यापिका स्वीकृत होसकें तथा राजर्चन न्यायधीश्यादि पुरातन का कर्म जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना घर के सब काम स्त्री के आधीन रहना इत्यादि काम बिना विद्या के अपने प्रकार कभी सीक नहीं हो सकते ॥

देखो ! आर्त्यार्चन के राजपुरुषों की स्त्रियां अनुर्वेद अर्थात् बुद्धविद्या भी अपने प्रकार जानती थी क्योंकि जो व जानती होतीं तो केकयी आदि दुराच आदि के साथ बुद्ध में स्वीकृत जा सकतीं ? और बुद्ध कर सकतीं। इसलिये मन्त्रा स्त्री और अविद्या को सब विद्या वैद्या को व्यवहारविद्या और गृह्या को पात्रादि सेवा की विद्या आकर पढ़नी चाहिये। जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म, और व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून आकर पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण धर्म वैदिक, यजुर्वेद, शिल्पविद्या तो आकर ही सीखनी चाहिये। क्योंकि इनके सीखे बिना सत्यसत्य का विचार पति आदि स अनुकूल वर्तमान ब्रह्माण्ड सत्यावस्थापति उनका पाखन बहू व और सुशिक्षा करवा घर के सब कर्मों को देखा चाहिये संसा करना। कर्मा विमर्शविद्या से औपचार्य अथ वाच ब्रह्मा और ब्रह्मका नहीं कर सकती जिससे घर में रमा कनी व घाने और सब लोग सदा आनन्दित रहें। शिल्पविद्या के जाने बिना घर का ब्रह्मना घर आनन्द आदि का ब्रह्मा ब्रह्मना यजुर्वेदविद्या के बिना सब का दिसाव समझना समझना वैद्यादि शास्त्रविद्या के बिना ईश्वर और धर्म को व धामके अपरम स कभी नहीं बच सकें। इसलिये व ही सम्परायार्च और कृतकर्म हैं कि जो अपने सम्प्रदायों को मन्त्रार्च उद्यम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्व सब को वगैरें जिससे व सन्तान मानु, पितृ, पति, सन्तु अमुर राजा मन्त्र पढ़ोस्ती इह निज और सन्तानादि से ब्रह्मवर्ण धर्म से करें। वही कोश अथ है, इसको शिक्षा व्यव करे उद्यम ही बहुत जाय धर्म सब कोश व्यव करने स पर जोते ई और दानयोगी भी निज भाग सेते हैं और विद्यकोश का जोर का दानयोगी कोई भी नहीं हो सकता। इस कोश की रक्षा और वृद्धि करने अथ विद्येय राजा और मन्त्र भी हैं ॥

कम्पानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षयम् ॥ मन्त्र ० । १२२ ॥

राजा को बोध है कि सब कर्म और सबको को उक्त समय तक मन्त्रार्च में रखके विद्वान् करना। जो कोई इस धामा को व जाने तो उसके माता पिता को दण्ड देवा अर्थात् राजा को आज्ञा स आज्ञा वर्ष के ब्रह्म कर्मा का प्रवृत्ती भिन्नी के घर में व रहने चाहें किन्तु आचार्यकुल में रहें। जब तक समावर्तन का समय न आये तब तक विद्या व जाने चाहे ॥

सर्वेषामेव वानाम्नां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।

चार्यद्वगोमहोषात्सस्तिष्ठाकाश्चनसर्पिणाम् ॥ मनु ४ । २३३ ॥

संसार में जितने दान हैं जहाँतु सब दान भी, पृथिवी वस्तु तिस सुख्य और कृत्रिह इन सब दानों से वैश्विष्य का दान अतिमोष्ठ है । इसलिये जितना सब सके उतना प्रयत्न तब मन धन से विषय की बुद्धि में किया करें । जित देव में ब्रह्मयोग्य ब्रह्मचर्य जित और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देव सौमनस्यकम् होता है ॥

यह ब्रह्मचर्योपम की शिक्षा संकेप से लिखी गई है इसके नामे बीने समुदास में समावर्तक और गृहस्थम की शिक्षा बिली जल्दी ॥

इति श्रीमद्भ्यान्मन्त्रसरस्वतीस्वामिहस्त सत्याश्रमकाण्ड सुभाषाविभूषित
शिक्षाविषये तृतीयं समुदासं सम्पूर्णं ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थसमुल्लासारम्भः

अथ समावर्त्तनविधादगृहाभमविधिं वक्ष्यामः

वदामधीत्य वेदो वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।

अविप्लुतग्रन्थार्थो गृहस्याभममाधिगच्छ ॥ मनु १ । २ ॥

अब वक्ष्यात् ग्रन्थार्थ में आचार्यगुरुद्वय वर्त्तकर भर्म से चारों वेद तीन वा दो अथवा एक वेद को आहोवाह पद के विद्यमान ग्रन्थस्य अविप्लुत व गुण हो कर पुरुष वा की गृहाभम में प्रवेश करे ॥

तं प्रतीतं स्वधर्मैश्च ग्रन्थादायहरं पितु ।

अभ्यिर्त्तं तस्य आसीनमह्येतिप्रथमं गवा ॥ मनु १ । ३ ॥

जो स्वधर्म अर्थात् वक्ष्यात् आचार्य और शिष्य का धर्म है उक्तसं पुत्र स्थित जनक का आचार्यक से ग्रन्थादाय अर्थात् शिष्यस्य भ्राता का ग्रन्थ माता का धर्म करकेमाता अपने पक्ष पर बैठे हुए आचार्य को प्रथम गोदान से सत्कार करे । ऐसे उक्तसं पुत्र शिष्याधी को भी कन्या का पिता गोदान से सत्कार करे ॥

गुरुभ्यानुमतं ज्ञात्वा समावृत्तो यथाविधि ।

उद्धेत द्विजो मार्यां सवर्णां लक्ष्म्यान्विताम् ॥ मनु १ । ४ ॥

गुरु की आज्ञा से ज्ञात कर गुरुद्वय से अनुकम्पार्थक आने माद्वय वरिष्ठ देव अपने वर्यागुरुद्वय सुन्दर लक्ष्म्यगुण कन्या से विवाह करे ॥

अस्यपितुश्च यः वा मातुरसगोत्रा यः वा पितु ।

स्य प्रमुस्ता द्विज्यतीर्तां शूरकमणिं मैत्रुने ॥ मनु १ । ५ ॥

जो कन्या माता के पुत्र की का पीढ़ियों में व हो और पिता के गोत्र की व हो उक्त कन्या से विवाह करना अधिक है ॥ इसका यह अर्थोक्त है कि—

परोक्षमिया इयं हि यथाः प्रत्यक्षपि ॥ गोप ५ । १ । ११ ॥

यह अधिकृत बात है कि श्रेष्ठी परोक्ष वर्या में प्रीति होती है बेसी प्रसन्न में वही । श्रेष्ठे किसी ने मिथी क गुण सुने हों और काहू व हो तो उक्त वर वही में प्रसन्न रहता है श्रेष्ठे किसी परोक्ष वस्तु की प्रशंसा सुनकर मिलने की उम्मीद इच्छा होती है ऐसे ही वरस्य अर्थात् जो अपने गोत्र का माता के पुत्र में विद्यमान प्रसन्न की व हो उही कन्या से वर का विवाह होकर चाहिये । निम्न और दूर विवाह करने में गुण ० के हैं—

(१) एक जो कदाक आचार्यवत्ता से निकट रहते हैं परस्पर प्रीति काहाहू और प्रेम करते एक दूसरे के गुण दोष स्वभाव आचार्यवत्ता के विपरीत आचार्य जानते और जो नष्ट की एक दूसरे को देखते हैं उनका परस्पर विवाह होने का प्रेम कमी नहीं हो सकना ॥

० गुण से व्यर्थ गुण और अगुण दोनों का है ॥

(२) दूसरा—जैसे पानी में पानी मिचाने से विघटन गुप्त नहीं होकर जैसे एक गोत्र पितृ का पितृकुल में विवाह होने में जातुओं में अरुण अरुण नहीं होते से उच्यते नहीं होती ॥

(३) तीसरा—जैसे वृष में मिश्री का दुग्धवर्षि ओषधियों के योग होने से उत्तमता होती है जैसे ही मित्र योग मात्र पितृकुल से वृष्ण वर्तमान की पुत्रों का विवाह होना उत्तम है ॥

(४) चौथा—जैसे एक देश में रोगी हो वह दूसरे देश में जातु और अन्य पान बढ़ाने से रोगनिवृत्त होता है जैसे ही वृद्धदेशों के विवाह होने में उत्तमता है ॥

(५) पांचवाँ—विषय सम्बन्ध करने में एक दूसरे के विषय होने में शुचि शुचि का अन्न और विरोध होना भी संभव है, वृद्धदेशों में नहीं और वृद्धों के विवाह में वृद्ध २ प्रेम की कोरी कान्ती बढ़ जाती है विषय सम्बन्ध में नहीं ॥

(६) छठे—वृद्ध २ देश के वर्तमान और पदाओं की वृद्धि भी वृद्ध सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है विषय विवाह होने में नहीं ॥ इत्यधिकेः—

दुहिता दुहिता वृद्धे हिता भवतीति ॥ मित्र ३ । १ । ४ ॥

कन्या का नाम दुहिता इस कारण से है कि इसका विवाह वृद्ध देश में होने से हितकारी होता है मित्र ग्रन्थ में नहीं ॥

(७) सातवाँ—कन्या के पितृकुल में वारिधय होने का भी सम्भव है क्योंकि जब २ कन्या पितृकुल में जायेगी तब २ इसको कुल व कुल देना ही होगा ॥

(८) आठवाँ—कोई विषय होने से एक दूसरे को अपने २ पितृकुल के सहाय का समर्थ और जब कुल की दोनों में वैमनस्य होगा तब स्त्री पति ही पिता के कुल में नहीं जानगी । एक दूसरे की विवाह अधिक होगी और विरोध भी क्योंकि प्रायः स्त्रियों का सम्बन्ध तीव्र और दुरु होता है इत्यादि कारणों से पिता के एक योग, माता की वृद्धि और समीप देश में विवाह करना अच्छा नहीं ॥

महान्मपि समुदायि भोऽत्राविषयधाम्यत ॥

स्त्रीसम्बन्धे वृद्धेतामि कुलानि परियस्येत् ॥ मनु ३ । ६ ॥

यहाँ कितने ही वयः धाम्य धाम्य कन्या स्त्री को रक्षण की धारि से सहज से कुल हो तो भी विवाहसम्बन्ध में निषिद्धि किंतु इस कुलों का अर्थ कर दो—

हीनकिर्यं निष्पुत्र्यं निरङ्गुदो रोमशार्थसम् ॥

अप्यमप्याप्यपभारिभित्तुकुलिकुलानि च ॥ मनु ३ । ७ ॥

जो कुल अकिर्य से हीन अल्पवर्षी से रहित देशधाम्य से विमुक्त शरीर पर वने २ जोम अथवा बन्धन की दशा काँची धाम्यधाम्य मिरपी रक्षेत्कुल और पक्षितकुलपुत्र कुलों की कन्या का घर के साथ विवाह होना व चाहिये क्योंकि वे सब दुर्गुण और रोग विवाह करनेवाले के कुल में भी प्रविष्ट होकर हैं इत्यधिके उत्तम कुल के लक्षणे और लक्षकों का आपस में विवाह होना चाहिये ॥

मोक्षहेतुकपितृणां कन्यां नाऽधिकारिणीं न रोगिणीम् ।

नालोमिकां नातिजोमां न पाचटाक्षं पिङ्गलाम् ॥ मनु ३।८॥

न पीले बर्बदाक्षी न अधिकक्षी चर्बत् पुरुष से क्षत्री बीड़ी अधिक बर्बदाक्षी न रोगपुच्छ, न लोमरहित न बहुत लोमवाक्षी न बर्बदाक्ष करन-हारी और मूरे नेत्रवाक्षी ॥

वर्षाभूस्तनूनाक्षीं नाम्नापवतनामिकाम् ।

न पश्यद्द्विमेप्यनाक्षीं न च भीषकुनामिकाम् ॥ मनु ३।९॥

न चर्ब चर्बत् अधिकक्षी मरुक्षी रोहिणीरेह, ऐश्वरीयाई चित्ती आदि नक्षत्र नामवाक्षी तुलसिवा गेंदा गुलाबी नाम्ना चमेक्षी आदि वृष नाम वाक्षी गङ्गा समुद्रा आदि नदी नामवाक्षी चन्द्राक्षी आदि चन्द्र नामवाक्षी बिम्बा दिवा रत्ना, पद्मिणी आदि पद्म व नामवाक्षी कोम्बिता मैना आदि पक्षी नामवाक्षी आगी सुवर्ण आदि सर्व नामवाक्षी माधोदाक्षी मीरादाक्षी आदि प्रेक्ष नामवाक्षी श्रीमूर्तिवरी अधिकक्षी आदि भीषक नामवाक्षी कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये क्योंकि ये नाम कुचित और अन्य पदार्थों के भी हैं ॥

अभ्यङ्गाक्षीं सौम्यनाक्षीं हंसवारयुगामिनीम् ।

तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुदहेरिस्त्रयम् ॥ मनु ३।१०॥

जिनके सगुण सुखे चङ्ग हो विवाह न हों जिसका नाम सुन्दर चर्बत् पयोदा सुकरा आदि हो इस और हथिनी के तुल्य जिसकी चङ्ग हो सुष्म लोम केश और दांतपुच्छ और जिसके सगुण चङ्ग कोमल हों पैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये ॥

प्र०—विवाह का समय और प्रकार कीजना चाहता है ?

उ०—सोचइतने वर्ष स छेके बीबीछेवें वर्ष तक कन्या और पचीसवें वर्ष स छेके चवदासीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह सम्यक् उचित है । इसमें जो सोचइ और पचीस में विवाह करे ता निकुड़ अछाह बीस की बी तीस पैंतीस या चासीस वर्ष के पुरुष का मध्यम बीबीस वर्ष की बी और चवदासीस वर्ष के पुरुष का विवाह होता उचित है । जिस देश में इसी प्रकार की विधि भूत और मनुष्य विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस में मनुष्य विद्याभ्यास रहित अन्धकारवादी और अज्ञानों का विवाह होता है वह देश दुःख में दूख जाता है । क्योंकि मनुष्य विद्या के मनुष्यपूर्वक विवाह के सुधार ही स सब व्यर्थों का सुधार और विवाहने स विवाह हो जाता है ॥

प्र —अष्टवर्षा भवेदु गौरी नयवर्षा च रोहिणी ।

वरापरा भवत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्यका ॥ १ ॥

माता पितृ पिता तस्या उपेक्षो भ्राता तथैव च ।

अथस्त नरकं याति बहूया कन्या रजस्यसाम् ॥ २ ॥

ये स्पेक्ष पाताछी और सीमरोच में लिख हैं । अर्थ यह है कि कन्या की पाछे वर्ष विवाह में गौरी नयन वर्ष रोहिणी वरावें वर्ष कन्या और उपके पारा रजस्यका सगुण होता है ॥ १ ॥ जो वरावें वर्ष तक विवाह न करे रजस्यका कन्या को दुःख क माता पिता और बन्धु भाई ये तीनों नरक में गिरते हैं ॥ २ ॥

उ०—ब्रह्मोवाच

एकच्छा ममेव गौरी विद्योपपन्तु रोहिणी ।

त्रिहृणा सा ममेकस्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥

माता पिता तथा भ्राता मातुलो ममिमी स्वका ।

सर्वे ते मरकं धाम्नि हृष्ट्या कर्म्या रजस्वलाम् ॥ २ ॥

बह सद्योनिर्मित मरुपुराण का वचन है।

अर्थ—द्वितीये समय में परमात्मा एक पक्षमा जादे उठने समय को जब कहते हैं जब कन्वा जन्मे तब एक पक्ष में गौरी दूसरे में रोहिणी तीसरे में कन्वा और चौथे में रजस्वला हो जाती है ॥ १ ॥ उस रजस्वला को देख के उसके माता पिता भाई मामा और बहिन सब मरक को करते हैं ॥ २ ॥

प्र०—वे छोके प्रमाण नहीं ॥

उ०—क्यों प्रमाण नहीं ? जो ब्रह्मजी के छोके प्रमाण नहीं तो तुम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते ॥

प्र०—बाह १ परास्तर और काशीवास का भी प्रमाण नहीं करते ?

उ०—बाह की बाह । क्या तुम ब्रह्मजी का प्रमाण नहीं करते ? कास्तर काशीवास से ब्रह्मजी कबे नहीं हैं ? जो तुम ब्रह्मजी के छोके को नहीं मानते तो हम भी परास्तर काशीवास के छोके को नहीं मानते ॥

प्र०—तुम्हारे छोके असंभव होने से प्रमाण नहीं क्योंकि सदास चन्द्र समय ही में जीत करते हैं तो निराह कैसे हो सकता है और इस समय विवाह करने का कुछ कष्ट भी नहीं होता ॥

उ०—जो हमारे छोके असंभव हैं तो तुम्हारे भी असंभव हैं क्योंकि काम भी और इतने वर्षों में भी विवाह करना निराह है क्योंकि सोचइतने वर्षों के पश्चात् चौबीसवें वर्ष पूर्णत विवाह होने से पुत्र का शीर्ष परिपक्व शरीर बहिन, पति का गर्भोत्पन्न पुत्र और शरीर भी बलवृद्ध होने से संभाव उत्पन्न होते हैं ॥

७ उचित समय से न्यून आयुवाले भी पुत्र को गर्भाशय में सुनिश्चर कल्पवृक्षी सुष्ठु में विवेक करते हैं—

कमलोद्भावनार्थमप्युक्ता पञ्चविंशतिम् ।

यद्यप्येते पुत्राश्च गर्भाः कुचिका य विपद्यते ॥ १ ॥

बाधो वा न विर जीवेजीवेशा दुर्बलेन्द्रियाः ।

तस्मात्समस्तप्राज्ञाणां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ २ ॥

सुष्ठुत पामीक्याने च १ । छोके १० । ३५ ॥

अर्थ—सोचइ वर्षों से न्यून वयवाली भी में चौबीस वर्षों से न्यून आयुवाला पुत्र को गर्भ का क्यपन करे तो वह कुचिका हुआ गर्भ विपक्षि को प्राप्त होता पश्चात् दुर्ब काष्ठ तक गर्भोत्पन्न में रहकर उत्पन्न नहीं होता ॥ १ ॥

अप्यस्य वरतव्यं हो तो फिर विचारइ तक न जीवे या जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो इस कारण से यदि कल्पवृक्ष काशी की में गर्भोत्पन्न न करे ॥ २ ॥

जैसे आर्यों बर्ष की कन्या में सन्तानोत्पत्ति का होता अर्थात् है वैसे ही गौरी रोहिणी नाम देवा भी समुक्त है । यदि गौरी कन्या न हो किन्तु कदाही हो तो उसका नाम गौरी रखना कर्ण्य है । और गौरी महादेव की ही रोहिणी समुदेव की ही थी उसको तुम पौराणिक लोग मान्यमान्य मानते हो । जब कन्यामात्र में गौरी आदि की भावना करते हो तो फिर उनसे विवाह करना कैसे सम्भव और बर्णपुत्र हो सकता है ? इसलिये तुम्हारे और हमारे दो २ श्लोक मिथ्या ही हैं क्योंकि जैसा हमने "प्रद्योताय" कबके श्लोक कहा किया है वैसा वे भी पाण्डुर आदि के नाम से कहा किया है । इसलिये इन सब का प्रमाण शोध के कर्तों के प्रमाण से सब काम किया करो ॥ वेशो मनु में—

जीवि धर्पास्युदीक्षेत कुमार्यनुमती सती ।

ऊर्ध्वं तु कासादेतस्माद्विन्दत सद्यः पतिम् ॥ मनु ३।३ ॥

कन्या राजसूया रूप पीछे तीन बर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने पुत्र वंश को प्राप्त होने । जब प्रतिममा राजोरत्न होता है तो तीन बर्षों में ३९ घर राजसूया रूप पश्चात् विवाह करना योग्य है इससे पूर्व नहीं ॥

काममामरण्यात्तिष्ठेद्गुह्ये कन्यार्तुमास्यपि ।

न क्षयेतां प्रयच्छन्तु गुणहीनाप कर्हिचित् ॥ मनु० ३।४३ ॥

आहे कन्या कन्या की मातृपर्यन्त हमारे रहें परन्तु असत्य प्रमाण परस्पर निरुद्ध गुण कर्म स्वभाववालों का विवाह कभी न होना चाहिये । इससे सिद्ध हुआ कि पूर्वोक्त समय से प्रथम का असत्यों का विवाह होना योग्य नहीं है ॥

प्र०—विवाह करना माता पिता के आधीन होना चाहिये या कन्या कन्या के आधीन रहे ?

उ०—कन्या कन्या के आधीन विवाह होना उचित है । जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी कन्या कन्या की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिये क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्पन्न होते हैं । प्रसन्नता के विवाह में किन्तु क्लेश ही रहता है । विवाह में मुख्य प्रयोजन का और कन्या का है माता पिता का नहीं क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को मुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता ॥ और—

सम्नुयो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च ।

पक्षिन्नेय कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ मनु ३।५ ॥

जिस कुल में भी से पुरुष और पुरुष से भी सदा प्रसन्न रहती है उन्हीं कुल में धामन्य सखी और अर्द्ध विवाह करती है और उन्हीं विरोध कन्या

एत १ श्लोक नियम और सुविध्य का देखने और बुद्धि से विचारने से बड़ी सिद्ध होता है कि १६ बर्ष से न्यून की और २२ बर्ष से न्यून आयुवाला पुरुष कभी सम्बंध करने के योग्य नहीं होता इन नियमों से विरोध को करते हैं वे दुःखवादी होते हैं ॥

होता है वही पुनः दृष्टिगत जीव विद्या विचारस कर्ता है । इसलिये जैसी लक्ष्य-
की रीति आत्मार्थ में परम्परा से चली आती है वही विद्या उत्तम है । जब
की पुनः विद्या करना चर्चें तब विद्या विचार की एक रूप आत्मा पर पुनः
करीर पर परिमाणवि ब्रह्मप्रेम होना चाहिये । अन्ततः इनका मेख वही होना
तत्काल विद्या में पुनः जी पुनः वही होता और न ब्रह्मप्राप्त्य में विद्या करने
से पुनः होता है ।

युवा मुधासाः परिधीत आगात्स उ भेयान्मवति जायमानः ।

तर्धा रासः कृत्य उभयन्ति स्वाय्योर् मर्नसा देवयन्तः ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

आ धेनवो धुनयन्तामर्शिन्धीः शशदुषां शशया अप्रदुग्धाः ।

नभ्यान्भ्या युषतयो भवन्तीर्महद्धानामसुरत्वमकम् ॥ २ ॥

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

पूर्वीरुद्रं शरदः शशमासा दोषा वस्तारूपसा मरयन्तीः ।

मिनाति भ्रियं जरिमा तननामप्य नृ पत्नीवृषभो जगत्पुः ॥ ३ ॥

ज. सं. ११५ १७३। सं. ११५

को पुण्य (परिबीता) तब धोर से बड़ोपनीय अष्टाध्वर्य सेवन से उच्चम
 पिपा और निष्क से पुण्य (सुवासा) सुन्दर वष बारस किना पुण्य अष्टाध्वर्य
 पुण्य (पुण्य) धर्म बचान होके विद्या अष्टाध्वर्य कर पुण्यमम में (आत्ममन्) धाता है
 (स ड) बड़ी दूसरे विद्याअष्टम में (आत्ममन्) अष्टिह होकर (सेवन्)
 अष्टिध्वर्य गोमन्पुण्य अष्टाध्वर्य (अष्टिध्वर्य) होता है । (स्वाध्या) धन्ये अष्टम
 प्यानपुण्य (मनसा) विज्ञान से (देवपन्थ) विद्याबुद्धि की कामयापुण्य
 (धीमन्) धैर्यपुण्य (कर्मा) विद्वान् जोय (तम्) उषी पुण्य को (उच्यते)
 उच्यतेपि कहके प्रतिष्ठित करते हैं और को अष्टाध्वर्यवारस विद्या उच्यम पिपा
 कर अष्टाध्वर्य किने विद्या अष्टम अष्टाध्वर्यमम में विद्याह करते हैं वे को पुण्य बहजह
 होकर विद्याकी में प्रतिष्ठित-को प्राप्त नहीं होते ॥ १ ॥

को (अङ्गुष्ठा) किसी से बुझी नहीं उन (धेनवा) गौधों के धामन (अक्षिणी) धार्यावस्था से रहित (अङ्गुष्ठा) छत्र प्रच्छर से उत्तम ध्वजद्वारी को पूर्ण करने हारी (लक्षणा) कुमादावस्था को उत्कर्षधन करने हारी (अङ्गुष्ठा) नवीन १ तिथा अति अवस्था से पूर्ण (अक्षिणी) वर्तमान (पुस्तका) पूर्ण पुस्तकावस्था विरही (वेवाताम्) प्रत्यक्ष मुनिवर्मा से पूर्ण विद्वान् । (एकम्) अक्षिणी (महत्) बने (अङ्गुष्ठा) प्रत्यक्ष तिथायुक्त प्रसा में रम्य के भावार्थ को प्राप्त होती हुई लक्ष्य पणियों को प्राप्त होके (अङ्गुष्ठा) गर्भ पारण करें । कभी भूष के भी वास्यावस्था में पुस्तक का मन से भी ध्यान न करें क्योंकि वही कर्म हम लोक और परलोक के सुख का साधन है । वास्यावस्था में विवाह से विरहा पुस्तक का नाश उससे अधिक भी का नाश होता है ॥ १ ॥

बीसे (सु) शीघ्र (शशमान्ताः) आगम्य भय करबेहारे (वृषभः) बीस
 बीसने में अमर्य पूर्ण सुखवस्तुपुत्र पुत्र (पत्नीः) सुखवस्तुपुत्र वरपत्नी को मिय
 पित्रों को (अगम्यः) प्राप्त होकर पूर्ण अतवर्ष का असले अधिक आयु को
 आगम्य से योग्ये बीर पुत्र पौत्रादि स संयुक्त रहते हैं बीसे स्त्री पुत्र सदा बनें ।
 बीसे (पत्नी) पूर्ण वर्धमान (शरभः) शरभ अनुषों और (अरवन्तीः) वृद्धवस्तु
 को प्राप्त कराने बाधो (उपसः) मातन्मन्त्र को बेधधौ को (दोष) रात्रि
 और (वस्त्राः) दिन (तनूनाम्) शरीरों की (धियम्) शोभा को (अरिमा)
 अतिशय वृद्धपन बन्ध और शोभा को दूर कर देता है बीसे (अहम्) मैं बी का
 पुत्र (उ) अक्ष प्रभार (अपि) मिश्रण करके अक्षधर्म से विद्या शिक्षा शरीर
 और अस्थि के बन्ध और सुखवस्तु को प्राप्त हो ही के विवाह कर इससे विद्वद्
 करमा वेदविद्वद् होने से सुखदायक विवाह भरी होता ॥ ३ ॥

जबतक इसी प्रकार सब व्यक्ति सुधि राज्य महाराज आर्य लोग नष्टार्थ से विद्य पढ़ ही न स्वयंवर विवाह करते थे तबतक इस देश की सदा उन्नति होती थी। जब से यह प्रथा समाप्त हो गई तब विद्य का न पढ़ना अस्वाभाविक में पराधीन आर्यात्वात्मा के आधीन विवाह होने लगा तब से कम्यता आधीन देश की हानि होती चली आई है। इससे इस दुष्ट काम को जोड़ के सबब जोय पूर्णतः प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें सो विवाह बर्जानुक्रम से करें और बर्जानुक्रम ही एक काम स्वयंवर के अनुसर होनी चाहिये ।

प्र०—क्या जिसकी माता माझणी पिता माझाय हो वह माझाय होता है और जिसकी माता पिता माझा बर्बाद हो उनका संसार कभी माझाय हो सकता है ?

३०—हां बहुत से होमये हाते हैं और होमो भी श्रेष्ठ ज्ञान्मोक्ष उपधिपर मैं व्यास जी प्रह्लादकुल महामारुत में विनामित बलिब बर्ष और मातङ्ग जी प्रह्लाद कुल से प्रसन्न होपये के सब भी जो उत्तम विद्या स्वभाववाला है वही प्रसन्न के योग्य और मुक्त राह के योग्य होता है और बिना ही ज्ञान्यो भी होग्य ।

प्र०—मर्या को रक्त वीर्य से शरीर हुआ है वह वास्तव में दूसरे रक्त के पोष्य कैसे हो सकता है ?

उ०—एक धीरे के बोझ से प्रभावित शरीर नहीं होता किन्तु:—

साध्यायम अपेक्षमिष्टैर्दिद्यनेज्यया सुते ।

महापद्मेभ्यः पद्मेभ्यः प्राप्नुयिष्ये क्रियते तनुः ॥ मयु १ । १८ ॥

इसका धर्म पूर्व कहे जाने हैं यह यहाँ भी संक्षेप से करते हैं । (स्वप्नावेव)
 पहले पक्षने (क्षीरः) विचार करने कहाने * भाषाविषय होम के अनुष्ठान ; धर्मार्थ
 देहों को शब्द, धर्म समस्त स्वरूपधारकहित पहले पक्षने, (इत्येषा)
 पीर्यमासी इति आदि के करने पूर्वाङ्क विधिपूर्वक (सुप्रः) धर्म से सम्यक्साधन
 (महामयी) पूर्वाङ्क मध्यम्य देव्यन्त विनृवन्त विपदेव्यन्त और प्रतिधिबन्त,

(ब्रह्म) ब्रह्मिहोमादि यज्ञ विद्वान्नी का धर्म, सम्भार सम्भारयज्ञ परोपकारानि सम्भर्त्त और सम्पूर्ण विद्वानिहोमादि यज्ञ के पुत्राचार जोह मेघाचार में बर्त्तते थे (इत्यम्) यह (उभय) शरीर (माझी) माझाय का (किन्ते) किन्ता जाता है । क्या इस छोड़ को तुम नहीं मानते ? मानते हैं फिर क्यों एक दीर्घ के बोध से कर्त्तव्यवक्य मानते हो ? मैं अनेका नहीं मानता किन्तु बहुत से बोध परम्परा से ऐसा ही मानते हैं ॥

प्र०—क्या तुम परम्परा का भी अचरम करोगे ?

उ०—वही परम्परा तुम्हारी उकटी समझ को नहीं मान के अचरम भी करते हैं ।

प्र०—हमारी उकटी और तुम्हारी सुधी समझ है इसमें क्या प्रमाण ?

उ०—वही प्रमाण है कि जो तुम पांच सात पीढ़ियों के वर्त्तमान को अभाव्य व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से अन्तपर्यन्त की परम्परा मानते हैं । देखो किसका पिता जोह वह पुत्र हुए और किसका पुत्र जोह वह पिता हुए तथा कहीं दोनो जोह का पुत्र देखने में आते हैं इसलिये तुम जोस भ्रम में पड़े हो । देखो मनु महर्षिज ने क्या कहा है—

येनमस्य पितरो यन्ता यनं याता पितामहा ।

तेन यायास्ततां मारी तस्य गण्डमथ रिप्यत ॥ मनु ४ । १०४ ॥

जिस मार्ग से इसके पिता पितामह गये हैं उन्ही मार्ग में अन्ताव भी चले परन्तु (यन्ता) जो सत्युक्त पिता पितामह हैं उन्हीं के मार्ग में क्यों और जो पिता पितामह हुए ही तो उनके मार्ग में कभी न चले । क्योंकि उक्त वर्त्तमान पुत्रों के मार्ग में चलने से पुत्र कभी नहीं होता । इसको तुम मानते हो या नहीं ? हाँ ९ मानते हैं । और देखो जो परमेश्वर की प्रकाशित वेदोक्त कथ है क्यो सत्यतय और वसने निरुद्ध है वह सत्यतय कभी नहीं हो सकती । ऐसा ही सब जेम्हों को मानना चाहिये या नहीं ? अवश्य चाहिये । जो ऐसा न माने उससे कहो कि किसी का पिता हरिश्च हो और वसन्त पुत्र बनारस होवे तो क्या अपने पिता की हरिश्चत्वा के अस्मिमान से जन को कैस देवे ? क्या जिसका पिता अन्ता हो उसका पुत्र भी अपनी भावों को छोड़ लेवे ? जिसका पिता कुम्भी हो क्या उसका पुत्र भी कुम्भी ही करे ? नहीं ९ किन्तु जो ९ पुत्रों के उत्तम कर्म हैं उनका स्वयं और हुए कर्मों का स्वयं कर देना सब को अन्तारवक है । जो कोई एक दीर्घ के बोध से कर्त्ताव्य व्यवहार माने और पुत्र कर्मों के बोध से न माने तो उसका पुत्रवा चाहिये कि जो कोई अपने कर्म को छोड़ नीच अन्तव्य व्यवहार कुम्भीय सुसहस्य होमका ही उसको भी आश्चर्य क्यों नहीं मानते ? वही नहीं कहो कि उससे आश्चर्य न कर्म जोह दिये इसलिये वह आश्चर्य नहीं है । इससे वह भी सिद्ध होता है कि जो आश्चर्यादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही आश्चर्यादि और जो नीच की उत्तम कर्म के पुत्र कर्म स्वभावकथा होवे तो उसको या उत्तम कर्म में और जो उत्तम कर्त्तव्य होके नीच भ्रम कर तो उसको नीच कर्म में विवका अवश्य चाहिये ॥

प्र०—आत्मन्तोऽस्य सुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पुत्रपाणिशूत्रोऽभ्रजायत ॥

यह बहुरूप के ३१ वें अध्याय का ११ वां मन्त्र है ।

इसका यह अर्थ है कि आत्मन्त इन्धर के मुख चक्षि बाहू वैश्य ऊरु और पुत्र पाणि से उत्पन्न हुआ है इसलिये जैसे मुख व बाहू चादि और बाहू चादि न मुख होते हैं इसी प्रकार आत्मन्त व चक्षिपादि और पत्रिवादि न आत्मन्त हो सकते हैं ॥

उ०—इस मन्त्र का अर्थ जो तुमसे किया वह ठीक नहीं क्योंकि यहाँ पुत्र्य अर्थात् बिराद्वर व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है । जब वह बिराद्वर है तो उसके मुखदि अङ्ग नहीं हो सकते जो मुखदि अङ्गवाका हो वह पुत्र्य अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं वह सर्वव्यक्तिमान् अर्थात् का सहा सहा प्रत्येककी जीवों के पुत्र्य पाणि की जायक व्यवस्था करनेवाला सर्वज्ञ परमात्मा सृष्टिरहित चादि विशेषवाका नहीं हो सकता । इसलिये इसका यह अर्थ है कि जो (वक्ता) पूर्व व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख व अङ्ग सब में मुख्य उद्यम हो वह (आत्मन्त) आत्मन्त (बाहू) 'बाहूर्वै पञ्च बाहूर्वै वीर्यम्' यत्पञ्चमाङ्ग २ । ३ । १ । १ ॥ वह वीर्य का नाम बाहू है वह जिसमें अधिक हो तो (राजन्यः) चक्षि (ऊरु) अङ्ग व अशोभन और जानु व उदरित्य आद्य का ऊरु नाम है जो सब पराधी और सब द्रव्यों में ऊरु व वह व आने आने प्रवेश करे वह (वैश्य) वैश्य और (परम्परा) जो वक्ता व अर्थात् वीर्य अङ्ग के अङ्ग मुखदि गुण वाका हो वह शुद्ध है । अन्यत्र यत्पञ्चमाङ्गवादि में भी इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ किया है ॥ जैसे—

यस्मादित् मुख्यास्तस्मान्मुखता द्यारुण्यन्त इत्यादि ॥

जिससे वे मुख्य हैं इससे मुख से उत्पन्न हुए ऐसा कल्प सगठ होता है अर्थात् ईसा मुख सब अङ्गों में वह है ऐसे पूर्व किया और उद्यम गुण कर्म स्वभाव व पुत्र होने व अनुवृत्तियति में उद्यम आत्मन्त कहता है । जब परमेश्वर के बिराद्वर होते व मुखदि अङ्ग ही नहीं हैं तो मुख चादि से उत्पन्न होना असम्भव है । ईसा कि बन्ध्या की के पुत्र का बिनाह हाथ ! और जो मुखदि अङ्गों व आत्मन्तदि उत्पन्न होते तो उपादान कारण व अङ्ग आत्मन्तदि की आकृति बध्मन होती । ईसा मुख का आकार मोहमात्र है उसे ही कने नरीर का भी पात्रमात्र मुखकृति के समान होना चाहिये । जिनकी के शरीर भुज के अङ्ग वैश्वों के ऊरु व पुत्र और शरीर के शरीर पम के अङ्ग आकारवासे इन्धे अर्थात् देता नहीं होता और जो कोई तुमसे प्राप्त करण कि जो १ मुखदि व उत्पन्न हुए वे उद्यम आत्मन्तदि अङ्ग हो परन्तु तुम्हारी नहीं क्योंकि जैसे और सब अङ्ग अर्थात् व उत्पन्न होते हैं वही मुख भी होता हो । तुम मुखदि से उत्पन्न व होकर आत्मन्तदि अङ्ग का अनिमित्त करत हो इसलिये तुम्हारा क्या अर्थ अर्थ है और जो हमसे अर्थ किया है वह अर्थ है ॥

पेसा ही सम्पन्न भी कहा है शीघ्राः—

यज्ञो ब्राह्मण्यतामेति ब्राह्मण्यमैति श्रुताम् ।

अग्निपात्रास्तमेवन्तु विद्याद्वैत्यान्तर्यैव य ॥ मनु १ । १२ ॥

जो यज्ञकुल में उत्पन्न होते ब्राह्मण वहिन और वैश्य के समान पुत्र कर्म स्वयम् बना हो तो वह यज्ञ ब्राह्मण वहिन और वैश्य होना जैसे ही जो ब्राह्मण वहिन और वैश्यकुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके पुत्र कर्म स्वयम् यज्ञ के सहा हो तो वह यज्ञ होना जैसे वहिन या वैश्य के कुल में उत्पन्न होते ब्राह्मण या यज्ञ के समान होने से ब्राह्मण और यज्ञ भी हो जाय है । अर्थात् चारों वर्गों में किछ १ वर्ग के सहा जो १ पुत्र या भी हो वह १ उत्तीर्ण में गिनी जाये ॥

अर्धमाचर्यया अर्धम्यो वर्गः पूर्वं पूर्वं वर्धमापद्यत आतिपरिवृत्तो ॥ १ ॥

अर्धमाचर्यया पूर्वो वर्गो अर्धम्य अर्धम्य वर्धमापद्यत आतिपरिवृत्तो ॥ २ ॥

वे आपस्तम्ब के सूत्र हैं ॥

अर्थ—अर्धमाचर्य से किछ वर्ग अपने से उत्तम १ वर्गों को प्राप्त होता है और वह उत्ती वर्ग में गिना जाये कि किछ १ के योग होने ॥ १ ॥

जैसे अर्धमाचर्य से पूर्व वर्गों उत्तम वर्गका मनुज अपने से नीचे १ वर्ग वर्गों को प्राप्त होता है और उत्ती वर्ग में गिना जाये ॥ २ ॥

जैसे पुत्र किछ १ वर्ग के योग होता है ऐसे ही किन्हीं की भी व्यवस्था समझनी चाहिये । इससे क्या किछ हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ग अपने १ पुत्र कर्म स्वयम्बुद्ध होकर शुद्धता के प्राप्त रहते हैं अर्थात् ब्राह्मणकुल में कोई वहिन वैश्य और यज्ञ के सहा न रहे और वहिन, वैश्य तथा यज्ञ वर्ग भी शुद्ध रहते हैं अर्थात् वर्णव्यवस्था प्राप्त न होगी इससे किसी वर्ग की किम्बा या अवरोधता भी न होगी ॥

प्र०—जो किसी के एक ही पुत्र या पुत्री हो वह दूसरे वर्ग में परिवर्तित होना तो उसके मां बप की सेवा नीच करेगा और ब्रह्मचर्य भी हो जायगा । इसकी क्या व्यवस्था होगी चाहिये ?

उ०—य किसी की सहा का भ्राता और व ब्रह्मचर्य होना क्योंकि उनको अपने अपने कर्तव्यों के पहले स्वयं के योग दूसरे सम्मान विद्यासम्पन्न और राजसम्पन्न की व्यवस्था से मिलेंगे इसलिये कुछ भी अव्यवस्था न होगी । वह पुत्र कर्मों से वर्गों की व्यवस्था वर्णव्यवस्था की सोचने से भी और पुत्रों की पत्नीसे वर्ग की पत्नी में विवृत करनी चाहिये और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ग का ब्राह्मणी वहिन वर्ग का वहिन वैश्य वर्ग का वैश्य और यज्ञ वर्ग का यज्ञा के साथ विद्युद् होता चाहिये सभी अपने १ वर्गों के कर्म और परस्पर नीति भी बचावोच रहेगी ॥ अब हम चारों वर्गों के कर्तव्य कर्म और पुत्र वे हैंः—

अध्यापनमध्ययनं यज्ञं याजनं तथा ।

ज्ञानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकर्तव्यम् ॥ १ ॥ मनु १ । ३८ ॥

शमो ह्यस्तपः शौचं चाभिराग्रयमेव च ।

ज्ञानं विद्यानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावात् ॥ २ ॥ म. मी० १८ । ४२ ॥

माह्व के पढ़ना, पढ़ना पढ़ करना करना शान देना, जेना ये वा कर्म है शम्भु "प्रतिग्रह प्रत्युत्तर" मनु ॥ अर्थात् (प्रतिग्रह) जेना नीच कर्म है ॥ १ ॥ (तपः) मन से नुरे काम की इच्छा भी न करनी और उसको अशम में कभी प्रवृत्त न होने देना (दमः) और और चतु आदि इन्द्रियों को अशमप्रवरण से रोक कर धर्म में चलाया (तपः) अर्थात् ब्रह्मचारी जितन्द्रिय होकर धर्मानुष्ठान करना (शौच)—

अग्निर्गात्रसि शुष्यन्ति मनः सत्येन शुष्यति ।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा पुष्टिप्रतिन शुष्यति ॥ मनु० २ । १०१ ॥

जब से शरीर के अंग सत्यचार से मन विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवन्त्या और ज्ञान से पुष्टि पवित्र होती है । और शम्भुआदि शौच और शहर के मर्कों को दूर कर दूर रहना अर्थात् समाग्रस्य के विरुद्ध एक सत्य के महत्त्व और अशम के त्याग से निश्चय पवित्र होता है (चास्ति) अर्थात् विद्या स्तुति सुख दुःख, शीतोष्ण शुष्क मृदा आदि सामान्यमान्य आदि इष्ट शोक दुःख के धर्म में रह निश्चय रहना (चात्रेव) कोमलता विरहिता सरलता सरल स्वभाव स्वभाव दुष्टिप्रतिनि शौच शौच देना (ज्ञान) अथ वेदादि शास्त्रों को आहोरात्र पढ़ने पढ़ने का सामर्थ्य विरक्त सत्य का निर्णय जो वस्तु धीमा हो अर्थात् बड़ को बड़ केतव को केतव जानना और ज्ञानना (विज्ञान) श्रुति से जेके शरमेव परम्य पढ़ाई को शिरोरता से जानकर उसके ब्यापकोन उपकोय जेना (चास्ति) कभी वेद, ईश्वर श्रुति वृ. परब्रह्म धर्म विद्या सासंय मन्त्र विद्या आचार्य और अतिनिरी की सेवा को न छोड़ना और निरा कभी न करना ॥ १ ॥ ये पण्डित कर्म और गुण माह्व ब्रह्म मनुष्यों में अवरण होने चाहिये ॥ अग्निः—

प्रजानां रक्षार्थं ज्ञानमिन्द्रियाण्ययनमेव च ।

विदप्यप्रसक्तिश्च पुत्रियस्य समासतः ॥ १ ॥ मनु १ । ४३ ॥

शौच तत्रो पुतिर्दार्ढ्यं गुणं चाप्यरक्षापनम् ।

ज्ञानमीश्वरज्ञानं चार्त्तं काम स्वभावात् ॥ २ ॥ म. मी १८ । ४३ ॥

आय से प्रजा की रक्षा करने के लिये ज्ञान के अंगों का अन्तर और श्रुति का विरक्त करना अथ अन्तर में सत्य का शक्त्य (शान) शिव धर्म की श्रुति और मनुष्यों को सत्य में अन्तर पढ़ाई का अन्तर करना (ज्ञान) अन्तरिन्द्रिय वृत्त अथवा अन्तरा (अन्तर) अन्तरिन्द्रियों का ज्ञान अथवा अन्तर और (विदप्य) विदप्य में न रीति कर जितन्द्रिय रह के सत्य तरीक और अन्तर से अन्तर रहना ॥ १ ॥ (शौच) अन्तरिन्द्रियों को भी नुरे काम से अन्तर न होना । जेना) अन्तर अन्तरिन्द्रियों की सेवा र रह अन्तर रह रहना (अन्तर) अन्तरिन्द्रियों का अन्तर और अन्तरिन्द्रियों का अन्तर और अन्तर अन्तरिन्द्रियों का अन्तर

प्रति चतुर होना (गुरु) गुरु में भी वह निष्ठा रहके उससे कभी प हटकर न व्यवसाय छोड़ो। इस प्रकार से सबका कि जिससे निश्चित विजय होवे (जीत) प्राप्त करें जो भाग्यसे वे का शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना (दान) दानशीलता रखना (ईश्वरभाव) परमात्माहित होने के साथ परमात्मन्य बर्तना विचार के द्वारा प्रतिष्ठा पूरी करना उसको कभी मत होने प देना । वे ग्यारह पवित्र कर्म के कर्म और गुण हैं ॥ १ ॥ वैराग्य—

पशुमां रक्षसं दाममित्राण्यपममेष च ।

यणिकपयं कुसीरं च घैर्यस्य कृपिमेव च ॥ मनु १।१४ ॥

(पशुवत्) प्रायः यदि पशुओं का पावन करने करना (दान) दिया धर्म को बुरि करने करने के लिये जवादि का व्यय करना (इजा) अग्निहोत्रादि कर्तों का करना (अपवध) वैश्वदि शास्त्रों का पढ़ना (अभिरूप) सब प्रकार के ध्यापन करना (कुसीर) एक रैकने में चार घात धार धारह सोलह का बीस घातों से अधिक व्याज और मूक से बूझा चर्चाएँ एक रुपया दिना हो तो सौ वर्ष में भी हो करने से अधिक न लेना और देना (कृपि) लेती करना वे वैराग्य के गुण कर्म हैं ॥ श्रुतः—

एकमेव तु शत्रुस्य प्रभुं कर्म समादिशत् ।

पतपामेव चर्क्षणां शुभूपामनसुषया ॥ मनु १।२१ ॥

शत्रु को धोम्य है कि मित्रा ईर्ष्या अमित्राव यदि शत्रुओं को धोम्य के आश्रय उचित और वैराग्य की सेवा प्रदान करना और उसी से अपना जीवन [निर्वाह] करना यही एक शत्रु का गुण कर्म है ॥

वे संक्षेप से वनों के गुण और कर्म लिखे । विषय १ पुष्प में विषय २ कर्म के गुण कर्म हैं । उक्त २ कर्म का अधिकार देना, वेसी व्यवस्था रखने से सब समुच्च उत्पत्ति होते हैं । क्योंकि उक्त कर्मों को धन होना कि जो हमारे सम्पत्ति मूर्खतादि दोषमुक्त होने से शत्रु हो कार्योपे और क्षताय भी बरते रहें कि जो हम उक्त आश्रय आश्रय और निष्ठा मुक्त न होने से शत्रु होना परेण और जीव कर्मों को उत्तम वर्तमान होने के लिये उपपाद करेण ॥

विषय और कर्म के प्रकार का अधिकार आश्रय को देना क्योंकि वे पूर्ण निष्ठा और धार्मिक होने से उक्त काम को बधावोन्म कर सकते हैं ॥

जन्मों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि न मिल सकती होता ॥

परप्राप्तवादि का अधिकार वैराग्य ही को होना योग्य है क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं ॥

शत्रु को सेवा का अधिकार इसलिये है कि वह निष्ठाहित मूर्ख होने से निष्ठाव्यवस्था का काम पूरा भी नहीं कर सकता किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है । इसमें काम कर्मों को अपने १ अधिकार में प्रवृत्त करना राजा यदि का काम है ॥

विवाह के लक्षण ॥

प्राप्तो देवस्तपैवार्थं प्राज्जपत्यस्तथाऽसुरः ।

गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाप्यमोऽधमः ॥ मनु ३।२१ ॥

विवाह पाद प्रकर का होता है । एक भाग दूसरा देव तीसरा धर्म चौथा प्राजपत्य पाँचवाँ आसुर षष्ठ्य गान्धर्व सातवाँ राक्षस आठवाँ पैशाच ॥

इसमें ये विवाहों की यह व्यवस्था है कि—वर कन्या दोनों पचास ब्रह्मचर्य से पूर्व विशुद्ध धार्मिक और सुखीक हों इसका परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना प्राप्ति कहाता है ॥

विस्तृत ब्रह्म करने में अधिक कर्म करते हुए ब्रह्मचर्य को प्रवृत्तिलुप्त कन्या का देना 'देव' । वर से कुछ छोटे विवाह होना 'प्राज' । दोनों का विवाह धर्म की बुद्धि के धर्म होना 'गान्धर्व' । वर और कन्या को कुछ देक विवाह होना 'आसुर' । अनियम असमय किसी कारण से दोनों की इच्छापूर्वक वर कन्या का परस्पर संयोग होना 'गान्धर्व' । बर्बाद करके ब्रह्मचर्य अर्थात् जीव मरने का कष्ट से कन्या का प्रवृत्त करके 'राक्षस' । राक्षस या मर्यादा पी हुई पापक कन्या से ब्रह्मचर्य संयोग कन्या 'पैशाच' ॥

इस सब विवाहों में आज विवाह सर्वोत्कृष्ट देव और प्राजपत्य मध्यम धर्म आसुर और गान्धर्व विद्वत् राक्षस अधम और पैशाच महाभय है ॥

इसलिये यही विवाह रक्षक चाहिये कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व ब्रह्मचर्य में मेक न होना चाहिये क्योंकि ब्रह्मचर्य में जो पुण्य का एकान्तकाल वृत्तव्यकरक है ॥

परन्तु जब कन्या का वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष का या महीने ब्रह्मचर्यमम और विवाह पूरी होने में दोष रहें तब जब कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको 'कोसोमात्र' कहते हैं अथवा प्रतिबिम्ब उभार के कन्याओं की अभ्यापिकाओं के पास कुमारों की कुमारों के अभ्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिबिम्ब भेद देवें जिस २ का रूप मित्र आप उस २ के इतिहास अर्थात् जन्म से छोटे उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो उसको अभ्यापक कोम मंगला के देवें जब दोनों के गुण कर्म स्वभाव सदा ही तब जिस २ के साथ जिस २ का विवाह होना योग्य समर्थ उस २ पुत्र और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना । जब जब दोनों का विवाह परस्पर विवाह करने का हो जाय तब जब दोनों का समानार्थक एक ही समय में होवे । जो वे दोनों अभ्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहाँ वहीं तो कन्या के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है । जब वे समय ही तब जब अभ्यापकों का कन्या के माता पिता आदि भद्रपुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत शास्त्रार्थ करना और जो कुछ गुण व्यवहार पूर्व सो भी धना में जिसके एक दूसरे के हाथ में देकर प्रयोजन कर लेवें ॥

जब दोनों का यह प्रेम विवाह करने में हो जाय तब से उनके व्यवहार का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये कि जिससे उनके शरीर को पूर्ण मङ्गलार्थ और स्वास्थ्यपूर्ण तत्त्वों और वह से सुख होना है वह चन्द्रमा की कक्षा के समान वह के घोंघे ही दिनों में पुनः हो जाय । यथातु जिस दिन कक्षा रक्तवत् होकर जब रुद्ध हो तब वैरी और मङ्गल तब के अनेक सुखपूर्ण दिवस और भूतदि का होम तथा अनेक विद्वान् पुण्य और दिनों का यथायोग्य उत्पन्न करें । भूतदि जिस दिन जलुदाय देना योग्य समयों उसी दिन “संस्कारविधि” पुस्तक के विधि के अनुसार सब कर्म करके मृत्यु रात्रि का वृत्त करने अति समझता से सब के सामने प्राविश्यपूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके पञ्चमत्त होवें ।

पुनः बीर्वास्त्रावध और भी बीर्वाकर्षण की जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करें । वही तक बने वही तक मङ्गलार्थ के बीर्वा को धर्म व करने हैं क्योंकि उक्त बीर्वा का रक्त से जो शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्ण उत्तम समझा होता है । जब बीर्वा का धर्मोत्पन्न में फिरने का समय हो उक्त समय की पुनः दोनों स्थिर और आधिक्य के सामने आधिक्य क्षेत्र के सामने क्षेत्र अर्थात् सूक्ष्म शरीर और अत्यन्त प्रबल रहें दिव्यें वही । पुनः अपने शरीर को हीना छोड़े और भी बीर्वास्थिति के समय आपस रासु को ऊपर लीने । योनि को ऊपर लीने कर बीर्वा का ऊपर आकर्षण करने धर्मोत्पन्न में स्थिति करें * । यथातु दोनों रुद्ध जब से स्वाय करें । धर्मस्थिति होने का परिज्ञान मिलुनी भी जो तो उसी समय हो जाता है परन्तु इसका विज्ञान एक समय के यथातु रक्तवत् व होने पर सब को हो जाता है ।

पौंड केर अत्यन्त जोड़ी इच्छा की और साधनमित्री सब धर्म का रक्षा हुआ जो अत्यन्त वृद्ध है उसको अत्यन्त दोनों पीके अक्षय २ अर्थात् २ सत्त्व में रहने करें । वही विधि जब २ धर्मोत्पन्न किया करें तब २ करवा उचित है । जब महीने भर में रक्तवत् व होने से धर्मस्थिति का विज्ञान हो जाय तब से एक वर्ष पर्यन्त की पुनः का समस्तसम कमी व होना चाहिये क्योंकि ऐसा होने से उत्तम उत्तम और पुनः वृद्धा उत्तमान भी ऐसा ही होता है । जानना बीर्वा धर्म काया दोनों की धारु का जाती और अनेक प्रकार के रोम होते हैं परन्तु ऊपर से अर्थात् अति प्रेमपूर्ण अत्यन्त अत्यन्त रक्षा चाहिये ।

पुनः बीर्वा की स्थिति और भी धर्म की रक्षा और अत्यन्त धारु इस प्रकार का करें कि जिससे पुनः का बीर्वा स्वयं में भी जब व हो और धर्म में अत्यन्त का शरीर अत्यन्त का अत्यन्त पुष्टि जब पराधर्मपूर्ण होकर वृद्धें महीने में कम्य होवे । किन्तु इसकी रक्षा नीचे महीने से और अतिस्थित धारु में महीने से धर्म करनी चाहिये । कमी धर्मोत्पत्ती की रक्त कक्ष मारुत्तव्य इति और अत्यन्तक पक्षों के अत्यन्तव्य का रोम व करें किन्तु भी, वृद्ध उत्तम अत्यन्त धर्म, धर्म उर्ध्व आदि सब पाय और वृद्ध कक्ष का भी रोम पुष्टिपूर्वक करें ।

* यह बात रहस्य की है इसलिये इतने ही से समझें धर्म समझ लेना चाहिये किन्तु विज्ञान उचित वही ।

पर्यं में जो संस्कार एक जीने महीने में पुंसवन और दूसरा धर्म्य महीने में धीमन्तोन्नयन विधि के अनुसार किये ।

जब सन्तान का जन्म हो तब भी और बच्चे के शरीर की रक्षा बहुत आवश्यक हो करे क्योंकि शुद्धीपाक अथवा धीमन्तोन्नयनपाक प्रथम ही बनना पड़ेगा । उस समय सुगन्धित उष्ण जल जो कि निर्जित उष्ण रहा हो उसी से भी स्नान करे और बाह्य को भी स्नान करावे । तत्पश्चात् माहीदेहक बाह्यक की गमि के बाद में एक कोमल कृत् से बांध चार अंगुल चौड़े के ऊपर से बांध दाले । उसको ऐसा बाँधे कि जिससे शरीर से बाहर का एक किन्तु भी न जाने पावे । पश्चात् उस कृत् को छुड़ करके उसके द्वार के भीतर सुगन्धादिद्रव्य वृत्तदि का होम करे । तत्पश्चात् सन्तान के काव में पिता "बेदोत्तीति" अर्थात् 'तेरा नाम बेद है' सुनकर भी और सहज को खेके सोने की शलाका से जीन पर "ओधम्" अथवा छिन्नकर मनु और धृत् को उसी शलाका से छेदवे । पश्चात् उसकी माता को दे देवे जो दूध पीना चाहे तो उसकी माता पितावे, जो उसकी माता के दूध न हो तो किसी भी की परीक्षा करके उसका दूध पितावे । पश्चात् दूसरी छुड़ कोमरी का कमरे में कि जहाँ का बहुत शुद्ध हो उसमें सुगन्धित भी का होम करा और तत्पश्चात् किया करे और उसी में प्रसूता की तथा बाह्यक को रखे । ३ दिन तक माता का दूध पिये और भी भी अपने शरीर की पुष्टि के लिये अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे और मोचिसकोचदि भी करे । कुछ दिन की बाद किन्हीं और सन्तान के दूध पीने के लिये कोई छापी रखे । उसको काव पाव धान्ना करावे । वह सन्तान को दूध पितावा करे और पावन भी करे परन्तु उसकी माता बच्चे पर दृष्टि रखे किन्ती प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पावन में न हो । जो दूध कच्चे करने के लिये लव के समुदाय पर ऐसा छेप करे कि जिस से दूध क्षयित न हो । उसी प्रकार का काव पाव का व्यवहार भी बन्धन रखे । पश्चात् आमकरादि संस्कार "संस्कारविधि" की रीति से बन्धन करवा काव । जब भी फिर रक्तवत्ता हो तब शुद्ध होने के पश्चात् उसी प्रकार अनुदान देवे ।

अनुकाशाभिगामी स्यात्स्वधारितः सप्त ॥ मनु ३ । ४६ ॥

प्रारब्धार्थेण भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ मनु ३ । ४७ ॥

जो अपना ही की वे प्रारब्ध और अनुप्राप्ती होता है यह पुरुष भी प्रारब्धारी के प्रारब्ध है ।

सन्तुष्टो मार्यया भर्ता भर्ता भार्या तपेयः च ।

पश्चिन्नेव कुले निर्यः कस्यार्थं तत्र वै भूपम् ॥ १ ॥

यदि हि स्त्री न रोषेत पुमास्तत्र प्रमादयत् ।

अप्रमोदस्तुनः पुंसः प्रमनं न प्रयच्छत ॥ २ ॥

किंवा तु रोषमानाया सर्वं तद्रोषत कुलम् ।

तस्यां त्वरोत्तमायां सपथं न राधत ॥ ३ ॥ मनु ३ । १०-११ ॥

मित्र कुम्भ में मयी से मयी और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है उसी कुम्भ में सब औमन्त्र्य और देवर्षि विवास करते हैं । वहाँ कबहू होता है वहाँ औमन्त्र्य और कथिप्रसन्न भिन्न होता है ॥ १ ॥ जो पत्नी पति से प्रीति और पति को प्रसन्न नहीं करती तो पति के अग्रसन्न होने से काम उत्पन्न नहीं होता ॥ २ ॥ जिस की की मन्त्रालय में सब कुम्भ प्रसन्न होता उसकी कामप्रकृत्य में सब अग्रसन्न वर्णात् दुःखदायक हो जाता है ॥ ३ ॥

पितृभिर्भातृभिर्भैता पतिमिर्वैरैस्तथा ।

पूज्या भूपयितव्याश्च बहुकस्यागामीप्सुमि ॥ १ ॥

यच्च नार्प्यस्तु पूज्यन्ते रज्यन्ते तत्र देवता ।

यचैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफला क्रिया ॥ २ ॥

शोचन्ति आमयो यच्च विनश्यत्प्राय तत्कुलम् ।

न शोचन्ति तु पचैता कर्षत तद्धि सर्वम् ॥ ३ ॥

तस्मात्पैता सकृ पूज्या भूपयाश्चरन्वाम् ।

भूतिकामैर्नैर्वैतस्य सत्कारेपूतसपुत्र ॥ ४ ॥ मनु ३ । २२-२७ । २१ ॥

पिता धाई, पति और देव इन्होने सत्कारपूर्वक पूज्यादि से प्रसन्न रखें जिसको बहुत कल्याण की इच्छा हो वे देवे करें ॥ १ ॥ जिस घर में किसी का सत्कार होता है उसमें विष्णुका पुत्र होके देवर्षिजा वरा के आगम से प्रीति करते हैं और जिस घर में किसी का सत्कार नहीं होता वहाँ सब किया विफल हो जाती है ॥ २ ॥ जिस घर का कुम्भ में की बोम बोमजुर होकर कुम्भ पड़ी है वह कुम्भ लीम वह सब हो जाता है और जिस घर का कुम्भ में की बोम आगम से उत्साह और प्रसन्नता से भरी हुई रहती है वह कुम्भ सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ इच्छिते देवर्ष की कामना करनेवाले मनुष्य को बोम है कि सत्कार और अग्रसन्न के समर्थों में भूषण सब और आगम्यादि से किसी का विष्णुवि सत्कार करें ॥ ४ ॥

यद्वायव्यं दक्षाय न्याय में सबकी चाहिये कि 'पूजा सम्यक् का धर्म सत्कार है और दिन रात में जब १ प्रथम मिर्री का पुष्प हों तब १ मीतिपूर्वक ममले' एक दूसरे से करें ॥

सद्यः प्रहृष्टया भाष्यं गृहकार्येषु वक्ष्यामि ।

सुसंस्कृतापस्करया ध्यायेन्नामुक्तहस्तया ॥ मनु २ । १२ ॥

की को बोम है कि यथिप्रसन्नता से घर के कामों में अनुराहुक सब वराओं के उत्तम संस्कार तथा घर की दृष्टि रखें और ज्वल में आगम उदात्त न रहे, धर्मोत्तम वराबोम कर्ष करे और सब चीजें पवित्र और एक इस प्रकार बचावे जो जीवनरूप होकर शरीर का आगम में होय को न ध्याये देवे, जो १ ज्वल हो उसका द्विप्राय पचावत् रखे वति ध्यादि को मुखा दिवा करे घर के बीकर चकरी से बचावोम काम सेवे घर के किसी काम को विगमने न देवे ॥

प्रिया रक्षान्ययो विद्या सत्यं शौचं सुमापितम् ।

विधिधानि च शिष्टानि समाधेयानि सधत ॥ मनु १ । २७० ॥

उत्तम की भासा प्रकार के रत्न दिया सब पवित्रता जेहमक्य और भासा
प्रकार की विरूपविधा अर्थात् कारीगरी सब देया तथा सब मनुष्यों से ग्रहण करे ॥

सस्यं द्रूयात् प्रियं द्रूयाद्य द्रूयात् सस्यमप्रियम् ।

प्रियं च नामृतं द्रूयादेव धर्मं समातन ॥ १ ॥

मद्रं मद्रमिति द्रूयस्त्रमिस्त्रेव वा वनेत् ।

शुक्लवैरं विचार्य च न कुर्यात् केनचित्सह ॥ २ ॥ मनु ४।१३८।१३९ ॥

सदा प्रिय सस्य दूसरे का हितकारक बोले । अप्रिय सस्य अर्थात् करने को
कच्चा न बोले अस्तु अर्थात् सूत दूसरे को प्रसन्न करने के धर्म न बोले ॥ १ ॥

सदा मद्र अर्थात् सब के हितकारी वचन बोला कर शुक्लैरं अर्थात् बिना
अपराध किसी के साथ विरोध वा विवाद न करे ॥ २ ॥ जो २ दूसरे का हितकारक
हो वही दुरा भी माने तथापि उसे बिना न रहे ॥

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिन ।

अप्रियस्य तु पथ्यस्य बन्धा ओता च दुर्धर्म ॥ उपास्यर्षं विदुर ॥

हे कतराहू ! इस संसार में दूसरे को विरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय
वाक्ये करने प्रत्येक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय विहित हो और वह
अन्यास करनेवाला बन्धन हो उसका करने और सुननेवाला पुरुष दुर्धर्म है ॥
क्योंकि सत्युक्तों को योग्य है कि सुनने के समान दूसरे का दोष कहना और
प्रत्येक दोष सुनना परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना । और दुर्धर्म की यही
रीति है कि समुच्च में गुण कहना और पराक्ष में दोषों का प्रकाश करना ।
अतएव मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं कहता तबतक मनुष्य दोषों से दूष्ण
गुणों नहीं हो सकता । कभी किसी की निन्दा न करे जैसे—

“गुणेषु दोषारोपणमसूया” अर्थात् “दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया”
“गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुति” को गुणों में दोष दोषों
में गुण आपस का निन्दा और गुणों में गुण दोषों में दोषों का कथन करना स्तुति
कहती है अर्थात् मिथ्याभाषण का नाम निन्दा और सत्यभाषण का नाम स्तुति है ॥

पुनरुक्तिद्वयकारणानि च द्वितानि च ।

नित्यं शास्त्रास्पकदेव निगमांश्वेयं पवित्रान् ॥ १ ॥

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।

तथा तथा विद्वानाति विद्वानं चास्य रोचते ॥ २ ॥ मनु ४।१३।२ ॥

जो लीम दुष्टि कम और द्विती की दुष्टि करनेहार शास्त्र और वेद हैं उनके
बिना सुबे और सुकवे अज्ञानताम में बने हों उनको भी पुरुष नित्य विचार
और वदना करें ॥ १ ॥ क्योंकि जैसे २ मनुष्य शास्त्रों को बचस्प जानता है जैसे २
उस बिना का विद्वान बचता जाता और उसी में द्विती कहती रहती है ॥ २ ॥

अपिपयं वेयपयं भूतपयं च सर्वदा ।

नृपयं पितृपयं च यथाशक्ति न दापयत् ॥ ३ ॥ मनु ४।२१ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञं पितृयज्ञश्च तर्पणम् ।

होमो देवो बलिर्भीतो नृपश्चोऽतिथिपूजकम् ॥ २ ॥ मनु १।१० ॥

साध्यापेनार्चयेत्तृतीयम् होमैर्देवान् यथाविधि ।

पितृन् भ्रातृश्च नृपस्यैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ३ ॥ मनु १।८१ ॥

हो नमः ब्रह्मर्षे मे शिवा आने वे अर्चात् एक वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ना संन्यासप्राप्तन बोधव्यक्त दूधरा देवपुत्र भिक्षुओं का संन्य लेना पवित्रता दिव्य गुणों का धारण वागुक्त विद्या की उन्नति करना है वे दोनों नमः सार्थ प्रकाश करने होते हैं ॥

सायमाय गृहपतिर्नो अग्निः प्राप्तःप्रातः सौमनसस्यं दाता ॥ १ ॥

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्यं दाता ॥ २ ॥

अथ कां १६। मनु ७।१५ २५। मं १।४ ॥

तस्माद्द्वयोपचयस्य संयोगं ब्राह्मणं सम्प्राप्नुयात्सति ।

उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्याप्यन् ॥ ३ ॥

मन्त्रान्ते (पद्मविष्णुब्रह्म) प्र ४। अं २ ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां गोपास्त यस्तु पश्चिमात् ।

स यद्रवद्विष्णुकार्यं सर्वस्माद् द्विषकर्मणः ॥ ४ ॥ मनु १।११ ॥

जो सम्पत्ता १ काज में होम होता है वह हुत रूप प्रत्यक्ष एक कापुष्टि द्वारा पुनर्कारी होता है ॥ १ ॥ जो अग्नि में प्रातः १ काज में होम किया जाता है वह १ हुत रूप प्रत्यक्ष सर्वस्व कापु की छवि द्वारा वह पुनर् प्राप्ति और प्रारोम्भकारक होता है ॥ २ ॥ इसीप्रकारे दिन और रात्रि के अग्नि में अर्चात् पूर्वोदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अर्पण करना चाहिये ॥ ३ ॥ और जो वे दोनों काम सार्थ और प्रत्यक्ष में न करे उसको समस्त ज्ञान सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देंगे अर्थात् उसे दृष्टव्य समझें ॥ ४ ॥

प्र०—विष्णु सम्पत्ता क्यों नहीं करता ?

उ०—तीन समय में अग्नि नहीं होती प्रत्यक्ष और अर्पणकार की अग्नि भी सार्थ प्रकाश हो ही वेदा में होती है । जो इसको न मानकर सम्प्राप्तप्राप्त में तीक्ष्ण सम्पत्ता माये वह सम्पत्ता में भी संन्यासप्राप्तन क्यों न करे ? जो मन्त्र छवि में भी करता चाहे जो प्रहर १ वही १ पक्ष १ और चप १ की भी छवि होती है, वचन भी संन्यासप्राप्तन किया करे । जो वेदा भी करता चाहे तो हो ही नहीं प्रकटा और किसी शास्त्र का सम्प्राप्त संन्या में प्रमाण भी नहीं इसप्रकारे दोनों काशों में संन्या और अग्निहोत्र करना समुचित है तीक्ष्ण काज में नहीं । और जो तीन काज होते हैं वे ब्रह्म मविष्णु और कर्मयोग के भेद से हैं संन्यासप्राप्तन के भेद से नहीं ॥

तीक्ष्ण विष्णु अर्थात् विष्णु देव जो विशाल, ज्ञान जो बढ़ने जाने हारे विवर जो प्रातः पिता आदि ब्रह्म शास्त्री और परम बोधियों की सेवा

कर्मो । विष्णवे के दो भेद हैं, एक आत्मा और दूसरा तर्पण । आत्मा अर्थात् 'अत्' सप्तम का नाम है 'अस्तस्य' वधाति यथा क्रियया सा भद्रा भद्रया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्" जिस क्रिया से सप्तम का प्रत्यय क्रिया जान उसको भद्रा और भद्रा से जो कर्म क्रिया आप उसका नाम आत्मा है । और तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तपयाम्" जिस २ कर्म से तृप्त अर्थात् विष्णुमाल मन्त्र पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न होने वाले उसका नाम तर्पण है परन्तु वह जीवितों के विदे है मृतकों के विदे नहीं ॥

अथ देवतर्पणम् ॥

ओं इन्द्रादयो देवास्तृप्यन्ताम् । इन्द्रादिवेदपत्न्यस्तृप्यन्ताम् ।
इन्द्रादिवेदसुतास्तृप्यन्ताम् । इन्द्रादिवेदगणास्तृप्यन्ताम् ॥ इति देवतर्पणम् ॥

"विष्वादेसो हि देवतः" वह ७ सतपथ ब्राह्मण का वचन है । जो विश्व है उन्हीं को देव कहते हैं । जो सगोपक चर वेहों के जानने वाले हों उनका नाम इन्द्र और जो उनके स्त्रिय को हों उनका भी नाम देव अर्थात् विश्व है । उनके सस्रत उनकी विदुषी की ब्राह्मणी देवी और उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सस्रत उनके एक ही उनका सेवन और सम्भार करना अर्थात् तर्पण नाम आत्मा और तर्पण है ॥

अथ र्षितर्पणम् ॥

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम् । मरीच्याद्वृषपिपत्यस्तृप्यन्ताम् ।
मरीच्याद्वृषपिसुतास्तृप्यन्ताम् । मरीच्याद्वृषपिगणास्तृप्यन्ताम् ॥
इति ऋषितर्पणम् ॥

जो मन्त्र के प्रयोग मरीचिकत् विश्व जोकर पालने और जो उनके सस्रत विदुषुक्त उनकी विदा ब्रह्मणों को विद्यादान देने उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके समान उनके एक ही उनका सेवन और सम्भार करना अर्थात् तर्पण है ॥

अथ पितृतर्पणम् ॥

ओं सोमसव पितरस्तृप्यन्ताम् । अग्निप्यास्ता पितरस्तृप्यन्ताम् ।
वह्निपद पितरस्तृप्यन्ताम् । सोमपा पितरस्तृप्यन्ताम् । इदिर्मुञ्ज
पितरस्तृप्यन्ताम् । आज्यपा पितरस्तृप्यन्ताम् । सुकाशिन पितर
स्तृप्यन्ताम् । यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि । पित्रे स्वाधा नमः
पितरं तर्पयामि । पितामहाय स्वाधा नमः पितामहं तर्पयामि । प्रपितामहाय
स्वाधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि । मासे स्वाधा नमो मातरं तर्पयामि ।
पितामहो स्वाधा नमः पितामही तर्पयामि । प्रपितामहो स्वाधा नमः
प्रपितामहो तर्पयामि । अपत्ये स्वाधा नमः अपत्नीं तर्पयामि ।
सम्बन्धिन्य स्वाधा नमः सम्बन्धिमस्तर्पयामि । सगोत्रिन्य स्वाधा
नमः सगोत्रांस्तर्पयामि ॥ इति पितृतर्पणम् ॥

ये सोमे अगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसव" को परमात्मा और पदार्थ विद्या में विपुल हों वे सोमसव । "यैरग्नेर्विदुयुतो विद्या गृहीता तं अग्निप्यात्ता" को अग्नि जहाँतु विदुष्यदि पदार्थों के व्यवहारे बन्धे हैं वे अग्निप्यात्ता । "ये बर्हिषि उत्तमे अग्न्यहारे सीदन्ति ते बर्हिषव" को उत्तम विदुष्यद्विपुल अग्न्यहारे में स्थित हों वे बर्हिषव । "ये सोममैश्वर्यमोष धीरस्तं वा पाप्मि पिबन्ति वा ते सोमपा" को ऐश्वर्य के रचक और मोक्षपि रस का पान करने से रोगरहित और अग्न्य के ऐश्वर्य के रचक जीवियों को देके रोषनाशक हों वे सोमपा । ये इयिहोतुमत्तमहं भुञ्जते मोक्षयन्ति वा ते हविर्मुञ्ज" को मत्तक और हिंसात्मक इन्हीं को जोड़ के मोक्षय करनेहार हों वे हविर्मुञ्ज । "य आज्यं घ्रातुं प्राप्नुं वा योम्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति तं आज्यपा" को जलाने के योम्य वस्तु के रचक और कृत दुर्गन्धदि करने और पीने हारे हों वे आज्यपा । "शोमन" काको विद्यते येवन्ते सुकाञ्चिन" जिसका अन्तर्गत कर्म करने का सुकल्प सम्यक् हो वे सुकाञ्चिन । "ये तुष्टान् पण्डुन्ति मिश्रहन्ति ते यमा न्यायाधीशा" को दुष्टों को रचक और भेदों का पालन करनेहार न्यायकारी हों वे यमा । "य पाति स पिता" को अन्तर्गती का अन्न और अन्नर से रचक का जलक हो वह पिता । "पितुं पिता पितमह" पिता महस्य पिता प्रपितामह" को पिता का पिता हो वह पितमह और को पितमह का पिता हो वह प्रपितमह । या मानयति सा माता" को अन्न और अन्नार्थों में अन्तर्गती का अन्न करने वह माता । "या पितुर्माता सा पितमही पितामहस्य माता प्रपितामही" को पिता की माता हो वह पितमही और पितमह की माता हो वह प्रपितामही । जपनी की तथा भगिनी सम्बन्धी और एक मात्र के तथा अग्न्य कोई अन्न पुत्र्य का वृद्ध हों उस अन्नको अन्नमन्त अन्ना से उत्तम अन्न वन्न सुम्बर वाय अग्नि देकर अन्न प्रकर को तृप्त करना जहाँतु जिस १ कर्म से उत्तम अन्नमा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस २ कर्म से प्रीति पूर्वक उत्तमी सेक करनी वह अन्न और तर्पण अन्नम् ॥

चोथा वैश्वदेव—जहाँतु अन्न मोक्षय सिद्ध हो उस को कुम्भ मोक्षार्थ बने उसमें से अन्ना अन्ननाश और चार को जोड़ के धृत मिश्रुक्त अन्न देकर अन्ने से अग्नि अन्नय भर विप्रसिद्धित मन्त्रों से ध्यापुति और जप्य करे ॥

यैश्वदेवस्य मित्रस्य गृहेऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।

आभ्यं कुर्पाहपताभ्यो ग्राह्यो होममन्त्रहम् ॥ मनु २ । ८२

ओ कुम्भ पाकताका में मोक्षार्थ सिद्ध हो उसका दिव्य गुणों के अर्थ पढ़ी वाक्यदि में विप्रसिद्धित मन्त्रों से विधिपूर्वक होम बिल्य करे—

ताम फरन के मन्त्र ॥

ओं अग्रय न्याहा । सोमय न्याहा । अग्नीपोमान्या न्याहा । विश्वम्या इवम्य न्याहा । धन्यस्तरय न्याहा । कुष्ठे न्याहा । अनुमस्ये न्याहा । प्रग्रपतय न्याहा । सह धावापृथिवीभ्यां न्याहा । सिद्धकृत न्याहा ॥

इस प्रमेक मन्त्रों से एक १ बार जादुति प्रवर्धित अग्नि में जोड़े पञ्चाश्व
पात्री अथवा भूमि में पड़ा रक्त के पूर्व विराडि मन्त्रानुसार वपस्वम
इस मन्त्रों से मन्त्र रक्खे—

ओं सानुगायेत्रास्य नमः । सानुगाय यमाय नमः । सानुगाय धर-
णाय नमः । सानुगाय सोमाय नमः । मरुदुभ्यो नमः । अश्वभ्यो नमः ।
यमस्त्रिभ्यो नमः । शिव्यै नमः । मन्त्रकाल्यै नमः । प्रहस्पतये नमः ।
वसतुपतये नमः । विश्वभ्यो देवभ्यो नमः । विषाखरेभ्यो भूतभ्यो नमः ।
नक्षत्रारिभ्यो भूतभ्यो नमः । सर्वात्मभूतये नमः ॥

इस भागों को जो जो कोई अतिथि हो तो उसको बिना देवे अथवा अग्नि में
जोले देवे । इसके पश्चात् अथवा अर्वात् एक बार एक रात रोटी आदि लेकर
इस भाग भूमि में बरे । इसमें प्रसाद—

शुभां च पतितानां च भवेषां पापरोगिणाम् ।

वापसानां छुमीणां च शुभकैर्निर्यपवुमुपि ॥ मनु ३ । १२ ॥

इस प्रकार “अभ्युदय” पतितेभ्यो नमः भवेषुभ्यो नमः पापरोगिभ्यो
नमः वापसेभ्यो नमः छुमिभ्यो नमः अथवा पञ्चाश्व किमी दुल्ही दुमुचित
पात्री अथवा कुले कोई आदि को दे देवे । यहां मन्त्र का अर्थ अथ अर्थात्
कुले पापी अथवा पापरोगी को भी और छुमि अर्थात् चंडी जडि को अथ
देवा यह मनुस्मृति आदि की विधि है ॥

इसमें करने का प्रयोजन यह है कि पापप्राप्तका कष्ट का दूर होना और
जो अशुभ अथवा जीवों की हत्या होती है उसका मनुष्यपर कर देना ॥

अथ पांचवीं अतिथिसेवा—अतिथि इसको कहते हैं कि जिसकी कोई
विधि विहित न हो अथवा अकस्मात् धार्मिक, लोकोपदेशक अथ के उपकारार्थ
अथवा दान के द्वारा पूर्वविद्वान्, परमयोगी संन्यासी पुरुष के यहां आने तो
उसको प्रथम पांच अर्थ और आचमनीय तीन प्रकार का अन्न देकर पञ्चाश्व आसन
पर अथवा एक बिछाकर का आसन पांच अर्थ अथवा उत्तम परागों से सैद्य शुभका
करके अथवा प्रसन्न करे । पञ्चाश्व सत्तम का इनसे ज्ञान विज्ञान आदि जिनसे
धर्म अर्थ अथ और मोक्ष की प्राप्ति होवे ऐसे २ उपदेशों का अथवा करे और
अथवा अथ पश्चात् इनके अनुपदेशानुसार रखे । अथवा पांच पुरुष और
रम्यदि भी अतिथिभ्यो नमः करने योग्य है पान्थु—

पाण्डित्यो विद्वत्सम्पान् वैद्याद्युत्तमकान् शठान् ।

द्वैतकान् पक्षपक्षीय वाध्याध्यापि नाशयेत् ॥ मनु ४ । १० ॥

(पापवही) अर्थात् वैदिकीय वैदिकीय आचार्य करने द्वारा (विद्वत्स)
जो वैदिकीय कर्म का कर्म विद्वत्सवादि पुरुष, जैसे विद्वत्स विप और स्थिर
रहकर उक्त १ अथ से मूत्र आदि पदार्थों को मार अथवा पर मार दे किंतु
उनको का नाम दक्षद्वैतक (शठ) अर्थात् इंद्री दुराग्रही अभिमानी आदि
उनमें नहीं आते । का कहा मने नहीं (द्वैतक) कुतर्क अथ करने वाले जैसे कि

आत्मकर्म के वेदांगी करते हैं। हम मनु और अमरु मिथ्या है वेदविद्या का भी ईश्वर भी अविद्य है। इत्यादि गोपिका हाँकनेवाले (कर्मवृत्ति) जैसे एक एक पैर बड़ा प्याजप्रमाण के समान होकर भद्र मन्त्री के प्रथम द्वार के अथवा स्वार्थ सिद्ध करता है जैसे आत्मकर्म के वेदांगी और काशी आदि इही बुराप्रणी वेदविरोधी हैं। ऐसी का सम्भार वाणीप्रमाण से भी न करना चाहिये। क्योंकि इसका सम्भार करने से वे बुद्धि को पाकर संसार को अधर्मवृत्ति करते हैं। आप तो कर्मवृत्ति के काम करते ही हैं। वरन्तु राज्य में सेवक को भी अधिव्यापकी महासम्पन्न में हुआ देते हैं।

हम पाँच महापुरुषों का कर्म यह है कि मनुष्य के करने से किन्तु सिद्धा धर्म सम्भार आदि राम गुणों की बुद्धि। अविद्योत्तम से वायु, बुद्धि, बल की शक्ति होकर बुद्धि द्वारा संसार को मुक्त बना होना अर्थात् शब्द वायु के नाम परलं काय पाव से आरोग्य बुद्धि बल पराक्रम कर्म के कर्म धर्म काय और मोक्ष का अनुष्ठान प्राप्त होना इसीलिए इसको देवकर्म कहते हैं कि यह वायु अविद्य पद्यों को छुड़ कर देता है। पितृव्य से जब मनुष्य पिता और जन्मी महात्माओं की सेवा करेगा तब ब्रह्म ज्ञान करेगा। इससे सत्सत्त्व का निर्वासन कर सत्य का प्रकाश और असत्य का नाश करके मुक्त होवेगा। दूसरा कृतकृता अर्थात् वैसी सेवा सत्त्व सत्त्व और आचार्य के सत्ताच और शिष्यों की की है। उत्तम कर्मका देना कर्मवृत्ति ही है। अविद्यैकमेव का भी कर्म को पूर्व कह जाने हैं नहीं है। अथवा उत्तम अतिथि कर्म में नहीं होते तत्काल वृत्ति भी नहीं होती। उनके छत्र देनों में धूमने और समोपदेष्ट करने से वास्तविक की बुद्धि नहीं होती और धर्मवृत्ति पद्यों को छुड़ाने से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है और मनुष्यमनु में एक ही कर्म किन्तु रहता है। किन्तु अतिथियों के सन्नेहमिच्छति नहीं होती। सन्नेहमिच्छति के बिना १६ मित्रव भी नहीं होता। मित्रव के बिना मुक्त कहाँ ?

माझे मुहूर्त्तं बुध्यत धर्माधीनं बालुचिस्तयेत् ।

कायकर्मवृत्तिस्तं तन्मूलात् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ मनु ७।११॥

रात्रि के चौथे घंटे अथवा चार बड़ी रात से उठे, आत्मकर्म कर्म करके कर्म और कर्म शरीर के दोनों का विद्या और परमात्मा का ज्ञान करे कर्म अधर्म का नाशक न करे क्योंकि—

नाधर्मव्यतितो लोके सद्यः पश्यति गौरिव ।

एतेराधर्ममानस्तु कश्चु मूलाणि कृत्यति ॥ मनु ७।१०॥

किन्तु बुद्धि अधर्म मिच्छा कमी नहीं होता परन्तु जिस समय अधर्म करता है उसी समय कर्म भी नहीं होता इसीलिए आकाशी कोय अधर्म से नहीं करते तत्कालि विज्ञान जानो कि वह अधर्मोत्तरक धीरे २ तुम्हारे मुक्त के मूर्खों को कर्मका चक्रा जाता है। इस कर्म से—

अधर्मैषैवैतै तावत्तजो मत्ताधि पश्यति ।

ततः सपञ्चाक्षयति समूहस्तु विनश्यति ॥ मनु ७।११॥

जब अधर्मोत्तरा मनुष्य कर्म की मूर्खता छोड़ (जैसे तावत्त्व के कर्म को तोड़ जब धर्म और ईश्वर जाता है जैसे) मिच्छामात्रक कर्म, वास्तविक अर्थात्

रक्षा करनेवाले देवों का लक्षण और विद्यासम्पत्तादि कर्मों से पराये परमों को लेकर प्रथम कहता है, पश्चात् भगवति देवर्ष से ज्ञान प्राप्त कर, अमृतस्य ज्ञान कर्म मात्र प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है अन्त्यस्य स शत्रुघ्नो को भी नीतता है पश्चात् शीघ्र कह हो जाता है जैसे जब काया हुआ हुए नष्ट हो जाता है जैसे अक्षयों नष्ट नष्ट होजाता है ॥

सत्यधर्मार्थमुत्तपु शास्त्रं जेवारयेत्सदा ।

शिष्यान् शिष्यान्मैत्र्यैव वागवाहुरसपत् ॥ मनु ४ । १०२ ॥

विद्वन् देशोक्त सत्य धर्म अथोत् पञ्चपातरहित होकर सत्य ६ प्रत्यक्ष और असत्य के परिच्छेद ग्राहकन देशोक्त धर्मार्थ अर्थ अर्थात् धर्म में रहते हुए ६ समाज धर्म स शिष्यों को शिक्षा दिया कर ॥

श्रुतिश्चतुरादित्वाचार्य्यमातुजातिधिसंभितै ।

वाजपुत्यातुरेयैर्देवांतिसम्बन्धितान्धये ॥ १ ॥

मत्तापितृभ्या यामीभिर्भाषा पुत्रेषु भार्यया ।

तुहिन्ना वासवर्गेण विचार्य न समाचरेत् ॥ २ ॥ मनु ४ । १०३ । १८ ॥

(अतिक) वन्द का करनेहार (पुरोहित) अथ उक्त वाजपयन की शिक्षाकारक (आचार्य) विद्या पञ्चवेहार (मनुष्य) माता (अतिथि) अर्थात् मित्रकी कोई जाने जाने की निमित्त स्थिति न हो (संभित) अपने आश्रित (पत्न) पत्न्यक (वृद्ध) पुत्र (अतुर) पीडित (विच) आयुर्वेद का ज्ञाता (ज्ञाति) स्वयंज वा स्वयंजस्य (सम्बन्धी) अमुर आदि (सम्बन्ध) मित्र ॥ १ ॥ (मत्ता) माता (पिता) पिता (यामी) बहिन (भाता) भाई (भार्या) स्त्री (तुहिन्ना) पुत्री और [वाजपयन] सेवक लोगों से विचार्य अर्थात् विचार्य न करके वासवा कमी न करे ॥ २ ॥

अतपास्त्यनधीयान् प्रतिमद्वरुचिर्द्विजः ।

अम्मस्वरमप्यवनेष सह तमैव मज्जति ॥ मनु ४ । १०४ ॥

एक (अतपाः) अज्ञानधर्म अतप्यधर्मार्थ तपसहित वृत्ता (अनधीयान्) विद्या प्राप्त हुआ तीक्ष्ण (प्रतिमद्वरुचि) अस्मत्त धर्मार्थ वृत्तों स राज सेवेराजा के तीनों पत्न की वीर्य से समुद्र में ताने के समाज अपने हुए कर्मों के साथ ही दुष्कृत्यपर में दुष्टों हैं । वे जो दुष्टों ही हैं परन्तु दमार्थों को साथ हुए करते हैं—

त्रिप्यप्यतपु दत्तं हि विधिनाप्यजितं धनम् ।

दातुमप्यस्यनर्थाय परमादातुरेव च ॥ मनु ४ । १०५ ॥

जो धर्म से अज्ञ हुए धन का एक तीनों को देना है वह दान दान का वाप्य रही धन्य और सेवेराज का अज्ञ परमार्थ में करता है ॥

जो वे दाने ही तो क्या हो—

यथा प्लवर्तप्लवर्ग निमज्जत्युदकं तरन् ।

तथा निमज्जतोऽधस्तादक्षी दातुमतीच्छन्ती ॥ मनु ४ । १०६ ॥

देवे प्लवर्ग की वीर्य में वेद के अज्ञ में सेवेराजा हुए अज्ञ है देवे प्लवर्ग की दान और प्लवर्ग दोनों अथोक्त अर्थात् दुःख को अज्ञ होत है ॥

पाश्र्वपिण्डियों के लक्षण ॥

धर्मध्वजी सदा सुध्वस्तुष्टिर्लोकोकवम्भकः ।

वैद्यालम्बितिको द्वेयो हिंसः सर्वाभिसम्बन्धकः ॥ १ ॥

अधोदृष्टिर्नैकृतिकः सार्वसाधनतत्पटः ।

शठो मिथ्याविनीतश्च वक्त्रमतधरो द्विजः ॥ २ ॥ मनु ४।१३२।१३९ ॥

(धर्मध्वजी) धर्म कुल भी न करे परन्तु धर्म के नाम से लोगों को का

(सदा सुध्वः) धर्मवा बोम से पुन (सुध्वः) कपटी (लोकोकवम्भकः) संसारी

मनुष्य के सामने अपनी बर्माई के गपोड़े माता करे (हिंसः) आदिनों का धतक

अन्ध से बैलुहि रखेयका (सर्वाभिसम्बन्धकः) सब बन्धे और गुरी से भी मंज

रन्धे उसको (वैद्यालम्बितिकः) धर्मात् विद्यासे के समान पूर्व कीर नीच समन्धे ॥ १ ॥

(अधोदृष्टिः) नीति के किये नीचे दृष्टि रखे (नैकृतिकः) ईर्ष्यक किसी

के इसका पैसा पर अपना किये हो तो उसका बन्धन प्रत्येक केने को

तत्पर रहे (धर्मध्वजः) धर्म कपट धर्म विद्यासम्बन्धकों न हो अपना

प्रबोधन आपने में कुर (कुर) धर्म अपना कात कुरी नहीं न हो परन्तु हक

कमी न दोषे (मिथ्याविनीतः) नुह नुह कपट से हीन संतोष छात्रता विद्यासे

उसको (वक्त्र) कुर के समान नीच समन्धे ऐसे १ धर्मों कसे पाकपटी

होते हैं इनका विद्या का बोध कमी न करे ॥ २ ॥

धर्म शनैः सञ्चिनुयाद् वक्ष्मीकमिह पुष्टिकाः ।

परलोकासहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ १ ॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।

न पुत्रदारं न दातिर्धर्मस्तिष्ठति क्वचन ॥ २ ॥

एकः प्रजापतः जन्तुरेक एव प्रसीयतः ।

एकोन भुक्ते सुकृतमेक एव च पुण्यतम् ॥ ३ ॥ मनु ४।१३८-१४ ॥

एकः पापानि कुर्वत फलं भुक्ते महात्मनः ।

भोक्तारो विप्रमुष्यन्ते कर्त्ता दोषश्च विव्यतः ॥ ४ ॥ महा उक्तो मनु ३२ ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठजातुसार्धं क्षितौ ।

विमुक्ता बाणधरा पाम्ति धमस्तमनुगच्छति ॥ ५ ॥ मनु २।२३१ ॥

श्री और पुन को चाहिये कि नीचे पुष्टिक धर्मात् हीनक वक्ष्मीक धर्मात्

वक्ष्मी को बधाही है कैसे सब भूतों को हीन न देकर परलोक धर्मात् परब्रह्म

के सुकार्य धीरे २ धर्म का धर्म करे ॥ १ ॥ क्योंकि परलोक में न मरता न

पिता न पुत्र न श्री न शक्ति सहाय कर सकते हैं किन्तु एक धर्म ही महाबल

होता है ॥ २ ॥ देखिये धर्मका ही जीव जन्म धीरे मरने को मरत होता एक

ही धर्म का कल जो मुन और धर्म का जो दुःखकषण सब इसको भोगता

है ॥ ३ ॥ यह भी समझ लो कि कुरुष्व में एक पुनरुप रूप करके पदार्थ छाता

है और महात्मन धर्मात् सब कुरुष्व इसको भोगता है आयेयसे दोषधर्मी नहीं

होते किन्तु धर्म का कल ही दोष का नापी होता है ॥ ४ ॥ जब कहीं

मिसी का सम्बन्धी मर जाता है उसको मही के डेरे के समान भूमि में धोकर
पीर से बन्धुर्क विमुक्त होकर चले जाते हैं कीर्ति उसके साथ जाने काका कही
होता किन्तु एक धर्म ही उसका सही होता है ॥ २ ॥

तस्मात्तमे सहायार्थे नित्यं सञ्चिनुयाच्छने ।

धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति तुस्तरम् ॥ १ ॥

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा ब्रतकिंल्लिपम् ।

परलोकां मयस्याद्य मास्वन्तं अगरीरिचम् ॥ २ ॥ मनु ४।१४१।२४३ ॥

उप हेतु से परलोक अर्थात् परलोक में सुख और जन्म के सहायार्थ जिस
धर्म का सहाय धीरे १ करता थाय क्योंकि धर्म ही के सहाय से धर्म १ तुस्तर
दुष्कृत्यार को जीव तर सज्जता है ॥ १ ॥ किन्तु जो पुरुष धर्म ही को प्रथम
समस्या जिसका धर्म के अनुष्ठान से कर्त्तव्य पाप दूर हो गया उसको प्रथम
लोक और अन्त्य विद्वत् का शरीरक है उस परलोक अर्थात् परमार्थमीय
समाज को धर्म ही शीघ्र प्राप्त करता है ॥ २ ॥ इसलिये:—

ब्रह्मकारी मृदुर्वाग्मिः कृपाचारैरसंबन्धुः ।

अहिंसो वमवानाम्यां अपेक्षार्थं तथावत ॥ १ ॥

वाच्यार्थं निवृत्ता सर्वे वाक्मूला याम्बिनिस्तुता ।

तास्तु यः स्तेनयद्वाचं स सर्वस्तेयकृत् ॥ २ ॥

भाचारान्नमते द्वात्युरास्वारादीन्विता प्रजा ।

भाचारान्नमस्तस्यमाचारो दुस्त्यकृत्तुम् ॥ ३ ॥ मनु ४।१४१।१२१ ॥

जरा जन्मरी कोमल लम्बाव जितेन्द्रिय हिंसक का दुष्टाचारी पुरुषों से
पृथक् रहनेवाला धर्मात्मा मनु को जीतने और विद्यादि धन से सुख को प्राप्त
होने ॥ १ ॥ परन्तु वह भी जान में रखे कि जिस कष्टों में सब धर्म अर्थात्
अप्यार निमित्त होते हैं वह कष्टों ही उनका भूख और कष्टों ही से सब
अप्यार सिद्ध होते हैं उस कष्टों को जो औरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है
का सब जोरी अर्थात् पापों का करनेवाला है ॥ २ ॥ इसलिये मिथ्याभाषणादिक
जन्म को जोड़ को धर्माचार अर्थात् अज्ञानार्थ जितेन्द्रियता से पूर्व ज्ञान और
धर्माचार से उत्तम प्रजा तथा अज्ञान धन को प्राप्त होता है तथा जो धर्माचार में
वर्त्तक कुछ कष्टों का भाग करता है उसके आचार्य को धन दिया करे ॥ ३ ॥
नोकि—

दुष्टाचारो हि पुरुषो लोके मवति निमित्तः ।

दुःखभागी च सततं व्याधितोऽरुपायुरेव च ॥ मनु० ४।१२० ॥

जो दुष्टाचारी पुरुष है वह संसार में सबकी के मध्य में निम्न को प्राप्त
दुःख कष्टों और विरुद्ध व्याधियुक्त होकर अरुणा का भी भोग्येवारा होता है ॥

इसलिये ऐसा प्रवच कर:—

पथपरपथं कम तत्तत्तत्तमेम पर्ययेत् ।

पथरामकं यथातथासंभत पतत ॥ १ ॥

सर्व परवर्तं पुनर्त्तं सर्वमात्मवर्तं सुखम् ।

पठद्विधात्समासेन जगत्सर्वं सुखपुनःकृतम् ॥ २ ॥ मनु ३।१५४।११ ॥

जो २ पराधीन कर्म हो उस २ का प्रपन्न हो त्याग करी जो २ स्वाधीन कर्म हो उस २ का प्रपन्न के साथ प्रेम करे ॥ १ ॥ क्योंकि जो २ पराधीनता है वह २ सब दुःख और जो २ स्वाधीनता है वह २ सब सुख, वही संकेप से सुख और दुःख का सचचा कारण चाहिये ॥ २ ॥

परन्तु जो एक दूसरे के आधीन काम है वह २ आधीनता से ही कामा चाहिये मिला कि जो और पुनः का एक दूसरे के आधीन व्यवहार बर्ताव जो पुनः का और पुनः की का परस्पर विचाररत्न अनुकूल रहना जमिन्दार का विरोध कभी न करना । पुनः की आज्ञानुसार पर के काम की चीज कायर के काम पुनः के आधीन रहना । कुछ व्यवहार में जैसे से एक दूसरे को रोकना बर्ताव वही जिसका कारण कि जब विचार होवे तब ही के साथ पुनः और पुनः के साथ ही कि कुछ बर्ताव जो जो और पुनः के साथ हाथ धक, कष्टविकारप्रवृत्त जो कुछ है वह बीनादि एक दूसरे के आधीन होना है । जो का पुनः मसबुत के बिना कोई भी व्यवहार न करें । इसमें बड़े जमिन्दारक जमिन्दार केसा परपुनःपयवादि काम हैं । इसको जोर के जरूरी पति के साथ ही और ही के साथ पति सदा मसबुत रहें ॥

जो जगत्सर्ववर्तक हो तो पुनः सबकी को पढ़ने तथा सुनिश्चय की सबकी को पढ़ने वाच्यविषय उपदेश और वक्तव्य काके उक्तो विद्वान् करें । जो का पुनःवीन देव पति और पुनः की पुनःवीन बर्ताव सत्यम करके बोध देनी ही है । जगत्सर्व पुनःवर्तक में रहें तत्काल मत्त पित्त के समान बन्धनों को समझें और बन्धनपक अपने सन्तानों के समान दिनों को समझें ॥

पद्मवेदने बन्धनक और बन्धनपिक कैसे होवे चाहिये—

आत्मज्ञानं समाप्यमस्तिविद्या वर्त्मनिरुता ।

यमर्था न्यपकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १ ॥

निवेद्यत प्रशस्ताभि निम्बितानि न सेवत ।

अनास्तिकं बहुज्ञानं पतत्यपिद्वतजज्ञानम् ॥ २ ॥

क्षिप्रं विद्यावाति भिरं श्रुत्योति विद्याय चार्थं मज्जेत न कामात् ।

नासम्पृष्टो ह्यप्युक्ते पदार्थे, तत्प्रज्ञानं प्रथमं परिद्वतस्य ॥ ३ ॥

ताप्राप्यमभिधाम्कृति नष्टं नैच्छन्ति शोचिषुम् ।

आपस्तु य न मुह्यन्ति नरा पण्डितपुत्रय ॥ ४ ॥

प्रवृत्तवाक् विवक्तव्यं ज्ञानं प्रतिमाधवात् ।

आशु प्रमथस्य वक्ता य य स पण्डित उच्यते ॥ ५ ॥

भुतं प्रबालुगं यस्य प्रज्ञा जैव भुतानुगा ।

असंमिष्टार्थमर्थां पण्डिताचार्यं जमेत सा ॥ ६ ॥

ये सब महाभात उद्योगार्थं विदुःप्रजापत न ३२ के शोक है ॥

अर्थ—जिसको आत्मज्ञान सम्बन्ध आत्म आर्षात् जो विष्णु आत्मज्ञानी
कमी न रहे, सुख दुःख, हर्ष मित्र काम मायापमान विष्णु, लुप्ति में हर्ष शोक
कमी न करे धर्म ही में विन विमिश्र रहे जिसके मन को उत्तम २ परार्थ
अर्थात् विनयसम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें वही पवित्र कहा जाता है ॥ १ ॥
सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन अधर्मयुक्त कर्मों का त्याग, ईश्वर वेद, सत्यधर्म की
विष्णु व करवेदता ईश्वर आदि में अज्ञान अज्ञान हो वही पवित्र का कर्तव्य-
कर्म है ॥ २ ॥ जो कठिन विन को भी शीघ्र जान सके, बहुत काम
पर्याप्त शास्त्री को पढ़े, सुख और विचारों को कुछ जाने उत्तम परोपकार में
प्रयुक्त करे अपने स्वार्थ के बिना कोई काम न करे बिना पढ़े या विन योक्त
समय जाने दूसरे के धर्म में सम्मति न दे वही उत्तम प्रज्ञान पवित्र होता
चाहिये ॥ ३ ॥ जो प्रसिद्ध के अनागत की हत्या कमी न करे नष्ट हुए परार्थ
पर शोक न करे आपत्तकर्म में मोह को न प्राप्त अर्थात् व्याकुल न हो वही बुद्धिमान्
पवित्र है ॥ ४ ॥ जिसकी धर्मों सब विद्याओं और प्रयोगों के करने में
अतिविशेष विधि, शास्त्रों के प्रकरणों का वक्त, ब्रह्मयोग तर्क और स्तुतिमात्र
धर्मों के परार्थ धर्म का शीघ्र वक्त हो वही पवित्र कहा जाता है ॥ ५ ॥ जिसकी
प्रज्ञा सुखे हुए सब धर्म के अनुकूल और विनय धर्म बुद्धि के अनुसार हो
जो कमी धर्म अर्थात् मोह धार्मिक पुण्यों की मर्वादा का हेतु न करे वही
पवित्र ज्ञान को प्राप्त होते ॥ ६ ॥ जहाँ ऐसे २ वी पुण्य पात्रोपयोग होते हैं वहाँ
विन धर्म और उत्तमधर्म की बुद्धि होकर प्रतिदिन आत्म ही वक्त रहता है ॥

पढ़ने में अयोग्य और मूर्ख के लक्षणः—

अभुतञ्च समुच्चयो हरिद्रव्य महामना ।

अर्थात् आऽकर्मण्य प्रप्नुर्मूर्ख इत्युच्यते पुत्रे ॥ १ ॥

अनादृत्य प्रविशति आपृष्टो बहु भाषते ।

अविश्वस्त विश्वसिति मूढचेता बराधमः ॥ २ ॥

ये श्लोक भी महाभारत उद्योगपर्व विनयप्रकरण अ ३२ के हैं ॥

अर्थ—जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा न सुना और अतीव धर्मही हरिद्रव्य होकर
कने २ ममोद्यय करवेदता विन कर्म से परार्थों की प्रसिद्ध की हत्या करवेदता
हो वही को बुद्धिमान् शोच मूर्ख कहा जाता है ॥ १ ॥ जो विन बुद्धिमान् सम्यक्
विन के घर में प्रविष्ट हो उस आत्म पर वेदना छोड़े विन पढ़े सम्यक्
बुद्धिमान् बने, विनय के अयोग्य वस्तु का अनुपपन्न में विनय करे वही मूर्ख और
सब अनुपपन्न में भीषण मनुष्य कहा जाता है ॥ २ ॥ जहाँ ऐसे पुण्य अनापक
उपदेशक, गुरु और माननीय होते हैं वहाँ अविद्या अधर्म अज्ञानता कष्ट
शोक और हृष्ट बड़े दुःख ही बढ़ जाता है ॥

अथ विनयिणों के लक्षणः—

आत्मस्य महमोहो वा आपलं गोष्ठिरय वा ।

स्तम्भता चाभिमानित्य तथाऽस्पृगित्यमय वा ।

एत ये सप्त दोषाः स्युः सदा विनयार्थिनां मता ॥ ३ ॥

सुबोधितः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम् ।

सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥ २ ॥

ये भी विदुरप्रमाण का उ के श्लोक ५ ६ हैं ॥

अर्थ—(व्याख्यान) अर्थात् शरीर और बुद्धि में अक्षय्य तथा मोह किसी कष्ट में कैसाकर चपकता और इधर उधर की ओर क्या करता हुआ पड़ते पड़ते एक जगह अभिमुखी अवस्थायी होना वे सप्त दोष विषयिणी में होते हैं ॥ १ ॥ जो देखते हैं उनके विषय कभी नहीं जाती । कुछ मोहने की इच्छा करने वाले को विषय कहाँ ? और विषय पाने वाले को कुछ कहाँ ? क्योंकि विषय-सुखार्थी विषय को और विषयार्थी विषयसुख को छोड़ दे ॥ २ ॥ देखे किने विषय विषय कभी नहीं हो सकती और देखे को विषय होती है—

सस्ये एतानां सवतं दान्ताणामूर्ध्वरेतसाम् ।

प्रहस्ये दहेप्राञ्ज् सर्वपापान्युपासितम् ॥ १ ॥

को सहा सम्पादक में प्रवृत्त, लिटरेचर और विषय कीर्ण सम्पादकित
कमी व हो उन्हीं का प्रकाशनी सम्पादक और वे ही विद्वान् होते हैं ॥ १ ॥

इसविषये हम सबबहुल सम्पादक और विद्यार्थियों को होना चाहिये।
 छात्रात्मक होना ऐसा सब किया करें जिससे विद्यार्थी होय सत्कार्यी सम्माननी
 सम्माननी सम्मान, जिसेमित्रकता सुखीकतवि दुःखगुणबुद्ध करीर और धर्मा का
 पूर्व सब क्या के समान बंधवि शास्त्री में विद्वान् हो। सब उनको कुपेष्ट सुकपे में
 और विद्या पढ़ने में चेष्टा किया करें। और विद्यार्थी होय सब जिसेमित्रप सान्ध
 पढ़नेहारों में प्रेम विचारशील परिधमी होकर ऐसा पुस्तक्य करें जिससे पूर्व
 विद्या पूर्व धातु परिवर्तन धर्म और पुस्तक्य करवा धातुय इत्यादि मध्यम क्यों
 के काम हैं। जिनकी का कर्म राजधर्म में रहे। धर्मों के कर्म मध्यमबोध से
 वेदवि विद्या पद विद्या करके देशों की भाषा भाषा मध्य के ध्यापर की
 रीति उनके मध्य जानका बचना करीरकर, हीपहीपमपर में जाया भाषा
 ध्यापर्य काम का धारमम करवा पद्यापकाय और ऐसी की उक्ति अनुसार से
 करवा कर्माजी धन का बंधाया, विद्या और धर्म की उक्ति में धन करवा सत्क-
 कारी विष्णुपटी होकर सत्कता स सब लब्धहार करवा सब वस्तुओं का रक्षा
 ऐसी करवा जिससे कोई नष्ट न होने पावे। राज्ञ सब सेवार्थों में कुर पान्धविद्या
 में विपुल अतिप्रम से द्विती की सेव और उन्हीं से धपवी उपजीविन्य कर
 और द्विज होय इसके धाम धाम सब कथन विद्यादि में जो कृत्य लब्ध हो
 सब कृत्य एवं। धर्मक अतिप्रम कर दें। जहाँ क्यों को परपर मीति उपकर
 सत्कमता सुख दुःख हावि काम में पुस्तक्य रहकर मध्य और मध्य की उक्ति
 में सब मध्य धन का लब्ध करत रहवा। धी और पुस्तक का विधेय कभी न
 होना चाहिये क्योंकि—

पानं कुम्भसंसृष्टं पत्या च विपद्दोऽष्टमम् ।

सप्तोम्याहवासः नारीसम्पत्तयानि पद ॥ ५५ ॥ ६३ ॥

मद्य, मांस आदि मादक द्रव्यों का पीना कुछ पुरुषों का छद्म पतिविभोग प्रवेशी नहीं तब ही व्यर्थ पावनी आदि के दर्शन के भ्रम से फिरती रहना और परमे पर में जाने उपन्यस्य करवा का बाध ने का की को वृत्ति करनेवाले पुरुष हैं। और ये पुरुषों के भी हैं। पति और की का विभोग दो प्रकार का होता है कभी कर्मार्थ वेदान्तर में जाना और दूसरा मृत्यु से विभोग होता इन में से प्रथम का उपन्यस्य नहीं है कि दूर देश में यात्रार्थ जाने तो की को भी साथ रखने ह्यक प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक विभोग न रहना चाहिये ॥

प्र०—की और पुरुष के बहुत विवाह होने योग्य हैं या नहीं ?

उ०—‘पुरापत न’ अर्थात् एक समय में नहीं ॥

प्र०—क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहिये ?

उ०—हां जैसा—

सा चन्द्रस्तयोनि स्यादु गतप्रस्यतातापि वा ।

पौनर्मवेन भर्ता सा पुन संस्कारमर्हति ॥ मनु ३ । १०६ ॥

जिस की का पुरुष का पश्चात्पत्यमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् चन्द्रस्तयोनि की और चन्द्रशीर्ष पुरुष हो उसके समय की का पुरुष के साथ पुनर्विवाह होता चाहिये किन्तु मादक द्रव्य और वैश्य कर्मा में चन्द्रोनि की चन्द्रशीर्ष पुरुष का पुनर्विवाह न होता चाहिये ॥

प्र०—पुनर्विवाह में क्या दोष है ?

उ०—(पहिला) की पुरुष में प्रेम न्यून होता क्योंकि जब चाहे तब पुरुष को की और की को पुरुष कोर कर दूसरे के साथ सम्बन्ध करके । (दूसरा) जब की का पुरुष पति या की के मरने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तब समय की का पूर्व पति के पक्षों का उदा कोरना और उनके कुटुम्ब पक्षों का उनसे प्यारा करना । (तीसरा) बहुत से भद्रकुल का नाश का चिह्न भी न रह कर उसके पक्षार्थ द्विज मित्र हो जाना । (चौथा) पतिव्रत और कीव्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह का अनेक विवाह कभी न होता चाहिये ॥

प्र०—जब वैराग्येव हो जाय तब भी उसका कुछ नष्ट हो जाय और की पुरुष व्यभिचारदि कर्म करक गर्भपातवादि बहुत बुरे कर्म करेंगे इसलिये पुनर्विवाह होता अच्छा है ।

उ०—नहीं ॥ क्योंकि जो की पुरुष ब्रह्मचर्य में निष्ठ रहता चाहे तो कोई भी उपव्रत न होता और जो कुछ की परम्परा रखने के लिये किसी अपन स्वयंति का बन्धन मोड़ के खड़े उससे कुछ अज्ञेय और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रह सके तो विभोग करके सन्तानोत्पत्ति करेंगे ॥

प्र०—पुनर्विवाह और विभोग में क्या भेद है ?

उ०—(पहिला) जैसे विवाह करने में कन्या अपने पिता का घर छोड़ पति के घर को प्राप्त होती है और पिता से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और

विधवा की उसी विधवाहित पति के घर में रहती है। (दूसरा) उसी विधवाहित की के लड़के उसी विधवाहित पति के दावमागी होते हैं। और विधवा की के लड़के धीरव्रत के न पुत्र कहलाते व उसका योग होता न उसका स्वयं उन लड़कों पर रहता किन्तु वे मृतपति के पुत्र बज्जत उसी का गोत्र रहता और उसी के पशयों के दावमागी हो कर उसी घर में रहते हैं। (तीसरा) विधवाहित की पुत्र को परस्पर स्नेह और पावन करना अवश्य है और विधवा की पुत्र का पुत्र भी सम्मान्य नहीं रहता। (चौथा) विधवाहित की पुत्र का सम्मान्य भरणपर्यन्त रहता और विधवा की पुत्र का कर्ष के पश्चात् ब्रूत जाता है। (पाँचवां) विधवाहित की पुत्र कापस में पुत्र के कर्मों की सिद्धि करने में बल किया करते और विधवा की पुत्र अपने १ घर के काम किया करते हैं।

प्र०—विधवा और विधवा के विधवा एक से हैं या पुत्र २ ?

उ०—कुछ बोधा वेद है जिसने पूर्व कह अपने और वह कि विधवाहित की पुत्र एक पति और एक ही की मित्र के दया सम्मान उत्पन्न कर सकते हैं और विधवा की पुत्र दो या चार से अधिक सम्मानोत्पत्ति नहीं कर सकते हैं क्योंकि बिना कुमार कुमारी ही का विधवा होता है जैसे मित्रकी की या पुत्र मर जाता है उन्हीं का विधवा होता है कुमार कुमारी का नहीं। जैसे विधवाहित की पुत्र सदा सदा में रहते हैं जैसे विधवा की पुत्र का व्यवहार नहीं किन्तु विधवा मृतपति के समय एकत्र न हो। जो की अपने ब्रिने विधवा करने तो जब दूसरा धर्म रहे उसी दिव से की पुत्र का सम्मान्य ब्रूत जाय। और जो पुत्र अपने ब्रिने करे तो भी दूसरा धर्म रहने से सम्मान्य ब्रूत जाय। परन्तु यही विधवा की दो तीन वर्ष पर्यन्त उन लड़कों का पावन करके विधवा पुत्र को दे देवे। ऐसे एक विधवा की दो अपने ब्रिने और दो २ अन्य चार विधवा पुत्रों के ब्रिने सम्मान कर सकती और एक मृतपति पुत्र भी दो अपने ब्रिने और दो २ अन्य चार विधवाओं के ब्रिने पुत्र उत्पन्न कर सकता है ऐसे मित्रकर दया २ सम्मानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है।

इमां त्वमिन्द्र मीद्वः सुपुत्रां मुमगां कृषु।

दशास्यां पुत्रा नापेक्षि पतिमेकानुश कृषि ॥

अ म १ । सू ८२ । म ४२ ॥

इ (मीद्व इन्द्र) जीवें सीकने में धर्मार्थ ऐश्वर्यपुत्र पुत्र। सू इस विधवाहित की या विधवा किन्हीं को भेद पुत्र और सौम्याश्वपुत्र कर विधवाहित की में दया पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान। इ एवी । सू भी विधवाहित पुत्र का विधवा पुत्रों से दया सम्मान उत्पन्न कर और और ग्यारहवें पति को समर्थ। इस वेद की आज्ञा ३ आज्ञा ४ अत्रिण और वैश्वदेवका रती और पुत्र दया २ सम्मान ४ अधिक उत्पन्न न करें क्योंकि अधिक करने से सम्मान निर्बल विधु दि, पशयपु होते हैं और स्त्री तथा पुत्र भी निर्बल पशयपु और रोपी होकर दृष्टव्य में बहुत से दुःख पाते हैं ॥

प्र०—यह विधवा की बात व्यभिचार के समाव दी जाती है ?

उ०—जैसे विधवा विवाहिता का व्यभिचार होता है वैसे विधवा विधुष्ये का व्यभिचार कहा जाता है । इस से यह सिद्ध हुआ कि जैसा विधवा से विवाह होने पर व्यभिचार नहीं कहा जाता तो विधवा पूर्वक विधवा होने से व्यभिचार न कहा जाता । जैसे—दूसरे की कन्या का दूसरे का कुमार के साथ शास्त्रोक्त विधिपूर्वक विवाह होने पर समागम में व्यभिचार का पाप सम्भव नहीं होती वैसे ही वैशाखोक्त विधवा में व्यभिचार पाप सम्भव न मानना चाहिये ॥

प्र०—इ तो ठीक परन्तु वह वैधवा के समाव क्यों दी जाती है ?

उ०—यही क्योंकि वैधवा के समागम में किसी निमित्त पुनः का कोई विधवा नहीं है और विधवा से विवाह के समाव विधवा है जिस दूसरे की कन्या होने दूसरे के साथ समागम करने में विवाहपूर्वक सम्भव नहीं होती वैसे ही विधवा में भी न होती चाहिये । क्या जो व्यभिचारी पुनः का भी होता है वे विवाह होने पर भी कुर्म से बचते हैं ?

प्र०—हमको विधवा की बात में पाप मायूम पड़ता है ।

उ०—जो विधवा की बात में पाप मानते हो तो विवाह में पाप क्यों नहीं मानते ? पाप तो विधवा के होकर भी है क्योंकि ईश्वर के प्रति अमानुष्य का पुनः का स्वाभाविक व्यवहार एक ही नहीं रहता सिवाय वरमयका पूर्वविद्वान् योगियों के ? क्या गर्भपातकरन न वहन्य और विधवा की और पुनः का पुनः का महासम्भार को पाप नहीं मानते हो ? क्योंकि जब तक वे पुनः का में हैं मन में सम्प्रत्यक्ष और विधवा की चाहना होने वालों को किसी सम्प्रत्यक्ष या अतिप्रत्यक्ष से दूर रहने से गुण २ कुर्म बुरी बात से होते रहते हैं ॥

इस व्यभिचार और कुर्म के रोकने का एक बड़ी ओह उपाय है कि जो विधवा रह उन्हें वे विवाह का विधवा भी न करें तो ठीक है । परन्तु जो ऐसे नहीं हैं इनका विवाह और शास्त्रोक्त में विधवा व्यवहार होना चाहिये । इससे व्यभिचार का न्यून होना ऐसा ही उचित सम्भव होकर मनुष्यों की बुद्धि होना सम्भव है और गर्भहत्या सर्वथा दूर जाती है ॥

और पुनः का उपाय की और वैधवादि भी न बिलों ल उपाय पुनः का व्यभिचारपूर्ण कुर्म उपाय कुर्म में कर्मक वंश का उपाय, की पुनः का उपाय और गर्भहत्या कुर्म विवाह और विधवा से विवाह होता है, इसलिये विधवा करना चाहिये ॥

प्र०—विधवा में क्या २ बात होती चाहिये ?

उ०—जैसे अतिविधि से विवाह वैधवा अतिविधि से विधवा विधवा विधवा में धन पुनः की अनुमति और कन्या का की सम्भवता होती है वैसे विधवा में भी कन्या का एक पुनः का विधवा होना हो तब अपने कुर्म में पुनः विधवा के सम्भव प्रकट करें कि इन दोषी विधवा सम्प्रत्यक्ष के विधवा का है । अब विधवा का विधवा पुनः होना अब एक संभाव न करेंगे ।

को सम्मन्य करें तो पाप और श्रापि का सम्मन के बचकनीय हों । महीने २ में एक बार यमोद्यम का काम करेंगे यम रहे पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त पुण्य रहेंगे ॥
प्र०—विधवा अपने बर्ब में होना चाहिये या अन्ध बच्चों के साथ भी ?

उ०—अपने बर्ब में या अपने से उत्तम बर्बका पुत्र के साथ अर्थात् कैय की कैय जिन और ब्राह्मण के साथ जिनिया जिन और ब्राह्मण के साथ ब्राह्मणी ब्राह्मण के साथ निवस कर सकती है । इत्यन्त तात्पर्य यह है कि बीर सम या उत्तम बर्ब का चाहिये अपने से नीच के बर्ब का नहीं । बी और पुत्र की छवि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह या विधवा से सम्मानोपधि करना ॥

प्र०—पुत्र को विधवा करने की क्या आवश्यकता है क्योंकि वह दूसरा विवाह करेगा ?

उ०—इस विषय आने हैं द्विती में बी और पुत्र का एक ही कर विवाह होता वेदवि शास्त्रों में विषय है द्वितीय बार नहीं । कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में प्रत्यक्ष और विषय बी के साथ कुमार पुत्र और कुमारी बी के साथ पृथक्पृथक् पुत्र के विवाह होने में सम्मान अर्थात् अघर्म है । जैसे विधवा बी के साथ पुत्र विवाह नहीं किया जाता ऐसे ही विवाह और बी से सम्मान किन्ने हुए पुत्र के साथ विवाह की इच्छा कुमारी बी न करती । जब विवाह किन्ने हुए पुत्र को कोई कुमारी कन्या और विधवा बी का प्रत्यक्ष कोई कुमार पुत्र या अग्रेष्ठ तब पुत्र और बी को विधवा करने की आवश्यकता होगी । और वही धर्म है कि जैसे के साथ जैसे ही का सम्मान होना चाहिये ॥

प्र०—जैसे विवाह में वेदवि शास्त्रों का सम्मान है किन्ते निवस में प्रत्यक्ष है या नहीं ?

उ०—इस विषय में बहुत सम्मान है वेदों और सुवोः—

कुहं स्विरोपा कुहं वस्तोऽभिना कुहमिषित्वं करतः कुहो पतुः ।

को वा शयुत्रा विप्रबैव दुवर मर्यं न योपा कण्ठते सुबस्य आ ॥

अ मं १ । सू ७ । मं २ ॥

उदीर्ष्व नार्यमि जीवित्लोकं गतासुमेतसुपं शपु एहि ।

इस्तग्रामस्य दिधिषोस्तवेद पत्युर्भनित्यमामि स पभूय ॥

अ मं १ । सू १५ । मं ४ ॥

हे (अविद्य) बी पुत्रो ! जैसे (वेदां विप्रबैव) वेदा को विप्र और (योपा मर्यं) विप्रविद्या बी अपने पति को (अयस्ये) सम्मान कमान शक्ति में एकत्र होकर सम्मानोपधि को (यो कण्ठते) सब प्रकार से उत्पन्न करती है ऐसे तुम दोनों बी पुत्र (कुहस्विरोपा) कहाँ रात्रि और (कुह वस्तु) कहाँ दिन में बसे थे ? (कुहमिषित्वम्) कहाँ पशुधर्म की प्रति (करतः) की ? और (कुहोपतुः) किस समय कहाँ काय करते थे ? (को वा शयुत्रा) तुम्हारा शयन-काम कहाँ है ? तथा नीच का किन्न दय के रहने वाले हैं ? इससे यह भिन्न

हुआ कि देव विदेह में भी पुरुष सँग ही में रहें। और विद्वहित पति के समान विद्वत पति को प्रहस्य करके विधवा की भी सम्मानोत्पत्ति कर लेने ॥

प्र०—यदि किसी का ब्रह्माभ्यास ही न हो तो विधवा विनोय किसके साम करे ?

उ०—देवर के साथ परगु देवर राज्य का कार्य करता तुम समझते हो ऐसा नहीं देखो विद्वत में—

द्वयः कक्षावु द्वितीया वर उच्यते । विद्वत् ३ ॥ १२ ॥

देवर उसको कहते हैं जो कि विधवा का दूसरा पति होता है चाहे चास्य मर्त्य का बड़ा भ्राता चावका चापने बर्ष का चापने से उत्तम कर्ष कासा हो जिससे विनोय करे उसी का नाम देवर है ॥

हे (भरी) विधवे ! तू (पूर्व गताभ्यास) इन भरे हुए पति की चासा बोध के (लेने) बन्धी पुरुषों में से (अग्नि जीवकोकम्) जैसे हुए दूसरे पति को (अपेक्षित) प्राप्त हो और (उदीर्ण) इस बात का विचार और विद्वत् रक्ष कि जो (हस्तप्रसक्त दिविषोः) तुम्हें विधवा के पुनः शास्त्रिणहस्य करनेवाले विद्वत पति के सम्मान के लिये विनोय होय तो (इहम्) वह (अभिज्ञम्) जन्म हुआ चावक उसी विद्वत (पत्न्यः) पति का हस्त्य और जो तू चापने लिये विनोय करेगी तो यह सम्मान (तव) तेरा होगा । ऐसे विधवपुत्र (अग्नि सस्य, वनूय) हो और विद्वत पुरुष भी इसी नियम का पालन करे ॥

अदेवबुध्यपतिष्ठी हैर्षि शिषा पशुस्य सुयमाः सुवर्षा ।

प्रजावता वीरवर्देवकांमा स्योनेममग्नि गार्हपत्यं सपर्य ॥

अमर्ष का १४ । अशु २ । मं १८ ॥

हे (अपतिष्णवेदुभि) पति और देवर को तुम्हें व देने वाली की ! तू (इह) इस पृथग्वस में (पशुमा) पशुओं के लिये (शिषा) कल्याण करनेवाली (सुवर्षा) अच्छे प्रकार धर्म नियम में चलने वाले (सुवर्षाः) रूप और सब चास विधवपुत्र (प्रजावता) उत्तम पुत्र पौत्रादि से सहित (वीरस्य) दुरवीर इन्हीं को जबसे (देवकांमा) देवर की कामका करने वाली (सोमा) और मुक्त देने वाली पति का देवर को (वधि) प्राप्त होके (इहम्) इस (गार्हपत्यम्) पृथग्वसम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्र को (सपर्य) सेवन किया कर ॥

तस्मिन्नेव विधानेन मित्रा विन्दत द्वयः ॥ अशु ३ । १३ ॥

जो अश्वतोषि की विधवा हो जाय तो पति का मित्र पोट माई भी रखने विवाह कर सकता है ॥

प्र०—एक की या पुरुष कितने विनोय कर सकता है और विद्वहित विद्वत पतियों का नाम क्या होता है ?

उ०—सोमः प्रयमो विविद्व गन्धर्षो विविद्व उत्तरः ।

सूतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्तु मनुष्यमाः ॥

अ मं १ । अशु ४ । मं १९ ॥

हे कि ! जो (ते) तेरा (प्रपन्नः) पहिना विधाहित (पतिः) प्रति तुझसे (विविधे) प्राप्त होता है कल्याण काम (धर्मः) सुकुमारतादि सुखयुक्त होने से धर्म जो बुरा विधोय से (विविधे) प्राप्त होता वह (मन्त्रार्थः) एक ही से समीप करने से यन्त्रार्थ जो (तृतीय उच्यते) जो के पञ्चाव हीसरा प्रति होता है, वह (अग्निः) अस्तुष्यतायुक्त होने से अग्निप्रज्ञाक और जो (ते) तें (तृतीया) जोसे से केके म्प्राहर्षे तक विधोय से प्रति होते हैं वे (मनुष्यजाः) मनुष्य काम से करते हैं । बैद्या (इमां व्यभिचरन्) इस मन्त्र से म्प्राहर्षे तक जो विधोय कर सकती है वैस पुण्य भी म्प्राहर्षी की तक विधोय कर सकता है ।

प्र०—एकद्वय यन्त्र से द्वा पुत्र और म्प्राहर्षे प्रति को क्यों न मिलें !

उ०—जो देखा कार्य करोये तो विधायक ब्रह्मम्” “देवर” कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते” “अनेकृति” और “गन्धर्वो विविध उच्यते” इत्यादि वैदिकमन्त्रों से विद्वद्गर्भ होया क्योंकि तुम्हारे कार्य से बुरा भी प्रति प्राप्त नहीं हो सकता ।

देवराज्ञा सपितृवाज्ञा विधा सम्पद् नियुक्तया ।

प्रज्जन्विताधिगन्तव्या सन्तानया परिचर्ये ॥ १ ॥

ज्येष्ठो यधीयसो भार्या यधीयान्वाप्रज्जन्वियम् ।

पठितौ मन्त्रो यस्या नियुक्तावप्यनापदि ॥ २ ॥

औरस्य देवज्जन्म ॥ ३ ॥ मनु १ । २८, २९ १२३ ॥

इत्यादि मनुजी ने लिखा है कि (अविश्वः) अर्थात् पति की वा पीढ़ियों में प्रति का बोध का बड़ा भाई अन्त्या स्वभावों के साथ अपने से उच्चत आदिक पुत्र से विधाय की का विधोय होया चाहिये । परन्तु जो वह दृष्टान्तिक पुत्र और विधाय की सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करती हो तो विधोय होया उचित है । और जब सन्तान का सर्वक रूप हो तो वह विधोय होय । जो अल्पमन्त्र अर्थात् सन्तानों के होने की इच्छा न होने में कहे भाई की की से बोदे का और धादे की की से बड़े भाई का विधोय होकर सन्तानोत्पत्ति हो जाने पर भी पुत्र वे नियुक्त आपन्न में सम्ममम करें तो पठित हो जायें अर्थात् एक विधोय में दूसरे पुत्र के गर्म रहने तक विधोय की अवधि है उसके पश्चात् सम्ममम न करें । और जो दोनों के बिने विधाय हुआ हो तो जोसे धर्म तक अर्थात् पूर्णक रीति से एक सन्तान तक हो सकते हैं । पश्चात् विधायक विधी जाती है, इससे वे पठित गिने जाते हैं । और जो विधाहित की पुत्र भी द्वायें धर्म से अधिक सम्ममम करें ता कामी और विद्वद्गीत होते हैं अर्थात् विधाय का विधोय सन्तानी ही के धर्म कहे जाते हैं परन्तु कामाधीन के बिने नहीं ।

प्र०—विधोय मर पीये ही होता है का और प्रति के भी ?

उ०—और भी होता है—

अन्यमिच्छस्व मुभगे पतिं मत् ॥ का मं० १० । सू १० । मं १ २

जब पति सन्ताबोत्पत्ति में असमर्थ होते तब अपनी स्त्री को छाड़ा देने कि हे मुझे ! सौमित्र की इच्छा करने वाली स्त्री वृ (मत) मुझ से (सम्पत्) दूसरे पति की (इच्छा) इच्छा कर क्योंकि जब मुझ से सन्ताबोत्पत्ति न हो सकेगी । तब स्त्री दूसरे से विभोय करके सन्ताबोत्पत्ति करे । परन्तु उस विधित्त महामय पति की सेवा में उत्तर रहे जैसे ही स्त्री भी जब रोगदि दोनों से प्रसन्न होकर सन्ताबोत्पत्ति में असमर्थ हो तब अपने पति को छाड़ा देने कि हे स्वामी ! प्रायः सन्ताबोत्पत्ति की इच्छा मुझ से जोड़ के किसी दूसरी विधत् स्त्री से विभोय करके सन्ताबोत्पत्ति कीजिये । जैसा कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री आदि ने किया और जैसा व्यासजी ने विष्णुधनु और विचित्रवीर्य के मर जाने के पश्चात् जब माद्री की स्त्रियों से विभोय करके अम्बिका में उत्तराहू और अम्बाविक्रमा में पाण्डु और द्रुपदी में विदुर की उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस अर्थ में प्रमाण हैं ।

प्रोषितो धर्मकार्णार्थं प्रतीक्ष्योऽहो नरः समा ।

विचार्यै पद् यशोर्ध्वं वा कामार्थं जीस्तु वत्सराज ॥ १ ॥

यन्म्याहमेऽधिषेद्यान्ने दशमे तु सूतप्रजा ।

एकादशे क्रीडितानी सद्यस्त्वग्निषादिनी ॥ २ ॥ मनु ३।७५।५१ ॥

विधित्त की जो विधित्त पति धर्म के धर्म परदेय बना हो तो जब जब विधत् और कीर्ति के बिने प्रसन्न हो तो वह और बचादि कामका के बिने गया हो तो तब जब तक यह देख के पश्चात् विभोय करके सन्ताबोत्पत्ति करके जब विधित्त पति आवे तब किन्तु पति बूट जाये ॥ १ ॥ जैसे ही पुरुष के बिने भी विधत् है कि कल्या हो तो धर्म (विवाह से प्राप्त धर्म तक स्त्री को धर्म न रहे) सन्ताब होकर मर जाये तो दशमे, जब १ हो तब १ कन्या ही होते पुरुष न हो तो अन्तरहर्ष धर्म तक और जो अग्नि बोझने बाकी हो तो अथ उस की को जोड़ के दूसरी स्त्री से विभोय करके सन्ताबोत्पत्ति कर लेवे ॥ २ ॥ जैसे ही जो पुरुष असमर्थ बुद्धिमानक हो तो स्त्री को अर्पित है कि उसको जोड़ के दूसरे पुरुष से विभोय कर सन्ताबोत्पत्ति करके उसी विधित्त पति के शपथगो सन्ताब कर लेवे । इत्यादि प्रमाण और पुष्टियों से स्पष्टर विवाह और विभोय से अपने २ कुल की उत्पत्ति करें । जैसा “धीरथ” अर्थात् विधित्त पति से उत्पन्न हुआ पुत्र पितृ के पक्षों का स्वामी होता है जैसे ही “वधव” अर्थात् विभोय से उत्पन्न हुए पुत्र भी मृतपितृ के शपथगो होते हैं ॥

जब इस पर भी धीर पुरुष को ज्ञान एकता चाहिये कि धीर धीर राज को अमृत समर्थ, जो कोई इस अमृत वधर्म को परकी वेरवा या बुर पुत्रों व सत्र में जोते हैं वे महामूर्ख होते हैं । क्योंकि विधत् व माद्री मूर्ख होकर भी अपने स्वयं का अधिक के बिना सम्पत्त बीज नहीं बोते । जो कि साधारण धीर धीर मूर्ख का ऐसा वर्तमान है तो जो सर्वोत्तम अनुभवादीर रूप बृह के बीज को कुपेय में छोटा है वह महामूर्ख कहला है क्योंकि उसका पक्ष दशको नहीं मिलता और “आमा धि जायत पुत्र” वह आदित्य प्रभों का वधन है ।

अज्ञानज्ञास्मर्मावसि हृदयादविजायसे ।

आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव श्रद्धा श्रुतम् ॥ वि० अ० २ । अ० ४ ॥

हे पुत्र ! तू अज्ञान से उत्पन्न हुए जीवों से और हुए से उत्पन्न होता है इसलिये तू मेरा आत्मा है । मुझसे पूर्व मत मरे किन्तु सी बातें तक जी । जिससे वेसे १ महात्मा और महात्मनों के शरीर उत्पन्न होते हैं उसको वेदव्यादि दुष्टोपदेश में बोला या हुए जीव अन्धे कोट में तुषारवा महापाप का काम है ॥

प्र०—विवाह क्यों करना ? क्योंकि इससे जो पुत्र को जन्म में पड़े बहुत सङ्कोच करना और हुआ भोग्या पड़ता है इसलिये विवाह के साथ जिसकी प्रीति हो तत्काल से मिले रहें जब भीति हट जाय तो जोड़ दें ।

उ०—बह पट्ट पकियों का व्यवहार है मनुष्यों का नहीं । जो मनुष्यों में विवाह का विधान है रहे तो सब गृहस्थ के अन्धे १ व्यवहार का भ्रम हो जायें । कोई किसी की सेवा भी न करे और व्यवहार बफकर सब रोपी निर्बल और अन्धानु होकर शीघ्र १ मर जायें । कोई किसी से मम का व्यवहार न करे । गृहस्थका मैं कोई किसी की सेवा भी नहीं करे और महात्मनिष्ठ बफकर सब रोपी निर्बल और अन्धानु होकर कुलों के कुल बह हो जायें । कोई किसी के पदार्थों का स्वामी या दावनामी भी न हो सके और न किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकालपर्यन्त स्वाम्य रहे, इस्यादि दोनों के विचारवार्थ विवाह ही होय सर्वथा बोध ॥

प्र —जब एक विवाह होय एक पुत्र को एक ही और एक ही को एक पुत्र रहेय तब ही कर्मवृत्ति विवशगिणी अथवा पुत्र दीर्घरोपी हो और दोनों की बुधावस्था हो रहा न जाय तो फिर क्या करें ?

उ —इनका अनुष्ठान विवश विवश में दे चुके हैं । और कर्मवृत्ति की से एक वर्ष तक समामम न करने के समय में पुत्र से या दीर्घरोपी पुत्र की की से न रहा जाय तो किसी से विधोय करके उसके लिये पुत्रोपनि करके परानु वेरना गमन का व्यवहार कभी न करें । अर्थात्क हो बर्तक अथवा वस्तु की हथ्या गमन का रक्षण और रक्षित की वृद्धि, नई होने जब का व्यवहार देतोपकार करने में किया करें । सब प्रकार के अर्थात् पूर्ण रीति से अपने १ बर्तक के व्यवहारों को अनुष्ठानाहर्तक प्रवच से तब मम जब से सर्वथा परमार्थ किया करें । अपने ममका पिता, शास्त्र, ब्रह्म की अन्धानु शुभ का करें । मित्र और अज्ञोसी बर्तक, राजा बिद्वन्, पैस और सपुत्रों से प्रीति रख के और जो कुछ जबर्ती है उनसे उबेका अर्थात् ब्रह्म जोड़कर उनके सुधारने का बल किया करें । जहाँ तक बल सके जहाँ तक प्रेम से अपने अन्धानु के बिद्वान् और सुविद्या का बल करने में धन्यादि पदार्थों का व्यवहार करके उनको पूर्ण बिद्वान् सुविद्यानुक करें और कर्मनुक व्यवहार करके मोक्ष का भी प्राप्त किया करें कि जिसकी शक्ति से परममन्त्र भोगों और पुत्रों १ भोगों को न मारें प्रीति—

पतितोऽपि क्षिप्रं भोक्तो न च यत्रो क्षितेन्द्रियः ।
 विदुग्धा यापि गोः पूज्या न च दुग्धयनी खरी ॥ १ ॥
 अम्बालम्नं गन्धालम्नं सन्पासं पक्षपैषिकम् ।
 इषराद्य सुतोत्पत्तिं कम्पी पञ्च विधयैवेत् ॥ २ ॥
 मद्ये मृतं प्रयजितं क्लीबं च पतितं पतौ ।
 पञ्चत्वापरसु नारीणां पतितरम्यो विधीयते ॥ ३ ॥

ये कपोलकक्षित पारायरी के श्लोक हैं । जो कुछ कर्मकारी क्षिप्र को मद्य और मद्य कर्मकारी दुग्ध को गोप मयने तो इससे पर पक्षपक्ष अम्बाल अम्नं दुग्धा यक्षिक तथा होम ? तथा दुग्ध देवेवाली या न देवे बाकी गाय गोपाओं को पाजनीय होती है वैसे कुम्हार आदि को पानी पाजनीय नहीं होती ? और यह इष्टान्त भी विषय है क्योंकि क्षिप्र और दुग्ध मनुष्य जाति गाय और पानीमित्र जाति हैं कनक्षिप्र पशुजाति से इष्टान्त का पक्षदेव इष्टान्त में मिश्र भी जायेतो भी इसका प्रत्यय अनुक्त होने से यह श्लोक शिष्टों के मातृवीय कभी नहीं हो सकते ॥ १ ॥

जब अम्बालम्न सर्वात् घोड़े को मार के अम्बाल गन्धालम्न गाय को मार के होम करवा ही वेदविहित नहीं है तो उसका कक्षिप्र में निषेध करना वेदविहित क्यों नहीं ? जो कक्षिप्र में इस बीच कर्म का निषेध मात्र आज तो वेदा आदि में किधि या जाय तो इसमें ऐसे कुछ काम का अर्थ युग में होना सर्वथा असम्भव है । और अम्बाल की वगैरि शायों में किधि है इसका निषेध करना विमूढ़ है । जब मत्स्य का निषेध है तो सर्वथा ही निषेध है । जब देवर से पुत्रोत्पत्ति करना नहीं है किष्का है तो यह श्लोकक्यों क्यों भूलसा है ? ॥ २ ॥

पदि (नष्ट) अर्थात् पति किसी देश इष्टान्तर को बका मचा हो घर में श्री विद्योम कर क्षेत्र उसी समय विद्यहित पति या जाय तो यह किष्का की की हो कोई कहे कि विद्यहित पति की हमने मात्रा परम्पु देसी व्यवस्था पारायरी में तो नहीं किष्का है । क्या श्री के बीच आपत्त्य है जो रोमी पका हो या बकाई हो गई हो इत्यादि आपत्त्यक बीच से भी यक्षिक है इसीविधे ऐसे २ श्लोकों को कभी न मानना चाहिये ॥ ३ ॥

प्र०—क्योंकी तुम पराधर सुधि के बचन को भी नहीं मानते ?

उ०—चाहे किष्का का बचन हो परम्पु वेदविहित होने से नहीं मानते और यह तो पराधर का बचन भी नहीं है क्योंकि जिस मन्त्राध्यक्ष ब्रह्म उवाच तम उवाच तिम उवाच विष्णुकाय वैष्णवाय इत्यादि नहीं का नाम क्षिप्र के अम्बालम्न इसविधे करते हैं कि सर्वमान्य के नाम से हम ग्रन्थों को सब प्रसार मान क्षेत्र और हमारी पुष्कल जीविका भी हो । इसविधे अन्तर्गत्तव्यतुल्य प्रत्यय बनता है । कुत्र २ प्रक्षिप्त श्लोकों को जोर के मनुस्मृति ही वेदानुसृत है धर्म स्मृति नहीं । ऐसे ही अन्य आसक्त्यों की व्यवस्था समझो ॥

प्र०—गृहाभ्यस सक्तं ज्ञेयं वा नृणां है ?

उ०—अग्ने १ कस ज्य और कर्मों में सब नष्ट परम्पु—

यथा नदीनिवा सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ॥

तथैवाधर्मिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ १ ॥ मनु १।१ ॥

यथा वायु समाभिस्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।

तथा गृहस्थमाभिस्य वर्तन्ते सर्वे आधर्माः ॥ २ ॥

यस्मात्प्रयोऽप्याधर्मिणो वामेनाग्नेन स्वाग्नेहम् ।

गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्योष्ठाधर्मो गृही ॥ ३ ॥

स संधार्यः प्रपत्नेन क्षर्गमाद्ययमिच्छता ।

सुखं चेहेच्छता मित्यं योऽध्यायो नृपंछेन्मित्रैः ॥ ४ ॥ मनु १।१०-११ ॥

कैसे बही धीर कने १ वह एकदम जगते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते कैसे गृहस्थ ही के आश्रम से जब आश्रम स्थिर रहते हैं किया इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता । जिससे मनुष्य की आश्रम और संन्यासी तीनों आश्रमों को साथ धीर आश्रम के प्रतिदिन गृहस्थ ही चारक करता है इससे गृहस्थ ज्योष्ठाधर्म है अर्थात् सब व्यवहारों में दुरन्तर रहता है । इसलिये जो मोक्ष धीर संसार के सुख की इच्छा करता हो वह प्रत्यक्ष से गृहाश्रम का चारक करे । जो गृहाश्रम नृपंछेन्मित्र अर्थात् नीच धीर निर्बल पुरुषों से चारक करने योग्य है, उसको अपने प्रभु प्रभु बनाकर चारक करे । इसलिये किया हुआ व्यवहार संसार में है उसका आधार गृहाश्रम है । जो वह गृहाश्रम न होता तो सत्यमोक्ष के न होने से मनुष्य का आश्रम और संन्यासाश्रम कहाँ से हो सकते ? जो कोई गृहाश्रम की विन्या करता है वही विन्यासी है और जो प्रसन्न करता है वही प्रसन्नासी है । परन्तु सभी गृहाश्रम में सुख होता है जब की और सुख होनी परस्पर प्रसन्न धिक्ता पुरुषार्थों और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों । इसलिये गृहाश्रम के सुख का सुख चारक मनुष्य और पुरुष स्वरूप किया है ॥

वह संवेप से समस्तार्थ किया और गृहाश्रम के विषय में शिक्षा शिक्ष दी । इससे जगत् आश्रम और संन्यास के विषय में शिक्षा जान्य ॥

इति श्रीमद्भगवत्संस्कारलक्ष्मीसामिहृत सत्यार्थप्रकाशे सुमापायिमृपिते समावर्तनविवाहगृहाधर्मविषयं चतुर्थं समुद्भासं सम्पूर्णं ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमसमुद्घासारम्

अथ वानप्रस्थसंन्यासविधिं वक्ष्याम

प्रह्वय्याधर्मं समाप्य गृही भवद् गृही भूत्वा यनी भवद्गनी भूत्वा
प्रव्रजेत् ॥ * अथ श्री १४ ॥

मनुष्यों को उचित है कि अष्टवर्षाधर्म को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ
और श्रमण्य होके संन्यासी होने अर्थात् यह अनुक्रम से आधर्म का विधान है ॥

एवं गृहाधर्मं स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।

वस्त्रे वसेत्तु निषण्णो यथावद्विजिसन्निधयः ॥ १ ॥

गृहस्थस्तु यदा पश्यन्पुत्रीपञ्चितमात्मनः ।

अपत्यस्यैव आपत्यं तद्वारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

संक्षम्य प्राप्त्यमाहारं सर्वे खेव परिच्छेदम् ।

पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य वनं गच्छत्सहैव वा ॥ ३ ॥

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यन्नाग्निपरिच्छेदम् ।

प्राग्वारण्यं निःसृत्य निवसन्धियतन्निधयः ॥ ४ ॥

मुत्पन्नैर्विधिविधौर्मेधैः शक्यमूषफलेन वा ।

पठानेव महायज्ञाभिर्यपद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥ मनु १।१-५ ॥

इस प्रकार अठारह वर्षों के अष्टवर्षाधर्म गृहाधर्म का कर्त्ता द्विज अर्थात्
ब्राह्मण वशिष्ठ और अन्य गृहाधर्म में रह कर विधिवत्स्नात और वस्त्रक
इन्द्रियों को बाँध के वन में वसे ॥ १ ॥ परन्तु जब गृहस्थ स्त्रि के रक्त के
और लज्जा कील हो जाय और लड़के का लड़क्य भी हो गया हो तब वन में
जावे वसे ॥ २ ॥ जब ग्राम के आहार और वस्त्रदि सब उद्यमोद्यम पशुओं को
दोष पुत्रों के दण्ड की को रक्त वा अपने साथ लेके वन में निवास करे ॥ ३ ॥
आग्निहोत्र अग्निहोत्र को ले के ग्राम से निकल होमिन्त्र होकर अरव में जावे
वसे ॥ ४ ॥ वाय प्रकर के स्रमा आदि यज्ञ सुम्बर २ शक, मूष फल पुत्र
कंपदि से पूर्वोक्त यज्ञमहायज्ञों को करे और उली से अतिविधवा और
आप भी विवाह करे ॥ ५ ॥

नाभ्यां निस्पृक्तं स्नाहान्तो मेघं समाहितः ।

दाता निस्पृमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ १ ॥

अप्रयत्नं सुखार्थेषु ब्रह्मचारी वरदायकः ।

शरलेष्यम्मन्त्रैश्च वृक्षमूषानिकेतनः ॥ २ ॥ मनु १।८।११ ॥

स्थान्य जबों परने परने में निस्पृक्त भिताय्या सचक्य मित्र
इन्द्रियों का समकलीक विद्यादि का दाण देनेहार और सब पर दानानु किसी

छे कुत्र मी पदार्थ न कोनै हस प्रकर सदा वर्तमान करे ॥ १ ॥ शरीर के मुख के सिधे प्रति प्रपन्न न करे किन्तु मङ्गलकारी (१६) अर्थात् अपनी की छाया हो तत्प्रापि उससे विचलयेछा कुत्र न करे भूमि में सोनै अपने अभिहित न लकीन पदार्थों में ममता न करे वृक्ष के मूल में बसे ॥ २ ॥

तप' भये यं क्षुपबसम्स्तरये शान्ता बिह्रांसो मैत्र्युद्धर्या बरन्त' ।
सूर्य्यद्वारस्य सं विरज्य' प्रयाम्नि यत्राऽमृत' स पुरुषो ह्यभ्यपात्मा ॥ १ ॥

शुद्ध उप म सुचकक र्त्त १ । म ११ ॥

जो शान्त बिहान् कोनै वन में तप धर्मानुष्ठान और सत्य की अज्ञा करके निवासरत्न करते हुए मङ्गल में बसते हैं वे यहाँ वाग्वरहित पूर्व पुरुष हानि वाग्वरहित परमात्मा है यहाँ विमल होकर प्रकाशित सं उच्च परमात्मा को प्राप्त होने का अभिहित हो जाते हैं ॥ १ ॥

अभ्यर्दधामि सुमिधुमर्धे व्रतपते त्वरि ।

व्रतर्त्त भद्रां चार्पेमीधे त्या दीक्षिता अहम् ॥ १ ॥ पठ १ । २४ ॥

वाग्वरत्न को उचित है कि—मैं ज्ञप्ति में होम कर दीक्षित होकर व्रत सत्याचरत्न और अज्ञा को प्राप्त होऊँ ऐसी इच्छा करके वाग्वरत्न हो । वाग्वरत्न की वक्तव्यी धर्मसं वाग्वरत्ना सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त की पदार्थ जब संन्यासमार्ग की इच्छा हो तब ही को पुत्रों के पद में मेरा देवे फिर संन्यास प्रत्यक्ष न ॥ इति संकेपेन वाग्वरत्नविधिः ॥

अथ सन्वासविधिः ॥

पनेपु न बिहृत्यैव तृतीयं मागमायुष' ।

चतुर्थमायुषो मार्गं त्यक्त्वा सङ्गान् परित्यजत् ॥ मनु ६ । २३ ॥

इस प्रकार वन में जायु का तीसरा आय अर्थात् पञ्चदश वर्ष से पचहत्तर वर्ष पर्यन्त वाग्वरत्न होके जायु के बीचे भाग में श्रुतों को बोध के परिजत् अर्थात् संन्यासी हो जाये ॥

प्र०—पृष्ठमम और वाग्वरत्नमम न करके संन्यासाभम कर उसको वाप होला है या नहीं ?

उ०—होला है और नहीं भी होला ॥

प्र०—वह दो प्रकार की बात क्यों कहते हो ?

उ०—दो प्रकार की नहीं क्योंकि जो वाग्वरत्न में विरक्त होकर विषयों में पड़े वह महापापी और जो न पड़े वह महापुण्यवान् प्रत्यक्ष है ॥

पचहत्तर परित्यजत्पचहत्तरमं प्रयजत्प्रमाणा गुहादा प्राणायामं प्रयजत् ७ ॥

वे प्राणायाम ग्रन्थ के वचन हैं ॥

किस दिन कैलास प्राप्त हो उड़ी दिन कर था वन से संन्यास ग्रहण कर लेने । पहिले संन्यास कर पञ्चकम कहा और इसमें विचार अर्थात् वाचस्पय्य व को गृह्यन्वय ही से संन्यास ग्रहण करे । और कृतीय पक्ष यह है कि जो पूर्व निहान् कितेन्द्रिय विषयभोग की कामना से रहित परोपकार करने को इच्छा से कुछ पुण्य हो गृह्यन्वय ही से संन्यास लेने । और वेदों में भी "यतयः * ब्राह्मणस्य विद्वानतः" इसप्रति पदों से संन्यास का विचार है परन्तु—

नाविद्यो दुश्चरिताश्चाप्यन्तो मासमाहितः ।

नाशान्तमानसो यापि प्रज्ञाभेजेनमाप्नुयात् ॥ कठ बड़ी १। मं १३ ॥

जो गुराचार से दूषण नहीं, जिसको शान्ति नहीं जिसका धर्म्य पोषी नहीं और जिसका मन शांत नहीं है वह संन्यास ले के भी प्रज्ञा से परमार्थ को प्राप्त नहीं होता ॥ इसप्रति—

यच्छुद्धाच्यनसी प्राज्ञस्तच्छुद्धं ज्ञान आत्मनि ।

ज्ञानमात्मनि मूढति नियच्छेत्तच्छुद्धं ज्ञान आत्मनि ॥ कठ व २। १३ ॥

संन्यासी शुद्धिमान् अपनी और मन को चकर्म से लोक के जन्म और पाप्य में जमाने और उस ज्ञानस्वप्ना को परमार्थ में जगने और उस विज्ञान को सत्यस्वरूप ज्ञाना में स्थिर करे ॥

परीक्ष्य लोकान् कर्मवितान् ब्राह्मणो निर्वैमायायास्त्यकृतं कृत्तन ।
सद्विद्यानार्थं स गुह्यमयामिगच्छेत् समिष्टाधिः ओजिपं प्रह्मनिष्ठम् ॥

मुक्क उप प मुं कं १। मं १२ ॥

सब बौद्धिक लोगों को कर्म से संश्लिष्ट हुए देखकर ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी कैलास को प्राप्त होवे, क्योंकि बहुत अर्थात् य किन्तु कुछ परमार्थ कृत अर्थात् केवल कर्म से प्राप्त नहीं होता इसप्रति कुछ अर्थ के अर्थ हाथ में लेके बरहिय और परमेश्वर को जानने वाले गुह्य के प्राप्त विज्ञान के सिद्धे ज्ञाने आगे सब जगहों की विवृति कर ॥ परन्तु कहा इनका संय जोड़ देते कि जो—

अविद्यापान्मन्तरं वर्त्तमानां क्षयं धीरा पश्चिदतम्मन्यमाना ।
अरुण्यमाना परियन्ति मूढा अभ्यर्त्तेन नीयमाना यथाग्धा ॥ १ ॥
अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना धर्षं कृतार्था इत्यभिप्रन्यन्ति वाक्ता ।
यत्कर्मिणो न प्रवदयन्ति रागात् संजातुरा स्त्रीकुलोकाश्च्यवन्त ॥ २ ॥
मुक्क उप प मुं १। मं १३ ॥

जो अविद्या के मीठर लक्ष रहे अपने को और और पश्चिदतम्मन्यमाना है वे भीच यदि को जानेहारे मूढ़ जैसे जड़े के पीछे जड़े दुर्गम को प्राप्त होते हैं किन्ते दुर्गमों को पते हैं ॥ १ ॥ जो बहुधा अविद्या में रमण करने वाले पावनुद्धि इन कृतार्थ हैं ऐसा मानते हैं जिन्हें को केवल कर्मकांडी खोप राग से मोहित होकर नहीं ज्ञान और ज्ञान कहते वे अशुद्ध होके जन्म मरणकण दुर्गम में गिरे रहते हैं ॥ २ ॥ इसप्रति—

ब्रह्मन्तर्निहितमसिद्धिस्तार्था' सत्यासयोगाद्यतय' शुद्धसत्त्वा ।

ते प्रज्ञाकोशेषु परास्तकाशे परामृता' परिमुच्यन्ति सर्वे ॥

मुच्यते उप तृतीय मुच्यते च १ । मं १ ॥

जो वेदांत अर्थात् परमेश्वर प्रतिपादक ब्रह्मन्त्री के अर्थज्ञान और ज्ञानर में ब्रह्म प्रकाश मिलित सत्यासयोग से शुद्धत्व करके अन्वयही होते हैं व परमेश्वर में मुक्तिमुख को प्राप्त हो योग के पश्चात् जब मुक्ति में मुक्त को अवधि पूरी हो जाती है तब वहां से ब्रह्म संसार में आते हैं, मुक्ति के बिना दुःख का कष्ट नहीं होता ॥ क्योंकि—

न वै स्मररीरस्य सता' प्रियाप्रियघोरपहतिरस्तस्मररीरं वा वसन्तं न प्रियाप्रिये स्मृतम् ॥ ब्रह्मो ज ८ । अं ११ । मं १ ॥

जो वैराग्यही है वह मुक्त दुःख की प्राप्ति से वृत्तक नहीं कर सकता और जो स्मररहित ब्रह्मज्ञान मुक्ति में सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ एक होकर रहता है तब उसको सांसारिक दुःख दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ इसलिये—

पुत्रैपक्षपात्याश्च वित्तैपक्षपात्याश्च लोकैपक्षपात्याश्च मृत्युत्थायाप्य मित्राचार्यं चरन्ति ॥ कत ८ । मं १० । मं २ । भा १ । अं १ ॥

लोक में प्रतिष्ठा का काम जब से मोक्ष का मान्य पुत्रपुत्र के माद व लक्षण हो के सत्यास योग निकट होकर रात दिन मोक्ष के अर्थों में उत्तर आते हैं ॥

प्राज्ञापत्या निकल्प्येष्टि तस्यां सर्ववेदसम् ॥

हुत्वा प्राज्ञाद्यः प्रमज्जेत् ॥ १ ॥ ब्रह्मैवमाद्यते ॥

प्राज्ञापत्यां निकल्प्येष्टि सर्ववेदसंस्थिताम् ।

आत्मन्यप्रीतिस्मरारोप्य प्राज्ञाद्यः प्रमज्जेत् शुद्धात् ॥ २ ॥

यो वत्सा सर्वभूतेभ्यः प्रमज्जत्यमयं शुद्धात् ।

तस्य तज्जोमया लोका भवन्ति प्राज्ञादादिना ॥ ३ ॥ मनु १ । ३८ । ३४ ॥

प्राज्ञापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के लक्ष्य इति अर्थात् पक्ष करके उसमें ब्रह्मोक्तीत विष्णुदि चिद्धी को लोभ आहवनीयदि पांच अग्निषों को प्रत्यक्ष अपान ज्ञान उद्धान और अमान इव पांच मांसी में आरोपण करके अग्निष्टि प्राज्ञाद्य वर से निकट कर अन्वयही हो आवे ॥ १ ॥ २ ॥ जो सब भूत प्राक्षिमात्र को अमनज्ञान केवल वर से निकट के अन्वयही होता है उस प्राज्ञादी अर्थात् परमेश्वर प्रकाशित वेदोक्त अर्थात् विष्णु की उपदेश करनेवाले अन्वयही के बिना प्रकाशमय अर्थात् मुक्ति का आनन्दलक्षण लोक प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

प्र०—अन्वयिणी का क्या धर्म है ?

उ०—धर्म ही पक्षपातरहित अन्वयारण्य सत्य का प्रत्यक्ष अन्वय का परिज्ञान, ब्रह्म ईश्वर की प्राप्ति का प्रकाश, परोपकार सत्यमात्रादि सब सब आत्मिणी का अर्थात् सब मनुजमान का एक ही है परन्तु सत्यास की विशेष धर्म यह है कि—

दृष्टिपूर्तं न्यसत्पादं पल्लवपूर्तं जलं पिबत् ।
 सस्यपूर्तां वदद्वाचं मनःपूर्तं समाधरत् ॥ १ ॥
 कुम्भवन्तं न प्रतिकुम्भयानुष्टुः कुशलं वदत् ।
 सस्यद्वारायकीणां च न वाचमनूर्तां वदत् ॥ २ ॥
 अभ्यासमरतिरास्तीनो निरपह्ना निरामिषः ।
 आत्मनेय सहायेन सुखार्थी विश्वरदिह ॥ ३ ॥
 पल्लवशृङ्गनक्षत्रमधुं पाषाणी वरुणी कुसुम्भधान् ।
 विश्वरक्षियतां निर्व्यं सर्वमृताग्न्यपीडयन् ॥ ४ ॥
 इन्द्रियाक्षं निराधेन रागद्वेषद्वयेषु च ।
 अहिसया च मृतानाममृततत्त्वाय कल्पत ॥ ५ ॥
 दूषितोऽपि चरत्सर्वं पत्रं तज्जातमं रतः ।
 सम्यं सर्वेषु मृतेषु न क्षिणं भ्रमकारणम् ॥ ६ ॥
 फलं कतकबृक्षस्य यद्यप्यन्तुप्रसाधकम् ।
 न तस्मिन्निहसादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ ७ ॥
 माश्यायाम् प्राक्षसस्य ययोऽपि विधियत्कृताः ।
 म्याहतिप्रसवेयुक्ता विदुषं परमन्तपः ॥ ८ ॥
 दहन्त भ्रातृमानानां धातूनां हि यथा मन्त्राः ।
 तथेन्द्रियाणां दहन्तं दोषाः प्राणस्य निमहात् ॥ ९ ॥
 प्राणायामैर्वहेद्दोषान् धारयामिह किद्विषयम् ।
 मस्याहारस्य सस्यगारं ध्यानमार्गान्धरान् गुणान् ॥ १० ॥
 उद्यत्सर्वेषु मृतेषु दुर्बेयामहतात्मभिः ।
 ध्यान्त्यागान् संपश्यद् गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ११ ॥
 अहितयन्त्रियासङ्गैर्विषैर्ज्यैव कसमिः ।
 तपसमरसुखोपेस्साधयन्तीह क्षयदम् ॥ १२ ॥
 यदा भाक्न भयति सपमावपु निलूहः ।
 तदा सुखमप्राप्तिं प्रेत्य खेहं च शान्ततम् ॥ १३ ॥
 चतुर्मिरपि खेवैतर्नित्यमाभमिभिर्द्विजैः ।
 इराजससृका धमं सवितर्य्यं प्रयत्नतः ॥ १४ ॥
 पूनिं दम्मा इमाऽस्तयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
 यीर्विद्या सत्यमक्रोधो वृत्तं धमञ्जयणम् ॥ १५ ॥
 धनं पिथिना सपास्त्रय्या समाभ्यर्च्यं शनैः ।
 सपद्मद्विनिमुक्ता प्रक्षयपथावतिष्ठत ॥ १६ ॥ मनु अ १।१६।४८।
 १६।१२१।६ । १६।१०१।००- १।०२।८ । ८१।११।१२३ ॥

जब संन्यासी मार्ग में चले तब हृष्य उपर न देखकर नीचे दृष्टिहीन रह दृष्टि
 रख के चले । इस क्लृप्त हो पाप के जल पिये निराकार सत्य ही बोध सर्वदा
 मन न विचार के सत्य का प्रत्यक्ष करे कलम को बाध दब ॥

जब कहीं उपदेष्ट का ध्यानवादि में कोई संन्यासी पर श्रेष्ठ कर धन्य किया करे तो संन्यासी को उचित है कि उस पर धन्य श्रेष्ठ न करे किन्तु सदा उसके कल्याणार्थ उपदेष्ट ही करे और एक मुख का दो व्यष्टिज के दो मांस के और दो धन के कित्ती में बिचारी हुई कच्ची को किसी कारण से मिला कमी न बोधे ॥ १ ॥

अपने धन्या और वरमाया में किए जपेहारहित सब मांसादि वर्जित होकर धन्या ही के सहाय से सुचार्य होकर इस संसार में जर्म और भिक्ष के लिये में उपदेष्ट के लिये सदा विचरता रहे ॥ ३ ॥

केत जब कहीं मूढ़ को देवदत्त करवाने सुन्दर पात्र दण्ड और कुमुद आदि से ही हुए कर्त्तों को प्रदत्त करके निमित्तध्या सव भूतों को पीछा न देकर सर्वत्र विचरे ॥ ४ ॥

इन्द्रियों को धन्यमान्य से रोक रण्योच को छोड़ सब व्यष्टियों से भिन्न वर्तकर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाना करे ॥ ५ ॥

कोई संसार में उद्योगे दूषित या भूषित करे तो भी जिस किसी धन्यमान में वर्तता हुआ पुरुष धन्यात् संन्यासी सब व्यष्टियों में एकपक्षरहित होकर स्वर्ग वर्माध्य और धन्यों को वर्मापना करने में प्रवृत्त किया करे । और यह अपने मन में निहित जावे कि दण्ड कमचण्ड और कल्याणकला आदि विद्वद्धारण धर्म का कारण नहीं है सब मनुष्यादि व्यष्टियों का सन्तोषदेष्ट और विद्यादान से उन्नति करवा संन्यासी का मुख्य कर्म है ॥ ६ ॥

नवींकि यद्यपि विर्मली दण्ड का कल पीछ के पक्षे धन्य में धन्यमान से धन्य का बोधक होला है तदपि मिला उसके लिये उसके नाम धन्य का कल्याण से धन्य दण्ड नहीं हो सत्य ॥ ७ ॥

इसलिये प्रदत्त धन्यात् मन्त्रिण संन्यासी को उचित है कि ब्रह्मरूपक सत्त्वगुणधर्मों से विधिपूर्वक प्रवृत्तमान विरली लक्षि हो अपने करे परन्तु तीव्र से तो मूढ़ प्रवृत्तमान कमी न करे यही संन्यासी का वरमाय है ॥ ८ ॥

नवींकि जेष्ठ धर्म में लपाने और लपाने से धन्यधर्मों के सब वह हो लगे हैं पैर ही मन्त्रों के निम्न से सब धर्मि इन्द्रियों के दोष मन्त्रीयुक्त होते हैं ॥ ९ ॥

इसलिये संन्यासी जेष्ठ निम्नपति मांसाधर्मों से धन्य धन्यधर्म और इन्द्रियों के दोष धारणधर्मों से धन्य प्रवृत्तहार से धन्योच धन्य स धन्योच के गुणी धन्यात् धर्म शोक और धन्योच धर्म के दोषों को मन्त्री मूढ़ करें ॥ १ ॥

इसी धन्यधर्म स जो धन्योच धन्यधर्मों के धन्य से धन्योच धन्य है जोड़े बड़े पदार्थों में वरमाया की न्याधि और अपने धन्या और धन्यधर्मों परमेष्ठ की गति को देखे ॥ ११ ॥

सब भूतों में भिन्न इन्द्रियों के विरली का धन्य देहोक्त धर्म और धन्य धन्यधर्म से इस संसार में मोक्षपद को धन्य संन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं धन्य कोई नहीं ॥ १२ ॥

सब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में विनष्ट करवाहित और सब बाहर भीतर के व्यवहारों में भाव से एकीकृत होता है। सभी इस देह में और मरने पाके निरन्तर मुक्त को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

इसलिये ब्रह्मचारी गृहस्थ आनन्द और संन्यासियों को योग्य है कि प्रत्यक्ष से दत्त अक्षयबुद्ध निराद्विधित धर्म का सेवन करें ॥ १४ ॥

पहिला अक्षय—(अति) सदा धैर्य रखना वृत्त—(वृत्त) जो कि विद्या स्तुति आनन्दमात्र आदि दुर्गों में भी सहजशील रहना ।
 तीसरा—(दम) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न बदे । चौथा—(अस्तेय) चोरीत्याग अर्थात् विद्या आनन्द का कुछ कष्ट विनाशकाल का किसी व्यवहार तथा वैदिक उपदेश से परापूर्व को ग्रहण करना चोरी और उद्योग कोड़ तथा साधुकारी कष्टशील है ।
 पाँचवाँ—(शौच) शरीर पर पदपाद कोड़के भीतर और सब अक्षय आनन्द आदि से बाहर की एकीकृत रखनी । छठा—(इन्द्रियनिग्रह) अधर्माचार्यों से रोक के इन्द्रियों को धर्म ही में सदा बचाना । सातवाँ—(धीः) आनन्दमात्र बुद्धिवाचक प्रत्यक्ष पदार्थ दुर्गों का संयम आनन्द प्रसाद आदि को कोड़ के सेव पदार्थों का सेवन सत्पुरुषों का संयम योगात्मक से बुद्धि को बचना । आठवाँ—(विद्या) दुर्गों से लेके परमेश्वर परमेश्वर वर्यान्त आनन्द और उद्यम अक्षयमात्र उपकार देना (सत्) कैसा आनन्द में कैसा मन में कैसा मन में कैसा बाह्य में कैसा बाह्य में कैसा धर्म में कैसा विद्या इससे विपरीत अविद्या है । नववाँ—(सत्) जो पदार्थ कैसा हो उद्यमों कैसा हो समग्रता कैसा ही बोलना और कैसा ही करना भी । तथा दशवाँ—(अस्तेय) अक्षय विद्या को कोड़ के आनन्दविद्या दुर्गों को ग्रहण करना धर्म का अक्षय है । इस दत्त अक्षयबुद्ध परापूर्वद्वित आनन्दमात्र धर्म का सेवन चारों आनन्द बाधे करें और इसी वैरोध धर्म ही में आप पदार्थ और दूसरों को समग्र कर बचाना संन्यासियों का विशेष धर्म है ॥ १५ ॥
 इसी प्रकार से चारों सब संन्यासियों को कोड़ इष्ट आनन्द से सब दुर्गों से विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म ही में अवस्थित होता है संन्यासियों का मुख्य धर्म नहीं है कि सब गृहस्थविद्या आनन्दों को सब प्रकार के व्यवहारों का धर्म विनष्ट कर अधर्म व्यवहारों का मुक्त सब संन्यासियों का अक्षय कर धर्मबुद्ध व्यवहारों में प्रवृत्त कराना करें ॥ १६ ॥

प्र०—संन्यास ग्रहण करना आनन्द ही का धर्म है या अविद्याविद्या का भी ?

उ०—आनन्द ही को अधिपति है क्योंकि जो सब वस्तुओं में पूर्ण विद्या आनन्द परापूर्वद्वित अक्षय है उद्यम का आनन्द धर्म है विद्या पूर्ण विद्या के धर्म परमेश्वर की विद्या और विद्या का संन्यास ग्रहण करने में संन्यास का विशेष उपकार नहीं हो अक्षय इसलिये लोकप्रति है कि आनन्द को संन्यास का अधिपति है धर्म को नहीं, वह मनु का प्रसाद भी है—

एव सोऽभिहितो धर्मा आनन्दस्य सत्पुरुषिणः ।

पुण्योऽक्षयः सत्यं सत्यं धर्मात् विद्याधत्तः ॥ मनु १ । १० ॥

वह मनुष्यी महाराज कहते हैं कि हे जगिनो ! वह चार प्रकार जगत् प्रदत्त पुण्य का प्रत्यक्ष और संन्यासार्थम करण साधन का धर्म है । वही सर्वप्रथम में पुण्यस्वकर्म और शरीर को ही प्रदत्त मुक्तिरूप अल्प जगत् का देने का संन्यास धर्म है इसके आगे राजाओं का धर्म मुक्त से सुखो । इससे वह सिद्ध हुआ कि संन्यासप्रदत्त का अधिकार मुख्य करने साधन का है और जगत्प्राप्ति का साधनार्थम है ॥

प्र०—संन्यास प्रदत्त की आवश्यकता क्या है ?

उ०—वैसे शरीर में धार की आवश्यकता वैसे ही जगत्तमों में संन्यासप्रदत्त की आवश्यकता है क्योंकि इसके बिना जिस धर्म कमी नहीं वह सत्य और दूसरे धर्मों को सिद्ध प्रदत्त पुण्यकर्म और उपकारादि का सम्पन्न होने से अवकाश बहुत कम मिलता है । परंपरा को लेकर सर्वथा दूसरे धर्मों को पुण्य है वैसे संन्यासी सर्वतोमुख होकर जगत् का उपकार करता है वैसे अन्य धर्मों नहीं कर सकता क्योंकि संन्यासी को सत्यविद्या से पराधीन के सिद्धम की उन्नति का विद्या का प्रदत्त मिलता है उतथा अन्य धर्मों को नहीं मिल सकता । परन्तु जो प्रदत्त से संन्यासी होकर जगत् को सत्य सिद्ध करने की उन्नति कर सकता है उतही पुण्य का आवश्यक धर्म करने संन्यासप्रदत्त नहीं कर सकता ॥

प्र०—संन्यास प्रदत्त करण ईश्वर के अभिप्राय से सिद्ध है क्योंकि ईश्वर का अभिप्राय मनुष्यों की बहती करने में है जब पुण्यम नहीं करे तो उन्नति प्रदत्त ही न होनी । जब संन्यास ही मुख्य है और सब मनुष्य करें तो मनुष्यों का सुखचक्र ही जगत् ॥

उ —अच्छा सिद्ध करने भी बहती के सम्पन्न नहीं होते प्रत्यक्ष होकर ही वह हो जाते हैं फिर वह भी ईश्वर के अभिप्राय से सिद्ध करने का ही हुआ जो हम को कि यत्ने कृतं पति न सिध्यति कोऽत्र होय” वह सिद्धी कवि का वचन है अर्थ—जो कल करने से भी प्रत्यक्ष सिद्ध न हो तो इसमें क्या होय ? अर्थात् कोई भी नहीं । तो हम हमसे पूछते हैं कि पुण्यम से बहुत सम्पन्न होकर जगत् में सिद्धाचार्य कर जब मरें तो हाथि जितनी बनी होती है प्रमथ के शिरो से कड़ाई बहुत होती है जब संन्यासी एक केदोषधर्म के उपदेश से परस्पर प्रीति उपकृष्ट करनेवा तो जाहों मनुष्यों को क्या देय सहों पुण्य के प्रमाण मनुष्यों की बहती करेगा और सब मनुष्य संन्यासप्रदत्त कर ही नहीं सकते क्योंकि सब की विपरीतार्थ कमी नहीं बूढ़ सहेगी को १ संन्यासिधियों के उपदेश से धार्मिक मनुष्य होंगे वे सब जानो संन्यासी के पुत्र पुत्र हैं ॥

प्र०—संन्यासी लोग कहते हैं कि हमका कुछ कष्ट नहीं भय बस केवल जगत् में रहना अविद्यारूप संसार से माथापची नहीं करण ? अपने को भय मानकर अनुग्रह रहना कोई धर्म पड़े तो उन्नति की वैया ही उपदेश करण कि तू भी भय है तुम्हको पाप पुण्य नहीं जगत् क्योंकि शीघ्रोन्म शरीर का पुण्य पुण्य, प्रमथ का और सुख सुख मन का धर्म है । जगत् सिद्ध और जगत् के

मर्याद की सब करिपत धर्मात् भूटे हैं इसलिये इसमें कसबा बुद्धिमानों का काम नहीं। जो कुछ पाप पुण्य होता है वह वेह और इन्तिबों का धर्म है आत्म का नहीं, इत्यादि उपदेश करते हैं और बापने कुछ बिनाकर्मसंन्यास का धर्म कहा है यह हम किसीकी बात नहीं और किसीकी भूटी मानें ?

३०—क्या उनको प्रत्यक्ष कर्म भी कर्त्तव्य नहीं ? देखो वैदिकवेदेषकर्मणि” मनुजी ये वैदिक कर्म जो धर्मबुद्धि सत्य कर्म हैं संन्यासियों को भी प्रवर्ण्य करणा सिखा है। क्या जोजब ब्राह्मणदि कर्म से ब्राह्म सन्नें ? जो वे कर्म नहीं पूरे प्रकृत या उत्तम कर्म जोबने न वे पठित और पापमयी नहीं होंगे ? जब गृहस्थों से यह कथारि लेते हैं और उनका प्रत्युत्तर नहीं करते तो क्या वे महापापी नहीं होंगे ? जैसे चौक न देखना काम से सुखदा न हो तो चौक और काम का हाना व्यर्थ है वैद्य ही जो संन्यासी सम्बोदय और ब्रह्मदि सम्बन्धनों का विचार प्रचार नहीं करते तो वे भी जपत में व्यर्थ धारक हैं। और जो चरित्ररूप संसार से माध्यस्थी नहीं करना चाहि सिद्ध और कहत हैं किसे उपदेश करव सखे ही मिथ्यारूप और पाप के कष्टमोहार पायी हैं। जो कुछ शरीरादि से कर्म किया जाता है वह सब आत्मा ही का और उसके कर्म का भागने कावा भी आत्मा है। जो जीव का मय प्रवृत्त है वे अस्मिन् विद्या में लाते हैं। क्योंकि जीव प्रवर प्रवर्य और मयसम्बन्धक सर्वज्ञ है मय मित्य शब्द बुद्ध मुख्यमनुबुद्ध है और जीव कभी वह कभी मुक्त रहता है। मय को सर्वम्बन्धक सच्य होने से प्रव का चरित्र कभी नहीं हो सकती और जीव का कभी विद्या और कभी चरित्र होती है मय जन्ममरण दुःख को कभी नहीं मय रहत और जीव मय होता है इसलिये वह उनका उपदेश मिथ्या है ॥

प्र०—संन्यासी सर्वकर्मविनाशी और चरित्र तथा वागु को त्यज नहीं करते यह बात सही है या नहीं ?

३०—नहीं “सम्पद् जित्यमास्त पस्मिन् यद्वा सम्पद न्यस्यन्ति दुःखानि कामाणि यन स संन्यास” सम्पदस्तोयिष्यत यस्य स संन्यासी” जो मय प्राप्ती हो जीव विमल बुद्ध कर्मों का त्याग किया काम वह उत्तम त्याग प्रिममे हो वह संन्यासी कहता है इसमें मुकर्म का कर्त्ता और बुद्ध कर्मों का कर्म करव सखा संन्यासी कहता है ।

प्र०—संन्यास और उपदेश गृहस्थ किया जाता है पुनः संन्यासी का क्या प्रबोधन है ?

३०—सम्बोदय सब आत्मा की और मुने परम्पु शिवाय प्रवृत्त और निरप्रवृत्तता संन्यासी को होती है उनही गृहस्थी का नहीं। हाँ का प्रवृत्त है उनका नहीं काम है कि बुद्ध बुद्धों का और जीवियों को सम्बोदय प्रव प्रवृत्त करें। जितना प्रमय का प्रवृत्त संन्यासी का विवृत्त है उनका गृहस्थ प्रवृत्तपरि को कभी नहीं मित्य सकता। जब प्रवृत्त वेदविद्वत् आचारक करें जब उनका विवृत्त संन्यासी होता है। इसलिये संन्यास का हाना उचित है ॥

प्र०—‘एकराशि बसेत प्राप्ते इत्यादि वचनों से संन्यासी को एकत्र एक रात्रि मात्र रहना अधिक विचार्य न करना चाहिये ॥

उ०—बहु बात बोले से श्रम में तो अच्छी है कि एकत्रकथन करने से कष्ट का उपकार अधिक नहीं हो सकता और स्वाभाविकरूप का भी अभिभावक होता है रात्रि द्वेष्ट भी अधिक होता है परन्तु जो विशेष उपकार एकत्र रहने से होता हो तो रहे जैसे बन्धु राज्य के बहाने चार २ माहीये तक पञ्चमिक्षादि और अन्य संन्यासी कितने ही क्यों तक विचार्य करते थे । और ‘एकत्र न रहना’ यह बात आश्रमिक के पाकवही सम्प्रदायियों ने बघाई है । क्योंकि जो संन्यासी एकत्र अधिक रहेंगे तो हमारा पाकवही अधिक होकर अधिक न बन सकेगा ॥

प्र०—यतीनां काञ्चनं वृथात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम् ।

लोप्यक्षममर्षं वृथास्त नरो नरकं गच्छेत् ॥

इत्यादि वचनों का अभिप्राय यह है कि संन्यासियों को जो सुखार्थ दान वे तो दान नरक को प्राप्त होते ॥

उ०—बहु बात भी बर्बादमहिरोधी संग्रहणी और स्वार्थसिन्धुवन्धे पैर-बिन्दों की कल्पी हुई है क्योंकि संन्यासियों को धन मिलेगा तो वे हमारा कष्टकर बहुत कर सकेंगे और हमारी हाथि होती तथा वे हमारे आधीन भी न रहेंगे और जब विद्यादि व्यवहार हमारे आधीन रहेंगे तो करते रहेंगे जब मूर्ख और स्वार्थियों को दान देने में बन्धु सम्बन्ध हैं तो विद्वान् और परोपकारी संन्यासियों को देने में कुछ दोष नहीं हो सकता । देखो मनु —

विविधानि च यज्ञानि विविक्तेषूपपादयेत् ॥

मन्त्र प्रकर के सब सुखबोधि दान (विविध) यज्ञात् संन्यासियों को देने । और यह श्लोक भी अर्थपूर्ण है क्योंकि संन्यासी को सुखार्थ देने से ब्रह्मज्ञान नरक को जाने तो चोरी मोटी हीरे आदि देने से स्वर्ग को जायगा ॥

प्र०—बहु परिकरणी इत्यत्र पाठ बोलते हुये सूत्र एवं यह वेदा है कि पतिहस्तं धर्मं वृथात्” यर्थात् जो संन्यासियों के हाथ में धन देता है वह नरक में जाता है ॥

उ०—बहु भी बचन अविद्वान् ने कपोलकल्पना से रचा है । क्योंकि जो हाथ में धन देने से जाता नरक को जाय तो पण पर धारण का पट्टरी बांधकर देन से स्वर्ग को जायक इच्छिते येभी कल्पना मानने योग्य नहीं । हां यह बात तो है कि जो संन्यासी भोगकर्म से अधिक रत्नेगा तो चोरादि से पीड़ित और मोहित भी हो जायगा परन्तु जो विद्वान् है वह अयुक्त व्यवहार कभी नहीं करेगा न मोह में डूबेगा क्योंकि वह प्रथम गृहस्थ में अथवा ब्रह्मचर्य में सब भोग कर ल सब देख चुका है और जो ब्रह्मचर्य से होता है वह स्वर्ग वेदान्तुक्त होने से कभी नहीं डूबेगा ॥

प्र०—योग कहते हैं कि आज्ञा में संन्यासी जाने वा विमर्शने तो उसके कितर भजन करें और नरक में गिरें ॥

उ०—प्रथम तो मरे हुए पितरों का आत्मा और किया हुआ भय मरे हुए पितरों को पहुँचाना ही अष्टममर्ग है और पुनर्विप्लव होने से सिध्दा है। और जब आत्मा ही नहीं तो आत्म कौन जानेंगे जब आपने पाप पुन्य के समुच्चार ईश्वर की व्यवस्था से मरने के बन्धन जीव जन्म लेते हैं तो उन्मत्त आत्मा कैसे हो सकता है ? इसलिये यह भी चरम पैदाशी पुराणी और वैरागियों की सिध्दा करनी हुई है। यह तो ठीक है कि जहाँ संन्यासी जायें वहाँ वह श्रुतक भय करमा वेदादि शास्त्रों से विरक्त होम से पाकयक बृह भाग जायेगा ॥

प्र०—जो ब्रह्मचर्य से संन्यास लेवेगा उच्छ्रय निर्वाह कठिनाता होना और काम का रोकना भी अति कठिन है इसलिये गृहाश्रम आश्रम होकर जब बृह हो जाय तभी संन्यास लेना अच्छा है ॥

उ०—जो निर्वाह न कर सके, इन्द्रियों का न रोक सके वह ब्रह्मचर्य से संन्यास न लेवे परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे ? जिस पुरुष ने विश्व के शेष और हीनसंस्कार के पुन्य जन्मे हैं वह विप्लवग्रस्त कभी नहीं होता और उच्छ्रय शीघ्र विचारान्ति का इन्धनकत् है अर्थात् उसी में व्यय हो जाता है। जैसे जल और औषधी की आत्मस्वकता रोगी के लिये होती है वैसे विरोगी के लिये नहीं। इसी प्रकार जिस पुरुष का स्त्री को विद्या धर्मवृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह निर्वाह न करे। जैसे पक्षितिकादि पुरुष और पार्थी आदि किसी हुई भी इसलिये संन्यासी का होना अविचारियों को उचित है और जो अवबिकारी संन्यासग्रहण करना या आप ब्रूयेत योंको भी उचित है। जैसे "सन्नद्ध चक्रवर्ती राजा होता है वैसे परिनात् संन्यासी होता है प्रभुत राजा अपने देश में का स्वसंस्कारों में सम्मर पाया है और संन्यासी सर्वत्र पुणित होता है ॥

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।

स्वदेशे पूज्यत राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥ १ ॥

यह अत्यन्त नीतिशास्त्र का श्लोक है—विद्वान् और राजा की कभी तुल्यता नहीं हो सकती क्योंकि राजा अपने राज्य ही में मान और सम्मर पाया है और विद्वान् सर्वत्र मान और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। इसलिये विद्या पहले सुगुण लेवे और बलवान् होने आदि के लिये ब्रह्मचर्य सब प्रकार के उच्छ्रय व्यवहार छोड़ करने के धर्म गृहस्थ विचार व्याप और विज्ञान बढ़ाने उपभर्षा करने के लिये शक्यता और वेदादि शास्त्राचार्यों का प्रचार धर्म व्यवहार का प्रवृत्त और बृह व्यवहार के लक्ष्य समोपदेश और सब को विस्तरेद करने आदि के लिये संन्यासाश्रम है। परन्तु जो इस संन्यास के मुख्य धर्म समोपदेशादि नहीं करते वे पतित और वरक्यासी हैं। इससे संन्यासियों को उचित है कि समोपदेश गृहस्थमायाय वेदादि शास्त्राचार्यों का व्यवहार और वेदोक्त धर्म की वृद्धि प्रवृत्त से करके सब संसार की उच्छ्रति किया करें ॥

प्र०—जो संन्यासी से अन्य प्राणु वैरागी गुणार्ह जायकी आदि है वे भी संन्यासाश्रम में लिये जायेगे वा नहीं ?

३०—यही, क्योंकि तबमें संन्यास का एक ही कारण यही है वैदिक मर्म में प्रवृत्त होकर वेद से अधिक अपने छद्मदान के आचार्यों के वचन मानते और अपने ही मत की प्रशंसा करते निम्न्य प्रपञ्च में फैलकर अपने स्वार्थ के बिने दूसरों को अपने २ मत में फैलाते हैं सुचार करना तो बुर रहा उसके बदले में संसार को बहका कर अयोग्यता को प्राप्त करते और अपना प्रबोधन सिद्ध करते हैं इसलिये इनको संन्यासाश्रम में नहीं गिन सकते किन्तु वे स्वार्थाधमी तो पक्के हैं ! इसमें कुछ सन्देह नहीं । जो स्वर्ग धर्म में बहकर सब संसार को बहाने हैं किन्तुसे आप और जब संसार को इस जोड़ अर्थात् वर्धमान जन्म में परलोक अर्थात् दूसरे जन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का मोय करते करते हैं वे ही कर्मात्मा सब संन्यासी और महात्मा हैं ॥

यह संदेह से संन्यासाश्रम की त्रिका त्रिकी । जब इसके आगे राजप्रजाधर्म विरूप त्रिका जगया ॥

इति श्रीमद्भगवत्सरास्वामीकृत सत्यार्थप्रकाशं सुभाषाविभूषितं
वानप्रस्थसंन्यासाश्रमविषये पंचमं समुद्भासं सम्पूर्णं ॥ ५ ॥

अथ षष्ठसमुद्भासारम्भ

अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवन्मुप ।

संमथ्य यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥

प्राप्तं प्राप्तन संस्कारं क्षत्रियेषु यथाविधि ।

सयस्यास्य यथाम्यत्सं कृत्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥ मनु ० । १—२ ॥

अब मनुजी महाराज क्षत्रियों से कहते हैं कि चारों वर्गों और चारों प्राधर्मों के व्यवहार करने के पश्चात् राजधर्मों को कहेंगे कि किस प्रकार का राजा होना चाहिये और जैसे इसके होने का सम्भव तथा जैसे इसके परामर्शदि प्राप्त होने इसके सब प्रकार कहते हैं ॥ १ ॥ कि जैसा परम विद्वान् आश्रय होता है विसा विद्वान् सुविक्रित होकर पक्षिण को बोध है कि इस सब राजन की रक्षा न्याय से बचाव करे ॥ २ ॥ इसका प्रकार यह है—

श्रीणि राजाना विदये पुरुषि परि विसानि भूपयः सदांसि ॥

अर्थ ० १ । पृ १८ । मं १ ॥

इस उपदेश करता है कि (राजाका) राजा और मन्त्र के पुरुष मित्रके (विदये) सुकर्मणि और विद्वान्बुद्धिभारक राजा मन्त्र के सम्बन्धक व्यवहार में (श्रीणि सदांसि) तीन सभा प्रजात् विद्वान्सत्वा धर्मार्थक राजासभा विस्त करके (पुरुषि) बहुत प्रकार के (विदये) समस्त मन्त्रासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणिनों को (परिभूषयः) सब ओर से विद्वत्स्वतन्त्र धर्म सुविधा और धनदि से सर्वहृत् करे ॥

स मुमा च समितिश्च मेना च ॥ १ ॥

अर्थ ० की ११ । मनु २ । पृ ० १ । मं २ ॥

सम्यं मुमां मं पाहि ये च सम्याः समामदाः ॥ २ ॥

अर्थ ० की ११ । मनु ० । पृ २१ । मं १ ॥

(मनु) इस राजधर्म को (सम्यं च) तीनों सभा (समितिश्च) मंत्रादि को व्यवस्था और (मेना च) राजा मित्रकर पावन करें ॥ १ ॥ सभासद् और राजा को जानव है कि राजा सब मन्त्रासत्तों को ध्याता है कि ह (सभा) सभा के योग्य मुख्य समामदाः १ म (म) मही (सम्यम्) सभा को पर्यपुत्र व्यवस्था च (पाहि) पावन कर (ये च) और जो (सम्याः) सभा के योग्य (समामदाः) सभासद् है व की सभा की व्यवस्था का पावन किया करें ॥ २ ॥ इसका अभिप्राय यह है कि एक को राजन् राजन का अधिकार व देवा चाहिये किन्तु राजा जो सभासद् तत्परीव सभा सभापरीव राजा राजा और सभा राजा के पारीव और मन्त्रासम्बन्ध के पारीव रह यदि देवा व कहेंगे तो—

राष्ट्रमेव विश्वाहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं धातुकम् । विशमेव
राष्ट्राप्याद्यां करोति तस्माद्राष्ट्रीविशमन्ति न पुनं पशुं मम्यत इति ॥

सप्तमं सर्गं १३ । अ. २ । श्लो. ३ । मं. ७ । ॥

जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजकर्ता रहे तो (राष्ट्रमेव विश्वाहन्ति) राज्य में प्रवेश करके प्रजा का शासन किया करें जिसप्रकारे सबेसा राज्य स्वाधीन का सम्मेलन होके (राष्ट्री विशं धातुकम्) प्रजा का शासनक होता है अर्थात् (विशमेव राष्ट्रप्याद्यां करोति) वह राज्य प्रजा को चारों ओर (अन्तर्गत पीकित करता) है इसप्रकारे किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करवा चाहिये जैसे सिद्ध का मन्त-हमी इष्टपुत्र पशु को मारकर का खेत है जैसे (राष्ट्री विशमन्ति) स्वतन्त्र राजा प्रजा का शासन करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता अर्थात् को बूट लूट चम्पान से बचने के लिये अपना अधिकार दूर करेगा इसप्रकारे—

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अचिरानो रामस्तु रामयातै ।

चूर्कृत्य ईड्यो पन्द्यभोपसद्यो नमस्यो भवेह ॥

सप्तमं सर्गं १ । अ. ३ । श्लो. १ । मं. १ । ॥

हे मनुष्यो ! जो (ईड) इस मनुष्य के समुदाय में (इन्द्र) परम देवर्ष का कर्ता शत्रुओं को (जयाति) जीत सके (न पराजयति) जो शत्रुओं से पराजित न हो (रामस्तु) राजाओं में (अचिरानो) अर्थात्पि विराजमान (रामयातै) सम्मेलनमान हो (चूर्कृत्य) सम्मेलित होने को अन्तर्गत मान्य (ईड्यो) अन्तर्गत गुण कर्म स्वभावयुक्त (पन्द्य) सम्मेलन (भोपसद्यो) समीप अपने और शत्रु के बीच मान्य (नमस्यो) सब को मान्यता (भवेह) होव उसी को सम्मेलित राजा कर ॥

इम देवाऽऽसप्तपत्नरं सुवर्षं महुते चित्राय महुते ज्यैष्ठ्याय

महुते जानरात्र्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ॥ अ. ३ । श्लो. ४ । मं. ४ । ॥

हे (देवाः) विद्वानो ब्रह्मजानको ! तुम (इमम्) इस मन्त्र के पुत्र को (महुत वषाव) बड़े चक्रवर्ति राज्य (महुते ज्यैष्ठ्याय) सब से बड़े होने (महुत जानरात्र्याय) बड़े १ विद्वानों से कुछ राज्य पाकने और (इन्द्रस्येन्द्रियाय) परम देवर्षयुक्त राज्य और धन के पाकने के लिये (असप्तपत्नरमुदयम्) सम्मति करके सर्वत्र पक्षपातरहित पूर्ण विद्या विभवयुक्त सब के मित्र सम्मेलित राजा को सर्वोच्च मानके सब भूगोल शत्रुहित करो । और—

स्थिरा यं सुन्त्यायुधा पण्डुर्दं वीळू उत प्रेतिष्ठम् ।

पुष्पाटमस्तु सर्षपी पनीयसी मा मर्ष्यस्य मायिनं ॥

अ. ३ । श्लो. ५ । मं. ५ । ॥

ईश्वर उपासक करता है कि ई राजपुत्रो ! (यः) तुम्हारे (आयुधा) शस्त्र-बादि शस्त्र और शस्त्री अर्थात् शीघ्र भुजपटी अर्थात् बन्दूक धनुष बाण वज्र

आदि सत्त्व शक्तियों के (पराशक्त) पराजय करने (वत् प्रतिष्ठा) और रोकने के लिये (चीन्) प्रशंसित और (विद्या) दत्त (सन्तु) हों (शुभ्यम्) और गुह्यारी (तबिरी) सवा (पचीयसी) प्रशंसनीय (वत्तु) होव कि जिससे तुम सवा किसी होओ परन्तु (मा मर्त्यस मायिषः) जो विविध धन्यायरूप काम करता है उसके लिये पूर्व वस्तु मत हों, अर्थात् अत्यन्त मनुष्य धार्मिक रहते हैं सभी एक समय बढ़ता रहता है और जब बुद्ध्याचारी होते हैं तब यह भव हो जाता है । महाविद्वानों को विद्यासमाधिकारी धार्मिक विद्वानों को धर्मसम्पन्नः पिछली प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सम्पन्न और जो अब में सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाववृत्त महान् पुण्य हो उसको राजसभा का पतिरूप मान क सब प्रकार से उन्नति करें । तीनों समाधियों की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग करें सब के हितकारक कामों में सम्मति करें सर्वहित करने के लिये परस्पर और धर्मपुत्र कामों में अर्थात् जो १ विज के काम हैं अब में स्वतन्त्र हैं । पुनः इस सम्पत्ति के गुण हैं होने चाहिये—

इन्द्राऽनिजयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।

वन्द्रविसेष्टयोर्देव मात्रा निर्हस्य शम्भवी ॥ १ ॥

तपस्यादित्यवज्ज्वलं वत्सु पि च मनासि च ।

न चैतं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यमिषीक्षितुम् ॥ २ ॥

सोऽग्निर्मवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् ।

स कुक्करो स पक्षः स महेन्द्रः प्रमावतः ॥ ३ ॥ मनु ० । ४ ६ ० ॥

यह समेत राजा इन्द्र अर्थात् विष्णु के समान शीघ्र ऐश्वर्यवर्ती वायु के समान सब के प्रत्यक्ष मित्र और इन्द्र की वत्ता जानने द्वारा यम पञ्चतत्त्वहित व्यावर्धीय के समान वर्तनेवाला सूर्य के समान स्वयं धर्म विद्या का प्रत्यक्ष धन्यकर अर्थात् अहिंसा अत्याय का निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने द्वारा वस्तु अर्थात् वांधनेवाले के सहा दुष्टों को अनेक प्रकार ॥ बांधने का काम कर्तु के तुल्य अष्ट पुरुषों को आकर्षकता धन्यायक के समान कोटी का पूर्ण करने वाला सम्पत्ति होने ॥ १ ॥ जो सूर्यवत् प्रतापी सब के बाहर और भीतर सबों को अपने तब से तपावेद्वारा जिनकी प्रबिधी में काशी छिड़ स राजा को कोई भी समर्थ न हो ॥ २ ॥ और जो अपने प्रभव स अग्नि क्यु पूर्व सोम धर्मप्रदायक धनवर्धक, दुष्टों का कथनकर्ता वहे पक्षवाला हारे वही अमर्यव समेत होने के योग्य होने ॥ ३ ॥

अथा राजा कीन हैः—

स राजा पुरुषो दण्डः स भता शासिता ये स ।

पतुणामाभमाणा ये धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥ १ ॥

दण्डः शास्ति प्रज्यः सर्पा दण्ड पथानिरपति ।

दण्डः सुतेषु आगति दण्डः धम पिदुषु धा ॥ २ ॥

समीक्ष्य स भूतं सम्यक् सर्वा रक्षयति प्रजम् ।
 असमीक्ष्य प्रक्षीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ ३ ॥
 दुष्प्रेयुः सर्ववर्णाश्च मिथेरन्सर्वसेतवः ।
 सर्वलोकप्रकोपश्च मण्डलस्य विभ्रमात् ॥ ४ ॥
 यत्र श्यामो कोटिहासो वरुणश्चरति पापहा ।
 प्रशस्तत्र न मुह्यन्ति मेता चेत्साधु पश्यति ॥ ५ ॥
 तस्याहुः संप्रयेतारं राजानं सत्यपादिभम् ।
 समीक्ष्य कारिणं प्राङ् घमकामार्थकोविदम् ॥ ६ ॥
 तं राजा प्रणयन्सम्यक् विषयोक्तमिवरति ।
 कामात्मा विषमः क्षुद्रो वृषभेनैव निहन्त्यते ॥ ७ ॥
 दण्डो हि सुमहत्तेजो धूर्तरज्जाकृतात्मभिः ।
 धर्माद्विचक्षितं हन्ति नृपमेव सत्त्वान्धवम् ॥ ८ ॥
 सोऽसहायेन मूढेन शुम्भेनाकृतवुद्धिना ।
 न शक्यो न्यायतो नेतुं सत्तेन विपयेषु च ॥ ९ ॥
 सुविना सत्यसन्धेन ययातुप्रानुसारिणा ।
 मयेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन भीमता ॥ १० ॥

मनु ७।१०—११ २४—२५ ३ ३१ ॥

जो दण्ड है वही पुनः राजा वही न्याय का प्रचारकर्ता और सब का शासकवर्ती वही और कहीं और न्याय प्रणामों के बर्तन का प्रतिभू प्रभाव जगति है ॥ १ ॥ वही राजा का शासककर्ता सब प्रज का रक्षक, सोते हुए प्रजस्य मनुष्यों में क्षमता है इसीविधे बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को बर्तन करते हैं ॥ २ ॥ जो दण्ड अपने प्रचार विचार से जासक किया जाय तो वह सब प्रज को व्यापकित कर देता है और जो बिना विचार के बलात् जाय तो सब और से राजा का निरास कर देता है ॥ ३ ॥ बिना दण्ड के सब कहीं क्षुब्ध और सब मर्त्या विरुद्ध मित्र हो जायें । दण्ड के बलात् न होने से सब लोगों का प्रकोप होजायै ॥ ४ ॥ वहाँ कुम्भकर्षण राजेश्वर मन्त्रहृत् पुनः के पापों का नाश करवेहारा दण्ड विरुद्ध है वहाँ मन्त्र मोह को प्रसन्न न होके व्यापकित होती है परन्तु जो दण्ड का पक्षावेधका पक्षपातरहित विज्ञान् हो तो ॥ ५ ॥ जो उस दण्ड का पक्षावेधका सम्बन्धी विचार के करवेहारा बुद्धिमान् बर्तन और और काम की सिद्धि करने में पवित्रत राजा है उसको जो उस दण्ड का पक्षावेधका विज्ञान् लोग करते हैं ॥ ६ ॥ जो दण्ड को अपने प्रचार राजा पक्षात्ता है वह बर्तन और काम की सिद्धि को बलात् है और का विचार में सम्पन्न, देहा ईश्वरी करवेहारा पुत्र नीचबुद्धि, न्यायाधीन राजा होता है वह दण्ड से ही मारा जाता है ॥ ७ ॥ जब दण्ड बला तेजोमय है उसको पवित्रत प्रजमार्थका प्रचार वही कर सकत नय वह दण्ड बर्तन से रहित कुम्भकर्षण राजा ही का नाश कर देता है ॥ ८ ॥ क्योंकि जो प्राप्त पुर्णों के प्रभाव विद्या मुक्तिज्ञ से रहित विषयों में प्राप्तक मूढ है वह न्याय से दण्ड को बलात् में समर्थ कमी नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

और जो पवित्र आत्मा सदाचार और सत्यवादी का सही पक्षधर भीतिभास्य के अनुकूल व्यवहार में प्रयुक्तों के अभाव में कुछ बुद्धिमान ही नहीं मानव-रूपी व्यवस्था के अभाव में समर्थ होता है ॥ १ ॥ इसविषये—

संतापस्य च राज्यं च दण्डनीतृत्वमेव च ।

सधजोकाधिपस्य च वेदशास्त्रविद्वति ॥ १ ॥

दशावशं वा परिपद्यं भर्तुं परिकल्पयत् ।

अप्यपरा वापि कृच्छस्या तं धर्मं न विज्ञाज्यसु ॥ २ ॥

त्रेयिषो हितकस्तर्फी नैदक्तो धमपाठकः ।

अथवाभमिषः पूर्ये परिपस्स्याद्यायय ॥ ३ ॥

अम्वदधिपशुयिब सामकदविशेष य ।

अथैवमप्यबरा परिपञ्चेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ४ ॥

एकतोपि कश्चिद्वैद्यं यं ध्यायत्यहं विद्यासमः ।

॥ विद्येयः परो धर्मो नादानामुदितोऽप्युत ॥ ५ ॥

अथ तानाममन्त्राणां अतिमाद्योपशीचिनाम् ।

सहस्रं समेतानां परिपश्य न विद्यत ॥ ६ ॥

पं प्रवृत्ति तमोमूला मूला असमस्तस्मिन् ।

तत्प्रापं शतधा भूत्या तद्वस्तुननुमच्छति ॥ ७ ॥

मसु १२११ ११ —११२॥

धन सेवा और सेवापत्रियों के ऊपर साम्याधिकार बरत देने की व्यवस्था के धन कर्षों का आधिकार और धन के ऊपर वर्तमान सर्वोच्च साम्याधिकार इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में प्रदीप्त पूर्व विष्णुवाले चरमात्मा त्रिभिन्न सुवीर्य कर्मों को व्यक्तित्व करना चाहिये अर्थात् मुख्य सेवापत्रि मुख्य साम्याधिकारी मुख्य साम्याधीन प्रधान किंवा राजा वे चार धन विष्णुओं में पूर्व विद्वत् होने चाहिये ॥ १ ॥ मूल से मूल दण्ड विद्वानों कायदा बहुत मूल ही तो तीन विद्वानों की धन्य वैसी व्यवस्था करें उस धर्म अर्थात् व्यवस्था का उत्सवना कोई भी न करे ॥ २ ॥ इस समय में चारों वेद, व्यासशास्त्र, विश्व, कर्मशास्त्र आदि के वेद विद्वत् धन्यदाता ही परमत्वे अग्रजारी गृहका और धन्यका ही तब वह धन्य हो कि जिसमें दण्ड विद्वानों से मूल न हाने चाहिये ॥ ३ ॥ और जिस धन्य में आदेश बहुतवेद धामवेद के आने वाले तीन साम्यादा हो क व्यवस्था करें दण्ड धन्य की की हुई व्यवस्था को भी कोई उत्सवना न करे ॥ ४ ॥ यदि धन्यका धन वेदों का आदेशदाता त्रिभिन्न में उच्चतम साम्याधी जिस धर्म की व्यवस्था करें वही जेठ धर्म है क्योंकि धन्यपत्रियों क धन्यों काभी कोई मिला के जो कुछ व्यवस्था करें उसका कभी न मानना चाहिये ॥ ५ ॥ जो अग्रजर्ण धन्यकायदादि अथ बरविष्णु या विचार से शिव उन्मत्तान् सगृहवत् वर्तमान है उन सहधों अनुष्ठी के मिलने से भी धन्य नहीं कहती ॥ ६ ॥ जो अविष्णुका मूल, वेदों के न आने वाले अनुष्ण जिस धर्म का करें उसको कभी न मानना चाहिये क्योंकि जो मूलों क करे कुछ धर्म के अनुष्ण

सकते हैं उनके पीछे छिपे हुए प्रकर के पाप छग जाते हैं ॥ ७ ॥ इसलिये तीनों धर्मात् विष्णुसम्यक् धर्मसमा और राजसमाधों में मूर्खों को कभी मरती न करे किन्तु धरा बिह्वत् और धार्मिक पुरुषों को व्यापका करे और सब लोग ऐसे:—

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां वृण्वतीति च शाश्वतीम् ।

आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां याज्ञानिकीं च लोकतः ॥ १ ॥

इन्द्रियाणां ज्ञेये योगं समातिष्ठेद्विवानिशम् ।

क्षितेन्द्रियो हि शक्नोति वशं स्वापयितुं प्रजम् ॥ २ ॥

इह कामसमुत्थानि तथाप्यो क्रोधजानि च ।

व्यसनानि नुरन्तानि प्रयत्नानि दिवर्षयेत् ॥ ३ ॥

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ।

वियुज्यतेऽर्धधर्माभ्यां क्रोधजेष्व्वात्मनैव तु ॥ ४ ॥

मृगयासो दिवास्वाम् परीबाह् क्षियो भवः ।

तौर्ध्वं चिह्नं वृथात्था च कामजो ह्यशको गणः ॥ ५ ॥

पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईष्यास्तुषार्धवृषभम् ।

बाह्वङ्गं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गन्धोदकः ॥ ६ ॥

द्रूपोत्प्लेतयोर्मूलं यं सर्वं कवयो विदुः ।

तं पक्षेन ज्ञेयज्ञोमं तज्जाकृतानुमी ययो ॥ ७ ॥

पानमहा क्षियञ्चैव मृगया च पयाकमम् ।

पतत्कण्ठमं विद्याधनुष्कं कामजं पक्षे ॥ ८ ॥

वृण्वत्य पातनं चैव बाह्वङ्गपारुष्यार्धवृषभे ।

क्रोधजोऽपि मये विद्यात्कण्ठमेतत्किञ्च सदा ॥ ९ ॥

सप्तकस्यास्य बगस्य सर्ववैवानुपक्षिणः ।

पूर्वं पूर्वं शुद्धतरं विद्याध्वजसममात्मबान् ॥ १० ॥

व्यसनस्य च नृसोऽथ व्यसनं कष्टमुच्यते ।

व्यसन्योऽथो मज्जति सर्वान्धस्यसमी सुतः ॥ ११ ॥

मनु ७।४३—४३ ॥

राजा और राजसमा के समझदू सब हो सकते हैं कि जब वे अपनी सेवों को कर्मोपमाणा ज्ञान विद्याधी के कामवेकाओं से तीनों विष्णु सन्ध्यात् दृढनीति स्वाध्यायिक धर्मविष्णु धर्मोत्तरमाया के शुद्ध कर्म समझदू के बन्धनत् ज्ञानवेका मज्जति और लोक से वार्ताधी का धारम्भ (कष्टा और वृद्धा) धीककर धर्मोत्तर च धर्मपति हो सके ॥ १ ॥ सब समझदू और धर्मपति इन्द्रियों को जीतने धर्मोत्तर धर्म में एक के धर्म धर्म में कर्त और धर्म से हरे हटा रहें । इसलिये रात दिन विद्युत समान में योगमाया भी करते रहें क्योंकि जो क्षितेन्द्रिय कि क्षितेन्द्रिय (जो मन प्राय और शरीर मज्ज है हृष्ट) को जीते विद्या बाहर की धर्म को धर्म में लयन करने को समझ कभी नहीं हो सकता ॥ २ ॥ धर्मोत्तरादी होकर जो काम न दृष्ट और धर्म न धर्म नृष्ट नृष्ट कि धर्म में दृष्टा हुआ मनुष्य कर्मिन्ध से विद्युत सके इनको प्रकाश न धर्म और धर्म दृष्ट ॥ ३ ॥

क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुये हुए हुए व्यसनों में फैसला है वह धर्म
अर्थात् राज्य धनार्थ और धर्म से रहित होजाता है और जो मोक्ष से उत्पन्न
हुए पाठ पुर व्यसनों में फैसला है वह शरीर से भी रहित हो जाता है ॥ ४ ॥
काम से उत्पन्न हुये व्यसन गिनते हैं देखो—सुगन्ध लेखना (धूप) अर्थात्
धोपक लेखना तथा लेखनादि दिन में खोना कामकाय व गृह्य की विम्वर किया
करना चिपों का प्रति सङ्ग मात्रक प्रथम अर्थात् मध्य अर्द्धम भाग गाथा
भारत आदि का लेखन पाता बजाता पाचना व भाग करना भुजना और
रचना हुआ हुए उभर बूमते रहना ये सब कामात्पन्न व्यसन हैं १ २ ॥

मोक्ष से उत्पन्न व्यसनों को विनश्वर हैं— पंशुव्यसन् अर्थात् सुगन्धी करना
विना बिचारे बहलकर से किसी की ची से पुरा काम करना मोह रचना
‘ईप्सी’ अर्थात् दुष्ट की बहाई व उचित दूधकर लक्ष्य करना ‘असूया’ दोषों
में गुण गुणों में दोषातोपन्न करना ‘अर्थदूष्य’ अर्थात् अर्थमनुक हुए कामों में
बन्धन का व्यय करना कठोर बचन बोलना और विना अपराध कहा बचन वा
विशेष दण्ड इत्यादि से पाठ पुरा मोक्ष से उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ जो सब बिना
खोना कामकाय और मोक्षों का मूल जानते हैं कि जिससे वे सब पुरा मनुष्य
को प्राप्त होते हैं उस खोना को प्रयत्न से छोड़ें ॥ २ ॥ काम के व्यसनों में बड़े
पुरा एक मध्यम अर्थात् मरकरक प्रथम का लेखन दूसरा पक्षी आदि से तथा
लेखना तीसरा चिपों का विशेष छद्म चौथा सुगन्ध लेखना ये चार महादूष
व्यसन हैं ॥ ३ ॥ और मोक्षों में विना अपराध दण्ड देना कठोर बचन
बोलना और धनार्थ का अन्वय में लक्ष्य करना ये तीन मोक्ष से उत्पन्न हुए बड़े
दुःखदण्डक दोष हैं ॥ ४ ॥ जो ये ७ पुरा दोषों का मूल और मोक्ष दोषों में
पिबे हैं इनमें से पूर्व १ अर्थात् व्यर्थ व्यय से काम बचन कठोर बचन से अन्वय
अन्वय से दण्ड देना इससे सुगन्ध लेखना इससे चिपों का अन्वय सङ्ग इससे
तथा अर्थात् दूध करना और इससे या मध्यम सङ्ग करना बड़ा दुष्ट व्यसन
है ॥ १ ॥ इस में वह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में जिनसे स मरकाय अन्वय है
क्योंकि जो दुष्टाचारों पुरा है वह अधिक जिज्ञेय तो अधिक १ पाप का क मोक्ष १
मति अर्थात् अधिक १ गुण को प्राप्त होता जायगा और जो किसी व्यसन में
बड़ी रंसा वह मर भी जायगा तो भी मुक्त का प्राप्त होता जायगा । इसलिये
किण राजा और सब मनुष्यों को उचित है कि कभी सुगन्ध और मध्यमार्थ
दुष्टकर्मों में न पड़ें और दुष्ट व्यसनों से दूषक होकर धर्मपुत्र गुण कर्म स्वयंको
में मर बर्ष व अन्ध २ काम किया करें ॥ १ १ ॥

राज्यभासर् और मन्त्री कथं होने चाहिये:—

मोक्षान् शस्त्रविद् शूरौऽग्रध्वजान् कुलोद्भूतान् ।

सचिवाम्भस्त चाष्टौ वा मङ्गुर्यैः परीक्षितान् ॥ १ ॥

अपि धाम्नुकरे कर्म तदप्यञ्च दुष्करम् ।

पिशुपतोऽसहायं किन्तु राज्यं महोदयम् ॥ २ ॥

तं सार्वं चिन्तयद्विष्यं सामान्यं सम्प्रविप्रहम् ।
 स्यात् समुद्यं गुप्तिं कम्पप्रममगानि च ॥ ३ ॥
 तेषां स्वं स्वमभिप्रयमुपलभ्य पृथक् पृथक् ।
 समस्तानाञ्च कार्येषु विवक्ष्यादितमप्रमन ॥ ४ ॥
 अस्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्रदानवसिष्ठान् ।
 सम्यगर्थसमाहर्तुममात्मसुपरीक्षितान् ॥ ५ ॥
 निवर्त्ततास्य बाधभिरितिकतध्वता सुभिः ।
 तावतोभ्यन्त्रितान् वक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षुषान् ॥ ६ ॥
 तेषामर्थं नियुञ्जीत शूरान् वक्षान् कुञ्जोदगतान् ।
 शुचीनाकरकर्मन्ते श्रीरुक्मन्तर्निबन्धने ॥ ७ ॥
 कृतं खैव प्रकुर्वीत सर्वशक्त्यविशारदम् ।
 इक्षिताकारचेष्टां शुचिं वक्षं कुञ्जोदगतम् ॥ ८ ॥
 अजुरक्तः शुचिर्बन्धुः स्तुतिमान् देशकान्तवित् ।
 वपुष्मन्धीविमीर्षाग्मी कृतो राज्ञः प्रशस्यते ॥ ९ ॥

मनु ० । २४—२० १—१४ ॥

स्वराज्य स्वदेय में उद्योग हुए, वेषादि राज्यों के आनन्देवासे शूरवीर विचक्षुष
 अथवा अर्थात् विचार विवक्ष्य च हो और कुञ्जीव अर्थात् प्रकार सुपरीक्षित सप्त
 वा अथ उक्तम चार्मिक कतुर 'अविचर' अर्थात् मन्त्री करे ॥ ३ ॥ क्योंकि
 कितने सहाय के विना जो उद्योग कर्म है वह जो एक के करने में कठिन होजाता
 है जब ऐसा है तो अहाय राज्य कर्म एक से कैसे हो सकता है ? इसलिये एक
 को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कर्मों का निर्भर स्थान बहुत ही कुछ
 कम है ॥ २ ॥ इससे सम्प्रपति को उचित है कि निम्नप्रति जब राज्यकर्मों में
 कुञ्जव विद्या मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से (सम्प्र) मित्रता
 किसी से (विद्या) कितने (अथ) कितने समय को देखते सुपथप रहकर
 अपने राज्य की रक्षा करके कैसे रहना (समुद्यमम्) जब अपना उद्यम अर्थात्
 बुद्धि हो जब कुछ शत्रु पर चढ़ाई करना (गुप्तिम्) पूरा शक्त्येव कोट भादि
 की रक्षा (कम्पप्रममगानि) जो २ देख प्राप्त हो उक्त १ में अस्मिन्कालपत्र
 अथवाहित करना हव का गुणों का विचार विवक्ष्यति किया करें ॥ ३ ॥ विचार
 से करना कि जब सम्प्रदायों का पूरक २ अपना २ विचार और अस्मिन्काल को
 सुगम वपुषमुत्तर कर्मों में जो कर्म अपना और अन्य का दिक्कारक हो वह
 करने लगता ॥ ४ ॥ अन्य भी पवित्रता बुद्धिमात्र विमिश्रबुद्धि पदार्थों के
 समझ करने में अविचर सुपरीक्षित मन्त्री करे ॥ ५ ॥ कितने मनुजों से
 राज्यकार्य सिद्ध होछके उतने आकाशरहित वक्षान् और वक्षे २ कतुर मयात्र
 पुर्णों को अधिकारी अर्थात् बोल करे ॥ ६ ॥ इसके आधीव शूरवीर वक्षान्
 कुञ्जोदगत पवित्र गुणों को वक्षे २ कर्मों में और भी करतव्यों को भीतर ॥

कर्मों में निरुक्त कर ॥ ७ ॥ जो प्रसिद्ध कुछ में उपपन्न चतुर पवित्र,
हृदयमें धीमे बहा से भातर इक्षुष धीरे मविष्मन् में होववाली बात का भावने
हारा सब याधों में विचार चतुर है उस वृत्त को भी इक्षुष ॥ ८ ॥ यह देखा
हो कि राज कर्म में चतुर्व्यवस्था प्रीतिरुक्त निष्कपटी पवित्रमा चतुर
चतुर समय की बात का भी न भूखरेवाला दृष्ट धीरे ब्रह्मानुद्धत वर्तमान
का कर्मो मुन्त्र रूपरुक्त निर्भय धीरे बहा बध्य हो रही राजा का वृत्त
होने में प्रसन्न है ॥ ९ ॥

विश्व २ का कथा २ अधिचार हुआ वाग्व है—

अमृत्ये दृष्ट आपत्ता दृष्ट पेनयिकी दिवा ।
नृपतो काशराष्ट्र च वृत्त सन्धिविपययो ॥ १ ॥
वृत्त एव हि र्मधत्त निरस्य च संहतान् ।
वृत्तस्तत्कुदत कम निधत्त पम वा न वा ॥ २ ॥
मुदृष्ट्या च सर्वे तत्पन परराजचिकीर्षितम् ।
तथा प्रपद्यन्तिष्ठपथात्मान न पादवत् ॥ ३ ॥
धनुर्गुणं महीगुणमगुणं वापुमेव वा ।
नृगुणं गिरिवृत्त वा सम्यधित्य वसन्तुरम् ॥ ४ ॥
एव यत्त वाधयति प्राकारम्भा धनुषम् ।
यत्त स्यसहस्राणि तस्माद् गुणे विधीयत ॥ ५ ॥
तस्याशायुधस्यध धमधाम्यन पादनः ।
प्रमत्तय धिनिनिवेन्द्रपवनमाह्वय च ॥ ६ ॥
तस्य मध्य सुपथानं कारयद् गृहमात्मनः ।
गुणं सर्वत च युधे उन्नतृपामभिवन् ॥ ७ ॥
तरन्मास्याप्रहज्जायां धनुर्गुणं प्रपद्यन्तिष्ठम् ।
वृत्त महीन ताम्बूतं हृत्तं कागुणमभिवन् ॥ ८ ॥
पुरादिर्त प्रकुर्वीत गृधुषारव वविष्मन् ।
त स्त गृधुषारि कथ्यन्ति वृधुषं त्रिकिर्वाणि च ॥ ९ ॥

अनु ०१ ५२ ॥ ६८ १-१० ॥

अमृत्ये की दृष्टविचार दृष्ट के विषय विषय चतुर्व्य विषय अमृत्ये
दृष्ट न होने पर राजा के कर्तव्य अथवा के राजकर्तव्य का ध्यान के कर्तव्य
का ध्यान के दृष्ट के कर्तव्य विधीयते अथवा के कर्तव्य
॥ १ ॥ दृष्ट विचार कर है जो वृत्त में बह के विधीयते दृष्ट दृष्टो का चतुर्व्य
५२ ॥ ५२ चतुर्व्य के विषय वृत्तों के दृष्ट ५२ ॥ ५२ चतुर्व्य
५२ चतुर्व्य चतुर्व्य के दृष्ट चतुर्व्य के दृष्ट ५२ चतुर्व्य
५२ चतुर्व्य के दृष्ट चतुर्व्य के दृष्ट ५२ चतुर्व्य के दृष्ट ५२ चतुर्व्य

इत्यधिके सुम्बर अङ्गुल धन धान्यपुष्प देश में (धनुर्द्वयम्) धनुर्धारी पुष्पी ध
 गङ्ग (महीद्वयम्) मही से किया हुआ (जम्बुद्वयम्) जम्ब से घेरा हुआ (चार्धम्)
 अर्धोत्तरी ओर धन (शुभ्रद्वयम्) चारों ओर संघा रहे (विरिद्वयम्) जम्बोत्
 त्तरों ओर पहाड़ी के बीच में कोट बना के इससे मध्य में नाग बनावे ॥ ३ ॥
 और चर के चारों ओर (प्रभार) प्रभेद बनावे क्योंकि उसमें किया हुआ एक
 और धनुर्धारी अस्त्रपुष्पपुष्प सी के साथ भी सी द्वा द्वार के साथ पुष्प कर
 सकते हैं इसलिये अस्त्र धुई का बनाना उचित है ॥ २ ॥ वह धुई अस्त्रास्त्र
 धन धान्य अङ्गुल अङ्गुल को पढ़ाने उपदेश करनेहारे हों (सिद्धि) करीयर,
 धन्य बना प्रभार की कक्षा (बधसेन) धारा घास और जल घास से सम्यक्
 चर्चात् परिपूर्ण हो ॥ २ ॥ उससे मध्य में जल हुए पुष्पादिक सब प्रकार से
 रचित सब धनुषों में सुकधारक, रवेतर्क धपवे लिये घर भित्तमें सब राज्य
 कर्ण का निर्धार हो बैसा बरबावे ॥ ७ ॥ इसमें अर्धोत्तरी अङ्गुल से किया पद
 के वहाँ तक राजकर्म करके पद्यात् सौम्यं रूप गुणपुष्प धपवे इत्य को अतिविश्व
 रहे उत्तम कुल में उत्पन्न सुम्बर अङ्गुल धपवे अग्नि कुल की कन्या जो कि
 धपने मरत विद्यादि गुण कर्म स्वभाव में हो उस एक ही स्त्री के साथ विवाह
 करे इसी से सब विघ्नों को अल्प अल्प कर दृष्टि से जीव देवे ॥ ८ ॥
 पुरोहित और अग्नि का स्वीकार इसीलिये कर कि व अग्निहोत्र और पवेदि आदि
 सब राजकर के कर्म किया करें और आप सर्वज्ञ राजकर्म में उत्तर रहे अर्धोत्तरी
 पही राज्य का सम्पूर्णसत्तादि कर्म है जो राज दिव राजकर्म में प्रवृत्त रहना
 और कोई राजकर्म कियुक्त न द्वा ॥ ६ ॥

सांभत्सरिकमासेष्व राष्ट्रावाहार्यद्विभिम् ।

स्यान्नाज्ञायपरो लोक वर्त्तत पितृवत्पु ॥ १ ॥

आभ्यस्तान् विविधान् क्रियात् तत्र तत्र विपक्षित् ।

तऽस्य सर्वाण्यवकृत्तृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥ २ ॥

आवृत्तानां गुरुपुत्रादिप्राणां पूजको भवत् ।

नृपाणामक्षय्यं ह्येव निधिज्ञातो विधीयते ॥ ३ ॥

समोत्तमाधमं राजा त्वाङ्गुतं पाकयन् प्रजम् ।

न निषेत्त संप्रामात् क्षात्रं धर्ममनुसरन् ॥ ४ ॥

आङ्गुपु मिथोऽप्योऽर्थं जिघांसन्तो महीक्षित् ।

युध्यमाना परं शक्त्या न्वर्गं याम्यपराङ्मुखा ॥ ५ ॥

न च हम्पात् न्यनाकृष्टं न ऽङ्गीर्षं न कृताञ्जलिम् ।

न मुक्त्यर्थं मासीमं न तयासीति यादिमम् ॥ ६ ॥

न शुभं न बिम्बघाटं न मर्मं न निगधुधम् ।

मायुध्यमानं गव्यमर्त्तं न परस्व समागतम् ॥ ७ ॥

मायुध्यमनं प्राप्तं नात्त नातिपरिचलम् ।

न भीतिं न पराङ्मुखं नती धर्ममनुसरन् ॥ ८ ॥

यस्तु मीतं परावृत्तं सङ्ग्रामे हृष्यत परैः ।
 मनु र्पेद् युष्मत् किञ्चित्सर्वं प्रतिपद्यत ॥ ६ ॥
 यथास्य सुकृतं किञ्चिन्मुनार्यमुपाजितम् ।
 भता तस्मैमावृत्ते परावृत्तवृत्तस्य ॥ १० ॥
 रथार्थं हस्तिनं क्षत्रं धर्मं धाम्प्यं पशून् त्रियं ।
 सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यत्नयति तस्य तत् ॥ ११ ॥
 राज्ञश्च दधुस्त्रास्यमित्येवा पैदिकी भुक्तिः ।
 राज्ञा च सद्योपधम्यो दातव्यमपूयमित्तम् ॥ १२ ॥

मनु ७। ८१-८२ ८३ ८४ ११-१२ ॥

कार्तिक कर प्राप्त पुरुषों के द्वारा प्रदत्त कर धीरे जो सम्पत्तिकर राजा
 वाणि प्रदात पुरुष हैं वे सब सम्य वेदानुसृत होकर राजा के साथ पिता के समान
 रहें ॥ १ ॥ उस राज्यकार्य में विविध प्रकार के व्ययों को सम्य विधत् कर
 इनका यही कर्म है जिससे १ जिस २ काम में राजपुरुष हों वे विषयानुसार वर्ष
 कर पञ्चमस कर्म करते हैं का नहीं, जो व्ययकर करें तो उनका सत्कार और जो किय
 करें तो उनको व्ययगत वृत्त दिया करे ॥ २ ॥ सदा जो राजाओं को वेदभार
 कर पञ्चम को है इसके प्रकार के विषये जो कोई व्ययवत् प्रदातर्ष से वेदधि
 शास्त्रों को पढ़कर गुरुकुल से जाने उनका सत्कार राजा और सम्य व्ययकर करें
 तथा उनका भी जिसके पढ़ावे हुए विद्या होवे ॥ ३ ॥ इस बात के करने से
 राज्य में विद्या की उत्पत्ति होकर प्राप्त उत्पत्ति होती है जब कभी राजा का
 पञ्चम करने वाले राजा को कोई अपने से जोया पुरुष और उत्तम संवत्स में
 भाग्यवान् को तो ब्रह्मियों के वर्ग का सम्य कर संवत्स में जाने से कभी विद्वत्
 न हो पण्डित, बड़ी कुरारों का साथ उनमें पुरुष कर जिससे अपना ही विजय
 हों ॥ ४ ॥ जो संवत्सरी में एक दूसरे को इनक करने की इच्छा करते हुए राज्य
 काम कितना अपना सामर्थ्य हो विद्या का पीठ न दिया पुरुष करते हैं वे पुरुष
 को प्राप्त होते हैं इससे विमुक्त कभी न हो । किन्तु कभी यशु को जीतने के
 विषये उनका धाम्प्य से दिए जाया उचित है क्योंकि जिस प्रकार स यशु को
 जीत सक वैसे काम करें वैसे सिद्ध भोज से भाग्यवान् भाकर शब्दादि में शीघ्र
 भस्म होजाया है वैसे मूर्खता से यह भव न होजाये ॥ ५ ॥ पुरुष सम्य में हार
 उबर पड़े मनुष्य, हाथ जोड़े हुए जिसके धिर के पाद मुक्त गये हों, वेद हुए
 'मैं तेरे शरण हूँ' वेद को ॥ ६ ॥ छोटे हुए, मृदों का प्रसन्न हुए, नष्ट हुए,
 घायुष से रहित पुरुष करत युद्धों को दक्षिण वाले यशु ७ साधो ॥ ७ ॥
 घायुष के प्रहार से पीड़ा को प्राप्त हुए, दुःखा पञ्चमस पञ्चम कर हुए और
 पञ्चमस करत हुए पुरुष को सन्तुष्टों के वर्ग का सम्य करत हुए, बाधा भोग
 कभी न मारे किन्तु उनको दक्ष के जो प्रप्य हो कभीपूह में पद और भाजन
 प्राप्तदात व्ययवत् वेद और या व्ययक हुए हों उनको धीरधरि विजिपूर्वक
 करें । न उनको विद्वत् न दुःख दवे । जो उनके धाम्य काम हा कराव । विद्वत्

इस पर व्यास कहते कि श्री कृष्णक बुद्ध और अतुर तथा लोकमुख पुत्रों पर
अस कभी न चढ़ाये । उनके कहने काही को अपने अन्तर्मुख पावे और किसी
को भी पावे । अब जो अपना बहिन और कन्या के समान समझे, कभी
विवाहसक्ति की इष्टि से भी न देखे । अब राम कन्ये प्रकट कम काव और
किमें पुत्र २ पुत्र कन्ये की शता न हो उनके उत्कारपूर्ण बोध कर अपने २
पर का देश को मेव देवे और जिससे भविष्यत् काल में धिग होना सम्भव हो
उनको सदा कदाचार में रखे ॥ ८ ॥ और जो बहिनव अर्थात् भ्राते और का
पुत्र्य भुक्त शत्रुओं में मत्ता काव वह उस स्वामी के अपराध को प्राप्त होकर
व्यवधीव होते ॥ ९ ॥ और जो उसकी प्रतिष्ठा है जिससे इस लोक और
परलोक में सुख होने काया या उसको उत्तम स्वामी की सेवा है जो कन्या पुत्र्य
मात्र काव उसको बुद्ध भी सुख नहीं होता उसका पुत्रकाल सब वह हो कदा
और उच्च प्रतिष्ठा को का प्राप्त हो जिसने धर्म से पथभ्रष्ट पुत्र किया हो ॥ १ ॥
इस व्यवस्था को कभी न छोड़े कि जो २ कहानी में जिस २ भुक्त का काव न
रख छोड़े हाथी कुत्त, बक प्राण्य याव कादि पशु और स्त्रियों तथा काव
प्रकार के सब प्राण्य और भी, लेक कादि के कुल्ये जीते हों वही उसका प्रवृत्त
करे ॥ ११ ॥ परन्तु सेवकाल का भी अब जीते हुए पक्षियों में से चोराहवा
प्राय राका को देखे और राका भी सेवकाल पोद्गरी को उस पक्ष में से जो सब
से मित्रकर जीता हो, सांछइना माग देवे । और जो कोई बुद्ध में मर गया हो
उसकी स्त्री और सन्तान को उत्तम भव्य देवे उसकी स्त्री तथा अस्मर्त्त कहकों
का बधायत् पावन करे । अब इससे पहले समर्थ हो जाई तब उनको बधायोम्य
भविष्यत् देवे जो कोई अपने राज्य की इष्टि प्रतिष्ठा निजव और आयम्बुद्धि
की इच्छा रखता हो वह इस भर्ता का उत्सवण कभी न करे ॥ १२ ॥

अज्ञानं खेयं क्षिप्तेत अर्थं रक्षेत्प्रयत्नतः ।

रक्षितं धर्मयैश्चैव बुद्धं पापपु निक्षिपत् ॥ १ ॥

अज्ञानं निक्षेदयन्त अर्थं रक्षेत्प्रयत्नतः ।

रक्षितं धर्मयैश्चैव बुद्धं पापपु बुद्धं दानेन निक्षिपत् ॥ २ ॥

अमापयेय पक्षेत् न कथंथन मापया ।

गुण्यतादिप्रयुक्तां च मायाधिसं स्वसंपूतः ॥ ३ ॥

मास्य क्षिद्रं परो विद्याक्षिद्रं विद्यात्परस्य तु ।

गृह्णन्कुर्मं रथाह्वानि रक्षद्विषयमात्मनः ॥ ४ ॥

यकथयिन्तपार्थान् सिद्धयश्च पराक्रमतः ।

वृक्षयथावत्तुम्पत शशयथा विनिष्पतत् ॥ ५ ॥

पथं विष्णुमामस्य यऽस्य स्युः परिपथिनः ।

तानानपद्वर्ध सपान् सामाविमिष्यथ ॥ ६ ॥

यथोत्तरति निर्वाता कर्षं धाम्यं च रक्षति ।

तथा रक्षन्नुपा राष्ट्रं इम्याथ परिपथिनः ॥ ७ ॥

मोहाद्रात्रा सद्यधू प' कर्पयस्मन्नेकपा ।
 सोऽचिराद् भक्ष्यत रात्र्यास्त्रीयिताश्च सवान्धव' ॥ ८ ॥
 शरीरकर्मकृत्प्राणा' स्त्रीयन्ते प्रायिनां यथा ।
 तथा रात्र्यामपि प्राणा' स्त्रीयन्ते रात्र्यकर्मणात् ॥ ९ ॥
 रात्र्यस्य संप्रहे मितं विधानमिदमाचरेत् ।
 सुसंगृहीतरात्र्यो हि पार्थिव' सुखमेवत ॥ १० ॥
 द्रयात्मयस्या पंचाजां मध्यं शुद्धमभिष्टितम् ।
 तथा प्राम्मतायां च कुप्याद्रात्र्यस्य संप्रहम् ॥ ११ ॥
 प्राम्त्याधिपतिं कुप्याद्दृष्टप्रामपतिं तथा ।
 विंशतीं शतं च सहस्रपतिमेव च ॥ १२ ॥
 प्राप्ते दोषात्समुत्पन्नान् प्रामिक' शब्दैः स्वयम् ।
 शंसद् प्रामदंशाय दशसौ विंशतीतिवम् ॥ १३ ॥
 विंशतीश्वस्तु तत्सर्वं शतशाय निबध्यत् ।
 शंसद् प्राम्मताश्वस्तु सहस्रपतयं स्वयम् ॥ १४ ॥
 तेषां प्राम्याधि कार्याधि पृथक्कर्म्याणि वैव हि ।
 रात्र्योऽस्य सन्धिष' क्षिण्वस्तानि पश्येद्वत्प्रित' ॥ १५ ॥
 नगरे नगरे वैव कुयात्सर्वाध्विस्तकम् ।
 ठण्यै' स्थानं घोरकर्म नक्षत्राध्वमिव प्रहम् ॥ १६ ॥
 स ताननुपरिक्रामेत्सयमिव सदा स्वयम् ।
 तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्प्राप्तेषु तच्छरे ॥ १७ ॥
 रात्र्यो हि रक्षाधिकृता' परस्मादापिन' शठा' ।
 सुखं भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेद्विमा' प्रज्ज' ॥ १८ ॥
 यं कार्यिकेभ्योभ्यमव' शुद्धीयु' पापयेतस' ।
 तेषां सर्वकृमात्राय राजा कुयात्प्रयासनम् ॥ १९ ॥

मनु ७ । ३० १ १ १ ४—१ ० ११ —११० १२ —१२४ ४

रात्रा और रात्रसमा प्रकल्प की प्रति की इच्छा प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे रक्षित की बहाये और बड़े हुए धन को बेइच्छित धर्म का प्रचार, विद्यार्थी केरदार्योपदेष्टक तथा प्रसमर्थ आचार्यों के पाठन में बहाये ॥ १ ॥ इस धर मन्तर के पुरुषार्थ के प्रबोधन को जाने । आकाश जोरकर इसका मयी मांति किस कबुद्धाव करे । इच्छा से प्रयास की प्रति की इच्छा, किस देखने से प्राप्त की रक्षा रक्षित की बुद्धि प्रभवम् प्रमात्राधि यं बहाये और बड़े हुए धन को पूर्णक मार्ग में किस लब्ध कर ॥ २ ॥ बहाये किसी के साथ कुछ से न बर्ते, किन्तु निष्कपट होकर सब से कर्तव्य रखे और विनम्रता अपनी रक्षा करके रात्र के किने हुए कुछ का प्रयत्न के मित्रता कर ॥ ३ ॥ कोई रात्र अपने मित्र बर्ताव निर्वहता को न जान सके और लब्ध रात्र के मित्रों को जानता रहे जैसे कबुद्धा अपने बर्तों

को गुप्त रखता है वैसे शत्रु के प्रवेष्ट करने के विषय को गुप्त रखने ॥ १ ॥ वैसे
 शत्रुका ध्यानप्रलम्ब होकर मनुष्यी के पक्षधने को लक्ष्यता है वैसे वर्तमानक का
 विचार किया करे प्रत्यक्ष पदार्थ और वस्तु की बुद्धि कर शत्रु को नीतने के विषये
 सिंह के समान पराक्रम करे । नीता के समान विपक्ष शत्रुओं को पकड़े और
 समीप में जाने कष्टकर शत्रुओं से कलशोप के समान दूर भाग जान और पलाय
 उनको ब्रह्म से पकड़े ॥ २ ॥ इस प्रकार विषय कर्मेष्टके सम्पत्ति के राज्य में
 जो परिपक्वी धर्मात् पलाय हुये हैं उनको (क्षाम) मित्रा श्रेष्ठ (क्षाम) पुत्र
 देकर (मेद) तोष कोष करने वस्तु में करे और जो ब्रह्मसे वस्तु में न हों तो
 प्रति कठिन दृष्टि से वस्तु में करे ॥ ३ ॥ वैसे ज्ञान्य का निष्कर्षने कक्षा विचारों
 को धारण कर ज्ञान्य की रक्षा करता धर्मात् दूरने नहीं देता है वैसे राज्य अन्त
 जोतों को मार और राज्य की रक्षा करे ॥ ४ ॥ जो राज्य मोक्ष से धर्मिष्ठ से
 अपने राज्य को दुर्बल करता है वह राज्य और अपने कर्तु संहित जीवन से पूर्व
 ही शत्रु वह ब्रह्म हो जाता है ॥ ५ ॥ वैसे प्राणियों के मन्त्र शरीरों को कृति
 करने से जीवा हो जाते हैं वैसे ही प्रजाओं को दुर्बल करने से राजाओं के राज्य
 धर्मात् कष्टकर कर्तुसंहित वह होजाता है ॥ ६ ॥ इसलिये राजा और राजसम्प
 राज्यधर्म की सिद्धि के लिये ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे राज्यधर्म धर्म्यत् सिद्ध
 हो जो राज्य सम्पत्तय में सब प्रकार उपर रहता है उसको कुछ लक्ष्य
 है ॥ १ ॥ इसलिये दो तीन पाँच और सौ प्रान्तों के बीच में एक
 राज्यकाय रखे जिसमें कर्मयोग्य ब्रह्म धर्मात् कर्मदार धर्मि राज्यधर्मों को
 रखकर सब राज्य के कर्मों को पूर्ण करे ॥ ११ ॥ एक १ प्रान्त में एक १ प्रधान
 पुत्र को रखे अन्ही दस प्रान्तों के ऊपर दसरा, अन्ही बीस प्रान्तों के ऊपर
 तीसरा अन्ही सौ प्रान्तों के ऊपर बीस और अन्ही सहास प्रान्तों के ऊपर पाँचवा
 पुत्र रखे वैसे कर्मकाय एक प्रान्त में एक पक्षधरी अन्ही दस प्रान्तों में एक
 पक्षा और दो भागों पर एक बड़ा भाग और उन पाँच भागों पर एक सहास
 और दस सहासियों पर एक त्रिंश विभक्त किया है वह नहीं अपने मनु धर्मि
 वर्तमानक से राजनीति का प्रकर किया है ॥ १२ ॥ इसी प्रकार प्रत्यक्ष का
 और धर्म्य देवे कि वह एक १ प्रान्त का पति प्रान्तों में विभक्ति जो १ दोष
 वाप्य हो उन १ को गुप्तता से दस प्रान्त के पति को विहित कर और वह दस
 प्रामाधिपति उसी प्रकार बीस प्रान्त के स्वामी का दस प्रान्तों का वर्तमान निष्क
 पति बना देवे ॥ १३ ॥ और बीस प्रान्तों का अधिपति बीस प्रान्तों के वर्तमान
 को राजप्रमाधिपति को निष्कपति विवेदन करे वैसे सौ १ प्रान्तों के पति धर्म्य
 सहासधिपति धर्मात् हजार प्रान्तों के स्वामी को सौ १ प्रान्तों के वर्तमान को
 प्रतिनिध जगत्प करे । और बीस प्रान्त के पाँच अधिपति सौ १ प्रान्त के
 अध्वक का धर्म्य व सहास १ के दस अधिपति दस सहास के अधिपति को और
 सहासियों की राजसम्प को प्रतिनिध का वर्तमान जगत्प करे और वे सब
 राजसम्प महाराजसम्प जगत्प स्वर्णभीमचक्रवि महाराजसम्प में सब भूगोत्र
 का वर्तमान जगत्प करे ॥ १४ ॥ और एक १ दस सहास प्रान्तों पर दो अध्वपति

कैसे करें जिसमें एक राजसभा में दूसरा सम्मेलन चाहता होकर सब न्यायाधी
कादि राजपुरुषों के कर्मों को सदा धूमकर देखते रहें ॥ १२ ॥ वर्ये २ पगरी में
एक २ बिचार करनेवाली सभा का सुन्दर जब और विचार हैता कि कन्त्रमा है
कैसा एक २ घर बचावें उद्योग वर्ये २ विचारक कि जिन्होंने विद्या से सब प्रभार
की परीक्षा की हो वे देखकर विचार किया करें जिस विषयों से राजा और मन्त्र
की उन्नति हो कैसे २ विषय और विद्या प्रकटित किया करें ॥ १३ ॥ जो भिक्षु
धूमने बाधा सम्पादित हो उद्योगे आधीन सब गुप्तचर अपात्त दूतों को रखे जो
राजपुरुष और मित्र २ जाति के रहें उनसे सब राज और मन्त्रपुरुषों के सब
बोध और गुण गुप्तरीति से जाना करे जिसका अपराध हो उनके दण्ड और
विमर्श गुण हो उनकी प्रतिष्ठा धरा किया करे ॥ १४ ॥ राजा जिसको मन्त्रा की
रक्षा का अधिकार देने से धार्मिक सुपरीक्षित विद्वान् कुलीन हों उनके आधीन
मन्त्रा ठठ और पर परार्थ हरने वाले चोर काकुली को भी बौद्ध राज के उनके
हुड कर्म से बचाने के विषय राजा के नौकर करके उन्हीं रक्षा करनेवाले विद्वानों
के स्वाधीन करके उनके इस मन्त्रा की रक्षा पक्कम् करे ॥ १५ ॥ जो राजपुरुष
मन्त्रा से बादी प्रतिवादी से गुप्त बन लेके पक्षपात से सम्पाद करे उसका
धर्मत्व हरण करके बन्धनोन्म दण्ड देकर ऐसे देश में रखे कि जहाँ से पुनः
छोड़कर न आ सके क्योंकि यदि वमको दण्ड न दिया जाय तो उसको देश के
जन्म राजपुरुष भी ऐसे हुए कर्म करें और दण्ड दिया जाय तो वर्ये रहें, परन्तु
जितने से जब राजपुरुषों का योग्येय मन्त्रीमूर्ति हो और वे मन्त्रीमूर्ति बन्धन
भी हों उतका जन का भूमि राज्य की और से मासिक या वार्षिक धनरा एक
बार मिला करे और जो हुए हों उनके भी धारा मिला करे परन्तु यह धन
में रखे कि जब तक वे जियें तबतक वह अधिकारी बनी रहे परन्तु इसके सम्पत्तियों
का सम्भार का बौद्धी उनके गुण के अनुसार बदल देवे । और जिसके बाधक
बलक सम्पत्त हों और उनकी की कीती हो तो उन धन के विरोधार्थ राज की
ओर से पचासोत्त धन मिला करे परन्तु जो उसकी रक्षा का सङ्के कुम्भी होयार्थ
को कुत्र न मिले ऐसी नीति राजा बराबर रखे ॥ १६ ॥

यथा फलेन युज्यते राज्यं कृत्वा च कर्मणाम् ।

तथाप्येष नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥ १ ॥

यथास्याऽऽह्वयमवस्थाऽऽद्य बाध्योऽकोशस्तपद्पदा ।

तथास्याऽऽह्वयो ग्रहीतव्यो राष्ट्रद्रावाधिकः कष्टः ॥ २ ॥

नोऽहिम्न्यादात्मनो मूलं पर्याप्तातिरूप्यया ।

उचिहन्मन्त्रात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयत् ॥ ३ ॥

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव स्यात्कार्यं पीडय महीपति ।

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राज्यं भवति सम्मतं ॥ ४ ॥

एवं सर्पं पिधायमिति कृतम्यमात्मनः ।

युद्धाद्येवाप्रमत्तश्च परिरक्षुहिमः प्रजा ॥ ५ ॥

विक्रोशमयो यस्य राष्ट्रप्राध्विन्यस्ते वस्युभिः प्रजाः ।
सम्पश्यतः ससृत्स्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥ ६ ॥
सृष्टिपस्य परो भर्मः प्रज्जनायेव पाप्मनम् ।
निर्विद्वत्कर्मोक्ता हि राजा भर्मेण युज्यते ॥ ७ ॥

मनु ७ । ११८—११९ १२०—१३ १३२—१४७ ॥

वैसे राजा और कर्मों का कर्ता राजपुरुष का प्रजाजन सुखरूप कर्म से सुख होते वैसे विचार करके राजा तथा राजसमा राज्य में कर स्थापन करे ॥ १ ॥
जैसे लोक कदा भीर मंत्रा जाये २ योग्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं वैसे राजा प्रजा से बोझ १ धार्मिक कर लेवे ॥ २ ॥ अति लोग से अपने का दुखी के सुख के सुख को अधिक प्रभाव यह कदापि न कर क्योंकि जो मन्त्रा और सुख के सुख का ध्यान करता है वह अपने को और उनके पीछा ही देखे है ॥ ३ ॥ जो महीपति कर्म को देख के तीव्र और क्रोध ही होते वह दुष्टों पर तीव्र और भेदों पर क्रोध रहने से राजा अति मायवीय होता है ॥ ४ ॥ इस प्रकार सब राज्य का प्रकल्प करके सब इसमें सुख और समाहरित होकर अपनी प्रजा का पाप्मन विस्तार करे ॥ ५ ॥ जिस धृष्ट सहित देखते हुए राजा के राज्य में से कष्ट कोय होती विद्याप करती प्रजा के पदार्थ और प्राणों को हारते रहते हैं वह कानो सुख सम्यक्सहित सुख है जीवा नहीं और महाधुन्य का पनेकाया है ॥ ६ ॥ इसलिये राजाओं का प्रजापत्य करका ही परमधर्म है और मनुस्मृति के सप्तमाध्याय में कर लेना लिखा है और विसा समा नियत कर उक्त मोक्ष राज्य धर्म से सुख होकर सुख पठा है इससे विरहीत सुख को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

उत्थाप पश्चिम यामे कृतशीघ्रः समाहितः ।

हुताग्निर्गर्ग्यर्णोद्धार्य प्रविशेत्स शुभां समाम् ॥ १ ॥

तत्र स्थिताः प्रजाः सर्वाः प्रतिगम्य विसर्जयेत् ।

विसृज्य च प्रजाः सर्वाः मन्त्रपेत्सह मन्त्रिभिः ॥ २ ॥

गिरिपुष्टं समाकृष्टा प्रासादां वा राज्ञेयतः ।

अरण्ये निःशुभाके या मन्त्रयेद्विभायितः ॥ ३ ॥

यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्भवाः ।

स कृत्स्नं पृथिवीं भुङ्क्ते कोऽपि नोपि पार्थिवः ॥ ४ ॥

मनु ७ । १४२—१४८ ॥

जब विजयी महर रात्रि रहे तब उठ श्रीच और धामधाम होकर परमेश्वर का ध्यान अभिहोत्र, धार्मिक विद्वानों का जलकर और भोजन करके भीतर समा में प्रवेश करे ॥ १ ॥ वहाँ खड़ा रहकर जो प्रजाजन उपविष्ट हो उनको मान्य है और उनको छोड़कर मुख्यमन्त्री के साथ राजमन्त्रवस्था का विचार करे ॥ २ ॥ पश्चात् उनके साथ ब्रह्म के ज्ञान का पर्वत की विद्या धनदा वृक्षान्तर का जलज मित्रों एक शकाय जी न हो पिछे पृथग्भवा में वेदका

विन्द मावग को जोड़ मन्त्री के साथ विचार कर ॥ ३ ॥ जिस राजा के गुह
विचार को जल्प जब मित्रकर नहीं जान सकते अर्थात् जिसका विचार गम्भीर
गुह परोपकारार्थ सदा गुप्त रहे वह भवहीन भी राजा सब धृतिवी के राज्म करने
में समर्थ होता है इसलिये अपने मन से एक भी काम न करे कि जन्तक
सभासर्शों को अनुमति न हो ॥ ४ ॥

आसनं चैव यानं च सन्धि विप्रहमेव च ।

कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संशयमेव च ॥ १ ॥

सन्धिं तु द्विविधं विद्याद्राज्ञा विप्रहमेव च ।

उभे यानासने चैव द्विविधं संशयं स्मृतं ॥ २ ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ।

तथा स्वापतिसंयुक्तं सन्धिद्वैपो द्विप्रहमेव ॥ ३ ॥

स्वयंकृतञ्च कस्याप्यमहाले काक एव वा ।

मित्रस्य चैवापकृतं द्विपियो विप्रहं स्मृतं ॥ ४ ॥

एकाकिनश्चात्ययिकं कार्यं प्राप्ते पदच्छ्रया ।

संहृतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥ ५ ॥

सीसस्य चैव शत्रोश्चैव दैवतपूर्वकृतेन वा ।

मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥ ६ ॥

बलस्य चाभिमन्यैव स्थितिं कार्यसिद्धये ।

द्विविधं कोत्स्यते द्वैधं वाङ्गुण्यगुणवदिति ॥ ७ ॥

अथसंपादनार्थं च वीक्ष्यमानं स शत्रुमि ।

साधुषु व्यपरेणार्थं द्विविधं संशयं स्मृतं ॥ ८ ॥

यदावगच्छद्रापत्यामाधिपत्यं ध्रुवमात्मनः ।

तदास्य आदिपका पीडां तथा सन्धिं समाश्रयेत् ॥ ९ ॥

यदा प्रहृष्टा मम्यत सर्वास्तु प्रकृतीभ्युदयम् ।

अत्युच्छिद्यतं तथात्मानं तदा कुर्यात् विप्रहम् ॥ १० ॥

यदा मम्यत भावनं हर्षं पुष्टं बलं स्वकम् ।

परस्य विपरीतं च तथा यापात्रिषु प्रति ॥ ११ ॥

यदा तु स्वात्परिशीलो वाहनेन बलेन च ।

तदासीति प्रयत्नेन शमनं सांत्वयन्परीय ॥ १२ ॥

मम्यतापरि यदा राज्ञा सर्वथा बलवत्तरम् ।

तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥ १३ ॥

यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ।

तदा तु संशयत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिर्न नृपम् ॥ १४ ॥

निप्रहं प्रकृतीनां च कुपाद्योर्ध्वबलस्य च ।

उपसन्नतं तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुह्यं यथा ॥ १५ ॥

यदि तथापि संप्रत्येहोपं संशयकारितम् ।

सुसुखमेव तथाऽपि निर्विशङ्कं समाचरेत् ॥ १९ ॥ मनु ० ॥ १९१—१०९ ॥

सब राजादि राजपुरुषों को यह बात जान में रखने योग्य है जो (पातक) विचार (पाप) कर्तु से अपने के बिने क्या (अग्नि) उन से मेघ कर सेवा (विग्रह) कुछ कर्तुओं से छड़ाई करवा (है) दो प्रकार की सेवा करके लवित्र कर सेवा (संभव) विवेकता में दूसरे प्रकार राजा का आश्रय सेवा से दो प्रकार के कर्म यथायोग्य कार्य को विचार कर उसमें कुछ करवा चाहिये ॥ १ ॥ राजा जो संधि विग्रह पाप आसक्त हो भीमाव और संभव दो २ प्रकार के होते हैं उनको यथावत् जाने ॥ २ ॥ (संधि) कर्तु से मेघ अथवा उससे विपरीतता करें परन्तु वर्तमान और भविष्य में करने के काम कराकर कर्तव्य बात यह दो प्रकार का मेघ कहाता है ॥ ३ ॥ (विग्रह) कर्मसिद्धि के बिने उचित समय या अनुचित समय में लब्ध किया या मित्र के अपराध करने वाले कर्तु के साथ विरोध दो प्रकार से करवा चाहिये ॥ ४ ॥ (पाप) अकस्मात् कोई कार्य प्राप्त होने में एकपक्षी या मित्र के साथ मित्र के कर्तु की ओर जाना यह दो प्रकार का समय कहाता है ॥ ५ ॥ लब्ध किसी प्रकार काम से जीव होकर अर्थात् विवेक होकर अपना मित्र के रोकने से अपने काम में रूढ़ रहना, यह दो प्रकार का समय कहाता है ॥ ६ ॥ कर्मसिद्धि के बिने सेवापति और सेवा के दो विग्रह करने विग्रह करवा दो प्रकार का द्वैत कहाता है ॥ ७ ॥ एक किसी कार्य की सिद्धि के बिने किसी ब्रह्मन् राजा का किसी महात्म्य की खराब सेवा जिससे कर्तु से पीड़ित न हो दो प्रकार का आश्रय सेवा कहाता है ॥ ८ ॥ जब यह काम से कि कुछ समय कुछ करने से कोई पीड़ा प्राप्त होती और पलायन करने से अपनी बुद्धि और विग्रह अकस्म होमी तब कर्तु से मेघ करके उचित समय तक जीव करे ॥ ९ ॥ जब अपनी सब प्रजा का सेवा अकस्मत्प्राप्त उचितता और जीव करने जैसे अपने को भी समझे तभी कर्तु से विग्रह (पुत्र) करलेने ॥ १० ॥ जब अपने सब अर्थात् सेवा की हर्ष और पुष्टिपुत्र प्रसन्नता से जाने और कर्तु का सब अपने से विपरीत विवेक होकर तब कर्तु की ओर पुत्र करने के बिने जाने ॥ ११ ॥ जब सेवा ब्रह्म, यद्वय से जीव हो जान तब कर्तुओं को धीरे २ प्रकार से दास करता हुआ अपने काम में रूढ़ रहे ॥ १२ ॥ जब राजा कर्तु को अकस्मत् ब्रह्मन् जाने तब शिष्टाचार का दो प्रकार की सेवा करके अपना कार्य सिद्ध करे ॥ १३ ॥ जब पाप अकस्मत् देखे कि सब कीर्ति कर्तुओं की कार्य सुख पर होगी तभी किसी धार्मिक ब्रह्मन् राजा का आश्रय दास से लेने ॥ १४ ॥ जो प्रजा और अपनी सेवा कर्तु के सब का विग्रह करे अर्थात् रोके इसकी सेवा सब वशों से सुख के संधि मिल किया करे ॥ १५ ॥ जिसका आश्रय देखे उस पुत्र के कर्मों में दोष देखे तो वही भी अपने प्रकार पुत्र ही को विग्रह होकर करे ॥ १६ ॥ जो धार्मिक राजा हो उससे विरोध कभी न करे किन्तु उससे सदा मेघ रखने और जो कुछ ब्रह्म हो वही के जीवन के बिने से पूर्णतः प्रयोग करवा उचित है ॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्याच्चीतिष्ठ' पृथिवीपति' ।

पथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोवासीमश्वजघ' ॥ १ ॥

आपतिं सूर्यकार्याणां तवात्वं च विचारयेत् ।

अतीतामा च सर्वेषां गुणदोषो च तत्त्वतः ॥ २ ॥

आपत्या गुणदोषस्तदास्ते हिप्रनिश्चय' ।

अतीतं कार्यशेषं शत्रुमित्राभिभूयत ॥ ३ ॥

यथैवं मामिदं स्युर्मित्रोवासीमश्वजघ' ।

तथा सर्वं सर्वविद्वद्भावेन सामासिको ज्ञेयः ॥ ४ ॥ मधु० ७ । १७७-१८ ॥

जीति का जावनेका पृथिवीपति राजा जिस प्रकार इसके मित उदासीन (मज्जन्) और शत्रु अधिका न हों ऐसे सब उपायों से करते ॥ १ ॥ सब कर्मों का वर्तमान में कर्त्तव्य और अविश्वत् में जो १ करण आदिने और जो २ कर्म कर चुके सब सब के परामर्श से गुण दोषों को विचार करे ॥ २ ॥ पञ्चाश दोषों के विचारण और गुणों की निश्चिता में पद्य करे । जो राजा अविश्वत् धर्मात् धारो करने वाले कर्मों में गुण कर्मों का ज्ञाता वर्तमान में दुरन्त निश्चय का कर्त्ता और जिसे दुरा कर्मों में सब कर्त्तव्य को ज्ञापता है वह शत्रुओं से पराजित कभी नहीं होता ॥ ३ ॥ सब प्रकार से राजपुरुष विशेष सम्पत्ति राजा ऐसा प्रकट करे जिस प्रकार राजादि कर्मों के मित उदासीन और शत्रु को क्या में करके अभ्यधा न करावे ऐसे मोह में कभी न पड़े वही संक्षेप से सब कर्मों पर जीति कहती है ॥ ४ ॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि' ।

उपयुक्त्यास्पर्धं चैव वारान् सम्पन्निधाय च ॥ १ ॥

सद्योप्य विविधं मार्गं पश्यिष्यं च पक्षं स्वकम् ।

स्यपरायिककल्पनं यापावरिपुरं शुभं ॥ २ ॥

शत्रुसेयिनि मित्रे च गूढं पुस्तकरो मयत् ।

गतप्रस्थगतं चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ ३ ॥

इषडभ्यूहेन तन्मार्गे यापास्तु शक्यते न ।

वराहमकरार्थं वा सूर्या वा गुरुद्वयं वा ॥ ४ ॥

यतश्च भयमप्रकृततो विस्तारयत् पक्षम् ।

पद्मं चैव भ्यूहनं निविशेत् सदा स्वयम् ॥ ५ ॥

सनापतिपसाध्यक्षां सधदितु निश्चयत् ।

यतश्च भयमार्कत् प्रार्थी तं कल्पयद्विशम् ॥ ६ ॥

गुह्यार्थं व्यापयदात्तान् कृतार्मज्ञान् समस्ततः ।

म्याने पुष्टे च कुशमानभीरुनयिकारिणः ॥ ७ ॥

सहतान् पोषयद्विज्ञानं कामं विस्तारयद् बहून् ।

सूर्या पक्षे च सूर्यान् भ्यूहनं सूर्या पोषयत् ॥ ८ ॥

स्पन्दनाशैः समं पुण्येनूये नोद्विपैस्तथा ।
 वृक्षगुग्मावृतं चापेरसिधर्मायुजैः स्थले ॥ ९ ॥
 महर्षयेषु बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत् ।
 शेषाश्चैव विज्ञानीयावरीन् योधयतामपि ॥ १० ॥
 उपबध्नादिमासीत् राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ।
 वृपयेचास्य सततं यवसाधोवक्षेण्यनम् ॥ ११ ॥
 मिथ्याचलैष तडागानि प्राकारपरिचास्तथा ।
 समवस्कन्दयेच्चैवं राज्ञी बिज्ञासयेत्तथा ॥ १२ ॥
 प्रमाणाणि च कुर्वीत तेषां धर्मान्यथोदितान् ।
 एतैश्च पूजयेत्तैर्न प्रसादपुर्ये सदा ॥ १३ ॥
 आदानमप्रियकरं वाचञ्च प्रियकारकम् ।
 अभीप्सितावामर्थाणां काळे सुक्तं प्रशस्यते ॥ १४ ॥

मनु ७ । १८७—१८९ । १८७—१८९ । १ ३—२ ७ ॥

जब राजा कछुओं के साथ कुछ करने को जाने तब अपने राज की रक्षा का प्रयत्न और वास्तु की सब सामग्री पचाविधि करके सब सेवा सब कामकाज पूर्व सेकर सर्वत्र वृत्तों जगत् चारों ओर के सम्प्रदायों को देने वाले पुण्यों को गुप्त कल्पन करके कछुओं की छोटे कुछ करने को जाने ॥ १ ॥ तीव्र प्रकार के मार्ग चर्चाए एक कल (भूमि) में वृत्ता बल (समुद्र या बहिर्षी) तीव्रता बलकल मार्गों को गुप्त बलकल भूमिमार्ग में सब सब हाथी बल में बलकल और बलकल में विमानादि बाणों से जाने और पैदल सब हाथी बलके सब और सब कामकाज सामग्री को बलकल साथ से बलकल पूर्व करके किसी विमित को प्रसिद्ध करके कछु के बल के समीप छोड़े २ जाने ॥ २ ॥ को भीतर से मित्रा हो और अपने साथ भी ऊपर से मित्रता रखने गुप्त से कछु को भेद देने डरने जाने जाने में डरसे बात करने में बलकल बलकली रखने बलकल भीतर कछु ऊपर मित्र पुण्य को बल कछु सामग्री चाहिये ॥ ३ ॥ सब राजपुण्यों को कुछ करने की विद्या विज्ञान और आप छोड़े तब बलकल सामग्री को सिखावे, को पूर्व विहित बोद्धा होते हैं वे ही बलकल प्रकार सब बलकल चाहते हैं, जब सिखा करे तब (बलकल) बलकल के समान सेवा को चाहते (बलकल) बलकल चर्चाए बलकली के समान (बलकल) बलकल सुधर एक वृद्ध के पीछे बलकल जाते हैं और कभी २ सब मित्रकल सुधर होजाते हैं बलकल (बलकल) बलकल पानी में चाहते हैं बलकल सेवा को बलकल (बलकल) बलकल का बलकल सुधर पलायन स्पृह और उससे सब स्पृह होता है किसी सिखा से सेवा बलकल बलकल (बलकल) ऊपर नीचे कलकल मारता है इस प्रकार सेवा को बलकल बलकल ॥ ४ ॥ बिपर सब विहित हो उड़ी ओर सेवा को बलकल सब सेवा के पक्षियों को चारों ओर सब के (बलकल) चर्चाए पलकल चारों ओर से सेवाओं को रखने सब में आप रहि ॥ ५ ॥ सेवापति और

नवाभ्यस्य अर्थात् आज्ञा का देने काका और सेवा के साथ सङ्गनेवाले वीरों को यहाँ
 दिशाओं में रखने, जिस ओर से चढ़ाई होती हो उड़ी ओर सब सेवा का मुक्त
 रखने परन्तु दूसरी ओर भी पक्षा प्रकल्प रखने नहीं तो पीछे का पक्ष से शत्रु
 की बाध होने का सम्भव होता है ॥ ९ ॥ जो मुख्य अर्थात् एक स्थलों के मुख्य
 पुरुषविषय से सुविधित धार्मिक स्थित होने और मुक्त करने में कुर भवराहित
 और शिवके मन्त्र में किसी प्रकार का विकार न हो उनको चारों ओर सेवा के
 रखने ॥ १० ॥ जो मोड़े से पुरुषों से बहुतांश के साथ मुक्त करवा हो तो मित्रकर
 बचाने और काम पड़े तो उन्हीं को भक्त किया देवे जब कबूर दुर्य या शत्रु की
 सेवा में प्रविष्ट होकर मुक्त करता हो तो तब (धृष्टीम्बूह) अथवा (व्याम्बूह) जैसे
 दुष्टारा बन्धु होनों और बन्ध करवा जैसे मुक्त करते कावै और प्रविष्ट भी होते
 चले जैसे अनेक प्रकार के ग्युह अर्थात् सेवा को बयाकर बचाने, जो धामने
 शक्ती (तोप) वा मुक्त हो (कन्धूक) बूट रही हो तो (सर्पम्बूह) अर्थात् सर्प के
 समान छोटे २ बड़ा कावै जब तोपों के पास पहुँचें तब उनको मार का पकड़
 तापी का मुक्त शत्रु की ओर केर उन्हीं तोपों से वा बन्धूक आदि से जब शत्रुओं
 को मारें अथवा बूट पुरुषों को तोपों के मुक्त के धामने बोड़ी पर सभार करा
 दीवारों और मारें बीच में बन्दे २ सभार रई एक बार बाध कर शत्रु की सेवा
 को द्विज मित्र कर पकड़ लें अथवा मारा है ॥ ११ ॥ जो समभूमि में मुक्त करवा
 हो तो एक मोड़े और पदातिनों से और जो उद्युक्त में मुक्त करवा हो तो बौद्ध
 और मोड़े बद्ध में हाथियों पर बद्ध और पक्षी में बद्ध तथा स्वक बालू में
 तलवार और हाथ से मुक्त करें कावै ॥ १२ ॥ जिस समय मुक्त होता हो उस
 समय सङ्गने शक्ती को लक्ष्यहित और हर्षित करें जब मुक्त बन्ध होकर तब
 मित्रसे लीज और मुक्त में उद्युक्त हो किसी वस्तुता से सब के विरुद्ध को साथ पान
 सब सब सङ्गने और बीचकादि से प्रकल्प रखने ग्युह के विरुद्ध सङ्गने न करे न
 करावे, बकरी हुई अथवा सेवा की सेवा को देख कर कि रोक २ बकरी है वा
 कन्ध रखती है ॥ १३ ॥ किसी समय उचित समये तो शत्रु को चारों ओर से घेर
 कर रोक रखने और इसके राज्य को पीकित कर शत्रु के चारा सब सब और
 इन्धन को बद्ध (वीर) दूषित करावे ॥ १४ ॥ शत्रु के ताकाय कमर प्रकट और
 काई को तोड़ चोड़ दे शक्ति में उनको (अस्र) भय देवे और बीतने का उपाय
 करे ॥ १५ ॥ बीच कर उनके साथ प्रमाण अर्थात् प्रतिज्ञादि किया देवे और
 जो उचित समय समये तो उड़ी के बंशक किसी धार्मिक पुरुष को राज्य करावे
 और उससे किया देवे कि तुमको हयारी राज्य के अनुकूल अर्थात् वैसी धर्मपुरुष
 राजनीति है इसके अनुसार सब के ल्याय से प्रजा का पालन करवा होय ऐसे
 उपदेश कर और ऐसे पुरुष उनके पास रखने कि जिससे पुत्रा उद्धार न हो और
 जो हार साथ उसका प्रकल्प प्रमाण पुरुषों के साथ मित्रकर रक्षादि उत्तम पदात्यों
 के साथ से कर और ऐसा न कर कि जिससे उद्यम योग्यता भी न हो जो
 उसको बन्दीगृह कर तो भी उद्यम प्रकल्प नवागोत्र रखने जिससे वह हारने
 के रोक से रहित होकर आगन्तु में रहे ॥ १६ ॥ क्योंकि संसार में दूधर का

पदार्थ प्रत्यक्ष करना चाहीति और ऐसा प्रीति का कारण है और विशेष करने समय पर उचित किया करना और उक्त परामित के मनोवाञ्छित पदार्थों का ऐसा बहुत उत्तम है और कभी वस्तुको बिनाये नहीं बहूँसी और न म्हा करे न उसके समाने हमने तुम्हको परामित किया है ऐसा भी करे किन्तु आप हमारे मर्त्य हैं हृदयदि मन्त्र प्रतिष्ठा सदा करे ॥ १४ ॥

हिरण्यमृमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैवत ।

यथा मित्रं धुवं जघ्ण्या कुसुमप्यायतिष्ठमम् ॥ १ ॥

धर्मसं च कृतसं च तुष्टप्रकृतिमेव च ।

अनुरक्तं सिरारम्भं जघ्नुमित्रं प्रशस्यत ॥ २ ॥

मार्गं कुञ्जीनं शूरं च वृक्षं वातारमेव च ।

कृतसं धृतिमस्तत्र कष्टमात्रुररिं बुधा ॥ ३ ॥

आर्ष्यता पुरुषज्ञानं शौर्म्यं कस्तुबदिता ।

सौख्यस्यार्थं च सततमुवासीनगुहोदय ॥ ४ ॥ मनु ०।१.८-१११ ॥

मित्र का बहाना यह है कि राजा सुकर्ष और मृमि की प्राप्ति से ऐसा नहीं करता कि कैसे मित्र का प्रत्युक्त यक्षिण्य की चालों को सोचने और कर्ष सिद्ध करने वाले समय मित्र जगन्ना दुर्बल मित्र को भी म्हा होके रहता है ॥ १ ॥

धर्म को जाचने और कृतज्ञ जगन्ना किने हुए उपकार को जरा माननेका प्रसन्न स्वभाव अनुप्रायी सिरारम्भो कहु छोटे भी मित्र को म्हा होकर परासित होता है ॥ २ ॥

जबदा हथ वस्तु को न रखने कि कभी दुर्दिनमा कुञ्जीन शूरवीर कतुर दाता किने हुए को जानबेहारे और वैर्षक्य पुष्प को कतु न बचाने क्योंकि जो ऐसे को कतु बचानेवा यह दाता पावेगा ॥ ३ ॥ उदासीन का बहाना— निजमें प्रसन्नित गुह्युक्त जगन्ना जुरे मनुष्यों का ज्ञान, शूरवीर और कस्तुब भी हो लूकलूक जगन्ना कतुर १ की चालों को निरन्तर सुचाल्य करे वह उदासीन कहलाता है ॥ ४ ॥

पर्व सर्वमिदं दाता सदा संयम्य मन्त्रिमि ।

व्याप्याभ्याप्युत्प मन्त्राहे मोक्तुमस्तपुरं विशीत् ॥ मनु ०।१।१५ ॥

पूरीत प्रत्यक्ष का समय उक्त शीघ्रदि जगन्नापराध यक्षिण्य कर का क्या सब मन्त्रिणी से निवार कर जगन्ना में का सब कृत्य और ज्ञेयपदार्थों के प्राप्ति मित्र जगन्ना हर्षित कर जगन्ना कस्तु की लूकलूक जगन्ना कस्तु कर का जगन्ना जोड़े दाता जगन्ना जगन्ना का स्थान दाता और दाता का कोट तथा वैर्षक्य जगन्ना के कोटों को ऐसा सब पर धृति मिलप्रति देकर जो कुछ जगन्ना कोट हों जगन्ना मित्र का जगन्नाका में जा जगन्ना करने मन्त्राहे जगन्ना भोजन के बिने “अन्तधुर” जगन्ना जगन्ना प्राप्ति के निवारजगन्ना में प्रवेश करे और भोजन सुपरीषित दुर्दिनपराक्रमवर्षक रोयविचारक जगन्ना प्रसार के जगन्ना जगन्ना पाव प्राप्ति सुचाल्य मित्रादि जगन्ना रखलूक उत्तम करे कि मित्रों सदा सुधी रहे हथ प्रसार जगन्ना जगन्ना के कर्षों की वृद्धि किया करे ॥

प्रजा से कर लेने का प्रयत्नः—

पञ्चाशद्भाग आर्षयो राज्ञा पशुहिरण्ययो ।

धाम्यानामप्रमो भागः पशुं द्राक्ष्य पयः वा ॥ मनु ७।१३ ॥

न्यायन करनेवाले का शिकारीजनों को मुक्त और बाँटी का बितपा काम हो उसमें से पचासवां भाग चावल आदि जनों में कुछ आसनों का दारहवां भाग बिबा करने और जो सब देने तो भी उस प्रकार से लेने कि जिससे किसी भादि करने पीने और सब से रहित होकर दुःख न पारें । क्योंकि प्रजा के अन्याय आरोप काय पय आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की कही उचित होती है प्रजा को अपने समता के सत्ता मुक्त देने और प्रजा अपने पिता सत्ता राजा और राजपुत्रों को जाने । यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसी भादि परित्याग करने वाले हैं और राजा उक्त रक्त है जो प्रजा न हो तो राजा किसी ? और राजा न हो तो प्रजा किसी कहावे ? दोनों अपने २ काम में स्वतन्त्र और मित्र हुए प्रीतिपुत्र काम में परतन्त्र रहें । प्रजा की साधारण सम्मति के बिना राज्य का राजपुत्र न हो राजा की आज्ञा के बिना राजपुत्र का मया न रहे । यह राजा का राजकीय विषय काम अर्थात् जिसको 'पोलिमि-कम' कहते हैं संघेप से कह दिया जब जो विशेष देखना चाहें वह पारों के मनुस्मृति ह्यकीमिति महाम्भारतदि में देखकर विचार कर और जो प्रजा का न्याय करण है वह व्यवहार मनुस्मृति के महम और न्यमाव्याप आदि की रीति से करण आदि परन्तु वहाँ भी संघेप से लिखते हैंः—

प्रत्यहं देशदृष्टेऽथ राजदृष्टेऽथ हेतुमि ।

अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पूषक् पूषक् ॥ १ ॥

तपामाद्यनुष्ठादान् निक्षुपोऽस्वामिविषयः ।

संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकम च ॥ २ ॥

केवलस्यैव चादानं संविदस्य व्यतिक्रमः ।

अभ्यधिक्ययानुशयो बिबाद् स्वामिपाकयो ॥ ३ ॥

सीमाविवाहधमस्य पारुष्यं दण्डवाचिकः ।

स्तर्यं च साहसं चैव क्षीनसङ्ग्रहणमथ च ॥ ४ ॥

क्षीपुंधर्मो बिभागस्य द्यूतमाह्वय पयः च ।

पदाभ्युदादशैतानि व्यवहारमिताविह ॥ ५ ॥

एषु स्थानेषु मूयिष्ठं विवाहं चरतां सुणाम् ।

धर्मं शम्भतमाभिस्य कुर्यात्कार्यविनिश्चयम् ॥ ६ ॥

धर्मा बिदस्त्यधर्मेण सभां यजोपतिष्ठत ।

शर्त्यं चास्य न कुन्तन्ति बिदास्तत्र समासद् ॥ ७ ॥

सभां वा न प्रवृष्ट्यं वल्लभ्यं वासर्मज्जसम् ।

अपुबन्धिपुबन्वापि नरो भवति किद्विपी ॥ ८ ॥

पयः धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यजानुत्तन च ।

ह्यन्यत प्रसमास्यानां ह्यतास्तत्र समासद् ॥ ९ ॥

पदार्थ प्रकट करवा चाहीति और सेवा भीति का कारण है और विशेष करके सनत पर उचित किया करवा और उक्त परामित के मनोवाञ्छित पदार्थों का सेवा बहुत उत्तम है और कभी उसको बिद्वाने नहीं न हँसी और न म्हा करे न उल्टे सामने हमने तुम्हारे परामित किया है ऐसा भी कहे किन्तु वाप हमारे भाई हैं इत्यादि मन्त्र प्रतिष्ठा सदा करे ॥ १७ ॥

हिरण्यभूमिर्संप्राप्त्या पार्थिवो न तथैवते ।

यथा मित्रं धुव्यं जगध्या कृतमप्यापतिष्ठमम् ॥ १ ॥

भूमिर्न च कृतञ्च न तुष्टमकृतिमव च ।

अनुरक्तं क्षिरारम्भं जगुमित्रं प्रशस्यते ॥ २ ॥

प्रसन्नं कुञ्जीनं दूरं च दृष्टं वातारमेव च ।

कृतञ्च पूतिमस्तञ्च कष्टमाहुररिं पुञ्जा ॥ ३ ॥

आर्यता पुत्रपुत्रान् शौर्म्यं कुरुष्वदिता ।

स्वौक्तिकस्य च सततमुदासीनगुणोदय ॥ ४ ॥ मनु ० । १ । ८—१११ ॥

मित्र का बचन यह है कि राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से सेवा नहीं करता कि कैसे मित्र प्रेम्णुक्त भविष्यत् की बातों को सोचने और कर्म सिद्ध करने वाले समर्थ मित्र जगत्तु दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होके करता है ॥ १ ॥ भूमि को जानने और कृतञ्च जगत्तु किन्हे हुए उपकार को सदा माननेवाले प्रसन्न स्वभाव अनुरागी क्षिरारम्भ जगुं जादे भी मित्र को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है ॥ २ ॥ सदा इस बात को न भूलने कि कभी बुद्धिमत्, कुञ्जीन दूरबीर और दया किन्हे हुए को जाननेवाले और विश्वास पुत्र को लहू न बचाये क्योंकि जो ऐसे को लहू बचावेगा वह दुष्ट पाकेगा ॥ ३ ॥ उदासीन का बचन— किन्हीं प्रशंसित पुत्रपुत्र जन्मे हुए मनुष्यों का ज्ञान दूरबीर और कष्ट भी हो लूकलपन जगत्तु लपर २ की बातों को विस्तृत सुचना करे वह उदासीन कहा जाता है ॥ ४ ॥

यत्र सर्वमिव राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिमि ।

व्याप्यास्माप्नुत्य मन्त्राहो मोक्तुमस्त'पुनं विरोत् ॥ मनु ० । १११ ॥

पूर्वोक्त प्रसन्नमित्र समस्त बड़े शौचवि शाल्वोपासक अग्निहोत्र का वा कर्मा सब मन्त्रियों से विचार कर राजा में का सब भुक्त और सेवाधियों के साथ मित्र सबको हर्षित कर वाचा प्रकर की स्पृहविषय जगत्तु ज्ञानद कर कर सब बोले हाथी मय आदि का स्थान सब और सब का कोप तथा वैजयन्त ध्वज के कोठी को देना सब पर दृष्टि मित्रप्रति देकर जो कुछ उद्यम को हो उसको विजय व्याप्यमयाका में का व्याप्य करके मन्त्राह समस्त भोजन के शिरे अन्तपुर" अर्थात् पत्नी आदि के विश्वसलयाय में प्रवेश करे और मोक्षन सुपरीषित बुद्धिबलपरामर्शक रोगनिवारक जलक प्रसार क जल अन्त्रय पात्र आदि सुव्यवित मित्रवि जनेक रक्षणुक्त उत्तम करे ॥ मित्रसे सदा सुखी रहे इस प्रकार सब राजा के कर्तव्यों की उन्नति किया करे ॥

धार्मिक मनुष्य को बोलते हैं कि सम्रा में कमी देखते न कब और जो देखते
 किन्ना हो तो सम ही बोले जो कोई सम्रा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन
 रहे अथवा सम्रा न्याय के विरुद्ध बोले वह महापापी होता है ॥ ८ ॥ जिस सम्रा
 में अधर्म से धर्म असत्य से सत्य सब समाप्तियों के दूखे हुए मात्रा जाता है
 उस सम्रा में सब मृतक के समान हैं जहाँ उन्हींमें कोई भी नहीं जीता ॥ ९ ॥
 मरा हुआ धर्म मारनेवाले का मारा और रहित किन्ना हुआ धर्म रणक की रक्षा
 करता है इसलिये धर्म का हनन कभी न करना हुआ घर से कि मारा हुआ धर्म
 कभी हमारे न मार सके ॥ १ ॥ जो सब देशों के देवे और सुखों की कर्ता
 करनेवाला धर्म है उसका बोध करता है उसी को विशुद्ध लोग हुए सब धर्मों
 हुए और नीच धारते हैं, इसलिये किसी मनुष्य को धर्म का बोध उचित
 नहीं ॥ ११ ॥ इस संसार में एक धर्म ही सुद्ध है जो मनु के पञ्चात्त भी सत्य
 करता है और सब पदार्थ का संपूर्ण करीर के बाध के साथ ही मात्रा को प्राप्त
 होते हैं अर्थात् सब का संयम हुए जाता है परन्तु धर्म का संयम कभी नहीं
 होता ॥ १२ ॥ जब रामराज्य में पञ्चात्त से अन्याय किन्ना जाता है वहाँ अधर्म
 के चार किन्ना हो जाते हैं उनमें से एक अधर्म के कर्ता हुआ साची लीला
 समस्तों और चौक पद अधर्मों सम्रा के सम्पत्ति रक्षा को प्राप्त होता
 है ॥ १३ ॥ जिस सम्रा में किन्ना के बोध की किन्ना सति के बोध की सति
 दूख के बोध को दूख और मान्य के बोध का मान्य होता है वहाँ राम्रा और
 सब सम्पत्ति पद से रहित और पवित्र होजाते हैं पाप के कर्ता ही को
 पाप प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

अब साची कैसे करने चाहिये—

आशा सर्वेषु वक्ष्ये काम्यां कार्येषु साक्षिणः ।
 सर्वत्रमविदोऽनुष्ठा विपरीतास्तु वक्ष्येत् ॥ १ ॥
 कीर्त्या साक्ष्यं क्रियं कुरुर्द्विष्यन् सद्यः द्विष्यं ।
 यद्विष्य सन्तं वृत्राक्षामम्यानामस्यपोषणं ॥ २ ॥
 साक्षसेषु च सर्वेषु स्तयसम्पद्विषयेषु च ।
 वाम्बल्यपोष पादप्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ३ ॥
 वानुत्वं परिगृहीयात्साक्षिद्वेषं मराधिपः ।
 समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणद्वेषं द्विजोत्तमम् ॥ ४ ॥
 समक्षदर्शनसत्साक्ष्यं भवक्षुब्धेषु सिध्यति ।
 तत्र सख्यं मुच्यसाक्षी धमाधाम्यां न हीयत ॥ ५ ॥
 साक्षी दद्याद्भुताद्व्यदिमुपधात्प्यसंसदि ।
 अवाङ् मरफमम्पति प्रेष्य सर्गाद्य हीयत ॥ ६ ॥
 लभार्कन्व यद् भूयुस्तद् प्राज्ञं प्यायहारिकम् ।
 अतो यद्व्यदिमू मुर्धमार्थं तद्वपायकम् ॥ ७ ॥
 सभास्तं साक्षिणं प्राज्ञान्यिप्रत्ययिसिद्धिदो ।
 प्राक्षिपाकोऽनुपुञ्जीत विधिनाऽमेम सात्त्वयन् ॥ ८ ॥

धर्म एव हतो हस्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।

तस्मात्तन्मो म हस्तप्यो मा नो अमो हतोऽवधीत ॥ १० ॥

वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुतं क्षणम् ।

मृपञ्च तं विपुर्देवास्तस्मात्तमं न कोपयेत् ॥ ११ ॥

एक एव सुखसमो विद्यतेऽप्यनुयाति यः ।

गरीरेण समन्नाश सर्वभक्ष्यसि गच्छति ॥ १२ ॥

पादो धर्मस्य कर्त्तारं पाद' साक्षिन्मुपपद्यति ।

पाद' सभासद' सवान् पादो राज्यान्मुञ्चति ॥ १३ ॥

यथा मयस्यैनास्तु सुष्यन्त च समासकः ।

एतन्मो गच्छति कर्तारं निन्दार्हा यत्र निन्द्यते ॥ १४ ॥

मनु ८।३—८।१२—१३॥

समा रात्र्य श्रीर रामपुत्र्य सप्त योग दशाक्षर श्रीर ब्रह्मन्महार ह्युर्ध्वौ सै
विष्णुविष्णु ब्रह्मरह विष्णुदास्यह मायौ मे विष्णुपुत्र कर्मा का विष्णुव प्रतिदिन
मित्रा कर्मे श्रीर श्री १ मिथम वासोक्त न पावै श्रीर उचके होवै की आत्मवक्ता
ब्रह्मे तो उचमोचम मिथम बावै कि विष्णुसे रात्र्य श्रीर मया की उचति हो ॥ १ ॥
ब्रह्मरह मय्य वे है, उचमे से १—(ब्रह्माराव) किसी से ब्रह्म लेने देवै का
विष्णु । २—(विष्णुव) ब्रह्मरह ब्रह्मात् किसी से किसी के पद पदार्थ भरा हो
श्रीर मयि पर न देवा । ३—(ब्रह्ममिथिब) ब्रह्मरे के पदार्थ को ब्रह्मरा नच
लेवे । ४—(प्रभूव च ब्रह्मन्मयम्) ॥ विष्णु मिथ्या के किसी पर ब्रह्मन्मय करवा ।
५—(ब्रह्मन्मयपदार्थम् च) दिने हुए पदार्थ का न देवा ॥ २ ॥ ६— केतवत्सैव
ब्रह्मन्मय) केतव्य ब्रह्मात् किसी की 'नीमरी' में से से सेवे का कम देवा ब्रह्म
न देवा । ७—(प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा से विष्णु वर्तवा । ८—(कर्मविष्णुब्रह्मन्मय)
ब्रह्मात् सेव द्रव में मगवा होवा । ९— पद के स्थानी श्रीर पदमेवमे का
मगवा ॥ ३ ॥ १ —सीमा का विष्णु । ११—किसी को कडोर द्रव द्रव
१२—कडोर बानी का बोलवा । १३—श्रीर ब्रह्म मरवा । १४—किसी
कर्म को ब्रह्मन्मय से करवा । १५—किसी की श्री का पुत्र का ब्रह्मन्मय
हवा ॥ ४ ॥ १६— श्री श्रीर पुत्र के धर्म में ब्रह्मन्मय होवा । १७—विष्णु
ब्रह्मात् ब्रह्मन्मय में ब्रह्म उचवा । १८—पद ब्रह्मात् ब्रह्मन्मय श्रीर ब्रह्मन्मय
ब्रह्मात् ब्रह्मन्मय का द्रव में पर के पुत्र ब्रह्मन्मय । ये ब्रह्मरह ब्रह्मर के ब्रह्म
विष्णु ब्रह्मन्मय के मगवा है ॥ ५ ॥ इन ब्रह्मन्मयों में बहुत से विष्णु कर्ममेवमे
पुत्रों के मगवा को ब्रह्मन्मय के ब्रह्मन्मय करके विष्णु कर ब्रह्मात् किसी का
पदपात कमी न करे । ६ ॥ जिस में ब्रह्मन्मय से ब्रह्मन्मय होकर धर्म उपस्थित
होवा है जा उचका उचका ब्रह्मात् श्रीरकत धर्म के कडु का विष्णुब्रह्म श्रीर
ब्रह्मन्मय का ब्रह्मन्मय नहीं करते ब्रह्मात् धर्मों को मगवा ब्रह्मन्मयों को द्रव नहीं मिथ्या
उच मय में जितने ब्रह्मन्मय है वे द्रव ब्रह्मन्मय के समान समझे जाते हैं ॥ ७ ॥

● अम्ययी विद्या ॥ ‡ विद्यायाः स्वामि पादयोः ॥

कारण धिक्की है । जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्याकारी विमिश्रित होता है ॥ १ ॥ छत्र बोलने से छाड़ी पवित्र होता और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है इससे सच कहीं में साधकों को सत्य ही बोलना योग्य है ॥ ११ ॥ आत्मा का साही अत्मा और आत्मा की गति आत्मा है इसको बाधके हे पुत्र ! तु सच मनुष्यों का उत्तम साही अपने आत्मा का अपमान मत कर अनौत सत्य आपका बोकि तेरे आत्मा मन कायी में है वह सत्य और जो इससे विपरीत है वह मिथ्याभाष्य है ॥ १२ ॥ जिस बोलते हुए पुत्र का विद्वान् वेदज्ञ अर्थम् शरीर का आगने द्वारा आत्मा भीतर रहता को प्राप्त नहीं होता उससे निज विद्वान् ज्ञोय किसी को उत्तम पुत्र नहीं आपसे ॥ १३ ॥ हे कश्यप की हृत्कर करवेदार पुत्र ! जो तु 'मैं बनेका हूँ' ऐसा अपने आत्मा में जानकर मिथ्या बोलता है जो ठीक नहीं है किन्तु जो वृद्धा तेरे हृत्क में अन्तर्जामीक्य से परमेस्वर पुत्र पाप का देखेवाला मुनि किन्तु है उस परमात्मा से करके सदा सत्य बोलता कर ॥ १४ ॥

ओमात्मोद्वाङ्मयात्मैवात्मकात्मकोद्वात्तयेव च ।
अज्ञानाद् बाह्यमायाया साधयं वितथमुच्यते ॥ १ ॥
पपात्मन्वतमं स्थाने यं साक्ष्यमनृतं वरेत् ।
तस्य दण्डविशंपास्तु प्रयक्ष्याम्यनुपूर्वम् ॥ २ ॥
ओमात्सहस्रदण्डयस्तु मोक्षापूर्वम् साहसम् ।
मयावु द्वौ मध्यमौ दण्डयो मैवात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥
कामादृशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ।
अज्ञानाद् द्वे शतं पूर्वं बाहिरपाप्मनमेव तु ॥ ४ ॥
उपस्यमुदरं विज्ञा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ।
चक्षुर्नासा च कर्णी च धनं देहस्तयेव च ॥ ५ ॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः ।
साराऽपराधी आत्मोक्त्य दण्डं दण्डेषु पातयेत् ॥ ६ ॥
अधर्मदण्डं बाह्यं यशोर्ध्नं कीर्तिनाशकम् ।
अस्वर्ग्यञ्च परनापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ७ ॥
अदण्डमात्रदण्डयन् राजा दण्डपाद्वैपाप्यदण्डयन् ।
अप्यशो मद्ददामोति मरकं चैव गच्छति ॥ ८ ॥
पाम्दण्डं प्रथमं कुर्वाक्षिन्मण्डं तद्वन्तरम् ।
तृतीयं धनदण्डं तु यध्वदण्डं परम् ॥ ९ ॥

मह. अ. ११८—१२१ १२२—१२४ ॥

जो जोम मोह, मन मित्रता कम ज्येष्ठ अज्ञान और बाह्यकपय से छाड़ी देवे वह छत्र मिथ्या समझी जाने ॥ १ ॥ हृत्क से किसी कथन में छाड़ी भूट बोले उसको दण्डमात्र अनेक विष दण्ड दिया करे ॥ २ ॥ जो जोम से भूमी साही देवे तो उससे १५॥१००॥ (पञ्चद दण्ड दण्ड जाने) दण्ड बोले, जो मोह से भूमी छाड़ी देवे उससे ३००॥ (तीस दण्ड दो जाने) दण्ड बोले जो

पद द्वयोरभयोर्वैद्य कार्येऽस्मिन् चक्षितं मिथः ।
 तद् मृतं सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र स्थापिता ॥ ६ ॥
 सत्यं साक्ष्यं ध्रुवमसाक्षी लोकानामोति पुष्कलान् ।
 इह चानुत्तमां कीर्तिं यागपा द्रष्टव्यमिता ॥ १० ॥
 सत्येन पूयत साक्षी धर्मं सत्येन वदते ।
 तस्मात्सत्यं हि यकम्यं सत्यवेषु साक्षिमि ॥ ११ ॥
 आत्मैव आत्मनः साक्षी गतिरारम्भा तथा मम ।
 मावमंस्त्रा स्वमात्मानं नृणां साक्षिसमुत्तमम् ॥ १२ ॥
 यद्यपि विद्वान् हि वदतः श्रेयसो नाभिष्टुतः ।
 तस्माच्च द्वाभ्योऽसौ लोकऽन्यं पुण्यं विदुः ॥ १३ ॥
 एकोऽहमस्मीत्यात्मनं यत्नं कस्याणु मन्थते ।
 मित्यं स्थितस्तु ह्येषा पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥ १४ ॥

मनु ॥ ११॥ १२॥ १३॥ १४॥ १५॥ १६॥ १७॥ १८॥ १९॥ २०॥ २१॥ २२॥

सब वचनों में धार्मिक विद्वान्, विष्णुपटी सब प्रकार धर्म को जाननेवाले
 सोमप्रदित सत्यवादी को स्वात्मनःसाक्षी में साक्षी का इससे निरीक्षण को कभी
 न कर ॥ १ ॥ किसी की साक्षी की द्विती के द्विती यहाँ के यहाँ और धर्मवालों
 के समस्त साक्षी हों ॥ २ ॥ जिसने वचनधार कर्म चोरी धर्मधार कर्म
 वचन धर्मधारक्य अपराध है जब मैं साक्षी की परीक्षा न करे धर्मधारक
 भी न समझे क्योंकि वे कर्म सब गुप्त होते हैं ॥ ३ ॥ दोहों और के साक्षियों में
 से बहुपदानुसार तुल्य साक्षियों में उच्च गुणी पुण्य की साक्षी के बहुपद और
 दोहों के साक्षी उच्च गुणी और तुल्य ही तो द्वितीय अपराध कवि महर्षि और
 पठितों की साक्षी के अनुसार ज्ञान करे ॥ ४ ॥ दो प्रकार के साक्षी होना सिद्ध
 होता है एक साक्षी देखने और दूसरा सुनने से जब समा में पूर्ण सब को साक्षी
 सब वचनों के धर्महीन और वचन के योग्य न होवें और जो साक्षी सिद्ध दोहों
 के बधायोन्म दृष्टदीव हों ॥ ५ ॥ जो राजसूय का किसी उच्च गुणों की
 साथ में साक्षी देखने और सुनने से विद्वत् वाच तो वह (अष्टाष्ट मरक) अर्थात्
 विद्वत् के धर्म से सुसज्ज मरक की वर्तमान समय में प्राप्त होने और मर
 वधात मुक्त से हीन हो जाय ॥ ६ ॥ साक्षी के इस वचन को मानना कि जो
 स्वभाव ही सत्यधार सम्बन्धी बोधे और इससे भिन्न सिद्धाये हुए जो १ वचन
 बोधे उस १ को व्याख्यायात ज्ञान समझे ॥ ॥ जब धर्म (धर्म) और
 धर्म (धर्म) के सामने समा के समीप प्राप्त हुए साक्षियों की शक्तिपूर्वक
 स्वाधीन और स्वविचारक अर्थात् बहीध का वैरिस्तर इस प्रकार से पढ़ें ॥ ८ ॥
 हे सावि भोगो ! इस धर्म में इन दोहों के परस्पर धर्मों में जो तुम जाना हो
 इसको धर्म के साथ बोधो क्योंकि तुम्हारी इस धर्म में साक्षी है ॥ ९ ॥ जो
 साक्षी मात्र बोधका है वह जन्मान्तर में उच्च धर्म और उच्च धर्मधर्मों में
 धर्म को प्राप्त होके मुक्त योगता है इस धर्म का पर धर्म में उच्च धर्म को
 प्राप्त होता है क्योंकि वह वह वाच्य है वही धर्मों में साक्षी और निरन्तर का

कर्मच पिबो हे । जो सत्य बोधता है वह व्यक्तिगत और मिथ्यावादी विन्दित होता है ॥ १ ॥ सत्य बोधने से सारी पवित्र होता और सत्य ही बोधने से भर्म जाता है इससे सब वही में साक्षियों को सत्य ही बोधना योग्य है ॥ ११ ॥ आत्मा का सारी आत्मा और आत्मा की प्रति आत्मा है इससे आत्मा के पुनः । तब मनुष्यों का उत्तम सारी अपने आत्मा का अपमान मत कर आर्षोत् सत्य आत्मा बोकि तेरे आत्मा सब वादी में है वह सत्य और जो इससे विपरीत है वह मिथ्याभाव है ॥ १२ ॥ जिस बोधते हुए पुनः का विद्वन् चेष्टा आर्षोत् शरीर का जानने द्वारा आत्मा भीतर गह्वर के प्राप्ति नहीं होता उससे विद्व विद्वन् कोय किसी को उत्तम पुनः नहीं जानते ॥ १३ ॥ हे कर्मचार की इच्छा करवेदान्त पुनः । जो तू मैं कहेगा हूँ देखा अपने आत्मा में वाक्य मिथ्या बोधता है जो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्मात्रिक से परमेश्वर पुनः पाव का देखेवाला मुनि किन्तु है उस परमात्मा से आकर सारा सत्य बोधा कर ॥ १४ ॥

लोमस्मोहात्र्यान्मैत्रास्वस्मात्कोषात्तयैव च ।

अद्यात्मादु वाचमायाश्च साक्ष्यं दितपमुच्यते ॥ १ ॥

एषान्म्यत्तमे स्थाने यः साक्ष्यमन्वृतं वर्तते ।

तस्य दण्डविशेषास्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वम् ॥ ५ ॥

लोमस्तस्य हृदयं च स्तु मोक्षात्पूर्वम् साहसम् ।

अथाहं ह्यी मध्यमो ब्रह्मणो मैत्रातृपुत्र्यं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥

कस्मादस्यैव पूर्वं क्रोधास्तु त्रिगुणं परम् ।

अज्ञानाद् मे शतं पूर्वं वाञ्छितं यत्नमेव तु ॥ ४ ॥

उपस्यमुदरं शिथिलं हस्ती पादौ च पञ्चमम् ।

अधुनासा च कर्षी च धनं वेहस्तपेव च ॥ ५ ॥

अनुबन्धं परिज्ञाय मृगकाशी च तस्यतः ।

सायऽपराधी साक्षोक्त्य दण्डं दण्ड्येषु पातयत् ॥ ३ ॥

अधर्मवृत्तं लोकं परोक्षं कीर्तिमाश्रितम् ।

अस्वर्ग्यश्च परत्रापि तस्मात्तत्परिबर्जयेत् ॥ ७ ॥

अथ यस्यान्तर्यामिणः स्यात् तस्यान्तर्यामिणः स्यात् ।

अयं तु महद्भयोति नरकं येन गच्छति ॥ ८ ॥

वाङ्मयस्य प्रथमं कुर्याद्विद्यया तद्वन्तरम् ।

तृतीयं धनदण्डं तु पञ्चदशमत् परम् ॥ ६ ॥

मसु. ८१ ११८-१२१ १ १२८-१२८ ■

जो खोम, मोह, मय मिथ्या काम कोष चञ्चल और बाधकपण से
साक्षी देखे वह सब मिथ्या समझी जाये ॥ १ ॥ इन्हीं से किम्भी कान में साक्षी
सूट बोले वस्तुको ब्रह्ममात्र जानेक विष दृष्ट दिना करे ॥ २ ॥ जो खोम से
सूटी साक्षी देखे तो उससे १५॥००) (पन्द्रह रुपये दत्त जाने) दृष्ट लेवे, जो
माह से सूटी साक्षी देखे उससे ३००) (तीस रुपये दत्त जाने) दृष्ट लेवे, जो

मम से मिथ्या साक्षी देवे उससे १।) (साक्ष का कर्त्तव्य) दण्ड लेवे, जो पुनः
मिश्रण से मिथ्या साक्षी है उससे १२।) (साक्षे बारह कर्त्तव्य) दण्ड लेवे ॥ १ ॥
जो पुनः कर्मणा से मिथ्या साक्षी देवे उससे २२।) (पञ्चीक कर्त्तव्य) दण्ड लेवे,
जो पुनः कोष से सूत्री साक्षी देवे उससे ३१।) (कृपाशील कर्त्तव्य) दण्ड लेवे
जो पुनः कर्त्तव्यता से मिथ्या साक्षी देवे तो उससे ४।) (कृपा कर्त्तव्य)
दण्ड लेवे और जो कर्त्तव्यता से मिथ्या साक्षी देवे तो उससे १५।) (पुनः
कर्मणा ली जाने) दण्ड लेवे ॥ ३ ॥ दण्ड के उपस्थेतिम्व उद्धर मिश्रण, दण्ड
पण दास्य दास्य कर्म जब और देह से दण्ड लयाव है कि जिस पर दण्ड दिया
जाता है ॥ २ ॥ परन्तु जो २ दण्ड दिया है और किसीने जैसे खोम से साक्षी
देवे मैं पन्द्रह कर्त्तव्य दण्ड जाने दण्ड दिया है परन्तु जो कर्मणा निर्णय हो तो
उससे कम और कर्त्तव्य हो तो उससे कृपा सिगुण और नैगुण्य तक भी ले लेवे
धर्मार्थ बैसा देह दिया कर्म और पुनः हो उसका बैसा कर्मणा हो बैसा ही
दण्ड करे ॥ १ ॥ क्योंकि इस उद्धरण में जो कर्म से दण्ड करवा है वह पूर्व
मतिज्ञा कर्मणा और कर्मणा में भी परकर्म में होने वाली कर्मि का कर्म
करनेवाला है और परकर्म में भी दुःखदायक होता है इसलिये धर्मार्थ दण्ड
मिथ्या पर न करे ॥ ३ ॥ जो राजा दण्डनीची को न दण्ड और धर्मरक्षणीको
को दण्ड देता है कर्मार्थ दण्ड देवे योग्य को दण्ड देता और जिस को दण्ड न
देना चाहिये उसको दण्ड देता है वह भीता हुआ नहीं मिथ्या को धर्म मरे
पीछे लगे दुःख को प्राप्त होता है इसलिये जो कर्मणा करे उसको सदा दण्ड देवे
और कर्मणा को दण्ड कमी न देवे ॥ ८ ॥ धर्म कर्मों का दण्ड कर्मार्थ
उसको 'मिथ्या' दूसरा मिथ्या दण्ड कर्मार्थ तुम्हारे विचार है उसे देना कृपा
कर्म नहीं किया उद्धरण उससे 'मम लेना' और नीचा 'दण्ड' दण्ड कर्मार्थ
उसको कोष न लेता से मारण या शिर कर्म देना ॥ १ ॥

यन येन यथाज्ञेन स्तनो सुपु विवेद्यते ।

तत्तदेव हरेत्स्य प्रत्यादेशाय पार्थिव ॥ १ ॥

पितामहार्थं सुहृन्माता भार्गवा पुनः पुरोहित ।

पुत्रस्यो नामराज्ञोऽस्ति यः कथमेव न तिष्ठति ॥ २ ॥

कार्पाप्यं भवेत्स्यो यथाप्यं प्राकृतो यमः ।

तत्र राजा भवेत्स्यो सहायमिति भवत्वा ॥ ३ ॥

अप्राप्यपुत्रं स्यस्य स्तेये मयति किल्बिषम् ।

नोदरीव तु वैश्यस्य शार्ङ्गिणश्च दक्षिणश्च ॥ ४ ॥

ब्राह्मणस्य चतुःपदि पूर्वं बापि शतं भवेत् ।

द्विगुणा वा चतुःपदिस्तद्दोषगुणधिसि ॥ ५ ॥

येन्द्रं स्यात्तमभिप्रेत्युर्यगुणाद्यमभ्ययम् ।

नोपसेत स्यमपि राज्यं साहसिकं नरम् ॥ ६ ॥

बाहुप्राक्तस्कराज्येव दण्डेनैव च हिंसितः ।

साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ७ ॥

साहस यत्तमानन्तु या मयपति पार्थिव ।

स पिनाशं यज्जस्पाय विद्वयं चाधिगच्छति ॥ ८ ॥

न मित्रकारसाद्राज्यं विपुलाद्रा धनागमात् ।

समुत्सृजेत् साहसिकान्सयभूतमपायहान् ॥ ९ ॥

गुरु वा बन्धपूरो वा धात्र्यं वा यन्मुभयम् ।

भाततायिममापान्तं हन्यादपायिधारयन् ॥ १० ॥

नाततायिपथं वापा हन्तुभयति कथम् ।

प्रकार्यं याऽप्रकार्यं या मन्युस्तम्मम्युमृच्छति ॥ ११ ॥

यस्य स्तनं पुर नास्ति मान्यवर्णिना न पुण्याम् ।

न साहसिकदण्डो स राज्ञः शमज्जाकभाक् ॥ १२ ॥

मनु ८ । ३३४—३३५ । ३४४—३४० । ३२ —३२३ । ३८६ ॥

चार तिस प्रचार तिस १ अथ स मनुष्यों में बिकर बह करता है उस १

अथ को धन मनुष्यों की शिवा के सिधे राजा हरब चर्कोन धरन करे ॥ १ ॥

याद रिता धाचार्य मित्र शो पुन और पुरोहित क्यों न हो या स्वधर्म में

भित नहो रहता वह राजा का चरचरन नही होता चर्कोन जब राजा न्यायमन

रा देन न्याय को सब किसी का पकपाठ न कर किन्तु यथोचित दण्ड देवे ॥ २ ॥

जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो वसी प्रराध में

राज को सहाय पैसा दण्ड होवे अर्थात् साधारण मनुष्य स राजा को सहाय

न्याय दण्ड होया चाहिये अन्ती अर्थात् राजा क रीत्यन को चाहसी गुना उनसे

भूय क धातरी गुना और उल्लस भो भूय का धातरी गुना इसी प्रकार उचम २

अर्थात् जो एक घोड से घोड भूय अर्थात् अपराधी है उसको सप्त गुण दण्ड से

कम न होना चाहिये क्योंकि वहि प्रजापुरुषो स राजपुरुषो का अधिक दण्ड न

होय तो राजपुरुष प्रजापुरुषो को पाय कर रवे देवे मिह अधिक और बहरी

भोरे दण्ड न हो वर में का जलो है इसविध राजा से धन्य दाट से दाटे भूय

पर्वन्त राजपुरुषो को अपराध में राजपुरुषो क अधिक दण्ड होना चाहिये ॥ ३ ॥

और वन हो जो पुन बिदेसी होय जाती क उन दण्ड को जाती से पाठ

न्याय दण्ड को नाकह गुना अथिब को बलीम गुना ॥ ४ ॥

अथय को चोखट गुना य को गुना जबय एक को चठरुंठ गुना दण्ड

होय चाहिये अर्थात् जिसका जिसका काम और जिसकी रीतिअ अधिक हो

हमका अपराध में उनका ही अधिक दण्ड होया चाहिये ॥ ५ ॥

अथ क अजिहारी पर्व और पर्व को इच्छा करने काय होय बह्य/अ

कम कम दण्ड पाहुको को दण्ड देवे में एक बल की हो न को ॥ ६ ॥

साहसिक पुरुष का अङ्गण—

वा दण्ड दण्ड बाहव जाती कम किम अपराध क दण्ड दण्ड दण्ड को

बहव बह्य/अथ कम करने काय है वह जरीय जाती दण्ड है ॥ ७ ॥

वा दण्ड अथ में बलीम १३४ को न दण्ड देय परव अथ है न

दण्ड होय तो दण्ड को दण्ड होय है और दण्ड है दण्ड दण्ड है ॥ ८ ॥

न मित्रता और न पुण्य का भी प्राप्ति से भी राजा सब प्राप्तिर्षी को
हुता है। ऐसे साहसिक मनुष्य को कल्याण प्रदान किये बिना कभी छोड़े ॥ १ ॥

चाहे गुन हो चाहे पुत्रादि बाधक हों, चाहे पिता चाहे बहू चाहे भ्रातृ
और चाहे बहुत लाभ प्राप्ति का भोला क्यों न हो जो धर्म को छोड़ धर्म में
वर्तमान बूझने को बिना अवरोध मारने वाले हैं उनको बिना विचार मग
झकना अर्थात् मारने का विचार करना चाहिये ॥ १ ॥

हुता पुरुषों के मारने में इन्ता को पाप नहीं होता चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध
क्योंकि कोपी को कोप से मारना जाको कोप से कोप की जरूरत है ॥ ११ ॥

जिस राजा के राज्य में न और न परस्त्रीमासी न कुछ कर्म को बोजने
हारा न साहसिक बाहू और न दृढता अर्थात् राजा की आज्ञा का नम्र करने
वाला है वह राजा अहीन होत है ॥ १२ ॥

मर्त्तारं त्रययथा की स्वप्नातिगुणदर्पिता ।

तां भूमिं काव्येन्द्राज्य संस्थानं बहुसंस्थितं ॥ १ ॥

पुमास्तं दाहयत्पार्थ शयने तप्त आयसे ।

अभ्यादप्युक्तं काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥ २ ॥

दीर्घाण्यमि यथादेशे यथाकाशकुरो भवत् ।

तदीतीरेषु तद्विधात्समुद्रे नास्ति कश्चनम् ॥ ३ ॥

अहम्यहम्यबल्लुत कर्मान्तान्वाहनानि च ।

आयप्यपि च नियतावाकरान्कोपमय च ॥ ४ ॥

एवं सर्पानिमाग्राभ्य व्ययहारान्समापयन् ।

व्यापाह्य किंलिप्य सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ५ ॥

मनु ॥ ३०१—३०२ । ४ ६ । ४१३—४२ ॥

जो जो धनवी प्राप्ति गुण के समस्त से पति को छोड़ अभिचार कर उसका
बहुत ही और पुरुषों के सामने भीती हुई कुर्बो से राजा करण कर मारण वाले ॥ १ ॥

उसी प्रकार अपनी की को छोड़ के बरखी या बेरधम्मन कर उस पापी
जब को छोड़ के पकड़ को आग से तपा के जास कर इस पर मुखा के जीते को
बहुत पुरुषों के सम्मुख नम्र कर द्ये ॥ २ ॥

प्र०—जो राजा या राजी धनका स्वाधीनता या उसकी रानी अभिचारदि
कर्म करे तो उसको कौन दण्ड द्ये ?

उ०—सभ्य अर्थात् उनका तो पञ्चपुरुषों से भी अधिक दण्ड द्याया चाहिये ॥

प्र०—राजादि उनका दण्ड कौन दण्ड करेगा ?

उ०—राजा भी वह पुत्रवाया यावदराजी मनुष्य है जब उसी को दण्ड न
दिया जाय और वह दण्ड प्रत्यक्ष न कर तो दूसरे मनुष्य दण्ड को कौन मारेगा ?
और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और राजा धार्मिकता से दण्ड द्या
चाहे तो अहम्य राजा क्या कर सकता है ? जो पुरी व्यवस्था न हो तो राजा
प्रधान और सब समर्थ पुरुष धन्याय में हुकदर अन्धधर्म को दूध के घन प्रजा
का नाश कर जार भी वह ही जाये अर्थात् उस छोड़ के धर्म का धारण

करो कि न्यायपूर्ण दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है जो उसका खोप
करता है उससे पीछे पुनः वृत्ति करीब होय ॥

प्र०—यह कहा दण्ड होना उचित नहीं क्योंकि मनुष्य किसी बात का
बनावेहारा का विचारबेधका नहीं है इसलिए ऐसा दण्ड न देना चाहिये ॥

उ०—जो दण्डको कहा दण्ड कहते हैं वे राजनीति को नहीं समझते क्योंकि
एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग तुरे काम करने से भय रहेंगे
और तुरे काम को जोकर धर्म मार्ग में स्थित रहेंगे । सब पक्षों तो नहीं है कि
एक राई भर भी यह दण्ड सब के मन में न आवेगा और जो सुगम दण्ड देना
आम तो कुछ काम बहुत बढ़कर होयेगी । यह जिसको तुम सुगम दण्ड कहते
हो वह जोको गुना अधिक होने से जोको गुना अधिक होता है क्योंकि अब बहुत
मनुष्य कुछ काम करेंगे सब बोझ २ दण्ड भी बना रहेगा धर्मार्थ जिस एक का
मनवर दण्ड हुआ और दूसरे को धर्मर तो पावना अधिक एक मन दण्ड होता
है तो मनेक मनुष्य के मन में आपापस बीच से दण्ड बना तो ऐसे सुगम
दण्ड को कुछ लोग क्या समझते हैं ? जैसे एक को मन और सब मनुष्यों
का पत्र २ दण्ड हुआ तो १। (सब का) मन मनुष्य जाति पर दण्ड होने से
अधिक और नहीं कहा गया यह एक मन दण्ड न्यूव और सुगम हाता है ॥

जो जन्म मार्ग में समुद्र की खाड़ियों का नहीं तथा बड़े नहीं में जिसका
जन्म देय हो उठका कर कपन कर और महासमुद्र में विधित कर समान नहीं
हो करता किन्तु जैसा समुद्र देय कि जिससे राजा और बड़े २ नौकाओं के
समुद्र में बहनेवाले दोनों कामसुख हो ऐसी व्यवस्था कर पान्नु यह ज्ञान में
राज्य चाहिये कि जो कहते हैं कि प्रथम अज्ञान नहीं कहते वे न मूढ़ हैं और
देय-देयान्तर हीप हीपान्तरों में बीका से जानेवाले अपने मन्त्रण पुरुषों की
सर्वत्र रक्षा कर उनके किसी प्रकार का दुःख न होने देय ॥ १ ॥ राजा प्रतिदिन
कर्मों की समस्तियों को हाथी घोड़े आदि बाहनों को निवृत्त काम और करण
"जाकर" रथारिक्तों की खानें और कोष (खजाने) को देखा करे ॥ २ ॥ राजा
इस प्रकार सब व्यवहारों को व्यवस्थित करवा करवा हुआ सब पापों को
पुनः ६ परामर्श मोक्ष मुख को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

प्र०—संक्षुप्त विषय मैं पूरी २ राजनीति है या अपूर्ण ?

उ०—पूरी है क्योंकि जो २ भूगोल में राजनीति नहीं और अन्तरी वह सब
संक्षुप्त विषय से ही है और जिसका प्रकार सब नहीं है उनके बिचे—

प्रत्यह लोकहर्षेण शास्त्रहर्षेण हेतुभिः ॥ मनु प. २ ॥

जो विषय राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मपुत्र समर्थ उन २
विषयों को पूर्व विज्ञानों की राजप्रथा बोधा करे । परन्तु इस पर बिलम्ब भ्रान्त
रक्त कि जहाँ तक मन सबे वहाँ तक बाल्यावस्था में विवाह न कर देवे ।
बुद्धवस्था में भी विवाह प्रवृत्ति ६ विवाह न करवा, करावा और न करन देवा ।
महावर्ष का वयसतु खेदन करवा करावा । अभिचार और बहुविध को बन्द

क्यों कि जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बन्ध छाया रहे। क्योंकि जो केवल आत्मा का बन्ध भर्त्ताव किया जाय वहने जायें और शरीर का बन्ध न बंधावे तो एक ही बन्धान् पुरुष जायी और ईश्वरों विज्ञानों को अति संकट है और जो केवल शरीर ही का बन्ध ब्रह्मा काय ब्रह्मा का नहीं तो भी राज्य प्राप्त की उपाय अस्त्व विद्या विद्या के कमी नहीं हो सकती। विद्या अवस्था के सब व्यपन्न में ही पून हूय विरोध बंधाई बंधन करके बन्ध भङ्ग हो जायें। इसलिये सर्वत्र शरीर और आत्मा के बन्ध को बंधने रहना चाहिये। वैसे बन्ध और बुद्धि का वास्तविक व्यवहार अविचार और अति विचारसक्ति है वैसे और कोई नहीं है। विशेषतः ब्रह्मों को रक्षा और बन्धन होना चाहिये। क्योंकि जब वे ही विचारसक्त होते तो राज्यधर्म ही बन्ध होमापन्न और इस पर भी ध्यान रखना चाहिये कि “बन्ध राज्य तथा प्रजा” वैसे राजा होना है वैसे ही उसकी प्रजा होती है। इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति अति है कि कमी दुष्प्रचार न करें किन्तु सब दिन बर्तन न्याय से बर्त कर सब के सुधार का दृष्टान्त करें।

बहु संशेप से राज्यधर्म का वर्णन बर्त किया है विशेष वेद मनुस्मृति के सप्तम अध्याय ब्रह्म अध्याय में और शुक्लगीति तथा विदुरप्रज्ञाप्य और महाभारत शान्तिपर्व के राज्यधर्म और अथर्वधर्म आदि पुराणों में देखकर पूर्व राज्यगीति को धारण करके मावद्विक सत्य सर्वमोम सम्पत्ती राज्य करें और यह समझे कि “वर्ष प्रजापत प्रजा अभूम” यह ब्रह्म (१०। १६) का बचन है। हम प्रजापति भर्त्ता परमेश की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उससे किन्कर नृवरण हैं यह कृप करके सारी सृष्टि में हमको राजाभिषेकी को और हमारे हाथ से अपने सब न्याय की प्रवृत्ति करावे। जब अपने ईश्वर और वेद विषय में विचार जावय।

इति श्रीमहात्मन्सरस्वतीस्वामिभूत सत्यार्थप्रकाशे सुभावादिभूषित
राजधर्मविषय पद्य समुच्चास सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

अथ सप्तमसमुद्घासारम्भ

अथोभरवद्विपर्य व्याख्यास्याम

अधो अधोरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निपेदु ।

यस्तन्न वेदु किमुचा करिष्यति य इत्तद्विस्त इमे समासते ॥ १ ॥

अ म १ । सु १५४ । म ३३ ॥

इशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत् ।

तेन स्पृहन्ते भुङ्जीया मा वृषुः कस्य स्विद्वनम् ॥ २ ॥

अ म ४ । म १ ॥

अहं भुवं वसुनः पूर्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शुश्रूताः ।

मां हवन्ते पितरु न जन्तवोऽथ दध्नुषे वि मजामि भोजनम् ॥ ३ ॥

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्वन न मृस्यवेऽथ तस्य कदा चन ।

साममिन्मा मुन्वन्तो याचता वमु न मे पुरवः सुख्ये रिपायन ॥ ४ ॥

अ म १ । सु ४८ । म १ । २ ॥

(अधो अधोरे) इस मन्त्र का अर्थ प्रकृत्यात्मन की शिक्षा में शिक्षा पुत्रों के अधोरे जो सब दिव्य दुष्ट कर्म त्याग विद्यापुत्र और जिसमें प्रविष्टी पूर्ण है लोक स्थित है और जो प्रकृत के समान व्यापक सब देशों का देव परमेश्वर है उसको जो मनुष्य व जानते व मानते और उसका ध्यान बड़ी करते वे वास्तविक मन्त्रमणि सदा दुःखसागर में डूबे हो रहते हैं इसलिये सर्वदा उसी को याचकर सब मनुष्य सुखी होते हैं ॥

प्र०—वेद में अधो अधोरे है इस बात को तुम मानते हो या नहीं ?

उ०—बही मानते क्योंकि पार्वी वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक अधो सिद्ध हो किन्तु वह तो लिखा है कि अधो एक है ॥

प्र०—क्यों में जो अनेक देवता लिखे हैं उसका क्या अभिप्राय है ?

उ०—देवता दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं बैसी कि प्रविष्टी परम्पु इसको कहीं अधो का उपासनीय नहीं माना है । देवों ! इसी मन्त्र में कि जिसमें सब देवता स्थित हैं वह जानने और उपासना करने योग्य अधो है । वह उसकी मूर्ति है जो देवता रूप से अधो का ग्रहण करते हैं । परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इच्छाविशेष कहाता है कि बही सब उपासनी की उपासि स्थिति प्रत्यक्षता आभासीत अधिहस्ता है । “अयस्त्रिंशतिशतशत” ७ इत्यादि वेदों में प्रमाण है इसकी व्याख्या सतपथ में की है । तैत्तिरीय देव अधोत् प्रविष्टी

जब अग्नि बलु, अमृत, अन्नमा, सुख और बल सब धृति के विद्यमान होने से ये पाद बलु । जब अपना बल उद्योग समाप्त बना कर्म कर्म, देवदत्त पदमन्त्र और जीवन्मा ने ग्राहक यह इसलिये कहते हैं कि जब शरीर को जोड़ते हैं तब रोदन करनेवाले होते हैं । संसार के कारण महीने काह जादिया इसलिये हैं कि वे सब की आयु को लेते जाते हैं । किन्तु भी अब बल हस्त इस हेतु है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है । यह को मन्त्रापति करने का कारण यह है कि जिससे बलु धृति जब जोषधि की धृति, विद्याओं का सम्पन्न और बाला प्रकम की शिष्यधिया से प्रकाश का प्रकाश होता है । वे तीनों पूर्णक पूर्ण के बल से वेब कहते हैं । इनका स्वामी और सब से बड़ा होने से परमात्म जीवन्मा कर्ममन्त्र का उपपन्न के जोड़ने कायक में स्पष्ट दिखा है । इसी प्रकार अन्तर्मा भी दिखा है । जो वे इस शरीरों को देखते तो वेदों में अनेक ईश्वर मानकर प्रमत्तक में गिरकर नहीं बहकते ? ॥ १ ॥

हे मनुष्य ! जो कुछ इस संसार में कर्म है उस सब में जो जगत् हमारे विद्यमान है वह ईश्वर काया है उससे कर कर लु अन्तर्मा से किसी के मन की आत्माका मत कर उस अन्तर्मा को ज्ञान और अन्तर्माकरकर्म धर्म से अपने आत्मा से अन्तर्मा को मोल ॥ २ ॥

ईश्वर सब को उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर सब के पूर्व विद्यमान सब बलु का पति हूँ मैं समस्तक बलमन्त्रक और सब बलों का पित्रा करनेवाला और बला हूँ मुझ ही को सब जीव जैसे पिता को अन्तर्मा पुकारते हैं वेदो पुकारें । मैं सब को मुझ वेबेदारे काय के दिने ज्ञान प्रकम के मोलकों का विद्यमान प्रकाश के दिने करता हूँ ॥ ३ ॥

मैं कर्ममन्त्रक सुख के सत्य जगत् का प्रकाशक हूँ, कभी परात्म को प्राप्त नहीं होता और न कभी बलु को प्राप्त होता हूँ, मैं ही जगत् का बन का निर्माता हूँ सब की उत्पत्ति करने वाले मुझ ही को जानो । हे जीवो ! देवर्ष प्रप्ति के बल करते हुए तुम जोग विद्यावादि बन को मुझ से मांगो और तुम शोभ मेरी मित्रता से अन्तर्मा मत होको । हे मनुष्यो ! मैं अन्तर्माकरकर्म धृति करनेवाले मनुष्य को अन्तर्मा ज्ञानादि बन देता हूँ मैं जगत् सर्वात् वेद का प्रकाश करनेवाला और मुझ को वह वेद बलात् कहता उससे सब के ज्ञान को मैं बहता मैं अन्तर्मा का मेराक बल करनेवाले को अन्तर्मा और इस विष में जो कुछ है उस सब अन्तर्मा को बलावे और प्रकाश करनेवाला हूँ इसलिये तुम शोभ मुझ को जोष किसी दूसरे को मेरे ज्ञान में मत लूओ मत मानो और मत जानो ॥ ४ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्ततामिं भूतस्य जातः पतिरहमासीत् ।

स दाधार पृथिवीं धाम्नुतेर्मां कस्मिं देवार्प इयिषां विधेम ॥

यह बहुबोध का मन्त्र है । हे मनुष्यो ! जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्यादि देवक्यों को बंधों का उत्पत्ति स्थान आकार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था ई और होगा उसका स्थानी था है और होगा वह पृथिवी से लेके सूर्यलोक पर्यन्त सृष्टि को बना के धारण कर रहा है । अतः मुक्तस्वरूप परमात्मा तू की भक्ति जैसे हम करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ १ ॥

प्र०—आप ईश्वर १ कहते हो परन्तु उसकी सिद्धि किस प्रकार करावे ?

उ०—सब प्रकारादि प्रमाणाँ से ॥

प्र०—ईश्वर में प्रकाशादि प्रमाणा कहीं नहीं कर सकते ॥

उ०—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोन्मेषान्न ज्ञानमध्यपदैर्यमप्यभिचारि

व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥ न्याय २ अ १ । सू ४ ॥

यह गौतम महर्षिद्वारा न्यायदर्शन का सूत्र है । जो लोग ज्ञान बहुत विद्वान् प्रबुध और मन का शब्द, स्पर्श रूप रस गन्ध सुख दुःख सत्यात्म विषयों के साथ साकल्य होने से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु यह विवर्तन हो । जब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है गुणों का नहीं । जैसे चारों जगह यदि इन्द्रियों से स्पर्श रूप रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणों को पृथिवी उसका अन्त्यायुक्त सब से प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में स्वभा विरोध यदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है और जब ज्ञानात्मा मन और इन्द्रियों को किसी विषय में लब्धता का बोरी चाहि पुरी का परोपकार चाहि करती बात के करने का जिस जगह में आरम्भ करता है उस समय जीव की इच्छा आकांक्षि उसी इन्द्रिय विषय पर मुक्त जाती है उसी जगह में ज्ञानात्मा के भीतर से बुरे काम करने में मन शक्ति और ज्ञान तथा अन्धे कामों के करने में अशक्त विद्रावृत्त और आत्महोषाद कहता है वह जीवजन्मा की ओर न नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है और जब जीवजन्मा मुक्त होके परमात्मा का विचार करने में उत्तर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं । जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या शन्देह है ? क्योंकि कार्य को देख के कारण का अनुमान होता है ॥

प्र०—ईश्वर व्यापक है या किसी एक विराट में रहता है ?

उ०—व्यापक है क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वोन्मेषात्मा सर्वत्र सर्वविराट्ता सब का गहा सब का भरी और प्रत्यक्षको नहीं दो सकता व्यापक देश में कहीं की किता प्रसम्भव है ॥

प्र०—परमेश्वर क्यासु और स्वावकारी है या नहीं ?

उ०—है ॥

प्र०—ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं जो व्यापक कर तो क्या और क्या करे जो व्यापक बूट जाय क्योंकि व्यापक उसको करते हैं कि जो कर्मों के अनुसार न अधिक न शून्य गुण दुःख दुर्दृष्ट्या । और क्या उसको करते हैं जो चरतापी को बिना दूर दिये जोर देखा ॥

उ०—ज्याब और क्या का सामना ही भेद है क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही क्या से बचने का प्रयोजन है कि समुच्च अपराध करने से बच होकर दुःखों को प्राप्त न हो। वही क्या कहती है जो पराने दुःखों का भुगना और वैसा धर्म क्या और न्याय का तुमने किया वह ठीक नहीं क्योंकि जिसने वैसा किया था वही कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही बचने का चाहिए उही का नाम न्याय है और जो अपराधी को बच न दिया अतः तो क्या का नाश हो जाय क्योंकि एक अपराधी का पूरा को छोड़ देने से सबकी समोसा पुण्य को नुकसान होता है जब एक के जोखने से सबकी मनुष्यों को नुकसान होता है वह क्या किस प्रकार हो सकती है ? क्या नहीं है कि उस का पूरा को अपराध में रककर पाप करने से बचाया जाय पर और उस का पूरा को मार देने से अन्य सबकी पर क्या प्रभावित होती है ?

प्र०—कि क्या और न्याय दो सम्बन्ध नहीं हुए ? क्योंकि जब दोनों का धर्म एक ही होता है तो दो सम्बन्धों का होना न्याय है हमजिने एक सम्बन्ध का रक्का तो सम्बन्ध का। इससे क्या सिद्ध होता है कि क्या और न्याय का एक प्रयोजन नहीं है ॥

उ०—क्या एक धर्म के अनेक नाम और एक नाम के अनेक धर्म नहीं होते ?

प्र०—होते हैं ॥

उ०—तो क्या तुमको यज्ञ नहीं पुरी ?

प्र०—संसार में सुनते हैं इसलिये ॥

उ०—संसार में तो क्या कुछ लोगों सुनने में जाता है परन्तु उसको विचार से विचार करवा अपना काम है। देखो, ईश्वर की पूर्ण क्या तो वह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के लिये जगत में सफल पदार्थ उत्पन्न करने का दे रखे हैं। इससे किन दूसरी कही क्या कोनसी है ? सब न्याय का एक प्रभाव दीकता है कि कुछ कुछ की व्यवस्था अधिक और न्यूनता से सब को प्रभावित कर रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सब को सुख होने और दुःख करने की इच्छा और किया करता है वह क्या और क्या चेष्टा करता करता है वही न्याय कहलाता है। वही न्याय कहलाता है। दोनो का एक प्रयोजन वह है कि सब को पाप और दुःखों से मुक्त कर देना ॥

प्र०—ईश्वर साक्षर है या विराक्षर ?

उ०—विराक्षर क्योंकि जो साक्षर होता तो न्यायक न होता। जब न्यायक न होता तो सर्वथाहि सुख भी ईश्वर में न वह सकते क्योंकि परिमित वस्तु में सुख का कर्म स्पष्टता भी परिमित रहते हैं तथा सीतेन्द्र्य बुधा तथा और रोग दोष दुःख भय आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे नहीं सिद्ध है कि ईश्वर विराक्षर है। जो साक्षर हो तो उसके एक नाम और धर्म आदि धर्मों का समोसा वृत्ता होता चाहिए क्योंकि जो सर्वोप से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करनेवाला विराक्षर जगत् अक्षर होता चाहिए। जो

कोई वही देखा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना दिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूरा विराकार था । इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता किन्तु विराकार होने से सब जगत् को सृष्ट करवों से सृष्टाकार बना देता है ।

प्र०—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं ?

उ०—है परन्तु ईसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो क्या नहीं किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का वही अर्थ है कि ईश्वर अपने कम अर्थात् उत्पत्ति पावन प्रलय आदि और सब जोशों के पुरुष आप की वनायोग्य स्वकथ्य करने में किन्तु भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अकम्प सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है ॥

प्र०—हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाह तो कर क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है ॥

उ०—वह क्या चाहता है ? जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुमसे पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार अथवा ईश्वर वही स्वयं अविद्या, मोहो अविद्यादि पापकर्म कर और दुम्भी भी हो सकता है ? ईश्वर ने काम ईश्वर के गुण कर्म स्वयं व से किन्तु है तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है वह कभी नहीं कर सकता । इसलिये सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा वही ठीक है ॥

प्र०—परमेश्वर छवि है वा अनादि ?

उ०—अनादि अर्थात् विराकार अर्थात् कोई कारण वा समय न हो उसको अनादि कहते हैं इसलिये सब अर्थ प्रथम समुद्भास में कर दिया है इस लीजिये ॥

प्र०—परमेश्वर क्या चाहता है ?

उ०—सब की मलाई और सब के लिये सुख चाहता है परन्तु स्वतन्त्रता के साथ किसी को बिना आप लिये बराभीत नहीं करता ॥

प्र०—परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये वा नहीं ?

उ०—करनी चाहिये ॥

प्र०—क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना निजम जोड़ स्तुति प्रार्थना करनेवाले का आप गुहा देण ?

उ०—नहीं ॥

प्र०—तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ?

उ०—इसके करने का फल ज्ञान ही है ॥

प्र०—क्या है ?

उ०—स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण कम स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का अनुभूतना प्रार्थना से निरतिमावता जगत् और सहाय का निजमा, उपासना से परमेश्वर में प्रेम और उसका साक्षात्कार होता ॥

प्र०—इसको प्राप्त करने समझना ॥

उ०—ईसा—

स पर्येगाञ्छुभ्रमकयमत्रसमस्त्राविरश्च शुद्धमपापविद्धम् ।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्योपास्यतोऽर्पान्

स्यदधाच्छ्वस्यतीम्यः समीम्यः ॥ बह्व ज ३ । मं ५ ॥

(ईश्वर की स्तुति) यह परमात्मा सब में व्यापक खीनकारी और अकल ब्रह्मण जो कुछ धर्मज्ञ सब का आन्तर्यामी सर्वोपरि विश्वव्यापक अकल स्वच्छिद्र परमेश्वर अपनी जीवकल्प समागत अनादि प्रजा को अपनी सवात्सव विषय से पदाब्ज् सबों का बोध देवद्वारा करता है यह अगुण स्तुति अर्थात् जिस १ गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करता यह अगुण (अकल) अर्थात् यह कभी करीर धारण का कल्प नहीं होता जिसमें किन्न नहीं होता बाही ध्वनि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापघारण नहीं करता जिसमें रहते कुछ अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस २ गुण देवादि गुणों से वृक्ष्म आनन्द परमेश्वर की स्तुति करता है यह विगुण स्तुति है । इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं ऐसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करता । जैसे वह आत्मकारी है तो आप भी आत्मकारी होवे और जो कैवल्य भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्ण करता जाता और अपने करिब नहीं सुधारता उसका स्तुति करता धर्म है ॥

प्रार्थनाः—यां मुधां देवगुह्याः पितरंभोपासते ।

तया मामद्य मेधयाऽग्नें मुधाविन कुठ स्वाहा ॥ १ ॥ बह्व ज ३२ । १४ ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।

बलमसि बलं मयि धेहि । ओजाऽस्याजो मयि धेहि ।

मन्युरसि मन्यु मयि धेहि । सहोऽसि सहा मयि धेहि ॥ २ ॥

बह्व ज ३२ । मं २ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैसि देव तदु सुप्तस्य तथैविति ।

दूरक्षुम ज्योतिषा ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंश्रुत्यमस्तु ॥ ३ ॥

येन कर्मोपपत्तो मनीषियो यज्ञे कृपवन्ति विदयेषु वीर्यः ।

यदपूर्वं यद्यमन्तः प्रजाना तन्मे मनः शिवसंश्रुत्यमस्तु ॥ ४ ॥

यस्त्राज्ञानमुत्त चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरुन्तरसुतं प्रजासु ।

यस्माच्चञ्चते किं पुन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंश्रुत्यमस्तु ॥ ५ ॥

यनेदं भूत भुवन मनिष्यस्परिग्रहीतमसुतेन सर्वम् ।

यनं यद्रस्तायत सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंश्रुत्यमस्तु ॥ ६ ॥

यस्मिन्नुचः साम यजूधरि यस्मिन् प्रविष्टिता स्थनामार्चिवारा ।

यस्मिन्निवश्च सर्वमातं प्रजाना तन्मे मनः शिवसंश्रुत्यमस्तु ॥ ७ ॥

सुपारयिरस्थानिश्च यन्मनुष्याभेनीयतेऽमीशुमिर्वाजिनऽश्व ।

इत्थर्विष्ठ यदजिर जर्विष्ट तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ = ॥

यह क ३४। म १। २। ३। ४। ५। ६। ७। ८। ९। १०।

हे शम्भे अर्थात् प्रकृतात्मक परमेश्वर ! आपकी कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धि से कुछ बुद्धिमान् हम को इसी वर्तमान समय में आप कीजिये ॥ १ ॥

आप प्रकृतात्मक हैं कृपा कर मुझ में भी प्रकृत कल्पन कीजिये । आप अमल पराक्रमयुक्त हैं इसलिये मुझ में भी कृपाकृत से पूर्ण पराक्रम धरिये । आप अमल बलयुक्त हैं इसलिये मुझ में भी बल धारण कीजिये आप अमल सामर्थ्य युक्त हैं इसलिये मुझको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये । आप कुछ काम और कुछ पर ओषधकारी हैं मुझको भी वैसा ही कीजिये । आप विन्मय सृष्टि और स्व अपराधियों का संहार करनेवाले हैं कृपा से मुझको भी वैसा ही कीजिये । १ ॥

हे इच्छाजिने ! आपकी कृपा से मेरा मन चाहते हैं दूर १ गता विम्वरयुक्त छाया है और लो सोते हुए मेरा मन सुषुप्ति को गत होता वा स्वप्न में दूर २ जावे के समान प्रवेश करता सब प्रकृतियों का प्रकृतक, एक वह मेरा मन शिवसङ्कल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के सर्व सम्मान का सङ्कल्प करनेवाला होवे । किसी की हानि करने की इच्छायुक्त कभी न होवे ॥ ३ ॥

हे सर्वोन्मत्तवासी ! जिस से कर्म करनेवाले पैरैयुक्त विद्वान् योग पञ्च और मुखादि में कर्म करते हैं जो अपूर्ण सामर्थ्ययुक्त पृथ्वीय और प्रजा के भीतर रहनेवाला है वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर धर्म को सर्वथा आप देवे ॥ ४ ॥

जो उच्छ्रित ज्ञान और वृत्त को चित्तान्तरा विम्वरयुक्त है और जो प्रकृतों में भीतर प्रकृतयुक्त और अकारणिक है जिसके विना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता वह मेरा मन सब गुणों की इच्छा करके कुछ गुणों से पूर्ण रहे ५ ५

हे अर्थात्पर ! जिस से सब प्राणी योग इन सब भूत मन्त्रियत्, सर्वमान्य अर्थवालों को आदरे को आराधित आराधना को परमात्म्य के साथ मिश्रके सब प्रकार ब्रह्मसङ्ग करता है, जिसमें ज्ञान और विद्या है पाँच आनेन्द्रिय बुद्धि और धारमायुक्त रहता है उस योगक्षय पञ्च को जिससे चाहते हैं वह मेरा मन योग विद्यायुक्त होकर सम्बन्धित सबों से युक्त रहे । ६ ५

हे परम विद्वान् परमेश्वर ! आपकी कृपा से मेरा मन में प्रिय रूप के मध्य पुरा में जाता चले रहते हैं किसे अग्नेय, पञ्चवेद, सामवेद और जिस में अमर्षित भी प्रतिष्ठित होता है और जिसमें सर्वत्र सर्वभाषक प्रजा का सभी विष अतन विदित होता है वह मेरा मन अधिष्ठाता का अभाव कर विद्यमान सदा रहे ॥ ७ ॥

हे सर्वविप्लव ईश्वर ! जो मेरा मन रस्ती से लोगों के अमान्य अमन्य लोगों के भिन्नता धारणी के रूप मनुष्यों का अमन्य हुए उच्चर अचर ८ जो

इसमें मैं प्रतिष्ठित धर्मात्मा जीर आसक्त हो रहा हूँ, यह मेरा सब सब इन्द्रियों को चक्षुर्मात्र से रोक के धर्मपथ में लाना चाहता हूँ ऐसी हृदय मुझ पर कीजिये ॥ ८ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विद्यानि देव बभूवुर्नानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मर्द्धुराद्यमेनो भूयिष्ठां ते नमज्जुक्ति विधेम ॥

बुद्धि भा ४ । मं ११ ॥

हे सूर्य के दत्ता स्वयम्भवात्मक्य ज्ञानको आचारेद्वार परमात्मन् ! आप हम को मोक्ष मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञाओं को प्राप्त कराइये और जो हम में कुञ्चित पापान्तरात्मक मार्ग है उससे पूरक कीजिये । इसीजिये हम लोग परमात्मापूर्ण आपकी बहुलसी सृष्टि करते हैं कि आप हमको पण्डित करें ॥

मा नो महान्तमुत मा नोऽधर्मक मा नज्जुर्धन्तमुत मा नज्जुद्धितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तुभ्यो रुद्र रीरपः ॥

बुद्धि भा ११ । मं १२ ॥

हे रुद्र ! (तुम्हें जो पाप के दुरात्मक्य कर्म को देखे उदावे आपके परमेश्वर !) आप हमसे कोड़े करें जब धर्म भगता पिता और माता बन्धुजन तथा करीबी का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये ऐसे मार्ग से हमको पछाड़ने बिना हम आपके दयनीय न हों ॥

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय सत्योर्भाग्मुक्तं गमयात् ॥

शतपथम् १४ । ३ । १ । २ ॥

हे परमात्मा परमात्मन् ! आप हमको असत् मार्ग से पूरक कर सम्मार्ग में प्रवृत्त कीजिये । अविद्यामयकार को बुद्धि के निष्कारण सत्य को प्राप्त कीजिये और मृत्यु रोम से पूरक करने मोक्ष के आनन्दक्य अमृत को प्राप्त कीजिये । अर्थात् जिस १ दोष का दुरुप स परमेश्वर और आचारे का भी पूरक भाग के परमेश्वर की धार्मिक की जाती है वह विधि विनियोगों हाथ से सगुण निर्गुण धार्मिक । जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसको देना ही धर्मग्रन्थ करना चाहिये अर्थात् जिस सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करें उसके लिये जिस बात अपने लक्ष्य होना उक्त उक्त किता कर अर्थात् अपने पुण्यार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है कि जैसे—हे परमेश्वर ! आप मेरा शत्रुओं का नाश मुझको सब से बड़ा मेरे ही प्रतिष्ठित धर्म मेरे धार्मिक सब हो जाई इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश करे ? जो कोई कहे कि जिसका वेम अधिक उसकी प्रार्थना सफल होनाय तब हम कह सकते हैं कि जिसका वेम शून्य हो उसके शत्रु का भी शून्य नाश होना चाहिये । ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करत १ कोई इसी की प्रार्थना करता—हे परमेश्वर ! आप हमको रोटी बनाकर दिखाइये मेरे

मध्य में धातु लगाये वरु या हीनिये और खती बाही भी कीजिय । इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आससी होकर बैठ रहते हैं वे महा मूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उसको जो कोई छोड़ेगा वह मुक्त कभी नहीं पायेगा ॥ अन्तिम—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषच्छ्रुत्वा समा ॥ पठ ॥ ४ ॥ अ ॥ २ ॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य तो वर्ष पर्यन्त धर्मात् अर्थात् जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने को इच्छा कर आससी कभी न हो । ऐसी मूर्ख के पीछे मैं जितने पापी आससी आससी हैं वे सब अपने २ कर्म और पत्र करते ही रहते हैं । जिस विपत्ति का आदि सदा प्रसन्न करते शुभिणी आदि सदा धूमत और हृष आदि सदा बन्धे करते रहते हैं वे सब यह पद प्राप्त मनुष्यों को भी प्रसन्न करना योग्य है । ऐसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दृष्टा भी करता है ईश्वर धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है । जिस काम करने वाले पुरुष का भूय करते हैं और अन्य आससी को नहीं, एतन् की इच्छा करने और नेत्रयत्ने को दिखाना है अन्ध को नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सब क उपकार करने की शक्ति से सहायक होता है शक्तिशालक कर्म में नहीं । जो कोई गुरु मीमा है ऐसा कहता है उसको गुरु प्रसन्न का उसको स्वाद प्रसन्न कभी नहीं होता और जो पत्र करता है उसको सीमा या विज्ञान से गुरु मित्र ही ज्ञात है ॥ अब तीसरी उपसन्धा—

समाधिनिर्भूतमलस्य चतस्रो निश्चितस्वप्नमनि परतुल्यं मपत् ।

न शक्यत यण्यितुं गिरा तदा स्वप्नतद्वन्त करण्येन पृथक् ॥

यह उपनिषद् का वचन है । जिस पुरुष के समाधिभोग से अविद्यादि मल वह हास्य है आत्मत्व हाकर परमात्मा में चित्त निश्चये लगता है उसका जो परमात्मा के योग का मुक्त होता है वह बायीं प करी नहीं या सकल क्योंकि वह आनन्द का बीजात्मा अपने आनन्द-प्रसन्न से ग्रहण करता है ॥

उपासका शब्द का अर्थ समीपका हुआ है अर्थात् योग से परमात्मा का समापन्न होने और उसका अवस्थाही सर्वान्तवामी रूप से प्रत्यक्ष करने के बिना जो २ काम करना होता है वह २ काम करना आ. हृष अर्थात्—

तथार्हिसासत्यास्तियाम्नाद्ययापरिग्रहा यमा ॥ पाठ ॥ अ ॥ ३ ॥

इत्यादि सुख पात्र-प्रसन्नताया ॥ है । जो उपासका का आनन्द करना चाहे उसके बिना यही आनन्द है कि वह किसी ल वर न हल, सर्वदा सब से दीप्ति का शब्द बाह्य विधा कभी न बाह्य जारी न कर सब व्यवहार को विनिर्मुक्त हो अमृत न हो और निर्विकारी हो अविद्या कभी न कर । वे पांच प्रकार के पत्र मित्र के उपसन्धा योग का प्रथम चरण है ॥

गोशसन्तारतपः स्वाध्यायभ्यस्तपिधानानि नियमा ॥ का ॥ अ ॥ ४ ॥

तथा ईश्वर भोक्त भोक्त उपासि ॥ बाहर परिग्रह पत्र से पुरुषार्थ करने से काम में २ प्रत्यक्ष और इति में २ अन्तर्गत के अन्तर्गत

आत्मन को सदा पुनरुत्पत्ति के लिये सदा दुःख मुक्तों का सहज और धर्म ही का अनुष्ठान कर अथर्व का नहीं, सर्वदा ज्ञान शास्त्रों को पढ़ पढ़ाये, उपनिषद् का सदा कर और 'ओम्' इस एक परमात्म्य के नाम का धर्म बिचार कर विष्णुप्रतिष्ठापन किया कर अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुसार समर्पित कर देवे। इन पाँच प्रकार के विधियों को मित्रा के उपासनायोग का दूसरा अंग कहा जाता है। इस के नाम हैं: अष्ट बोधयोग व आनन्दबोधिमन्त्रभूमिका ७ में देख लेंगे।

अब उपासना करवा 'आर्द्र' एक प्रकार का शब्द है जो आत्मन का अन्तःकरण बनाकर बाह्य विषयों व इन्द्रियों का रोक रोक को बाधित करने में का इन्द्रिय कण्ठ, नेत्र शिखा अथवा पीठ के मध्य हाथ में किसी स्थान पर फिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विचार करने परमात्म्य में मग्न हो जाने से संयमी होवे।

अब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मन और अन्तःकरण पवित्र होकर सदा से पूर्व हो जाता है। विष्णुप्रतिष्ठापन विष्णु व अक्षर मुक्ति एक पद्वी जाता है। जो आठ प्रकार में एक बड़ी भर भी इस प्रकार व्यापक करता है वह सदा उन्नति की प्राप्त हो जाता है।

यहाँ सर्वज्ञानि गुणों के साथ परमेश्वर का उपासना करनी सगुण और रूप रूप रस गन्ध स्पर्शोंदि गुणों से पूर्ण मात्र अतिशुद्ध आत्मा के भीतर व्यापक परमेश्वर में एक कित हो जाता किन्तु उपासना कहाँ है।

इसका फल—जैसे शीत से अत्यन्त पुनः का जल के पास जाये व शीत विरुद्ध हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से अब बाह्य दुःख कृत्कर परमेश्वर के गुण कर्म स्वप्न के साथ जीवन्मुक्ति के गुण कर्म स्वप्न पवित्र हो जाते हैं। इसलिये परमेश्वर की स्तुति आर्चना और उपासना अत्यन्त करनी चाहिये। इससे इसका फल पूर्ण होना परमात्मा का वह इसका बर्णन [कि] वह परम के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न बचता होगा और सब को सहज कर सकेगा। क्या वह बोली बात है? और जो परमेश्वर की स्तुति आर्चना और उपासना नहीं करता वह दुःख और महादुर्लभ भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को मुक्त के लिये दे रखे है उसका गुण कुछ जाना ईश्वर ही को न मानना कृतज्ञता और भूलता है।

प्र०—अब परमेश्वर के भोज भोगादि इन्द्रियों नहीं है फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है?

उ०—अपातिपात्रो जयना महीता पश्यत्येषां न भृशोऽप्यक्रवा।

स वसि विश्वं न न तस्यमस्ति यत्ता तमाहुरमर्थं पुदपं पुराणम् ॥

शेताधर उपनिषद् ३। ३। १३। ॥

परमेश्वर ६ हाथ बड़ी परमात्मा अपनी शक्ति का हाथ से सब का रचना प्रहय करता परन्तु परमात्मा व्यापक होने से सब से अधिक वेगवान्, सब का गोचर नहीं परमात्मा सब का अधीन ईश्वर भोज नहीं तथापि सब की कर्तृ मुक्तता

• आनन्दबोधिमन्त्रभूमिका ६ उपासना विधय में इन का वर्णन है ॥

अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधिसहित जानने वाला कोई भी नहीं। उसी को सगज्जन सब से भेद सब में पूर्ण होने से पुनः कहते हैं। वह इन्द्रियों और अन्तःकरण से [होनेवाले] काम अपने सामर्थ्य से करता है ॥

प्र०—उसका बहुत से मनुष्य विच्छिन्न और निर्गुण कहते हैं

उ०—न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समाख्यामधिकस्य दृश्यते ।

प्राप्त्य शक्तिर्विधिभेद भूयत सामाधिकी सावयवक्रिया च ॥

येतन्मत्तर उपविषद् अ ६ । नं ८ ॥

परमात्मा से कोई स्वरूप कार्य और उसको करण अर्थात् सावयवम दृश्यत अपेक्षित नहीं। न कोई उसके लक्ष्य और न अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अकल्प ज्ञान अकल्प बल और अकल्प क्रिया है वह स्वाभाविक अर्थात् अहम् उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर विच्छिन्न होता तो ज्ञान की अपेक्षित स्थिति प्रलय न कर सकता। इसलिये वह विभु तथावि चतव होने से उसमें क्रिया भी है ॥

प्र०—जब वह क्रिया करता होगा तब अन्तर्वाही क्रिया होती होगी या अकल्प ?

उ०—जिसने देव काह में क्रिया करवा उचित समझता है, उसने ही देव काह में क्रिया करता है न अधिक न शून्य, क्योंकि वह मिथ्या है ॥

प्र०—परमेश्वर अपना अन्त अमता है या नहीं ?

उ०—परमात्मा पूरा ज्ञानी है क्योंकि ज्ञान उसको कहते हैं कि जिससे मैं को त्यों ज्ञान काय अर्थात् जो पदार्थ जिस प्रकार का हो उसको उसी प्रकार जानने का काम ज्ञान है। जब परमेश्वर अकल्प है तो अपने को अकल्प ही जानकर ज्ञान उससे किहू अज्ञान अर्थात् अकल्प को अकल्प और ज्ञान को अकल्प जानना असंभव कहाता है। “वधार्थैर्हर्म्यं ज्ञानमिति” जिसका मैसा गुण कर्म स्वभाव हो उस पदार्थ को कदा ही जानकर जानना ही ज्ञान और विज्ञान कहाता है इससे उक्त अज्ञान। इसलिये—

क्लेशकर्मविपाकाद्यपेरपरामृष्टः पुरुषविशुष ईश्वरः ॥

योगसू. समा सू. २४ ॥

जो क्लेशादि क्लेश कुशल अकुशल इह, अविवर्जित निष्ठ अज्ञानक कर्मों की वासना से रहित है वह सब जीवों के लिये ईश्वर कहाता है ॥

प्र०—इश्वरास्मिन्ने ॥ २ ॥ आत्मन य १ सू. १२ ॥

प्रमाणभावाच्च तस्मिन्नि ॥ २ ॥ आ. अ. २ । सू. १ ॥

सम्बन्धाभावाच्चानुमानम् ॥ २ ॥ आ. अ. २ । सू. ११ ॥

प्रत्यक्ष से वह प्रकट ईश्वर की सिद्धि नहीं होती ॥ १ ॥ क्योंकि जब उसकी सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण नहीं हो सकता ॥ २ ॥ और व्याप्ति सम्बन्ध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता। पुनः प्रमाणानुमान के न होने से सम्प्रमाय आदि भी नहीं कर सकते। इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती ॥ ३ ॥

उ०—यही ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण पड़ता है और य ईश्वर अपर का उपादान करण है और पुनः से विकृत्य जगत् सर्वत्र पृथ होने से परमात्मा का नाम पुनः और शरीर में धारण करने से जीव का भी नाम पुनः है क्योंकि इसी प्रकार में कहा है—

प्रधानादक्रियागाच्चेत्सङ्गापत्तिः ॥ १ ॥ सत्तामात्राच्चेत्सर्वभार्यम् ॥ २ ॥
भूतिरपि प्रधानकार्यस्त्वस्य ॥ ३ ॥ सां सु च २ । सु ८ । ४ । १२ ॥

यदि पुनः को प्रधानादिक का पाप हो तो पुनः में सङ्गापत्ति हो कर जगत् जैसे प्रकृति सूक्ष्म से मिश्रकर कार्यरूप में सत्त्व हुई है तब परमेश्वर भी तब ही जगत् इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान करण नहीं किन्तु विभिन्न करण है ॥ १ ॥ जो केवल से जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर सममेश्वरबुद्ध है वैसा संसार में भी सर्वत्र ही का बोध होना चाहिये भी नहीं है । इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान करण नहीं किन्तु विभिन्न करण है ॥ २ ॥ क्योंकि उपनिषद् भी प्रमाण ही को जगत् का उपादान करण कहती है ॥ ३ ॥ जैसे—

अजामेकां लोहितरुद्राङ्गणां बह्वीं प्रज्यां सृजमानां सकृपां ॥

यद् धेतव्यं उपनिषद् (च ४ में २) का वचन है ॥

जो अमरहित सत्त्व, रज तमोगुणरूप प्रकृति है वही स्वस्वकार से बहुत प्रसरण हो जाती है जगत् प्रकृति परिवर्तनी होने से अवस्थान्तर हो जाती है और पुनः अपरिणामी होने से वह अवस्थान्तर होकर दूसरे रूप में कभी नहीं स्थिर होता बल्कि बह्विध विभिन्न रहता है । इसलिये जो कोई कविज्ञाचार्य को जगत्प्रवर्तक कहता है जानो वही जगत्प्रवर्तक है कविज्ञाचार्य नहीं ॥

तथा भीमात्मा का धर्म धर्मों से ईश्वर । शैविक और श्याव भी 'धर्म' सत्त्व से जगत्प्रवर्तक नहीं क्योंकि जगत्प्रवर्तक धर्मबुद्ध और 'सत्त्व सर्वत्र व्याप्यमानः' जो सर्वत्र व्यापक और सर्वत्र ही धर्मबुद्ध सब जगत् का व्यापक है उसको भीमात्मा शैविक और श्याव ईश्वर मानते हैं ॥

प्र०—ईश्वर जगत्प्रवर्तक है या नहीं ?

उ०—नहीं क्योंकि अत्र पक्षपात (४४ । २३) से 'पक्षपातः' व 'वृत्तिः' (४ । ८) के वचन हैं । इत्यादि वचनों से भिन्न है कि परमेश्वर जगत्प्रवर्तक नहीं होता ॥

प्र०—यद्यपि धर्मस्य म्मानिभयति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य लक्षणमार्तं सृजाम्यहम् ॥ ४ ॥ गी ४ । ७ । ओ ० ॥

भीष्मपुत्रो कहता है कि जब धर्म का पाप होता है तब मैं शरीर धारण करता हूँ ।

उ०—यह बात बहुत ही हीन से प्रमाण नहीं और पक्षपात है कि भीष्म धर्मस्य व ओर धर्म को रक्षा करना चाहते हैं कि मैं जब धर्म में प्रमाण पड़ता है तब मैं ही ईश्वर का नाम लूँ तो कुछ शेष नहीं क्योंकि 'पक्षपातः' पक्षपात

सर्ता विभूतयः" परोपकार के बिना सत्पुरुषों का तब, मन सब होता है।
क्यापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते ॥

प्र०—जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और
इसको अवतार क्यों मानते हैं ?

उ०—वेदां के पा आने समझणी सीधी के कहने और अपने आप
अविज्ञ होवे से प्रमाणा में कंस के ऐसी १ अग्रमाधिक बातें करते और मानते हैं ॥

प्र०—जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस राक्षसदि दुष्टों का नाश कैसे हो सके ?

उ०—प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य सत्पुरुष को प्राप्त होता है। जो ईश्वर
अवतार गरीर धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति किति प्रभव करता है उसके
आने कंस और राक्षसदि एक बीड़ी के समान ही नहीं। वह सर्वव्यापक
होवे से कंस राक्षसदि के गरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है जब चाहे उसी
प्रभव समवेदन कर नाश कर सकता है। यहाँ इस अवसन्त गुण कम स्वभाव
बुद्ध परमात्मा को एक बुद्ध जीव के मारने के बिना सम्मारायबुद्ध करने वाले
को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है ? और जो कहे कि
मच्छाओं के उद्धार करने के बिना जन्म होता है तो भी सत्य नहीं क्योंकि जो
मच्छाव ईश्वर की आज्ञानुसृत करते हैं उनके उद्धार करने का सम्पूर्ण ईश्वर
में है। क्या ईश्वर के पुत्रिणी भूय जन्मादि जगत् को बचावे धारण और प्रभव
करने रूप कर्मों से कंस राक्षसदि का सब और दोषबर्णनादि पर्वतों का उद्धार
करे कर्म हैं ? जो कोई हम सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो 'म
मृतो न मविष्मति' ईश्वर के सत्त्व कोई न है न दोष। और बुद्धि से भी
ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अवसन्त अवस्था को कहे कि कर्म में
आया वा सृष्टि में धर शिका देखा कहना कमी सब नहीं हो सकता क्योंकि
अवस्था अवसन्त और सब में अवसन्त है। इससे न अवस्था बाहर जगत् न
भीतर जगत् कैसे ही अवसन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका जन्म
बाध कमी सिद्ध नहीं हो सकता। जन्म का आया नहीं हो सकता है जहाँ न
हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं वा जो कहीं से आया ? और बाहर नहीं
वा जो भीतर से निकला ? ऐसा ईश्वर के विश्व में कहा और मानना सिद्धांतों
के सिद्धान्त और वह और मान सकेया ? इसविषय परमेश्वर का जन्म आया जन्म
मरणा कमी सिद्ध नहीं हो सकता इसविषय "ईशा" आदि भी ईश्वर के अवतार
नहीं ऐसा समझ लेना। क्योंकि राय रूप गुण गुण सब लोक, बुद्ध बुद्ध
जन्म मरणा आदि गुणबुद्ध होने से समुच्च वे ॥

प्र० ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं ?

उ०—नहीं क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका भ्याव वह हो याव और
सब समुच्च महापपी हो जायें। क्योंकि क्षमा को बात बुद्ध ही के उनके पाप
करने में क्षमिता और उन्माद होजावे जैसे राजा अपराध क्षमा कर दे तो वे
उन्मादपूर्ण अधिक १ बड़े १ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर
देया और उनके भी भरोना हो जाय कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि

बेदा कर अपने अपराध मुक्त होंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से बचकर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेंगे इसलिये सब कर्मों का फल बचाने देना ही ईश्वर का काम है जमा करना नहीं ॥

प्र — जीव स्वतन्त्र है या परतन्त्र ?

उ० — अपने कर्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है । स्वतन्त्र कर्त्ता यह प्राविधीय व्याकरण का सूत्र है जो स्वतन्त्र ज्योतिष प्राचीन है यही कर्त्ता है ॥

प्र०—स्वतन्त्र किन्तु कहे हैं ?

उ०—जिसके प्राचीन शरीर मनु इन्द्रिय और जन्तु-वस्तु-आदि हों । जो स्वतन्त्र न हो तो उसके पाप पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता क्योंकि जैसे मूल स्वामी और सेवा सेवान्वित की आज्ञा बचका मेरवा से मुक्त में जलक पुष्पों को मार के अपराधी नहीं होते वैसे परमेश्वर की मेरवा और प्राचीनता से काम सिद्ध हों तो जीव को पाप का पुण्य न फल । उस फल का प्राप्ति मेरवा परमेश्वर होने । वरक स्वयं ज्योतिष मूलक मुक्त की प्रसिद्धि भी परमेश्वर को होने । जैसे किसी मनुष्य ने गणितोप से किसी को मार बाधा तो नहीं मारने बाधा पक्का काया है और यही वरक फल है, यत्न नहीं । जैसे ही प्राचीन जीव पाप पुण्य का माली नहीं हो सकता । इसलिये अपने सामर्थ्य-पुण्य कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर पुण्य है तब ईश्वर की व्यवस्था में प्राचीन होकर पाप के फल मोचता है । इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःखकर्म फल मोचने में परतन्त्र होता है ॥

प्र०—जो परमेश्वर जीव को न बचता और सामर्थ्य न देता तो जीव कुछ भी न कर सकता इसलिये परमेश्वर की मेरवा ही से जीव कर्म करता है ॥

उ०—जीव उत्पन्न कभी न हुआ जगत्तु है जैसा ईश्वर और जगत् का अपराध करण विहित है और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के मोक्ष परमेश्वर के बनाने हुए हैं परन्तु वे सब जीव के प्राचीन हैं । जो कोई मनुष्य कर्म बच से पाप पुण्य करता है वह मोक्ष है ईश्वर नहीं । जैसे किसी कर्मिन् ने पशु से जोहा बिकवाया उस जोहे को किसी व्यापारी ने बिचा उलझी बुझा से जोहन ने से तबहार बचाने, उससे किसी सिपाही ने तबहार से ही फिर उससे किसी को मार बाधा । जब नहीं जैसे वह जोहे को जगत्तु करने उससे सेने तबहार बचाने करने और तबहार को पक्का कर राधा बच नहीं देता किन्तु जिसने तबहार से मारा नहीं बच पाता है । इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करने बाधा परमेश्वर उसके कर्मों का मोक्ष नहीं देता किन्तु जीव को मुचने बाधा होता है । जो परमेश्वर कर्म करता तो कोई जीव पाप नहीं करता क्योंकि परमेश्वर बलि और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में मेरवा नहीं करता । इसलिये जीव अपने काम करने में स्वतन्त्र है । जैसे जीव अपने कर्मों के करने में स्वतन्त्र है जैसे ही परमेश्वर भी अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है ॥

प्र०—जीव और ईश्वर का स्वरूप गुण कर्म और स्वभाव कैसा है ?

उ०—दोनों अक्षयस्वरूप हैं स्वभाव दोनों का पवित्र अविनाशी और धर्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के लक्षि की उत्पत्ति स्थिति प्रलय सब को विषय में रहना जीवों को पाप पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीव के अन्तर्गतोत्पत्ति इनका पावन शिखरविद्यादि अन्धे तुरे कर्म हैं। ईश्वर के विद्य ज्ञान आनन्द, अवन्त सब आदि गुण हैं और जीव के—

इन्द्रादेयमयस्तुक्तदुःखप्रानाम्पामनो भिन्नमिति ॥

न्यायसू अ १।आ १।सू १ ॥

प्राज्ञापाननिम्पान्मपमनागतीन्द्रियान्तरविकाप सुखदुःखस्वादिषी प्रयक्षास्वात्मनो भिन्नानि ॥ वैशेषिक सू अ २।आ २।सू ४ ॥

(इच्छा) पराधी की प्राप्ति की अभिलाषा (हेष) दुःखादि की अभिप्राय (विर) प्रत्यक्ष) दुःखार्थ पक्ष (सुख) आनन्द (दुःख) विद्याप अमृतप्राप्ता (ज्ञान) निकट पहिचानना वे गुण हैं परन्तु अंतर्गत में (आप्त) अन्त को आदर से भीतर को देना (अपान) प्राप्तायु को बाहर निकालना (विमेष) आँख को भीषण (उन्मेष) आँख को खोलना (मय) विद्याप अमृत और अहंकार कर्म (यति) ब्रह्मा (इन्द्रिय) सप्त इन्द्रियों का ब्रह्मना (अन्तरविचार) मित्र १ पुत्रा गुण हर्ष याकादिपुत्र होना य जीवना क गुण परमप्राप्ता स मित्र है उन्हीं स आत्मा की प्रतीति करनी क्योंकि वह स्पष्ट पदी है। जब तक आत्मा देह में होता है तभी तक वे गुण प्रकटित रहते हैं और जब शरीर छोड़ बना जाता है तब वे गुण शरीर में नहीं रहते। जिसके होने से जो हो और न होने से न ही न गुण उखा के होते हैं। उस ही पर और सुखादि क न होने से अमृतप्राप्ति का न होना और होने से होना है किन्तु ही जीव और परमात्मा का विद्यमान गुण होता होता है ॥

प्र०—परमेश्वर विद्याप्राप्ति है इसका अभिप्राय की क्यों जानता है। वह ज्ञान विद्याप कर्मा जीव अन्त ही करता। इसका जीव स्वतन्त्र नहीं। और जीव ही ईश्वर द्रव्य की नहीं देसकता क्योंकि ज्ञान ईश्वर ने अपने ज्ञान से निर्मित किया है क्या ही जीव करता है ॥

उ०—ईश्वर का विद्याप्राप्ति कहना मूल्यता का काम है क्योंकि का हाकर न रहे वह मूल्यता और न हाके होये वह अभिप्रायकाय करता है। क्या ईश्वर का कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है। इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा पुरुष अक्षयिष्ठ सर्वमान्य रहता है। भूत भविष्य जीवों के लिये है। हाँ ! जीवों के कर्म की प्रतीति से विद्याप्राप्ति ईश्वर में है स्वतः नहीं। ज्ञान स्वतन्त्रता से जीव करता है ज्ञान ही सर्वज्ञता स ईश्वर जानता है। और ज्ञान ईश्वर जानता है क्या जीव करता है। अथवा भूत भविष्य, सर्वमान्य क ज्ञान और कर्म देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव विद्यमान सर्वमान्य आदि कर्म करने में अवन्त है। ईश्वर का ज्ञान ज्ञान होने से ज्ञान कर्म का ज्ञान है क्या ही द्रव्य

जैसे का भी ज्ञान सम्भव है। दोनों ज्ञान उसके समान हैं। क्या कर्मज्ञान सत्य और स्वतन्त्र ज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इसमें कोई शोक नहीं आता।

प्र०—जीव शरीर में भिन्न बिभु है का परिच्छिन्न?

उ०—परिच्छिन्न जो बिभु होता तो आत्म, स्वयं सुषुप्ति मरण अन्न संयोग, विनोद जाना जाना कभी नहीं हो सकता। इसलिये जीव का स्वयं अस्वयं अन्न अन्न सुषुप्त है और परमेश्वर अतीव सुष्मान्तरात्, अन्न अन्न और सर्वव्यापक स्वयं है। इसलिये जीव और परमेश्वर का व्यापक व्यापक सम्बन्ध है।

प्र०—किन्तु जगह में एक बस्तु होती है उस जगह में दूसरी बस्तु नहीं रह सकती। इसलिये जीव और ईश्वर का संयोग सम्बन्ध हो सकता है व्यापक व्यापक नहीं।

उ०—यह विषय समान आकारवाले पदार्थों में कह सकता है, असम्बन्धता में नहीं। जैसे छोटा स्तूप अग्नि सूक्ष्म होता है, इस कारण से छोटे में बिना अग्नि व्यापक होकर एक ही जगह में दोनों रहते हैं। जैसे जीव परमेश्वर से स्तूप और परमेश्वर जीव से सूक्ष्म होने से परमेश्वर व्यापक और जीव व्यापक है। जैसे यह व्यापक व्यापक सम्बन्ध जीव ईश्वर का है जैसे ही लेख लेख आकारात्मक स्वामी भूत राजा मन्त्र और पिता पुत्र आदि भी सम्बन्ध है।

प्र —ओ पूष्ण १ है तो—

प्रश्नार्थं ब्रह्म ॥ १ ॥ अहं ब्रह्मास्मि ॥ २ ॥ तत्त्वमसि ॥ ३ ॥

अयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥

क्यों के इस महावाक्यों का अर्थ क्या है?

उ०—ये वेदवाक्य ही नहीं हैं किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों के वचन हैं, इसका नाम महावाक्य नहीं ब्रह्मवाक्यों में नहीं लिखा। अर्थ—(अहम्) मैं (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मण (अस्मि) हूँ। यहाँ उत्तरस्म्योपाधि है, जैसे 'मज्झा कोशमि' मज्झा पुकारते हैं। मज्झा वह हैं, जहाँ पुकारते का आत्मार्थ नहीं इसलिये मज्झा मधुप्य पुकारते हैं। इसी प्रकार नहीं भी आत्मार्थ। कोई कहे कि ब्रह्मण अहं पदार्थ हैं पुनः जीव को ब्रह्मण कहने में क्या विशेष है? इसका उत्तर यह है कि अहं पदार्थ ब्रह्मण हैं परन्तु जैसा आत्मार्थ पुनः किन्तु जीव है वैसा अहं नहीं और जीव को ब्रह्म का ज्ञान और मुक्ति में यह ब्रह्म के साक्षात्कार में रहता है। इसलिये जीव का ब्रह्म के साथ उत्तरस्म्य व उत्तरव्यतिरेकी अर्थात् ब्रह्म का सहकारी जीव है। इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं। जैसे कोई किसी से कह कि मैं और वह एक हैं अर्थात् अविरोधी हैं। जैसे जो जीव समग्रविक्रम परमेश्वर में प्रवेश होकर विभक्त होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अव्यक्तव्य हैं। जो जीव परमेश्वर के गुण अहं स्वयं के अनुकूल अपने गुण कर्म, स्वभाव करता है नहीं आत्मार्थ से ब्रह्म के साथ एकता कह सकता है।

प्र०—अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे ? (तत्) मया (जं) ए जीव (असि) है । हे जीव ! (त्वम्) त्व (तत्) यह मया (असि) है ॥

उ०—तुम 'तत्' शब्द से क्या खेते हो ? मया" । मयापद को अनुवृत्ति कहा से करते ?

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥

इस पूर्व शब्द से । तुमने इस ब्रह्मबोध्य उपनिषद् का दर्शन भी नहीं किया । जो यह देखी होती तो वहाँ मया शब्द का पाठ ही नहीं है ऐसा झूठ क्यों करते ? किन्तु ब्रह्मबोध्य में तो—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ कां प्र १। अं १। मं १ ॥

ऐसा पाठ है । वही मया शब्द नहीं ॥

प्र०—तो अथ त्वम् से क्या खेते हैं ?

उ०—स ए एषोऽक्षिमा ॥ वेतवस्तस्यमिदं स सर्वं तत्सत्स्य स आत्मा तत्त्वमसि एकमेवो इति ॥ ब्रह्मो प्र १। अं ५। मं ७ ॥

यह परमात्मा जानने योग्य है । जो यह ब्रह्मण्ड सूक्ष्म और इस सब ब्रह्मण्ड और जीव का धारण है । वही सत्त्वस्वरूप और अप्रकाश ब्रह्मा आप ही है । हे वेतवेतो मित्रबुध !

तदात्मकस्तत्त्वमसि त्वमसि ॥

उक्त परमात्मा तत्त्वमसि से ए बुद्ध है । वही अर्थ उपनिषदों से अस्मिन् है क्योंकि—

य आत्मनि तिष्ठन्नतन्मनोऽन्तरं यमात्मा न केह धस्यात्मा शरीरम् ।

आत्मनोऽन्तरं यमयति स त आत्ममन्तर्याम्यसूत ॥

यह बृहदारण्यक का श्लोक है । महर्षि व्यासकल्प अपनी ही मित्रेयी से कहते हैं कि हे मित्रेयि ! जो परमेश्वर ब्रह्मण्ड अर्थात् जीव में स्थित और जीवब्रह्मण्ड स विद्य है जिसको मनु जीवात्मा वही आकाश कि वह परमात्मा मर में व्यापक है जिस परमेश्वर का ओकाश शरीर अर्थात् जिस शरीर में जीव रहता है जिस ही जीव में परमेश्वर व्यापक है जीवात्मा से भिन्न रहकर जीव के पाप पुण्यों का माफी होकर उसके कल जीवों को लेकर विषय में रहता है वही अविनाशी-स्वरूप तदा भी तत्त्वमसि ब्रह्मण्ड अर्थात् तदा भीतर व्यापक है उसको ए जान । क्या कोई इत्यादि शब्दों का सम्बन्ध अर्थ कर सकता है ? अथमात्मा ब्रह्म" अर्थात् ब्रह्माधिपत्या में जब योगी को परमेश्वर प्रकाश होता है तब यह कहता है कि यह जो मेरे में व्यापक है वही मया सर्वत्र व्यापक है । इसलिये जो व्यासकल के वेदावली जीव मया की प्रकटा करते हैं वे वेदान्तशास्त्र को नहीं जानते ॥

प्र०—अनेक आत्मना जीवतानुप्रापिदृश नामरूपं ध्याकरयाति ॥

कां प्र १। अं १। मं २ ॥

तत्सुप्ता तदेवानुप्रापिदृश ॥ त्विरीय मया एव १ ॥

परमेश्वर कहता है कि मैं जगत् और शरीर को रचकर जगत् में जगत् और जीव रूप होके शरीर में प्रविष्ट होता हुआ नाम और रूप की व्याख्या कर । परमेश्वर ने उस जगत् और शरीर को बनाकर उस में वही प्रविष्ट हुआ इन्द्रिय भूतियों का धर्म बूझा कैसे कर सकोगे ?

उ०—जो तुम यह पदार्थ और वायुपदार्थ जानते तो ऐसा धर्म कभी न करते क्योंकि यहाँ ऐसा समझो एक प्रवेश और बूझा अनुप्रवेश अर्थात् प्रवेश प्रवेश कहता है । परमेश्वर शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के साथ अनुप्रविष्ट के समान होकर वेदवत्ता सब नाम रूप आदि की विद्या को प्रकट करता है । और शरीर में जीव को प्रवेश करा चाप जीव के भीतर अनुप्रविष्ट हो रहा है । जो तुम अनु रूप का धर्म जानते तो ऐसा विपरीत धर्म कभी न करते ॥

प्र०—“सोऽयं देववृत्तो य उपाकाशे कार्या दृष्टः स इदानीं प्रासृद्स्तम्ये मधुरायां दृश्यते” अर्थात् जो देववृत्त मैं उपाकाश में कभी मैं देखा ना उची को कभी समय में मधुरा में देखता हूँ । वहाँ कभी देव उपाकाश को जोड़ शरीरमात्र में खत्म करके देववृत्त कथित होता है जैसे इस मधुराकाशकथा से ईश्वर का परोक्ष देव काय मान्य उपाधि और जीव का वह देव काय अधिक अल्पजगत् उपाधि जोड़ केतव्यमात्र में खत्म होने से एक ही मध्य कण्ट दोनों में कथित होता है । इस मधुराकाशकथा अर्थात् कुछ प्रत्यक्ष करण और कुछ जोड़ देना वैसे सर्वज्ञादि अन्वयार्थ ईश्वर का और अल्पजगत्वादि अन्वयार्थ जीव का जोड़ कर केतव्यमात्र अन्वयार्थ का प्रत्यक्ष करने से अद्वैत सिद्ध होता है । वहाँ क्या कह सकोगे ?

उ०—प्रथम तुम जीव और ईश्वर को भिन्न मानते हो या अभिन्न ?

प्र०—हम दोनों को उपाधिवान्न कथित होने से अभिन्न मानते हैं ॥

उ०—उस उपाधि को भिन्न मानते हो या अभिन्न ?

प्र०—हमारे मत में—

जीवेशी य विशुद्धाचिद्विभेदस्तु तयोर्धर्मो ।

अविद्या तद्धितोर्धर्मो पञ्चसाकमतात्प ॥ १ ॥

कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरेश्वरः ।

कार्यकारणतया द्वित्वा पूर्वबोधोऽवशिष्यते ॥ २ ॥

ये “अवेपथनीरक” और “शारीरिकमात्र” में कारिका हैं । इस वेदवृत्ती का पदार्थों अर्थात् एक जीव बूझा ईश्वर तीसरा मध्य चौथा जीव और ईश्वर का विशेष येद पाँचवाँ अधिक अज्ञान और कुछ अधिक और केतव्य का बोध इनके अन्वय में मानते हैं । परन्तु एक मध्य अन्वय अज्ञान और अन्वय पाँच अन्वय सान्त्व हैं वैसे कि मायमात्र होता है । जबतक अज्ञान रहता है तबतक वे पाँच रहते हैं और इन पाँच की आदि विदित नहीं होती इसलिये अन्वय और अन्वय होने के पञ्चात् वह हो जाते हैं इसलिये अन्वय अर्थात् मात्र कथे कहते हैं ॥

उ०— वह तुम्हारे दोनों छोटे बच्चे हैं क्योंकि अविद्या के बोध के बिना जीव और माया के बोध के बिना ईश्वर तुम्हारे मन में सिद्ध नहीं हो सकता । इससे “तद्विस्तोयोयम्” जो ब्रह्म परार्थ तुम ने गिना है वह नहीं रहा क्योंकि वह अविद्या मात्रा जीव ईश्वर में अरितार्थ होयवा और ब्रह्म तथा मात्रा और अविद्या के बोध के बिना ईश्वर नहीं बनता फिर ईश्वर को अविद्या और ब्रह्म से पृथक् गिनना व्यर्थ है । इसलिये जो ही परार्थ अर्थात् ब्रह्म और अविद्या तुम्हारे मन में सिद्ध हो सकते हैं वा नहीं । तथा आपका प्रथम कर्मोपाधि अरयोपाधि से जीव और ईश्वर का सिद्ध करना ठग हो सकता है कि जब अमन्त भिन्न हुए हुए, मुख्यतम्य दर्शनपक्ष ब्रह्म में अज्ञान सिद्ध करें । जो उसके एक देश में स्थान्य और स्थित्यपक्ष अज्ञान अर्थात् सर्वत्र भावोंगे तो सब ब्रह्म हुए नहीं हो सकता । और जब एक देश में अज्ञान भावोंगे तो वह परिच्छिन्न होने से इश्वर कबल मात्रा बनता रहेगा । जहाँ २ भागवा जहाँ २ का ब्रह्म अज्ञानी और जिस २ देश को जोड़ता भागवा उस २ देश का ब्रह्म ज्ञानी होता रहेगा तो किसी देश के ब्रह्म को अर्थात् हुए ज्ञानपक्ष व कह सकते हैं । और जो अज्ञान की सीमा में ब्रह्म है वह अज्ञान को आवेगा । बाहर और भीतर के ब्रह्म के दुर्गम हो जायेंगे । जो कहें कि दुर्गम होजाओ ब्रह्म की क्या इति तो अक्षरत नहीं । और जो अक्षरत है तो ज्ञानी नहीं । तथा ज्ञान के अमान्य या विपरीत ज्ञान भी गुप्त होने से किसी ज्ञान के साथ बिल सम्बन्ध से रहेगा । यदि ऐसा है तो अमान्य सम्बन्ध होने से अविज्ञान कभी नहीं हो सकता । और जैसे शरीर के एक देश में कोढ़ होने से सर्वत्र दुर्गम पित्त जाता है वैसे ही एक देश में अज्ञान कुछ दुर्गम पक्षों की उपस्थिति होने से सब ब्रह्म दुर्गम के अनुम्य से ही कर्मोपाधि अर्थात् अन्तःकरण की उपस्थिति के बोध से ब्रह्म को जीव भावोंगे तो हम पूछते हैं कि ब्रह्म आपका है या परिच्छिन्न ? जो कहें आपका और उपस्थिति परिच्छिन्न है अर्थात् एकदेशी और पृथक् २ हैं तो अन्तःकरण चलता फिरता है या नहीं ?

उ०— चलता फिरता है ॥

प्र०— अन्तःकरण के ज्ञान ब्रह्म को चलता फिरता है या फिर रहता है ?

उ०— फिर रहता है ॥

प्र०— जब अन्तःकरण जिस २ देश को जोड़ता है उस २ देश का ब्रह्म अज्ञानरहित और जिस २ देश को घट होता है उस २ देश का ब्रह्म अज्ञानी होता होगा । वैसे सब में ज्ञानी और अज्ञानी ब्रह्म होता रहेगा । इससे मोक्ष और कर्म भी पृथक् होया और जैसे अज्ञान के देश का अज्ञान स्मरण नहीं कर सकता वैसे कर्म की वेशी सुनी हुई कर्तु या कर्म का ज्ञान नहीं रह सकता । क्योंकि जिस समय देखा सुना या वह दूसरा देश और दूसरा कर्म जिस अज्ञान स्मरण करता वह दूसरा देश और कर्म है । जो कहें कि ब्रह्म एक है तो सर्वत्र क्यों नहीं ? जो कहें कि अन्तःकरण जिस २ है, इससे वह भी जिस २ होजाया होगा तो वह जब है उसमें ज्ञान नहीं हो सकता । जो कहें कि व केवल ब्रह्म और व केवल अन्तःकरण को ज्ञान होता है किन्तु अन्तःकरण

परमेश्वर कहता है कि मैं जगत् और शरीर को रचकर जगत् में जगत् और जीवरूप होने शरीर में प्रविष्ट होता हुआ नाम और रूप की व्याख्या करूँ। परमेश्वर ने उस जगत् और शरीर को बनाकर उस में वही प्रविष्ट हुआ इस्यदि भूतियों का अर्थ दूसरा कैसे कर सकोगे ?

उ०—जो तुम यह पदार्थ और नामार्थ जानते तो ऐसा अवर्ण कभी न करते क्योंकि यहाँ ऐसा समझो एक भवैश और दूसरा अनुभवेष्ट अर्थात् पञ्च प्रवेष्ट कहता है। परमेश्वर शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के साथ अनुभविष्ट के समान होकर वेदद्वारा सब नाम रूप आदि की विद्या को प्रकट करता है। और शरीर में जीव को प्रवेष्ट करा थाप जीव के भीतर अनुभविष्ट हो रहा है। जो तुम अनु भव्य का अर्थ जानते तो ऐसा निपरीत अर्थ कभी न करते ॥

प्र०—‘सोम्य देवदत्तो य उष्यन्काले कास्यां दृष्ट’ स इवाग्नी प्राबृद्धसमये मधुरार्या दृश्यते’ अर्थात् जो देवदत्त मैंने उष्यन्काल में कमी में देखा था उसी को यहाँ समय में मधुरा में देखता हूँ। यहाँ काही देव उष्यन्काल को जोड़ शरीरमात्र में लपक करके देवदत्त कथित होता है, कैसे इस नाममात्रकाल से ईश्वर का परोक्ष देव, काल माया उपाधि और जीव का यह देव काल कथित अवपञ्चता उपाधि जोड़ केतव्यमात्र में लपक देवे से एक ही मध्य काल दोनों में कथित होता है। इस भाग्यमात्रकाल अर्थात् कुछ प्रत्यक्ष करना और कुछ जोड़ देना कैसा सर्वज्ञादि व्याप्यार्थ ईश्वर का और अस्पृश्यवादि व्याप्यार्थ जीव का जोड़ कर केतव्यमात्र व्याप्यार्थ का प्रत्यक्ष करने से अज्ञेय सिद्ध होता है। यहाँ क्या कह सकते हैं ?

उ०—प्रथम तुम जीव और ईश्वर को किस मानते हो या कथित ?

प्र०—हम दोनों को उपस्थितकाल कथित होने से कथित मानते हैं ॥

उ०—उस उपस्थि को किस मानते हो या कथित ?

प्र०—हमारे मत में—

जीवेशो य विश्वस्याधिप्रियेवस्तु तयोर्द्वयोः ।

अविद्या तन्वितोर्योगः पञ्चसाकमगाव्यः ॥ १ ॥

कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ।

कार्यकारणस्य द्वित्वा पूर्वोक्तोऽप्यनुपपद्यते ॥ २ ॥

ये “संवेदप्रातीक” और “प्रातीकमात्र” में करिका हैं। इस वेदप्रातीक व पदार्थों अर्थात् एक जीव दूसरा ईश्वर तीसरा मध्य चौथा जीव और ईश्वर का विशेष वेद पाँचवाँ कथित अज्ञान और कुछ कथित और केतव्य का योग इसको अज्ञेय मानते हैं। परन्तु एक मध्य अर्थात् अज्ञान और अज्ञान पाँच अर्थात् अज्ञान है जैसा कि मायमात्र होता है। अज्ञानक अज्ञान रहता है तबतक वे पाँच रहते हैं और इन पाँच की आदि विहित नहीं होती इसलिये अज्ञेय और अज्ञ होवे के पञ्चम् वह हो जाते हैं इसलिये अज्ञान अर्थात् अज्ञान माने कहते हैं ॥

से देखते मुक्त से जाते और पय से बचते हैं तथापि मनुष्य की प्राकृति से पय और कीड़ी की प्राकृति अनेक पय आदि मिश्र होने से एकता नहीं होती भिसे परमेश्वर के अत्यन्त अल्प आत्मन् ब्रह्म किन्ना, विभक्तिमय और व्यापकता जीव से और जीव के अस्पृश्यता अस्पृश्यता अस्पृश्यकय सब अस्मित्य और परिच्छिन्न आदि गुण अत्र से मिश्र होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं क्योंकि इत्यत्र स्वल्प भी (परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्पृह्य होने से) मिश्र है ॥

प्र०—अथोदरमन्तरं कुदते । अथ तस्य मयं मवति ॥

द्वितीयोऽयं मयं मवति ॥ इदं वा ३ । अ ४ । म १ ॥

यह इदंमन्तरक का बचन है । जो अत्र जीव जीव में बोझ भी भेद करता है उसको मय प्राप्त होता है, क्योंकि दूसरे ही से भव होता है ॥

उ०—इत्यत्र अर्थ यह नहीं है किन्तु जो जीव परमेश्वर का विवेक या किन्हीं एक देव अथ में परिच्छिन्न परमात्मा को माने व उसकी व्याख्या और गुण कर्म समग्र से विच्छिन्न होने अथवा किसी दूसरे मनुष्य से पैर करे उसको मय प्राप्त होता है, क्योंकि द्वितीय बुद्धि अर्थात् ईश्वर से मुक्त से कुछ सम्बन्ध नहीं तथा किन्हीं मनुष्य से बड़े कि तुम्हारे मैं कुछ नहीं सम्बन्धता व मेरा कुछ नहीं कर सकता या किन्हीं की हानि करता और कुछ देता अथ तो उसको अबसे भव होता है । और सब प्रकार का अविरोध हो तो वे एक कहाते हैं, वैसे अन्तर में कहते हैं कि देवदत्त अथवा अथ विच्छिन्न ब्रह्म है अर्थात् अविरुद्ध है । विरोध व रहने से मुक्त और विरोध से मुक्त प्राप्त होता है ॥

प्र०—अत्र जीव जीव की सदा एकता अनेकता रहती है या कभी दोनों मिश्रके एक भी होते हैं या नहीं ?

उ०—कभी इसके पूर्व कुछ उत्तर दे दिया है परन्तु साधर्म्य अन्वयमय से एकता होती है । वैसे आकाश से सूर्य अथवा अथ होने से और कभी एकत्व व रहने से एकता और आकाश के विस्तृत सूक्ष्म अथ अत्यन्त अल्प गुण और सूर्य के परिच्छिन्न इत्यत्र आदि वैधर्म्य से भेद होता है अर्थात् वैसे शुक्तिमय अथ आकाश से मिश्र कभी नहीं रहते क्योंकि अन्वय अर्थात् अथमय के विना सूर्य अथ कभी नहीं रह सकता और व्यतिरेक अर्थात् एकत्व से मिश्र होने से स्पष्ट है किसे अत्र के व्यापक होने से जीव और शुद्धि अथ अथ अथ अथ नहीं रहते जीव स्वल्प से एक भी नहीं होते वैसे वर के बचने के पूर्व मिश्र १ देश में मिश्री अथवी और जोहा अथवि पदार्थ आकाश ही में रहते हैं जब वर वर पदा सब भी आकाश में हैं और जब वह वह होगया अर्थात् वर वर के सब अथमय मिश्र १ देश में प्राप्त होगये तब भी आकाश में हैं अर्थात् जीव अथ में आकाश से मिश्र नहीं हो सकते और स्वल्प से मिश्र होने से व कभी एक वे हैं और हमें इसी प्रकार जीव तथा सब अन्तर के पदार्थ परमेश्वर में व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों कर्णों में मिश्र और स्वल्प मिश्र होने से एक भी नहीं होते । आकाश के वेदमिथों की दृष्टि कावे शुद्ध के अथमय अन्वय की वार वर

विद्यमान को ज्ञान होता है तो भी जेब वही को वास्तविकता द्वारा ज्ञान हुआ तो वह जेब द्वारा ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है ? इसलिये कारणोपरान्त और कार्योपरान्त के योग से ज्ञान जीव और ईश्वर नहीं बना सकते। किन्तु ईश्वर ज्ञान ज्ञान का है और ज्ञान से निम्न ज्ञानादि अनुपपन्न जीव वास्तविकता जीव का नाम जीव है। जो पुन कहो कि जीव विद्यमान का नाम है तो वह चरमार्थ होने से वह हो जान्या तो मोक्ष का मुक्त जीव भोगेगा ? इसलिये ज्ञान जीव और जीव ज्ञान नहीं व बुद्धि व है और व होय।

प्र०—तो 'सर्वेव सत्येवमप्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (आत्मोक्त) अद्वैतसिद्धि कैसी होगी ? हमारे मत में तो ज्ञान से प्रत्यक्ष कोई सत्तातीव विनातीव और स्वतन्त्र अस्तित्व के भेद व होने से एक ज्ञान ही सिद्ध होता है। जब जीव बुद्धि है तो अद्वैतसिद्धि कैसे हो सकती है ?

उ०—इस ज्ञान में एक नहीं करते हो ? किन्तु किन्तु विद्या का ज्ञान करो कि वस्तुतः क्या कह है ? जो कहो कि 'व्यावर्तक विशेषण भवतीति' किन्तु वह भेदकारक होता है तो इतना और भी मानो कि 'प्रवर्तक प्रकाशकमपि विशेषण भवतीति' किन्तु वह प्रवर्तक और प्रकाशक भी होता है। तो समझो कि अद्वैत किन्तु ज्ञान का है। इसमें व्यावर्तक धर्म यह है कि अद्वैत कस्तु चर्चात् जो अनेक जीव और तत्त्व हैं वससे ज्ञान को एक करवा है और किन्तु का प्रकाशक धर्म यह है कि ज्ञान के एक होने की प्रकृति काय है, जैसे 'अक्षिप्रगरेऽद्वितीयो ज्ञानाद्यो वेदवत्'। अस्यां सेनात्मद्वितीय शूरवीरो विक्रमसिंह"। किसी ने किसी से कहा कि इस ज्ञान में अद्वितीय ज्ञानवत् वेदवत् और इस ज्ञान में अद्वितीय शूरवीर विक्रमसिंह है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि वेदवत् के लक्षण इस ज्ञान में बुद्धि प्रकाश और इस ज्ञान में विक्रमसिंह के लक्षण बुद्धि शूरवीर नहीं है स्पष्ट तो है। और प्रकृति आदि ज्ञान परार्थ प्रकाश आदि और बुद्धि भी हैं उक्त विषय नहीं हो सकते। जैसे ही ज्ञान के सत्ता जीव का प्रकृति नहीं है किन्तु स्पष्ट तो है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान सदा एक है और जीव तत्त्व प्रकृतित्व तत्त्व अनेक है। उक्तसे निम्न कर ज्ञान के एकत्व को सिद्ध करनेद्वारा अद्वैत वा अद्वितीय किन्तु है। इससे जीव का प्रकृति का और कार्योपरान्त ज्ञान का प्रत्यक्ष और विषय नहीं हो सकता किन्तु वे धन हैं परन्तु ज्ञान के पुन नहीं। इससे व अद्वैतसिद्धि और व द्वैत सिद्धि की दृष्टि होती है। यवराह में मत पड़ो, सोचो और समझो ॥

प्र०—ज्ञान के सत् विद् आनन्द और जीव के अक्षि भवति विपक्ष से एकता होती है। फिर नहीं कहना करते हो ?

उ०—विद्विद् आनन्द मिश्रने से एकता नहीं हो सकती। जैसे प्रकृति ज्ञान रूप है जैसे ज्ञान और अक्षि आदि भी ज्ञान और रूप हैं, इतने से एकता नहीं होती। इसमें वैधर्म्य अक्षरक धर्मात् विक्रम धर्म जैसे ज्ञान वस्तुतः अक्षि आदि पुन प्रकृति और रक्त प्रकाश, कोमलतादि धर्म ज्ञान और रूप वाहक्यदि धर्म अक्षि के होने से एकता नहीं। जैसे अनुपपन्न और कीड़ी धर्म

अथ सर्वेषु से ईश्वर का विषय छिन्नकर वेद का विषय कहिये हैं—

यस्मात्तृचो अपातंयन् यजुर्वस्मादिपाकपन् ।

सामानि यस्य सोमा पथर्वाङ्गिरमो मुखं स्कर्म सं भूदि

कृतम् । स्विदेव सः ॥ अथर्व का १ । सू ७ । मं २ ॥

मित्र परमात्मा से अग्नेय, यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद प्रकटित हुए हैं वह कीमती वेद हैं ? इसका उत्तर जो सब को उत्पन्न करने धारण कर रहा है वही परमात्मा है ॥

स्वयम्भूयायतप्यतोऽर्पान् व्युहवाच्छाश्रुतीभ्यः समाभ्यः ॥

यजु का ४ । मं ८ ॥

जो स्वर्पन्, सर्वव्यापक शुद्ध, सच्चिदान विराकार परमेश्वर है वह सच्यतन जीवन्म प्रज्ञा के कल्याणार्थ यज्ञान् रीतिपूर्वक ब्रह्म द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है ॥

प्र०—परमेश्वर को आप विराकार मानते हो या साकार ?

उ०—विराकार मानते हैं ॥

प्र०—अब विराकार है तो ब्रह्मविद्या का उपदेश बिना मुख के बर्णोच्चारण कैसे होसक्य होय ? क्योंकि बर्णों के उच्चारण में वाक्सादि स्वयं शिष्ट का प्रकाश प्रसार होय चाहिये ॥

उ०—परमेश्वर के सर्वव्यापमान् और सर्वव्यापक होने से जनों को अपनी व्यसि से ब्रह्मविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुकादि की परेशा नहीं है क्योंकि मुख शिष्ट से बर्णोच्चारण करने से पिक क बोध होने के बिना किया जाय है कुछ करने बिना नहीं । क्योंकि मुख शिष्ट के व्यापार करे बिना ही मन में अनेक प्रकाशों का विचार और उपरोच्चारण होता रहता है । कानों को अंगुष्ठियों पर सूँद के देखो मुको कि बिना मुख शिष्ट वाक्सादि भावों के कैसे १ पक हो रह हैं बिना जनों को अन्तर्बोधीकन से उपदेश किया है । किन्तु केवल दूसरों को समझाने के बिना उच्चारण करने की आवश्यकता है । अब परमेश्वर विराकार सर्वव्यापक है तो अपनी अक्षिप्त ब्रह्मविद्या का उपदेश जीवन्म स्वयं से जीवन्मा में प्रकटित कर देता है । फिर वह अनुपम अपन मुख से उच्चारण करके दूसरों का सुनता है, इसलिये ईश्वर में वह शब्द नहीं का सक्य ॥

प्र०—किन के अग्र्य में कह देही का प्रकाश किया ?

उ०—आग्नेर्गुणवो वापोर्यजुर्वेद सूर्यास्तामसव ॥

यजु का ११ । अ २ । भा य । कं० ३ ॥

अथ सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि वायु आदिषु तथा अक्षिर इन अश्वियों के अग्र्य में एक १ वेद का प्रकाश किया ॥

प्र०—यो ये प्रकृत्य विद्भाति पूर्ण या प वशाश्च प्रहृषाति तस्मै ॥

अथर्व का १ । मं १८ ॥

के अतिरिक्त यह सब पूरा बिरुद्ध हो गई है। कोई भी ऐसा श्रम नहीं है कि जिसमें सगुणभिर्गुणता अथवा अविरोध साधनार्थ विद्यमान और विरोध विरोध भव्य हो।

प्र०—परमेश्वर सगुण है या निर्गुण ?

उ०—दोनों प्रकार है ॥

प्र०—यदि एक तरफ में दो तत्त्वधार कमी रह सकती है ? एक पदार्थ में सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती है ?

उ०—जैसे वह के रूपदि गुण हैं और चेतन के ज्ञानदि गुण जब में नहीं है वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपदि वह के गुण नहीं हैं इसलिये 'मदु गुर्यैस्सह वर्तमानं तत्सगुणम्' गुर्यैभ्यो यधिर्यतं पूष्यभूतं तभिर्गुणम्' का गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहता है। अपने १ स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निर्गुणता या केवल सगुणता हो किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता पाया रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अकाल ज्ञान वशदि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपदि जब के तत्त्व इच्छादि जीव के गुणों से युक्त होने से निर्गुण कहता है ॥

प्र०—संसार में विराट्मर को निर्गुण और सात्वत को सगुण कहते हैं, अर्थात् जब परमेश्वर जन्म नहीं होता तब निर्गुण और जब अवतार होता है तब सगुण कहता है ॥

उ०—यह अवस्था केवल अज्ञानों और अधिज्ञानों की है। जिससे विज्ञान नहीं होती वे पद के समान क्या तत्त्व कहेंगे कहते हैं। जैसे अविज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञान कहता है वैसे ही अधिज्ञानों के कहे या केवल को ज्ञान समझना चाहिये ॥

प्र०—परमेश्वर राणी है या विरक्त ?

उ०—दोनों में नहीं। क्योंकि राग अपने से विज्ञान उत्पन्न पदार्थों में होता है जो परमेश्वर से कोई पदार्थ युक्त या उत्पन्न नहीं इसलिये उसमें राग का सम्भव नहीं। और जो प्रपञ्च को जोड़ देने वसको विरक्त कहते हैं। ईश्वर व्यपक्त होने से किसी पदार्थ को जोड़ नहीं सकता इसलिये विरक्त भी नहीं ॥

प्र०—ईश्वर में इच्छा है या नहीं ?

उ०—कैसी इच्छा नहीं। क्योंकि इच्छा भी अज्ञान उत्पन्न और जिसकी प्रवृत्ति से कुछ विरोध होने उत्पन्न होती है * जो ईश्वर में इच्छा हो सके, व उससे कोई अज्ञान पदार्थ व कोई उत्पन्न उत्पन्न और पूर्व मुक्त्युक्त होने से कुछ की अधिज्ञानता भी नहीं है। इसलिये ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं किन्तु ईश्वर अर्थात् सब प्रकार की विज्ञान का दर्शन और सब सृष्टि का करना कहता है वह ईश्वर है। इच्छादि अधिज्ञान विषयों से ही अज्ञान जोय बहुत विस्तार करधमि ॥

* इसलिये ईश्वर को यदि कोई पदार्थ अज्ञान उससे उत्पन्न या विरोध कुछ देने काका हो ॥

उ०—कमी नहीं गया सकते, क्योंकि बिना कारण के कर्षणप्रति का होना असम्भव है। जैसे बहली मनुष्य छवि को देखकर भी बिना नहीं होते और जब उसको कोई शिक्षक मित्र आदि तो बिना हो जाते हैं और जब भी किसी से वै बिना कोई भी बिना नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा जब आदि छवि के जड़ियों को केन्द्रित न पड़ता और वे जड़ों को न पड़ते तो सब छोड़ भविष्य ही रह जाते। जैसे किसी के शरीर को जड़ से एकत्रित देखा भविष्य ही या पशुओं के दंग में एक देवे तो वह जैसा संय है वैसा ही हो जायगा। इसका प्रमाण बहली भी आदि है। जबतक आर्थात्त देहा से शिक्षा नहीं गई भी तबतक मित्र प्रिया और पुरोप देहा आदिका मनुष्यों में कुछ भी मित्र नहीं हुई भी और इहलोक के कुलम्बस के आदिपुरुष अमेरिका में जब तक नहीं पाये थे तब तक वे भी सहस्रों लाखों कोड़ों को से मूर्ख आर्थात् विषयहीन वे पुनः सुनिष्ठा के पाये से बिना हो गये हैं। जैसे ही परमात्मा से छवि की आदि में मित्र शिक्षा की प्राप्ति से अचरोचर काज में बिना होते पाये ॥

स पूर्वोपामपि गुरु काकोनामयकलेवात् ॥ योग स समधिपदे स २६ ॥

जैसे वर्तमान समय में हम लोग आत्माओं से एक ही के बिना होते हैं जैसे परमेश्वर छवि के कारण में उत्पन्न हुए अग्नि आदि जड़ियों का एक आर्थात् परमात्मा है क्योंकि जैसे जीव सुनिष्ठा और प्रलय में जड़ रहित हो जाते हैं वैसा परमेश्वर भी होता। उक्तका ज्ञान शिक्षा है। इसलिये यह विहित आत्मना आदि कि बिना विहित से निर्मितक कार्य सिद्ध कमी नहीं होता ॥

प्र०—वेद संसृष्ट भाषा में प्रकाशित हुए और वे अग्नि आदि जड़ों को एक संसृष्ट भाषा को नहीं जाते वे फिर वेदों का कार्य बन्दोवे कैसे आया ?

उ०—परमेश्वर ने जगत्मा और वर्तमाना योगी महर्षि कोम जब १ क्रिस् २ के कार्य के आने की इच्छा करके आनाशक्ति हो परमेश्वर के स्वल्प में समाधिस्थ हुए तब १ परमात्मा ने अमीह मन्त्रों के कार्य जगत्मा। जब बहुरी के आत्मा में वेदाय प्रकाश हुआ तब जड़ सुनिष्ठा ने वह कार्य और जड़ सुनिष्ठा के इतिहास पूर्वक प्रत्यक्तवाये। उक्तका नाम आद्यत्मा आर्थात् प्रत्यक्ष वेद उसका आत्मा प्रत्यक्ष होवे से आद्यत्मा नाम हुआ। और—

श्रुपयो (मंत्रप्रपद्य) मन्त्रप्रसरमात् । विद १।१ ॥

जिस १ मन्त्रार्थ का दर्शन जिस १ जड़ को हुआ और प्रथम ही जिस के पहले उस मन्त्र का कार्य किसी ने प्रकाशित नहीं किया और दूसरी को पढ़ाया भी इसलिये अद्यावधि उक्त १ मन्त्र के साथ जड़ों नाम स्मरणापेक्षा किया जाता है। जो कोई जड़ियों को मन्त्रकर्ता कहतावे उनको मिथ्यावादी समझे। वे जो मन्त्रों के कार्यप्रकारक हैं ॥

प्र०—वेद किस मन्त्रों का नाम है ?

उ०—यह बहुत नाम और प्रथम मन्त्र संहिताओं का जन्म का नहीं है

॥ काश्यायस्य ईश्वर्य का नहीं पुस्तकाय का था ॥

इस उपनिषद् का वचन है। इस वचन से महात्माजी के हृदय में कहीं का उपदेश किया है। फिर अमृतवादि कापिणियों के आश्रम में क्यों गया ?

३०—ब्रह्म के अग्रिम में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया, देखो।
मनु के रूप किन्ना है—

अग्निवायुरविभ्यस्तु षडं द्रव्यं सनातनम् ।

तुदोह यदसिखधर्मसूय्यह सामसस्यम् ॥ मनु १।१८८॥

जिस परम्परा में आदि शक्ति हैं मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि अग्नि चरों महीनों के द्वारा चरों वेद अग्नि को प्राप्त करावे और उस अग्नि से अग्नि वस्तु अग्नि और अग्नि से अग्नि और अग्नि का अग्नि वस्तु ।

प्र०—इस खरी हो में वेद का सम्बन्ध किना अन्त में खरी इससे ईश्वर पक्षपाती होता है ॥

४०—वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रता से इच्छासे पवित्र किए जा सकते हैं ।

प्र०—किसी संस्थावा में कौनों का प्रभाव न करके संसद में क्यों किया ?

४०—जो किसी देश-मित्रता में प्रवृत्त करता वो ईश्वर पक्षपाती हो जाता क्योंकि जिस देश की मित्रता में प्रवृत्त करता उसको सुप्रसन्न और मित्रियों को कार्यक्षमता बर्दा के पक्ष में पक्ष में की होती इसलिये संकट ही में प्रवृत्त किया जो किसी देश की भाव नहीं। और देश-मित्रता सब सब मित्रताओं का कारण है। इसी में क्यों का प्रवृत्त किया। जैसे ईश्वर की प्रीति आदि छवि सब देश और देश-मित्रता के लिये प्रवृत्त और सब मित्रताओं का कारण है जैसे परमेश्वर की प्रीति की भाव भी प्रवृत्त होती आदि कि सब देश-मित्रताओं को पक्ष में पक्ष में में मुख्य परिणत होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता। और सब मित्रताओं का कारण भी है।

प्र०—वेह हंमर कृत है कल्प कृत नहीं इसमें क्या मतलब !

३०—जैसा ईश्वर पवित्र सर्वव्यापक, दृढगुणधर्मस्वरूप, अचरणीय, अपाह्न अपादि गुण बाध है वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण धर्म स्वभाव के अनुकूल कथन हैं वह ईश्वरकृत ग्रन्थ नहीं और जिस में पछिक्म प्रत्ययों, प्रसङ्गों के और पवित्रता के व्यवहार से किन्तु कथन न हो वह ईश्वरीय । जैसा ईश्वर का विर्मम ज्ञानवैद्या जिस पुस्तक में अनिश्चित ज्ञान का प्रतिपादन हो वह ईश्वरीय जैसा परमेश्वर है और जैसा पछिक्म स्वभाव है वैसा ही ईश्वर पवि, कर्म करण और जीव का प्रतिपादन जिस में होने वह परमेश्वरीय पुस्तक होता है और जो प्रत्ययों प्रसङ्गों से किन्तु दृढगुण के स्वरूप से किन्तु न हो वह ईश्वर के वैद्य हैं । कल्प बाधक, दृढगुण अपादि पुस्तकें नहीं । इन्हीं सब अन्तर्गत बाधक और दृढगुण के अन्तर में से रहें और ओहमें समझमें ही की जाननी ॥

प्र०—वेद को ईश्वर से होने की आवश्यकता प्रमाण भी नहीं क्योंकि मनुष्य कोय भ्रमणः स्वयं कहते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेते ॥

उ०—कमी नहीं बना सकते, क्योंकि बिना कर्मण के कार्बोमिनि का होना प्रसङ्गमय है । जैसे बड़की मनुष्य सृष्टि को देखकर भी बिहान् नहीं होते और जब उनको कोई शिचक मिला जाय तो बिहान् हो जाते हैं और जब भी किसी से पड़े बिना कोई भी बिहान् नहीं होता । इस प्रकार जो परमात्म्य जब चादि सृष्टि के ऋषियों को देखकर न पड़ता और वे जन्म को न पड़ते तो सब लोग भविहान् ही रह जाते । जैसे किसी के बालक को जन्म से पृथग्गत देखा भविहान् का पशुओं के दंग में रहा रहे तो वह बीछा संग है बिता ही हो जायगा । इसका रहान्त बड़की भीछा चादि हैं । जबतक कार्बोमर्त देखा से शिचा नहीं गई भी तबतक मिया भूषण और भूरोप देखा चादिक मनुष्यों में कुछ भी मिया नहीं हुई भी और इहोवन्द के कुहाम्कत * चादि पुरुष अमेरिका में जब तक नहीं गये वे तब तक वे भी सरसों काहीं कोकों वपों से मूर्ख अर्थात् विद्याहीन वे पुनः सुविद्या के पावे से बिहान् हो गये हैं । जैसे ही परमात्मा से सृष्टि की चादि में मिया शिचा की म्रप्ति से उत्तरोत्तर काय में बिहान् होते जाये ॥

स पूर्वेयामपि गुरु कार्बोमर्तमप्यदेदात् ॥ पाम स समप्रिपारे स २६ ॥

जैसे वज्रमय सम्य में इस लोग अन्धकारों से एक ही के बिहान् होते हैं जैसे परमेवर सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए चादि चादि ऋषियों का एक अर्थात् परामेवरा है क्योंकि जैसे जीव सुपुष्टि और प्रकृष में जाय रहित हो जाते हैं वैसे परामेवर नहीं होता । उक्तका ज्ञान मिका है । इसलिये वह विभिन्न जायना पाहिये कि बिना विमिक्त से विमिक्त कार्य सिद्ध कमी नहीं होता ॥

प्र०—वेद संस्कृत भाषा में प्रकथित हुए जीव के चादि चादि ऋषि लोग उस संस्कृत भाषा को नहीं जानते वे फिर कैसी का कार्य उन्होंने कैसे ज्ञाया ?

उ०—परमेवर ने ज्ञाया और अमोय्या योगी महर्षि कोना जब १ क्रिस्त २ के कार्य के ज्ञाने की इच्छा करे ज्ञानाधिकृत हो परमेवर के स्वकर्म में समाधिक्य हुए तब २ परमात्मा ने अनीह मन्त्री के कार्य ज्ञाये । जब वपुर्तों के ज्ञाना में वरार्थ प्रकथन हुआ तब चादि मुनिवों ने वह कार्य और चादि मुनिवों के इतिहास पूर्वक ज्ञान बकये । उक्तका नाम ब्राह्मण अर्थात् मद्रा जो वेद उक्तका ज्ञानात्मक ज्ञान होने से ब्राह्मण नाम हुआ । और—

अप्यपो (मंत्रवृत्त) मन्त्रात्मसगमात् । निव १ । २ ॥

त्रिष १ मन्त्रार्थ का दर्शन जिस २ चादि को हुआ और प्रथम ही त्रिष के पहले उस मन्त्र का कार्य किसी ने प्रकथित नहीं किया और दूसरों को पढ़ाया भी इसलिये अन्धविष उक्त २ मन्त्र के साथ चादि ज्ञान समरथाय किया जाता है । का कोई ऋषियों को मन्त्रकता बतसावे उक्तको सिखायाही समर्थ । वे तो मन्त्रों के कार्यप्रकारक हैं ॥

प्र०—वेद किस मन्त्रों का नाम है ?

उ०—यक् वहु, छान और अर्थ मन्त्र चरितार्थों का ज्ञान का नहीं ॥

* अन्धकार इहोवन्द का नहीं पूर्वजन्म का था ॥

प्र०—मन्त्रशास्त्रशुयोर्बेदनामधेयम् ॥

इत्यादि काव्यायवादि कृत प्रसिद्धा सूत्रादि का अर्थ क्या करोगे ?

उ०—वेदों संहिता पुस्तक के आरम्भ अन्त्य की समाप्ति में वेद सभावन से शब्द लिखा जाता है और शास्त्राय पुस्तक के आरम्भ का अन्त्य की समाप्ति में नहीं लिखा और लिखते हैं—

इत्यपि निगमो भवति । इति ब्राह्मणम् ॥ नि ष २ । अं २ । १ ॥

सुन्वोऽब्राह्मणानि च तस्मिन्प्राप्सि ॥ ब्राह्मण ४ । २ । १६ ॥

यह पाणिनीय सूत्र है । इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि वेद सभावन और शास्त्राय व्याख्या आग है । इसमें जो विशेष देखना चाहें तो मेरी बखर्क 'आवेदादिग्रन्थभूमिका' में देख लीजिये । वहाँ अवश्यता प्रमाणी से सिद्ध होने से यह वाक्य सत्य का प्रमाण नहीं हो सकता ऐसा ही सिद्ध किया गया है । क्योंकि जो माने तो वेद सभावन कभी नहीं हो सकते क्योंकि शास्त्राय पुस्तकों में बहुत से अति महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका ही उसके जन्म के पञ्चाङ्ग लिखा जाता है, वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पञ्चाङ्ग होता है । वेदों में किसी का इतिहास नहीं लिखते किन्तु शब्द २ शब्द से विदित का बोध होवे उस २ शब्द का प्रयोग किया है । किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा या विशेष कर्मा का प्रयोग वेदों में नहीं ॥

प्र०—वेदों की वितनी शाखा हैं ?

उ०—चारहों सचाईस ॥

प्र०—शाखा क्या कहती है ?

उ०—व्याख्यान को शाखा कहते हैं ॥

प्र०—संसार में बिनाह वेद के अवश्य भूत विषयों को शाखा मानते हैं ?

उ०—तमिः सा विचार करो तो सीक क्योंकि वितनी शाखा हैं वे आध्यात्मिक अथि अर्थों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मंत्रसंहिता परमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं । जैसे चारों वेदों को परमेश्वरकृत मानते हैं वैसे आध्यात्मिक अथि शाखाओं को उक्त १ अतिरुत मानते हैं और सब शाखाओं में मन्त्रों की प्रतीक चर के व्याख्या करते हैं जैसे तीर्थीय शाखा में "इष ज्योर्जे त्वेति" इत्यादि प्रतीक चर के व्याख्या किया है । और वेदसंहिताओं में किसी की प्रतीक नहीं बरी । इसलिये परमेश्वरकृत चारों वेद मूल मूल और आध्यात्मिक अथि सब शाखा अथि मुनि कृत हैं परमेश्वरकृत नहीं । जो इस विषय की विशेष व्याख्या देखना चाहें वे 'आवेदादिग्रन्थभूमिका' में देख लें । जैसे ज्ञाता पिता अपने समस्तों पर कृपावति कर उचित चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है जिससे मनुष्य अविद्याभवात् भ्रमजाल से बृत्कर विद्या विज्ञानकण सुख को प्राप्त हो आध्यात्मिक में रहें और विद्या तथा मुक्तों की इति कहते पायें ॥

प्र०—वेद किस हैं वा अविद्य ?

उ०—विद्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के विद्य होने से उसके अप्रमत्त गुण भी विद्य हैं। जो विद्य पदार्थ हैं उनके गुण कर्म स्वभाव नित्य और अविद्य द्रव्य के अविद्य होते हैं ॥

प्र०—क्या वह पुस्तक भी विद्य है ?

उ०—नहीं, क्योंकि पुस्तक तो पत्रे और स्याही का बना है वह विद्य कैसे हो सकता है ? किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं वे विद्य हैं ॥

प्र०—ईश्वर ने उन अविद्यों को ज्ञान दिया होगा और उस ज्ञान से उन लोगों ने वेद बना लिये होंगे ?

उ०—ज्ञान ज्ञेय के बिना नहीं होता, व्यवस्थादि सुन्द और पञ्चादि और वशात्पञ्चाद्यादि स्वर के ज्ञानपूर्वक व्यवस्थादि सुन्दों के निर्माण करने में सर्वश के बिना किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार सबज्ञानयुक्त शब्द बना सकें। हाँ, वेद को बनाने के पश्चात् व्याकरण विद्वत् और सुन्द आदि ग्रन्थ अपि सुविधों से विद्याओं के प्रकाश के लिये किये हैं। जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न कर तो कोई कुछ भी न बना सके। इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को बताना चाहिये और जो कोई किसी से पढ़ कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है हम उसको मानते हैं ॥

अब इसके आगे गृहि के विषय में लिखेंगे। यह संक्षेप से ईश्वर और वेदविषय में व्याख्यान किया है।

इति श्रीमद्भयानन्दसरस्वतीस्वामिकृत सत्यार्पणशाय सुभारायिभूषित
इन्धरयन्त्रविषय सप्तमं समुद्भासं सम्पूर्णं ॥ ७ ॥

अथाष्टमसमुद्घासारम्भ

अथ सुप्पुयुत्पत्तिस्थितिप्रज्ञयविषयान् व्याख्यास्यामः

इय विसृष्टिर्पत आत्मभूष यदि वा दुष्टे यदि वा न ।

यो अस्पर्ध्वः परमे व्योमन्सो अक्ष वेद यदि वा न वेद ॥ १ ॥

तम आसीद्यमसा गुल्ममग्रेष्पकेत सलिल सर्षपा इवम् ।

तुल्यधेनाम्बपिहित यदासीत्तर्पसस्तन्महिनाज्जायतेकम् ॥ २ ॥

ज. सं. १।सू. १२३।मं० ७।३।

हिरण्यगर्भः समवसत्ताम्रे भूतस्य जातः पतिरेकं आसीत् ।

स दाक्षर पृथिवीं धामतेमां कस्मै देवस्य इविषां विधेम ॥ ३ ॥

५ मं १ । सु १२१ मं १ ॥

पुरुषऽष्टवेदः सर्वं यत् भूत यत् माण्यम् ।

उत्तामृतस्वस्पेशानो यदभेनातिराहति ॥ ४ ॥ अथ च ३१ अं ३ ॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन व्यतानि जीवन्ति ।

यत्प्रयत्नस्यमिसंविश्रान्ति षड्विंशतिस्तत् तद्वत् ॥ ५ ॥

हेचिरीशेषमि नृपवर्मा । अष्ट १ ॥

हे (भक्त) मनुष्य ! जिससे यह विविध सृष्टि सम्पन्नित हुई है जो आत्म और प्रलय करता है जो इस जगत् का स्वामी जिस जगत् में यह सब जगत् उत्पत्ति किति प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है । उसके लक्ष्य और दूसरे को प्रतिष्ठा मत् मात्र ॥ १ ॥ यह सब जगत् सृष्टि के पहिले आत्मक से जाग्रत साक्षिक में आने के अनन्त आत्मक जगत् सब जगत् तथा तुल्य अर्थात् आत्म परमेश्वर के सम्मुख प्रकटीत आत्मक जगत् परमेश्वर ने अपने आत्म से आत्मक से आत्मक कर दिया ॥ २ ॥ हे मनुष्यो ! जो सब सृष्टि के स्वामी परमेश्वर का आचार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था और जिसने प्रकृति से लेके सर्व परमेश्वर को उत्पन्न किया है उस परमात्मेश्वर की प्रेम से प्रकृति किया करें ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो ! जो सब में सर्व प्रलय और जो अद्वितीय स्वामी और जीव का स्वामी जो प्रकृति के सब और जीव से अद्वितीय है वही प्रलय इस मूल अविनश्य और सर्वमान्य जगत् को बनाने वाला है ॥ ४ ॥ जिस परमात्मा की रचना से वे सब प्रकृति के मूल उत्पन्न होते हैं जिससे जीव और जिसने प्रलय को प्राप्त होते हैं वह सब है उसके आने की इच्छा करो ॥ ५ ॥

अस्माद्यस्य यत् ॥ शरीरिणं च ॥ १ ॥ पा १ ॥ सू २ ॥

विद्यते इत्तं अस्मात् का जन्म विधि और प्रलय होता है वही मनुष्य मानने योग्य है ॥

प्र०—यह अस्मात् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है का अर्थ से ?

उ०—विभिन्न कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है ॥

प्र०—क्या प्रकृति परमेश्वर से उत्पन्न नहीं की ?

उ०—वही यह अर्थात् है ॥

प्र०—अर्थात् किसीको कहते और कितने प्रकारों अर्थात् हैं ?

उ०—ईश्वर जीव और अस्मात् का कारण वे तीन अर्थात् हैं ॥

प्र०—इसमें क्या अर्थ है ?

उ०—इह सुपर्णा सयुजा सखाया समानं ब्रह्म परि पश्यताते ।

तयोरन्यः पिप्पलु स्वाद्वर्यनभसून्यो अमि वाक्सीति ॥ १ ॥

क मं १ ॥ सू १९७ ॥ मं २ ॥

शाश्वतीभ्यः समीभ्यः ॥ २ ॥ ब्रह्म च ४ ॥ मं ८ ॥

(हा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) जेतकता और पाखवादि पक्षी के समान (सयुजा) व्यापक व्यापक मात्र से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रता-पुत्र समस्त अर्थात् हैं और (समानम्) वसा ही (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्म रूप कारण और शाश्वत रूप अर्थात् ब्रह्म अर्थात् जो स्थूल होकर अक्षय में स्थित स्थित होकर है यह तीसरा अर्थात् पक्षी इह तीनों के गुण कार्य स्वभाव भी अर्थात् हैं । इह जीव और ब्रह्म में से एक को जीव है यह इस ब्रह्म रूप संसार में पाव पुण्य रूप फलों को (स्वाद्वर्य) अच्छे प्रकार जोयता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अक्षय) व भोग्य हुआ * चरों और जलों भीतर बहकर अर्थात् अक्षयमान होता है । जीव से ईश्वर ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वल्प तीनों अर्थात् हैं ॥ १ ॥ (शाश्वती) अर्थात् अर्थात् अक्षय जीव रूप अक्षय के बिना वेद द्वारा परमात्मा से सब विद्याओं का वीर किया ॥ २ ॥

अत्रामेकां काद्विठराकृष्णं पक्षीं प्रजां सृजमानां स्वरूपा ।

अत्रो होकी सृजमानां सृजते अत्रास्तेनां मुक्तभोगामत्राभ्यः ॥

अत्राभ्योपविचरि । क ३ ॥ मं २ ॥

यह उपनिषद् का अर्थ है । प्रकृति जीव और परमात्मा तीनों एक अर्थात् विद्यका अर्थ कभी नहीं होता और न कभी वे अर्थ को अर्थात् वे तीनों सब अस्मात् के कारण हैं । इनका कारण कोई नहीं । इस अर्थात् प्रकृति का भोग अर्थात् जीव करता हुआ अर्थ है और उन्हीं परमात्मा व ईश्वर और न अक्षय भोग करता है । ईश्वर और जीव का अर्थ ईश्वर विद्यका में यह अर्थ । सब प्रकृति का अर्थ विद्यका है—

* (धनिकाकृषीति)

सरवरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारात्
पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति
पञ्चविंशतिर्निष्ठा । साङ्ख्यसूत्रं अ. १। सू. ११ ॥

(धर्म) शुद्ध (तन्मात्र) मन्त्र (तन्मात्र) बाह्य धर्मोत्पत्ति ब्रह्म तीव्र बल
मिथ्या को एक संशय है उक्तम नाम प्रकृति है । उस से महत्त्व बुद्धि, कर्षण
अहङ्कार इससे पाँच तन्मात्रा सुक्ष्मभूत और दश इन्द्रियां तथा अहङ्कार मय
पाँच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पाँच भूत ये बीबीस और पचीसवां पुरुष वर्णोत्पत्ति
और और परमेश्वर है । इनमें से प्रकृति अनिर्वर्तनी और महत्त्व अहङ्कार
तथा पाँच सुक्ष्म भूत प्रकृति का कर्म और इन्द्रियां मय तथा स्थूल भूतों का
कर्म है । पुरुष न किसी को प्रकृति उपद्रव्य करण और न किसी का कर्म है ॥

प्र०—सर्वेण सोम्येवमप्र आसीत् ॥ १ ॥ वां य १। १०० १। मं १ ॥

असत्त्वा इवमप्र आसीत् ॥ २ ॥ तैत्तिरीयोपनि ब्रह्मसूत्रं अ. १।

आत्मेवेवमप्र आसीत् ॥ ३ ॥ ब्रह्म अ. १। मा १ मं १॥

ब्रह्म वा इवमप्र आसीत् ॥ ४ ॥ सत कं ११। य २। मा ३। कं १ ॥

ये उपनिषदों के वचन हैं । हे भक्तों ! यह जगत् सृष्टि के पूर्व सत् ॥ १ ॥

असत् ॥ २ ॥ आत्मा ॥ ३ ॥ और ब्रह्मस्वरूप वा ॥ ४ ॥ परमेश्वर—

तदैक्षत ब्रह्म स्यां प्रज्जयेयेति । सोऽकामयत ब्रह्म स्यां प्रज्जयेयेति ॥

तैत्तिरीयोपनि ब्रह्मसूत्रं अ. १।

वही परमात्मा जगदी इच्छा से ब्रह्म ॥ सत् है ॥

सर्वे अद्विष्टं ब्रह्म जेह्मा नामास्ति किञ्चन ॥

यह भी उपनिषत् का वचन है । जो जगत् है वह सब विभक्त करके ब्रह्म है

इसमें दूसरे नामा प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु एक ब्रह्म है ॥

उ — क्यों इन सबकी का कार्य करते हो ? क्योंकि वही उपनिषदों में—

एवमेव ब्रह्म साम्यान्तेन शुद्धेनापो मुखमन्विच्छन्नित्सोम्य ! शुद्धेन

तेजो मुखमन्विच्छन्नित्सोम्य ! शुद्धेन सम्मुखमन्विच्छन्नित्सोम्य !
सोम्येव सत्त्वां प्रजा सदापतन्ता सत्प्रतिष्ठा ॥

आन्तेन उपनि म. १। पं. ८। मं. ४ ॥

हे भक्तों ! ब्रह्म रूप शुद्धि कर्म से ब्रह्म रूप मुखकारण को शुद्ध ॥

कर्मरूप ब्रह्म से तेजो रूप मुख और तेजो रूप कर्म से धर्म रूप करण को विश
प्रकृति है उसको जान । वही सम्मुख रूप प्रकृति धर्म जगत् का मुख पर और
स्थिति का कारण है । यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व जगत् के पदार्थ और बीज रूप
ब्रह्म और प्रकृति में बीज होकर वर्तमान का धर्म न का । और जो (सर्वब्रह्म)
यह वचन देता है मैसा कि कहीं की ईद कहीं का रोषा भवमयी मे कुछ
बोधा' देखी बीजा का है क्योंकि—

सर्वे अद्विष्टं ब्रह्म तज्जगामिति शाण्ड उपानीत ॥

आन्तेन म. ३। पं. १०। मं. १ ॥

और—

मेह मातास्ति किञ्चन ॥ कडोपनि अ २ । बह्वी ४ । मं ११ ॥

कैसे शरीर के घाव जब तक शरीर के घाव रहते हैं तब तक कर्म के घोर घाव होने से निकलने हो जाते हैं। कैसे ही प्रकरणात्मक कल्प सार्थक घोर प्रकरणा से घाव करने का किसी जन्म के साथ जोड़ने से सम्बन्ध हो जाते हैं। सुखो इष्टकर्म यही है। हे जीव ! तु मर्यादा की उपासना कर जिस मर्यादा से जगत् की उत्पत्ति स्थिति और जीवन होता है जिसके बगले और धारण से वह सब जगत् नियन्त्रित हुआ है या मर्यादा से सहचरित है उसको जोड़ बंधने की उपासना न करनी। इस चेतनमात्र अत्यधिकतर मर्यादा में बंधा वस्तुओं का मेह नहीं है किन्तु वे पृथक् २ स्वयं में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं।

प्र०—कर्म के कारण कितने होते हैं ?

उ०—तीन एक विभिन्न दूसरा उपादान तीसरा साधनत्व। विभिन्न कारण उसको कहते हैं कि जिसके बगले से कुछ बने न बगले से न बने। घाव स्वयं बने नहीं दूसरे को प्रकरणांतर बंधा लेने। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने वही प्रकरणांतर रूप होने के लिए और कितने भी। तीसरा साधनत्व कारण उसको कहते हैं कि जो बगले में साधन और साधनत्व विभिन्न हो। विभिन्न कारण दो प्रकार के हैं। एक—सब वृद्धि को कारण से बगले धारण और प्रदान करने तथा सब की व्यवस्था रखनेवाला मुख्य विभिन्न कारण परमात्म। दूसरा—परमेश्वर की वृद्धि में से पदार्थों को लेकर प्रकरणांतर बगले बंधा साधनत्व विभिन्न कारण जीव। उपादान कारण प्रकृति परमात्मा जिसको सब संसार के बगले की समझी कहते हैं वह जब होव से घावसे जब घाव न बने और न विग्रह सकती है किन्तु दूसरे के बगले से बगली और विग्रहने से विग्रही है। कहीं २ जब के विभिन्न से जब भी बने और विग्रह भी जाता है। जैसे परमेश्वर के स्थित जीव पृथिवी में धरने और सब पदार्थ से वृद्धिकार हो जाते हैं और अग्नि वायु जल के संयोग से विग्रह भी जाते हैं परन्तु इनका विग्रहपूर्वक बगला या विग्रहना परमेश्वर और जीव के आधीन है। जब कोई वस्तु बगल में जाती है तब जिस २ साधनों से प्रकृति ज्ञान इष्टकर्म, सब वृद्धि और धारण प्रकार के साधन और दिया सब और आत्मसाधनत्व कारण कैसे धरे को बगलेवाला प्रकृति विभिन्न मही उपादान और इष्टकर्म वायु विग्रह सामान्य विभिन्न दिया सब आत्मसाधनत्व प्रकृति धारण, सब विग्रह वायु विभिन्न साधनत्व और विभिन्न कारण भी होते हैं। इस तीन कारणों के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न विग्रह सकती है।

प्र०—बहीन वृद्धि जोर केवल परमेश्वर ही को जगत् का अग्रिम विभिन्नोपादान कारण मानते हैं—

पर्यायनामिः सुखतं गृह्णत एव ॥ मुचक्यो सु १ । अं १ । मं ७ ॥

वह उपविग्रह का बचन है। जैसे मकरी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती अपने ही में से तन्तु विग्रहना बगला बगलकर घाव ही उसमें लेकती है ऐसे मर्यादा अपने में से जगत् को बना घाव जगत्कार बन घाव ही जोड़ कर रहा है। दो

मग्न इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं बहुत-से धनोत्पन्न होऊँ
संस्कारमात्र से सब जगत्सम बन गया क्योंकि—

आवावन्तं च यथास्ति वर्तमानंऽपि तत्तथा ॥ गौडप्रदीप का प्रो ३१ ॥

यह मान्यहोपनिषद् पर करिष्य है जो प्रथम में हो अन्त में व रहे वह
वर्तमान में भी नहीं है किन्तु सृष्टि की भाँति मैं जगत् व या मग्न था । प्रथम के
अन्त में संसार व रहेगा और केवल मग्न रहेगा तो वर्तमान में सब जगत् मग्न
क्यों नहीं ?

उ०—जो तुम्हारे कहने अनुसार जगत् का उपादान करता मग्न होवे तो
यह परिवर्तनी प्रत्यक्षानुभव सिद्ध होजावे । और उपादान करता के गुण
कर्म स्वभाव कर्म में भी पाते हैं—

कारणगुणपूर्वकं कार्यगुणो दृष्टः ॥ कैते च २। भा १। सू ११ ॥

उपादान करता के कारण कर्म में गुण होते हैं तो मग्न सच्चिदानन्दस्वरूप
कारणकर्मरूप से जगत् का और व्याप्यरहित मग्न सब और जगत् जगत्
हुआ है, मग्न प्रत्यक्ष और जगत् इतना है मग्न प्रत्यक्ष और जगत् कर्मरूप है जो
मग्न से प्रविण्णादि कर्म उत्पन्न होते तो प्रविण्णादि में कर्म के जगत् गुण मग्न
में भी होते जगत् जैसे प्रविण्णादि जगत् है वैसा मग्न भी जगत् हो जाय और वैसा
परमेश्वर केवल है वैसा प्रविण्णादि कर्म भी केवल होगा क्योंकि । और जो मकरी का
प्रत्यक्ष विना वह तुम्हारे मत का साक्ष्य नहीं किन्तु साक्ष्य है क्योंकि वह जगत्
सारी जगत् का उपादान और जीवन्मा विमिश्र करता है और वह भी परमात्मा
की प्रत्यक्ष रक्षा का प्रमाण है क्योंकि जगत् जगत् के लीन से जीव जगत् नहीं
किन्तु जगत् । जैसे ही व्यापक मग्न से अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और
परमात्मा करता से स्पष्ट जगत् को जगत् काहर स्पष्टकर कर आप उसी में
व्यापक होने लायीमूल व्याप्यमग्न हो रहा है और जो परमात्मा से ईश्वर जगत्
वर्तव्य विचार और कामना की कि मैं सब जगत् को जगत् प्रसिद्ध होऊँ जगत्
जगत् जगत् उत्पन्न होता है सभी जीवों के विचार जगत् व्याप्य उपदेष्टा जगत्
में परमेश्वर प्रसिद्ध और बहुत स्पष्ट जगत् से सब वर्तमान होता है । सब प्रमाण
होता है सब परमेश्वर और मुक्त जीवों को जो जगत् के उत्पन्न को नहीं जानता ।
और जो वह करिष्य है वह प्रमाणक है क्योंकि सृष्टि की भाँति जगत् जगत्
में जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टि के अन्त जगत् मग्न के प्रारम्भ से सब जगत्
बूझी कर सृष्टि न होगी तब तक भी जगत् का करता स्पष्ट होकर प्रसिद्ध
रहता है क्योंकि—

तर्मासीधर्मता गूढहर्म ॥ च म १ १ सू १२१। य ३ २

आसीधर्म तमोभूतमप्रकृतमकृतम् ।

अप्रकृतमविशेषं प्रकृतमिव सर्वतः ॥ मनु १। २ ॥

यह सब जगत् सृष्टि के पहले प्रमाण में प्रमाण्य से प्रकृत व्याप्यरहित
का और प्रकृतमग्न के प्रमाण भी वैसा ही होता है । उस समय व किसी का

आवने व लक्ष में आने और व प्रसिद्ध चिह्नों से मुक्त इन्द्रियों से जानने योग्य था और व होया किन्तु वस्तुमात्र में जाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नों से मुक्त जानने के योग्य होता और ब्रह्मात् उपलब्ध है । पुनः उस व्यक्तिकार के वर्तमान में भी जगत् का अभाव जितना सो धर्मका अभाव है क्योंकि जिसका प्रमाणा प्रमाणा से बाधता और प्राप्त होता है वह अभावका कमी नहीं हो सकता ॥

प्र०—जगत् के बचाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है ?

उ०—यही बचाने में क्या प्रयोजन है ?

प्र०—जो व बचता तो आपत्ति में बच रहता और जीवों को भी मुक्त हुआ प्राप्त व होता ॥

उ०—यह आकाशी और दृष्टि योगों की बातें हैं पुनः जीवों की बातें । और जीवों को प्रलय में क्या मुक्त का बुद्ध है । जो सृष्टि के मुख हुआ की मुक्तता की बात तो मुक्त कई गुणा अधिक होता और बहुत से परिघटनाओं की सृष्टि के साथ ही जो मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होता है । प्रलय में बिजने जैसे सुपुष्टि में पड़े रहते हैं ऐसे रहते हैं और प्रलय के पूर्व सृष्टि में जीवों के बिना पाप पुण्य कर्मों का फल ईश्वर के लक्ष्य में लक्ष्य और जीवों के लक्ष्य में लक्ष्य । जो तुम से कोई पक्ष कि जगत् के होने में क्या प्रयोजन है ? तुम यही कहते कि देवता । जो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान बल और क्रिया है उसका क्या प्रयोजन बिना जगत् की उत्पत्ति करने के दूसरा कुछ भी न कर सकता और परमात्मा के लक्ष्य, जगत् का क्या अर्थ गुण भी लक्ष्य लक्ष्य हो सकते हैं जब जगत् का बचाने । उसका अभाव सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति स्थिति, प्रलय और अवस्था करने ही से सम्भव है । जैसे वेद का स्वाभाविक गुण देवता है ऐसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को अस्तित्व प्रदान कर परमात्मा करवा है ॥

प्र०—बीज पहिले है या रूप ?

उ०—बीज क्योंकि बीज हेतु निदान निमित्त और कारण इत्यादि सब प्रकारके हैं । कारण का नाम बीज होने से कार्य के प्रथम ही होता है ॥

प्र०—जब परमेश्वर स्रष्टात्मा है तो वह कारण और बीज को भी उत्पन्न कर सकता है । जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता ॥

उ०—सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ पूर्व जितना जाना है । परन्तु क्या सर्वशक्तिमान् वह कहता है कि जो सामर्थ्य बात को भी कर सकता है जो कोई सामर्थ्य बात अर्थात् जितना कारण के बिना कार्य का कर सकता है तो बिना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति और स्वयं सृष्टि को प्राप्त, जब दुर्गा सम्बन्धकारी अपवित्र और कुकर्मों का हि हो सकता है या नहीं ? जो स्वाभाविक विषय अर्थात् जितना अर्थ जितना शीतल और शिष्टादि सब जनों को विपरीत गुणधर्म ईश्वर भी नहीं कर सकता । और ईश्वर के बिना सब और पुर है इत्यादि परिवर्तन नहीं कर सकता । इत्यादि सर्वशक्तिमान् का अर्थ इत्यर्थ है कि परमात्मा बिना किसी के अभाव के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है ॥

मूखं मूलाभावात्तूष्णं मूखम् ॥ ७० ॥ सू अ १ । सू १० ॥

मूख का मूख अर्थात् कर्ण नहीं होता । इससे अकारण सब कर्णों का कर्ण होता है क्योंकि किसी कर्ण के आरम्भ क्षण के पूर्व तीनों कर्ण अकारण होते हैं जैसे कर्ण के पूर्व तन्मुख है वही का श्रुत और अधिक यदि पूर्व वर्तमान होने से वह बनता है जैसे कर्ण की उत्पत्ति के पूर्व परमेस्वर, प्रकृति का और आकाश तथा जीवों के अवाधि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है । यदि हममें से एक जीव हो तो कर्ण भी न हो ॥

अथ नास्तिका आहुः—शून्यं तत्त्वं भावो विवक्ष्यति

वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ॥ १ ॥ शून्य सू अ १ । सू ११ ॥

अभावसमावेश्यत्तिर्नानुपसृष्टा माहुर्मावात् ॥ २ ॥

इन्धनः कात्स्न्यं पुण्यकर्माफल्यदर्शनात् ॥ ३ ॥

अनिमित्ततो मावोत्पत्तिः कष्टकृतव्यपादिकर्शनात् ॥ ४ ॥

सर्वमस्तिमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥ ५ ॥

सर्वं नित्यं पञ्च भूतनिरुत्थात् ॥ ६ ॥

सर्वं पृथग् मायकक्षिणपृथक्त्वात् ॥ ७ ॥

सर्वमभावो मावधितरतरमावसिद्धः ॥ ८ ॥

शून्य सू अ ७ । आ १ । सू १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० ॥

यहां नास्तिक लोग ऐसा कहते हैं कि शून्य ही एक पदार्थ है । यदि के पूर्व शून्य या अन्त में शून्य होगा क्योंकि जो माव है अर्थात् वर्तमान पदार्थ है उसका अभाव होकर शून्य हो जगत् ॥

उ०—शून्य आकाश अथवा अकारण और विन्दु को भी कहते हैं । शून्य वह पदार्थ । इस शून्य में पदार्थ अथवा रहते हैं । जैसे एक विन्दु से रेखा रेखाओं से कुंआकार होने से भूमि पर्वतदि ईश्वर की रचना से बनते हैं और शून्य का कान्ते काया शून्य नहीं होता ॥ १ ॥

हमारा नास्तिक—अभाव से अन्त की उत्पत्ति है, जैसे बीज का मर्दन जिसे बिना धंजुर उत्पन्न नहीं होता और बीज को तोड़ कर दूधें या धंजुर का अन्तर्ग है । वह प्रथम धंजुर नहीं दीखता या तो अभाव से उत्पत्ति हुई ॥

उ०—जो बीज का उपमर्दन करता है वह प्रथम ही बीज में या जो व होता तो उत्पन्न कभी नहीं होता ॥ २ ॥

तीसरा नास्तिक—कहता है कि कर्मों का फल पुण्य क कर्म करने से नहीं प्राप्त होता । किन्तु ही कर्म विनाश देने से ही होते हैं । इसलिये अनुमान किया जाता है कि कर्मों का फल प्राप्त होगा ईश्वर क आधीन है । जिस कर्म का फल ईश्वर देना चाह देता है जिस कर्म का फल दया नहीं चाहता नहीं देता । इस अन्त से कर्मफल ईश्वराधीन है ॥

उ०—जो कर्म का फल ईश्वराधीन हो तो बिना कर्म किये ईश्वर फल क्यों नहीं देता ? इसलिये जैसा कर्म अनुष्ठान करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है ।

इससे ईश्वर स्वल्प ५ पुण्य को कर्म का फल नहीं दे सकता किन्तु वैसे कर्म बीज करता है वैसे ॥ फल ईश्वर देता है ॥ ३ ॥

चौथा नास्तिक—कहता है कि बिना विमिश्र क पदार्थों की सम्पत्ति होती है। वैसे क्यूब आदि वृत्तों के कठि तीक्ष्ण आधिकार्य देखने में आते हैं। इसमें विदित होता है कि जब १ छवि का आरम्भ होता है तब १ शरीरादि पदार्थ बिना विमिश्र के होते हैं ॥

उ०—अससे पदार्थ उत्पन्न होता है वही उत्पन्न विमिश्र है बिना कठोर वृत्त के कठि उत्पन्न क्यों नहीं होते ? ॥ ४ ॥

पाँचवाँ नास्तिक—कहता कि सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश कहे हैं इसलिये सब अविनाश हैं ॥

सूक्तार्चनं प्रवक्ष्यामि पतुर्लभं प्रत्यक्षोदितिम् ।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो द्यौश्च नापट् ॥

यह किसी ग्रन्थ का श्लोक है—कबीर वेदान्ती लोग पाँचवाँ नास्तिक को कोटि में हैं, क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि कौनों ग्रन्थों का यह सिद्धांत है ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या जीव ब्रह्म से मिल नहीं ॥

उ०—जो सब को मिथ्या कहता है तो सब अविनाश नहीं हो सकता ॥

प्र०—सब की निरालागी भी अविनाश है वैसे यदि कहीं को यह कर आप भी यह हो जाता है ॥

उ०—जो ब्रह्मसत् उपलब्ध होता है उसका वर्तमान में अविनाश और परमस्थान स्वरूप को अविनाश कहना कभी नहीं हो सकता। जो वेदान्ती लोग ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं तो ब्रह्म के सत्य होने से उसका कर्म्य असत्य कभी नहीं हो सकता। जो लोग ब्रह्म सत्योक्ति कहते हैं तो भी वही सब सकता क्योंकि कल्पका गुण है। गुण का प्रत्यक्ष नहीं और गुण ब्रह्म का प्रत्यक्ष नहीं रह सकता। जब कल्पना का कर्ता मिल है तो उसकी कल्पना भी मिल होती आदिये वही तो उसको भी अविनाश माने। जैसे लक्ष विना ऐसे सुने कभी नहीं आता जो अगूत अर्थात् वर्तमान समय में सब पदार्थ हैं उनके आकाश सम्बन्ध का प्रत्यक्ष ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात् उत्पन्न आकाशका ज्ञान आकाश में स्थित होता है लक्ष में उन्हीं को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे सुपुति होने से बाह्य पदार्थ का ज्ञान का अभाव में भी बाह्य पदार्थ विद्यमान रहते हैं जैसे प्रत्यक्ष में भी स्वरूप ब्रह्म वर्तमान रहता है, जो संस्कार के विना लक्ष होने तो अभाव का भी रूप का लक्ष होने। इसलिये वही उत्पन्न ज्ञानमात्र है और स्वरूप सब पदार्थ ब्रह्मत्व है ॥

प्र०—जैसे आकाश के पदार्थ लक्ष और दोनों के सुपुति में अविनाश हो जाते हैं वैसे अगूत के पदार्थों को भी लक्ष का प्रत्यक्ष ज्ञानवा आदिये ॥

३०—पूरा कभी नहीं मान सकत क्योंकि स्वयं और सुपुति में अथ पदार्थों का अग्रगण्यता होता है अग्रगण्य नहीं, जैसे किसी के पीछे की ओर बहुत से पदार्थ आरंभ करते हैं उनका अग्रगण्य नहीं होता जैसे ही स्वयं और सुपुति की बात है। इसलिये जो पूर्व कह आये कि महा जीव और जगत् का कारण अमादि निरा है वही सत्य है ॥ २ ॥

द्वय पाक्षिक—कहता है कि पांच भूतों के निरा होने से सब जगत् निरा है ॥

३०—बहु बात सत्य नहीं, क्योंकि जिस पदार्थों का उत्पत्ति और विनाश का कारण देखने में आता है वे सब निरा हों तो सब स्थूल जगत् तथा दृश्य अदृश्य पदार्थों को उत्पन्न और विनाश होते देखत ही हैं इससे अर्थ को निरा नहीं मान सकत ॥ ३ ॥

सत्त्ववादि पाक्षिक—कहता है कि सब पृथक् १ हैं कोई एक पदार्थ नहीं है जिस १ पदार्थ को हम देखते हैं कि उनमें दूसरा एक पदार्थ कोई भी नहीं होसकता ॥

३०—अर्थवादी में अथवा बर्तमानका अग्रगण्य परमत्मा और अति पृथक् १ पदार्थ सत्त्वों में एक १ है। उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं हो सकता। इसलिये सब पृथक् पदार्थ नहीं किन्तु स्वयं स पृथक् १ है और पृथक् २ पदार्थों में एक पदार्थ भी है ॥ ४ ॥

अग्रगण्य पाक्षिक—कहता है कि सब पदार्थों में इतरेतर अग्रगण्य की सिद्धि होने से सब अग्रगण्य है जैसे "अग्रगण्यो गो"। अग्रगण्य" पाप बोका नहीं और बोका पाप नहीं इसलिये सब को अग्रगण्य मानना चाहिये।

३०—सब पदार्थों में इतरेतराग्रगण्य का बोध हो परन्तु "गदि यन्निदृश्यान् भावरूपो बहव एव" पाप में पाप जाने में बोध का भाव हो है अग्रगण्य कभी नहीं हो सकत। जो पदार्थों का अग्र न हो तो इतरेतराग्रगण्य की किस में क्या जाने ? ॥ ५ ॥

अर्थवादि पाक्षिक—कहता है कि स्वयं स जगत् की उत्पत्ति होती है। जैसे पानी सब पृथक् हो सकने से कुमि उत्पन्न होते हैं। और बीच पृथिवी जल के निचले से आरंभ बुधदि और आकाशदि उत्पन्न होते हैं जैसे समुद्र वायु के बीच वायु और तल्लों से समुद्रजल, इसी वायु और नीचे के रस मिश्रित से रोरी बन जाती है जैसे सब जगत् तल्लों के स्वयं गुणों से उत्पन्न हुआ है। इसका अर्थ वादा कोई भी नहीं ॥

३०—जो स्वयं से जगत् की उत्पत्ति होवे तो विनाश कभी न होवे और जो विनाश भी स्वयं से मानो तो उत्पत्ति न होगी और जो दोनों स्वयं पृथक् पृथक् में सम्मेलन तो उत्पत्ति और विनाश की व्यवस्था कभी न हो सकेगी। और जो विभिन्न के होने से उत्पत्ति और नाश सम्बन्ध तो विभिन्न उत्पन्न और विनाश होने वाले पृथक् स पृथक् मानना पड़ेगा। जो स्वयं ही से उत्पत्ति और विनाश होता तो समझ ही में उत्पत्ति और विनाश का होना सम्भव

वहीं। जो स्वप्न से उत्पन्न होता हो तो इस सृष्टिको के विच्छेद में दूसरा भूमेव
कन्त्र सूर्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते? और जिस २ के बोध से जो २ उत्पन्न
होता है वह २ ईश्वर के उत्पन्न किये हुए बीच आकाश आदि के संयोग से
पास हुए और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं बिना उसके नहीं। जैसे इसी पृथ्वी
और नीचे का रस दूध २ दूध से आकर आप नहीं मिलते। किसी के मिश्रण से
मिलते हैं। उसमें भी वधायोम मिश्रण से होती होती है अधिक मूल्य का
अन्वय करने से होती नहीं होती जैसे ही प्रकृति परमात्माओं का ज्ञान और
शुक्ति से परमेश्वर के मिश्रण बिना एक पदार्थ स्वर्ण कृष्ण भी कर्णसिद्धि के बिना
विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिये स्वप्न आदि से सृष्टि नहीं होती। किन्तु
परमेश्वर की रचना से होती है ॥ २ ॥

प्र०—इस अणु का कर्ता कौन है और न होना किन्तु अणु आदि का
से वह जैसा का वैसा क्या है। न कभी इसकी उत्पत्ति हुई और न
कभी विनाश होगा ॥

उ०—बिना कर्ता के कोई भी क्रिया या क्रियात्मक पदार्थ नहीं बन
सकता। किन्तु प्रकृति आदि पदार्थों में संयोग विशेष रचना होखती है वे
अणु आदि कभी नहीं हो सकते और जो संयोग से बनता है वह संयोग के पूर्व
नहीं होता और संयोग के अन्त में नहीं रहता। जो तुम इसको न मानो तो
कठिन पदार्थ हीरा और फोहार आदि तोड़ टुकड़े कर मक्का का मसूर कर
देखो कि हमें परमाणु एम् २ मिले हैं या नहीं? जो मिले हैं तो समस्त पदार्थ
अणु २ भी अन्वय होते हैं ॥

प्र०—अणु आदि ईश्वर कोई नहीं किन्तु जो योगाभास से अविमर्श देखने को
मिल होकर सर्वज्ञादि गुणगुण केवल ज्ञानी होता है वही जीव परमेश्वर कहलाता है ॥

उ०—जो अणु आदि ईश्वर अणु का ज्ञान न हो तो साधनों से सिद्ध होने
वाले जीवों का आभार जीवमय अणु करीर और इन्द्रियों के योग्य कैसे
बनते? इनके बिना जीव साधन नहीं कर सकता। जब साधन न होते तो
सिद्ध कहा से होता? जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होने तो भी ईश्वर की
जो स्वर्ण साधन अणु आदि सिद्धि है जिसमें अणु सिद्धि है उसके द्वारा कोई
भी जीव नहीं हो सकता क्योंकि जीव का परम अणु एक ज्ञान बड़े तो भी
परिमित ज्ञान और सामर्थ्यवाला होता है। अणु ज्ञान और सामर्थ्यवाला
कभी नहीं हो सकता। देखो कोई भी बोधी आगतक ईश्वरकृत गृहिकम को
बदलने वाला नहीं हुआ है और न होगा। जैसे अणु आदि सिद्ध परमेश्वर के बोध से
देखने और कर्मों से सुबने का निष्कर्ष किया है इसको कोई भी बोधी बदल
नहीं सकता, जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता ॥

प्र०—अणु अणुमणु में ईश्वर सृष्टि विच्छेद २ बनता है अणु पृथ्वी?

उ०—जैसी कि अणु है वैसी पृथ्वी भी और ज्ञान होनी भ्रम नहीं करता—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमयो स्वः ॥ अ मं १० । सू १३ । मं ३ ॥

(धाता) परमेश्वर ने पहले पूर्व कल्प में सूर्य चन्द्र विष्णु, शिवी अमरिच आदि ब्रह्मने से पहले ही सब ब्रह्मने हैं और आये भी पहले ही ब्रह्मकेय । इन्द्रजिने परमेश्वर के काम बिना मूख बूढ़ के होने से सब एक से ही हुआ करते हैं । जो अल्पय और जिसका ज्ञान बुद्धि सब को प्राप्त होता है उसी के काम में मूख बूढ़ होती है, ईश्वर के काम में नहीं ॥

प्र०—सृष्टि विषय में वेदविद्याशास्त्रों का अविरोध है या विरोध ?

उ०—अविरोध है ॥

प्र०—जो अविरोध है तो—

तस्माद्वा पतस्मात्तस्मान् आकाशं सम्भूतं । आकाशाद्वायुं । वायोरग्निं । अग्नेरापं । अपूर्वम्यं पृथिवीं । पृथिव्या ओषधयः । ओषधिभ्योऽधमं । अधाद्रेतं । रतस्यं पुरुषं । स वा एव पुरुषोऽध्वरतमयः ॥

तैत्तिरीयोपनि ब्रह्मसंहिता अधु १ ॥

यह तैत्तिरीय उपनिषद् का बचन है । अब परमेश्वर और प्रकृति से आकाश अल्पकाल आया तो अल्पकाल ब्रह्म सर्वत्र फैल रहा था उसको इकट्ठा करने से अल्पकाल उपपत्ता होता है अतएव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि विषय आकाश के प्रकृति और परमात्मा कहां रह सके ? आकाश के पश्चात् वायु वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल जल के पश्चात् पृथिवी पृथिवी से ओषधि ओषधियों से घन जल से बीज बीज से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है । यह आकाशविषय काम से और अल्पकाल में अल्पकाल, ऐतरेय में जलविषय काम से सृष्टि हुई, वेदा में कहीं पुरुष कहीं हिरण्यगर्भ आदि से भीमांश में कम वैतेनिक काव न्याय में परमात्मा बोध में पुरुषार्थ धर्म में प्रकृति और वैदिक में सब से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है । अब किसीको क्या माले ?

उ०—इसमें सब धर्मने कोई कुरा नहीं । कुरा यह है जो विपरीत समझता है क्योंकि परमेश्वर विमिश्र और प्रकृति अमिश्र का उपादान करण है । जब महाप्रलय होता है उसके पश्चात् आकाशादि काम धर्मों का अल्पकाल और वायु का प्रलय नहीं होता और अल्पकाल का होता है । अल्पकाल काम से और जब विष्णु अग्नि का भी वाता नहीं होता तब जल काम से सृष्टि होती है अर्थात् विश्व १ प्रलय में जहां १ एक प्रलय होता है जहां १ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है । पुरुष और हिरण्यगर्भ आदि मध्यमसमुदास में विश्व भी आते हैं, वे सब काम परमेश्वर के हैं । परन्तु विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य में एक ही विषय पर विचार कर होवे । का शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है । भीमांश में 'प्रेम कोई भी कार्य अमिश्र में नहीं होता कि जिसके ब्रह्मने में कार्यवेष्टा व की आन' वैतेनिक में समग्र व काम बिना बने ही नहीं' न्याय में उपादान करण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता, पोष में विश्व ज्ञान विचार व किया

बाब तो नहीं बन सकता' धर्म में "तुम्हीं का मेला न होये तो नहीं बन सकता' और बेरान्त में 'बनानेवाला न बनाने तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके' इसलिये यहि पद' करणों से बनती है। अब प्रः करणों की व्युत्पन्न एक १ की एक १ शाख में है। इसलिये अब में विरोध कुछ भी नहीं। जैसे प्रः पुष्प मिट्टी के एक पुष्पर उत्पन्न मिट्टी पर धरे' वैसा ही यहिकर कर्म की व्युत्पन्न प्रः शाखकर्मों ने मिट्टी कर रही की है। जैसे पांच जन्म और एक सम्प्रति को किसी ने हाथी का एक १ देश मतलब। अबसे पूछा कि हाथी कैसा है? उनमें से एक ने कहा खंभे दूसरे ने कहा सूँघ तीसरे ने कहा सूँघ बनीये ने कहा मज्जू पाँचवें ने कहा चौतरा और छठे ने कहा कपड़ा १ बार लम्बों के ऊपर कुछ मैलासा आकार था है। इसी प्रकार आज कल के प्रचारों मनीष प्रचारों ने पक्षे और माकृत भाषा बाकों ने अधिपत्यित प्रत्येक व पक्षर कटीय बुद्धबुद्धिकरित संस्कृत और भाषाओं के प्रत्येक पक्षर एक दूसरे की निम्न में उत्पन्न होने के लिये यथाया मन्थना है। इस का कर्म बुद्धिमानों के वा प्रत्येक के भावने योग्य नहीं। क्योंकि जो प्रत्येक के पीछे प्रत्येक नहीं तो दुःख क्यों न पार्ने? जैसे ही आज कल के कर्म विष्णुका स्वर्गी इन्द्रियमय पुर्णों की सीखा संसार का भाग करकेवासी है।

प्र०—अब करण के बिना कार्य नहीं होता तो करण का करण क्यों नहीं?

उ०—धरे मोझे माइयो! कुछ अपनी बुद्धि को कर्म में क्यों नहीं करते? देखो संसार में दो प्रकार के होते हैं एक करण दूसरा कर्म। जो करण है वह कार्य नहीं और जिस समय कार्य है वह करण नहीं। अब तक मनुष्य यहि को बचाना नहीं समझता तब तक उसको बचाना बाव प्रस नहीं होता—

मिथ्यात्वां सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतकृत्यभानां परमसूक्ष्माणां पृथक् पृथक्वर्त्मभानां तत्त्वपरमायुधा प्रथमं संयोगारम्भं संयोगविशेषावस्थान्तरस्य स्मृत्ताकार्यासि स्तुष्टिरुच्यते ॥

अतदि मिथ्यावत्त्व सत्त्व रजस और तमोगुणों को पृथक्पृथक्वर्त्म प्रकृति से उत्पन्न की परमसूक्ष्म पुष्क १ वर्तमान तत्त्वपरमायुधा प्रथम है अर्थात् का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है। संयोग किसे? से अवस्थान्तर दूसरी १ अवस्था को सूच्य [से] सूक्ष्म १ वचने बचने विविधकर्म नहीं है इसी से यह संयोग होने से यहि कहाती है। अन्त जो प्रथम संयोग में मिट्टी और मिट्टीकेवा पदार्थ है जो संयोग का बाधि और विनोय का प्रत्येक वर्तमान विविधकर्म नहीं हो सकता उसको करण और जो संयोग के पीछे बचता और विनोय के पभाव वैसा नहीं रहता वह कार्य कहाता है। जो उस करण का करण कार्य का कार्य कर्ता का कर्ता प्राणन का प्राणन और प्राण का प्राण कहाता है, वह देवता कर्मा सुकृत बहिरा और बावता पुष्प मूल है। क्या प्राण की आँख दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है? जो जिससे उत्पन्न होता है वह करण और जो उत्पन्न होता है वह कार्य और जो करण की कार्यरूप बनावेवासी है वह कर्ता कहाता है ॥

नासतो विद्यते मासो नामासो विद्यते सत ।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिमि ॥ मन्मथीता अ २ । १९ ॥

कभी अस्तत् क धाम वर्तमान और सत् का अभाव अवर्तमान नहीं होता इस दासों का विचार तत्त्वदर्शी लोगों ने जाना है अन्य पक्षपाती आग्नेयी मन्मथप्रिया धर्मिष्ठ लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं ?

क्योंकि जो मनुष्य विद्वान् सत्संगी होकर पूरा विचार नहीं करता वह सदा भ्रमबद्ध में पड़ा रहता है । अन्य ने पुरुष हैं कि (जो) सब विषयों के विद्वान्तों को जानते हैं और ज्ञानने के बिने परिभ्रम करते हैं ज्ञानक दासों को निष्कपटता से जानते हैं । इससे जो कोई कारण के बिना सृष्टि मानता है वह कुछ भी नहीं जानता । जब सृष्टि का समय आता है तब परमेश्वर तब परमसूक्ष्म पदार्थों को इच्छा करता है । उसकी प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृतिकण कारण से कुछ स्पृष्ट होता है उसका नाम महत्त्व और जो उससे कुछ स्पृष्ट होता है उसका नाम अदृष्ट और अदृष्ट से निम्न २ पाँच सूक्ष्मभूत ओज तथा वेत जिह्वा प्रायः पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, काष् इत्य पान् उपम्य और गुण वे पाँच कर्म इन्द्रिय हैं और आरम्भों सब कुछ स्पृष्ट उत्पन्न होता है और तब पञ्चतन्मात्राओं से अनेक रसकणिकाओं को प्राप्त होते हुए कम से पाँच सूक्ष्मभूत जिसको हम ओम प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं । उनसे नाना प्रकार की ओषधियाँ, वृक्ष आदि उनसे सब सब से नीचे और नीचे से शरीर होता है । परन्तु आदि सृष्टि मीथुनी नहीं होती । क्योंकि जब जो पुरुषों के शरीर परमेश्वर ब्रह्माकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तबन्तर मीथुनी सृष्टि पकती है ॥

देखो ! शरीर में किस प्रकार की आकर्षक सृष्टि रही है कि जिसको विद्वान् ओम देखकर आश्चर्य मानते हैं । भीतर हाथों का जोड़ बाधियों का कन्धन मोस का छेपन कमड़ी का बदन ग्रीवा बद्धन केज्जा पंखा (हरण) कला का स्वरपन जीव का अशोचन शिराका मूत्ररचन ओम ब्रह्मादि का स्वरपन धान्य की पत्तीय सूक्ष्म (रक्षा) शिरा का तारक प्रत्यक्ष इन्द्रियों के अन्तों का प्रकटन जीव के अगून स्पष्ट मुपुष्टि अवस्था के योगने के बिने कणव वित्तों का दिमाक सब पानु का विनाशक कला कीमक क्यपनादि अद्भुत सृष्टि को बिना परमेश्वर के कैसे कर सकता है ? इसके सिवाय नाना प्रकार के रस धानु से अद्विष्ट भूमि, विविध प्रकार का वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना असम्प हरित भेत पीत कृष्ण विष मन्मथों से कुछ पत्र पुष्प कल मूत्रनिर्माण मिह, पत्र कृष्ण कलाप मिह अम्बादि विविध रस सुगन्धादि कुछ पत्र पुष्प कल कल कम्प मूत्रादि रचना अनेकानेक ओहो भूगोळ मूर्ध कद्रवि सोकविमोक्ष धन्य धन्य निषादों में रचना आदि परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता ॥

जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो ११ प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है । एक ईसा वह पदार्थ है जोर दूसरा उसने रचना देखकर ब्रह्मने ब्रह्म का ज्ञान है । ईसा किसी पुरुष ने सुन्दर आनन्दपद अज्ञान में पाया रक्षा तो विद्वान् दुष्ट कि वह सुख्य का है और किसी बुद्धिमान् कारीगर ने ब्रह्म

आप तो नहीं बच सकते।' सत्य में "तारी का मेक ब होने से नहीं बच सकता।' और वेदान्त में "बचानेवाला न बचाने तो कोई भी परार्थ उत्पन्न न हो सके।' इसलिये सति धुं करणों से बनती है। उन धुं करणों की व्याख्या एक १ की एक १ शास्त्र में है। इसलिये उन में विरोध कुछ भी नहीं। अंत धुं पुनः मिश्रके एक ऊपर बसकर मिश्रियों पर चरें बैठा ही सृष्टिरूप कर्म की व्याख्या धुं शास्त्रकर्मी ने मिश्र कर पूरी की है। अंत पांच ध्वने और एक मन्दरहि को किसी ने हाथी का एक १ रेश बतलाया। उनसे पूछा कि इसी कैसा है ? उनमें से एक ने कहा अंत बूतरे ने कहा सृष्ट तीसरे ने कहा सृष्ट चोथे ने कहा मन्द, पांचवें ने कहा चौतरा और छठे ने कहा कक्षा १ बार कौनों के ऊपर कुछ धियासा आकर आया है। इसी प्रकार आज कल के धर्मार्थ गरीब धर्मों के पदमे और प्राकृत मात्रा बाधों ने अधिपत्यित धर्म न पकर कभी नुसुनिकरित धर्मकृत और माधवों के धर्म पकर एक दूसरे की निम्न में उत्पन्न होके पूरा आकाश भराया है। इस का कर्म बुद्धिमानों के का धर्म के मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो धर्मों के पीछे धर्म चरें तो दुःख नहीं न पावें ? कैसे ही धर्म कल के धर्म विद्युत् स्थली इन्द्रियधर्म दुर्गों की जोका संसार का बाध करनेवाली है ॥

प्र०—अब करण के बिना कर्म नहीं होता तो करण का करण क्यों नहीं ?

उ०—अरे भोले भाइयो ! कुछ अपनी बुद्धि को काम में क्यों नहीं लाते ? देखो संसार में दो प्रकार के होते हैं एक करण दूसरा कर्म। जो करण है वह कर्म नहीं और जिस समय कर्म है वह करण नहीं। जब तक मनुष्य सति को बचाने नहीं समझता तब तक उसको बचाव ज्ञान प्राप्त नहीं होता —

विस्थाया सत्वरजस्तमसां साम्पायस्याया प्रकृत्यरूपद्राघ परमसूक्ष्मस्यां पृथक् पृथक् सत्मानां तत्परमसूक्ष्मां प्रथमं संयोगारम्भं संयोगविशेषावस्थान्तरस्य स्पृजाकारप्रतिष्ठे क्षुद्रिकमपते ॥

अगति निम्नवक्तु अतः तब ही तमोसूक्ष्मी को पृथक्पृथक् सत्त्व से उत्पन्न की परमसूक्ष्म पृथक् १ वर्तमान तत्त्ववक्तु विक्रमण है कहीं का प्रथम ही जो संयोग का प्रारम्भ है संयोग किण्वों से धनस्तान्त्र दूसरी १ प्रकृत्य को सृष्ट [से] स्पृजा १ बनते बनते विविक्तक नवी है इसी से वह धर्म होने से सति कहाती है। यथा जो प्रथम संयोग में मिश्रने और मिश्रनेवाला प्रकार है जो संयोग का अगति और किण्व का जन्म धर्मो विविक्त विविक्त नहीं हो प्रकृता वक्ष्ये करण और जो संयोग के पीछे कक्षा और किण्व के सम्पाद बैठा नहीं रहता वह कर्म कहाता है। जो वक्ष करण का करण कर्म का कर्म कर्ता का कर्ता साधन का साधन और धान्य का धान्य कहाता है वह देकता धर्म्य सुख्य बहिष और बाधता दुष्टा दुष्ट है। क्या बाध की बाध दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है ? जो मिश्रण इत्यत्र होता है वह करण और जो उत्पन्न होता है वह कर्म और जो करण की कर्मरूप बचानेवाला है वह कर्ता कहाता है ॥

मास्ततो विद्यत माधो मामाधो विद्यत सत ।

इमयोरपि दृष्टोऽन्तस्तथनयोस्तत्त्वदर्शिमि ॥ मन्मथीता अ १ । १६ ॥

कमी असत् क भाव वर्तमान और सत् का सम्भाव अवर्तमान नहीं होता इस दोनों का विषय तत्त्वदर्शी लोगों ने जाना है अन्य पक्षपाती धार्मिक मनीषाया अधिग्रह लोग इस बात को ध्यान में कैसे ला सकते हैं ?

क्योंकि जो मनुष्य विद्वान् सर्मग्री होकर पूरा विचार नहीं करता वह सदा अज्ञानावस्था में पड़ा रहता है। अन्य के पुत्र हैं कि [जो] सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं जाकर औरों को निष्कण्ठा से बघाते हैं। इससे जो कोई कर्मच के बिना छद्म मानता है वह झूठ भी नहीं जानता। जब छद्म का समर्थ जाता है तब परमात्म्य जब परमसूक्ष्म पदार्थों को इच्छा करता है। उसकी प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृतिक्रम कारण से कुछ स्पृष्ट होता है उसका नाम महत्त्व और जो उससे कुछ स्पृष्ट होता है उसका नाम अद्वैत और अद्वैत से निम्न १ पाँच सूक्ष्मभूत जोष काय के सिद्ध प्रत्यक्ष पाँच भाव इन्द्रिया, वाक् इत्य एव उपर्य और गुण के पाँच कर्म इन्द्रिय हैं और अपारहर्ष मय कुछ स्पृष्ट उत्पन्न होता है और जब पञ्चतन्मयधर्मों से अनेक स्पृष्टतन्मयधर्मों को प्राप्त होते हुए कम से पाँच स्पृष्टभूत विषयों हम ज्ञान प्रकाश देखते हैं उत्पन्न होते हैं। इनसे ज्ञान प्रकाश की जोषविशेष, वृक्ष आदि उनसे सब सब से नीचे और नीचे से शरीर होता है। परन्तु आदि छद्म मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब की पुष्पों के शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तबन्तर मैथुनी छद्म पक्षती है ॥

देखो ! शरीर में किस प्रकार की आवश्यक छद्म रही है कि जिसको विद्वान् ज्ञान देखकर आश्चर्य मानते हैं। अन्तर हार्थ का जोष आदिनी का सम्भव मांस का रोपन चमड़ी का उद्वेग ग्रीवा गन्ध केन्द्रा पंचा (इत्य) कला का कल्पन जीव का संयोग विरोध मूलरचन जोष ज्ञानादि का कल्पन जोष की अतीव सूक्ष्म (रचना) शिरा का तारक प्रत्यक्ष इन्द्रियों के अर्थों का सम्बन्ध जीव के समुत्पन्न स्व सुपुष्टि अवस्था के योग्य के लिये कदाच विरोधों का विमोक्ष सब धनु का विनाशकर कला कीराक कल्पनादि अर्भुत छद्म को विषय परमेष्ठ के कीम कर सकता है ? इसके सिवाय ज्ञान प्रकाश के सब धनु से अद्विष्ट भूमि, विविध प्रकार सब वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना अर्चक्य हरित येत पीत कृष्ण विन्न मन्मथों से पुष्प पत्र पुष्प फल मूलनिर्माण मिह कम क्लृप्त कला सिद्ध सम्भादि विविध रस सुगन्धादि पुष्प पत्र पुष्प फल धन कम्ब मूलादि रचना अनेकानेक जोषों भूयोष सर्व कम्पादि जोषविमोक्ष पश्य ज्ञान नियमों में रचना आदि परमेष्ठ के विषय कोई भी नहीं कर सकता ॥

जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो जो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक ईसा वह पदार्थ है और दूसरा उसमें रचना देखकर ज्ञान के बाधे का ज्ञान है। ईसा किसी पुष्प के सुगन्ध आनन्द अथवा में पाया रस तो विद्वित हुआ कि वह सुगन्ध का है और किसी सुहिमन्त करीम ने बताया

है। इसी प्रकार यह भाषा प्रकर छवि में विविध रचना बनावेवाले परमेवर को सिद्ध करता है ॥

प्र०—मनुष्य की छवि प्रथम हुई या पृथिवी आदि की ?

उ०—पृथिवी आदि की क्योंकि पृथिव्यादि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता ॥

प्र०—छवि की आदि में एक या अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे या क्या ?

उ०—अनेक क्योंकि जिन जीवों के कर्म ईश्वरीय छवि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म छवि की आदि में ईश्वर देता है क्योंकि “मनुष्याः आपयन्त्य ये। ततो मनुष्याः अजायन्त” यह ब्रह्मर्षि (और उसके शिष्य) में लिखा है। इस प्रमाण से वही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् ऐक्यो अर्थात् मनुष्य उत्पन्न हुए और छवि में देखने से भी विहित होता है कि मनुष्य अनेक नों रूप के उत्पन्न हैं ॥

प्र०—आदि छवि में मनुष्य आदि की वात्सा युक्त या कुलान्तर में छवि हुई थी अथवा तीनों में ?

उ०—युक्तकाल में क्योंकि वास्तव उत्पन्न करता तो उसके पादपदों के बिना दूसरे मनुष्य वास्तविक होते और जो कुलान्तर में जाता तो मिथुनी छवि ब होती इसलिये युक्तकाल में छवि की है ॥

प्र —कमी छवि का आरम्भ है या नहीं ?

उ —नहीं जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन काल्पनिक बना जाता है इसी प्रकार छवि के पूर्व प्रथम और प्रथम के पूर्व छवि तथा छवि के पीछे प्रथम और प्रथम के आगे छवि आदि काल से एक बना जाता है। इसकी आदि या अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन या रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार छवि और प्रथम का आदि अन्त होता रहता है, क्योंकि जैसे परमात्मन जीव जन्म का प्रथम तीव्र स्वरूप से आदि है, जैसे जन्म की उत्पत्ति स्थिति और वर्तमान प्रवृत्ति से आदि है, जैसे नदी का प्रवाह कैसा ही बीकटा है कमी बह जाता कमी नहीं बीकटा फिर बरसात में बीकटा और उत्पन्नकाल में नहीं बीकटा देश व्यवहारी को प्रवाहक कावना चाहिये। जैसे परमेवर के गुण कर्म स्वभाव आदि हैं जैसे ही उसके जन्म की उत्पत्ति स्थिति प्रथम करना भी आदि हैं जैसे कमी ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं ॥

प्र०—ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म किन्हीं को सिंहादि जन्म जन्म किन्हीं को हविष गाय आदि पशु किन्हीं को वृद्धादि कुमि नीच पतञ्जलि जन्म दिये हैं इससे परमात्मा में पक्षपात आता है ॥

उ०—पक्षपात नहीं आता क्योंकि जब जोनों के पूर्व छवि में किये हुए कर्मावधार व्यवस्था करने से जो कर्म के बिना जन्म देता तो पक्षपात आता ॥

प्र०—मनुष्यों की आदि सृष्टि किस काल में हुई ?

उ०—त्रिविहृप् अर्थात् तिसरको तिष्ठत' कहते हैं ॥

प्र०—आदि सृष्टि में एक आदि की ता अनेक ?

उ०—एक मनुष्य आदि की पश्चात् 'विज्जनीह्याप्याग्यं च द्वाय' यह आयेद (१ । २१ । ८) का वचन है । ओहों का नाम आर्य विहान्, देव और इहों के दस्तु अर्थात् आत्मा, सूर्त्त नाम होवे से आर्य और दस्तु दो नाम हुए । इस शब्दे उताये' आर्यवेद (१३ । १२ । १) वचन । आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से आर्यत्व अतिव दैव्य और शत्रु कर भेद हुए । द्विज विहानों का नाम आर्य और सूर्त्त का नाम शत्रु और अर्यत् अर्थात् अन्धारी नाम हुआ ॥

प्र०—अर के पक्ष कैसे आये ?

उ०—अब आर्य और दस्तुओं में अर्थात् विहान् को देव अविहान् को अमुर उन्में सदा बड़ाई कहेवा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होवे काम तब आर्य लोग सब भूगोक में उतम इस भूमि के करक को धनकर पक्षी आकर सब इसी सं देव का नाम "आर्योवर्त्त" हुआ ॥

प्र०—आर्योवर्त्त की अवधि क्या तक है ?

उ०—आसमुद्रात् वै पूर्वावस्ममुद्रात् पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधा ॥ १ ॥
सरस्वतीहृदयोर्बेवनयोर्बेदन्तरम् ।

तं देवनिर्मितं दृष्टमार्यावर्त्तं प्रवक्षते ॥ २ ॥ मनु २ । २२ । १० ॥

उत्तर में हिमालय दक्षिण में सिन्धुवाचक पूर्व और पश्चिम में समुद्र ॥ १ ॥ तथा सरस्वती पश्चिम में अटक नहीं पूर्व में दक्षिणी को मैपल क पूर्व मध्य पहाड़ से निकल के दक्षिण के आसम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है जिसको अष्टपुत्र कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल के दक्षिण के समुद्र की काड़ी में अटक मिली है । हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पूर्वतः सिन्धुवाचक के भीतर मिलने देय है इन सब को आर्योवर्त्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्योवर्त्त देव अर्थात् विदुर्बुधा के असावा और आर्योवर्त्तों के विचार करने से आर्योवर्त्त कहाया है ॥

प्र०—प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें लोग बसते थे ?

उ०—इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई प्राणों के पूर्व इस देश में बसते थे क्योंकि आर्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिष्ठत सं सृष्टे इसी देश में आकर बसे थे ॥

प्र०—कोई कहते हैं कि यह लोग ईराक से आये इसी सं इन लोगों का नाम आर्य हुआ है । इनके पूर्व नहीं ब्राह्मी लोग बसत थे कि जिसको अमुर और राक्षस कहते थे । आर्य लोग अपने को देवता कहलाते थे और उनका जब संध्यम हुआ उसका नाम देवमुर संध्यम कहायीं में उदराय ।

उ०—यह सर्वथा गूढ़ है क्योंकि—

विजानीन्यायान्ये च दस्यधो बहिष्मते रक्षया शासदमृतान् ॥

अ. मं १। सू. २१। मं ८॥

उत्त शूद्रे उत्तम्ये ॥ अथर्व की १२। सू. ६२। मं १॥

यह शिखर पुके है कि आर्य्य नाम आर्यिक विद्वान् आस पुत्रों का और इससे विपरीत जनों का नाम वस्तु अर्थात् बान्धु, दुष्ट अपार्यिक और अधिवान् है। तथा महात्म्य इति नाम का नाम आर्य और राज का नाम अपार्य्य अर्थात् जानाही है। जब वेद ऐसे कहता है तो दूसरे विद्वेदियों के अपोहनविषय को इतिमान् लोग कभी नहीं मान सकते। और वेदांगुर संग्राम में आर्य्यवर्त्तन अन्ध व तथा महात्म्य इतरण आदि हिमाचल पहाड़ में आर्य्य और वस्तु श्लेष्य असुरों का जो कुछ हुआ था उसमें वेद अर्थात् आर्यों की रक्षा और असुरों के पराक्रम करने को सहजक हुए थे। इससे बही सिद्ध होता है कि आर्य्यवर्त्तन के बाहर आर्यों का जो हिमाचल के पूर्व आग्नेय इक्षिण वैजय अथवा उत्तर ईशान्य देश में मगुज्य रहते हैं उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है। क्योंकि जब २ हिमाचल श्लेष्य आर्यों पर चढ़ने को चढ़ाई करते थे तब २ वहाँ के राजा महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्यों के सहजक होते थे। और जो भी रामचन्द्रजी से इक्षिण में कुछ हुआ है उसका नाम वेदांगुर संग्राम वही किन्तु उसको राम-राज्य अथवा आर्य्य और राजर्षी का संग्राम कहते हैं। किन्ती संस्कृत ग्रन्थ में यह इतिहास में बही लिखा कि आर्य्य लोग ईशान्य से आने और वहाँ के वज्रविधियों को सहजक रूप पाके विद्याय इस देश के राजा हुए, पुत्रा विद्वेदियों का श्रेष्ठ माननीय कैसे हो सकता है ?

और—

श्लेष्यमात्रावर्त्तनाय सर्वे ते दस्यव स्मृताः ॥ मनु १। १२२ ॥

श्लेष्यमात्रावर्त्तनाय परः ॥ मनु २। २२२ ॥

जो आर्य्यवर्त्तन देश से मिला देश है वे वस्तु देश और श्लेष्य देश कहते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि आर्य्यवर्त्तन से मिला पूर्व देश से लेकर ईशान्य उत्तर अथवा और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम वस्तु और श्लेष्य तथा असुर है। और वैजय इक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्य्यवर्त्तन देश से मिला में रहने वाले मगुज्यों का नाम राजस था। जब भी देश को हजरी खोमी का स्वल्प पण्डित बीसा राजर्षी का वर्त्तन किया है वैसा हीय पढ़ता है। और आर्य्यवर्त्तन की सूच पर नीचे रहने वालों का नाम बाग और उस देश का नाम पाताय इक्षिण कहते हैं कि वह देश आर्य्यवर्त्तन मगुज्यों के पाद अर्थात् पय के तले है। और उसके मगुज्यों अर्थात् नाम नाम वाले पुत्र के देश के राजा होते थे उन्हीं की उन्नोपी राजकुमार से अर्जुन का विवाह हुआ था। अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर और पश्य तब सर्व मूलोक्त में आर्यों का राज्य और देशों का धोका २ प्रकार आर्य्यवर्त्तन से मिला देशों में भी रहता था; इसमें यह प्रमाण है कि मगुज्य का पुत्र विद्वान्, विराट का मनु, मनु के मरीच्यदि वस्तु उनके स्वर्गम्यादि राज्य

राजा और उसके सम्मान इत्यादि आदि राजा जो आध्यात्मिक के प्रथम राजा हुए जिन्होंने यह अध्यात्मिक कहाया है ॥

अब अष्टमोद्भव से और आध्यात्मिक के आचरण प्रमाण परस्पर के विरोध से अष्टम देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहा किन्तु आध्यात्मिक में भी आध्यात्मिक अष्टमोद्भव स्वामी निर्मल राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी निवेशियों के पारदर्शित हो रहा है। कुछ बोले राजा स्वतन्त्र है। दुर्लभ अब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा सततमान्तर के आग्रह रहित अपने और पराने का पक्षपातपूर्ण प्रजा पर माता पिता के समान कुछ ल्याय और दया के साथ निवेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न २ भाग पृथक् २ विधा अष्टम व्यवहार का विरोध हुआ अति दुष्कर है। बिना इसके बूटे परस्पर का पूरा उपकार और अस्मिता सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ देशदि स्थलों में व्यवस्था का इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना मतपुर्कों का अर्थ है ॥

प्र०—आत्मी की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ ?

उ०—एक वर्ष कावले ओह कई लाख और कई सहस्र वर्ष आत्मी की उत्पत्ति और देशों के प्रकाश होने में हुए है। इसका स्पष्ट व्यवस्थाव मरी बर्णार्थ भूमिका ३ में लिखा है देख लीजिये। इसदि प्रकार रहि के बर्णने और बर्णने में है। और यह भी है कि एक सूर्य्य दुःख का अर्थात् जो कष्ट नहीं जाता इसका नाम परमात्मा सदा परमात्मों के सिद्धे हुए का नाम अष्ट हो अष्ट का एक इष्टक जो स्पष्ट अनु है तीन इष्टक का अति और इष्टक का एक पांच इष्टक की शक्ति अर्थात् तीन इष्टक का उत्तरा और उत्तरा हुआ होने से शक्ति आदि अष्ट पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार प्रम से निष्काकर सुषोष्मादि परमात्मा ने कहा है ॥

प्र०—इसका अर्थ क्या करता है ? कोई करता है रोच अर्थात् अष्टक अष्टक से सूर्य के तिर पर शक्ति है दूसरा करता है कि वेद के धर्म पर तीसरा करता है किन्ती पर नहीं, चौथा करता है कि वायु के व्यवहार पोषण करता है पृथ्वी के आकर्षण से खोली हुई अपने दिग्गम पर स्थित स्थल करता है कि शक्ति भरी होने से नीचे २ आकाश में जाती जाती है इत्यादि में किस बात को ध्यान मार्ग ?

उ०—जो रोच सूर्य और वेद के धर्म पर नहीं हुई शक्ति स्थित उत्तरा है इसको पूजा चाहिये कि सूर्य और वेद के मां आप के अष्टम समय स्थित पर पी सूर्य और वेद आदि किस पर है ? वेद वाले सुखमान ता पुत्र ही कर आत्मी परन्तु सूर्य वाले कहेंगे कि सूर्य सूर्य पर सूर्य वक्ष पर वक्ष अग्नि पर पर अग्नि वायु पर और वायु आकाश में उतरता है। सबसे पूजा चाहिये

* आग्नेहोत्राध्य भूमिका के देशोत्पत्ति विषय को देखो ॥

कि अब किस पर है ? तो अवश्य कहेंगे परमेश्वर पर । अब सबसे कोई ज्ञेय कि रोच और वैद्य किस का बन्धा है । कहेंगे करण कर्तु और वैद्य धन का । करण मरीची का मरीची मनु का मनु विराट् का और विराट् ब्रह्मा का पुत्र ब्रह्म धारि सृष्टि का यः । अब रोच का जन्म न हुआ था वरन् पहिले पांच पीढ़ी हो चुकी है । तब किसने धारण की थी । अर्थात् करण के जन्म समय में पृथिवी किस पर थी । तो "तेरी पुत्र मेरी भी पुत्र" और कहने धन आर्ज्ये । इसका सचा अभिप्राय यह कि जो "बाको" रहता है इसको रोच कहते हैं सो किसी कवि ने 'लोचकारा पृथिवीपुत्रम्' ऐसा कहा कि रोच के आधार पृथिवी है । दूसरे ने उसके अभिप्राय को न समझ कर सूर्य की मिथ्या कल्पना कर ली । परन्तु जिसकिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलय से बाकी अर्थात् पुनर्क रहता है इसी से उसके रोच' कहते हैं और उसी के आधार पृथिवी है—

सुत्येनोत्तमिता भूमि ॥ अ. सं १ । सू. ८२ । मं १ ॥

यह आग्नेह का वचन है । (उक्त) अर्थात् जो त्रेकल्लसत्वाय जिसका कभी बाध नहीं होता उस परमेश्वर ने भूमि आधारित और सब जगहों का धारण किया है ।

उदा दाधार पृथिवीमुत धाम् ॥

यह भी आग्नेह का वचन है—इसी (उदा) धाम को देखकर किसी ने वैद्य का प्रहस्य किया हाय क्योकि उदा वैद्य का भी नाम है । परन्तु उस मूढ़ को यह विदित न हुआ कि इतने बड़े मूर्खों के धारण करने का सामर्थ्य वैद्य में कहाँ से आवेगा ? इसकिये उदा वही द्वारा मूर्खों के प्रेरण करने का सूर्य का धाम है । उसने अपने आकर्षण से पृथिवी को धारण किया है । परन्तु सूर्योद्दि का धारण करने काका बिना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है ॥

प्र०—इतने १ बड़े मूर्खों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा ।

उ०—हैरे अचान्त आकाश के सामने बड़े २ मूर्खों कुछ भी अर्थात् समुद्र के धामे जल के छोटे कबूत के तुल्य भी नहीं हैं ऐसे अचान्त परमेश्वर के सामने अक्षय्यत लोक एक परमात्मा के तुल्य भी नहीं कह सकते । यह कहकर भीतर धारण व्यापक अर्थात् विभु प्रज्ञासु' यह बर्तुह (२१।८) का वचन है । यह परमात्मा सब प्रज्ञाओं में व्यापक होकर सब को धारण कर रहा है । जो यह ईसाई मुसलमान पुराणियों के कल्पानुसार विभु न होता तो इन सब सृष्टि का धारण कभी न कर सकता । क्योंकि बिना प्राप्ति के किसी को कोई धारण नहीं कर सकता । कोई कहे कि ये सब लोक परस्पर आकर्षण से धारित होये पुन परमेश्वर के धारण करने की क्या अपेक्षा है ? उनको यह उत्तर देना चाहिये कि यह सृष्टि अचान्त है या साक्ष्य ? जो अचान्त कहे तो आकर्षण बाकी वस्तु अचान्त कभी नहीं हो सकती और जो साक्ष्य कहे तो उनका १२ धाम सीमा अर्थात् जिसके पर कोई भी दूसरा लोक नहीं है वही किसके आकर्षण से

धारण होना ? देखे समष्टि और व्यक्ति अर्थात् जब सब समुदाय का नाम बन रहते हैं तो समष्टि कहा गया है और एक २ वृद्धादि की भिन्न २ मयमा करें तो व्यक्ति कहा गया है देखे सब भूषणों को समष्टि गिनकर कथ्य कहें तो सब समष्टि का धारण और आकर्षण का कर्ता बिना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं, इसलिये जो सब समष्टि को रक्षता है वही—

स दाधार पृथिवीं धामूतेमाम् ॥ १३ ॥ ४ ॥

यह पदार्थ का वचन है । जो पृथिव्यादि प्रकृत्यसहित लोकलोकान्तर पदार्थ तथा सृष्टादि प्रकृत्यसहित लोक और पदार्थों का रक्षण धारण परमात्मा करता है जो सब में व्यापक हो रहा है वही सब जगत् का कर्ता और धारण करनेवाला है ॥

प्र०—पृथिव्यादि लोक धूमते हैं या किन ?

उ०—धूमते हैं ॥

प्र०—कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य धूमता है और पृथिवी नहीं धूमती । दूसरे कहते हैं कि पृथिवी धूमती है सूर्य नहीं धूमता । इसमें सत्य क्या माना जाय ?

उ०—वे दोनों धारण करते हैं, क्योंकि वह में लिखा है कि—

आय गौः पृथिरक्ष्मीदसंदन् मातरं पुरं पितरं च प्रयन्स्वः ॥

॥ १४ ॥ अ. १. मं. १३ ॥

अर्थात् यह भूगोक जल के सहित सूर्य ६ चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है ॥

आ कृष्णेन रजसा वर्धमानो निवेशयंभुसुत मर्त्यं च ।

हिरण्यपेन सविता रथेना देवो याति सुर्वनानि पर्यन् ॥

॥ १५ ॥ अ. १. मं. १३ ॥

जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षादि का कर्ता प्रकृत्यसहक्य तजोमय रमणीय लक्षण के साथ वर्धमान सब पृथिवी पदार्थों में अमृतकय वृद्धि का भिन्न इला अमृत का प्रदेष्टा का और सब मूर्तिमान् इन्द्रों को विषदाता हुआ सब लोकों ६ साथ आकर्षण गुण से सब वर्धमान अपनी परिधि में घूमता रहता है किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता । वैद्य ही एक २ प्रकृत्यसहित में एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक लोकान्तर प्रकाशक हैं, देखे—

द्विषि सोमो आर्षि भितः ॥ अर्षि का १४ ॥ अनु १ ॥ मं १३ ॥

देख वह अमृतदाक सूर्य से प्रकटित होता है वैद्य ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश ही से प्रकटित होते हैं ॥ अनु १४ ॥ अ. १. मं. १३ ॥

० अर्षिदेह में— अर्षिदेहान् दाधार पृथिवी मुतयाम् ॥ १५ ॥ १३ ॥ १ ॥ दे ॥ वही भी अर्षिदेहान् दाधार से विषदायक प्रभु का ही प्रदेष्टा है क्योंकि देहा मान्य ० अमृत में पाया है अर्षिदेहान् विषं भुवनमविराजं अर्षिदेहान् वह विषदायक प्रभु ही अमृत्य विष में अर्षिदेह होकर रम रहा है ॥ सं ॥

है, क्योंकि पृथिव्यादि लोक ब्रह्म कर श्रितवा भाग सूर्य के सामने आता है उतने में दिन और श्रितवा पूछ में अर्थात् भाग में होता जाता है उतने में रात। अर्थात् उदय अस्त संध्या मध्याह्न मध्यरात्रि आदि कितने कालावध है वे देखेगान्तरों में सदा वर्तमान रहते हैं। अर्थात् जब आध्यात्म में सूर्योदय होता है उस समय पालाक अर्थात् "अमेरिका" में अस्त होता है और जब आध्यात्म में अस्त होता है तब पालाक देश में उदय होता है। जब आध्यात्म में मध्य दिन या मध्यरात्रि है उसी समय पालाक देश में मध्य रात और मध्य दिन रहता है। जो लोग कहते हैं कि सूर्य ब्रह्मता और पृथिवी नहीं ब्रह्मता में सब अज्ञ हैं क्योंकि जो देखा होता तो कहीं छद्मत्व वर्ण के दिन और रात होते अर्थात् सूर्य का नाम (ब्रह्मा) पृथिवी से आकाश गुणा ब्रह्म और कोहों कोय दूर है। जैसे रई के सामने पहाड़ ब्रह्मे तो बहुत दूर अथवा और रई के ब्रह्मे में बहुत अन्तर नहीं अथवा जैसे ही पृथिवी के ब्रह्मे से पृथिवीय दिन रात होता है सूर्य के ब्रह्मे से नहीं। और जो सूर्य को फिर कहते हैं वे भी अतिविचित्रचित्त नहीं। क्योंकि यदि सूर्य व ब्रह्मता होता तो एक रात्रि कदाच स ब्रह्मता रात्रि अर्थात् लक्षण को प्राप्त न होता। और गुण पदार्थ बिना ब्रह्मे आकाश में विस्तृत लक्षण पर कभी नहीं रह सकता। और कौन कहते हैं कि पृथिवी ब्रह्मता नहीं किन्तु नीचे २ पक्षी काटी है, और दो सूर्य और दो चन्द्र केन्द्र अन्तरीप में व्यवस्थित हैं वे तो गहरी जल के कते में विमग्न हैं। कौन ? जो नीचे २ पक्षी काटी तो चरों ओर वायु के जल व कने से पृथिवी निकल निकल होती और निरन्तरता में रहनेवालों को वायु का स्पर्श न होता नीचे पक्षी को व्यवस्थित होता और एकपक्षी वायु की पति होती। दो सूर्य चन्द्र होते तो रात और अन्धकार का होना ही बह भ्रम होता। इसलिये एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।

प्र०—सूर्य चन्द्र और तारे क्या ब्रह्म हैं और उपर्युक्तप्रतिपक्षि है या नहीं ?

उ०—वे सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि मत्तवाही रहती हैं, क्योंकि—

पतपु हीवर्धे सर्वं बसुधितमस्त हीवर्धे सर्वं वासयन्त तद्यविर्दृष्टे सर्वं वासयन्त तन्नाष्टस्य इति ॥ रात का १०। रा २। रा ३। क० २॥

पृथिवी ब्रह्म अति वायु, आकाश चन्द्र ब्रह्म और सूर्य ब्रह्म ब्रह्म नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और मत्तवा बसती है और वे ही सब को ब्रह्मते हैं। इसलिये विचार करने के कर हैं इसलिये ब्रह्म नाम ब्रह्म है। जब पृथिवी के समान सूर्य चन्द्र और ब्रह्म वायु है पदार्थ ब्रह्म ही इसी प्रकार मत्तवा के होने में क्या सम्भेद ? और जैसे परमेश्वर का वह कोयला लोक मनुष्यादि पक्षि के भरा हुआ है तो क्या वह सब चाक गूदा होते ? परमेश्वर का कोई भी काम निष्कलोक नहीं होता तो क्या इतने अक्षय्य लोकों में मनुष्यादि पक्षि व हो तो संभव कभी हो सकता है ? इसलिये सर्वत्र मनुष्यादि पक्षि है ॥

प्र०—जैसे इस देश में मनुष्यादि पक्षि की जाहलति अवलम्ब है ? जैसे ही अन्य लोकों में भी होगी या विपरीत ?

उ०—कुछ १ प्राकृति में भेद होने का सम्भव है। जैसे इस देश में जीव इसी और आध्यात्मिक यूरोप में अल्पवय और रक्त कृम प्राकृति का भी बोधा १ भेद होता है, इसी प्रकार लोकलोकान्तरों में भी भेद होते हैं। परन्तु जिस जाति की किसी छवि इस देश में है किसी जाति की छवि अन्य लोकों में भी है। जिस १ शरीर के प्रवेश में जेसादि भय है उसी १ प्रवेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अल्पवय भी भेद ही होते हैं, क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमयोः स्वे ॥ क मं १ । सू १६ । मं ३ ॥

(धाता) परमात्मा ने जिस प्रकार के सूर्य कण्डू की सृष्टि अन्तरिक्ष और तबका कुछ मिलेय पदार्थ पूर्व कल्प में रहे थे जैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रहे हैं तब सब लोकलोकान्तरों में बनाये गये हैं। भेद किञ्चिन्मात्र नहीं होता ॥

प्र०—जिन देशों का इस लोक में प्रकाश है उन्हीं का अब लोकों में भी प्रकाश है क नहीं ?

उ०—उन्हीं का है। जैसे एक राजा की राज्यव्यवस्था नीति सब देशों में समान होती है उसी प्रकार परमात्मा राजाकेसर की वेदोक्त नीति अपने १ सृष्टिकय सब राज्य में वृक्षती है ॥

प्र०—अब वे जीव और प्राकृतिक तब बनाये और ईश्वर के बनाये नहीं हैं जो ईश्वर का अधिकार भी इस पर न होता चाहिये क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए ?

उ०—जैसा राज्य और प्राय सब काल में होते हैं और राज्य के आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और अब पदार्थ हैं। अब परमेश्वर सब सृष्टि का बनाये जीवों के कर्मफलों के देने सब का बनाय् रक्त और अल्पवय समर्थ बना है तो अल्प सामर्थ्य ० की और अब पदार्थ उसके आधीन क्यों न हो ? इसलिये जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है। जैसा ही सर्वव्यपिमात् सृष्टि ब्रह्म और प्रलय सब विषय का करता है ॥

इसके आगे विष्णु अविष्णु बन्ध और मोक्ष विषय में विचार आकम्प । यह समर्थ समुद्भास पूरा हुआ ॥ ८ ॥

एति श्रीमद्भगवत्संस्कृतगीतासहिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाधिभूषिते
सुप्रसूतिसिद्धिप्रलयविषयऽष्टमः समुद्भासः सम्पूर्णः ॥ ८ ॥

अथ नवमसमुद्घासारम्भ

अथ विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषयाम् व्याख्यास्यामः

त्रिषां चाऽर्विषां च यस्तद्बुद्धो मयः सह ।

अविषया मृत्युं तीर्था विषयाऽमृतं पश्यते ॥ बृहः श्र ३ । मं १४ ॥

जो मनुष्य विद्या और अधिष्ठ के स्वस्व को प्राप्त ही प्राप्त करता है वह अधिष्ठ परमात्माको प्राप्त करने के लिये उस के विद्या परमात्मा के मार्ग से मोक्ष को प्राप्त होता है । अधिष्ठ का अर्थ—

अनित्यायुषिषु चानात्मसु वित्यायुषिषु चात्मव्यातिरविद्या ।

नमो नृ साधनपात्रे । सु २ ॥

यह बोधस्थान का बचन है। जो अविज्ञान संसार और देहादि में मिल
धर्मोत् जो अकार्य कर्मात् देहा सुखा जाता है। सब रहेगा सब से है और बोध-
बल से नहीं देहों का शरीर सब रहता है वैसी विपरीत बुद्धि होना अविज्ञान
का प्रथम भ्रम है। अष्टादि अर्थात् महामय स्थिति के [शरीर] और
मिथ्याभावबल बोरी आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि दूसरा भ्रमस्त विषयचेतन
रूप बुद्ध में सुख बुद्धि आदि लीला। अवात्म्या में आत्मबुद्धि करवा अविज्ञान
का बोधा भ्रम है। यह चार प्रकार का विपरीत ज्ञान अविज्ञान कहाती है इससे
विपरीत अर्थात् अविज्ञान में अविज्ञान और विज्ञान में विज्ञान अपवित्र में अपवित्र और
पवित्र में पवित्र बुद्ध में बुद्ध सुख में सुख अवात्म्या में अवात्म्या और आत्म्या
में आत्म्या का भ्रम होना विज्ञ है, अर्थात् 'यस्य पथावसत्त्वपदार्थस्वरूपं
यथा सा विद्या यथा तत्त्वस्वरूपं न जानाति अस्मादभ्यस्मिद्विद्विभोति
यथा साऽविद्या ॥' जिससे पदार्थों का अकार्य स्वरूप बोध होने यह विज्ञ और
जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पके अज्ञ में अज्ञ बुद्धि होने यह अविज्ञान कहाती है।
अर्थात् कर्म और उपासना अविज्ञान इसलिये है कि वह ज्ञान और अज्ञान विज्ञान
विशेष है ज्ञानविशेष नहीं। इसी से अज्ञ में कहा है कि विद्या तुह कर्म और
परमेष्ठ की उपासना के शत्रु बुद्ध से पार कोई नहीं होता। अर्थात् पवित्र कर्म
पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभावआदि कर्म
पापादभ्युत्पादि की उपासना और मिथ्याज्ञान से बन्ध रहता है। कोई भी
मनुष्य पदमात्र भी कर्म उपासना और ज्ञान से रहित नहीं होता। इसलिये
धर्मबुद्ध सत्यभावआदि कर्म करवा और मिथ्याभावआदि अकार्य को छोड़ देना
ही मुक्ति का साधन है ॥

प्र०—मुखि किसको प्राप्त नहीं होती ।

੨੦—ਸਾ ਪਰੁ ਹੈ ॥

प्र०—कह क्यों है ?

३०—जो सबसे सनातन में देखा हुआ जीव है ।

प्र —कन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है या विमित्त से ?

उ०—विमित्त से क्योंकि जो स्वभाव से होता वो कन्ध और मुक्ति की विवृति कमी नहीं होती ॥

प्र०—न विरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न च साधक' ।

न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येवा परमार्थता ॥

गीटपाणीककारिका प्र० २ । की ३२ ॥

यह श्लोक मध्यमोपनिषद् पर है । जीव मग्न होने से वस्तुतः जीव का विरोध धर्मोत् न कमी धर्मत्व में आया न जन्म होता न कन्ध ० है और न साधक धर्मोत् य कुछ साधना करनेवाला है न बूढ़ने की इच्छा करता और न कमी इच्छा मुक्ति है क्योंकि जब परमार्थ से कन्ध ही नहीं हुआ तो मुक्ति क्या ?

उ०—यह कभी वेदवृत्तियों का कहरा प्राप्त नहीं क्योंकि जीव का स्वभाव जन्म होने से धर्मत्व में आता और के साथ प्रकट होने का जन्म होता धर्मत्व कमी के कन्ध मोक्षक कन्धत्व में रहता उसके पुनर्जन्म का साधन करता बुद्ध से बूढ़ने की इच्छा करता और बुद्धी से बूढ़कर परमात्म परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है ॥

प्र०—वे सब धर्म वेद और धर्मत्व के हैं जीव के नहीं क्योंकि जीव तो परम पुण्य से रहित साही मात्र है । शीतोष्णादि क्षीरादि के धर्म हैं, धर्मत्व विद्येय है ॥

उ०—वेद और धर्मत्व सब हैं उनको शीतोष्ण प्रसि और भोग नहीं है । जो वेद वस्तुत्वादि प्राणी उसको स्पर्श करता है वही को शीत उष्ण का भोग और भोग होता है । जैसे प्रत्यक्ष भी सब हैं य उनको भूत न विपत्ता किन्तु प्रत्यक्ष जीव को बुद्धा दृष्टा करती है । जैसे ही मन भी सब है य उसको स्पर्श न तोह हो सकता है किन्तु मन से स्पर्श शोक दुःख सुख का भोग जीव करता है । जैसे वहिष्कार्य भोगादि इन्द्रियों से जन्मे पुरे धर्मोत् विपरीत का प्रत्यक्ष करके जीव मुक्ति बुद्धी होता है जैसे ही धर्मत्व धर्मोत् मन बुद्धि विषय धर्मोत् से धर्मत्व विषय विषय धर्मत्व और धर्मत्व को करने का दृष्ट और धर्मत्व का माया होता है । जैसे धर्मत्व से धर्मत्व का दृष्टधीव होता है धर्मत्व नहीं होती जैसे ही धर्मत्व धर्मत्व और धर्मत्व साधनी य जन्मे पुरे कमी का कमी जीव मुक्त बुद्ध का भोग है । जीव कमी का साही नहीं किन्तु कमी मोक्ष है । कमी का साही का एक धर्मोत् परमार्थ है । धर्म करने का जीव है वही कमी में विद्य होता है यह ईश्वर साही नहीं ॥

प्र०—जीव मग्न का प्रतिविम्ब है जैसे दर्पण के दृश्य दृश्य से धर्म की बुद्ध हाथि नहीं होती वही प्रत्यक्ष धर्मत्व में मग्न का प्रतिविम्ब जीव तत्त्वक है तत्त्वक यह धर्मत्वोपनिष है । जब धर्मत्व मग्न ही धर्मत्व नव जीव मुक्त है ॥

उ०—यह ब्रह्मकृपण की बात है क्योंकि प्रतिबिम्ब साक्षर का साक्षर में होता है जैसे मुख और दर्पण साक्षर साक्षे हैं और पृथक् भी है। जो पृथक् न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। महा निराक्षर सर्वव्यापक होने से उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं हो सकता ॥

प्र०—देखो समीर स्वच्छ वायु में निराक्षर और व्यापक साक्षर का आम्बुस पड़ता है। इसी प्रकार स्वच्छ जलान्तराल में परमात्मा का आम्बुस है। इसलिये इसको बिम्बम्बुस कहते हैं ॥

उ०—यह बाह्यबुद्धि का मिथ्या प्रकाश है। क्योंकि साक्षरता इतनी नहीं तो उसको साक्ष से कोई भी नहीं देख सकता है ॥

प्र०—यह जो ऊपर को नीचा और पृथक्करण कीकता है वह साक्षरता कीकता है या नहीं ?

उ०—नहीं ॥

प्र०—तो यह क्या है ?

उ०—अन्तर १ शुक्ली वायु और अग्नि के बलरेख कीकते हैं। उसमें जो कीकता कीकती है वह अधिक वायु को कि बर्तता है वही वायु को पूँछता कीकता है वह शुक्ली से पूछी ठहर कर वायु में घूमती है वह झिल्ली और उसी का प्रतिबिम्ब वायु का दर्पण में कीकता है आम्बुस का कमी नहीं ॥

प्र०—जैसे कटाक्षर मेघाक्षर और महाव्यापक के मेघ व्यापार में होते हैं वैसे ही महा के अन्तराल और जलान्तराल उपरानि के मेघ से ईश्वर और जीव नाम होता है। जब कदाचि जल होजाते हैं तब महाक्षर ही कहाँता है ॥

उ०—यह भी बात अविज्ञाती की है। क्योंकि आम्बुस कमी बिम्ब निम्ब नहीं होता। व्यापार में भी 'परा साधो' इत्यादि व्यापार होते हैं कोई नहीं कहता कि कौन का आम्बुस साधो। इसलिये यह बात ठीक नहीं ॥

प्र०—जैसे समुद्र के बीच में मच्छी कीड़े और आम्बुस के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं वैसे ही निराक्षर महा में जल जलान्तराल घूमते हैं वे स्वयं तो वायु हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि अग्नि से खोदा जैसे पेटल हो रहे हैं। जैसे वे बलते फिरते और आम्बुस तथा महा निम्ब है जैसे जीव को महा मायवे में कोई दीप नहीं जाता ॥

उ०—यह भी तुम्हारा ब्रह्मण सत्य नहीं, क्योंकि जो सत्यव्यापी महा जलान्तरालों में मकराश्रय होकर जीव होता है तो सर्वव्यापी पृथक् उस में होते हैं क नहीं ? जो कहते कि आम्बुस होने से सत्यव्यापी नहीं होती तो कहो कि महा जादूत और अविद्यत है या अचरित ? जो कहते कि अचरित है तो बीच में कोई भी बड़ा नहीं बाध सकता। जब पड़ता नहीं तो सर्वव्यापी क्यों नहीं ? जो कहो कि आपने स्वयं को मूखकर जलान्तराल के साथ कहाँता सा है, स्वयं से नहीं जब स्वयं नहीं कहाँता तो जलान्तराल कितना २ पूर्ण प्राप्त रंग कीकता और आने १ कहाँ १ सरकता जानना नहीं १ का महा अन्त भ्रमाली

हो जायगा और जिसका न पूछा जायगा वही न का जायगी पवित्र और मुक्त होकर जायगा। इसी प्रकार सर्वत्र सृष्टि के प्रभु को समस्त-भूत-प्राणी कहेंगे और ब्रह्म सृष्टि भी ब्रह्म न में हुआ करणी। तुम्हारे कहे प्रमाण जो देखा होता तो किसी जीव को पूर्व देखा सुने का स्मरण न होता क्योंकि जिस प्रभु न देखा वह नहीं रहा। इसलिये प्रभु जीव, जीव प्रभु एक कभी नहीं होता सदा रूपक न ही ॥

प्र०—यह सब अभ्यासोपमात्र है अर्थात् ब्रह्म वस्तु में ब्रह्म वस्तु का स्मरण करके अभ्यासोप कहा गया है किन्तु ही प्रभु वस्तु में सब जगत् और इसलिये स्मरण का अभ्यास करने से जिसका जो बोध कराना होता है वास्तव में सब प्रभु ही है ॥

प्र०—अभ्यासोप का करने का क्या फल है ?

उ०—जीव ॥

प्र०—जीव किसे कहते हैं ?

उ०—समस्त-कल्याण-विशुद्ध अन्तर्मात्र को ? समस्त-कल्याण-विशुद्ध अन्तर्मात्र ही है का वही प्रभु ?

उ०—वही प्रभु है ॥

प्र०—तो क्या प्रभु ही ने अपने में अपने की सृष्टि करवाकर का ?

उ०—हो प्रभु को इससे क्या हानि ?

प्र०—जो मिथ्या कल्पना करता है क्या वह मूर्ख नहीं होता ?

उ०—नहीं क्योंकि जो सब काही से कल्पित का कथित है वह सब मूर्ख है ॥

प्र०—फिर सब काही से सृष्टि करवा करने और मिथ्या बोधने का क्या प्रभु कल्पित और मिथ्यावादी हुआ का नहीं ?

उ०—हो हमको इष्टपति है ॥

यह है सृष्टि-वेदाङ्गितो ! तुमने समस्त-वस्तु-समस्त-वस्तु-समस्त-वस्तु परमेश्वर का मिथ्यावादी कर दिया। क्या वह तुम्हारी बुद्धि का करण नहीं है ? किन्तु उपनिषद् सूत्र का वेद में लिखा है कि परमेश्वर मिथ्यावादी नहीं और मिथ्यावादी है ? क्योंकि जैसे किसी चीज में कोठवाल को दबड़ दिया जायगा उससे चीज को कोठवाल का दबड़ इस अन्तर्मात्र के अन्तर्मात्र का प्रभु है वह तो कथित है कि कोठवाल चीज को दबड़े परमेश्वर वह का कल्पित है कि चीज को कोठवाल को दबड़ दे दे देव ही तुम मिथ्यावादी नहीं और मिथ्यावादी हमसे वही अन्तर्मात्र प्रभु में अर्थ कहते हैं। जो प्रभु मिथ्यावादी मिथ्यावादी मिथ्यावादी है वह सब अन्तर्मात्र प्रभु देखा हो जाय, क्योंकि वह एक रस है सत्य-वस्तु-समस्त-वस्तु-समस्त-वस्तु और समस्त-वस्तु है। व सब हाथ तुम्हारा है प्रभु न नहीं। जिसका तुम विचार करते हैं वह अविद्य है और तुम्हारा अभ्यासोप भी मिथ्या है क्योंकि प्रभु प्रभु न हाथ अपने को प्रभु और प्रभु को जीव मानना वह मिथ्या अन्तर्मात्र वही जो वस्तु है ? जो सर्व-वस्तु है वह परमेश्वर अन्तर्मात्र और वस्तु में कभी नहीं मिलता, क्योंकि अन्तर्मात्र परमेश्वर एक ही अन्तर्मात्र जीव हाथ है अन्तर्मात्र प्रभु वही ॥

उ०—वह बाह्यकण्व की बात है, क्योंकि प्रतिबिम्ब साक्षर का साक्षर में होता है जिस मुख और दर्पण साक्षर होते हैं और पृथक् भी हैं। जो पृथक् न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। मध्य विराक्षर सर्वव्यापक होने से उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं हो सकता ॥

प्र०—देखो, मगधीर स्वच्छ जल में विराक्षर और व्यापक आकाश का आभ्यस्त पड़ता है। इसी प्रकार स्वच्छ अन्तःकरण में परमात्म्य का आभ्यस्त है। इसलिये इसको विराभ्यस्त कहते हैं ॥

उ०—वह बाह्यबुद्धि का मिथ्या प्रकाश है। क्योंकि आकाश द्रव्य नहीं तो उसके आश से कोई भी व्योम्बर देख सकता है ॥

प्र०—वह जो ऊपर की नीचा और पूरणापव दीखता है वह अन्तःकरण की नीचा दीखता है या नहीं ?

उ०—नहीं ॥

प्र०—तो वह क्या है ?

उ०—जबल १ पृथिवी जल और अग्नि के जसरेख दीखते हैं। उसमें जो नीचता दीखती है वह अधिक जल को कि बरपा है वही नीच को पूरणा दीखता है वह पृथिवी से खूबी उबकर वायु में घूमती है वह दीखती और उसी का प्रतिबिम्ब जल का दर्पण में दीखता है आकाश का कभी नहीं ॥

प्र०—जैसे अन्तःकरण मेककण्व और महाकण्व ० अन्व व्यन्धन में होते हैं जैसे ही जल के जलकण्व और अन्तःकरण उपाधि के अन्व से ऊपर और नीच नाम होता है। जब अन्तःकरण नष्ट होजाते हैं तब महाकण्व ही कहाता है ॥

उ०—वह भी बात अविज्ञानी की है। क्योंकि आकाश कभी बिच मिच नहीं होता। व्यन्धन में भी 'बड़ा कापो' इसलिये व्यन्धन होते हैं कोई नहीं कहता कि जले का आकाश कापो। इसलिये वह बात ठीक नहीं ॥

प्र०—जैसे समुद्र के बीच में मच्छी कड़े और आकाश के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं जैसे ही विराभ्यस्त जल में सब अन्तःकरण घूमते हैं वे स्वयं तो जब हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्म्य की सत्ता से जैसा कि अग्नि से जोड़ा जैसे केतव हो रहे हैं। जैसे के चकते फिरते और आकाश तब जल विमल है जैसे बीच को जल मगलने में कोई दोष नहीं आता ॥

उ०—वह भी गूढ़ात्ता अज्ञान सत्य नहीं, क्योंकि जो अन्तःकरणों का अन्तःकरणों में प्रकाशमान होकर बीच होता है तो सर्वत्राणि पृथक् उस में होते हैं या नहीं ? जो कहो कि आकाश होने से सबकण्व नहीं होती तो कहा कि जल बाह्य और अविमल है क अविमल ? जो कहो कि अविमल है तो बीच में कोई भी पड़ता नहीं दाख सकता। जब पड़ता नहीं तो अविमल नहीं ? जो कहो कि आपने स्वयं को मूखकर अन्तःकरण के साथ कहता था है, स्वयं से नहीं जब स्वयं नहीं कहता तो अन्तःकरण विराम १ पूर्व मस्त पैर जोड़ता और नामो २ वही १ धरकता आपका वही १ का जल और अज्ञानी

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के मोक्षक जीवमत्ता के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक दुःख गुण रहते हैं जब मुक्ति चाहता है तब आत्म स्पर्श करना चाहता है तब तबका देहान के संकल्प से जन्म, स्वाद के भर्ष रसना गन्ध के क्षिपु प्राण संकल्प विकल्प करने समस्त मन विधाय करने के क्षिपु बुद्धि स्मरण करने के क्षिपे चित्त और व्यङ्ग्य के भर्ष बाह्यकरण अपनी स्वशक्ति से जीवमत्ता मुक्ति में हा जाता है और संकल्पमत्त शरीर होता है जिस शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के मोक्षक के द्वारा जीव स्वकर्ष करता है जिस अपनी शक्ति से मुक्ति में सब ध्यान योग होता है ॥

प्र — इसकी शक्ति के प्रकार की और कितनी है ?

उ०—मुख्य एक प्रकार की शक्ति है परन्तु सब परमम आकर्षक प्रकृति योनि विवेकन किना उपाह स्मरण निम्न इच्छा मन, द्वेष संयोग विमल संयोजक विमलक कल्प स्पर्शन दर्शन स्वादन और ध्यानद्वय तथा ज्ञान इन १० (दशविध) प्रकार के सामर्थ्य कुछ जीव हैं । इससे मुक्ति में भी ध्यान की प्राप्ति का योग करता है । जो मुक्ति में जीव का सब होता तो मुक्ति का कुछ कौन मोगता ? और जो जीव के नाश ही का मुक्ति समझते हैं वे महम्मूढ़ हैं क्योंकि मुक्ति जीव की वह है कि बुद्धि का व्यङ्ग्य आत्मस्वक सत्यमपक प्रकृत परमेश्वर में जीव का आध्यात्म में रहता । इसी वेदमूल शरीरिक मूलों में—

अमार्थ वाक्विराह इवम् ॥ वेदमूल ७ ४ । १ ॥

जो वाक्विराह व्यस्तजी का पिता है वह मुक्ति में जीव का और उक्त मय मन का मात्र मानता है अर्थात् जीव और मन का रूप परमेश्वर नहीं मानता मन ही—

मार्थ त्रिमिथिर्बिकल्पामनमात् ॥ वेदमूल ७ । ४ । ११ ॥

और त्रिमिथि आचार्य कुछ मुख्य का मन के समान मुख्य शरीर इन्द्रियों और मन्य आदि को भी विषयान मानते हैं अमान नहीं ॥

द्राक्षशाहपुमयविर्ध वाक्विराहोऽस्त ॥ वेदमूल ४ । ४ । १२ ॥

मयसे मुनि मुक्ति में मान और अमान इन दोनों को मानते हैं अर्थात् कुछ नामधेयुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है अपवित्रता पापपरक दुष्कर्म अर्थात् आदि का अमान मानते हैं

यदा पञ्चावतिष्ठन्त दानाणि ममसा सह ।

पुत्रिण न विषयत तामाहु परमा गतिम् ॥

कहो का १४ १ । १ । १ ॥

वह उपविष्ट का कथन है । जब कुछ मयपुत्र पांच दानभिरुप जीव का साथ रहती है और बुद्धि का विषय फिर हास है तबको परमार्थ अर्थात् मोक्ष करते हैं ॥

य आत्मा अयहतपाप्मा यिज्यते यिमृशुयिशाकोऽयिज्यतासा-
पिपास सत्यकामः सत्यसद्वृत्त्य सोऽन्वपुष्य स यिज्यतासितप्य सयां का
काकानामोति सबा आ कामात् यस्तमात्मानमनुविष्ट यिज्यतातीति ॥

कहो प्र २१ ॥ १ । १ । १ ॥

अथ मुक्ति बाध का वर्णन करते हैं ॥

प्र०—मुक्ति किमर्थमे कहते हैं ?

उ०— 'मुञ्चन्ति पृथग्मयन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः' त्रिपदे नृ
बन्धा ॥ उच्यते यामा मुक्ति इ ॥

प्र०—विप्रसे यह जाना ?

३०—बिनासे कुरखे की हथका सब जीव करते हैं ।

प्र०—कितने कृत्ये की इच्छा करते हैं ?

३०.—मित्रसं कृप्या चाहते हैं ।

प्र०—किन्तु कृपा चाहते हैं ।

३०—रुख से ।

प्र०—कृपया किसीको प्यार होते और क्या करते हैं ?

३०—सुख की रास होत और मरु में रहते हैं ।

प्र०—मुक्ति की क्या शक्ति है ?

३०—परमेश्वर की आज्ञा पाकरने पापघ्न धर्मिया कुपय कुपयकार, भुरे
 धर्मियों से प्रलय रहने और सम्मन्वय परीक्षक विषय पक्षपातरहित न्याय
 धर्म की शुद्धि करने पूर्णतः प्रकट से परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना
 धर्मोप बोधान्तर करने विषय पक्ष से पक्षधर और धर्म से पुनर्वास कर प्रत्येक की
 उन्नति करने सब से उन्नत प्राणियों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपात
 रहित न्यायधर्मोपकार ही करे इत्यादि प्राणियों से शुद्धि और स्वयं विनीत
 ईश्वरान्तर्गत करने जाति करन से सम्बन्ध होता है ।

प्र — सुख में जीव का खप होता है का विपत्ताव शून्य है ।

२०—विष्णुसाल राहणा हे ॥

प्र०—कहाँ रहना है ?

५०—अथ भूः ।

प्र०—क्या कहाँ है और वह कुछ और एक दिखाने चाहते हैं कि स्पष्टतापूर्ण होकर प्रत्यक्ष दिखता है ?

३०—जो मनुष्य सर्वत्र पूर्ण है वही ही मुख्य जीव मानाहुय यदि कहीं
उसको कहीं सहाय्य नहीं विज्ञान सम्यक्प्रकाश स्वतन्त्र विभक्त है ।

प्र०—सूख जीव का स्पर्श करीब होता है या नहीं ?

३०—कहीं रहता न

प्र०—अब वह मुक्त और आनन्द मोय कैसे करता है ।

४०—क्या है ज्ञान चक्रवर्त्तन? स्वाभाविक पुनः प्रसन्न हो कर रहते हैं और तब-
छात्र नहीं रहता है।—

श्रुत्वा च शीघ्रं भवति स्पर्शोपन् त्वमभवति पश्यन् यद्युर्मवति
 रसपम रसना भवति शिखन् श्राव्यं भवति मन्वातो मनो भवति
 बोध्यपन् बुद्धिर्भवति श्लेष्मश्चित्तमभवत्तद्वदुर्बाहोऽहहारी भवति ॥

मोक्ष में धौलिक शरीर का इन्द्रियों के गोचक जीवजन्मा के साथ नहीं रहत किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहत है जब सुम्मा चाहता है तब प्राण स्पर्श करता चाहता है तब तब देहान के संकल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना गन्ध के छिपु प्राण संकल्प विकल्प करने समर्थ मन नियम करने के छिपु बुद्धि स्मरण करने के क्षिये चित्त और अहंकार के अर्थ अहंकारक्य अपनी स्वशक्ति से जीवजन्मा मुक्ति में ही जाता है और संकल्पमान शरीर होता है जिस शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोचक क इतर जीव स्वकार्य करता है जिस अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आत्मन्व आता होता है ॥

प्र०—इसकी शक्ति के प्रकार की और कितनी है ?

उ०—मुख्य एक प्रकार की शक्ति है परन्तु सब परात्म्य आकर्षण प्रत्याघति, मोक्ष विवेक विद्या उत्साह समस्त नियम इच्छा मन द्वेष संशय विमर्श संशोभक, विधायक अन्य स्पर्शन दर्शन स्वाद और सम्बन्ध तथा ज्ञान इन १४ (चौबीस) प्रकार के सामर्थ्य कुछ जीव हैं । इसल मुक्ति में भी आत्मन्व की प्रसिद्धि का योग करता है । जो मुक्ति में जीव का रूप होता तो मुक्ति का कुछ कौन योग्यता ? और जो जीव के नाम हैं का मुक्ति योग्यता है वे महामूर्ख हैं क्योंकि मुक्ति जीव की यह है कि बुद्धों से अन्तर आत्मन्वस्वरूप सर्वभूषण प्रबन्ध परमेश्वर में जीव का आत्मन्व में रहता । देखो वेदान्त शारीरिक तूतों में—

अमार्थ वादिराह ब्रह्म ॥ वेदान्त ४ ४ । १ ॥

जो वादिरि व्यस्तजी का पिता है वह मुक्ति में जीव का और सब साथ मन का भव मानता है अर्थात् जीव और मन का सब परमेश्वर ही नहीं मानन धन ही—

भार्थ जमिनिर्बिकल्पाममनात् ॥ वेदान्त ४ ४ । १ । १ ॥

और जमिनि आचार्य मुक्त पुत्र का मन के समान सूक्ष्म शरीर इन्द्रियों और प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं अज्ञान नहीं ॥

आकराहयपुमपविर्ध बाहराययोऽस्त ॥ वेदान्त ४ । ४ । १२ ॥

व्यस्त मुनि मुक्ति में भव और अमन इन दोनों को मानते हैं अर्थात् शुद्ध मध्यस्थपुत्र जीव मुक्ति में बना रहता है अप्रतिता पापचरक शुद्ध अज्ञानादि का अमन मानते हैं

यदा पञ्चावतिष्ठन्त ज्ञानानि मनसा सह ।

बुद्धिश्च न विकलं तस्माद् परमा गतिम् ॥

उ० अ १ ४ १ । मं १ ॥

यह उपनिषद् का वचन है । जब शुद्ध मनपुत्र पांच आध्यात्मिक जीव के साथ रहती है और बुद्धि का निधन फिर होता है तबको परमावति अर्थात् मोक्ष करते हैं ॥

य आत्मा अपहृतपाप्मा पित्रो विमृशुपिशाकोऽपिप्रित्तो-
पिपास' सत्यकामः सत्यसद्गुण्य' सोऽन्वप्य' स विमिश्रितप्य' सर्वा अ
आकानामोति सया अ कामान् पस्तमानमानमनुपिच पित्रतार्ति ॥

पुण्ड्र ३ ८ । अं १ । मं १ ॥

स वा एष पतनं दैवतं ब्रह्मणा भक्तैस्तान् कामान् परमन् रमत् ॥ ४
 एतं ब्रह्मलोके तं वा एतं दैवा आत्मानमुपासततस्मात्तेषां सर्वे च लोका
 आत्मा सर्वे च कामाः स संपादय्य लोकानप्नोति सर्वार्थम् कामान्
 पस्तमारमानमनुविद्य विद्वानातीति ॥ श्री म. म. चं. १२। मं. २। १४ ॥

मद्यन् मर्त्यं वा इह शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतममृशरीर
 स्यात्मानोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियार्था न वै सशरीरस्य
 सतः प्रियाप्रियोरपहतिरस्म्यशरीर वाव सन्तं न प्रियाप्रियं स्पृशत ॥

हाम्प्री० म. म. चं. १२। मं. १ ॥

जो परमात्मा अग्रहृतपाप्मा सब पाप करा चुक्यु लोक, बुद्धा विवासा से
 रहित सबकर्म सत्संकल्प है उसकी कोख और उस की जानने की इच्छा
 करनी चाहिये। जिस परमात्मा के सम्बन्ध से मुक्त जीव सब लोकों और सब
 कर्मों को प्राप्त होता है जो परमात्मा को ज्ञान के मोक्ष के साधन और अपने
 को शुद्ध करवा सकता है सो वह मुक्ति को प्राप्त जीव शुद्ध दिव्य भेद और शुद्ध
 मन से कर्मों को देखता प्राप्त होता हुआ समस्त करता है। जो वे ब्रह्मलोक
 अर्थात् इतनी परमात्मा में स्थिर होके मोक्ष पुण्य को भोगते हैं और इसी
 परमात्मा को जो कि सब कर्म सम्बन्धी भाषा है उसकी उपमात्मा मुक्ति को
 प्राप्त करनेवाले विद्वान् लोग करते हैं। उन्होने सबको सर्व लोक और सब कर्म प्राप्त
 होते हैं अर्थात् जो १ लक्षण करते हैं वह १ लोक और वह १ कर्म प्राप्त होता
 है। और वे मुक्त जीव स्पृष्ट शरीर कोषक सङ्कल्पमय शरीर से सम्बन्ध में
 परमेश्वर में स्थित हैं क्योंकि का शरीर कबो होते हैं वे सांसारिक दुःख से रहित
 नहीं हो सकते। जैसे हन्त्र से प्रत्यक्ष वे कहा है कि वे परमपूजित ब्रह्म
 पुण्य ! वह स्पृष्ट शरीर मरणाद्यमो है और सिद्ध के मुक्त में बन्दी होने जैसे वह
 शरीर ध्वंस के मुक्त के बीच है जो शरीर इस मरणाद्य और शरीररहित जीवमय
 का निवृत्तकर्म है। इसलिये वह जीव मुक्त और दुःख से छटा प्राप्त रहता है
 क्योंकि शरीररहित जीव की सांसारिक प्रकृता की कल्पित होती है और जो
 शरीररहित मुक्त जीवमा प्रकृति रहता है उसका सांसारिक दुःख दुःख का स्वर्ग
 भी नहीं होता किन्तु सब आनन्द में रहता है ॥

प्र०—जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः कर्म मरणाद्यमो दुःख में बन्दी होते
 हैं या नहीं ? क्योंकि—

न च पुनरावृत्तत न च पुनरावर्त्तत इति ॥ श्री म. म. चं. १२ ॥

अनावृत्तिः शब्दावनावृत्तिः सम्भवात् ॥ कारीरिक सूत्र। ७। ३। १२ ॥

पद गत्वा न विवर्त्तते लक्ष्य परमं मम ॥ श्री म. म. चं. १२। श्लोक १४ ॥

इत्यादि वचनों से विहित होता है कि मुक्ति नहीं है कि जिससे विवृत्त
 होकर पुनः संसार में बन्दी नहीं जाता ॥

उ —यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेद में कुछ बात का विशेष किया है—

कस्य नून कृतमस्यामृताना मनामहे शारु दुषस्य नाम ।

का नो मृदा अर्दितये पुनर्दात् पितरं च ह्यशेयं मातरं च ॥ १ ॥

अग्नेर्हय प्रेयमस्यामृताना मनामहे शारु दुषस्य नाम ।

स नो मृदा अर्दितये पुनर्दात् पितरं च ह्यशेयं मातरं च ॥ २ ॥

अ. मं १। सू. २४। मं १—२ ॥

इदानीमित्थं सद्यश्च वात्स्यन्तोच्छ्रुत् ॥ ३ ॥ सार्वभ्य । अ. १। सू. १२६ ॥

प्र०—इस छोटे विषय का नाम पवित्र जानें ? कौन नामांकित पदार्थों के मध्य में वर्तमान है सदा प्रकृतस्वरूप है इसका मुक्ति का सुख भुग्यकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है ? ॥ १ ॥

उ —इस इस स्वाम्यस्वरूप का नाम पवित्र जानें जो इसको मुक्ति में आनन्द भुग्यकर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्मुख में जन्म लेकर माता पिता का दर्शन कराता है वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है ॥ २ ॥ जैसे इस समय कम्बुमुक्त जीव है कम ही सर्वदा रहते हैं, अस्मत् विच्छेद यन्त्र मुक्ति का कभी नहीं होता किन्तु कम्ब और मुक्ति सदा नहीं रहती ॥ ३ ॥

प्र०—तत्त्वान्तपिमोक्षोऽपहर्षः ॥ व्याख. अ. १। अ. १। सू. २२ ॥

तुल्यजन्मप्रवृत्तिदोषमिध्याधानानामुत्तरापाय तदन्तरापायादपयः ॥

व्याख. अ. १। अ. १। सू. २ ॥

जो दुष्ट का अस्मत् विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है । क्योंकि जय मिथ्या ज्ञान अविद्या अस्मदि हाथ विपक्ष बुद्ध व्यसनों में प्रवृत्ति जन्म और दुष्ट का उत्तर २ के दुष्टों से पूर्व २ के निवृत्ति होवे ही वह मोक्ष होता है जो कि सदा कदा रहता है ॥

उ०—वह आवश्यक नहीं है कि अस्मत् यन्त्र अस्मत्पाय ही का नाम होवे । जैसे “अस्यान्तं तुल्यजन्मन्तं सुखं वास्य वसतः” बहुत दुष्ट और बहुत सुख इस मनुष्य को है । इससे वह विशुद्ध होता है कि इसका बहुत सुख वा दुष्ट है । इसी प्रकार वहाँ भी अस्मत् यन्त्र का कार्य जन्म चाहिये ॥

प्र०—जो मुक्ति का भी जाहिर किए जाता है तो वह कितने समय तक मुक्ति में रहता है ?

उ०—त आह्वानात् इ परान्तकाल परामृतात् परिभुष्यन्ति सर्वे ॥

मुच्यक ३। अं. २। मं. १ ॥

वह मुच्यक उपनिषद् का वचन है । वे मुक्त जीव मुक्ति में प्यठ हाँके मध्य में आनन्द का तत्त्वक भाग के पुनः महाकरा के वधान् मुक्ति मुक्त का बोध के संसार में आता है । इसकी संख्या यह है कि उपाधीन आत्मा बीस सहस्र वर्षों को एक अनुपुटी हो उद्यत अनुपुषियों का एक महाभाग पने तीन महाभागों का एक महीना पने बारह महीनों का एक वर्ष पने शत वर्षों का परान्तकाल

स वा एष पतनं वैकुण्ठं वक्ष्यताम् ममसंतापं कामम् पश्यन् रमते ॥ व
पते ब्रह्मलोके तं वा पतं ब्रूयात् आत्मानमुपासतेतस्यास्तेषां सर्वे वा लोका
आप्ताः सर्वे वा कामाः स सवा ॥ १२ ॥ लोकाणां प्रीतिः सर्वा ॥ कामान्
पस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ॥ श्री म द। च। १२। मं २। १३

मघबन् मर्त्ये वा इव ॥ शरीरमात्तं मृत्युभा तदस्यामृतस्याशरीर
स्यात्मनोऽभिष्टानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाम्या न वै सशरीरस्य
सतः प्रियाप्रियोत्पद्यतिरस्त्यशरीरं वाच सन्तं न प्रियाप्रिये स्मृतं ॥

ब्रह्मो म द। च। १२। मं १॥

जो परमात्मा अपहृतपाप्मा सब पाप अणु मृत्तु, लोक, पुण्य विपत्ता से
रहित सम्पन्न सत्संस्कार है उसकी लोक और उस की जानने की इच्छा
करनी चाहिये । जिस परमात्मा के सम्बन्ध से मुक्त जीव सब लोकों और सब
कर्मों को प्राप्त होता है जो परमात्मा को ज्ञान के मोह के साधन और अपने
को मुक्त करना जानता है सो वह मुक्ति को प्राप्त जीव मुक्त दिव्य देव और मुक्त
मन से कर्मों को देखता प्राप्त होता हुआ स्मरण करता है । जो वे ब्रह्मलोक
अर्थात् इष्टीय परमात्मा में स्थिर होके मोह मुक्त को जोखते हैं और इसी
परमात्मा को जो कि सब का सम्बन्धी प्रमाणा है उसकी उपासना मुक्ति को
प्राप्त करके अपने मित्रों को प्रेम करते हैं । उसमें उसके सभी लोक और सब काम प्राप्त
होते हैं अर्थात् जो २ सङ्कल्प करता है वह २ लोक और वह २ काम प्राप्त होता
है । और वे मुक्त जीव सब शरीर लोक सब सङ्कल्प शरीर से सम्बन्ध में
परमेश्वर में स्थिर हैं क्योंकि जो शरीर कबो जावे हैं वे सांसारिक दुःख से रहित
नहीं हो सकते । जैसे इन्द्र से प्रत्यक्ष वे कहा है कि हे परमपुत्र कल्पमुक्त
पुत्र ! वह स्पष्ट शरीर मरबन्धों है और सिद्ध के मुक्त में बन्धी होवे जैसे यह
शरीर मृत्तु के मुक्त के जीव है सो शरीर इस मरबन्ध और शरीररहित जीवस्य
का विद्यसम्बन्ध है । इसविषय यह जीव मुक्त और दुःख से सदा मुक्त रहता है
क्योंकि शरीररहित जीव की सांसारिक प्रकृता की निवृत्ति होती है और जो
शरीररहित मुक्त जीवस्य प्रकृति में रहता है उसका सांसारिक दुःख दुःख का स्पर्श
भी नहीं होता किन्तु सदा ज्ञानम् में रहता है ॥

प्र०—जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः अन्य मरबन्ध दुःख में कभी जावे
है वा नहीं ? क्योंकि—

न च पुनरापतत न च पुनरापतत इति ॥ श्री म द। च। १२ ॥

अनापत्तिः शब्दादनापत्तिः शब्दात् ॥ शरीरिक सूत्र ॥ ४। ४। २२ ॥

यद् गत्वा न निषलन्त तन्नाम परमं मम ॥ म जी च १२। श्लोक १॥

इत्यादि बचनों से विदित होता है कि मुक्ति बड़ी है कि जिससे निवृत्त
होकर पुनः संसार में कभी नहीं जाता ॥

उ०—यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है—

कस्य नून कृतमस्यामृताना मनामहे चारु दुवस्य नाम ।

हो नो मद्या अदितये पुनर्दात् पितरं च ह्योयं मातरं च ॥ १ ॥

अमेधेय प्रेयमस्यामृताना मनामहे चारु दुवस्य नाम ।

स नो मद्या अदितये पुनर्दात् पितरं च ह्योयं मातरं च ॥ २ ॥

आ मे १ । सु २४ । मं १—२ ॥

इदानीमिह सयज्वा मात्यन्तोच्छ्रयः ॥ ३ ॥ संख्य । अ १ । सूत्र १२४ ॥

प्र०—इस लोग विष्णु का नाम पवित्र जानें ? कौन कारणद्वारा परार्थों का मान में वर्तमान एवं सदा प्रसन्नस्थ रह्य है इसकी मुक्ति का मुक्त भुग्यकर पुनः इस संसार में जन्म देता और मरता तथा पिता का दर्शन करता है ? ॥ १ ॥

उ —इस इस स्वप्रकाशत्वक्य अद्यादि सदा मुक्त परमात्म्य का नाम पवित्र जानें जो इसकी मुक्ति में आनन्द भुग्यकर पृथिवी में पुनः मरता पिता के सम्मुख में जन्म कर मरता पिता का दर्शन करता है । वही परमात्म्य मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है ॥ १ ॥ प्रिय इस समस्त बन्धमुक्त और है क्ये हो सदा रहते हैं, आत्मन्त विष्णु बन्ध मुक्ति का कमी नहीं होता किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती ॥ २ ॥

प्र०—तत्त्वन्तयिमोक्षोऽपवगः ॥ न्यायः अ १ । आ १ । सू २२ ॥

तुल्यजन्मप्रवृत्तिवोपमिध्याद्यानामामुत्तरापाय तद्वन्तदापायादपवगः ॥

न्यायः अ १ । आ १ । सू २ ॥

जो दुःख का अन्त विष्णु होता है वही मुक्ति कहाली है । क्योंकि जब मिथ्या जन्म अविद्य सामादि बाध विषय दुःख आसक्तों में प्रवृत्ति जन्म और दुःख का उत्तर २ ० करने से पूर्व २ ० निवृत्त होने ही से नाश होता है जो कि सदा क्या रहता है ॥

उ०—वह आनन्दक नहीं है कि अन्तः शब्द आत्मतामात्र ही का नाम होने । ब्रह्म 'अत्यन्तं तुल्यमत्यन्तं मुक्तं चास्य वस्तुते' बहुत पुन और बहुत मुक्त इस मनुष्य को है । इससे वह विदित होता है कि इसको बहुत मुक्त का दुःख है । इसी प्रकार वही भी अन्तः शब्द का चर्च अन्तः आहिये ॥

प्र०—जो मुक्ति से भी आनन्द फिर आता है तो वह किन्ते समस्त तक मुक्ति में रहता है ?

उ०—त एवास्माकं ह परान्तकाक परामृतान् परिमुच्यन्ति सयें ॥

मुच्यते ३ । अं २ । मं २ ॥

वह उपरक उपविष्ट का वचन है । के मुक्त जीव मुक्ति में एव हाक ब्रह्म में आनन्द का तब तक समय ० पुन महाकाल ० पञ्चान् मुक्ति मुक्त का बाध के पक्ष में जान है । इसको संख्या वह है कि उपासीय आनन्द कोल मध्य वही को एक चतुर्गुणी हो सदा चतुर्गुणी का एक महाशत्रु जमे कीय महाशत्रु का एक महीका जमे आह महीनों का एक वर्ष देव शत्रु वही का परान्तः

होता है। इसको पश्चित की रीति से पपाकत् समझ लीजिये। इतना समझ मुक्ति में कुछ फायदे का है ॥

प्र०—एक संसार जीव प्रत्यक्षों का नहीं मत है कि जिससे पुनः जन्म भरण में कमी न पाये ॥

उ०—यह बात कमी नहीं हो सकती क्योंकि प्रथम तो जीव का सम्पूर्ण शरीरार्थ पदार्थ और साधन परिमित है। पुनः इसका कुछ प्रयत्न कैसे हो सकता है? प्रयत्न आत्मन् को मायवे का असीम सम्पूर्ण कर्म और साधन दोनों में नहीं इसलिये प्रयत्न कुछ नहीं माय सकते। जिससे साधन अधिक है उनका कुछ निम्न कमी नहीं हो सकता। और जो मुक्ति में से कोई भी शरीरार्थ जीव इस संसार में न जाने तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव विरलेप हो जाने चाहिये ॥

प्र०—जिसने जीव मुक्त होत है उतने ईश्वर ने उत्पन्न करके संसार में रक्त देता है इसलिये विरलेप नहीं होते ॥

उ०—आ देखा होवे तो जीव अशक्त हो जायें क्योंकि जिसकी उत्पत्ति होती है उसका नाश अवश्य होता है फिर तुम्हारे मतानुसार मुक्ति पान करने में मुक्ति अशक्त हो जायें और मुक्ति के लक्षण में बहुलता भी पान हो जायगा क्योंकि वहाँ प्रत्यक्ष पश्चित व्यव कुछ भी नहीं होने से कष्टों का पारस्पर्य न रहेगा और कुछ के अनुभव के बिना कुछ कुछ भी नहीं हो सकता ॥

कैसे कुछ न हो तो मनुष्य क्या जो मनुष्य न हो तो कुछ क्या कह्ये? क्योंकि एक स्वर के एक रस के बिच्छु दोनों की परीक्षा होती है। जैसे कोई मनुष्य मीठा मनुष्य की खाया पीता जान उसको किता मुक्त नहीं होता ब्रह्म लक्ष प्रत्यक्ष के हस्तों के मोहने वाले को होता है। और जो ईश्वर जन्म बाधे कर्मों का प्रयत्न कुछ देवे तो उच्छेद लक्षण गह हो जान जो कितना धार दया सके उतना उस पर प्रत्यक्ष बुद्धिमानों का कर्म है। जैसे एक मनुष्य धर उठने वाले के धिर पर दस मनुष्य बरने से धार बरने बाधे की निम्न होती है कैसे प्रत्यक्ष जन्म प्रत्यक्ष वाले जीव पर प्रयत्न मुक्त का धार धारता ईश्वर के बिले डोक नहीं। और जो परमेस्वर ने जीव उत्पन्न करता है तो जिस प्रकार से उत्पन्न होते हैं वह कुछ अल्प ॥ क्योंकि यदि कितना बड़ा धर्म कोय हो परन्तु जिसमें लक्ष है और धर्म नहीं उच्छेद कमी न कमी दिखाया बिच्छु हो जाता है। इसलिये कभी अवश्य ही कि मुक्ति में जाना नहीं से पुनः प्राप्ता हो प्रयत्न है। क्या बोधे धर करमात्र से जन्म करमात्र प्रत्यक्ष वाले प्रयत्न फलही को कोई प्रयत्न मानता है? जब क्या से धर्म ही न हो तो जन्म करमात्र से इतना ही प्रयत्न है कि वहाँ मनुष्य नहीं करनी पड़ती और प्रत्यक्ष में सब दोषा समुद्र में कुछ मरणा ॥

प्र०—जैसे परमेस्वर निम्न मुक्त पूर्व मुक्त है किसे ही जीव भी निम्न मुक्त और मुक्त रहेगा तो कोई भी बोध न प्रयत्न ॥

उ०—परमेश्वर अनन्त स्वस्व सामर्थ्य गुण्य कर्म स्वभाव बाधा है इसलिये वह कभी अधिका और कुछ कथन में नहीं मिल सकता । जीव मुक्त होकर भी उस स्वस्व अनन्त और परिमित गुण्य कर्म स्वभाव बाधा रहता है परमेश्वर के साथ कभी नहीं होता ॥

प्र०—अब पूछा है कि मुक्ति की अवस्था में क्या है इस विषय में
 क्या धर्म है ?

२०—मुक्ति अथ मारण के सुख नहीं क्योंकि जब तक ३९ (ब्रह्मसूत्र-सहस्र) धार उन्मत्ति धीरे प्रलय का भित्ति समझ होता है उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के प्रत्यक्ष में रहना बुद्ध का न होना क्या बोधो का मत है ? अब भाग्य का मत पतित है कदा भूल कायसे बाकी है पुनः इत्यस्य उपाय कौं करते हो ? अब बुद्ध का पुनः बुद्ध भव राज्य प्रतिष्ठा की उन्मत्ति आदि के विषये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के विषये कौं न करपा ? शिष्टे मरण पर्यन्त इ तो भी जीवन का उपाय किया जाता है किन्ती ही मुक्ति का जीवन अन्त में जाना है तथापि उपाय उपाय करना आवश्यक है ॥

प्र०—अग्नि के क्या साधन हैं ?

उ — कुछ साधन तो प्रथम शिक्षा प्राप्त हैं, परन्तु कितने उपाय वे हैं—जो मुक्ति प्राप्त कर जीवन कुछ अर्थात् किन मिश्रणप्रणयपरि पाप कर्मों का कुछ कुछ ईश्वर का दोष कुछ कम कुछ को देखे बाहे सम्प्रसारणपरि समाचार्य व्यवस्था करें। जो कोई कुछ को बुझाना और कुछ का प्रसन्न होना चाह कर प्रार्थना का दोष धर्म व्यवस्था करें क्योंकि कुछ का पापप्रकार और कुछ का कर्माचार्य मूल बनकर है। अतएव वे कुछ से निवेक अर्थात् सम्प्रसारण कर्माचार्य कर्माचार्यका व्यवस्था का विचार व्यवस्था करें कुछ ५ आगे और शरीर अर्थात् और पाप कर्मों का निवेक करें ।

एक 'अज्ञान' जो लक्ष्य से लेकर अक्षिरूपता का समुदाय प्रविष्टिमान है।
 'ज्ञान' प्रत्यक्ष' जिसमें 'ज्ञान' अर्थात् जो बाहर से भीतर आता "अज्ञान"
 जो भीतर से बाहर आता 'समान' जो वास्तविक रूप से सर्वत्र गति में रह
 पहुँचता 'अज्ञान' जिससे अज्ञान का एक पाद होता और वह पराक्रम होता
 है 'अज्ञान' जिससे सब शरीर में चला आदि कार्य चल करता है। तीसरा
 'मनोमय' जिसमें मन के साथ अज्ञान का एक पाद पाद पशु और अपर
 पांच कर्म इन्द्रियाँ हैं। चौथा "विज्ञानमय" जिसमें बुद्धि, चित्त, मोक्ष, अज्ञान
 के विज्ञान और वास्तविक से पांच ज्ञान इन्द्रियाँ जिससे जीव ज्ञानादि व्यवहार
 करता है पाँचवाँ "आत्मन्यमय" जिसमें प्रीति प्रसन्नता न्यून आत्मन्य
 अधिकतम और आधार कारण रूप प्रकृति है। ये पाँच कोश कहते हैं इन्हीं से
 जीव सब प्रकार के कर्म उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है ॥

तीन अक्षरों एक "अमृत" दूसरी "स्थल" और तीसरी 'मुनि'
अक्षरों अक्षरों हैं ॥

हीन शरीर है एक 'सूक्ष्म' जो यह ही कहता है। दूसरा पांच पांच पांच जानेभिन्न पांच सूक्ष्ममूल और मन तथा बुद्धि इन छतरह तन्त्रों का समुदाय 'सूक्ष्मशरीर' कहता है यह सूक्ष्म शरीर जन्म मरणादि में भी जीव के साथ रहता है। इसके दो मेरु हैं एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्म मूलों के क्षेत्रों से बना है। दूसरा स्वामात्मिक का जीव के गुण रूप है। यह दूसरा अधौषिक शरीर मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख को मोक्षता है। तीसरा कारण जिसमें सुपुष्टि अर्थात् यादविक्रा होती है यह माहृतिक्य होने से अथवा विभु और सब जीवों के लिये एक है। चौथा तुरीय शरीर यह कहता है जिसमें समाधि से परमार्थ के आत्मस्वरूप में सदा जीव होते हैं। इसी समाधि संस्काररूप हृदय शरीर का परात्म्य मुक्ति में भी अनागत सहायक रहता है।

इस सब कोय आवश्यकताओं से जीव प्रवृत्त है क्योंकि यह सब को चिदित है कि आवश्यकताओं से जीव प्रवृत्त है क्योंकि जब सुख होती है तब सब कोई करते हैं कि जीव निकल गया वही जीव सब का मेरक सब का बचा सारा कर्ण, मोक्ष कहता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्ण मोक्ष नहीं तो उसको ज्ञानो कि यह अज्ञानी अधिभेद है क्योंकि बिना जीव के वे सब उक्त पदार्थ हैं उनको सुख दुःख का भोग व पाप पुण्य कर्तव्य कर्ण नहीं हो सकता। हाँ इनके सम्बन्ध से जीव पाप पुण्यों का कर्ण और सुख दुःखों का मोक्ष है ॥

जब हमिद्वी भाषों में मन हमिद्वी और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को मेरक करके अथवा या पुर कर्मों में लगता है तभी यह यद्विर्मुक्त हो जाता है इसी समय भीतर से आत्मन्, आत्मा निर्मलता और पुर कर्मों में मन लड़ा अथवा अलग होती है यह अन्तर्वासी परमात्मा को दिखा है। जो कोई इस दिखा के अनुसृत बर्तता है वही मुक्ति जन्म सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत बर्तता है वह कर्मजन्म दुःख भोगता है ॥

दूसरा साधन 'विराग' अर्थात् जो विश्व से सत्यात्म्य को ज्ञान हो उस में से सत्याचरण का प्रवृत्त और असत्याचरण का त्याग करना विवेक ३ है। जो बुद्धि से लेकर परमार्थ पर्यन्त वस्तुओं के गुण कर्म स्वभाव से जान कर समझी आत्मा आत्म और अज्ञानता में लपट हाथ उस में विद्वत् व चक्षुष गृहि से उपकार बना विश्व कहता है ॥

तत्पश्चात् तीसरा साधन 'बहुक सम्पत्ति' अर्थात् वृत्त वृत्त व कर्म करना एक 'राम' जिस से अपर आत्मा और अन्तःकरण को अधोमोक्ष से दूर कर अधोमोक्ष से दूर प्रवृत्त रहना। दूसरा 'राम' जिससे आकाश हमिद्वी और शरीर को अधिभारति पुर कर्मों में इस कर त्रिगुणव्यापति पुन कर्मों में प्रवृत्त रहना मोक्षता अर्थात् जिस से कुछ कर्म करनेवाले पुण्यों में सदा पुर रहना चौथा विविध आदि दिग्वा स्मृति हार्थ प्राय विनया हो कर्मों में वा बलानु हर्ष शोक के दाह सुविधाधर्मों में सदा सम रहना। पांचवां 'अज्ञ' जो वद्वि

सम साध और इस के बीच से पूर्ण प्राप्त विद्वान् समोपदेश महर्षिओं के बचनों पर विचार करवा । इस 'समाधान' विषय की एकता । ये जो मित्र कर एक 'साधक' तीसरा कहता है ॥

चौथा 'मुमुक्षुत्व' अर्थात् जैसे बुधा बुधापुर को दिखाय भव ब्रह्म के द्वारा कुछ भी अच्छा नहीं लगता जैसे बिना मुक्ति के साधन और मुक्ति के दूसरे में भीति न हाना । ये चार साधन और चार अनुबन्ध अर्थात् साधनों के पक्षों के कर्म करने होते हैं । इस में से जो हम चार साधनों से कुछ पुरुष होता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है ॥

दूसरा 'सम्बन्ध' ब्रह्म की व्यक्तिगत मुक्ति प्रतिपादन और वेदादि शास्त्र प्रतिपादन को ब्रह्मका समन्वय कर सम्बन्धित करवा ॥

तीसरा 'विषयी' सब शास्त्रों का प्रतिपादन विषय ब्रह्म उसकी व्यक्तिगत विषय ब्रह्म पुरुष का नाम विषयी है ॥

चौथा 'प्रयोजन' सब दुःखों की विवृति और परमात्मन का प्राप्त होकर मुक्तिमुक्त का होना ये चार अनुबन्ध कहते हैं ॥

तदनन्तर 'अवबन्धुत्व' । एक अवबन्ध' सब कोई विद्वान् उपदेश कर सब शास्त्र ज्ञान देकर सुबधा विशेष ब्रह्मविद्या के सुनने में असमर्थ ज्ञान देना चाहिये कि वह सब विद्याओं में सुखम विद्या है सुककर दूसरा 'मनन' एकमत देख में बैठने सुने हुए का विचार करना जिस बात में संका हो पुनः पुनः और सुबधे समन भी बन्ध और मोक्ष उचित समर्थ तो पुनः और समन्वय करना ॥

तीसरा 'निदिध्यासन' जब सुनने और मनन करने से विस्मयेह हो जाय सब सम्यक्त्व होकर उस बात को देखना समझना कि वह जैसा सुना था विचार था वैसा ही है या नहीं ज्ञान योग से देखना चौथा 'साक्षात्करण' अर्थात् जैसा पदार्थ स्वयं पुरुष और स्वयं हो वैसा साक्षात्पक्ष ज्ञान देना 'अवबन्धुत्व' कहता है ॥

सदा समानुबध अर्थात् मोक्ष मञ्जीरता जाबजल प्रसाद आदि राजगुण अर्थात् ईश्वर के काम अभिमान विशेष आदि दोषों से ब्रह्मा होकर सब अर्थात् मोक्ष प्रकृति पवित्रता विद्या विचार आदि पुरुषों को बतल कर । (मित्री) सुखी ज्यों में मित्रता (कदावा) दुःखी ज्यों पर दया (मुक्ति) पुरुषात्म्यों से इन्ति होमा (उपका) दुःखमात्रों में न भीति और न डर करवा ॥

जिस प्रति न्यून से न्यून हो बन्ध पर्यन्त मुमुक्षु ज्ञान अवश्य कर विद्यते भीतर के मन आदि परार्थ साक्षात् हों । देखो ! अपने केतवत्त्व है इसी से ज्ञानस्वरूप और मन के छाती हैं क्योंकि जब मन मोक्ष चञ्चल आत्मनित का विचारपुत्र होता है उसको बयासता एका है जैसे ही इन्द्रिया प्रत्यु आदि का श्रुता पूर्वक का समन्वयता और एक कक्ष में अनेक पदार्थों के बन्ध परवा कर्तव्यता और सब से पूरक है जो पुरुष न होत तो स्वतन्त्र कर्ता इनके प्रक अधिकता कमी नहीं हो सकते ॥

हुमा है जैसे ही जगत् में विविध सुख दुःख आदि की बड़ी बड़ी दंष्ट्रें हैं पूर्ण ज्ञान का अनुमान नहीं नहीं जान सकते ? और जो पूर्ण ज्ञान को न मानने से परमेश्वर पचपाटी हो जाता है, क्योंकि बिना पाप के दारिद्र्य आदि दुःख और बिना पूर्वप्रक्षिप्त पुण्य के राज्य धनाढ्यता और मित्रद्विष्टा वृद्धको नहीं ही और पूरे जन्म के पापपुण्य के अनुसार सुख दुःख के देने से परमेश्वर न्यायकारी बंधनान् रहता है ॥

प्र०—बुद्ध जन्म होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है । जैसे सर्वोपरि राज्य को करे सो न्याय जैसे माछी अपने उपवन में छोटे और बड़े वृक्ष धारणा किसी को कष्टता उखाड़ता और किसी को रखा करता करता है । जिसकी ओर पक्ष है उसको वह चाने जैसे रखे वृक्ष के ऊपर कोई भी वृक्ष न्याय करेबाधा नहीं जो वृक्षको दण्ड दे सके वा ईश्वर किसी से करे ॥

उ०—परमेश्वर जिसको न्याय चाहता करता है सम्पूर्ण कमी नहीं करता इसलिये वह पञ्चमीय और बड़ा है जो न्यायमित्र कर वह ईश्वर ही नहीं, जैसे माछी वृक्ष के लिए मार्ग का संरक्षण में कुछ कापने न कापने कोन को कापने, प्रबोधन को बचाने योग्य को न कापने से वृक्ष होता है इसी प्रकार न्याय करण के करने से ईश्वर को शोच छोटे परमेश्वर के ऊपर न्यायपुत्र काम करण करता है क्योंकि वह स्वयम् स पवित्र और न्यायकारी है जो जन्म के सम्पूर्ण काम को जो भक्त के मोह न्यायधीन स भी न्यून और समर्पित होते । न्याय बुद्ध जगत् में बिना योग्यता के उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और कुछ काम किये बिना बच देने काया निम्नगीय समर्पित नहीं होता ? इसलिये ईश्वर सम्मान नहीं करता इसी से किसी से नहीं करता ॥

प्र०—बालमन्य ने प्रथम ही से जिसके लिये जिसका देना विचार है उतथा वृक्ष और जिसका काम करण है उतथा करता है ॥

उ०—उत्तम विचार जीवों के कर्मोपसार होता है सम्मान नहीं जो सम्मान हो तो नहीं करारभी सम्मानकारी होने ॥

प्र०—बड़े जोड़ी को पकड़ा ही सुख दुःख है नहीं को नहीं चिन्ता और जोड़ी को जोड़ी—जैसे किसी साहूकार का विचार राजकर में काय दपने का हो तो वह अपने घर से पाककी में बैठकर कचहरी में उल्लेखण में जाता हो बाजार में होते उसका जाया देकर राजकी कोन कहते हैं कि राजो पुत्र पाव का फल एक पाककी में पावण्ड पूर्वक देना है और दूसरे किन्तु जो पहिले ऊपर जोके स सम्मान होते हुए पाककी को कचहरी से काते हैं परन्तु बुद्धिमान् काम इसमें वह जानते हैं कि जिस १ कचहरी निकल जाती जाती है जैसे १ साहूकार को बड़ा शोक और सम्पद बड़ा जाता और कहाती का जानन्द होता जाता है जब कचहरी में पहुँचते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

हार बाज तो सेन्नी हुन्हासागर में बूब कर्मों और के कहार कैले के कैसे रहते हैं
हरी प्रकर जब राजा सुन्दर कोमल बिहारी में सोता है तो भी शीघ्र निद्रा नहीं
घटी और मन्त्र कंठ पर और मिठी उठे नीचे लख पर सोता है बसको
यह ही निद्रा घटी है ऐसे ही सर्वत्र समझो ॥

३०—बह समझ बाह्यविषयों की है। क्या किसी साहूकार से कर्म कि तु
कहार कबवा और कदर से कर्म कि तु साहूकार बगवा तो साहूकार कभी कदर
कबवा नहीं और कदर साहूकार बगवा चाहते हैं। जो कुछ हुन्हा बगवा होता
तो बगवा १ प्रकथा जोड़ नीचे और ऊँच बगवा दोनों न चाहते। देखो! एक
बीज विज्ञान, पुष्पाग्राधीमान् राजा की लम्बी के गर्म में छाया और दूसरा
महमरिषि बसिधारी के गर्म में छाया है। एक को गर्म से लेकर धर्मका मुक्त
और दूसरे को सब प्रकर का हुन्हा मिळता है। एक जब कर्मका है तब सुन्दर
सुयन्त्रिपुत्र जब प्राणि से स्नाय पुक्ति से बाकीदेव, पुरुषपान्नादि बगवोन्त्र
प्राप्त होते हैं। जब वह दूध पीया चाहता है तो उस के छाव मिठी प्राणि
मिळाने बदेह मिळता है। बसको प्रसन्न रहने के लिये बीज काकर बिहारी
समारी उत्तम कर्मों में बाज से प्राप्त होता है, दूसरे का कर्म कर्म में
होता कर्म के लिये जब भी नहीं मिळता जब दूध पीया चाहता है वह दूध
के बरसे में दूध, कर्मका प्राणि से पीया जाता है बसको भर्त स्म से रोता
है। कोई नहीं पूछता हुन्हा बिहारी को बिना पुष्प पाप के कुछ हुन्हा होते से
परमेस्वर पर होय जाता है। दूसरा कैसे किता किने कर्मों के कुछ हुन्हा मिळते
हैं तो कर्म करक कर्म भी न होय चाहिये क्योंकि कैसे परमेस्वर ने इस समय
किता कर्मों के कुछ हुन्हा बिना है कैसे मने पीये भी जिसको कर्मका उत्तम कर्म
में और जिसको कर्म करक में मेज देय पुष्प सब जीव धर्ममनुष्य हो जाँको
कर्म नहीं करें? क्योंकि कर्म का कर्म मिळने में कर्मका है। परमेस्वर के कर्म है
कैसी प्रसन्न होयी किता कर्म तो पापकर्मों में जब न होकर धर्म में
पाप की बुद्धि और कर्म का कर्म हो जायगा। इसलिये पूर्व कर्म के पुष्प पाप
के अनुसार कर्मका कर्म और कर्मका कर्म पूर्वकर्म के कर्मका कर्म बसिधारी
कर्म होते हैं ॥

प्र०—मनुष्य और अन्य प्राणि के शरीर में जीव कर्मका है यह
मिळ १ प्राणि के ?

उ०—जीव कर्मका है परन्तु पाप पुष्प के बोध से मर्तिन और पक्ति होते हैं ॥

प्र०—मनुष्य का जीव प्राणि में और प्राणि का मनुष्य के शरीर में
और भी का पुष्प के और पुष्प का की के शरीर में जाता जाता है या नहीं ?

उ०—हां जाता जाता है, क्योंकि जब पाप का जाता पुष्प मूल होता
। तब मनुष्य का जीव प्राणि जीव शरीर और जब कर्म अधिक तथा धर्म
मूल होता है तब देव धर्म विज्ञानी का शरीर मिळता और जब पुष्प पाप
बराबर होता है तब साधारण मनुष्यकर्म होता है। इसमें भी पुष्प पाप के
उत्तम मर्मम मिळते होते से मनुष्यादि में भी उत्तम मर्मम मिळते शरीरदि

अविद्या स्मिताखण्डपात्रमिषिष्या पञ्च फलशः ॥ को पत्रे २। १५ ३ ४

इसमें स अविद्या का स्वरूप कह जाने पृथक् सर्वमान्य बुद्धि को ध्येय से भिन्न न समझना अस्मिता मुक्त में प्रीति राम, दुःख में अप्रीति द्वेष और सब प्राणीमात्र को यह इच्छा सब राखती है कि मैं सब शरीरत्व रहूँ, मरूँ नहीं मरुँ दुःख स सब अविधिकेय कहता है। इस पाँच लक्षणों को योग्याभाष विद्यान से पुनः के महा की प्राप्त हो के मुक्ति के परमात्मन् को भोगना चाहिये ॥

प्र०—जैसी मुक्ति आप म्नाते है वैसी अन्य कोई नहीं मानता देखो जैसी लोग मोक्षलिका सिवपुर में जाके रुप चाप के राख्य ईसाई बीबा चासमात्र जिस में विवाह करवाई जाने गये बछरि चारख स आनन्द भोगमा वैस ही सुखसमय सातवें भासमान समसमीची भीपुर रीज केकाय केकाय हैकुछ और पांडुकिने पोछाई पोछोक आदि में जाके उत्तम की चक पाव कद, लज्ज आदि को प्राप्त होकर आनन्द में रहने को मुक्ति मानते हैं। पौराणिक लोग (स्यसोम्य) ईश्वर के लोक में निवास (साधुज्य) बोधे आई के सख्त साथ रहना (स्यकप्य) जैसी उपासनीय देव की पांडुति है बिना सब अन्धा (सामीप्य) स्वयं के समान ईश्वर के समीप रहना (सानुज्य) ईश्वर से संयुक्त होकरना ये चार प्रकार की मुक्ति मानते हैं। वैदिक लोग महा में सब होने का मोक्ष समझते हैं।

उ०—जैसी (१२) बारहवें ईसाई (१३) तेरहवें और (१४) चौदहवें समुदास में सुखसमीची की मुक्ति आदि विषय मिलेय कर दिखेंगे। जो समसमीची भीपुर में जाकर कछी के सख्त किसी मय मन्त्रादि पाया पीया रज्ज राम भोग करवा मानत है वह पक्षों से कुछ मिलेय नहीं। ऐसे ही मन्त्रादि और विष्णु के सख्त पांडुति जाके पारंगती और कछी के सख्त जीवुज्ज हाकर आनन्द भोगवा वहाँ के प्रकाश छायाओं से अधिक इतना ही सिद्ध है कि वहाँ रोम न होंगे और सुखसख्त सब रहमी। यह उनकी बात मिथ्या है क्योंकि जहाँ भोग वहाँ रोम और जहाँ रोम वहाँ दुःखसख्त प्रचलन होती है और पौराणिकों न पक्ष्य चाहिये कि जैसी तुम्हारी चार प्रकार की मुक्ति है वैसी तो कृमि कीट पतङ्ग पक्षरियों की भी लक्षा सिद्ध पाछ है क्योंकि न कितने लोक है वे सब ईश्वर के है इन्हीं में सब जीव रहत है इसलिये साधील्य” मुक्ति अवलम्बन पाछ है।

सामीप्य” ईश्वर सबज जगत् होने से सब उसके समीप है इसलिये “सामीप्य” मुक्ति स्पष्ट सिद्ध है। सानुज्य” जीव ईश्वर स सब प्रकार प्राय और अन्ध होने स लक्ष्य कन्धुक्त है इसलिये “सानुज्य” मुक्ति भी बिना प्रत्यक्ष न सिद्ध है और सब जीव सर्वभूषण परमात्मा में व्याप्य होने से संयुक्त है इसलिये “सानुज्य” मुक्ति भी स्पष्ट सिद्ध है। और जो जन्म साधारण नैतिक लोग मरने से लक्षों में तार मिथकर परम मुक्ति मानते है वह तो कुछ गहरा आदि को भी प्राप्त है। ये मुक्तियाँ नहीं हैं किन्तु एक प्रकार का भ्रमन है क्योंकि ये लोग सिवपुर

मोक्षतिष्ठा, जीमे प्राप्तमात्र प्राप्तमे प्राप्तमात्र मीपुर केहाण वैकुण्ठ, मोक्षोक्त को एक देय में क्या किंचित मायते हैं जो वे जब स्वयं से प्रपन्न हों तो मुक्ति हुए मात्र इसीद्विने मिते १२ (चरह) पम्पर के भीतर द्रष्टव्य * होते हैं इसके समस्त सम्पन्न में हीमे मुक्ति तो नहीं है कि वहाँ इच्छा हो वहाँ विचारे नहीं करते नहीं । न मन्त्र न साधन न बुद्धि होता है । जो जन्म है वह उन्मत्ति और मरण प्रलय कहा है । समस्त पर जन्म लेते हैं ॥

प्र०—जन्म एक है या अनेक ?

उ०—अनेक ॥

प्र०—जो अनेक हों तो पूर्व जन्म और पुन्य की वस्तु का स्मरण क्यों नहीं ?

उ०—जीव जन्मज है निश्चयवर्ती नहीं इसलिये स्मरण नहीं रहता । और किंचित मन से ज्ञान करता है वह भी एक समस्त में हो ज्ञान नहीं कर सकता । मन्त्रा पूर्व जन्म की बात तो बुर रहने लीजिये इसी देह में जब जन्म में जीव का शरीर बना पञ्चात् जन्मा पांचवें वर्ष से पूर्व तक जो ९ कर्तें हुई हैं उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और कायुत का स्वयं में कृतज्ञा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब पुनः प्रतीति पात्र विप्रर होती है तब कायुत यदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और तुम से कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेराहवें वर्ष के पांचवें माहमे के कवर्षे दिन रात बजे पर पहली मित्र में तुमने क्या किया था ? तुम्हारा मुख हाथ काय वन शरीर किंचित और किंचित प्रसर का था ? और मन में क्या विचारा था ? अब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्व जन्म की वस्तु के स्मरण में संका करना केवल व्यर्थकर्म की बात है और जो स्मरण नहीं होता है इसी से जीव सुखी है नहीं तो सब जन्मों के दुःखों को देख १ दुःखित होकर मर जाता । जो कोई पूर्व और बीच जन्म के वर्तमान को समझा चाहे तो भी नहीं जान सकता क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वल्प क्षण है वह जन्म ईश्वर के आश्रमे योग्य है जीव के नहीं ॥

प्र०—जब जीव को पूर्व का ज्ञान नहीं और ईश्वर इसको दण्ड देता है तो जीव का सुधार नहीं हो सकता क्योंकि जब उसको ज्ञान हो कि हमने अमुक कर्म किया था वही का यह फल है तभी वह पाप कर्मों से बच सके ॥

उ०—तुम ज्ञान के प्रकार का जानते हो ?

प्र०—मनसादि प्रमाणाँ से जाह प्रकार का ॥

उ०—तो जब तुम ज्ञान से लेकर समस्त १ में राज, जब बुद्धि, विद्या, शिष्य विद्वत्, मूर्खता आदि सुख दुःख संसार में दूक कर पूर्वजन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते ? जैसे एक अविद्या और एक वैद्य को कोई रोग हो उसका निदान अर्थात् कारण क्या जान लेता है और अविद्या नहीं जान सकता उससे वैद्यक विद्या पड़ी है और वृद्ध ने नहीं परन्तु उपाधि रोग के होने से अर्थात् मी इत्यादि जान सकता है कि मुझ से कोई दुःख होयवा है जिससे मुझे यह रोग

हुआ है जैसे ही जगत् में विभिन्न सुख दुःख आदि की कड़ी कड़ी देह के पूर्व जन्म का अनुमान नहीं नहीं आन लेते । और जो पूर्व जन्म को न मानने को परमेश्वर पचपत्ती हो जाता है क्योंकि बिना पाप के इच्छायादि दुःख और बिना पूर्वप्रसिद्ध पुण्य के राज्य प्रवर्तमान और विद्विष्टता उसके नहीं ही और पूर्व जन्म के पापपुण्य के अनुसार दुःख सुख के देने से परमेश्वर न्यायकारी बधायक रहता है ॥

प्र०—एक जन्म होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है । जैसे खर्चोपरि राजा को कर से तो न्याय जैसे माछी अपने कपड में जोड़े और लगे हुए कागजात किसी को कटता उखाड़ता और किसी की रक्षा करता बचाता है । निरक्षरी को बच है उसको वह चाहे जैसे रखे उसके ऊपर कोई भी दूसरा न्याय करेगा नहीं जो उसके दण्ड है उसे या ईश्वर किसी से करे ॥

उ०—परमात्मा सिद्धिने न्याय चाहता करता है सम्मान कमी नहीं करता इच्छिने वह पूजनीय और बड़ा है जो न्यायनिरुद्ध करे वह ईश्वर ही नहीं जैसे मछली बुद्धि के बिना मार्य का प्रकाश में लुप्त कगाने न कटने कोम्य को कटने, धनोन्म को बझने बोलने को न बझने से दूषित होता है इसी प्रकार बिना करण के करने से ईश्वर को दोष लगे परमेश्वर के ऊपर न्यायसुख कम करण समरप है क्योंकि वह स्वभाव से पवित्र और न्यायकारी है जो जन्म के समान काम करे तो जगत् के भेद न्यायधीन से भी न्यून और अप्रतिष्ठित होने । क्या इस जगत् में बिना बोधका के उत्तम काम किने प्रतिष्ठा और कुछ काम किने बिना दण्ड देने बिना विन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता ? इसलिये ईश्वर सम्मान नहीं करता इसी से किसी से नहीं करता ॥

प्र०—परमात्मा ने प्रथम ही से जिसके सिने जितना देना विचार है उतना देना और जितना कम करवा है उतना करता है ॥

उ०—उसका विचार जीर्ण के कमीनुसार होता है जन्मदा नहीं जो जन्मदा हो तो नहीं मरणाधी जन्मदाकारी होने ॥

प्र०—बड़े जोरों को एकठा ही सुख दुःख है वहीं को बड़ी किन्ता और जोरों को जोड़ी—सिद्ध किसी साहसिक का किन्तु राज्य में पाक करने का हो तो वह अपने कर से पाककी में बैठकर कचहरी में उन्मन्मन् में काटा हो बाजार में होके उसको जगत् देकर मजाली लोग कहते हैं कि इसो पुण्य पाप का फल एक पाककी में धानम्पूर्वक वेदा है और दूसरे किन्तु जूते पहिर ऊपर नीचे से तप्यमान होते हुए पाककी को उठाकर से खाने हैं परन्तु बुद्धिमत् काम इसमें वह समझे हैं कि सिद्ध १ कचहरी निकट प्यली जाती है जैसे १ साहसिक को बड़ा दौक और सनेह बचाता जाता और कदारों को बाधम् होता जाता है मय कचहरी में पहुँचते हैं तब सज्जी इधर अधर जाने का विचार करते हैं कि साहसिक (ककीक) के पाककारों का धरितेदार के पाक भाज हाक मय भीष्टा न खाने क्या होगा और कदम कोम समाप्त नीचे परावर गार्ते करते हुए प्रथम होकर धानम् में से खाने हैं । जो वह जीत जान को कुछ सुख और

हर कम तो सेन्धी हुन्हासापर में बूब बायें और वे कटार जैसे के ऐसे रहते हैं
इसी प्रकार जब राजा सुन्दर कोमल बिहारी में सोता है तो भी शीघ्र बिजा नहीं
पायी और मनुष्य कंकर पत्थर और मिट्टी जैसे नीचे कपड़ पर सोता है उसको
यह ही बिजा छाती है ऐसे ही सर्वत्र समझो ॥

३०—यह समझ अज्ञानियों की है। क्या किसी साधुकार से कहें कि तु
कटार बना और कटार से कहें कि तु साधुकार बनना तो साधुकार कभी कटार
बनना नहीं और कटार साधुकार बनना चाहते हैं। जो मुक्त हुआ बालर होता
तो अपनी १ चकक्य ब्रह्म नीच और छैच बनना दोनों न चाहते। देखो! एक
बीब बिहारी, पुष्पाय्य श्रीमान् राजा की शम्बी के गर्म में बाया और दूसरा
महामूर्ख बलिपारी के गर्म में बाया है। एक को गर्म से डेरन सर्वथा मुक्त
और दूसरे को सब प्रकार का दुःख मिळता है। एक जब जन्मता है तब सुन्दर
सुगन्धिपुष्प लक्ष आदि से लला पुष्टि से काशीदेव, दुर्गपादरि यथाशेय्य
मस्त होते हैं। जब वह दूध पीना चाहता है तो उस के साम मिथी आदि
मिठाकर परोह मिळता है। उसको प्रसन्न रखने के लिये बौद्ध चकर किछीना
छाछरी उत्तम कान्ची में काढ़ से आकर होता है, दूसरे का जन्म जन्म में
होता स्वयं के लिये सब भी नहीं मिळता जब दूध पीना चाहता है वह दूध
के बरत में बूझा, परोह आदि सब पीया जाता है अस्मत्त अर्त स्वर से रोता
है। कोई नहीं पूजता, हत्यादि जीवों को विषा पुष्प पाप के मुक्त हुआ होने से
परमेश्वर पर शोक जाता है। दूसरा जैसे किन किये कर्मों के मुक्त हुआ मिळते
हैं तो प्राप्त करक स्वर्ग भी न होया चाहिये क्योंकि जैसे परमेश्वर ने इस समय
किन कर्मों के मुक्त हुआ दिया है जैसे मो पीछ भी जिसको चाहेय उसको स्वर्ग
में और जिसको चाहे नरक में भेज देया पुनः सब जीव अधर्मेय्य हो आये
धर्म क्यों करें? क्योंकि धर्म का सब मिळने में अन्तरेह है। परमेश्वर के हाथ है
जैसी उसकी प्रसन्नता होपी किता करय्य तो पापकर्मों में धन न होकर संसार में
पाप की वृद्धि और धर्म का पच हो जायय। इसलिये पूरे जन्म के पुष्प पाप
के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार अविध्यत्
जन्म होते हैं ॥

प्र०—मनुष्य और अन्य पशुदि के शरीर में जीव वृक्ष है या
भिन्न १ जाति के?

उ०—जीव पशु है परन्तु पाप पुष्प के जन्म से अधिक और पवित्र होते हैं ॥

प्र०—मनुष्य का जीव पशुदि में और पशुदि का मनुष्य के शरीर में
और भी का पुष्प के और पुष्प का भी के शरीर में जाता जाता है या नहीं?

उ०—हां, जाता जाता है, क्योंकि जब पाप वह जाता पुष्प मृत होता
है तब मनुष्य का जीव पशुदि जीव शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म
मृत होता है तब वह कर्मों बिहारी का शरीर मिळता और जब पुष्प पाप
बालर होता है तब आचार्य मनुष्यजन्म होता है। हममें भी पुष्प पाप के
अन्तम मन्त्रम विहृत होने से मनुष्यदि में भी उत्तम मन्त्रम विहृत शरीरदि

सामग्री बांधे होते हैं और जब अधिक पाप का फल पचचरि शरीर में जें
 बिधा है पुनः पाप पुन्य के पुन्य रहने से मनुष्य शरीर में छाया और पुन्य के
 फल मोक्षर छि भी मनुष्य मनुष्य के शरीर में छाया है जब शरीर के
 निष्कृता है उसी का नाम "सुख" और शरीर के साथ सम्बन्ध होने का नाम
 "धर्म" है जब शरीर जोड़ता तब परमात्मन्य अर्थात् परमात्मन्य वायु में रहने
 क्योंकि "धर्मो वायुना" वेद में लिखा है कि जब नाम वायु का है, मनुष्य
 का अविष्टत नाम नहीं । इसका विवेक ज्ञानमय मनुष्य आरहने समुदास में विवेक ।
 परमात् परमात्मन्य अर्थात् परमात्मन्य ज्ञान और के पाप पुन्यपुन्य मनुष्य देता है वह मनु,
 पाप ज्ञान परमात्मन्य शरीर के किन्तु द्वारा दूधरे के शरीर में ईश्वर की मेरवा से प्रविष्ट
 होता है । जो प्रविष्ट होकर ज्ञानता बीज में का धर्म में निष्ठ हो शरीर ज्ञान
 का फल देता है जो की के शरीर धारण करने योग्य धर्म हों तो जो और
 पुन्य के शरीर धारण करने योग्य धर्म हों तो पुन्य के शरीर में प्रवेश करता है
 और मनुष्य धर्म की स्थिति धर्म की पुन्य के शरीर में धर्मन्य करने रक्षार्थ
 के कारण होने से होता है । इस प्रकार ज्ञान धर्म के धर्म मनुष्य में एकलक जीव
 पदा रहता है कि ज्ञानमय धर्म धर्म धर्मोपाधवा ज्ञान को करने सुख को नहीं पाता
 क्योंकि ज्ञान धर्मोपाध करने से मनुष्यों में धर्म धर्म और सुख में धर्मन्य-
 धर्मन्य धर्म मनुष्य धर्मों से रहित धर्मन्य में रहता है ॥

प्र०—कृति एक काम में होती है व अनेक कामों में ?

२०—अथैव कर्मो मे सर्वोक्तिः—

मिथतं हृदयमग्निश्चिद्यन्ते सर्वसंशया ।

स्वीयन्ते स्वास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराश्वरे ॥ ३ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

अब इस जीव के इन्द्रिय की अविद्यत साक्षात्कारी शक्ति का वातावरण प्रत्यक्ष होकर भीतर कुछ करने लगता है। अतः प्रत्यक्ष होकर ही तभी वह परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर भीतर व्यापक रहता है उसमें विद्यमान रहता है ।

प्र०—सृष्टि में परमेश्वर में जीव मिश्र व्यक्ता है या पृथक् रहता है ?

उ०—पुनः रहता है क्योंकि जो मित्र साथ तो मुक्ति का सुख कौन भोगे ? और मुक्ति के मित्रों का साथ ही वे सब मित्र बन होयेंगे यह मुक्ति तो वहीं किन्तु जीव का महान् ज्ञानमात्र चाहिये ॥ जब जीव परमेश्वर की साक्षात्कृत उच्चतम कर्म क्षत्तंग बोधमात्रा पूर्वोक्त सब साधन करता है वही मुक्ति को प्राप्त है ॥

सत्यं ध्यातमममं प्राप्य यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह प्रपूज्या विपश्च्यति ॥

वैचित्री मन्त्रमन्त्रवर्णी । अथ १ । अं १ ।

जो जीवनमा अपनी बुद्धि और शक्त्या में स्थित हूँ जहाँ भीरु शक्त
 का अभाव है परमात्मा को जानता है वह उस अभावकर्म मध्य में स्थित होवे
 उक्त विधिपूर्वक अग्रजविष्णुका शक्त के साथ सब कर्मों को प्राप्त होवे है

धर्मात् जिस २ आत्मन् की कामना करता है उस २ आत्मन् को प्राप्त होता है वही मुक्ति कहाली है ॥

प्र०—वैसे शरीर के बिना सांसारिक सुख नहीं भोग सकता वैसे मुक्ति में बिना शरीर आत्मन् कैसे भोग करेगा ?

उ०—इसका समाधान पूर्व कह आये हैं और इतना अधिक सुखो—वैसे सांसारिक सुख शरीर के आधार से भोगता है वैसे परमेश्वर के आधार मुक्ति के आत्मन् को जोखना भोगता है । वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक रूप में स्वस्थान् भूता सब ज्ञान से सब चिह्न को देखता आत्म मुक्तों के ज्ञान मिश्रता चिह्न बिना को रूप से देखता हुआ सब कोष जोखनलों में धर्मात् कितने से खोले जाते हैं और नहीं जाते उस सब में भूता है वह सब परमों को जो कि उसके ज्ञान के धर्मों हैं देखता है । किन्तु ज्ञान अधिक होता है उसके अनन्त ही आत्मन् अधिक होता है । मुक्ति में जोखना निर्मल होने से पूर्व ज्ञानी होकर उसके सब संचिहित परमों का ज्ञान व्यापक होता है । वही सुखविशेष स्वर्ग और विपश्यन् में वैश्वर दुःखविशेष भोग करना करक कहाता है ।

स्वा० सुख का नाम है “सुखं गच्छति पश्चिन् स स्वर्ग” “अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति” जो सांसारिक सुख है वह अमन्य स्वर्ग और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आत्मन् है वही विशेष स्वर्ग कहाता है ॥

सब जीव स्वभाव से सुखप्राप्ति की इच्छा और दुःख का विरोध होना चाहते हैं परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं जोड़ते जब तक इनको सुख का मिश्रण और दुःख का दूषण न होगा क्योंकि मिश्रण कारण धर्मात् मूल होता है वह वह ज्ञानी नहीं होता वैसे—

क्षिप्ते मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे पुण्यं नश्यति ॥

वैसे मूल का जाने से वृक्ष नष्ट होता है वैसे पाप को जोड़ने से पुण्य नष्ट होता है । ऐसी अनुरक्ति में पाप और पुण्य की बहुत मात्रा की पति—

मानसं मनसेवात्मनुपमुक्तं शुभाऽशुभम् ।

वाचा वाचा कृतं कर्म कायमेव च कायिकम् ॥ १ ॥

शरीरजे कर्मक्षोभेति स्थावरतां नरः ।

वाचिके पश्चिन्गतां मानसेरन्त्यप्रतिताम् ॥ २ ॥

यो यदैषां गुणो वेहे साकस्यनातिरिष्यत ।

स तदा तद्गुणप्रार्थं तं करोति शरीरिणम् ॥ ३ ॥

सर्वं धर्मं तमोऽध्यामं रागद्वेषो रजः स्मृतम् ।

पतद् व्यासिमद्वेषां सर्वमृताभितं वपुः ॥ ४ ॥

तत्र पत्नीतिस्त्र्युक्तं किञ्चिदसमि ज्ञापयत् ।

प्रशान्तमिह शुद्धार्मं सर्वं तदुपधारयत् ॥ ५ ॥

यत्तु पुण्यसमापुच्छमपीति करमात्मनः ।

तत्रोऽप्रतिपं विद्यास्तततं द्वारि वहिनाम् ॥ ६ ॥

समझी कहे होते हैं, और जब अधिक पाप का बल पचादि शरीर में रहे बिना है पुनः पाप पुनः के द्वारा रहने से मनुष्य शरीर में छाया और पुनः के बल मोमकर फिर भी मनुष्य मनुष्य के शरीर में छाया है जब शरीर के निष्कृता है उन्ही का नाम "सूक्ष्म" और शरीर के छाया संयोग होने का नाम "अन्तः" है, जब शरीर जोड़ता तब समाकलन अर्थात् व्यापकत्व अनु में रहता क्योंकि "पमेत वायुना" वेद में लिखा है कि वन वन का अनु का है, वनवायु का करिष्य वन नहीं। इसका विशेष कारण मनुष्य आरहर्ष समुदाय में लिखे। पञ्चम्य बर्मेराज अर्थात् परमेश्वर उद्योग के पाप पुनःपापुत्तर अन्तः केन्द्र है वह अनु, अन्तः, बल अन्तः शरीर के बिना द्वारा दृष्टि के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रसिद्ध होता है। जो प्रसिद्ध होकर अन्तः शरीर में जा वन में स्थित हो शरीर अन्तः का बाहर जाता है, जो जी के शरीर अन्तः करने योग्य कर्म हों तो जी और पुनः के शरीर अन्तः करने योग्य कर्म हों तो पुनः के शरीर में प्रवेश करता है और अनुसक्त गर्म की स्थिति समस्त जी पुनः के शरीर में सम्मिल्य करने शरीर के अन्तः होने से होता है। इस प्रकार पञ्च प्रकार के अन्तः मरु में समस्त जी पदा रहता है कि अन्तः अन्तः कर्मोपासना अन्तः को करने मुक्ति को नहीं पता क्योंकि अन्तः कर्मोपादि करने से मनुष्यों में अन्तः अन्तः और मुक्ति में महत्त्वपूर्ण अन्तः मरु मरु श्रुतों से रहित अन्तः में छाया है।

प्र०—मुक्ति कब कब में होती है या अनेक जन्मों में ?

उ०—अनेक जन्मों में क्योंकि—

मिथते हृदयमन्धिरिहृद्यन्ते सर्वसंश्रया ।

दीप्त्यन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराश्वरे ॥ सु० २। अ० २। म० ८॥

जब हृदय जीव के हृदय की अन्तः अन्तःकामी पाँच अन्तः शरीर संश्रय बिना होते और पुनः कर्म का को प्राप्त होते हैं तभी अन्तः परमेश्वर जो कि अपने अन्तः के अन्तः और बाहर व्याप रहा है उसमें निवास करता है।

प्र०—मुक्ति में परमेश्वर में जीव स्थित करता है या दृष्ट रहता है ?

उ०—दृष्ट रहता है क्योंकि जो स्थित अन्तः तो मुक्ति का दृष्ट जीव को भी ? और मुक्ति के स्थिति साक्षात् है वे सब निष्कल होकर, वह मुक्ति तो नहीं किन्तु जीव का अन्तः अन्तः अन्तः, ३ अन्तः जीव परमेश्वर की अन्तःपादक अन्तः कर्म अन्तः अन्तःपादक अन्तः अन्तः अन्तः करता है वही मुक्ति को पता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेत्ति निश्चितं मुक्षार्ण परमे व्योमन् ।

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सद्यः ब्रह्मया विपश्चितेति ॥

तैत्तिरी ब्रह्मसूत्रम् ॥ अ० १। अ० १॥

जो जीवन्मा अपनी मुक्ति और ज्ञान में स्थित सब ज्ञान और अन्तः अन्तःपादक परमेश्वर को प्राप्त करता है वह उद्योग व्यापक अन्तः में स्थित होने का "विपश्चित्" अन्तःपादक अन्तः के साथ सब कर्मों को प्राप्त होता है

जब आत्मा और मन इन्द्रियों के प्रसक्तता रहित विषय में इधर उधर गमन आरम्भ में पड़े तब समझना कि राजोगुण प्रधान, सत्त्वगुण और तमोगुण प्रधान है ॥ ९ ॥

जब मोह जपोत् सांसारिक पदार्थों में वैसा हुआ आत्मा और मन हो जब आत्मा और मन में कुछ विवेक न रहे तब तबों में आसक्त, तर्क विवर्क रहित आत्मा के योग्य न हो तब निश्चय समझना चाहिये कि इस समय मूल में तमोगुण प्रधान और सत्त्वगुण तथा राजोगुण प्रधान है ॥ १० ॥

जब जो इस तीनों गुणों का उदय मध्यम और विह्वल ज्ञानोदय होता है उसको पूर्वमध्य से कहते हैं ॥ ११ ॥

जो देहों का जन्मसं प्रमाणोदय, ज्ञान की वृद्धि, पवित्रता की इच्छा इन्द्रियों का निग्रह प्रमोदित और आत्मा का चिन्तन होता है वही सत्त्वगुण का लक्षण है ॥ १२ ॥

जब राजोगुण का उदय सत्त्व और तमोगुण का प्रसक्तता होता है तब आरम्भ में कृच्छ्रा पर्व का प्रारम्भ कर्मों का प्रवृत्ति निरन्तर विषयों की चेष्टा में प्रीति होती है तभी समझना कि राजोगुण प्रधानता से मूल में वर्त रहा है ॥ १३ ॥

जब तमोगुण का उदय और दोनों का प्रसक्तता होता है तब आरम्भ को प्रमाण सत्त्व पर्वों का मूल प्रवृत्ति, आरम्भ आरम्भ और निद्रा पर्व का प्रारम्भ प्रवृत्ति का होना, सांसारिक प्रमाणों के और ईश्वर में लब्धा का न रहना निद्रा १ प्रसक्तता की वृद्धि और प्रसक्तता का प्रमाण और किन्हीं व्यक्तियों में प्रसक्तता होने तब तमोगुण का लक्षण प्रमाण को जानने योग्य है ॥ १४ ॥

तब जब प्रवृत्ति आत्मा निद्रा कर्मों को करने करता हुआ और करने की इच्छा से लब्ध संका और तब को प्राप्त होने तब जानो कि मूल में प्रवृत्ति तमोगुण है ॥ १५ ॥

निद्रा कर्मों से इस लोक में जीवात्मा पुनः प्रवृत्ति प्रवृत्ति, प्रवृत्ति होने में भी प्रवृत्ति प्रवृत्ति को ज्ञान संका प्रवृत्ति प्रवृत्ति तब समझना कि मूल में राजोगुण प्रधान है ॥ १६ ॥

और जब मनुष्य का आत्मा जब न जानने को चाह, गुण प्रवृत्ति करता प्रवृत्ति, प्रवृत्ति कर्मों में लब्ध न करने और निद्रा कर्मों से प्रवृत्ति प्रवृत्ति प्रवृत्ति प्रवृत्ति ही में प्रवृत्ति तब समझना कि मूल में सत्त्वगुण प्रधान है ॥ १७ ॥

तमोगुण का प्रवृत्ति प्रवृत्ति राजोगुण का प्रवृत्ति प्रवृत्ति की इच्छा और सत्त्वगुण का प्रवृत्ति प्रवृत्ति प्रवृत्ति प्रवृत्ति तमोगुण से राजोगुण और तमोगुण से सत्त्वगुण प्रवृत्ति है ॥ १८ ॥

जब निद्रा १ प्रवृत्ति को जीव प्राप्त होता है उस १ को ज्ञाने कहते हैं—

इत्यर्थं सात्त्विका याम्नि मनुष्यात्मा रात्रिः ।

तिर्यक् सायमा तिर्यमित्यपि त्रिविधा यति ॥ १९ ॥

पक्षुः स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्त विषयात्मकम् ।
 अग्रतत्पर्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ ७ ॥
 अथाद्यामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः ।
 अग्रतो मध्यो अग्रमध्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ८ ॥
 वेदाभ्यासस्तपो ध्यानं शौचमग्निप्रपन्नमिन्द्राह ।
 धर्मक्रियात्मविन्ता च सास्त्रिकं गृह्यसंस्थम् ॥ ९ ॥
 आरम्भकविताऽप्यैष्यमसत्कार्यपरिमहः ।
 विषयोपसेवा लाजसं राजसं गुह्यसंस्थम् ॥ १० ॥
 क्रोधः स्वप्नो घृतिः क्रौर्यं वास्तिभ्य मिश्रवृत्तिता ।
 वासिन्धुता प्रमादश्च तामसं गुह्यसंस्थम् ॥ ११ ॥
 परस्मै कृत्वा कुर्वन् करिष्यन्नेव व्रजति ।
 तज्ज्ञेयं विबुधा सर्वे तामसं गुह्यसंस्थम् ॥ १२ ॥
 येनासिन्धुर्मखा क्रोचे व्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।
 न च शोचस्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥ १३ ॥
 यत्सर्वेष्विच्छति ज्ञातुं यच्च व्रजति वात्सरम् ।
 येन तुष्यति स्वात्मास्य तत्सत्यगुह्यसंस्थम् ॥ १४ ॥
 तमसो व्रजन्तं कामो राजसत्त्वस्यै उच्यते ।
 सत्यस्य व्रजन्तं धर्मो भौतधर्मेण यथोत्तरम् ॥ १५ ॥

अनु अ १५ । कोटि अ । १ । १२—१३ । १४—१५ ॥

अर्थात् मनुष्य हृद्य प्रकृत अर्थात् जेह, मध्यम और निम्न स्वभाव को जानकर
 उच्चतम स्वभाव का प्रवृत्त मध्य और निम्न का त्याग करे और वह भी निम्न
 आवे कि वह जीव मन से निम्न शुभ का अशुभ कर्म को करता है उच्च को मन,
 वाची से किने को वाची और शरीर से किने को शरीर से अर्थात् तुल्य दुःख
 को मोक्षता है ॥ १ ॥

जो घर शरीर से चोरी वरधीमान जेहों को प्रत्यक्ष चादि दुःख कर्म करता
 है उच्चको हृद्यदि स्वाधर का जन्म वाची से किने पाव कर्मों से रही और
 भृगुदि तथा मन से किने दुःख कर्मों से वाचास्य चादि का शरीर मिश्रता है ॥ २ ॥

जो गुह्य हन जीवों के देह में अविच्छेद से वर्तता है वह गुह्य वर जीव
 को अपने धारण कर देता है ॥ ३ ॥

जब अज्ञान में अज्ञ हो तब अज्ञ जब अज्ञान रहे तब तम और जब राग
 द्वेष में अज्ञान करे तब राजोगुह्य अज्ञाना चाहिये वे तीन प्रकृति के गुह्य सब
 संसारक वदर्थ में व्याप्त होकर रहते हैं ॥ ४ ॥

उसका किनेक इस प्रकार करना चाहिये कि जब अज्ञान में प्रवृत्तता मन
 प्रमाण के सत्य शुद्धमन्युक्त बनें तब समझना कि अज्ञान मध्यम और राजोगुह्य
 तथा तमोगुह्य अज्ञान है ॥ ५ ॥

जो उत्तम रजोगुणी हैं वे मन्धर (गाढेबाध) गुह्यक (बाधित बजाने हार) बध (भगवत्) विद्वानों के सबक और चापरा अर्थात् जो उत्तम रूपधारी भी उनका जन्म प्राप्त हैं ॥ ७ ॥

जो तपस्वी यदि सैन्धासी वैष्णवी विमान के बजानेबाधे ज्योतिषी और ईश्वर अर्थात् वैष्णवक मनुष्य होता है उनका प्रथम सारगुण्य के कर्म का फल जन्म ॥ ८ ॥

जो मध्यम सारगुण्य युक्त हुम्बर कर्म करते हैं वे जीव पञ्चकर्ता वैश्वमन्त्रि, विद्वत् बध विद्वत् चाधि और कामविद्या के ज्ञाता रचक ज्ञानी और (साधक) कवसिद्धि के द्विजे ज्ञान करने योग्य अभ्यासक का जन्म प्राप्त हैं ॥ ९ ॥

जो उत्तम सारगुण्ययुक्त होके उत्तम कर्म करते हैं वे मद्रा सब वैद्यों का ब्रह्म विष्णुत्र सब पृथिव्य विद्या का ज्ञानकर विविध विमानादि यन्त्रों को कणवेहान धार्मिक सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और सारगुण्य के जन्म और प्रकृतिकविद्या सिद्धि का प्राप्त होता है ॥ १० ॥

जो इन्द्रिय के बध हुम्बर विद्या धर्म को धारकर सधर्म करनेवाला अधिद्वान् हैं वे मनुष्यों में जीव जन्म पुर २ बुद्धकर्म जन्म का प्राप्त हैं ॥ ११ ॥

इस प्रकार सब रज और तमोगुणयुक्त का से जित २ प्रकार का कर्म जीव करता है उस २ को उत्ती २ प्रकार फल प्राप्त होता है । जो मुक्त होता है वे गुह्यनीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न रूढ़ कर महात्माही होने मुक्ति का साधन करें क्योंकि—

योगाद्विषयवृत्तिनिरोधः ॥ १ ॥ पा १ । २ ॥

तदा ब्रह्मसकपः स्वस्वानाम् ॥ २ ॥ पा १ । ३ ॥

वे योगशास्त्र पञ्चमंत्र के सूत्र हैं । मनुष्य रजोगुण तमोगुणयुक्त कर्मों से मन को रोक शुद्ध सारगुण्ययुक्त कर्मों से भी मन का रोक शुद्ध सारगुण्ययुक्त हो पञ्चात् उसका निरोध कर पञ्चात् अर्थात् एक परमात्मा और चर्मयुक्त कर्म इनके अग्रमार्ग में चित्त का उत्तर एकता विद्वत् अर्थात् एक ओर से मन की वृत्ति को रोकना ॥ १ ॥

जब चित्त एकता और विद्वत् होता है तब सबके प्रहा ईश्वर के स्वकर्म में जीवना की स्थिति होती है ॥ २ ॥

इत्यदि साधन मुक्ति के विधि करें और—

अथ त्रिविधबुद्ध्यात्मनः त्रिविधवृत्तिरसकपुद्गलात् ॥

बह साक्य (१ । १) का सूत्र है । जो आध्यात्मिक अर्थात् शरीरसम्बन्धी पीडा आधिभौतिक जो दूसर अधिर्बो में बुद्धिमान् हुम्बर, अधिभौतिक जो अधिबुद्धि, अधिगन्ध, अधिराजि मय इन्द्रियों की चञ्चलता से हुम्बर है इस विविध बुद्धि का बुद्धाध्य मुक्ति प्राप्त अग्रमार्ग पुरचार्थ है ॥

इसके अग्र आचार अग्रचर और अभ्यासक का विषय विधि ॥ ३ ॥

इति धामद्वयानन्दसरस्वतीस्वामिदत्त सत्याश्रमकाय सुभाषाविभूषित विद्याविद्यासम्बन्धीषद्विषय मधमः समुद्रास सम्पूर्णः ॥ १ ॥

स्वाध्याय' कर्मिकीटाद्य मत्स्या' सर्पाद्य कच्छपरा' ।
 पशुध्वज मृगाद्यैव जघन्या तामसी गति' ॥ २ ॥
 इस्तिनज्य तुरङ्गाज्य शूद्रा श्लेष्मकाज्य गहिता' ।
 सिंहा व्याघ्रा वराहाज्य मध्यमा तामसी गति' ॥ ३ ॥
 चारुणाज्य सुपर्णाज्य पुरुषाद्यैव दाम्भिका' ।
 रक्षांसि च पिशाचाज्य तामसीपूतमा गति' ॥ ४ ॥
 मज्जा मज्जा तटाद्यैव पुरुषा' शूलवृत्तय' ।
 घृतपात्रप्रसक्ताज्य जघन्या राजसी गति' ॥ ५ ॥
 राज्ञश्च क्षत्रियाद्यैव राजा जैव पुरोहिता' ।
 ब्राह्मण्यप्रधानाज्य मध्यमा राजसी गति' ॥ ६ ॥
 गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचरस्य ये ।
 तथैवाप्सरस' सर्वा राजसीपूतमा गति' ॥ ७ ॥
 तापसा यतयो क्षिमा ये च वैमात्रिका गच्छा' ।
 नक्षत्राणि च देव्याज्य प्रथमा सात्त्विकी गति' ॥ ८ ॥
 यस्यान श्रुपयो देवा यदा क्पोर्तीपि वस्सरा' ।
 पितरज्यैव साध्याज्य द्वितीया सात्त्विकी गति' ॥ ९ ॥
 ब्रह्मा किम्बसृजो धर्मो महानध्यक्तमथ च ।
 उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ १० ॥
 इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च ।
 पापान्संपाप्ति संसृज्यनयिद्वांसो नराधमा' ॥ ११ ॥

मनु अ १२। छो ४ । १२-२ । २२ ॥

जो मनुष्य सत्यिक है व देश जहाँ वह विद्यमान, जो तमोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणवृत्त होते हैं वे नीच गति को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

जो ब्रह्मन्त तमोगुणी हैं वे तत्काल वृक्षादि इमि नीच भस्म सर्व कष्ट पद और दुःख के जन्म को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हामी भोग्य राज श्रेष्ठ निर्मित कर्म करनेवाले सिंह व्याघ्र ब्राह्म जघन्य सुख के जन्म का प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

जो उत्तम तमोगुणी हैं वे चण्ड (जो कि क्षत्रिय दण्ड आदि कष्टकर मनुष्यों की शरणा करत हैं) सुन्दर पत्नी दाम्भिक पुरुष जघन्य जघन्य सुख के लिए अपनी प्रसन्न करनेवाले राजस जो द्वितीय पिशाच जघन्यकारी जघन्य मध्यम के चण्डमर्कता और मखिन रहत हैं वह उत्तम तमोगुण के कर्म का फल है ॥ ४ ॥

जो प्रथम तमोगुणी हैं वे मज्जा जघन्य तक्षक आदि सं मरने का कुरज आदि सं चण्डमर्कता मज्जा जघन्य नीच आदि के चण्डमर्कता मर जो चण्ड आदि पर कष्ट कष्टना चण्ड उठरना आदि करत हैं राजधानी मृत और मर पीने में प्राप्त हो वसे जन्म नीच तमोगुण का फल है ॥ ५ ॥

जो मध्यम तमोगुणी रहत हैं व राजा, क्षत्रियकर्त्य राजाओं के पुरोहित आदि करनेवाले, वृत्त मर्कता (क्षत्रीय क्षत्रीय) कुछ विमल क जन्म के जन्म पल है ॥ ६ ॥

जो उत्तम राजागुप्ती हैं वे गणपति (गानेशदे) गुरुक (कारिब बजाने इत)
 (भगवत) विद्वानों के सबक और चत्सरा अपान् या उत्तम रूपवली की
 प्रथम जन्म पाते हैं ॥ • ॥

आ ठपसी पति संवत्सी बेहपानी विमान के बखानेबाजे आधितिपी और देल
मयाव बंधाएक मनुष्य हलत है उधका प्रथम सखगुण के कर्म का पछ जाना ॥ ८ ॥

जो मध्यम सत्त्वगुण युक्त हस्त कर्म करता है वे जीव यज्ञकर्त्ता कहाँकेवित्ते, येज्ञान वह विष्णु प्राप्ति और कर्मविषय के ज्ञाता रक्षक प्रणी और (सात्व) प्रवर्धित के विषये सेवक करने योग्य सत्त्वगुण का जन्म प्राप्त है ॥ ६ ॥

जा उत्तम साधनसमूह होते उत्तम कर्म करते हैं वे प्रथम सब क्षेत्रों का वैद्य विषमज्ञ सब सुविद्यमान विषय का ज्ञानकर विविध विमानादि पाशों का ज्ञानकर धार्मिक सर्वोत्तम बुद्धिपुत्र और प्रत्यक्ष वे ज्ञान और श्रुतिवर्धित सिद्धि का प्रदाता होते हैं ॥ १ ॥

जो इन्द्रिय के द्वारा बाह्य विषय धर्म को ग्रहण कर अधर्म करनेहार अधिप्राप्त
है वे मनुष्यों में नीच जन्म पुर २ पुनर्जन्म जन्म को प्राप्त है ॥ ११ ॥

इस प्रकार सब राज चीज समानुपायक का से दित २ प्रकार का कार्य जीव करता है उस २ का उसी २ प्रकार का प्रस हता है । जो मुक्त होत है व गुणगीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में व रस कर महत्वात्मा हाक मुक्ति का साधन करें क्योंकि—

योगसिद्धयुक्तिमिरोध ॥ १ ॥ पृ १ । २५

तदा द्रष्टुं स्वरूपं भवत्यात्मम् ॥ २ ॥ श १ । ३ ॥

ये बोधग्राहक पञ्चानन के पुत्र हैं । मनुज राजगुरु तमभुक्तपुत्र कर्मों से मन को रोक शुद्ध साधुसमुत्तम कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध साधुसमुत्तम हो पञ्च इसका निर्माण कर पञ्चम अर्थात् एक परमेश्वर और धर्मपुत्र कम इनके सम्प्रदान में विद्या का यथा स्थान मिले। अर्थात् सब धर्म से मन की शुद्धि का रोचना ॥ १ ॥

अब चित्त प्रथम जीत निश्चय हुआ है तब सबक प्रहा ईश्वर के स्वरूप में जीवन्मुक्त की स्थिति होती है ॥ २ ॥

इलायि स्याधन मुक्ति के दिने को चीन—

अथ विविधनुशास्यन्तनियुत्तिरस्यन्तपुदशावः ॥

बह सांख्य (१ । १) का सूत्र है । आ आण्डाभ्यक्त चर्माङ्ग शरीरमन्मथी
वीरा अभिर्भूतिना आ दृष्टा व्यसिषो म दुःखिण इत्येव, आभिरुचि ओ
अनिर्पुष्टि अतिशय अनिर्पुष्टि मम इन्द्रियों की चञ्चलता से होता है इस
विधिसे दुःख का पुनरावृत्ति मुक्ति के लिये अत्यन्त पुरस्कार है ।

१५६ श्री गणेशाय नमः श्री गणेशाय नमः श्री गणेशाय नमः श्री गणेशाय नमः श्री गणेशाय नमः

इति श्रीमहर्षिभारद्वाजसंहितायां सत्यवर्मपात्रे सुभाषाविभूषिते
विद्याविद्यापद्मोपनिषत्तु नवमः समुद्राम् समुद्रः ॥ ६ ॥

अथ दशमसमुत्पन्नासारम्भ

अथाऽऽचारऽनाचारभेदाऽभेदविषयान् व्याख्यास्यामः

अब जो धर्ममुक्त कर्मों का आचार्य मुनीश्वर, सत्पुरुषों का संग और सद्गुरु के प्रत्यक्ष में रहि आदि आचार और इनसे विपरीत अनाचार कहला है उसको सिखते हैं—

विद्वद्भिः सयितं सद्भिर्निष्पन्नद्वयपरागिभिः ।
 इदं पन्थम्यनुज्ञातो वा धर्मस्तद्विषयवत् ॥ १ ॥
 कामा मता न प्रयस्ता न वैषाहास्त्यकामता ।
 काम्या हि कदाधिगमः कामयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥
 सद्गुरुसमूहः कामो वै यथा सद्गुरुसमूहः ।
 प्रवर्तानि यमधर्माश्च सर्वे सद्गुरुणा स्मृतः ॥ ३ ॥
 अकामस्य क्रिया फलितं इत्यपेक्षं न ह कर्हिचित् ।
 यद्यदि कुरुत किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेद्विषयम् ॥ ४ ॥
 क्वोऽधिको धर्ममूलं स्मृतिरीतिः च तद्विषयम् ।
 आचारश्चैव साधुनामात्मनस्तुष्टिरपि च ॥ ५ ॥
 सर्वेभ्यः समवश्येव निश्चितं ध्यानचतुषा ।
 भुक्तिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे नियिरोत वै ॥ ६ ॥
 भुक्तिस्मृत्युचितं धर्ममनुविष्टन् हि मामथ ।
 इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेक्ष्य बालुचर्मं सुखम् ॥ ७ ॥
 योऽधर्मस्यैव तं मूलं हेतुशालाधपाद् द्विजः ।
 स साधुमिर्बहिष्कार्यो नास्तिको कश्चिन्मनुजः ॥ ८ ॥
 वेदं स्मृतिं सदाचारं कस्य च प्रियमात्मनः ।
 पठन्तुर्विषयं प्राक् साक्षाद्दर्शनस्य कदाचनम् ॥ ९ ॥
 अर्बकामेष्वसक्तानां धर्मद्वान् विधीयते ।
 धर्मं विहासमानानां प्रमाद्यं परमं भुक्तिः ॥ १० ॥
 वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्मियेकाद्विज्जन्मनाम् ।
 कार्यं शरीरसंस्कारं पावनं प्रेक्ष्य च ह वा ॥ ११ ॥
 केशान्तं पोडयो वर्णं ब्राह्मणस्य विधीयते ।
 राक्षस्यन्धोर्ध्वविरो वैश्यस्य द्वावजिके ततः ॥ १२ ॥

मनु अ २। श्रौ १—४। १। ८। १। १३—१३। १५। १६ ॥

मनुष्यों को सदा इष्ट बात पर जान रखना चाहिये कि जिसका सेवन रामायण रहित विद्वान् लोग विना करें जिसको इष्टन चापेत् आभ्या से सत्य कर्तव्य धर्म नहीं धर्म मन्मथीय और कर्तव्य है ॥ १ ॥

क्योंकि इस संसार में अज्ञान कामना और निष्कामता भेद नहीं है केवल ज्ञान केदोष कर्म वे सब कामना ही से सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥

जा कोह कहे कि मैं विरिष्णु और भिष्मसहस्र हैं या हाँ जाऊँ तो यह कभी नहीं हो सकता क्योंकि सब काम धर्मों में सब सत्यवाच्यप्रति मत धर्म नियमकपी धर्म धर्मि संकल्प ही से कल्पते हैं ॥ ३ ॥

क्योंकि जो १ इष्ट पाप मम आदि चकारे जात है वे सब कमला ही स
बसते हैं आ इष्ट न हो तो आंक का कामकाज भी मीचता भी नहीं हो सकता ॥ १ ॥

इसलिए सम्यक् ब्रह्म मनुस्मृति तथा ऋषि प्रणीत शास्त्र संपुर्णों का अध्ययन और त्रिस्तंभ कर्म में आपका आग्रह प्रसन्न रहे अथवा भय शङ्का का विनाश हो तो तब कर्मों का सेवन करना उचित है। एवम् ! जब कोई मिथ्यामार्ग पर चली ऋषि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय शङ्का का विनाश उन्मूलक होती है इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं। ५॥

मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वह सत्यनों का आधार अपने धामा के अविनाश
 प्राप्त प्रकार विचार का प्राप्त करके धुति प्रमाण से स्वामानुष्य धर्म
 में प्रकाश करे ॥ ६ ॥

क्योंकि जो मनुष्य बड़ा धर्म और जा कर स बरिन्द स्मृत्युध धर्म
 का अनुष्ठान करता है वह इस धर्म में कीर्ति और मर के सर्वात्म सुख का
 प्राप्त होता है ॥ • •

श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहत हैं इससे सब कलम्याकलम्य का विधान करना चाहिये जो कोई समुच्च वेद वेदानुसृत शास्त्रग्रन्थों का अरम्भ कर उसको ग्रंथ माना जातिपाया करे हैं क्योंकि जो वेद की विन्या करता है वही शास्त्रिक कहाता है ॥ = ॥

इसलिए वेद स्मृति शास्त्रों का अध्ययन और अपने धर्म के ज्ञान से अधिक शिक्षण से यह धर्म के अन्तर्गत समाप्त नहीं है धर्म अपितु इसका इ. इ. ।

परन्तु जा द्रव्यों के क्षोभ और कम अथवा विषमता में क्या कुछ नहीं
हम उनको जो धर्म का ज्ञान होता है जा धर्म को ज्ञान के द्वारा करे उन
विषयों की परामर्श है ॥ १ ॥

इसी से सब मनुष्यों को उचित है कि वेराक पुनरुत्पत्ति करी स माहस
कषिब बरब चपन मन्त्रो का निष्कर्षि संरक्ष करे जा इस जन्म का पर जन्म
में पवित्र करके दिया है ॥ ११ ॥

आपका ६ साजहमें, जतिव ६ काहमें चौंर परव ६ चौबीसमें बरं में आपका
करी चौंर बीर मुकदम हो जस्य चहिने चबलू इस विधि ६ दमन कस्य सिम्य
को राव के चम्य छापी मूधु चौंर शिर ६ बज लड़ा मुकदम रहस्य चहिने चपोंत
पुन. कभी व रफस्य चौंर जो शीमप्रधान दस हों तो चम्यचम ६ चर जिन ६
रस्य चौंर जा जति उम्य इस हो ता सब सिम्य मदिह धरव क्या दस चहिने
बसकि टिर में बाज रहव म उम्यस्य चपिक होमी हे चौंर उम्य पुदि क्य हो

अथ दशमसमुद्भासारम्भ

अथाऽऽचाराऽनाचारभङ्गाऽभक्ष्यविषयान् व्याख्यास्यामः

अब जो धर्मयुक्त कर्मों का आचरण सुशीलता सत्पुरुषों का संग और सद्बिषय के प्रवृत्ति में लक्ष्य प्राप्ति आचार और इनसे विपरीत अनाचार भङ्ग है उन्को विस्तार है—

विद्वद्भिः सवितः सद्भिर्निष्कमद्वेषरागिभिः ।
इत्यभ्यास्यनुज्ञातो यो धर्मस्तथिबोधत ॥ १ ॥
कामात्मता न प्रशस्ता न वैवहास्त्यकामता ।
काम्यो हि केशाभिगमः कर्मयोगस्य वैदिकः ॥ २ ॥
सङ्कल्पमूलाः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसंभवाः ।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजा स्मृताः ॥ ३ ॥
अकामस्य क्रिया काचित् इत्यत मेह कश्चिद्वित् ।
पथसि कुर्वत किञ्चित् तत्तत्कामस्य खेदितम् ॥ ४ ॥
वदोऽविज्ञाः धर्ममूलाः स्मृतिशीले च तद्विद्वान् ।
आचारस्यैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरिव च ॥ ५ ॥
सर्वमनु समवेक्ष्येह निमित्तं ध्यानचतुषा ।
भुक्तिप्राप्ताप्यतो विद्वान् स्वधर्मे निबिडोऽथ वै ॥ ६ ॥
भुक्तिस्मृत्युचितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य आनुत्तमं सुखम् ॥ ७ ॥
योऽयमन्यत त मूढो हेतुशास्त्राभयाद् द्विजः ।
स साधुमित्रहिंसास्यो नास्तिको कश्चिन्मूढः ॥ ८ ॥
कश्च स्मृतिः सदाचारः तस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं मानुः साक्षात्कर्मस्य कस्यचनम् ॥ ९ ॥
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मप्राप्तं विधीयत ।
धर्मं क्रियासमानानां प्रमादं परमं भुतिः ॥ १० ॥
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्मित्येकादिद्विकर्मनाम् ।
कार्ण्यं शरीरसंस्कारं पापनं प्रत्येकं च ॥ ११ ॥
कस्यान्तः पोषणं त्रयं ब्राह्मणस्य विधीयत ।
राजस्य बन्धोर्द्धातिशयं वैश्यस्य ज्ञानधिकं ततः ॥ १२ ॥

मनु च २ । आ १—४ । ६ । ८ । ११—१३ । १६ । १८ ॥

मनुष्यों का सदा इस बात पर ध्यान रहना चाहिये कि जिसका सेवन समाज पर हानि पड़ता होना निमित्त करें जिसको हवन धर्मात्मा या मा से सत्य कर्तव्य जर्में पड़ा धर्म माननीय और कर्तव्य है ॥ १ ॥

क्योंकि इस संसार में जलन्त कामनाया धर्म विषयमता अह नहीं है वरन् ज्ञान वैराग्य कर्मों से सब कामना ही त सिद्ध हुता है ॥ २ ॥

जाती है खाड़ी सूख रखने से मोक्ष पान अशुभ प्रकर नहीं होता और उच्छिष्ट भी बाहों में रह जाता है ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिणु ।

संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यस्तेषां वाङ्मनाम् ॥ १ ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन बोधमुष्णस्यसशयम् ।

सधियम्य तु तान्येष ततः सिद्धिं निपण्यति ॥ २ ॥

न आतु कामं कामानामुपभोगं शम्यति ।

इविषा कृष्णवर्त्मन मूय पद्मामिबर्जते ॥ ३ ॥

केदास्मागच्छ पद्मा न्य निषम्यन्न तर्पासि च ।

न विप्रदुष्ट भावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ४ ॥

वशे कृत्येन्द्रियभामं संयम्य च मनस्तथा ।

सर्वांस् संसाधयेदर्थवाञ्छिण्वन् योगतस्तनुम् ॥ ५ ॥

भुत्वा स्पृष्ट्वा च हृष्ट्वा च मुक्ता भूत्वा च यो नरः ।

न हृष्यति न्नश्यति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

नापृष्टः कस्यचिद् भूयात्त चाभ्यासेन पूष्कृतः ।

जानन्नपि हि मेधावी जलजलोक्त आचरेत् ॥ ७ ॥

चित्तं बन्धुर्धनं कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।

पतानि मम्यस्यानानि गरीयो पद्मदुत्तरम् ॥ ८ ॥

अहो भवति वै बाह्वः पिता भवति मन्त्रवः ।

अहं हि बाह्वमिष्याह्वः पितृत्वेन तु मन्त्रवम् ॥ ९ ॥

न हापनैर्न पक्षितैर्न चित्तेन न बन्धुभिः ।

श्रुपयश्चकिरे धर्मं योऽनूचामः स नो महात्मा ॥ १० ॥

विप्रश्नं ज्ञानता ज्येष्ठं च सन्निपाद्यां तु वीर्यतः ।

वैश्यानां ज्ञान्यजनतः शूद्राणामेव ज्ञम्यतः ॥ ११ ॥

न तन ब्रूया भवति येनास्य पक्षितं शिटः ।

यो वै युष्माप्यधीयानस्तं वेषा स्वधिरं यिदुः ॥ १२ ॥

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा धर्ममयो मृगः ।

यथा विप्रोऽनधीयानस्तत्रयस्ते नाम विभ्रति ॥ १३ ॥

अहिसपैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।

वापश्चैव मधुरा नृपयथा प्रयोक्त्या धर्ममिच्छता ॥ १४ ॥

मधु च १ । को ८८ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ ।

११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ ।

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियों चित्त को दूर करके अपने विचारों में मग्न होता है उसका रोकने में प्रयत्न कर जिस थोड़े को सारथी रोक पर छुड़ मार्ग में चलाया है इस प्रकार हमको अपने कर्म में करके अपने मार्ग से दूर न करके मार्ग में सदा प्रवृत्त कर ॥ १ ॥

क्योंकि इन्द्रियों को विश्वासपूर्वक और अधर्म में चढ़ाने से अनुपपन्न स्थिति
राग का प्रसंग होता है और जब इन्द्रियों जीत कर धर्म में चढ़ता है तभी अन्ती
सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

वह मिथ्या है कि जिस व्यक्ति में इन्धन खीर भी पाखमे स पकता जाता है उस ही कामों के उपमाण स काम प्राप्त कमी नहीं होता किन्तु बहुत ही जाता है इसलिये मनुष्य को विन्यासक कमी न होना चाहिये ॥ ३ ॥

श्री अश्विनिभिरुच पुत्रव इ उत्तमो विद्म दुष्ट कथत हैं उसके करने स न बद्
ज्ञान न त्याग, न पाश न मियम भीत न धर्माचार्य सिद्धि को प्राप्त होत हैं किन्तु
वे सब अश्विनिभिरुच धार्मिक जन को सिद्ध होत हैं ॥ ४ ॥

इसलिये पांच कर्मेन्द्रिय पांच ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान व्यापक है मग को ज्ञान क्या में
करके पुच्छाहम विरम भोग स गरीर की रक्षा करता हुआ सब धर्मी को सिद्ध कर ॥ ५ ॥

जितिशिव उसका करते हैं कि जो लुगति तुल के रूप और निम्न मुख के ठाक, चरण स्यं कले मुख और दुह स्यं स दुग्ध, मुम्बर का दूध के प्रसव और दुह का दूध प्रसव उच्च मात्रा के चामरित और मिष्ठान मादन के दुग्धित मागम्य में दधि और दुग्ध में चरधि मही करता । ६ ॥

कभी बिना दूध या आम्बल न पाने वाले को कि जो कसर स पाना हो उसका उत्तर न दिये, उसके सामान बुझिमान् जड़ के समान रह जाँ जो निष्कसर और जिह्म हो उनका बिना दूध भी उपरान करे ॥ ० ॥

एक भव दूतः बन्धु कुम्भः कुम्भः तीसरी चक्रमा नीच उचम कर्म चौर
पौन्यी भव विषय व शोच मायः क न्याय है परन्तु एव स उचम बन्धु, बन्धु स
अधिक चक्रमा चक्रमा स भव कर्म चौर कर्म स पवित्र विषयमा उचरोचर
अधिक मायनीव है ॥ ८ ॥

क्योंकि चन्दे भी वष का है। परन्तु जो विषय विशाल रहित है वह वास्तव में
जो विषय विशाल का समान है उस वास्तव का भी कुछ भाग्यता चरित। क्योंकि सच
वास्तव में विशाल भाग्यता को वास्तव में भाग्यता को पिता कहते हैं ॥ १ ॥

अधिक बरों के बोलने का मतलब है कि अधिक धन से भी वह कुदृष्ट होवे तो बुरा बड़ा होता किन्तु जबि महामाओं का वही विचार है कि जो हमारा बीच में बिगड़ किन्तु में अधिक है वही बुरा पुनः कहना है ॥ १ ॥

आह्वय इत्येव स पञ्चिष ब्रह्म स, वैश्व धम धाम्ने न चौर शुद्ध जम्मे ब्रह्म
अधिक धाम्ने न ब्रह्म इत्यादि ॥ ११ ॥

गिर ६ बाज भन होने स बुद्ध नहीं होय किन्तु जो पुन सिद्ध पदा बुद्ध
६ उम को दिग्भू शोय वरा जगत्त ह ६ १२ ॥

अतः जो शिष्य वही पुत्र है वह प्रिया माता का हृत्पी चमरे का मृग हन्ता है
क्या चरितार्थ मनुष्य जगत् में काममात्र मनुष्य कहलाए ॥ १३ ॥

हमजिसे रिपब्लिकन कहते हैं उनका मत है कि हमें अपने अधिकारों को बचाना चाहिए और हमें अपने अधिकारों को बचाने के लिए हमें एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए।

मित्र सख्त बन्ध भक्त पाल कृपण सुख दुःख रक्ते क्योंकि इनके दुःख होने में विश्व की हानि और आनन्दता प्राप्त होकर पुनर्प्राप्त करता है। शीघ्र उत्तर करना योग्य है कि मित्रों से मङ्ग दुर्गन्ध दूर होनामे ॥

आचार' प्रथमो धर्म' भुक्त्युक्त' आर्त' एव च ॥ मनु १।१.८॥

जो सम्मान्यतादि कर्मों का आचरण करना नहीं कर स्थिति में कहा हुआ आचार है ॥

मा नो वधीः पितरं मात मातरम् ॥ बह १६।१२॥

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणामिच्छत ॥

अथर्व वे ११।१२। २। १

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव ॥

शैशिलीवामनके प्र ०। मनु ११॥

माता पिता आचार्य और अतिथि को सेवा करना देवदत्ता कहाँती है और जिस २ कर्म से ब्रह्म का उपकार हो वह २ कर्म ब्रह्म और हस्तिकर्मक दोष देण ही मनुष्य का मुख्य कर्तव्य कर्म है। कमी वास्तिक खान्द, निवास्तवादी मित्रावादी स्वर्गी कनरी कधी प्रादि दुष्ट मनुष्यों का संग न करे अथ जो सम्मान्यता धर्मार्थ परीपश्यमिण जब है उक्त्य सदा संग करने ही का नाम ब्रह्मचार है ॥

प्र०—आचार्य के वास्तिकों का आचार्य से देण से भिन्न २ देवों में अपने से आचार नष्ट हो जाता है या नहीं ?

उ०—बहु बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी सम्मान्यतादि आचरण करना है वह कहाँ कही करणा आचार और धर्म भ्रष्ट कमी न होना और जो आचार्य में रहकर भी ब्रह्मचार करण नहीं धर्म और आचार भ्रष्ट कहाँकेना । जो ऐसा ही होता तो—

मरोहरेण द्वे तपे तपे हिमयतं तत ।

क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वपमासत् ॥

स दशान् विविधान् पश्यन्भीमहृक्षनिपयितान् ॥ अ ३९ ॥

वे भक्त भक्त सान्निध पर्व मोक्ष धर्म में व्याप्त एक संवाद में हैं—अथान् एक समय व्यासजी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पालक अर्थात् जिसको इस समय 'अमेरिका' कहते हैं उसमें भिक्षा करते ॥ शुकचार्य न पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी ही है या अधिक ? व्यासजी ने उत्तरकर उस बात का प्रत्युत्तर न दिया क्योंकि उस बात का उपलब्ध कर चुके थे । दूसरे की साक्षी ६ दिने अपने पुत्र शुक से कहा कि—हे पुत्र ! नृ विविधापुरी में जाकर वही प्रश्न उत्तर राजा से कर वह इसका सन्तुष्ट उत्तर देगा । पिता का वचन सुनकर शुकचार्य पलात से विविधापुरी की ओर चला । प्रथम मङ्ग अर्थात् हिमालय ।

अथ कथं मे जी दश वसत है उक्त्य नाम हरिर्ष्वर्षे ।

अपौरुषेय के समान भूत वेत्ताये होते हैं जिस देशों का नाम इस समय 'पूराय' है उन्हीं को संस्कृत में "हरिवर्ष" कहत व उन देशों को कहते हुए और जिसको हृष्य पहुँची भी कहत हैं उन देशों को देखकर चीन में भाये चीन से हिमाचल और हिमाचल स मिथिलापुरी का भाये ॥

और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताछ में अथवरी अर्थात् जिसको अग्निपान नीक कहते हैं उस पर बैठ के पाताछ में भाये महारत्ना बुधिविर के बग में उद्गच्छक बधि की से भाये से । अथवा का किच्छ पाताछ जिसको 'कंधार' कहते हैं वहाँ की राजपुत्री स हुआ । माग्री पाण्डु की ली "हराम" के राजा की कन्या भी । और अर्जुन का किच्छ पाताछ में जिसको 'अमेरिका' कहते हैं वहाँ के राजा की बहकी उद्योपी के साथ हुआ था । जो देशदेशान्तर द्वीपद्वीपान्तर में व अत होते तो वे सब धर्म क्योंकर हो सकती ? मनुस्मृति में जो समुद्र में जावेकही नीक पर कर लेना सिखा है वह भी आर्म्बोर्न से द्वीपान्तर में जाने के क्रम है और जब महारत्ना बुधिविर ने राजपुत्र पक्ष किया था उसमें सब भूगोल के राजाओं को बुझाने को निर्मन्त्रण देने के लिये भीम अर्जुन लज्जु और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे, जो बाप मजते होते तो कभी न जाते ॥

सो प्रथम आर्म्बोर्न देशीय लोग आचार राजकार्य और प्रमत्त के लिये सब भूगोल में भूमते थे और जो आत्मक वृत्तवृत्त और धर्म गह होने की शक्य है वह कनक मूर्तों के बहकाने और बहाना करने से है । जो मनुज देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में जाने भाये में शक्य नहीं करते व इसदेशान्तर के अनेक विष मनुष्यों के समग्रम रीति रीति देखने अपना राज और व्यवहार अपने से निर्मय शुरुआत होते लगते और अपने व्यवहार का प्रत्यक्ष दुरी धर्ती के बाँधने में लपर होते बने देशर्ष का प्रत्यक्ष होते हैं । मझा जो महाभारत ज्येष्ठकुन्तीपुत्र कन्या अग्नि के समग्रम से आचरप्रह धर्महीन नहीं होते किन्तु देशदेशान्तर के उच्चम पुर्णों के साथ समग्रम में भूत और दृष्ट मजत हैं । । । । वह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है ?

हा इत्यादि कन्या तो है कि जो लोग मर्ममयय और मध्यम करते हैं उनके धीर और बीबाहि यन्त्र भी दुर्गम्यादि से वृत्ति दाने हैं इसलिये उनके संग करने से धर्मों की भी यह कृष्णकण न खरा जर्ने यह तो ठीक है परन्तु जब इनके व्यवहार और गुणगुण करने में कोई भी दोष का पाप नहीं है किन्तु इनके मध्यम्यादि दोषों को दोष गुणों को प्रत्यक्ष करें तो कुछ भी हानि नहीं । जब इनके स्वर्ण और करने स भी धर्म अन पाप रिमल हैं इसी स उनके कुछ कभी नहीं कर सज्ज क्योंकि कुछ में उनका रहना और स्वर्ण होना प्रकर है

सज्ज धर्मों का राज रूप अग्रम मिथ्यामय्यादि बाधों को दोष निर्देर प्रीति परापक सज्जम्यादि का धारण करना उच्चम आचार है और यह भी समग्रम कि धर्म हमारे आग्रम और कनक के साथ है, जब हम धर्म कर्म करत हैं तो हम को इसदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं बस सज्ज बाध तो बाध के काम करने में लगत है । हा इत्यादि प्रकर अग्नि कि

वेदोक्त धर्म का निश्चय और पम्बखमत्त का खबरन करना अवश्य सीक है जिससे कोई हमको मूढ़ विज्ञान न बना सके ॥

क्या बिना देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में राज्य का व्यवहार बिना स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है ? अब स्वदेश ही में स्वदेशी छोटा व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार का राज्य करें तो बिना परिश्रम और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता पम्बखडी लोग यह समझते हैं कि जो हम उनको बिना परार्थों और देशदेशान्तर में जाने की आज्ञा देते तो वे बुद्धिमान होकर हमारे पम्बख आश में न बैठते तो हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट हो जायेगी इसलिये मोक्षन ज्ञान में बनेका उलझते हैं कि वे दूसरे देश में न जा सकें । जो इसका अवश्य चाहिये कि मधमस का मध्य करापि मूछकर भी न करें । क्या सब बुद्धिमत्तों ने यह विज्ञान नहीं किया है कि जो राज्यपुर्यों में बुद्धसमय में भी चौक्य जगत्कर रसोई बना के ज्ञान्य अवश्य पराजय का वतु है ? किन्तु बलिय जोगों का पुत्र में एक हाथ स रोटी काते जब वीत ज्ञान और दूसरे हाथ से लज्जों को बोधे ज्ञानी रूप पर वह वा वैदिक होके मारते ज्ञान्य अपवा विज्ञान करवा आचार और पराजित होना ज्ञानाचार है इसी मूछ्य से हम लोगों ने चौक्य जगत्ते २ विरोध करत काते सब स्वातन्त्र्य ज्ञान्य सब राज्य किया और पुद्गल पर चौक्य जगत्कर हाथ पर हाथ कर बैठे हैं और ह्मक करते हैं कि कुछ परार्थ मिले तो पकत्कर सब परम्पु बिना न होने पर जानो सब ज्ञानार्थ देश भर में चौक्य जगत् के सर्वथा नष्ट कर दिया है हाँ जहाँ मोक्षन करें उस लजन को योगे लेपन करने मध्य जगत्ते नृवा कर्तव्य दूर करने में प्रयत्न अवश्य करवा चाहिये न कि मुसलमान का इसाईयों के समान भव पाकशाखा करवा ॥

प्र — सखरी बिकरी क्या है ?

उ०—सखरी जो जल जगत्ते में जल पकत्ते जल और जो भी रूप में पकत्ते हैं वह बिकरी जगत्ते जगत्ते नष्ट भी वह भी इस भूतों का जगत्ते हुआ पावक है क्योंकि जिसमें भी रूप अधिक जल उसको जगत्ते में स्थान और उत्तर में बिकत्ता परार्थ अधिक जगत्ते इसीलिये वह प्रयत्न रचा है वहीं तो जो जगत्ते का कष्ट से बच हुआ परार्थ पकत्त और न बच हुआ कष्ट है जो पकत्त जगत्त और कष्ट न जाना है वह भी सखरी ठीक वहीं क्योंकि जल जगत्ते भी जगत्ते जगत्ते हैं ॥

प्र०—द्विज जगत्ते हाथ से रसाई कष्ट के कार्यों का युद्ध के हाथ की बगार्त कार्यों ?

उ०—युद्ध के हाथ की बगार्त कार्यों क्योंकि जगत्ते पलिय और करन बखत्त जो पुद्गल बिना पकत्ते जगत्तेपलिय और पशुपलिय लती व्यवहार के जगत्ते में तनर रहे और युद्ध के पात्र तथा उलझे का का पकत्त हुआ जगत्ते जगत्तेपलिय के बिना न जगत्ते । नृवा प्रमाण—

आपाधिष्ठिता या युद्धः संस्कृताः स्युः ॥

आपलान्य धमसुत्र प्रमाण १ । पद २ । पद ३ । पद ४ ॥

यह आसक्त्य का लक्षण है। आत्मा के घर में शत्रु अर्थात् मूर्ख को पुनः सम्झादि सेवा करें परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से परित्र रहें, आत्मा के घर में जब इसी प्रकार पतन के मुख बाँध के बनावें क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ मल भी बाहर में न पड़े। आत्मा के द्वार और और गलपद्वार करने लक्षण करके पाक कर्म करे आत्मा का शिवा के साथ रहें ॥

५०—शत्रु के पुत्र हुए पके घर के आने में जब बाप खगल है तो उसके हस्त का बनाव कसे का सकते हैं ?

३०—यह बात कपोतकल्पित झूठी है क्योंकि जिन्होंने गुह जीमी पुत्र हुए, पिताम शत्रु का मुख बना उन्होंने जना सब जगत् भर के हाथ का बनाव और उच्छिष्ट का शिवा क्योंकि जब शत्रु अर्थात् मूर्ख सुखसमय ईसाई आदि बाप लक्षों में से ईश को कलते छोड़त पीछकर उस निकलते हैं तब मलमूत्रोत्सव करके उन्हीं किन्ना बोले हाथों से हुए उच्छिष्ट भरते आधा सोम पुस रस पीके आधा उसी में काढ़ रहे हैं और रस पकल समथ उस रस में रोटी भी पकल करके हैं जब जीमी कलते हैं तब पुराने जूते कि जिसके लक्ष में किन्ना मूर्ख गोबर लूनी खनी रहती है उन्हीं जूतों से उसके लक्ष है हुए में अपने घर के उच्छिष्ट पात्रों का अन्न काढते उसी में पुनः रस रस और आधा पीकते समथ भी कैसे हो उच्छिष्ट हथी स उच्छिष्ट और पसीम भी आधा में टपकता जाता है इस्यादि और एक मुख कर्म में भी पसी ही खीका होती है जब इन परमों को काया तो जना सब के हाथों का कल्पित ॥

५०—एक मुख कर्म और रस इस्यादि घर में शेष नहीं मल ॥

३०—काहरी काह ! सत्य है कि जो ऐसा उच्छिष्ट न रस तो क्या मुख रस कलते ? गुह शत्रु मीठी कलती हुए भी पुष्टि करता है इन्दीविपु यह मलमलसिन्धु क्या नहीं रस है ? अर्थात् जो घर में शेष नहीं तो मूर्ख का मुमकमल अपन हथों से हुए लक्षण में कनाकर गुमको काढ रस तो लक्षण का नहीं ? जो कहो कि नहीं तो घर में भी शेष है। हाँ मुमकमल ईसाई आदि मल मलमलसिन्धु के हाथ के करने में आत्मा का भी मलमलसिन्धु कना पीक अपराध पीक का पदता है परन्तु आसक्त में आत्मा का एक मात्र होन में कोई भी बाप नहीं दीयता ।

जब तक एक मल एक हथि काम एक मुख हुआ परन्तु न मल न लक्ष उच्छिष्ट होना बहुत कलित है। परन्तु केवल लक्षण पीक ही एक होने से मुपल नहीं हो लक्षण किन्तु जब तक पुरी कलते नहीं होरत और पन्दी कलें नहीं करत तब तक वस्ती के बरत हथि होनी है। विद्वानों के लक्ष वर्त में लक्षण हाथ के कलत जानस की कृत, मलमल मलमल का लेख न कना विद्वान परन्तु वस्ती का लक्षणमल में अलक्षक विद्वान विद्वानकि, विद्वानमलमलसिन्धु वस्ती का लक्षण आदि मुकमें है जब अपन में आई काह खल है तभी गोमल विद्वान लक्षण वल का वलता है। क्या गुम लक्षण महाभजन को करने तो पीक मलमल वर्त के बहिरे हुए भी उच्छिष्ट भी भूत गल ? इसो ? महाभजन दूर में मल काय लक्षण में लक्षणों पर लक्षण पीक है। अपन की कृत म लक्षण वलत और

वेदोक्त वर्म का मिश्रण और पाकबद्धता का व्यवस्था करना आवश्यक सीखें हैं जिससे कोई हमको मूर्ख विचार न करा सके ॥

क्या किता वेदवेदाङ्गतर और द्वीपद्वीपान्तर में राज्य का व्यापार किसे स्वेष्ट की उन्नति कमी हो सकती है ? जब स्वयं ही मैं स्वयं ही लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वेष्ट में व्यवहार का राज्य करें तो किन्ना वारिष्ठ और बुद्ध के दूतों का भी नहीं हो सकता पाकबद्धी लोग यह समझते हैं कि जो हम उन्नति के विषय पढ़ाएंगे और वेदवेदाङ्गतर में जाने की आज्ञा देंगे तो वे बुद्धिमान् होकर हमारे पाकबद्ध जाति में न पड़ने से हमारी प्रतिष्ठा और नीति का नष्ट हो जानेकी इसलिये मोक्षन व्यवस्था में लगे हुए रहते हैं कि वे दूसरे देश में न जा सकें । हाँ इतना अवश्य चाहिये कि मध्यमस्त का व्यवहार कदापि भूलकर भी न करें । क्या सब बुद्धिमान् ने यह विचार नहीं किया है कि जो राजपुत्रों में बुद्धसम्पन्न में भी नीचा व्यवहार रसोई क्या के जाया व्यवस्था पालन का हेतु है ? किन्तु चरित्र लोगों का बुद्ध में एक हृत्त का रोटी खाते जब पीत खाता और दूसरे हृत्त से लहसुनों को पोषे हृत्तों स्व पर एक वा पैदा होके मरते खाता अपना विचार करना आचार और पराजित होना आचार है । इसी सूत्र से इन लोगों ने नीचा व्यवस्था १ विशेष करते करते सब स्वात्मन्य धामन्य का राज्य विषय और पुत्रार्थ पर नीचा व्यवहार हृत्त पर हृत्त कर बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पककर खाएँ परन्तु पैसा न होने पर जानो सब व्यवस्था देश भर में नीचा व्यवस्था के सर्वथा बह कर दिया है । हाँ यहाँ मोक्षन करें उस व्यवस्था को जोने खेपन करके मरुत व्यवस्था के दूरा कार्य कर करने में प्रयत्न व्यवस्था करना चाहिये न कि सुखकामन का ईसाईयों के समान यह पाकबद्धता करना ॥

प्र —सबरी मिशरी क्या है ?

उ —सबरी जो सब आदि में सब पकने जात और जो भी दूध में पकत है वह मिशरी अर्थात् खोली वह भी इन भूतों का व्यवस्था बुद्ध पाकबद्ध है क्योंकि जिसमें भी दूध अधिक जाये उसको खाने में स्वाद और उन्नर में किन्ना पदार्थ अधिक जाने इसीलिये वह प्रयत्न रखा है यही तो जो धर्म का व्यवस्था से पक बुद्ध पदार्थ पक और न पक बुद्धा क्या है जो पक जाना और क्या न जाना है वह भी सबरी ठीक नहीं क्योंकि सब आदि कल्पे भी जाने जाते हैं ॥

प्र०—द्विज अपने हृत्त से रसोई बनाके खाते या गृह के हृत्त की कनार्थ खाते ?

उ०—गृह के हृत्त की कनार्थ खाते क्योंकि गृहस्थ चरित्र और धर्म व्यवस्था की पुरुष विषय पढ़ाने राज्यपालन और पशुपालन लती व्यापार के काम में तनर रहे और गृह के पत्र तथा उसके धर का पक बुद्ध सब व्यवस्था के विषय न पढ़ें । सुनो प्रमाण—

आपाधिष्ठिता या गृहा संस्काराऽऽद्य ॥

आपकान्य धमसुत्र प्रमाणक १ । पत्रक १ । अथक १ । सूत्र ४ ४

वह अत्यन्त ही दुःख है। आँखों के धर में खूब आँसू मूँख की पुष्प पान्थि सेव करे परन्तु वे शरीर का आँसू से पवित्र रहे। आँखों के धर में जब एसी ही बगलें तब मुँह बोंब के बगलें क्योंकि उनके मुँह से उच्छ्वस और निकला हुआ आँसू भी धर में न पड़े। आँसू दिन और रात बगलें करके स्वाम करके पाक बनाया करे। आँसू को बिना के आँसू नहीं।

प्र०—शुद्ध के पुष्प पुष्प पके आँसू के आँसू में जब बोंब आँसू है तो उसके हाथ का बनाया कैसे का सकते हैं ?

उ०—वह आँसू कर्मोत्पन्नित सूझी है क्योंकि जिन्होंने गुण बीनी धृत रूप पिछात हाथ पकड़ मुँह लपटा उन्होंने जानो सब जगत् भर के हाथ का बनाया और उच्छ्वस का बिना क्योंकि जब शुद्ध बगलें माली मुसलमान इसी ही आँसू बोंग लेतो में से ईश को आँसू कीकते पीककर रस निकालते हैं तब मलमूलोत्पन्न करके उन्हीं बिना घोसे हाथों में बूत उच्छ्वस भरत आँसू सोम्य रस रस पीके आँसू उसी में आँसू सेते हैं और रस पकड़ समय उस रस में रोटी भी पकड़ आँसू हैं जब बीनी आँसू हैं तब पुरान सूते कि जिसके तब में बिना, मुँह घोष बूझी बगलें रहती है उन्हीं सूते से उसको लाइते हैं वृष में अपने भर के उच्छ्वस पाँचों का जब उच्छ्वस उसी में बूतारि रखते और आँसू पीकते समय भी कैसे ही उच्छ्वस हाथों से उच्छ्वस और पसीला भी आँसू में उच्छ्वस आँसू है इसलिए और पकड़ मुँह कर्म में भी पेसी ही बीक होती है जब इन पदार्थों को आँसू तो जगो सब के हाथों का आँसू।

प्र०—पकड़ मुँह कर्म और रस इसलिए आँसू में हाथ नहीं लाकते।

उ०—कहती कह। सम्य है कि जो पेसा उच्छ्वस न सेते तो क्या पूछ राख आँसू ? गुण शरीर मीठी कगली रूप भी पुष्टि करता है इसीलिए वह मलमूलोत्पन्न क्या नहीं राख है ? आँसू को आँसू में होय नहीं तो धरों का मुसलमान अपने हाथों से बूतरे स्थान में कगलें तुमको आँसू सेव तो आँसू का नहीं ? जो कहो कि नहीं तो आँसू में भी होय है। हाँ मुसलमान इसी ही आँसू मय मलमूलोत्पन्न के हाथ के आँसू में आँसू को भी मलमूलोत्पन्न काँसू पीक आँसू पीक कर पकड़ है परन्तु आपस में आँसू का एक भोजन होने में कोई भी होय नहीं बीकता ॥

जब तक एक मत एक इति आँसू एक मुँह पुष्प परस्पर न मारें तब तक उच्छ्वस होय बहुत करिब है। परन्तु केवल आँसू पीक ही एक होये से मुबार नहीं हो सकत किन्तु जब तक जुरी कर्म नहीं होयते और आँसू कर्म नहीं करत तब तक कर्मों के बूते इति होती है। विविधियों के आँसू वर्त में राख होने के कारण आपस की बूत, मलमूल मलमूल का संकल न करण बिना न पकड़ पकड़ का कर्मोत्पन्न में कर्मोत्पन्न बिना विविधता, मिथ्याभाव आदि कुछकथ बहिरिध का आँसू आँसू मुकर्म हैं जब आपस में मारें मारें कहते हैं तभी मीसरा विरही आँसू पकड़ का बीकता है। क्या तुम खाना महम्मज की कर्म जो पाँच महज वर्त के पद्विसे हुई भी उच्छ्वस भी भूख गव ? पेसा ! महम्मजत मुँह में सब जोम आँसू में सकारिबी पर कहते बीकते हैं। आँसू की बूत न बीक पीक और

आद्यों का सम्बन्ध हो गया सो सो हो गया परन्तु अब तक भी बड़ी रोग बीमियाँ
होती हैं न जाने यह भयङ्कर रोग कभी बूढ़ों या आर्थों को सब मुर्छों से बुझकर
हृत्संस्कार में हुआ मरेगा ? उसी पुत्र दुर्योधन गोवृद्धाद्वारे स्वर्गस्थितिक, पीछे
के दुर्योधन में आर्त शोक अब तक भी चढ़कर हुआ बड़ा रहे हैं । परमेश्वर इस
को कि यह रोगरोग हम आर्थों में से बड़ा हो जाय ॥

मध्यमक हो प्रकर है—एक धर्मशास्त्रिक, दूसरा वैद्यकशास्त्रिक । जैसे
धर्मशास्त्र में—

अमर्यादि द्विजातीनाममध्यमकादि च ॥ मनु २।२॥

हिन्दू धर्मोत्तराश्रय चरित्र चैत्य और सत्तों को भी महीन विद्या मूर्च्छा
के संसारों से उत्पन्न हुए एक एक मूर्च्छादि न जाना चाहिये ॥

वर्द्धिस्मृत्युमांसं च ॥ मनु २।११० ॥

जैसे अनेक प्रकार के मछ, गोमाँ, भोज, आद्यम आदि—

वृद्धिस्तुत्यति यद् द्रव्यं भक्ष्यते तदुच्यते ॥ शब्दपर च ॥ श्लो ११॥

जो १ पुष्टि का मास करने वाले पदार्थ हैं उनका संस्कार कभी न करें और
जितने भक्ष्य सहे मिलते दुर्गन्धवादि से वृष्टि अन्धे प्रकार न बने हुए और मछ
मत्स्यवर्गी मत्स्य कि किन्तु शरीर मत्स्यमांस के परमासुधों ही से पुरित है उनके
हृत्संस्कार न करें ॥

जिसमें उपकरणक शब्दों की हिंसा अर्थात् कि एक मास के शरीर से हुए
भी बँध गया उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार बार पचद्वार सहस्र वा सौ
मनुष्यों को कुछ पहुँचता है जैसे पशुधर्मों को न मरें न मरने हैं । जैसे किसी
मास से बीस घर और किसी से दो घर हुए प्रति दिन होने उसका मन्त्रमय
स्वरूप से प्रत्येक मास से हुए होता है कोई मास अन्धर और कोई वा महीने
तक हुए देती है उसका मन्त्र मन्त्र ब्रह्म महीने हुए, जब प्रत्येक मास के जन्म
भर के हुए से १० ११ (बीबीस सहस्र वा सौ साठ) मनुष्य एक घर में पुत्र
हो सकते हैं, उसके वा बहियाँ वा बहनें होते हैं उनमें से दो मर जन्में तो भी
दस रहे उनमें से पाँच बहियों के जन्म भर के हुए को मिलाकर ११०,००
(एक लाख बीबीस सहस्र साठ सौ) मनुष्य पुत्र हो सकते हैं जब रहे पाँच बँध
के जन्मभर में २ ३ (पाँच सहस्र) मन्त्र चार मन्त्र से मन्त्र उत्पन्न कर सकते
हैं उस भद्र में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाँच पाले तो अर्थात् लाख मनुष्यों की वृद्धि
होती है, हुए और मछ मिला १ ००,००० (तीन लाख बीहत्तर सहस्र साठ सौ)
मनुष्य पुत्र होते हैं, दोनों संख्या मिला के एक मास की एक पीढ़ी में १,००२ १
(चार लाख पचद्वार सहस्र वा सौ) मनुष्य एक घर पर्यन्त होते हैं और पीढ़ी
पर पीढ़ी बढ़कर संख्या करें तो अस्मिता मनुष्यों का पञ्चन होता है इससे भिन्न
बैध गद्दी धर्मोत्तराश्रय अन्धे आदि कर्मों से मनुष्यों के बने उपकरणक होते हैं तथा
मास हुए में अधिक उपकरणक होती है और जैसे बैध उपकरणक होते हैं जैसे मछ
भी है परन्तु मास के हुए भी से जितने वृद्धिपुष्टि से प्राप्त होते हैं उतने प्रेक्ष के

दृष्ट से नहीं, इससे मुख्योपकारक कार्यों में श्रम को गिना है। और जो कोई काम विद्वान् होना चाहे भी इसी प्रकार समझेगा ॥

बकरी के दूध से १२ १२ (पचास सहस्र भी सौ बीस) घारमिलों का पाकन होता है, जैसे इसकी घोड़े की, मेह गये आदि स बड़े उपकार होते हैं ॥ इन पशुओं को मारने काको को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले मानियेगा ॥

देखो ! सब जालों का श्रम का सब से महोपकारक काम आदि पशु नहीं मारे जाने से सभी घारमिलों का घाम्य भूगोष्ठ के देशों में बड़े घारमिल में मनुष्यादि प्रविष्ट करते थे, क्योंकि दूध की दूध आदि पशुओं की बचुराई होने से सब रस पुष्कल प्राप्त होते थे। सब से निराली मांसहारी इस देश में आके गी आदि पशुओं के मारनेका मर्यादा रण्यधिकारी हुए हैं। सब से कमराः घालों के दुग्ध की बकरी होती जाती है, क्योंकि—

मटे मूले नैव फलं न पुण्यम् ॥ बुद्ध्यान्वयः च १ । ११ ॥

सब दूध का फल ही फल दिया जान तो फल कुछ कहा स हों ?

प्र०—जो सभी धर्मिक हो जायें तो व्यापारि पशु इससे बड़े कामें कि सब काम आदि पशुओं को मार कार्य तुम्हारा पुण्य ही कार्य हो जाय ॥

उ०—यह राजपुत्रों का काम है कि जो हानिकारक पशु का मनुष्य हो उनको बध देवें और जान स भी विरुद्ध कर दें ॥

प्र०—चिर क्या उक्त मांस फल है ?

उ०—आहे फल है आहें कुछे आदि मांसहारीयों को शिक्षा देवें या जहा एवं अन्य कोई मांसहारी जाने तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसहारी होकर विरुद्ध हो सकता है। जितना विद्या और चोरी विरातगत बन्ध कष्ट आदि से पशुओं को प्राप्त होकर भाग करना है वह भयान और धर्मिता घमादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनयदि अन्य भय है जिन पशुओं से स्वस्थ रोगग्रस्त बुद्धि बधपराक्रम बुद्धि और धान्यबुद्धि इसके उन तपशुआदि गोप्य कुछ कुछ दूध की मिठाई पशुओं का सेवन बधबोध्य पाक, मक के कपोचित समय पर मांसहारी भोजन करना सब भय कहता है जितने पशुय धरणी प्रकृति से विरुद्ध विरुद्ध करने का है उन २ का सर्वथा त्याग करना और जो १ जिसके विषे विहित है उन पशुओं का मरण करना वह भी भय है ॥

प्र०—कह साय कामे में कुछ दोष है या नहीं ?

उ०—दोष है क्योंकि एक के साथ दूसरे का सम्बन्ध और प्रकृति नहीं मिलती किन्तु बुद्धि आदि के साथ जाने स भय मनुष्य का भी दण्ड विराट् जाता है जैसे दूसरे के साथ कामे में भी कुछ विराट् ही हत्या है मुधार नहीं इसविष—

नोविदुष्टं कस्यापि ह्यायायाचक्षेत्र तथास्तथा ।

न चेयात्यशनं कृपाय चोपिदुष्टः कश्चिद् यजेत् ॥ मनु २ । २१ ॥

० इसको विशेष व्याख्या "गोब्रह्मविधि" में की है ॥

आइयों का सम्बन्ध हो गया तो हो गया परन्तु अब तक भी यही रोग पीने
 खाया है न जाने यह सबकुछ राक्षस कभी कृष्ण का आश्रितों को सब सुखों से वञ्चन
 वृत्तसत्ता में हुआ मरेगा ? उसी वृत्त वृत्तोंमें गोब्रह्मारे स्वेष्टदिनात्मक बीच
 के वृत्तसत्ता में आने योग अब तक भी बचकर हुआ बड़ा रहे है । परमेवर कृष्ण
 करें कि यह रोगरोग हम आश्रितों में से बड़ा हो जाय ॥

मन्मथमय हो प्रकर है—एक धर्मशास्त्रोक्त, दूसरा वैष्णवशास्त्रोक्त । श्रेष्ठ
 धर्मशास्त्र में—

अभययाधि द्विजातीनामभेद्यप्रमत्ताधि च ॥ मनु २ । २ ॥

द्विज वर्णों का शास्त्र ब्रह्म वैश्य और राजाओं को भी मन्मथ विद्या मन्मथ
 के संसार से उन्मत्त हुए राजा पद्म मन्मथि न जाना चाहिये ॥

वर्जयेन्मधुमांसं च ॥ मनु २ । ११० ॥

श्रेष्ठ चनेक प्रकार के मधु, गांजा, मांस, अफीम आदि—

बुद्धि सुम्पति यद् द्रव्यं मत्कारी तदुच्यते ॥ शार्ङ्गधर च ३ । श्लो २१ ॥

को २ बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उसका सेवन कभी न करें और
 जितने सब सारे किन्हीं दुरात्म्यादि से वृत्ति धन्य प्रकार न बने हुए और सब
 मांसहारी मन्मथ कि जिनका शरीर मधुमांस के परमाद्युक्तों ही से पुरित है उनके
 हान का न करें ॥

जिसमें उपकारक शक्तियों की हिंसा अर्थात् जैसे एक पक्ष का शरीर से दूध
 भी ब्रेष्ठ गम्य उसका होवे से एक पीढ़ी में सब जान पचकर सहज वा सौ
 मनुष्यों को सुख पहुँचता है जैसे पशुओं को न मारे न मरने हैं । जैसे किसी
 पक्ष से बीस घर और किसी से दो घर दूध प्रति दिन होवे उसका मन्मथमय
 मन्मथ घर मन्मथ पक्ष से दूध होता है कोई पक्ष अथवा और कोई वा मन्मथ
 तक दूध नहीं है उसका मन्मथ मन्मथ ग्राह मन्मथे हुए, सब मन्मथ पक्ष के जन्म
 भर के दूध से १० ६६ (बीस सहस्र गौ सौ सहस्र) मनुष्य एक घर में पल
 हो सकते हैं, उसके वा बहियाँ वा बहियाँ होते हैं उसमें से दो घर आश्रितों को भी
 दया रहे, उनमें से पाँच बहियाँ के जन्म भर के दूध को मिलाकर १ १०,८
 (एक लाख बीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य पल हो सकते हैं अब रहे पाँच ब्रेष्ठ
 के जन्म भर में २ ३ (पाँच सहस्र) मनुष्य मनुष्य से मनुष्य उपलब्ध कर सकते
 हैं, उस घर में से मन्मथ मनुष्य तीन पक्ष पक्ष तो अर्थात् लाख मनुष्यों की पृथि
 होती है, दूध और पक्ष मिला ३,००,८ (तीन लाख और चार सहस्र आठ सौ)
 मनुष्य पल होत हैं, दोषों संख्या मिला के एक पक्ष की एक पीढ़ी में ३ ०२ ६
 (चार लाख पचहत्तर सहस्र वा सौ) मनुष्य एक घर पक्षित होते हैं और पीढ़ी
 पर पीढ़ी बचकर पक्षी करें तो अर्थात् मनुष्यों का पालन होता है इससे मन्मथ
 ब्रेष्ठ पक्षी सफरी मन्मथ उद्योग आदि कर्मों से मनुष्यों के बने उपकारक होत हैं तथा
 पक्ष दूध ॥ अधिक उपकारक होती है और जैसे ब्रेष्ठ उपकारक होत हैं ऐसे ऐसे
 भी हैं वस्तु पक्ष के दूध भी से जितने बुद्धिबुद्धि से प्राप्त होते हैं उतने पक्ष के

प्र०—जो गाय के गोबर से चौरा लगाते हो तो अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते ? और गोबर के चौके में जाने से चौरा बनाना क्यों नहीं होता ?

उ०—गाय के गोबर से बीसा तुल्य नहीं होता बीसा कि मनुष्य के मूत्र से मोमय चिकना होने से सीसा नहीं उबड़ता न कपड़ा चिकना न मशीन होता है बीसा मिट्टी से मिला जाता है बीसा पूरे गोबर से नहीं होता । मिट्टी और गोबर से जिस लवण का छेपन करते हैं वह देखने में प्रति सुन्दर होता है और जहाँ रसोई बनती है वहाँ मोहनगढ़ि करने से भी मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है उससे मन्त्री कीकी आदि बहुत से जीव मशीन लवण के रहने से करते हैं जो उसमें प्यार छेपनादि से रुद्धि प्रतिदिन न की जाने तो जानो पावाने के समान वह लवण हो जाता है । इसलिये प्रतिदिन गोबर मिट्टी प्यार से सफा रुद्ध रहना । और जो पका मकान हो तो उस से चौरा रुद्ध स्थान चाहिये । इससे पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति हो जाती है । बीस मिर्चाई के रसोई के स्थान में कहीं कोयला कहीं रात कहीं कचड़ी कहीं पूड़ी हाँडी कहीं बूढ़ी रेंबी, कहीं हाथगोश पर रहत हैं और मन्त्रियों का तो क्या कहना वह स्थान ऐसा बुरा लगता है कि जो कोई जेठ मनुष्य जानकर बैठ तो उस बात होने का भी सम्भव है और उस तुल्य लवण के समान ही वही स्थान दीकटा है । मन्त्रा जो कोई इन से पूछे कि बरि गोबर से चौरा लगाने में तो गुप्त दोष गिन्ते हो परन्तु जूझ में कबड़े लगाने उसकी धना से लगाई पीने पर की मीति पर छेपन करने आदि से मिर्चाई का भी चौरा जड़ हो जाता होगा इसमें क्या सन्देह ॥

प्र०—चौके में बैठक भोजन करना अच्छा या बाहर बैठ के ?

उ०—जहाँ पर अच्छा समझीय सुन्दर स्थान होवे वहाँ भोजन करना चाहिये परन्तु आनन्दक पुत्रप्रदिकों में तो छोड़े आदि बानों पर बैठ के या कड़े २ भी काय पीना प्रत्यन्त उचित है ॥

प्र०—क्या अपने ही हाथ का कामा और दूसर का हाथ का नहीं ?

उ०—जो घरों में रुद्ध रीति से करने तो बरकर सब घरों के साथ ३ करने में कुछ भी हानि नहीं, क्योंकि जो मन्त्रादि कष्टका की पुरुष रसोई बनाने और चौरा देने बहुत मोड़ मोड़ने आदि कबड़े में परे रहें तो विषयि रुद्ध गुर्दों की रुद्धि कभी नहीं हो सके ॥

रेनो ! महाराज बुबिहिर के राजमूच पत्र में भुगाव ३ राज्य अपि मदवि आये थे एक ही पाठशाळा से भोजन किया करते थे । जब से ईसाई मुसलमान आदि के मन्त्रमन्त्रर के आगस में बिर विरोध रुद्ध उन्हीं के मन्त्रमन्त्र पोर्नासदि का लवण पीना स्वीकार किया उसी समय से भोजनादि में कबड़ा हो गया ॥

रेनो ! कपुध कंधार ईसा घरिकी यूरोप आदि देशों के राज्यों की कम्पा गन्धारी माही उछोपी आदि के साथ आम्बाकण्ठीय राज्य जाग किया आदि स्पष्टात करत ३ मन्त्रि आदि कीरव पाँचों के साथ खले पीत थे कुछ

न किसी को अपना भ्रम पचाव दे और न किसी के भोजन के बीच छन जाने न अधिक भोजन करे और न भोजन करने पश्चात् हाथ मुँह धोने किम्वद्वी इधर उधर जाए ॥

प्र०— गुरोरचिद्विग्रहमोक्षणम् इस वाक्य का क्या अर्थ होगा ?

उ०—इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन करने पश्चात् जो पुनः भक्त हुए किन्तु हैं उसका भोजन करना क्योंकि गुरु को प्रथम भोजन करने पश्चात् शिष्य को भोजन करना चाहिये ॥

प्र०—जो उच्छिष्टमात्र का विषय है तो मन्त्रियों का उच्छिष्ट सहित चढ़ने का उच्छिष्ट दूध और एक प्रसन्न जाने के पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है पुनः उनको भी न करना चाहिये ॥

उ०—सहस्रकर्ममात्र ही उच्छिष्ट होता है परन्तु यह बहुतसी औषधियों का सार प्रसन्न, बड़ा अपनी माँ के बाहर का ० दूध पीता है भीतर के । दूध का नहीं पी सकता इसलिये उच्छिष्ट नहीं परन्तु बड़े के पिने पश्चात् उस से उसकी माँ के स्तन चोकर कुछ पात्र में बाँटवा चाहिये । और अपना उच्छिष्ट अपने को किन्नरकरक नहीं होता । केहो ! स्वभाव से वह पतल सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न जाने । जैसे अपने मुँह तक कम, घाँस उपर्य और गुलेन्द्रियों के मन्त्रमूलादि के रूप में पुनः नहीं होती जैसे किसी दूसरे के मूत्र मूत्र के रूप में होती है । इससे यह सिद्ध होता है कि यह मन्त्रमूल सचिन्म से विनिरात नहीं है इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट चर्बात् भूमि न करना ॥

प्र०—मन्त्र की पुनः भी परस्पर उच्छिष्ट न करें ?

उ०—नहीं क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न है ॥

प्र०—क्योंही ! मनुष्यमात्र के हाथ की कीहुई रसोई के जाने में क्या दोष है ? क्योंकि ब्राह्मण से छाने चाँदाल पकल के शरीर हाथ मसल चमड़े के हैं और जैसा उधिर ब्राह्मण के शरीर में है वैसा ही चाँदाल चाँदिल के, पुनः मनुष्यमात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के जाने में क्या दोष है ?

उ०—दोष है क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के जाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुष्प्रभावों दोष रहित राज बीज उत्पन्न होता है वैसा चाँदाल और चाँदाली के शरीर में नहीं क्योंकि चाँदाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से मरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि नहीं कर नहीं इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम कर्त्तों के हाथ का करना और चाँदालादि नीच मन्त्रों चमड़े चाँदिल का न करना । भला जब कोई तुमसे पूछे कि जैसा चमड़े का शरीर मरता सास बहिन क्या पुनः पुनः का है वैसा ही अपनी की का भी है तो क्या मरता चाँदिल किन्तों के साथ भी स्वामी के समान कर्त्तों ? तब तुमको संतुष्टि होकर चुप ही रहना पड़ेगा । जैसा उत्तम राज हाथ और मुख से जाया जाता है किसे दुर्गन्ध भी क्या जा सकता है तो क्या मन्त्रादि भी जाओगे ? क्या वैसा भी कोई हो सकता है ॥

विरोध नहीं करते थे क्योंकि उस समय सब भूगोल में बिदोह एक मत था उसी में सबकी मित्रा थी और एक दूसरे का कुछ कुछ हाथि धाम प्राप्त में अपने सम्मेलन समझते थे तभी भूगोल में सुख था। अब तो बहुत स मत कहे होते हैं बहुतसा दुःख और विरोध बढ़ गया है इसका विचार करना बुद्धिमानों का कर्म है परमेश्वर सब के मन में समझता का ऐसा चक्रुर कहे कि जिसमें मित्रता मत हीन ही प्रलय को प्राप्त हो। इस में सब विद्वान् लोग विचार का विरोध मन छोड़ के धामन्य को बढ़ावें ॥

यह बोधवता आचार आचार मन्त्रामन्त्र विषय में लिखा ॥

इसमें प्रत्येक का पूर्णतः इसी दृष्टि से समुदास के सम्यक्ता हो गया। इन समुदासों में विरोध बल मंडल इसलिये नहीं लिखा कि जब तक मनुष्य सम्प्रदाय के विचार में कुछ भी सामान्य न बने तो तब तक स्पष्ट और सूक्ष्म चर्चों के अन्तिम को नहीं समझ सकते। इसलिये प्रथम सब को सम्यक् विचार का उपदेश करके अब उत्तरार्ध चर्चा किसे चार समुदास हैं उसमें विरोध बल मंडल लिखेंगे। इन चर्चों में से प्रथम समुदास में आध्यात्मिक मतमतान्तर दूसरे में वैदिकों के तीसरे में ईसाइयों और चौथे में मुसलमानों के मतमतान्तरों के कारण मंडल के विषय में लिखेंगे और पांचवें और छठे समुदास के मत में सम्यक् भी विचारना चाहना। जो कोई विरोध बल मंडल देखना चाहे वे इन चर्चों समुदासों में देखें। परन्तु सामान्य करके कहीं १ इत समुदासों में भी कुछ बोधवता कारण मंडल लिखा है। इन और समुदासों को पक्षपात छोड़ न्यायवृत्ति से जो प्रयोग उसके कारण में सब सब का प्रमाण होकर जानना होगा और जो इत दुराग्रह और ईर्ष्या से देखे सुकन उसको इस प्रत्येक का अन्तिम्य समाप्त विधित होना बहुत कठिन है। इसलिये जो कोई इसको कबल न विचारेंगा वह इसका अन्तिम्य न जान पाता जाना कहेगा। विद्वानों का यही कर्म है कि सम्यक्ता का विचार करके सब का प्रत्येक कारण का व्यापक करके परम आलम्बित होते हैं वे ही गुणवत्तक पुण्य विद्वान् होकर कम सब कर्म और मोक्ष रूप चर्चों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं ॥ १ ॥

इति श्रीमह्यतन्त्रसरसती क्षाम्नीकृते सत्यार्थप्रकाश सुभाषाविभूषित
अध्यात्मध्यातारमह्यात्मव्यवस्थिते दशमः समुदासः सम्पूर्णः ॥ १० ॥

समाप्ताऽयम्पूर्वार्धः ॥

उत्तरार्द्ध
अनुभूमिका

यह सिद्ध बात है कि पाँच सहस्र वर्षों के पूर्व ब्रह्मत से मित्र दूसरा कोई भी मत न था क्योंकि वेदोक्त सब बातें विष्णु से अभिरूढ़ हैं। वेदों की व्याप्ति होने का अर्थ महाभारत युद्ध हुआ। इस की व्याप्ति से अभिप्राय अथर्व वेद के अन्तर्गत होने का अनुप्राण की बुद्धि अमरपुत्र होकर जिसके मत में ईसा आया वसा मत अष्टांग। उन सब मतों में (४) अथर्व मत अथर्व जो ब्रह्मविद् आत्मीय जैनी किप्ली और कुराणी सब मतों के मूल हैं। वे अथर्व एक के पीछे दूसरा सीसा चौथा अष्टांग है। अब इन चारों की शब्दा एक सहस्र से कम नहीं है। इन सब मतधारियों के अर्थों और अर्थ सब को परस्पर सम्प्रत्यय के विचार करने में अधिक परिष्कार न हो इसलिये यह ग्रन्थ ब्रह्मपा है। जो १ इस में सब मत का मन्त्रण और अन्तर्गत का पदार्थ लिखा है वह सब को ज्ञान ही अन्तर्गत समझ लिया है। इस में जैसी मेरी बुद्धि जितनी विष्णु और जितना इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ रखने से बोध हुआ है उसको सब के अर्थ निरूपित कर द्या देने उचित समझा है क्योंकि विष्णु गुप्त होने का पुनर्निष्ठा सहस्र नहीं है। पञ्चम सोइकर इसको रखने से सम्प्रत्यय मत सब को धरित हो अष्टांग। पञ्चम सब को अपनी २ समस्त के अनुसार सब मत का अर्थ करना और अन्तर्गत मत का अर्थ सहस्र अष्टांग ४

इसमें जो आत्माएँ हैं वे भी सब शास्त्र शास्त्रान्तर का मत मानावर्त्त कर लेती हैं उन का संबंध सब गुणों से होता है ११ वे समुद्रमय हैं विद्याया जाता है । इससे मने कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें । क्योंकि मेरा उत्कर्ष किसी की इष्टि से विरोध करने में नहीं किन्तु समासमय का निर्णय करने करने का है । इसी प्रकार सब मनुष्यों को व्यापक यह सब बातें उचित है । मनुष्य जन्म का हान्य समासमय का निर्णय करने करने के लिए है न कि अद्विष्ट विरोध करने करने के लिए । इसी मतमतान्तर के विचार से जन्म में जो २ अनिष्ट पक्ष हुए, बात है और होता उसको पक्षगत रहित विद्वान् जन्म समझे हैं । जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विद्वत्वाद न प्रवेश तबतक जन्मों का अन्त न होता । यदि हम सब मनुष्य और विद्वत् विद्वान् ईश्वरों से जो कुछ समासमय का निर्णय करके सब का प्रत्यक्ष और अत्यन्त का त्याग करना करना चाहें तो हमारा धर्म वह बात समासमय नहीं है । यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सब को विरोध आज में जन्मा रक्षता है, यदि वे जन्म करने प्रयोजन में न जन्मकर सब के प्रयोजन को मित्र करना चाहें तो अभी एकमात्र होकर । इनके हान्य की पुष्टि हम जन्म की प्रति में विद्यमान । सर्वगणित्यान् परमात्म्या एक मत में प्रवृत्त होन का उपाय सब मनुष्यों के व्यापकता में प्रवर्तित करें ।

असमितिर्विस्तरः विगच्छतश्चिरम्यस्य ॥

उत्तरार्द्धः

अथैकादशसमुद्भासारम्भ

अथाऽऽध्यावर्त्तीयमस्तकयुक्तममण्डने विधास्याम

अब आत्म लोगों के कि जो आन्वीक्ष्य देश में बसनेवाले हैं उनके मत का व्यवहार तथा व्यवहार का विचार करेंगे । वह आन्वीक्ष्य देश ऐसा है जिसके सख्त भूगोच में दूसरा कोई देश नहीं है इसीलिए इस भूमि का नाम सुख्यभूमि है क्योंकि वही सुख्यादि राजों को उत्पन्न करती है । इसीलिए सृष्टि की आदि में आत्म लोग इसी देश में आत्म बसे । इसीलिए हम सृष्टिमित्र में कह आते हैं कि आत्म भूमि उत्तम पुत्रों का है और आत्मा से भिन्न मनुष्यों का नाम नहीं है । जिसने भूगोच में देश हैं व सब इसी देश की परीक्षा करते और आत्म राजा हैं कि परस्मय पत्न्य सुधा बला है वह राजा तो सुधी है परन्तु आन्वीक्ष्य देश ही सदा परस्मय है कि जिसको कोईक्य दरिद्र विदेशी बूते के साथ ही सुख्य अर्थात् धन्य हो करते हैं ॥

पतङ्गप्रसूतस्य सफाशाद्भञ्जम्भ ।

स्व स्व करिषं शिखेरम् पूषिष्यां सर्वमाववा ॥ मनु १।१ ॥

सृष्टि से बने पाँच सख्त राजों से पूरा समस्त पत्न्य आत्मा का साक्ष्यीय व्यवहार अर्थात् भूगोच में सर्वोपरि एकमात्र राज्य या आत्म देश में व्यवहारिक अर्थात् छोटे १ राजा रहते थे क्योंकि कीरन पाँच पत्न्य वही के राज्य और राज्यराज्य में सब भूगोच के सब राजा रहते थे । क्योंकि वह मनुष्यसि जो सृष्टि की आदि में हुई है उत्तम प्रमाण है । इसी आन्वीक्ष्य देश में उत्तम रूप व्यवहार अर्थात् विद्वानों से भूगोच के मनुष्य—व्यवहार विलिख वैश्य सुद्ध वस्तु मध्यम आदि सब अपने १ वोन्य विद्या करिषों की शिक्षा और विद्यावास्त करें । और महाभारत बुधिरिजी के राजसूय वज्र और महाभारत बुद्धपत्न्य वही के राज्यधीन सब राज्य थे ॥

सुखो ! चीन का व्यवहार अमेरिका का व्यवहार, यूरोपदेश का विद्यावाच अर्थात् मन्त्रों के सखा आत्मकसे पत्न्य जिसको पूष्य वह आते और ईश्वर का राज्य आदि सब राजा राजसूय वज्र और महाभारत बुद्ध में व्यवहारगत आते थे । अब रघुनाथ राजा थे तब राजा भी वही के आधीन या अब रामचन्द्र के समय में विन्दु होग्य तो उसके रामचन्द्र ने बचक वस्तु राज्य से वह कर उसके सब विभीषण को राज्य दिया था ॥

तत्पत्न्य राजा से लेकर पाँच पत्न्य आत्मा का व्यवहार राज्य रहा । तत्पत्न्य आत्म के विशेष से व्यवहार नष्ट होग्ये क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अस्मिन्मा आत्मपत्न्य विलिख वही का राज्य बहुत दिन नहीं चलता । और वह संसार की स्वभाविक वृत्ति है कि जब बहुतसा अस्मय धन प्रवाह्य से अधिक होता है तब आत्मक पुण्यावृत्तिता ईप्सा, द्वेष विद्यासक्ति और प्रमाण

बताई है। इससे दृष्ट में बिना सुविधा पाए होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यवहार बढ़ जाते हैं, जिससे कि मध्यमस्त स्तर, वास्तविकता में बिना हीर स्वेच्छाचारि होय बढ़ जाते हैं और जब कुछ बिना में सुखविद्याकीयता और संता इतनी बढ़े कि जिसका सामना करना बुरा होता है वृत्तों में वृत्तों न हो तब उस लोगों में पक्षपात अस्मिन् बढ़कर चलाय बढ़ जाता है। जब वे होय होजाते हैं तब अस्मत् में पिराण होकर अस्मत् उनसे अधिक दूसरे छोटे कुत्तों में स कोई ऐसा समय पुरुष बढ़ होता है कि उसके पराजय करने में समय हावे जिस सुसहस्रों की वास्तविकता के सामने विद्याजी गार्हपत्यिहजी न पड़े होकर सुसहस्रों के राज्य को विद्या मित्र कर दिया है।

अथ किमर्थं पराजय महाधनुषाद्यव्यतिनं कश्चित् सुपुत्रमूरि पुत्रेन्द्रपुत्रकुलवायव्ययौवनाभ्यवृष्ण्यभ्यपतिष्ठतिदुर्हरिद्वाम्नाऽऽमरीपनमस्तुसर्पातिवयात्यनरपयाससंन्याय' । अथ मरुत्तमरुत्तप्रवृत्तयो राजान' ॥ मनुपनि ३ । १ । ४ । ४ ॥

इत्यादि अर्थों में सिद्ध है कि यदि स केकर महाधनुषपयस्त अर्थों में अस्मत्त राजा आर्यकुल में ही हुए थे। जब इनके अस्मत्तों का अस्मत्तार्य होने से राजाज्य हाकर विद्युतियों के वास्तविकता हो रहे हैं। ऐसे वही सुपुत्र, मूरिपुत्र इन्द्रपुत्र कुलवायव्य वीर्यव्य वर्यव्य अथपति राक्षसिदु हरिद्वाम्नाऽऽमरीपनमस्तु सर्पाति वयाति अस्मत्त अस्मत्त मरुत्त और मरुत्त अस्मत्त सप भूमि में अस्मत्त अस्मत्तों राजाओं के नाम लिखे हैं जिस स्वयम्भवादि अस्मत्तों राजाओं के नाम स्पष्ट मरुत्तमरुत्त महाधनुषादि अर्थों में लिखे हैं। इसको सिद्धा करवा अस्मत्तों और पक्षपातियों का नाम है ॥

प्र०—जा अस्मत्तारा अस्मत्त विद्या लिखी है व सत्य है या नहीं? और तोय तथा अस्मत्त ता उस समय में भी क्या नहीं?

उ०—यह बात सही है वे राजा भी थे क्योंकि पक्षपातियों से इन सब अर्थों का सम्भव है ॥

प्र०—क्या व एकत्रियों के मन्त्रों में सिद्ध होत थे?

उ०—नहीं व सब अर्थ जिन्हें अस्मत्त अर्थों को सिद्ध करत थे वे मन्त्र' अर्थान् विचार व सिद्ध करत और अस्मत्त व और जो मन्त्र अर्थान् अस्मत्त होता है उच्छ कोई अर्थ उच्छ महो हाता और जो कोई कह कि मन्त्र व अस्मत्त उच्छ हाता है तो वह मन्त्र व जब अस्मत्त व इत्य और जिद्ध को मन्त्र कर द्ये। मन्त्रने उच्छ अर्थ को और मर रह पाय। इत्यविन मन्त्र अर्थ है विचार का जिस राजमन्त्रों' अर्थान् राजमन्त्रों का विचार करवाया करता है जिस मन्त्र अर्थान् विचार से सब अर्थों के परार्थों का अर्थ शान और पक्षान् विचार करने से अस्मत्त मन्त्र के परार्थों और विद्याकीयता उच्छ होत है। जैसे कोई एक छोड़े का अर्थ का गाथा बनाकर उस में एव परार्थ रक्ख कि जा अस्मत्त व अस्मत्त व अर्थ में पुत्रों अस्मत्त और गृह्य की विचार का अर्थ व अर्थ हात में अस्मत्त उच्छ

उठ इसी का नाम आग्नेयाश है। जब दूसरा इसका विचार करने लगे तो उसी पर आश्चर्य होकर वे अर्थात् कैसे शत्रु ने शत्रु की सेवा पर आग्नेयाश होकर काम करना चाहा किंतु ही अपनी सेवा की स्वार्थ सेवापति आश्चर्य से आग्नेयाश का विचार करने लगे। यह ऐसा प्रमाणों के योग से होता है जिसका पुर्ण अनु के स्पर्श होते ही बरख होके भट्ट करने लगा जहाँ अग्नि को बुझा देने। ऐसे ही सामान्य अर्थात् जो शत्रु पर जोड़ने से उसके अर्थात् को अन्त के साथ होता है। किंतु ही एक मोहनाश अर्थात् जिसमें नते की चीज रखने से जिसके पुर्ण के अपने से सब शत्रु की सेवा मित्रात्वा अर्थात् मुक्ति हो जान। इसी प्रकार सब शत्रुओं का भी और एक तरफ से का सीधे अन्त किन्ती और पदार्थ से किन्तु उत्पन्न करने शत्रुओं का पदार्थ करने से उसका भी आग्नेयाश तथा पदार्थताश करते हैं।

“तोप और बन्दूक” के नाम अन्य देशभाषा के हैं संस्कृत और आर्यावर्षीय भाषा के नहीं किन्तु जिसको बिदेसी अब तोप करते हैं संस्कृत और भाषा में उसका नाम “तटसी” और जिसको बन्दूक करते हैं उसको संस्कृत और आर्यावर्षीय भाषा में “मुष्टवली” करते हैं। जो संस्कृत विद्या को नहीं पढ़े वे हम में पढ़कर कुछ का कुछ बिखले और कुछ का कुछ करते हैं। उसका बुद्धिमान लोग समझ नहीं कर सकते और जिसकी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्यावर्षीय देश से मित्रात्वा उक्त भूगोली उक्तसे हमें और उक्तसे यूरोप में उक्त अमेरिका आदि देशों में फैली है ॥

अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्यावर्षीय देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं। जो लोग करते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूखर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा वह बात कहने मात्र है क्योंकि “यस्मिन्नु श्रुमो नास्ति तत्रैरयथाऽपि द्रुमायत” अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में वृक्ष ही को बड़ा मानते हैं किंतु ही यूरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जम्मू लोगों और मोक्षमूखर साहब का आश्चर्य पड़ा रही उस देश के बिदे अर्थिक है। परन्तु आर्यावर्षीय देश की ओर देखें तो उनकी बहुत स्पष्ट गणना है क्योंकि मैं जर्मनी देशविषयी के एक “प्रिन्सिपल” के पत्र से जान कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का अर्थ करनेवाले भी बहुत कम हैं और मोक्षमूखर साहब के संस्कृत साहित्य और वाक्पति देश की भाषा इसका मुक्त को बिदित होता है कि मोक्षमूखर साहब ने इधर उधर आर्यावर्षीय लोगों की कीर्तु हीका देखकर कुछ न पढ़ा तथा बिदित है कि “मुष्टवलि प्राग्मकर्ण चरित्य परितस्थुः”। राखन्त राखन्त विधि (क १११११) इस मन्त्र का अर्थ पादा किया है। हमसे तो जो साधकाचार्य न सृष्टे अर्थ किया है तो अर्थ है शत्रु इसका शोक अर्थ परमात्म है या मरी बर्मा आर्यावर्षीयभूमिभूमि में एक अर्थिक। हमसे इस मन्त्र का अर्थ अर्थ किया है। हमसे तो जान अर्थिक कि जर्मनी देश और मोक्षमूखर साहब में संस्कृत विद्या का जितना प्रविष्ट है ॥

॥ यह शत्रु रोम अर्थात् होता है ॥

वह निश्चय है कि जिसकी विद्या और मत्त मूलोक्त में फैले हैं वे सब आध्यात्मिक देश ही स सम्बन्धित हुए हैं। देखो ! कि एक "वैष्णवपट्ट" ७ साधन पैस धर्मार्थ प्राप्त कर निम्नोक्त अपनी 'आध्यात्मिक रूप इच्छा' में लिखत हैं कि सब विद्या और मन्त्रादियों का मन्त्रार्थ आध्यात्मिक देश है और सब विद्या तथा मत्त इसी देश स फैले हैं और परमात्मा की प्रथमा करते हैं कि हे परमेश्वर ! इसी उन्नति आध्यात्मिक देश की पूर्ण कक्षा में ही किसी ही हमारे देश की कीर्ति छिक्ते हैं उस प्रथम में देखो तथा "वैष्णवपट्ट" आध्यात्मिक देश में ही सभी विद्या किमा या कि किसी पूरी विद्या संस्कृत में है किसी किसी भाषा में नहीं। वे ऐसा उपनिषदों के आध्यात्मिक में लिखते हैं कि मैंने सभी आदि बहुत सी भाषा पूरी परन्तु मत्त मत्त का सम्बन्ध ब्रह्म परमात्मा न हुआ। जब संस्कृत देश और मुक्त तब निम्नोक्त आध्यात्मिक मुक्त को क्या आध्यात्मिक हुआ है ॥

देखो कर्ण के 'मन्त्रमन्त्र' में विष्णुमन्त्र के कि जिसकी पूरी रक्षा भी नहीं रही है तो भी किन्तु उन्नत है कि जिस में अचरक भी आध्यात्मिक का बहुतसा ब्रह्मन्त्र स्थित होता है जो 'अर्थात् अपरुपणीय' उसकी सम्पत्ति और पूरे दृष्ट का ब्रह्मन्त्र करेंगे तो बहुत आध्यात्मिक होना परन्तु ऐसे विष्णुमन्त्र देश को आध्यात्मिक के मुक्त ने ऐसा कहा कि अचरक भी वह अपनी पूरा इसा में नहीं आता क्योंकि जब आर्थ को आर्थ करने का तो बात होने में तथा सम्बन्ध ?

विष्णुमन्त्र के विपरीतस्थिति ॥ ब्रह्मन्त्र ७ १६। १७ ॥

यह किसी कवि का कवन है। जब बात होवे का समय निम्न आता है तब उन्नी बुद्धि होकर उन्नत कवन करते हैं। कोई उन्नत सृष्टि सम्पत्ति का उन्नत मन्त्र और उन्नत सम्पत्ति उसका सभी मन्त्र। जब कवे १ विष्णु राजा महाराजा आदि महर्षि आता महाराज मुक्त में बहुत स मन्त्र एवं और बहुत स मन्त्र एवं तथा विद्या और ब्रह्मन्त्र धर्म का प्रकार वह ही कहा। ईश्वर रूप आध्यात्मिक आत्म में करने का। जो ब्रह्मन्त्र हुआ वह देश को ब्रह्मन्त्र राजा बन गया। ऐसे ही सब आध्यात्मिक देश में अचरक ब्रह्मन्त्र राजा हुआ हीन-हीनान्तर के राजा की ब्रह्मन्त्र और कर ? जब आध्यात्मिक आता विष्णुमन्त्र हुए तब ब्रह्मन्त्र देश और राजा के आध्यात्मिक होने में तो क्या ही क्या कहा ? जो परमात्मा स देशों राजा का अचरकहित पढ़ने का प्रकार था वह भी ब्रह्मन्त्र। ब्रह्मन्त्र जीविकाय परमात्मा आध्यात्मिक आता पढ़ते रह तो परमात्मा भी ब्रह्मन्त्र आदि को न पढ़ता क्योंकि जब आध्यात्मिक हुए मुक्त बन गया तब ब्रह्मन्त्र, प्रथम भी उन्नत बना गया। आध्यात्मिक ने विचार कि अपनी जीविकाय का प्रथम ब्रह्मन्त्र आदि। सम्पत्ति करक नहीं विचार कर ब्रह्मन्त्र आदि को उपदेश करने का कि हम ही हमारे प्रथम है। बिना हमारी तथा किन्तु तुम्हारे तथा का मुक्ति न मिलनी। किन्तु जो तुम हमारी तथा न करो तो बात करक में पढ़ना ॥

जा १ पूरा विष्णुमन्त्र आध्यात्मिक का नाम आध्यात्मिक और प्रथम का और आदि मुनिपों के तथा में लिखा था उनका अपन मूल विपरीत कर्ण सम्पत्ति,

अधर्मियों पर पड़ा बैठे। मर्या ने प्राप्त विद्वानों के अक्षय इन मूर्खों में कब कर सकते हैं? परन्तु जब बलिपादि पञ्चमग्न संस्कृत विद्या से अत्यन्त रहित हुए तब उनके सामने जो १ गण्य भारी सो १ विचारों ने सब मान ली तब इन ब्रह्ममय ब्राह्मणों की बग पड़ी। सब को अपने ब्रह्मब्राह्म में बाँधकर कर्तव्यमूल कर दिया और कहने लगे कि—*ब्रह्मवाक्यं अमार्तम्* ॥ पाचम गीता ॥

अर्थात् जो कुछ ब्राह्मणों के मुख में से बचन निकलता है वह जानो सत्यम् सत्यम् के मुख से निकला। जब बलिपादि वर्ष भरत के अंधे और गाँव के पूरे अर्थात् भीतर विद्या की आँख पड़ी हुई और मिलने पर सब पुण्य है ऐसे १ केसे मिले फिर इन अर्थ ब्राह्मण ब्रह्मणों को विद्याबन्धु का उपवन मिल गया। यह भी उन लोगों ने प्रसिद्ध किया कि जो कुछ पुण्य में उत्तम परार्थ है वे सब ब्राह्मणों के दिये हैं। अर्थात् जो कुछ कर्म स्वभाव से ब्राह्मणदि ब्रह्मब्रह्मण ही उसको नष्ट कर जन्म पर रखी और अतकपर्यन्त का भी इन ब्रह्मणों से खेदे लगे। जैसे अपनी इच्छा हुई बिता करते चले। वहाँ तक कि कि “हम भूरे हैं” हमारी सेवा के बिना ऐक्योक्त किसी को नहीं मिल सकता। इसके पञ्चम आदि कि तुम किस लोक में पधरोगे? तुम्हारे जन्म तो बोर नरक भोगने के हैं कृमि की पतङ्गदि बनोगे। तब तो बड़े अवेधित होकर कहते हैं—हम “साधु” लो तो तुम्हारा भाग हो जन्म लीकें कि कि—*ब्रह्मद्रोही विनश्यति* कि जो ब्राह्मणों से श्रोह करता है उसका नाश हो जाता है। हाँ वह बात तो सही है कि जो पूर्व नष्ट और परमात्मा को आशने लगे ब्रह्मणा सब जन्म के उपकारक पुण्यों से होय अंगेय वह अक्षय नष्ट होय परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हों उनका न ब्राह्मण नाम और न उनकी सेवा करनी योग्य है ॥

प्र०—तो हम कौन हैं?

उ०—तुम पोप हो ॥

प्र०—पोप किसे कहते हैं?

उ०—इसकी सूचना रोमन् भ्राता में तो बड़ा और पित्त का बम पोप है परन्तु जब कुछ कष्ट हो दूसरे को अक्षय अपना अन्तर्जाल साधनेवाले को पोप कहते हैं ॥

प्र०—हम तो ब्राह्मण और साधु हैं, क्योंकि हमारा पित्त ब्रह्मण और मर्या ब्राह्मणी तथा हम अनुक्त साधु के लगे हैं ॥

उ०—वह सत्य है परन्तु तुमो माई! मैं क्या ब्राह्मण ब्राह्मणी होने से और किसी साधु के शिष्य होने पर ब्राह्मण या साधु नहीं हो सकते किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण कर्म, स्वभाव से होते हैं जो कि परोपकारी हो ॥

मुख्य है कि जिस रोम के “पोप” अपने केसों को कहते हैं कि तुम अपने पाप हमारे सामने कहोगे तो हम क्षमा कर देंगे बिना हमारी सेवा और आज्ञा के कोई भी स्वामी नहीं जा सकता जो तुम स्वामी में जाना चाहो तो हमारे पास मिलने दाने क्षमा करोगे उतने ही की सामग्री स्वामी में तुमको मिलेगी जेसा मुखर जब कोई आँख के अन्धे और गाँव के पूरे स्वामी में जाने की इच्छा करे

“पोपजी” को धोएह रुखा देता था तब वह ‘पोपजी’ ईसा और मरिम्म की मूर्ति के सम्मने खड़ा होकर इस प्रश्न की झुंडी खिचकर देता था—“हे तुमकाई ईसामसीह ! अमुक मनुष्य ने तेरे नाम पर खान्द किये स्वर्ग में जाने के लिए हमारे पास्त बन्ना कर दिये हैं जब वह स्वर्ग में जाये तब तू अपने पिता के स्वर्ग के राज में पचीस सहस्र रुपयों में बामाकगीच्छ और मन्दागस्त पचीस सहस्र में सन्दरी शिकरी और नौकर आकर पचीस सहस्र रुपयों में खाना पीना कपड़ा खाना और पचीस सहस्र रुपये इससे इह मित्र मर्द्द बन्तु आदि के त्रिबादत के काले बिचा देना । फिर उस दुबडी के नीचे पोपजी अपनी सही करके दुबडी उसके हाथ में देकर कहते थे कि ‘जब तू मेरे तब दुबडी को इन्वर में अपने सिराये पर धेने के लिये अपने कुटुम्ब को कह स्वग्य फिर तुझे छेजये के लिये फरिस्टे आयेगे तब तुझे और तेरी दुबडी को स्वग्य में छेजकर लिये प्रमाण सब चीजें तुझ को बिचा होंगे ॥”

अब देखिये आगे स्वर्ग का देस पोपजी ने से बिचा हो ? जगतक यूरोप देस में मूर्खता की तमी तक बड़ी पोपजी की खीका चकती थी परन्तु अब बिच्छ के होने से पोपजी की झुंडी खीका बहुत नहीं चकती किन्तु निर्मूलक भी नहीं हुई ॥

ऐस ही आन्ग्लैण्ड देस में आगे पोपजी ने आन्तों कल्लार छेकर खीका बिचाई हो अर्थात् राजा और मन्त्र को बिच्छ न पढ़ये बला अन्धे पुर्खों का संग न होने देना एत दिव बहकाने के सिक्क दूतरा कुछ भी काम नहीं करना है परन्तु यह बात प्याय में रखना कि जो २ कलकपटादि कुम्हित मन्दागर करते हैं वे ही पोप कहलें हैं । जो कोई उनमें भी नामिक बिशुन् परोपकारी हैं वे सच्चे मन्दागर और साधु हैं ॥

अब उन्हीं दुबडी कपटी स्वर्गी आगों मनुष्यों को आकर अपना प्रबोजन सिद्ध करकेक्यों ही का मन्दा ‘पोप’ कम्प स करवा और मन्दाग्य तथा साधु नाम से उन्म पुर्खों का स्वीकार करना योग्य है । देखो ! जो कोई भी उन्म मन्दाग्य का साधु न होत तो वेदादि सम्प्रदायों के पुस्तक स्वरसहित का पन्मपात्रन जीव मुसलमान ईसाई आदि के आख से बचाकर आन्तों को वेदादि सम्प्रदायों में प्रीतिपुक्त कर्माग्र्यों में रहना देना बीच कर सकता ! सिक्क मन्दाग्य साधुओं के । “विपादप्यमृतं प्राह्यम्” (मनु २ । २३६) बिच स भी अमृत के मन्दाग्य करने के समान पोपजीका से बहकाने में से भी आन्तों का जीव आदि मर्तो से बच रहना आगे बिच में अमृत के समान शुभ सम्भवा चाहिये ॥

अब ब्रह्माण्ड विद्याहीन दुष्ट और अत्य कुछ पाठ पूरा पढ़कर अमिमान्य में आठ सब लोगो ने परस्पर सम्प्रति करके राजा आदि से कहा कि मन्दाग्य और साधु अदृश्य हैं । देखो ! ‘मन्दाग्यो न ह्यन्यथा’ “साधुर्म हस्तद्वय” केन २ बपन जो कि सच्चे मन्दाग्य और साधुओं क बिच में से सा पोपों न अपने पर अत्य लिये और भी कूटे २ बपन पुक्त मन्त्र रखकर उनमें अति मुनिओं के नाम धर के उन्हीं क नाम स भुनकते हैं । उन प्रतिष्ठित अति महर्षिों के नाम से अपने पर से इवह की ज्वलक उन्म ही । पुनः धोएहआर करने आगे अर्थात्

ऐसे कहे निरुक्त कहावे कि उन पोपों की आज्ञा के बिना साक्षात् उन्मा वैश्य
कामा खाया पीया आदि भी नहीं कर सकते थे। राजाओं को ऐसा विश्वास
करना कि पोपसंशुक्त कह्ये मात्र के आह्वान साधु चाहे सो करें आपको कभी
दबड़ न देना अर्थात् उस पर मन में भी दबड़ देने की इच्छा न करनी चाहिये।
जब पंसी मूर्खता हुई तब वैसी पोपों की इच्छा हुई वैश्य करने का अर्थात्
इस विग्रह के मुख महाभारत पुत्र से पूरा एक सङ्का कर्ष से प्रवृत्त हुए थे
क्योंकि उस समय में जपि मुनि भी थे तथापि कुछ २ व्याजका प्रमाण, ईर्ष्या
द्वेष के संकुल उग्रा थे वे बफते २ कुट्ट होगये। जब सखा उपदेश न रहा तब
आत्मार्थ में व्यवस्था बिनाकर परस्पर में लड़ने लगाइन का कर्णिक —

उपदेशोपदृष्टत्वात् तस्मिन् ॥ इतरथाऽप्यपरम्परा ॥

संख्येय ३। सु. ७३। ८१ ॥

अर्थात् जब उत्तम २ उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म अर्थ काम
मोक्ष सिद्ध होते हैं और जब उत्तम उपदेशक और अस्तित्व नहीं रहते तब
अन्धपरम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्संमर्श करते हैं
तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रत्यक्ष की परम्परा चलती है ॥

पुनः वे पोप लोग अपने कार्यों की पूजा कराने लगे और कहने लगे कि
इसी में सुखदय कल्याण है। जब वे लोग इनके कर्म में होमये तब प्रमद और
विपदासक्ति में निमग्न होकर गहरिये के समान छूटे हुए और केहे रसि। बिना
बल बुद्धि पराक्रम दूरबीरतादि शुभगुण सब गह होते लगे। पश्चात् जब
विरासतक हुए तो मांस मद्य का सेवन गुप्त २ करने लगा ॥

पश्चात् उन्हीं में से एक कममत्तमा कहा किया। “शिख उवाच” पार्थ
स्यवाच” भैरव उवाच” इत्यादि नाम बिलकर तंत्र नाम परा उभय पंसी २
विभिन्न बीजा की कलें बिखी कि—

मर्च मंस च मीनं च मुत्रा मेधुममव च ।

एतं पञ्च मकारा स्फुर्मोक्षं हि युग युग ॥ १ ॥ कालोत्तंदि में ॥

प्रवृत्ते मेरुपीचक सखे वर्णा द्विजातयः ।

निवृत्ते मेरुपीचक सखे वर्णा पृथक् पृथक् ॥ २ ॥ कुशाब्जं तन्म ॥

पीत्या पीत्वा पुनः पीत्वा पावत्पतति भूतल ।

पुनस्तथाय ये पीन्ना पुनः तन्म न दिद्यत ॥ ३ ॥ मद्रन्विषोश्च तन्म ॥

मातृपोनि परित्यज्य विहरत् सार्यानिपु ॥ ४ ॥

कस्यापि पुराणानि सामान्यगणिका इव ।

एतेय शम्भवी मुत्रा गुप्ता कुल गभूरिय ॥ ५ ॥ शान्त्यं कलत्री तन्म ॥

अथान् एता इव गभूरिय पातों की बीजा जो बहकिन्ह महा अधर्म ६ काम
हं उन्हीं का भव कामगणिकों ने माना सब योग भीम अथान् मध्यी गुप्ता
पुत्री, कथौरी और बह रात्री आदि कर्षक बापि पाण्ड्यार मुत्रा और पाण्ड्यो मनुज
अथान् गुप्ता सब शिव और भी सब पार्थवी ६ समान मानकर—

अहं भैरवस्त्वं भैरवी शायपोरस्तु सङ्गमः ॥

जब कोई पुण्य का बी हो इस अष्टपदा वचन को पढ़ के समागम करने में व काममार्गी होय नहीं मानत । अर्थात् जिन नीच कियों को पूजा नहीं उनकी प्रति पवित्र उन्होंने माना है । जिस शक्तों में रत्नवत्ता आदि कियों के स्पर्श का विप्रेष है उनको काममार्गियों ने प्रति पवित्र माना है सुनो इसका सोक खबरबखर—

रत्नवत्ता पुष्कर तीर्थ चाण्डाली तु सर्व कारी धर्मकारी प्रयाग
स्याद्रवकी मधुरा मठा । अयोध्या पुस्तसी मोक्षा ॥ अक्षममम लम्ब ॥

इत्यादि रत्नवत्ता के साथ समागम करने से आगे पुष्कर का काम चाण्डाली से समागम में काली की शक्त । अयोध्या से समागम करने से आगे अक्षममम लम्ब बोली की बी के साथ समागम करने में मधुरा पत्ता और कंडरी के साथ लम्बा करने से आगे अयोध्या तीर्थ कर आये । मम का नाम धरा तीर्थ मांस का नाम शुद्धि और पुण्य मन्त्री का नाम तुलीया 'अक्षुम्भिक' मुद्रा का नाम अनुर्वा और मिथुन का नाम पञ्चमी । इसलिये ऐसे २ नाम भर है कि जिससे दूसरा व समक लगे । अपने बीच आर्जुनार नाम्म और गन्ध आदि नाम रखे हैं । और जो काममार्गी मत में नहीं हैं उनका कथक 'विमुक्त' 'अक्षमम' आदि नाम भर है । और कहते हैं कि जब भैरवीचक्र हो तब उसमें आद्य से लेकर अष्टाष्ट पर्यन्त का नाम द्विज होजाता है और जब भैरवीचक्र से आका हो तब सब अपने २ वर्ण्य होजाते ॥

भैरवीचक्र में काममार्गी लोग मुनि का परदे पर एक किन्तु जिसको अक्षुम्भिक वत्तु आकर बचाकर उस पर मम का बड़ा रखने उसकी पूजा करते हैं । फिर दूसरा मंत्र पढ़ते हैं "अक्षमम किमोच्य" है मम ! तु अक्ष आदि के साथ ॥ रहित हो । एक गुप्त समय में कि वहाँ सिद्धय काममार्गी के वृत्त को नहीं जाने कृत वहाँ की और पुण्य इकट्ठे होते हैं । वहाँ एक बी को गढ़ी कर पूज्य और बी छोम किसी पुण्य को गढ़ा कर पूजती है । पुका कोई किसी की बी कोई अपनी या वृत्त की कथक कोई किसी की या अपनी माता भगिनी पुष्कर आदि जाती है । कथक एक पत्र में मम मर के मांस और बड़े आदि एक बाखी में भर रखते हैं । उस मम के पत्रों का जो कि उनका आकाश होता है वह इन में लेकर बोधता है कि भैरवीहम् भिवाहम्" मैं भैरव का शिष हूँ" कहकर पीयाता है । फिर उसी बड़े पत्र से सब पीता है । और जब किसी की बी या करपा बड़ी कर अधक किसी पुण्य को गढ़ा कर हृदय में लकड़ार बड़े उसका नाम रखी और पुण्य का नाम महादेव रखते हैं । उनके उपरान्त इन्द्रिय की पूजा करते हैं तब उस बी का शिव का मम का आका पिछाकर उसी बड़े पत्र से सब लोग एक २ प्याला पीते । फिर उसी प्रकार मम से पी पी के अन्त्य होकर जब कोई किसी की बहिन कथा का माता कपी व हा जिसकी जिसके साथ इच्छा हो उसके साथ कुम्भ करते हैं । कभी २ बहुत बड़ा चाने का गूँत घात मुकामुकी केपामेरी आस में बहते हैं । किसी २ का बड़ी कमन होता है । उनमें जो पूर्ववत् पुण्य

अधोरी अर्थात् सब में सिद्ध गिना जाता है, वह कमजुई चीज को भी का केता है अर्थात् इनके सबसे बड़े सिद्ध की ये बातें हैं कि—

हासा पिपति वीक्षितस्य मन्दिरे सुतो मिश्राया गणिकायूहेषु ।
विराजते कोकबलकवर्ती ॥

जो दीक्षित अर्थात् कम्यार के घर में जन्मे बोलख बाले टिठियों के घर में जाने उनसे कुर्म करके सोने इत्यादि कम जो निर्द्वन्द्व मिश्रण होकर बने वही कममार्गियों में सर्वोपरि मुख्य चमकती राख के समान माना जाता है । अर्थात् जो बड़ा कुर्मों वही उनमें बड़ा और जो अपने कम करने और बुरे कमों से बने वही छोटा क्योंकि—

पाशवदो मवेज्जीव पाशमुक सदा शिषा ॥ ज्ञानसंकाशो लम्ब श्लोक १३ ॥

पेसा लम्ब में कहते हैं कि जो कोकबलक राखबलक कुम्बबलक देतबलक अदि पाशों में बंधा है वह बीच, जो निर्द्वन्द्व होकर बुरे कम करने वही सदा शिषा है ।

उन्नीस लम्ब अदि में एक प्रयोग दिया है कि एक घर में चारों ओर आसन हो । उनमें मध्य के बोलख सरके घर गेले । इस आसन से एक बोलख पीछे दूसरे आसन पर जाये । उसमें से पी तीसरे और तीसरे में से पीछे बीजे आसन में जाये । बड़ा १ तकतक मध्य पीछे कि जयतक खकड़ी के समान धूमिली में न गिर पड़े । फिर जब बड़ा उठे तब उसी प्रकार पीछर गिर पड़े । पुनः तीसरी बार इसी प्रकार पीछे गिर के उठे तो उसका पुनर्जन्म न हो अर्थात् सब तो यह है कि ऐसे १ मनुष्यों का पुनः मनुष्यजन्म होना ही कठिन है किन्तु नीच बोधि में पड़कर बहुकलपफल पका रहेगा ॥

आमियों के लम्ब प्रणों में यह विषय है कि एक मरता को जोड़ के किसी वी को भी न जोड़ना चाहिये अर्थात् आये कथा हो या मृगिनी आदि व्यों न हो सब के साथ सङ्गम करना चाहिये । इन कममार्गियों में इस महप्रतिषेध अस्ति है उनमें से एक मठवादी निपात्राया कहता है कि 'मातरमपि न मयेत्' अर्थात् मरता को भी समागम किन्तु बिना न जोड़ना चाहिये और वही पुन्य के समागम समन में मन्त्र कहते हैं कि हमको सिद्धि प्राप्त होऊन । ऐसे पापका महामूल मनुष्य भी बहुत म्यून होवे । । । ॥

जो मनुष्य मूढ़ बचाना चाहता है वह लम्ब की विन्दा चरण ही करता है । देखो ! कममार्गों क्या कहत हैं ? वेद शास्त्र और पुराण ने सब सामान्य बन्धनों के समागम हैं और जो यह सोचनी कममार्गों की मुद्रा है वह गुणगुण की वी के पुन्य है ॥ २ ॥ इसीछिये इन बोधों ने केवल वैदिकिन्दा मत बड़ा किन्तु है । पश्चात् इस बोधों का मत बहुत बला । तब चूर्णता करके बड़ों के काम सब भी कममार्गों की पापी १ खीसा बचाई, अर्थात्—

सोत्रामय्यां सुरां पिपत् ॥ प्रोक्षितं भक्षयेन्मासम् ॥

पेदिकी हिसा हिसा न मयति ॥

न मयसमण्ये दोषो न मये न च मैथुने ।

प्रवृत्तिरप्य भूतानां निवृत्तिस्तु महापला ॥ मनु च २ । ३६ ॥

सौभाग्यसि पञ्च में मध्य पीठ इसका अर्थ यह है कि सौभाग्यसि पञ्च में सोमरस अर्थात् सोमबली का रस पिब । प्रोक्षित अथवा पञ्च में मांस खाने में बाध नहीं ऐसी पामरपत्र की बातें कामगारियों ने कहाई हैं । उनसे पूछना चाहिये कि जो बैरिकी हिंसा हिंसा न हो तो तुम्हें और तारे कुटुम्ब को मार के होम कर उन्हें तो क्या किता है ? मांसमन्त्र करने मध्य पीठ परकीगमन करने आदि में दोष नहीं है यह कहना झोठबापन है क्योंकि बिना आधियों के पीठा दिव मांस प्रस्य नहीं होता और बिना अपराध के पीठा देना धर्म का काम नहीं । मध्यमात्र का तो सर्वथा निषेध ही है क्योंकि जब तक कामगारियों के बिना किसी प्रस्य में नहीं बिना किन्तु सर्वत्र निषेध है और बिना बिनाह के मैतुन में भी दोष है इसको विज्ञेय कहनेका सरोप है । ऐसे २ कथन भी आधियों के प्रस्य में काम के किता है अपि सुविद्यों के धाम से प्रस्य बनाकर गोमेध अथमेध नाम के ब्रह्म भी करने लगे थे । अर्थात् हव पशुओं को मारके होम करने से ब्रह्ममन्त्र और पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ऐसी प्रसिद्धि का ० विधाय तो यह है कि जो मन्त्रब्रह्मण्यो में अथमेध गोमेध नरमेध आदि कर्म हैं उनका ठीक २ अर्थ नहीं बना है क्योंकि जो जानते तो ऐसा अथर्व क्यों करते ?

प्र०—अथमेध गोमेध आदि कर्मों का अर्थ क्या है ?

उ०—इसका अर्थ तो यह है कि—

राष्ट्र वा अथमेध ॥ अथ १३।१।२।३।४

अथर्व हि गो ॥ अथ ७।३।१।२।३।४

अग्निर्वा अथर्व ॥ आर्य मध ॥ अथर्वशास्त्रे ॥

चोरे प्रस्य आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना कहीं नहीं बिना केवल कामगारियों के प्रस्यों में ऐसा करने बिना है, किन्तु यह भी बात कामगारियों ने कहाई । और वही २ श्लोक है वही २ भी कामगारियों ने प्रकट किया है । स्वो ! राज्य स्वयं धर्म से प्रस्य का पाठन कर विष्णु का स्वस्वरा ब्रह्मात्र और आदि में भी आदि का होम करना अथमेध अथ इन्द्रिय, फिरब पुत्रिणी आदि को पवित्र रखना गोमेध जब मनुष्य मरान्य तब उसके शरीर का विविधपूर्वक दण्ड करना परमेश्वर कहता है ॥

प्र०—अथकथा कहते हैं कि मत्त करने से ब्रह्ममन्त्र और पशु स्वाध्यायी तथा होम करके फिर पशु को जीता करते थे यह बात सही है या नहीं ?

उ०—बही, जो स्वर्ग को जानें हो तो ऐसी बात करने वाले का मार के होम कर स्वर्ग में पहुँचना चाहिये वह उसके दिव मत्ता पिता की और पुत्रादि को मार होम कर स्वर्ग में क्यों वही पहुँचते ? या वेही में से पुत्रा क्यों नहीं जिया करते हैं ? ॥

प्र०—जब ब्रह्म करता है तब वेहों के मन्त्र पढ़ते हैं । जो वेहों में न हाता तो कहां से पढ़ते ?

३०—मन्त्र किसी को कहीं पढ़ने से नहीं रोकता क्योंकि वह एक लक्ष्य है। परन्तु उनका ध्येय ऐसा नहीं है कि पशु को मारके होम करना। वैसे “आग्नेये स्वाहा इत्यादि मन्त्रों का ध्येय अग्नि में इति पुष्ट्यादिभ्यश्च पृथग्वि उत्तम पशुओं के होम करने से कसु, वृष्टि, पञ्च इन्द्र होकर जगत् को सुखकरक होते हैं। परन्तु इन सप्त धर्मों को वे मूढ़ नहीं समझते वे क्योंकि जो स्वाभयुक्ति होते हैं वे केवल अपने स्वार्थ करने के दृष्टि से कुछ भी नहीं जानते मानते ॥

जब इन पोरों का ऐसा प्रवाचार देखा और दूसरा मरे का तपस्व आदि करने को देखकर एक महात्मनश्चर वैश्वसि शाकों का विन्ध्यक बौद्ध का वैष्णव प्रवर्धित हुआ है। सुनते हैं कि एक इसी स्थ में गोरक्षपुर का राजा था। उसने पोरों से बहुत कष्टाया। उसकी मित्राही का समझना धोरे के साथ काने से उसके मरने पर पशुत्वं प्राप्त होकर अपने पुत्र को राज्य से संपुट हो पोरों की पौष्टि निश्चयने लग्य। इसी की शान्दक्य चारण्य और चाम्पक मत् भी हुआ था। इसीने इस प्रकार शोक बनाये हैं ॥

पशुश्चछिहत्तं सगं ज्वालिष्टोमं गमिष्यति ।

सपिता पञ्चमात्मन तत्र कस्मात्त हिंस्यते ?

मृतानामिह जन्तूनां भ्रातृं चेतुसि कारणम् ।

गच्छतामिह जन्तूनां स्वर्गं पार्थिवकल्पनम् ॥

जो पशु मरकर अग्नि में होम करने से पशु स्वाम को ज्ञाता है तो ब्रह्ममन्त्र अपने पिता आदि को मारके स्वयं में स्वामी नहीं देखते ॥ १ ॥ जो मरे हुए मनुष्यों की तृप्ति के लिये अन्न और तर्पण होता है तो विज्ञेय में जानेवाले मनुष्य को मर्य का ज्ञान जाने पीने के लिये बांधना व्यव है क्योंकि जब पुरुष को मर्य, तपस्व से बल बल पहुँचता है तो जीते हुए परदेश में रहनेवाले का मर्या में बलकेद्वारा की मर में स्वीकृति नहीं हुई की पञ्च परेन्द्र बोध मर उसके ब्रह्म पर स्थाने से नहीं पहुँचता। जो जीते हुए दूर देश प्रमत्त दस हज्ज पर दूर बड़े हुए को दिया हुआ नहीं पहुँचता तो मरे हुए का पास किसी प्रकार नहीं पहुँच सकता। उसके देश मुक्तिदिग्द उपदेशों की भावने छोड़ और उक्त मत् करने चाह। जब बहुत से राजा सुमिपति उनके मत् में हुए तब पोपजी भी उनकी और मुझे क्योंकि इनकी मित्र गन्ध अप्पु मित्रे नहीं चले जायें। यह तीन करने चले। तीन में भी और प्रकार की पोपकीका बहुत है सो १२ वें समुद्राम में लिखते ॥

बहुतों से इन का मत् स्वीकार किया परन्तु कितने कहीं जो पशु कष्टी कष्टीर पमिस बकिष्क देवकासे वे जन्तूने जीती का मत् स्वीकार नहीं किया था। वे जियो देव का ध्येय व कावकर बाहर की पोपकीका को अग्रिष्ठ से देव पर न मानकर वेदों की भी मित्रा करने छोड़ें। उनके पञ्चमात्मन पञ्चमधीतिदि और प्रत्यक्षमिदि निषमों को भी नाश किया। जहाँ कितने पुस्तक वैश्वसि के पत्र वह किने जाम्बों पर बहुतसी उक्तता भी बसाई, हुआ दिया। जब इनको जब

राज्य में रही तब अपने मृत काछे गृहस्थ और साधुओं की प्रतिष्ठा और वैदग्ध्यियों का अपमान और पक्षपात से बचक भी देने लगे और आप सुख भोगों और समरह में आ पूछकर फिरने लगे आपमयेव से कहे महावीर पण्डित अपने तीव्रकर्षों की बड़ी २ मूर्तियों बनाकर पूजा करने लगे अर्थात् पापकात्रि मूर्तिपूजा की यह क्रियाओं सं प्रचलित हुई। परमेस्वर को मानना मृत दुष्टा पापकात्रि मूर्तिपूजा में लगे। ऐसा तीनसौ वर्ष पण्डित आचार्य में जैनों का राज्य रहा। अन्तः केशव ज्ञान से ग्रस्त हो गये थे। इस बात को अनुमान से अर्थात् अहम कथ ज्योतिष हुए हैंगे ॥

आससौ वर्ष हुए कि एक राजराज्य द्विविदेयोग्य ब्रह्म ब्रह्मर्ष से व्याकरणकादि सब शास्त्रों को पढ़कर लोचने लगे कि यह है। सत्य साहित्य वेदमत्त का ब्रह्म और तीन नास्तिक मत्त का ब्रह्मना बड़ी हानि की बात हुई है, इनको किसी प्रकार हटाना चाहिये। राजराज्य शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु तीन मत्त के भी दुष्टता पढ़े थे और उनकी बुद्धि भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचार कि इनकी किस प्रकार हटावे ? निश्चय हुआ कि उपदेश और शाकाय करने से वे लगे होंगे। ऐसा विचार कर उन्हे नगरी में लाये। वहाँ उस समय सुप्रसन्न राजा था जो जैनियों के प्रभु और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था वहाँ जैन वेद का उपदेश करने लगे और राजा से निश्चय कहा कि सत्य संस्कृत और जैनियों के भी प्रभुओं को पढ़े हो और तीन मत्त को मानते हो इसलिये आपकी मैं कहता हूँ कि जैनियों के परिवर्तों के साथ मेरा शाकाय करावूँ इस प्रतिज्ञा पर जो हारे सो जीतने लगे का मत्त स्वीकार करके और आप भी जीतने लगे का मत्त स्वीकार कीजियेगा ॥

पण्डित सुप्रसन्न जैनमत्त में थे तथापि संस्कृत प्रभु पढ़ने से उनकी बुद्धि में कुछ विषय का प्रकाश था। इससे उनके मन में अस्मत्त पशुता नहीं आई थी। क्योंकि जो विद्वान् होता है वह साम्राज्य की परीक्षा करके सत्य सत्य और असत्य को ज्ञात देता है। जब तक सुप्रसन्न राजा को बड़ा विद्वान् उपदेश नहीं निश्चय था तब तक संहि में थे कि इनमें कौनसा सत्य और कौन सा असत्य है। जब राजराज्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि इन राजाचार्य कराके साम्राज्य का निश्चय धर्म ब करायेंगे ॥

जैनियों के परिवर्तों को दूर २ स तुल्यकर सत्य कराई। उसमें राजराज्य का ब्रह्म और जैनियों का वैदिकमत्त मत्त था। अर्थात् राजराज्य का पञ्च वैदिक का लक्षण और जैनियों का पञ्चमत्त और जैनियों का पञ्च अपने मत्त का लक्षण और वेद का पञ्चमत्त था। शाकाय कई दिनों तक हुआ। जैनियों का मत्त यह था कि संहि का कर्त्ता अर्थात् ईश्वर कोई नहीं, यह जगत् और जीव अर्थात् ईश्वर दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता। इससे बिना राजराज्य का मत्त था कि अर्थात् सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्त्ता है। यह जगत् और जीव मत्त है क्योंकि इस परमात्मा के आपनी माया से जगत् बनाया बड़ी धारण और प्रकाश करता है और यह जीव और प्रपञ्च स्थाय्य है। परमेस्वर आप ही सब रूप

३०—मन्त्र किसी को कहीं पढ़ने से नहीं रोक्ता क्योंकि वह एक शस्त्र है। परन्तु उभय का पेसा नहीं है कि पशु को मारके होम करना। ऐसे "घाघरे स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों का अर्थ अग्नि में हवि पुष्ट्यादिकारक वृत्तार्थ उत्तम पशुओं के होम करने से आयु वृद्धि तथा शुद्ध होकर जन्म को सुखकर होते हैं। परन्तु इन सब अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते वे क्योंकि जो स्वाधुति होते हैं वे केवल घाघरे स्थाप करने के द्वारा कुछ भी नहीं जानते समझते ॥

अब इन पोरों का पेसा अन्धाकार बेका और दूधरा मरे का तपस्व आदर्श करने को देखकर एक महम्मदर बेदार्थि राजा का मित्रक और वह वैयक्त प्रशिक्षित हुआ है। सुकते हैं कि एक इसी देश में गोरखपुर का राजा था। उसने पोरों से पढ़ करमा। उसकी मित्राही का समाजमा घोड़े के साथ कराने से उसके मरजावे पर पशुध्वंशान् होकर घाघरे पुत्र को राज्य दे छानु हो पोरों की पोष निष्काधने लग्य। इसी की साक्षात्कार चारक और आम्नबक मत भी हुआ था। इन्होंने इस प्रकार खोले बनाये हैं ॥

पशुध्वंशितः सगः प्यातिहोम गभिष्यति ।

कपिता यजमानस तत्र कस्मात् हिंस्यतः ।

मृतानामिह जन्तूनां धाजं क्षेत्रतिकास्सम् ।

गच्छन्नामिह जन्तूनां इवर्धं पार्ष्णिकस्त्वपम् ॥

जो पशु मरकर अग्नि में होम करने से पशु स्वा को ज्ञात है तो यजमान घाघरे पिता आदि को मारके स्वयं में क्यों नहीं देखते ॥ १ ॥ जो मर हुए मनुष्यों की वृद्धि के विषय आद और तर्पण होता है तो निदेश में जानेवाले मनुष्य की माग का कच रखने पीन के विषये बोधना अर्थ है क्योंकि जब मृतक को आद, तर्पण से सब एक पशुध्वंश है तो जैसे हुए परदेश में रहनेवाले का माग में बचनेवालों को घर में रसार्थ क्यों दुर्ग की पचक परोस छोड़ भर उसके धम्म पर रखने से क्यों नहीं पशुध्वंश ? जो जीव हुए दूर देश अन्ध राय हान पर दूर के हुए को दिया हुआ नहीं पशुध्वंश तो मर हुए के घाघ किसी प्रकार नहीं पशुध्वंश सकता उनक एक मुक्तिविह उपदेशों का मानने धर्म और उभय मत बढ़ने लग्य। जब बहुत स राजा भूमिपति उनके मत में हुए तप पोपजी भी उभय और मुझे क्योंकि इनको विपर गण्य अल्प मिले नहीं चले जयें। यह जैन बनने चले। जैन में भी और यमर की पोपजीका बहुत ह धर्म १२ में समुदाय में विपणने ॥

बहुतों ने इन का मत स्वीकार किया परन्तु कितने नहीं जो पक्ष काशी काशी अधिम दृष्टि दृष्टावले थे उन्होंने जैनों का मत स्वीकार नहीं किया था। वे जैनी वेद का अर्थ न जानकर बाहर की पोपजीका को भ्रमि स वेद पर ३ मानकर वेदों की भी निम्ना करन लग्य उसके पन्थपान्थ वज्रमरीचि और ब्रह्मचर्य दि नियमों का भी ज्ञान किया। जहां जितने पुरुष वेदार्थ के पान नह किन जातों पर बहुतसी राजमका भी बसाई, दुष्ट दिया। जब उसकी भव

सिखान्ती—क्या तुम किस को कहते हो ?

मनीन—ओ कलु न हो और प्रतीत हाम ॥

सि०—ओ कलु ही नहीं उसकी प्रतीति कैम हो सकती है ?

म०—अप्यारोप से ॥

सि०—अप्यारोप किस को कहत हो ?

म०—कलुम्यवस्वारोपसमप्यासा 'अप्यारोपापवादाभ्यां निप्यस्य प्रवच्यते' पराध कलु और हो उसमें अप्य कलु का आरोपण करवा अप्यास अप्यारोप और उसका निराकरण करवा अपवादा कहाता है । इस दोनों संपर्क रहित मध्य में प्रपञ्चरूप कल्प विस्तार करते हैं ॥

सि०—तुम एक को कलु और सप को कलु मानकर इस भ्रमग्रस्त में पड़े हो । क्या सर्व कलु नहीं है ? ओ कहो कि एक में नहीं तो देशान्तर में और उसका संस्कारमात्र इतक में है । फिर वह सप भी कलु नहीं रहा जिस ही स्थान में पुरुष सीप में चाँदी चाँदि की लक्षणा समझ केता । और स्थान में भी निम्नम मान होता है व देशान्तर में है और उनके संस्कार आत्मा में भी है । इसलिये वह स्थान भी कलु में कलु का आरोपण के समझ नहीं ॥

म०—ओ कभी न देखा न सुना जिसा कि अपना शिर कटा है और आप रोता है उस की घारा ऊपर चली जाती है ओ कभी न हुआ था ऐसा जाता है वह सप क्योंकर हो सके ?

सि०—यह भी पछान्त मुन्दान पक्ष को सिद्ध नहीं करता क्योंकि किन्तु एक मूल संस्कार नहीं होता । संस्कार के बिना सृति और रक्षि के बिना स्रष्टा प्रवृत्त नहीं होता । अब किसी स मुना का रक्षा कि प्रमुक्त का शिर कटा और उसके भाई का काप चाँदि का खड़ाई में प्रवच राम देखा और ओझर का उख ऊपर ऊपर देखा का मुना उसका संस्कार उमी का आत्मा में होता है । जब यह जान्ने का पदार्थ स स्रष्टा हाँके रहता है तब आपस आत्मा में उन्हीं पदार्थों को जिसको रक्षा का मुना होता रहता है । अब आपने ही में रहता है तब उन्ना अपना शिर कटा आप रोता और ऊपर उन्नी जल की घारा को रक्षा है । यह भी कलु में कलु का आरोपण का मारा नहीं किन्तु जिस भ्रमना निश्चयनेवाले पूर्व वह भक्त का किम हुआ का आत्मा में स निष्कष कर कलात्र पर चित्रित है जबकि प्रतिबिम्ब का उत्तारनवाया किम का देव आत्मा में आदृति को पर बराबर चित्र देता है । हाँ ! देखा है कि कभी २ स्थान में स्मरणयुक्त प्रतीति जिस कि करने अप्यास को रहता है और कभी बहुत काल देवन बार मुवन में प्रतीत ज्ञान को माहात्म्य करता है । तब स्मरण नहीं रहता कि ओ मंत्र उस समय रक्षा मुना का किम था उमी का रक्षा मुना का भ्रम है जिस जान्ने में स्मरण करता है देखा स्थान में निप्यस्यक नहीं होता ॥

रक्षा ! उन्मत्त का रूप का स्थान नहीं जाना । इसलिये मुन्दान अप्यास प्रम अप्यारोप का प्रपञ्च भूत है । और जो देशान्तर ज्ञान शिवसंस्कार प्रवृत्त रक्षा में प्रतीति का मान होने का रहता है उस में जान्ने का ध्यान में रह है वह भी स्रष्टा नहीं ॥

होकर खींचा कर रहा है। बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। परन्तु अन्त में पुक्ति और प्रमाद से द्वितीयों का मत खरिदत और शङ्कराचार्य का मत अस्वीकृत रहा। तब उन द्वितीयों के परिहृत और सुधम्य राजा ने उस मत को स्वीकार कर दिया द्वितीय मत को धोड़ दिया। पुनः कहा हुआ गुहा हुआ और सुधम्य राजा ने अन्य अपने इस मित्र राजाओं को लिखकर शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ कराया। परन्तु जिस का पराम्प्य समय होने से पराजित होते गये पश्चात् शङ्कराचार्य के सर्वत्र प्रामाण्य देश में घूमने का प्रबन्ध सुधम्यादि राजाओं ने कर दिया और उनकी रक्षा के लिये साथ में नौकर चाकर भी रख दिये ॥

उसी समय से सब के बड़ोपधीत होने लगे और वनों का परमप्रमद भी लगा। इस वर्य के भीतर सर्वत्र प्रामाण्य देश में घूमकर द्वितीयों का कथकन और वनों का मरदान किया परन्तु शङ्कराचार्य के समय में द्वितीय किन्तु अर्थात् जितनी मूर्खियाँ द्वितीयों की निकलती हैं वे शङ्कराचार्य के समय में दूरी थी और जो किता दूरी निकलती हैं वे द्वितीयों ने घूमि में गड़ दी थी कि छोटी व जल। वे अकतक नहीं १ मुमि में निकलती हैं। शङ्कराचार्य के पूर्व द्वितीय भी बोवा ल प्रचलित था उसका भी मरदान किया। अममार्ग का कथकन किया ॥

उस समय इस देश में जन बहुत था और स्वदेश अधिक भी थी। द्वितीयों के मन्दिर शङ्कराचार्य और सुधम्य राजा ने नहीं तुल्यने थे क्योंकि उनमें केद्वि की पराम्प्रा करने की इच्छा थी। जब वेदमत का स्थापन हो कुछ और विषय प्रचार करने का विचार करते ही वे उठने में दो द्वितीय कम से कममस्तव केवल और भीतर से कट्टर द्वितीय अर्थात् कपट्युनि वे शङ्कराचार्य जब पर प्रति प्रसन्न थे। उन दोनों ने अकसर पन्ध्र शङ्कराचार्य को देसी विस्तुक्त कष्ट दिखाई कि उनकी बुद्धा मन्द होगई। पश्चात् शरीर में जोड़े कुम्भी होकर जा नहींने के भीतर शरीर बूट गया। जब सब निरुत्साही होगये और जो विषय का प्रचार होने लगा था वह भी न होने पाया। जो १ उन्होंने शारीरिक धाम्यादि कथये वे उनका प्रचार शङ्कराचार्य के शिष्य करने लगे। अर्थात् जो द्वितीयों के कथकन के शिष्य लगे उस काल् सिध्या और जीव ज्ञान की पुष्टता कथन की थी उसका उपदेश करने लगे ॥

दक्षिण में खेरी पूर्व में शूरोर्ध्व उतर में जोती और हरिक में शारदामठ बाँधकर शङ्कराचार्य के शिष्य महन्त बन और बीमन्त होकर धाम्य करने लगे क्योंकि शङ्कराचार्य के पश्चात् उनके शिष्यों की कधी प्रतिष्ठा होने लगी ॥

जब इसमें विचारमा चाहिये कि जो जीव ज्ञान की पुष्टता जगत् सिध्या शङ्कराचार्य का विषय मत था तो वह अकाल मत नहीं और जो द्वितीयों के कथकन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है ॥

नवीन केद्वितीयों का मत देसा है—

प्र०—काल् स्वाम्प्य रज्जु में सर्व चीज में चाँदी घुम्प्यधिक में जब अन्तर्गतगत इन्द्रजालकाल् यह संसार मूढ है। एक ज्ञान ही सचा है ॥

सिधाम्नी—क्या तुम किस को कहते हो ?

मयीन—जो बहुत न हो और प्रतीत हाने ॥

सि०—जो बहुत ही नहीं उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है ?

न०—अप्यारोप से ॥

सि०—अप्यारोप किस को कहते हो ?

न०—कलुष्यकश्चरोपपद्यमप्यासः 'अप्यारोपापकश्रमयो निपयस्य प्रपञ्चस्ये'
पराध कुछ और हो उसमें आत्म बहुत का आरोपण करना अप्यास अप्यारोप
और उसका निराकरण करना अप्यास कहलाता है । हम दोनों से प्रत्यक्ष रहित
मध्य में प्रत्यक्ष रूप कल्पित विस्तार करते हैं ॥

सि —तुम रज्जु को बहुत और खप को अकलु मानकर इस प्रपञ्च में
पड़े हो । क्या सर्व बहुत नहीं है ? जो कहो कि रज्जु में नहीं तो देशान्तर में और
उत्तम संस्कारमात्र इच्छा में है । फिर वह सर्व भी अकलु नहीं रहा कैसे ही
क्याह में कुछ सीप में खोपी चादि की व्याख्या समझ लेना । और स्वयं में भी
मिलकर भाग होता है वे देशान्तर में हैं और उनके संस्कार प्रपञ्च में भी हैं ।
इसलिये वह स्वयं भी बहुत में अकलु के आरोपण के समान नहीं ॥

न०—जो कभी न देखा न सुना जैसा कि अपना गिर कटा है और आप
रोटा है जब की धारा ऊपर चली जाती है जो कभी न कुछ था देखा जाता
है वह सब सर्वोत्तम हो सके ?

सि०—यह भी ध्याना तुम्हारा पक्ष को सिद्ध नहीं करता क्योंकि किया देखे
मुने संस्कार नहीं होता । संस्कार के बिना सृष्टि और स्रष्टि के बिना साक्षात्
अनुभव नहीं होता । जब किसी से सुना या देखा कि अमुक का गिर कटा
और उसके भई या नाम चादि को खचाई में प्रवेश रोते देखा और छोड़कर का
जब ऊपर चले दया का मुखा उसका संस्कार उसी के प्रपञ्च में होता है । जब
यह ज्ञान के परार्थ से प्रपञ्च होने कहलाता है तब अपने आत्म में उन्हीं पक्षों को
जिनको देखा या सुना होता देखता है । जब अपने ही में देखता है तब जानो
अपना गिर कटा आप रोता और ऊपर जाती जब की धारा को देखता है । वह
भी बहुत में अकलु के आरोपण के समान नहीं किन्तु जैसा नवरा दिक्प्रत्यक्षे
पूर्व यह सुत या किसे बुद्धों को आत्मा में स निष्कल कर कमात्र पर चिह्नित है
अप्या प्रतिविम्ब का उत्पत्तिकाला विम्ब को देख आत्म में धातुति को पर बरम्बर
विम्ब देता है । हाँ ! इतना है कि कभी २ स्वयं में ऊपरबुद्ध प्रतीति जिस कि
अपन अप्यास को रंगता है और कभी बहुत कम देखने और सुनने में प्रतीत
मान को साक्षात्कार करता है । तब धरणा नहीं रहता कि जो मैंने उस समय
देखा सुना या किया था उसी का देखता सुनता या करता हूँ जैसा ज्ञान में
स्मरण करता है जैसा स्वयं में निपमपूण नहीं होता ॥

देखो ! अस्मत्त्व को रूप का स्वयं नहीं आता । इसलिये तुम्हारा अप्यास और
अप्यारोप का बहस सूर्य है । और जो वैराग्यी आत्म किर्चकार अपना रज्जु में
संपादिक मान होने का दृष्टान्त मध्य में जगत् के धन में दृष्ट है, वह भी ठीक नहीं ॥

म०—अधिष्ठान के विना अभ्यस्त प्रतीत नहीं होता । जैसे रज्जु ब हो तो सप का भी भय नहीं हो सकता । जैसा रज्जु में सर्प तीन कदम में नहीं है परन्तु अभ्यस्त और पुनः अभ्यस्त के मेल में अकस्मात् रज्जु को दृष्टि से स सर्प का भय होकर भय से कथता है । जब उसको दीप प्रादि से देख लेता है उसी समय भय भी भय मित्र हो जाता है । जैसे मछ में जो जल की मिथ्या प्रतीति हुई है वह मछ के साहसकर होने में उस जल की मित्रि और मछ की प्रतीति हो जाती है वैसे कि सर्प की मित्रि और रज्जु की प्रतीति होती है ॥

सि०—मछ में जल का भय किसे कहें ?

म०—जीव को ॥

सि०—जीव कहाँ से हुआ ?

म०—अज्ञान से ॥

सि०—अज्ञान कहाँ से हुआ और कहाँ रहता है ?

म०—अज्ञान अज्ञान और मछ में रहता है ॥

सि०—मछ में मछ का अज्ञान हुआ या किसी प्राण का वह अज्ञान किसे कहें ?

म०—विद्वान्मत्त को ॥

सि०—विद्वान्मत्त का स्वप्न क्या है ?

म०—मछ मछ को मछ का अज्ञान जगत् अपने स्वप्न को जगत् ही पूरा करता है ॥

सि०—उसके भ्रूण में विभिन्न क्या है ?

म०—अविद्य ॥

सि०—अविद्य सर्वज्ञानी सर्वज्ञ का गुण है या अज्ञान का ?

म०—अज्ञान का ॥

सि०—तो तुम्हारे मत में बिना एक अज्ञान सर्वज्ञ केतन के दूसरा कोई केतन है या नहीं ? और अज्ञान कहाँ से आया ? हाँ जो अज्ञान केतन मछ से विद्यमान तो ठीक है । जब एक दिग्गम मछ को अपने स्वप्न का अज्ञान हो तो सर्वज्ञ अज्ञान फिर जगत् । जैसे शरीर में कोरे की पीड़ा सब शरीर के अंगों को निराम्य कर देती है इसी प्रकार मछ भी एक देश में अज्ञानी और नश्वरपुत्र हो तो सब मछ भी अज्ञानी और पीड़ा के अनुभूत हो जाय ॥

म०—वह सब उपाधि का भर्म है मछ का नहीं ॥

सि०—उपाधि वह है का केतन; और सब है का असत्य ?

म०—अविज्ञानी है जगत् किसे कहें वह का केतन सब का असत्य नहीं कह सकते ॥

सि०—वह तुम्हारा कहाँ “बहुतो व्याघात” के तुल्य है क्योंकि करते हो अविद्य है जिससे वह केतन सब, असत् नहीं कह सकते । वह ऐसी बात है कि जैसे सोने में पीतल मिश्र हो उसको धातु के पास परीक्षा करने कि

यह सोना है या पीतल ? तब यही कहोगे कि इसको हम न सोना न पीतल कह सकते हैं किन्तु इसमें दोनों धातु मिली हैं ।

म०—देखो जैसे पञ्चकण्ठ महाकण्ठ मेघकण्ठ चौर महाकण्ठोपाधि चर्मात्
पक्षा पर चौर मेघ क होने से भिन्न २ प्रतीय होते हैं वस्तुतः मैं महाकण्ठ ही
है ऐसे ही मया चरित्र्य अन्तरि न्वरि चौर अन्त-कर्यों की उपरिभियों से प्रका
अन्तरिभियों को दृष्टम् २ प्रतीय हो रहा है वस्तुतः मैं एक ही हूँ । देखो चरित्र्य
महाकण्ठ मैं क्या करती हूँ—

अग्निर्वैष्णवो भुवः प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिक्रियो बभूव ।

एकस्वधा सयंभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपी बहिष्म ।

कस्येव वक्षी ५ । मे ५ ॥

जैसे जमि खरने ली है गोख पोटो बने सब आहुतिपत्र परासी में व्यापक होकर तबालर होकर और उबसे प्रयत्न है । इस सर्वव्यापक परमप्राप्त ज्ञान-करणी में व्यापक होकर ज्ञान-करणी हो रहा है परन्तु उबसे प्रयत्न है ॥

मि — यह भी तुम्हारा कहना ध्येय है, क्योंकि उस पर, मरु मरों और
आम्रज को मित्र मानने हो है। यह कारण कारण बन जाय और जीव को मरु से
और मरु को हम से मित्र मान हो ॥

न०—ब्रह्मा अग्नि सब में प्रविष्ट होकर एतने में वराहचर शीकटाई इसी प्रकार वरमात्मा जब और जीव में व्यापक होकर चान्दरवाहा चन्द्रमियों को चान्दरवुक्त शीकटाई। कालमें प्रकाश न जब और न जीव है। जिस जल के चरण नृह धरे हैं उनमें सूर्य के सहस्रो प्रतिबिम्ब शीकटाई बलुता: सूर्य एक है। नृहों के यह होने से जल के बहने व धमके से सूर्य व यह होता न बलता और न चन्द्र। इसी प्रकार चान्दरवाहों में प्रकाश का चान्दरवाह जिसको चिरामय कहते हैं कहा है। जब तक चान्दरवाह है तभी तक जीव है। जब चान्दरवाह शून्य हो नष्ट होता है तब जीव मरनेवाला है। इस चिरामय का अपने मरनेवाला का चान्दरवाहों का चान्दरवाह मुझी दुष्टी, पापी पुण्यपण्य जन्म मरण अपने में चान्दरवाह करता है तबतक संसार के बन्धनों से बहो पड़ता है।

[illegible]

हमारी बात को रखकर क्यों न कर सकते ? तब तुम्हारी और उनकी बात समझनी होगी । अनुमान है कि शङ्कराचार्य आदि न तो जैवियों के मत के स्वरूप करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि इस बात के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये बहुत सारे स्थानों विद्वान् अपने अपने मत के मुद्दे पर विद्वद्विवाद कर रहे हैं । और जो इस बातों को समझते जीव शरीर की पृथक् अलग मिथ्या आदि व्यवहार सचा नहीं मानते थे तो उनकी बात सची नहीं हो सकती — और निश्चयवाक्य का पारिभाषिक देखो ऐसा है—“जीवो ज्ञानाऽभिप्रायेण न सत्वात्” उन्होंने “वृत्तिप्रमाणम्” में जीव ज्ञान की पृथक्ता के लिये अनुमान किया है कि कलन होना ही जीव ज्ञान से सम्बन्धित है यह बहुत कम समझ पुरुष की बात के समर्थक है । क्योंकि साधर्म्यमात्र से एक दूसरे के ज्ञान पृथक् नहीं होता वैधर्म्य मेवक होता है । जिस कोई कहे कि पृथिवी ज्ञानाऽभिप्रायेण न सत्वात्” जड़ के होने से पृथिवी ज्ञान से सम्बन्धित है । ऐसा यह कलन बहुत कमी नहीं हो सकती कि निश्चयवाक्य का भी समर्थक नहीं है । क्योंकि जो अल्प अल्पज्ञान और अस्मितमत्तवदि धर्म जीव में ज्ञान से और सर्वज्ञ सर्वज्ञता और विमलित-त्वादि वैधर्म्य ज्ञान में जीव से विद्वद्विवाद है इससे ज्ञान और जीव भिन्न हैं । जिस सम्बन्धित कठिनाय आदि युक्ति के धर्म रसकय प्रकल्पदि ज्ञान के धर्म से विद्वद्विवाद से पृथिवी और ज्ञान एक नहीं । कैसे जीव और ज्ञान के वैधर्म्य होने से जीव और ज्ञान एक न कमी से न है और न कमी होगी । इससे ही से निश्चयवाक्य की समझ कीजिये कि उनमें भिन्नता पारिभाषिक या और जिससे बोधव्यतिष्ठ वगैरह है वह कोई प्राकृतिक वेदावस्था का न कस्मीकि वशिष्ठ और रामचन्द्र का वगैरह का कहा सुगम है । क्योंकि वे सब वेदावस्थाओं से वेद से विद्वद्विवाद व वगैरह और न वह सुगम सकते थे ।

प्र०—ज्योत्स्नी ने जो शारीरिक सूत्र बताने हैं उनमें भी जीव ज्ञान की पृथक्ता बतलती है देखो—

सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वोक्तस्तथात् ॥ १ ॥


प्राप्तेऽपि जैमिनिऽपन्यासादिव्य ॥ २ ॥

चित्तिताम्यत्रेण तदात्मकत्वादिबोद्धव्यमिति ॥ ३ ॥

एवमन्युपन्यासात् पूर्वभावावबिरोधं वादयाम्य ॥ ४ ॥

अत एव आनन्याविपत्तिः ॥ ५ ॥

वेदान्त ४ अ ४ । पा ३ । सू १ । २—४ ॥

अर्थात् जीव अपने स्वकय को प्राप्त होकर प्रकट होता है जो कि पूरा आत्मस्वरूप या क्योंकि एक काल से अपने आत्मस्वरूप का प्रकट होता है ॥ १ ॥ “अपन्यासात्” इसलिये अपन्यास देखने प्रति प्रकट हेतुओं से ज्ञान स्वकय से जीव भिन्न होता है ऐसा जैमिनि आचार्य का मत है ॥ २ ॥ जीवोक्तमिति आचार्य तदात्मकस्वरूप निकल्प्यादि वृत्तवारण्यक के हेतुकय के लक्षणों से वेदान्तमात्र स्वकय से जीव मुक्ति में भिन्न है ॥ ३ ॥ ज्योत्स्नी जन्मी पूर्वोक्त अपन्यासादि देखनेप्रतिपत्ति हेतुओं से  आत्मस्वरूप होने में अविरोध मानते हैं ॥ ४ ॥

योगी ऐक्यसहित अपने महास्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अभिपति से रहित अर्थात् स्वयं प्राप्त अपना और सत्त्व अभिपतिरूप महास्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है ॥ २ ॥

३०—इन सृष्टों का अर्थ इस प्रकार का नहीं किन्तु इनका अर्थ अर्थ यह है मुनिये ! जब तक जीव अपने स्वीय शुद्धस्वरूप को प्राप्त सब मलों से रहित होकर पवित्र नहीं होता तब तक योग से ऐक्य को प्राप्त होकर अपने अन्तर्बामी महा के प्राप्त होके आनन्द में स्थित नहीं हो सकता ॥ १ ॥ इसी प्रकार जब आपत्ति रहित ऐक्यमुक्त योगी होता है तभी महा के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है । ऐसा श्रमिणि आचार्य का मत है । १ ॥ जब अभिपति दोषों से दूर शुद्ध ईश्वरमात्र स्वरूप से जीव स्थिर होता है तभी तदात्मकत्व अर्थात् महास्वरूप के साथ समन्वय को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ जब महा के साथ ऐक्य और शुद्ध विज्ञान को जीव ही जीवमुक्त होता है तब अपने निर्मल पूर्ण स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है ऐसा व्यासमुनिजी का मत है ॥ ३ ॥ जब योगी का मन सङ्कल्प होता है तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति मुक्त को प्राप्त है । यही स्वीय स्वतन्त्र रहता है । ईसा संसार में एक प्रधान दूसरा अप्रधान होता है ईसा मुक्ति में नहीं । किन्तु सब मुक्त जीव एक से रहते हैं ॥ २ ॥ जो ऐसा न हो तो—

नेतरोऽनुपपत्तेः ॥ १ ॥ १ । १ । १२ ॥

भेदस्यपश्चाच्च ॥ १ । १ । १० ॥

विशेषभेदस्यपश्चात्त्यां च नेतरी ॥ ३ ॥ १ । २ । २९ ॥

असिद्धस्य च तद्योगं शक्ति ॥ ४ ॥ १ । १ । १२ ॥

अन्तस्त्वन्मापश्चात् ॥ ५ ॥ १ । १ । ९ ॥

भेदस्यपश्चात्त्यां ॥ ६ ॥ १ । १ । २३ ॥

गुहां प्रविष्टपात्रमात्रो हि तद्गुणात् ॥ ७ ॥ १ । २ । ११ ॥

अनुपपत्तस्तु न शरीर ॥ ८ ॥ १ । २ । ३ ॥

अन्तर्गम्यधिर्देवादिषु तत्त्वमप्यपश्चात् ॥ ९ ॥ १ । २ । १८ ॥

शरीरश्चाभवऽपि हि भेदेनमधीयत ॥ १० ॥ १ । २ । २ ॥

आत्ममुनिहृत्तत्त्वसूत्रम् ॥

अर्थ—महा न इन जीव लक्षित नहीं है क्योंकि इस अन्य अन्वय समर्थक जीव में लक्षित नहीं हो सकता । इसमें जीव महा नहीं ॥ १ ॥ “रमे आपाय सम्प्राप्तमन्वी भवति” यह उपनिषद् का वचन है । जीव और महा भिन्न है क्योंकि इन दोनों का अर्थ प्रतिपादन किया है । जो ऐसा न होता ना हम अर्थ महास्वरूप महा को प्राप्त हाकर जीव आत्मस्वरूप होता है वह प्रतिष्ठित महा और महा हावेद्यके जीव का निकपण नहीं हो सकता । इसलिये जीव और महा एक नहीं ॥ २ ॥

अथवा और प्रसन्न है। यदि तुम सब और जीव को पृथक् १ म मात्रों से इसका उपर हीनता कि जहाँ १ अन्तःकरण तथा जाग्रत बड़ा १ क मय को अज्ञानी और जिस १ दृष्ट को प्रोवेगा बड़ा १ क मय को ज्ञानी कर देगा क नहीं। जैसे फल प्रकाश के पीछे में जहाँ १ जता है बड़ा १ क प्रकाश को अन्तः-पुच्छ और जहाँ १ स इच्छा है बड़ा १ क प्रकाश का अन्तःकरण रहित कर देता है वस ही अन्तःकरण मय को सब १ में ज्ञानी अज्ञानी कर और मुक्त कर जायगा। अन्तःकरण मय के एक दृष्ट में अन्तःकरण का अभाव सचेत में होने से सब मय अज्ञानी हो जायगा क्योंकि वह पक्ष है और मधुरा में जिस अन्तःकरण मय ने जो वस्तु दृष्टी उसका स्वरूप उसी अन्तःकरण से कभी में नहीं हो सकता क्योंकि 'अन्यदप्यस्यो न स्मरतीति न्यायात्' और के देव का स्वरूप और का नहीं होता। जिस विश्राम ने मधुरा में देखा वह विद्वत् कभी में नहीं रहता किन्तु जो मधुरा का अन्तःकरण का प्रकाश है वह कभी मय नहीं होता। जो मय ही जीव है पृथक् बड़ा तो जीव को सर्वज्ञ होना चाहिये। यदि मय का प्रतिचित्र पृथक् है तो प्रत्यक्षा अर्थात् पूर्व यह भूत का ज्ञान किसी को नहीं हो सकेगा। जो कहे कि मय एक है इसलिये अन्तःकरण है तो एक सिद्धिने अज्ञान का दुःख होने से सब मय को अज्ञान का दुःख हो गया चाहिये और फिर १ अज्ञानों से निम्न शुद्ध पुरु, सुखस्वमय मय को हमने अज्ञान, अज्ञानी और यह यदि शेषपुच्छ कर दिया है और प्रसन्न को प्रसन्न १ कर दिया है।

म०—विद्वत् का भी आत्मस होता है जैसा कि सर्वज्ञ का ज्ञान में आत्मस का आत्मस पक्ष है वह नीचा का किसी अन्य प्रकार गम्भीर गहरा दीकता है कैसे मय का भी सब अन्तःकरणों में आत्मस पक्ष है ?

सि०—जब आत्मस में कम ही नहीं है तो उसको ज्ञान से कोई भी नहीं देना सकता। जो पक्ष हीनता ही नहीं वह सर्वज्ञ और ज्ञान में कैसे दीकता ? गहरा का विद्वत् सम्भार कदा दीकता है विद्वत् नहीं है।

म०—तो फिर जो वह अन्तःकरण का दीकता है, वही आत्मस में कम होता है वह क्या पक्ष है ?

सि०—जब दुःख से उठकर जब दुःखी और अज्ञान का अन्तःकरण है। जहाँ से नहीं होती है वहाँ जब न हो तो क्यों वहाँ से होने ? इसलिये जो दूर १ उन्म के समान दीकता है, वह जब का जब है। जैसे कुहिर दूर से अन्तःकरण दीकता है और निम्न से विद्वत् और से के समान भी दीकता है जैसा आत्मस में जब दीकता है।

म०—क्या हमारे उन्म सर्व और अज्ञान के अन्तःकरण में है ?

सि०—नहीं तुम्हारी समझ सिद्धा है, तो हमने पूर्व सिद्ध किया। अन्तःकरण तो कहे कि प्रथम अज्ञान किसको होता है ?

म०—मय को है।

सि०—अथ अक्षय्य है वा सर्वय ?

न०—य सर्वय और न अक्षय्य ? क्योंकि सर्वयता और अक्षय्यता उपाधि सहित में होती है ॥

सि०—उपाधि का सहित कौन है ?

न०—अथ ॥

सि०—तो अथ ही सबय और अक्षय्य हुआ । तो तुमने सबय और अक्षय्य का विषय क्यों किया था ? जो कहो कि उपाधि कल्पित अन्तर्गत् मिथ्या है तो अक्षय्य अन्तर्गत् अक्षय्यता करने काका कौन है ?

न०—कौन अथ है वा अन्य ?

सि०—अथ है, क्योंकि जो अथ स्वयम् है तां जिसने मिथ्या कल्पना की वह अथ ही नहीं हो सकता । जिसकी कल्पना मिथ्या है वह सचा कन हो सकता है ?

न०—हम सत्य और असत्य को मूढ मानते हैं और बाकी से बोझना भी मिथ्या है ॥

सि०—अब तुम मूढ कहने और मानने काहे हो तो मूढ क्यों नहीं ?

न०—रहो मूढ और सच हमारा ही में कल्पित है और हम दोनों के सच्ची अधिष्ठान हैं ॥

सि०—अब तुम सत्य और मूढ के आधार हुए तो साहचर्य और चोर के साथ तुम्हीं हुए । इससे तुम प्रामाणिक भी नहीं रहे क्योंकि प्रामाणिक वह होता है जो सर्वथा सत्य माने सत्य बोले सत्य कर मूढ व माने मूढ व बोले और मूढ कदाचित् न कर । जब तुम अपनी बात को सत्य ही मूढ करते हो तो तुम अपने आप मिथ्यावादी हो ॥

न०—अथर्वि मान्य जो कि अथ के आश्रय और अथ ही का आश्रय करती है उसको मान्य हो वा नहीं ?

सि०—नहीं मान्ये क्योंकि तुम मान्य का चर्च ऐसा करत हो कि जो कस्तु व हो और मस है तो इस बात को वह आश्रय जिसके हृदय की आँख पूर गई हो । क्योंकि जो कस्तु नहीं उसका वासनामान होना सत्यता असम्भव है विसा कल्पना के पुत्र का प्रतिक्रिय कभी नहीं हो सकता । और यह 'सम्पूजा' सोम्यमा प्रजा' इत्यादि इन्द्रोन्म आदि उपनिषद्ओं के वचनों से सिद्ध करते हो ॥

न०—अथ तुम अधिष्ठ, शङ्कराचार्य आदि और विनायकदास परमेश्वर जो तुमसे अधिक पविष्ठ हुए हैं उन्होंने सिद्धा है उसको स्मरण करत हा ? हमको तो अधिष्ठ शङ्कराचार्य और विनायकदास आदि अधिक दीपते हैं ॥

सि०—तुम विद्वान् हो वा अधिविद्वान् ?

न०—हम भी कुछ विद्वान् हैं ॥

सि०—अथवा तो अधिष्ठ शङ्कराचार्य और विनायकदास के पक्ष का हमारा सम्माने क्यापन करो हम स्मरण करते हैं । जिसका पक्ष सिद्ध हो गयी था है । जो उनकी और तुम्हारी बात अक्षय्यकभीय होती तो तुम उनकी पुस्तिका खर

हमारी बात को समझन क्यों न कर सकते ? तब तुमसरी और उनकी बात माननीय होने । अनुमान है कि सङ्कराचार्य आदि न तो वैश्वेश्वरों के मत के समझन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि इत बड़ा न बलवन्त अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये बहुत सख्त तर्कों विज्ञान करने आत्मा के साथ ही विद्वत् भी कर लेते हैं । और जो इस बातों को धर्मात् जीव ईश्वर की एकता जगत् मिथ्या आदि व्यवहार सत्य नहीं मानते थे तो उनकी बात सही नहीं हो सकती - और विश्वव्याप्त का पाकिष्ठा देखो ऐसा है—“जीवो ब्रह्माऽमिषाऽमृत-नत्वात्” उन्होंने “वृत्तिमयम्” में जीव ब्रह्म की एकता के लिये अनुमान सिद्ध है कि कदा होने से जीव ब्रह्म सख्त है यह बहुत कम समय प्रत्यक्ष की बात के समझ बात है । क्योंकि सत्यमयमात्र स एक दूसरे के साथ एकता नहीं होती वैधर्म्य देख होता है । किंतु कोई यह कि “वृत्तिमयं ब्रह्माऽमिषाऽमृतत्वात्” यह के होने से वृत्तिमय ब्रह्म से सम्बन्ध है । किन्तु यह कल्प सङ्गत कभी नहीं हो सकता किन्तु विश्वव्याप्तजीव का भी सम्बन्ध व्यर्थ है । क्योंकि जो कल्प सत्यव्याप्त और अस्तित्ववादि भस्म जीव में ब्रह्म से और सर्वगत सर्वव्याप्त और विश्वव्याप्त-व्याप्ति वैधर्म्य ब्रह्म में जीव से सिद्ध है इससे ब्रह्म और जीव भिन्न २ है । किन्तु सम्बन्ध कठिनता आदि भूमि के धर्म रसकल्प प्रकल्पदि जगत् के धर्म से सिद्ध होने से वृत्तिमय और ब्रह्म एक नहीं । किन्तु जीव और ब्रह्म के वैधर्म्य होने से जीव और ब्रह्म एक न कभी थे न हैं और न कभी होंगे । इससे ही से विश्वव्याप्तियों को समझ लीजिए कि उनमें किन्तु पाकिष्ठा का और किन्तु धर्मव्याप्ति ब्रह्म है यह कोई प्राकृतिक वैदिकता या न कल्पमयि किन्तु और रामकृष्ण का कल्प का कल्प सुप्र है । क्योंकि वे सब वैदिकव्याप्ति से वेद से सिद्ध न ब्रह्म सत्य और न यह सुप्र सत्य थे ॥

प्र०—व्यासजी ने जो शारीरिक शून्य बताया है उसमें भी जीव ब्रह्म की एकता दीखती है देखो—

सम्प्रदाऽऽविर्भावः स्वयं शब्दात् ॥ १ ॥

ब्राह्मेण वैमिश्रितपण्यासादिभ्यः ॥ २ ॥

चितितम्प्रभं तदात्मकत्वादिसौमुह्यमिति ॥ ३ ॥

एवमप्युपण्यासात् पूर्वभाषाद्विरोधं नादरत्पक्षः ॥ ४ ॥

अत एव व्याख्यासिपति ॥ ५ ॥

वेदान्त ४ अ ३ पा ३ सू १ । २—० ३ ॥

अर्थात् जीव अपने स्वरूप को प्राप्त होकर प्रकट होता है जो कि एक ब्रह्मस्वरूप का क्योंकि स्व शब्द से अपने ब्रह्मस्वरूप का प्रकट होता है ॥ १ ॥ ‘अप्यमात्मा अपहृतपात्मा’ इत्यादि उपण्यास देखने प्राप्ति पूर्वक होता है किन्तु स्व रूप से जीव सिद्ध होता है ऐसा वैमिश्रित अवधारण का मत है ॥ २ ॥ श्रीहरेमिषा आत्मव्य-तदात्मकस्वरूप विकल्पवादि ब्रह्मव्यवहारक के हेतुकत्व के लक्षणों से वैदिकमय स्व रूप स जीव मुक्ति में स्थित रहता है ॥ ३ ॥ व्यासजी इन्हीं पूर्वोक्त उपण्यासदि वैधर्म्यव्यतिकर हेतुओं से जीव का ब्रह्मस्वरूप होने में अविरोध मानते हैं ॥ ४ ॥

बोगी ऐश्वर्यसहित आपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्ध अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका अधिपतिकर ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है ॥ २ ॥

३०—इस सुखों का कार्य इस प्रकार का नहीं किन्तु इनका अर्थार्थ कार्य यह है सुनिये ! जब तक जीव अपने स्वकीय ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त सब मर्कों से रहित होकर एकाग्र नहीं होता तब तक योग से ऐश्वर्य को प्राप्त होकर अपने अन्तर्भासी ब्रह्म को प्राप्त होके आनन्द में स्थित नहीं हो सकता ॥ १ ॥ इसी प्रकार जब पाप्मनि रहित ऐश्वर्ययुक्त बोगी होता है तभी ब्रह्म के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है । ऐसा वैमिनि व्याचार्य का मत है ॥ २ ॥ जब अधिपति दोनों से हुए हुए आनन्दस्वरूप स्वयं से जीव विहर होता है तभी 'तदात्मकत्व' अर्थात् ब्रह्मस्वरूप के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ जब ब्रह्म के साथ ऐश्वर्य और शुद्ध विज्ञान को जीते ही जीवयुक्त होता है तब अपने निर्मल हृदय स्वयं को प्राप्त होकर आनन्दित होता है ऐसा व्यासमुनिजी का मत है ॥ ४ ॥ जब बोगी का मन सङ्कल्प होता है तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति सुख को पाता है । जो स्वकीय स्वतन्त्र रहता है । ऐसा संसार में एक प्रथम दूसरा अग्रधान होता है ईश्वर मुक्ति में नहीं । किन्तु सब सुख जीव एक से रहत है ॥ ५ ॥ जो ऐसा न हो तो—

नेतरोऽनुपपत्ते' ॥ १ ॥ १ । १ । १५ ॥

मेद्व्यपदेशाच्च ॥ १ । १ । १० ॥

विशेषमेद्व्यपदेशाभ्यां च नेतरी ॥ ३ ॥ १ । २ । २२ ॥

अस्मिन्नस्य च तद्योगे शास्ति ॥ ४ ॥ १ । १ । १५ ॥

अन्तस्तद्वर्मापदेशात् ॥ ५ ॥ १ । १ । २ ॥

मेद्व्यपदेशाच्चान्य ॥ ६ ॥ १ । १ । २१ ॥

गुहा प्रविष्टावतमानो हि तद्वर्णनात् ॥ ७ ॥ १ । २ । ११ ॥

अनुपपत्तेस्तु न शरीर' ॥ ८ ॥ १ । २ । ३ ॥

अन्तर्याम्यधिर्वाविषु तद्व्यपदेशात् ॥ ९ ॥ १ । २ । १८ ॥

शरीरव्यामयेऽपि हि मेद्व्येनमधीयत ॥ १० ॥ १ । २ । २ ॥

आत्ममुक्तिवर्णनात् ॥

अर्थ—ब्रह्म से इतर जीव सृष्टिकर्ता नहीं है क्योंकि इस अल्प अल्प समर्थकसे जीव में सृष्टिकर्तृत्व नहीं कर सकता । इससे जीव ब्रह्म नहीं ॥ १ ॥ "रसं होषां चक्ष्णामन्ती मवति" यह उपनिषद् का शब्द है । जीव और ब्रह्म भिन्न हैं, क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है । जो ऐसा न होता तो उस अर्थात् आत्मस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आत्मस्वरूप होता है वह अस्तिचित्त ब्रह्म और प्राप्त होनेवाले जीव का निकपण नहीं कर सकता । इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं ॥ २ ॥

विष्णो ह्यमूर्त्तं पुरुषं स बाह्याभ्यन्तरो ह्यहः ।

अमासो ह्यमृता शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥

मुक्तकपोपिपदि ॥ सुं २। वं १। मं २ ॥

विष्णु शुद्ध, मूर्तिमत्परहित सब में पूर्ण काहर भीतर विरन्तर व्यापक अत्र
अमम मरत्य शरीरधारकादि रहित प्रकृतकम इत्यादि परमात्मा के विशेषत्व और
अक्षर वात्सरहित प्रकृति से परे अर्थात् सूक्ष्म जीव असंख्य भी परमेस्वर परे अर्थात्
ब्रह्म सूक्ष्म है । प्रकृति और जीवों से ब्रह्म का मेव प्रतिपादनरूप हेतुओं से प्रकृति
और जीवों से ब्रह्म भिन्न है ॥ १ ॥ इसी सर्वव्यापक ब्रह्म में जीव का बोध का
जीव में ब्रह्म का बोध प्रतिपादन करने से जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि बोध
भिन्न पदार्थों का हुआ करता है ॥ २ ॥ इस ब्रह्म के अन्तर्भावों आदि धर्म अमम
किने हैं और जीव के भीतर व्यापक होने से व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्म से भिन्न है
क्योंकि व्याप्यव्यापक सम्बन्ध भी मेव में संघटित होता है ॥ ३ ॥ कैसे परमात्मा
जीव से भिन्नत्वकम है कैसे इन्द्रिय अन्तर्भव्य शुक्ली आदि मृत दिव्य अमृ-
तत्वादि विष्णुगुणों के भोग से केवलव्याप्य विद्वानों से भी परमात्मा भिन्न है ॥ ४ ॥
“गुहां प्रविष्टो सुकृत्तस्य हारके” इत्यादि उपनिषदों के शब्दों से जीव और
परमात्मा भिन्न है । कैसा ही उपनिषदों में बहुत भिन्नसे विवक्षित है ॥ ५ ॥
“शरीरं मयं शरीरं” शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्म के गुण
धर्म स्वभाव जीव में नहीं पड़ते ॥ ६ ॥ (अधिलेख) जब दिव्य मय आदि
इन्द्रियवि पदार्थों (अधिभूत) शुक्ली आदि मृत (अध्वरज) सब जीवों में
परमात्मा अन्तर्भावोक्त से भिन्न है क्योंकि इसी परमात्मा के व्यापकत्वादि धर्म
सर्वत्र उपनिषदों में व्याख्यात हैं ॥ ७ ॥ शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि
ब्रह्म से जीव का मेव स्वकम से भिन्न है ॥ ८ ॥ इत्यादि शारीरिक मृत्तों से भी
स्वकम से ही ब्रह्म और जीव का मेव भिन्न है । कैसे ही वैदन्तियों का उपक्रम
और उपसंहार भी यह नहीं सकता क्योंकि “उपक्रम” अर्थात् आरम्भ ब्रह्म से
और “उपसंहार” अर्थात् समापन भी ब्रह्म ही में करते हैं । जब दूसरी कोई कण्ट
नहीं मानते तो उपनिष और प्रमाण भी ब्रह्म के धर्म हो जाते हैं और उपनिष
विश्वरहित ब्रह्म का प्रतिपादन वेदादि सत्त्वशास्त्रों में किया है, यह कबीर
वैदन्तियों पर कोप कलाप । क्योंकि निर्दिष्ट अपरिचामी छन्द, सगुणत्व
विभक्त्यदि विशेषव्युक्त ब्रह्म ॥ किन्तु उपनिष और अज्ञान आदि का सम्बन्ध
किन्ती प्रकार नहीं हो सकता तथा उपसंहार (अखण्ड) के होने पर भी ब्रह्म
अखण्डकम यह और जीव बराबर बने रहते हैं । इसलिये उपक्रम और उपसंहार
भी इन वैदन्तियों की कल्पना कुरी है । वेसी धार्य बहुत सी अज्ञान व्यर्थ है कि
जो राज्य और प्रत्यक्ष विद्वानों का विवक्षित है ॥

इससे पतात् कुछ शैवियों और कुछ शङ्कराचार्य के अनुयायी लोगों के उपर
के संस्कार आर्थात् में ईश के और आपस में एकत्र मगडन भी करता था ।
शङ्कराचार्य के शीषसी वर्ग के अर्थात् उद्दीप्त नगरी में विद्वानादिक राजा प्रतापी
हुआ जिसमें सब राजाजी के मध्य बहुत हुई खर्चा के मित्रपर शक्ति व्यापन

की । तत्पश्चात् मनु हरि राजा कल्याणदि शास्त्र और धर्म्य [विन्यास] में भी कुछ २ विधान् बुद्ध । उसने वैराग्यपद हाकर राज्य को छोड़ दिया । मित्रमादिभ्य के पान्चसी बर्ष के पश्चात् राजा भोज हुआ । उसने बोधस्थान् ब्रह्मचर्य और कल्याण शङ्करादि का इतना प्रचार किया कि जिसके राज्य में कश्चित्काल बकरी चरणे कहा भी समुदास कल्याण का कर्त्ता हुआ । राजा भोज के पास जो कोई धर्म्य श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य सेवका था उसके बहुतसा धन स्ते ने और प्रतिष्ठा होती थी । उसने पश्चात् राजाओं और जीमानों ने पण्डा ही छोड़ दिया ।

अथपि शङ्कराचार्य के पूर्व काममार्गियों के पश्चात् ईश्वर चादि सम्प्रदायस्थ मठवादी भी कुछ से परन्तु उनका बहुत बल नहीं हुआ था महाशय मित्रमादिभ्य से वेने किन्हीं का बल बढ़ता जाता । किन्हीं में पण्डित्यादि बहुतसी शक्त्य हुई थी किसी काममार्गियों में कुछ महाप्रिय्यादि की शक्त्य है । लोगों ने शङ्कराचार्य को शिव का चरित्र उद्घाटन उनके अनुयायी संन्यासी भी ईश्वर में प्रवृत्त होकर और काममार्गियों को भी भिन्नते रह । काममार्गी सभी जो शिव की पत्नी है उसके उपासक और ईश्वर महाराज के उपासक हुए । वे दोनों शक्त और मध्यम धर्म्यादि चारव्य करत है परन्तु जितने काममार्गी वैदिकीयों हैं किन्हीं नहीं हैं । इन लोगों ने—

धिक्षु धिक्षु कपालं मसकद्रासविहीनम् ॥ १ ॥

उत्पादान् कण्ठप्रशं वशनपरिमिताम्यस्तकं विंशति द्वे

पट् पट् कक्षप्रशं करयुगलगतान् ब्राह्मण्छात्रौष ।

बाहोरिन्धो कक्षामि पृथगिति गदितमेकमर्षं शिष्यायाम्

ब्रह्मस्यष्टाधिक्षं य कक्षपति शतर्षं स शर्षं नीलकण्ठः ॥ २ ॥

इत्यादि बहुत प्रचार के श्रेष्ठ बनने और कहने का कि जिस के कण्ठ में मध्य और कण्ठ में बराब नहीं है उसको विचार है । “तं स्यजेद्ब्रह्मस्यं यथा” उसके ब्राह्मण के दुस्य लाग करना चाहिये ॥ १ ॥ जो कण्ठ में १२ गिर में १ का २ कर्त्तों में बराब २ कर्त्तों में मोखह २ मुखाओं में १ शिष्य में और इष्ट में १ = छात्र बाराव करता है वह सपत्न्य महाराज के शरण है ॥ २ ॥ ऐसा ही शक्त भी मानते हैं । पश्चात् इन काममार्गियों और किन्हीं ने सम्मति करके का विज्ञान का स्थापन किया जिसको जहाधारी और विज्ञ कहते हैं और उसकी पूजा करत था । उन विद्वानों का तथिक भी कहा न जाय कि वह प्रमरपन का काम हम नहीं करत है ? किसी कवि ने कहा है कि “सार्थी दोषं न पश्यति” स्वार्थी जाग अपने स्वार्थसिद्धि करने में कुछ कर्मों को भी यह माय दोष को नहीं देखत है । उसी पण्डित्यादि मूर्ख और का विज्ञ की पूजा में सार बर्ष धर्म, काम मोक्ष चादि सिद्धिप्राप्त मानने का ॥

जब राजा मांड के पश्चात् किन्हीं लोग अपने मन्दिरों में मूर्ति स्थापन करने और इराव स्थापन को जाने जाने का तब तो इन लोगों का देश भी ईश्वरमन्दिर में जाने जाने का और उधर पश्चिम में कुछ दूसर मठों के और ब्रह्म लोग भी धर्म्यवर्त्त में जाने जाने काये । तब लोगों ने वह श्रेष्ठ कहा—

। पाप हव पुण्ड्रिणी के पोपों के बहों को बहने लगा । तब पुण्ड्रिणी ने बेकारा कि इसका कोई उपराज करना चाहिय नहीं ता अपने बड़े जैनी हो जायेंगे । मन्त्र पोपों ने बड़ी सम्मति की कि जैनिनों क सारा अपन भी बह्यार मन्त्रि मूर्ति और कया क पुण्ड्रिणी बनाने । इन लोगों ने जैनिनों क चौबीस तीर्थहरी के सारा चौबीस बह्यार मन्त्रि और मूर्तिमा बह्यार और मन्त्र जैनिनों के चारि और उतर पुण्ड्रिणी है बस बह्यार पुण्ड्रिणी बनाने लगे ॥

राजा मीन के दसवीं वर्ष क पञ्चम बह्यारमल का चारम बुधा । एक मन्त्राव नामक बह्यारमल क में उत्पन्न हुआ का उत्पन्न बह्यारमल कया उत्पन्न पञ्चम बुधिका मन्त्रि बुधिका और तीसरा बह्यारमल पञ्चम बुधिका बह्यारमल बुधिका । उत्पन्न बह्यारमल चौथा रामानुज बुधिका उत्पन्न अपन मल बह्यारमल हीनों में विष्णुपुण्ड्रिणी गान्धर्व व श्रीमन्मन्त्रि बह्यारमल व विष्णुपुण्ड्रिणी बनाने । उनमें अपन नाम इसलिय बही परा कि इसका नाम से बह्यार तो कोई मन्त्राव न करेगा । इसलिय बह्यार चारि बह्यार मूर्तिनों के नाम धरक पुण्ड्रिणी बनाने । नाम भी इसका बह्यार में बह्यार रचना चाहिय था परन्तु जिसे कोई दृष्टि अपने बह्यार नाम महापुण्ड्रिणी और विष्णुपुण्ड्रिणी पञ्चम का नाम समान रक्त है ता कया बह्यार है ? अब इनके बह्यार के बस बह्यार है बस ही पुण्ड्रिणी में भी पर है ॥

हकी ! श्रीमन्मन्त्रि में श्री" नाम एक श्री श्री जो श्रीपुर की स्वामिनी छिपी है उसी ने सब जगत् का बह्यार और बह्यार विष्णु मन्त्राव को भी उसी न रक्त । जब उस श्री की बुद्धि हुई तब उसने अपना हाथ मिला । उससे हाथ में एक बह्यार हुआ उसमें से बह्यार की उत्पत्ति हुई उसने श्री ने कहा कि तू मुझ से बह्यार कर । बह्यार ने कहा कि तू मरी मन्त्राव बह्यार है । मैं तुझ से बह्यार नहीं कर सकता । ऐसा तुझका मन्त्राव का बह्यार बह्यार और बह्यार का भस्म कर दिया और फिर हाथ मिला क उसी प्रकार दूसरा बह्यार उत्पन्न किया । उसका नाम विष्णु रक्त । उससे भी उसी प्रकार बह्यार उसने न मन्त्राव तो उनको भी भस्म कर दिया । पुनः उसी प्रकार तीसरा बह्यार को उत्पन्न किया । उसका नाम महापुण्ड्रिणी और उसका कया कि तू मुझ से बह्यार कर । मन्त्राव बाह्यार कि मैं तुझ से बह्यार नहीं कर सकता । तू मुझरी श्री का शरीर धारण कर । क्या ही श्री ने किया । तब महापुण्ड्रिणी बाह्यार कि यह हो मन्त्राव रक्त श्री कया पड़ी है ? श्री ने कहा कि न बह्यारों तर ग्यार है । बह्यारों मेरी बह्यार न मन्त्राव मन्त्राव मन्त्राव कर दिया । महापुण्ड्रिणी ने कहा कि मैं बह्यार कया करेगा ? बह्यार त्रिका १ और दो श्री और उत्पन्न कर । तीनों का बह्यार तीनों का बह्यार । ऐसा ही श्री ने किया । फिर तीनों का तीनों का साथ बह्यार हुआ ॥

बह्यार ! मन्त्राव से बह्यार न किया और बह्यार से कर दिया ! कया इसको उचित समझना चाहिय ? पञ्चम बुधिका का उत्पन्न किया । मन्त्राव विष्णु, बुध और बुध इनको पाण्डरी क उद्योगमन्त्राव बह्यार बह्यार बुधिका मन्त्राव बह्यार श्री

न कवेऽप्रायर्भी मापां प्राप्ते कथयतिरपि ।

इतिना तावत्प्रमाणोऽपि न शब्देऽर्थे मन्त्रिणम् ॥

अबे किन्ना ही तुम्ह प्रस हो और प्रस कथयत अर्थात् मन्त्रिण का समर्थ भी नहीं व प्राप्ता हो तो भी वाक्यी अर्थात् शब्दों का अर्थ मुझ से न बोलनी और उम्मत इस्ती मारने को नहीं व शीका करता हो और शीका के मन्त्रि में जाने से प्रस बचता हो तो भी शीकमन्त्रि में प्रस व कर किन्तु शीकमन्त्रि में प्रस कर बचने से छुपी के सामने आकर घर जाना अच्छा है । ऐसे २ अपन कर्तों को उपदेश करन छान । अब अब स कोई प्रमाण प्रकृत या कि तुम्ह मत में किसी माननीय प्रस का भी प्रमाण है ? तो कहत थे कि हाँ है । अब वे प्रकृत ने कि शिखराओ ? तब मार्कण्डेय पुराणवि के कथन पढ़ते और सुनात ने जैसा कि बुधोपनि में देवी का वर्णन किया है ॥

राजा भोज के राज्य में व्यासजी के नाम से मार्कण्डेय और शिखपुराण किसी ने बनाकर कहा किया था उसका समाचार राजा भोज का विरित होने से उन पंडितों को इष्टावस्थावि दबक दिया और उनसे कहा कि जो कोई कथ्यावि प्रस बकते ता अपने नाम से बकते, यदि मुनिवों के नाम से नहीं ॥

बह बात राजा भोज के कथने 'संजीवनी' नामक इतिहास में लिखी है कि जो अश्विनीर रम्य के 'मिह' नामक नगर के सिपाही मण्डलों के घर में है । जिसको सत्तुवा के राजासद्वय और उनके गुमास्ते रमदयाच चौबेजी ने अपनी प्रांत से देका है । उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यासजी ने बार सहाज बारसौ और उनके शिष्यों ने पांच सहाज झूठी शोकमुक्त अर्थात् सब दृष्ट सहस शोकों के प्रमाण भारत बनाया था । यह महाराजा किम्वदित्व के समय में बीस सहाज महाराजा भोज करते हैं कि मर पिताजी के समय में पचीस और सब मेरी प्राची हमर में तीस सहाज शोकमुक्त महामरत का पुस्तक लिखता है । जो ऐसे ही कथा बकता तो महामरत का पुस्तक एक बंद का बोध होनाकरा और यदि मुनिवों के नाम से पुराणवि प्रस बकते तो प्राणार्थीय छोय ब्रह्मनाम में पढ़ के वैदिककर्मविहीन होके भ्रष्ट हो अर्थात् । इससे विदित होता है कि राजा भोज को बुद्ध २ कर्तों का संस्कार था । इनके भोज प्रमाण ॥ लिखा है कि—

पटवैकया कोशद्वीकयम्भ सुकृतिमो गच्छति पादगात्मा ।

पापु वसति ध्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्यं चकत्पञ्चमम् ॥

राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे २ शिष्यी लोग थे कि जिनोंने मोरे के आकर एक थाप पन्न कलापुत्र बनाया था कि जो एक कभी घड़ी में बारह कोठ और एक घंटे में सारे साराईस कोठ खाता था । यह भूमि और आन्तरिक में भी बहता था और दूसरा एक देसा बनाया था कि विना मनुष्य के पचने कलापुत्र के बल से निम्न बहता और पुष्कल कपु देता था । जो वे रोमी पार्थ प्राय तक बने रहते को बुरोपिपन्न इतने आदिमात्र में न बह आते ॥ अब दोपत्री अपने केशों को जिनियों से लेकर आते तो भी मन्त्रियों में आने से न एक एक और जिनियों की कथा में भी लोग आने छय । जिनियों

प्र०—‘नमस्तं ह्य मन्त्रे स्त’ । ‘वैश्वानसि † । ‘वसमभ्य † च’ । ‘यथावां वा यथापतिष्टिह्यमहे +’ । ‘मगवती x मृगा’ । ‘सूर्यं यत्मा जगत्प्राप्तुपत्र = । इत्यादि वैश्व प्रमाण्यां से वैश्वदि मत्त सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों कष्टम करते हो ?

उ०—इन जन्मों से कैशवि सम्प्रदाय सिद्ध नहीं हात क्योंकि 'स्व' परमेस्वर प्रभु, जीव अग्नि आदि का प्राम है। जो ओषधों सह अर्थात् दुर्हों को दूराने कहे परमात्मा को नमस्कार करना प्रत्यक्ष और आभ्युपगमि को प्रत्यक्ष, 'तस्मै इति श्रद्धां प्राम' (वि० २ । ७) जो महाशक्ति सच संसार का प्रामत्त कस्याह करेदेखा है उस परमात्मा को नमस्कार करना अहिमे "शिष्यस्य परमेष्वरस्यायं भक्त शैव" । "विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तो वैष्णवः" । 'गणपतेः सकलजनात्मामिनोऽयं सेवको माणवतः" । भगवत्स्य वाण्या अयं नेवक्त माणवतः" । "सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः" । ये सब सच शिष्य, विष्णु, गणपति सूर्यस्य परमेस्वर के और भक्तों की सम्प्रदायस्य का अर्थ का प्राम है। इसमें किन्ना समये ऐसा कहा मन्त्र, कैश—

एक किसी दैत्यो के हो सके थे। वे अतिदिन गुप्त के पाग दृष्ट करत थे। एक ने दाहिने पैर और दूसर ने बाँवें पाग की लेख करबी बटि डी थी। एक दिन ऐसा हुआ कि एक चेला कहीं बजार हाट को गया तथा और दूसरा अपने संन्यस की लेख कर रहा था। इतने में गुप्ती ने करघा फेरा तो उसके पाग पर दूसर गुप्ती के संन्यस पड़ा। उसने उसे दृष्टा पाग पर घर मारा। गुप्त ने कहा कि भरे बुद्ध! तू ने यह क्या किया? चेला बोला कि मेरे लेख पाग के ऊपर यह पाग क्यों आ गया? इतने में दूसरा चेला जो कि बजार हाट को गया था वहाँ पहुँचा। वह भी अपने संन्यस पाग की लेख करने लगा। चेला तो पाग सूझ पड़ा है। बोला कि गुप्ती! यह मेरे लेख पग में क्या हुआ? गुप्त ने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला व चाहा। उपरान्त दैत्य उद्य के बने बस से गुप्त के दूसर पग में मारा। तो गुप्त ने उस स्वर से पुकार मचाई तब तो दोनों चेले दृष्टा उनके पगे और गुप्त के पागों को पहिने लगे। तब तो वहाँ कोबाइल मचा और लोग मुनकर आय। कहने लगे कि छात्रुही! क्या हुआ? तबमें जो किसी बुद्धिमान् पुत्र ने छात्रु को मुक्त के पताज्, उन मूर्ख चेलों को उपरान्त किया कि देखो य दोनों पाग तुम्हारे गुप्त के हैं। उन दोनों की लेख करने से उन्हीं को मुक्त पहुँचता और बुद्धा इन्हे से भी उसी मुक्त को दृष्ट होता है ॥

जैसे एक गुन की सेवा में केलाओं से खीटा की, इसी प्रकार जो एक अक्षरद्वय सविदावाक्यान्वयस्वरूप परमात्मा के विष्णु, ब्रह्मदि अनेक नाम हैं इन नामों का अर्थ जैसा कि प्रथम अनुवाक्य में प्रकट कर प्रथम है उस सत्यार्थ को व जानकर

० पत्र घ १।मं १॥ + पत्र घ २३।मं १॥
 १ पत्र घ २।मं २१॥ X पत्र घ ७।मं २३।मं ११॥
 १ पत्र घ ३५।मं ३॥ = पत्र घ ७।मं ३५।मं १॥

मन्त्रमाने बिन्दे हैं। कोई उबछे पूछे कि उस देवी का शरीर और उस श्रीपुत्र का वस्त्रमेखला और देवी के माता पिता कौन थे ? जो कहो कि देवी धन्यादि है तो वो संतोषजन्य वस्तु है वह धन्यादि कभी नहीं हो सकती। जो माता पुत्र के विना करने में दर तो माई बहिन के विना में कौनसी बच्ची बात निकलती है ?

बैसी इस देवीमायका में महादेव विष्णु और ब्रह्मादि की बुद्धता और देवी की कर्तव्य बिन्दी है इसी प्रभर शिव पुराण में देवी ध्यादि की बहुत बुद्धता बिन्दी है धन्यात् से सब महादेव के वस्त्र और महादेव सब का ईश्वर है। जो स्त्राव धन्यात् एक वृक्ष के फल की गोठड़ी और एक धारण करने से मुक्ति मानते हैं तो राख में बोझेदार गया ध्यादि पद्म और धुपची ध्यादि के धारण करनेवाले भीख कंजर ध्यादि मुक्ति को क्यों न कर्ने और सुधर कुत्ते पका धारि राख में बोझेवालों की मुक्ति क्यों नहीं होती ?

प्र — काव्यप्रियोपनिषत् में मन्त्र ब्रह्मणे का विधान किया है। वह क्या मन्त्र है ? और व्यायुषं अमर्त्यम् ” (ब्रह्मैवमन्त्रम्) इत्यादि वेदमन्त्रों से भी मन्त्र धारण का विधान और पुराणों में वह की प्राण के ब्रह्मपुत्र से जो वृक्ष वृक्ष उसी का नाम स्त्राव है इसीप्रकार उसके धारण में पुण्य किया है। एक भी स्त्राव धारण कर तो सब पापों से बृह रक्षों को ज्ञान कमल और नरक का दर ब रहे ।

उ० काव्यप्रियोपनिषत् किसी रसोदिया मनुष्य धन्यात् राख धारण करनेवाले ने बनाई है क्योंकि वस्य धरमा रक्षा सा मूर्खोक्त ” इत्यादि वचन (उसमें) धन्यार्थ है। जो प्रतिदिन हाथ से बनाई रखा है वह मूर्खोक्त का इसका कारण कैसा हो सकते हैं ? और जो “व्यायुषं अमर्त्यम्” इत्यादि मन्त्र है, वे मन्त्र का विष्णुधारण के बाकी नहीं किन्तु “व्यायुषं अमर्त्यम्” शतपथ ० । हे परमेश्वर ! मेरे मेरे की ओर (व्यायुषम्) विष्णु का धन्यात् तीव्रता से पर्यन्त रहे और मैं भी पेश धर्म के काम कर कि जिससे यह पाप न हो मन्त्र का स्थिती नहीं मूर्खता की बात है कि प्राण के ब्रह्मपुत्र से जो वृक्ष उत्पन्न हो सकता है ? क्या परमेश्वर के शक्तिमान को कोई धन्यार्थ कर सकता है ? जिस जिस वृक्ष का बीज परमात्मा ने रखा है उसी से वह वृक्ष उत्पन्न हो सकता है धन्यार्थ नहीं। इससे जिसका स्त्राव मन्त्र तुलसी कमलार धारण करने ध्यादि का कल में धारण करता है वह सब जड़की पटुम् मनुष्य का काम है ।

पेश धन्यार्थ और शिव बहुत मिथ्याकारी विरोधी और कर्मकाय कर्म के लक्ष्य होता है। उनमें जो कोई भेद पुण्य है वह इन बातों का विचार न करके धन्य कर्म करता है। जो स्त्राव मन्त्र धारण का वमराज का वृक्ष करता है तो पुष्टि के सिपाही भी वरत होय जब स्त्राव मन्त्र धारण करनेवालों का कुछ सिद्ध सब विष्णु मन्त्री और मन्त्र ध्यादि भी नहीं करते तो धन्यार्थी का क्या क्यों करेंगे ?

प्र०—धन्यार्थ और शिव तो धन्य नहीं, वरन्तु विष्णु तो धन्य है ?

उ०—वह भी वैदिकीय होने से उनका भी धन्य वृक्ष है ।

प्र०—“नमस्तं ह्य मन्त्रं ॥” । “विष्णुमसि †” । “अमवाय ‡ च ।
मन्त्राणां वा यद्यपि ॥ ह्यमवे +” । “मन्त्राणां × मन्त्राः” । “सूर्यं आत्मा
अमस्तस्युपपन्न = । इत्यादि वेद मन्त्राणां से विष्णुदि मन्त्र सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों
अपस्तम्ब करते हैं ?

उ०—इन सबको से विष्णुदि सम्प्रदाय सिद्ध नहीं होते क्योंकि ह्य”
परमेश्वर मन्त्रादि अमु, जीव, अग्नि आदि का नाम है । जो जीवकता ह्य अमवात्
हुओं को इष्टाने कहे परमात्मा को मन्त्रस्वर करना मन्त्र और आत्मादि को अम
हवा ‘नम इति मन्त्रनाम’ (विष् १ : ०) जो मन्त्राक्षरी एवं संसार का
आत्मन्त कल्याण करकेका है उस परमात्मा को मन्त्रस्वर करना चाहिये “शिवस्य
परमेश्वरस्यायं भक्त शैव” । “विष्णो परमात्मनोऽयं भक्तो वैष्णव” ।
‘गणपत’ सबकमन्त्रात्मनोऽयं संवको मातृपत” । ‘मगधत्या
वास्या अयं संवक मागवत” । “सूर्यस्य आत्मात्मनोऽयं संवक
सौर” । ये सब ह्य शिव, विष्णु, यद्यपि सूर्यादि परमेश्वर के और नानाकी
सम्प्रदायानुक्त कही का नाम है । इसमें किन्ना समके ऐसा मन्त्रा मन्त्रा, जैसे—

एक किसी बैरागी के हो केहे ये । वे प्रतिदिन गुह के पग हाथ करत थे ।
एक वे चाहिये पै और दूसर वे क्यों पग की सवा करवी बाँट ली थी । एक दिन
ऐसा हुआ कि एक केहा कहीं बजार हल को बजा गया और दूसरा अपने सव्य
पग की सेवा कर रहा था । इतने में गुहजी व करक केरा तो उसके पग पर दूसर
गुहमन्त्र का सव्य पग पड़ा । उसने वह देखा पग पर पर मारा । गुह ने कहा कि
अरे गुह ! तू ने यह क्या किया ? केहा बोला कि मेरे सेव्य पग के ऊपर यह पग
क्यों आ बहा ? इतने में दूसरा बोला जो कि बजार हल को मन्त्र था या पहुँचा ।
वह भी अपने सव्य पग की सेवा करने लगा । केहा तो पग सूखा पड़ा है । बोला
कि गुहजी ! वह मेरे सव्य पग में क्या हुआ ? गुह ने सप ब्रह्मन्त सुना दिया ।
वह भी मूर्ख न बोला व चाहा । पुनश्चप देखा उस क बड़े बहल स गुह के दूसर
पग में मारा । तो गुह ने उस स्वर से पुनर मन्त्राई तब ता दोनों कहे देखा एक
परे और गुह के कों को बटिये लगे । तब तो कहा कोकाहल मन्त्र और लोग मुककर
छाप । कहने लगे कि छाजुजी ! क्या हुआ ? उनमें से किसी बुद्धिमन् पुष्य ने
छाजु को तुना के पमन्त उस मूर्ख केहीं को उपदंष्ट किया कि देखो व दोनों पग
तुम्हारे गुह के हैं । उस दोनों की सेवा करने स उसी को मुक पहुँचता और दुःख
देने स भी उसी एक को दुःख होता है ॥

जैसे एक गुह की सेवा में केहाचीं ने लीला की, इसी प्रकार जो एक अन्तर
अभिधानमन्त्रात्मन्तक परमात्मा के विष्णु, श्वादि अनेक नाम हैं इन नामों का
अव प्रिया कि मन्त्र समुद्रास्त में दमन्त कर पाये हैं उस समर्थ को व जानकर

० पठ घ १।मं १ ॥ + पठ घ २३।मं १ ॥
† पठ घ २।मं २१ ॥ × अमवे की । सू २३।मं ११ ॥
‡ पठ घ ३६।मं ३ ॥ = पठ घ ०।मं ४२ व सं ॥

मगमाते लिखे है। कोई उगरे पड़े कि उस देवी का शरीर और उस मीपुर का बनावबद्धा और देवी के मस्तक पिता नीम थे ? जो कहो कि देवी अमादि है तो जो संपोषमन्त्र वस्तु है वह अमादि कभी नहीं हो सकती। जो मस्तक पुत्र के निम्न करने में उर तो माह बहिन के निम्न में नीमसी अमादि बात निकलती है ?

वैसी इस देवीमन्त्र में महादेव निम्न और मन्त्रादि की बुद्धता और देवी की अमादि लिखी है इसी मन्त्र में पुराण में देवी अमादि की बहुत बुद्धता लिखी है अमादि से सब महादेव के दस्त और महादेव सब का ईश्वर है। जो द्वाक अमादि एक दूक के द्वाक की गोदली और एक बारक करने से मुक्ति मन्त्रों है तो रत्न में जोदेनेदने गद्या अमादि पद्य और बुद्धता अमादि के धारक करनेवाले भीम कंजर अमादि मुक्ति को क्यों न कावे और मुबार कुले गद्या अमादि रत्न में जोदेनेवालों की मुक्ति क्यों नहीं होती ?

प्र — अमादिप्रोपनिषद् में मन्त्र अमादि का विधान लिखा है। वह क्या मन्त्र है ? और अमादि अमादि (पञ्चमन्त्र) इत्यादि वेदमन्त्रों से भी मन्त्र धारक का विधान और पुराणों में वह की आत्मा के अमादि से जो दूक दूका उसी का नाम द्वाक है इसीलिखे उसके धारक में पुनः लिखा है। एक भी द्वाक धारक का तो सब पापों से दूक स्वर्ग को अमादि धारक और बरक का उर न रहे ?

उ० अमादिप्रोपनिषद् लिखी रचोदिका मनुष्य अमादि रत्न धारक करनेवाले ने बर्ण है क्योंकि यत्प्र प्रथमा रत्ना सा मूलोक” इत्यादि वचन (उसमें) अवर्ण है जो प्रतिदिन हस्त से अमादि रत्न है वह मूलोक का इसका अर्थ हो सकते हैं ? और जो “अमादि अमादि” इत्यादि मन्त्र है, वे मन्त्र का प्रोपनिषद् के अमादि नहीं किन्तु “अमादि अमादि” यत्प्र ७ । है परमेश्वर । मेरे वह की ओरि (अमादि) प्रोपनिषद् अमादि तीव्रती वरं पर्वत रह और मैं भी देव धर्म के अमादि कि जिससे यह ज्ञान न हो मन्त्र यह किनकी वही मूलोक की बात है कि आत्मा के अमादि से जो दूक उत्पन्न हो सकता है ? क्या परमेश्वर के अमादि को कोई अमादि कर सकता है ? जिस जिस दूक का बीज परमेश्वर ने रत्न है उसी से वह दूक उत्पन्न हो सकता है अमादि नहीं। इससे जितना द्वाक अमादि मुबारक अमादि अमादि अमादि अमादि का अर्थ में धारक करता है वह सब उरली पद्य मनुष्य का अर्थ है ।

एक अमादि और एक बहुत अमादि की ओरि और अमादि के अमादि है। उनमें जो कोई अमादि पुराण है वह इन कर्त्ता का विधान न करके अमादि करे करता है। जो द्वाक अमादि धारक से अमादि के दूक उरत है तो बुद्धि के सिद्धि भी उरत होना जब द्वाक अमादि धारक करनेवालों का दूक सिद्धि का विष्णु मन्त्र और मन्त्र अमादि भी नहीं उरते तो अमादि का अर्थ नहीं है ?

प्र० — अमादि और एक तो अमादि नहीं, वरन् देवता तो अमादि है ?

उ० — वह भी देवता की ओरि से उरत भी अमादि उरत है ।

प्र०—“नमस्तु ते नमस्तु ते” । “विष्णुवामसि †” । “वामनाय ‡ ब” ।
 ‘पञ्चानां च गणपतिः’ । “भगवती × भूया” । ‘सर्वं दाय्य
 जगत्सत्पुत्र ०’ । इत्यादि केवल प्रार्थनाओं से ईश्वर मनुष्य को सिद्ध होता है, पुनः क्यों
 सन्तुष्ट करत है ?

२०—इन वचनों से ईश्वर सम्पूर्ण सिद्ध नहीं होता, क्योंकि “स”
 परमेश्वर प्रत्यक्ष रूप से जीव अग्नि आदि का नाम है । जो शेषकला से वर्णित
 दुर्गों को पढ़ाने वाले परमात्मा को नमस्कार करना प्रत्यक्ष और अमर्यादित को प्राप्त
 होत, “तम इति अमर्यादित” (वि० २ । ०) जो महामहेश्वरी सब संसार का
 प्रलय करवाया करेगा है उस परमात्मा को नमस्कार करना अर्थात् “विष्णुस्य
 परमेश्वरस्यार्पणं भक्तं गौतम” । “विष्णो परमात्मनोर्ध्वं भक्तो धनुर्य” ।
 ‘गणपतं सकलजगत्सामिन्तोऽर्प्य संपन्नो वास्तुपतः” । “भगवत्स्य
 वास्तवा अर्पं मेयकं भागवत” । “सर्वस्य चराचरात्मनोर्ध्वं सर्वकः
 सौमः” । ये सब छह सिद्ध, विष्णु, ब्रह्मादि मूर्त्तियों परमेश्वर के और अमर्यादित
 सम्पन्नानुपपन्न आशी का नाम है । इसमें किन्हीं समयों वेदा मन्त्रा मन्त्रा, तैस—

एक किसी किसी के हो लक्ष्य है । वे प्रतिदिन गुरु के पद दण्ड करत है ।
 एक ने दण्डित दैर और दूसरे ने कर्णों का भी लक्ष्य करती चोट होती थी । एक दिन
 वेदा हुआ कि एक कला करती बजाइ हस्त को बसा गया और दूसरा करने समय
 का भी लक्ष्य कर रहा था । इतने में गुरुजी ने करण करत तो उसके पद पर अपने
 गुरुभ्यां का लक्ष्य पद पड़ा । उसने वह दण्ड पद पर पर मारा । गुरु ने कहा कि
 घर हुआ ! तू ने वह क्या किया ? कहा बाबा कि मैं समय का के लक्ष्य पद पद
 क्यों था कहा ? इतने में दूसरा बसा जो कि बजाइ हस्त को लक्ष्य था, वह लक्ष्य ।
 वह भी अपने समय का भी लक्ष्य करने लगा । देखा तो पद लक्ष्य पद है । बाबा
 कि गुरुजी ! वह मैं समय पद मैं क्या हुआ ? गुरु ने सब दण्डित मुखा दिख ।
 वह भी मूर्ख न बाबा न बाबा । पुत्रकप दण्डित उर के लक्ष्य पद पद गुरु के लक्ष्य
 का मैं मारा । तो गुरु ने उर स्तर से पुत्रकप मर्त्य सब लक्ष्य होने का दण्डित पद
 रहे और गुरु के कर्णों का दण्डित लक्ष्य । सब तो क्या बाबादण्ड मन्त्र और बाबा मुकुर
 बाबा । करने लक्ष्य कि साधुजी ! क्या हुआ ? उर्ध्वं व किन्हीं इतिम् । इस ने
 साधु को पुत्रा के पञ्चगुं उन मूर्ख बर्तों को उपपन्न किया कि लक्ष्य पद होना का
 मुकुर गुरु के है । उन बाबों की लक्ष्य करने से उर की को गुरु लक्ष्य और गुरु
 दण्ड व भी उर की लक्ष्य को दण्डित होता है ।

इस एक गुरु की मध्य में वेदाबाबों ने लक्ष्य की, इसी लक्ष्य जो एक लक्ष्य
 लक्ष्यकामनामन्त्रकप परमात्मा के लिये ।

ऐस शब्द किन्तु यदि सम्प्रदायी लोग परस्पर एक दूसरे के नाम की निन्दा करते हैं। मनुमति तमिक भी अपनी बुद्धि को दिखा कर नहीं बिचारते हैं कि वे सब निन्द्य, वह निन्द्य यदि नाम एक प्रकृतिगत सर्वविकल्पा संसारप्रकाशी समीचीन के अनेक गुण कर्म स्वभावगुण होने से उसी के वाचक हैं। अन्धा गन्ध ऐस मूर्खों पर ईश्वर का कोप न होता होगा ?

यद्यपि देखिये चन्द्रविक्रित वैष्णवों की प्रभुमुत माया—

ताप' पुण्ड्र' तथा नाम माया मन्त्रस्तथैव च ।

अमी हि पञ्च संस्कारा परमीकान्तहेतवः ॥

अतस्तन्मूर्तत्वात्मा अच्युतः । इति श्रुते' ॥ रामानुजप्रबन्धतौ ॥

अर्थात् (तापः) ताप चक पद्म और पुण्ड्र के चिह्नों को अग्नि में ताप के मुख के मुख में दण्ड लेकर पद्मत् पुण्ड्रपुत्र पद्म में डुबाने हैं और कोई उद्योग को पी भी लेते हैं। यद्यपि देखिये अन्ध ही मनुष्य के मति का भी स्पष्ट उसमें जाता होगा। ऐसे ५ कर्मों से परमेस्वर को प्रसन्न होने की कल्पना करते हैं और कहते हैं कि किना ताप चन्द्रविक्रित से शरीर तापने बीच परमेस्वर को प्रसन्न करी होता क्योंकि यह (अमी) अर्थात् अन्ध है और जैसे राम के चरित्र यदि चिह्नों के होने से रामपुत्र जान उससे सब लोग करते हैं किसे ही निन्द्य के अन्ध चन्द्रविक्रित आत्माओं के चिह्न देखकर चरित्र और उनके गन्ध करते हैं और कहते हैं कि—

दोहरा—बाना बड़ा ब्याज का तिलक आप और माया ।

यम करके काहू कहे मय माने मूपाज ॥

अर्थात् माया का वाच्य तिलक आप और माया बतल कराना कहा है। जिससे चरित्र और रामा भी करता है। (पुण्ड्र) चिह्न के लक्षण लक्षण में चित्र निम्नलक्षण। (नाम) नामान्यथास्त किन्तु नाम अर्थात् नाम सम्बन्ध नाम रक्षण। (माया) अन्धत्व की रक्षण। और पाँचों (मन्त्र) जैसे—

ओ नमो नारायण ॥ १ ॥

यह इन्होंने साधारण मनुष्यों के लिये मन्त्र बना रक्ख है तथा—

अमीधारायण करण शरण प्रपद्ये ॥ १ ॥ अमित नारायणाय नमः ॥ २ ॥

अमित रामानुकाय नमः ॥ ३ ॥

इत्यादि मन्त्र अन्धत्व और मायाओं के लिये बना रक्खे हैं। देखिये यह भी एक दुष्कर्म करी। जिस मुख ऐसा तिलक ! इन पाँच संस्कारों को चन्द्रविक्रित मुक्ति के हेतु मानते हैं। इन मन्त्रों का अर्थ—मैं नारायण को नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ और मैं अर्थात् चरित्र के चरित्रादि के करण को प्रसन्न होता हूँ। और अर्थात् चरित्र को नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥ अर्थात् जो रामानुक नारायण है उसको मया नमस्कार होवे ॥

जैस कममार्गी पाँच मन्त्र मानते हैं जिस चन्द्रविक्रित पाँच संस्कार मानते हैं और अपने अन्ध चक स दण्ड देने के लिये जो वेदमन्त्र का प्रमाण रक्ख है उसका दण्ड मन्त्र का पद और अर्थ है—

पुर्वित्रं ते विवर्तत ब्रह्मण्यस्यते प्रभुगोत्राणि पर्येपि विवर्ततः ।

अतस्तत्तनुर्न तद्गामो अश्नुते श्रुतासु इदं न्तस्सत्समाश्रित ॥ १ ॥

तपोऽप्यवित्रं विवर्तत दिवस्पदे ॥ २ ॥ अ त १ । अ २ । म १ । २ ॥

इ प्रथमपद और ब्रह्म के पावन करने वाले प्रभु ! सर्वसामर्थ्यबुद्ध सर्वशक्तिमान् आपने आपनी प्राप्ति का संसार के सब अवयवों को व्याप्त कर रक्ता है । उस आपका जो आपका पवित्रस्वरूप है उसका प्रकाश सर्वभूतस्थ राम राम वाग्म-भ्यस्त जितमित्र सत्त्वमहि तपस्या स एहित जो अपरिपक्व प्रज्वा प्रतःकरक बुद्ध है वह उस तर स्वरूप का प्रस नहीं होता और जो पूर्वोक्त तप स शुद्ध है वे ही इस तप का प्रकरक करत हुए उस तर शुद्धस्वरूप का आप्य प्रसर प्राप्त प्राप्त है ॥ १ ॥ जो प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में विलीन पवित्राचार्य रूप तप करत है व ही परमेश्वर को प्राप्त होने में योग्य प्राप्त है ॥ २ ॥

यस विचार कीजिए कि रामानुजीयदि ज्ञान इस मन्त्र स 'अप्यद्विष्ट' प्राप्त सिद्ध क्योंकर करत है ? भला कहिए वे विद्वान् वे क विद्वान् ? जो क्या कि विद्वान् वे तो ऐसा ज्ञानमयचित्त धर्म इस मन्त्र का क्यों करत ? क्योंकि इस मन्त्र में 'अतस्तनु' शब्द है व कि अतस्तनुर्न कश्चि' उक्त 'अतस्तनु' यह सब शिवाग्रमयज्ञ समुदायार्थक है । इस प्रमाण करक अग्नि ही स तपस्या अप्यद्विष्ट ज्ञान स्वीकर करें तो आपन २ शरीर को प्राप्त में मीन के सब शरीर को ज्ञातों ता भी इस मन्त्र के धर्म स विद्वत् है क्योंकि इस मन्त्र में सत्यमयविधि पवित्र करने करण तप दिया है ॥

अतं तप' सत्यं तप' अतं तप' शान्तं तपो वमस्तप' स्वाध्यायस्तप' ॥

तत्परीक्षा म १ । अ - ॥

इत्यदि तप कह्यता है 'अतं तपः' (अतं तपः) यथार्थ शुद्धमन्त्र, सब मानवा सब बोधका सत्य करण मग का अर्थमें न जाने क्या क्या इन्द्रियों का सम्पत्त्यकरणों में जान स रोकना अर्थात् शरीर इन्द्रिय और मन स शुद्ध करने का प्रकरक करण वरादि साथ विद्वानों का पक्ष पक्ष वदनुमत्त प्रकरक करण अदि उत्तम धर्मबुद्ध कर्मों का नाम तर्प है । धनु का तप का अन्वयी का ज्ञाना तप नहीं कह्यता ॥

रत्ना ! अप्यद्विष्ट ज्ञान आपन को वही केन्द्रक मानत है परन्तु आपनी परमेश्वर चार कुर्म की चार ध्यान नहीं रत कि प्रथम रूपका मूलपुरण 'शब्दोप' इत्य कि जो अप्यद्विष्टो ही के प्रथम और प्रथमाप्र प्रथम जो नाम्य हम व वन्या है उन में लिख है—

विक्रीय रूप विचचार यागी ॥

इत्यदि वचन अप्यद्विष्टो के प्रथम में लिख है । शब्दोप वार्ता रूप का वचन वचन विचारका का अर्थान् करर अग्नि में उत्पन्न हुआ था । जब उभय प्रत्ययों स पक्ष का सुमन्य चाहा प्राप्त तप प्रत्ययों व निरन्तर किया प्राप्त प्राप्त प्रत्ययों

के बिना सम्प्रदाय विरहित चर्याहित आदि शास्त्रविद्वत् समझावी नहीं चलाई होगी उसका चेला 'मुनिबन्धु' जो कि चर्याग्रह ३ वर्ष में अपना पुत्र था। उसका चेला 'यन्त्राचार्य' जो कि पद्मकुम्भोत्पन्न का जिसका नाम बह्व के कोर् १ "यन्त्राचार्य" भी कहते हैं। उनके पद्मत् 'रामानुज' ब्राह्मणकुल में अपना होकर चर्याहित पुत्र। उसके पूर्व कुछ भाषा के ग्रन्थ बताने थे। रामानुज ने कुछ संस्कृत पद के संस्कृत में श्लोकग्रह ग्रन्थ और वारीरिच श्रुत और उपनिषदों की टीका शङ्कराचार्य की टीका से बिना बनाई और शङ्कराचार्य की बहुत सी मित्रा की। ऐसा शङ्कराचार्य का मत है कि चर्याग्रह अर्थात् जीव ब्रह्म एक ही है दूसरी कोर् ब्रह्म आध्यात्मिक नहीं जगत् प्रकृत सब मिथ्या मान्यकर्य अभिमत है। इससे बिना रामानुज का जीव ब्रह्म और भाषा तीनों विरा हैं ॥

यहां शङ्कराचार्य का मत ब्रह्म से अतिरिक्त जीव और अमर ब्रह्म का न मानना अच्छा नहीं और रामानुज का इस जगत् में जो कि निराश्रय जीव और भाषासहित परमेश्वर एक है वह जीव का मानना और चर्याग्रह का ब्रह्मा सर्वत्र प्रत्यक्ष है और सर्वत्र ईश्वर के आधीन परलोक जीव को मानना अच्छी विचार, भाषा मूर्तिपूजादि पञ्चक मत्त चलाये आदि कुरी नहीं चर्याग्रह आदि में हैं। ऐसे चर्याग्रह आदि केविरोधी हैं किश शङ्कराचार्य के मत के नहीं ॥

प्र०—मूर्तिपूजा कहाँ से चली ?

उ०—जैमिनी से ॥

प्र०—जैमिनी ने कहाँ से चलाई ?

उ०—अपनी मूर्तता से ॥

प्र०—जैनी लोग कहते हैं कि शाल्व व्यासस्थित बैठी हुई मूर्ति देख के अपने जीव का भी हृम परिग्रहम ऐसा ही होता है ॥

उ०—जीव चेतन और मूर्ति जगत् । क्या मूर्ति के सारा जीव भी जगत् हो जायगा ? वह मूर्तिपूजा केवल पञ्चक मत्त है जैमिनी ने चलाई है। इसविषे इनका अन्तर १२ में समुदास ॥ अर्थ ॥

प्र०—अपने आदि ने मूर्तियों में जैमिनी का अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैमिनी की मूर्तियों के सारा विष्णुआदि की मूर्तियाँ नहीं हैं ॥

उ०—हां वह ठीक है। जो जैमिनी के लक्षण बचते तो शैवमत में मिला जात। इसविषे जैनों की मूर्तियों से बिना बनाई क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना मुख्य उद्देश्य काम था। ऐसे जैनों ने मूर्तियों नहीं व्यासस्थित और विरक्त अनुग्रह के समग्र बनाई हैं उनके बिना विष्णुआदि ने बनेब न्यायित जी के सहित रक्त हृम भोग विष्णुसक्ति अहितपर चली और बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शत्रु पक्ष परित्याग आदि बाने नहीं म्नाते। ये लोग बड़ा काकाहृद करते हैं तब तो ऐसी धर्मिका के रचने के विष्णुआदि सम्प्रदायी पोरों के चले जैमिनी के आह से बच के जूझी बीका में जा पड़े और बहुत से पञ्चआदि महर्षिओं के नाम से समझावी आसम्भव व्यासकुल ग्रन्थ बनाने।

जब का नाम 'पुण्य' रखकर क्या भी सुनाये जाये। और फिर ऐसी १ विधि का नाम रखने जाये कि पापका भी मूर्तिप्राप्ति करके गुप्त करी पश्य का ज्ञानादि में कर जाये का मूर्ति में पाप ही। पश्चात् अपने चेहरे में प्रसिद्ध किया कि मुझ को रात्रि को स्वप्न में मनुष्य, पार्श्वी रात्रि कृष्ण सीता राम का छवनी मारणका और मिरा हनुमान आदि में कहा है कि हम प्रभु २ विधान हैं। हम को कहां से का मन्दिर में स्थापना कर और वही हमारा पुजारी होवे तो हम सर्वोत्कृष्ट पद देंगे ॥

जब प्राय के प्राय और गाँव के पूजकों में पापकी भी छीसा सुनी तब तो सब ही मानकी। और उससे पूछा कि ऐसी वह मूर्ति कहां पर है? तब तो पोपकी बोले कि प्रभु पश्य का ज्ञान में है। जहाँ सर प्राय दिखता है। तब तो व प्राय उस पूर के प्राय बहने का पुरुष कर रहा। धर्म्य होकर उस पोप के पद में निर कर कहा कि आपका ऊपर इस दृष्टा की कही ही कृपा है जब आप से प्रसिद्ध और हम मन्दिर बनाने देंगे। उसमें इस दृष्टा की स्थापना कर आप ही पूजा करना। और हम काम भी इस प्राय की दृष्टा क दर्शन परान करके सर्वोत्कृष्ट पद देंगे। इसी प्रकार जब एक ने छीसा रची तब तो उसका सब सब लोगों ने अपनी जीविकार्थ कुछ कष्ट से मूर्तिप्राप्ति स्थापना की ॥

प्र०—परमेश्वर विराकार है वह ज्ञान में नहीं प्राप्तकता इसलिये प्रत्यक्ष मूर्ति होनी चाहिए। मन्त्र जो कुछ भी नहीं कर तो मूर्ति क सम्मुख जा हाव जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम के हैं। इसमें क्या हानि है?

उ०—जब परमेश्वर विराकार सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति क दृष्टान मात्र से परमेश्वर का स्मरण होते तो परमेश्वर क ब्रह्म प्रियी सब ज्ञानि कबु और कल्पति आदि अनन्त परार्थ, जिसमें स्वर व प्रभुत्व रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त प्रियी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तिप्राप्ति कि विना पहाड़ आदि से मनुष्यप्राप्ति मूर्तिप्राप्ति नहीं है उनको दृष्टकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता? जो तुम कहते हो कि मूर्ति क दृष्टान से परमेश्वर का स्मरण होता है वह तुम्हारा कल्प सर्वव्यापक है। और जब वह मूर्ति समने व होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होवे से मनुष्य प्रभुत्व प्रकर बोरी गरी आदि कुर्म करण में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समने का मुझ कोई नहीं दृष्टता। इसलिये वह धनार्थ कर विना नही शक्य। इसलिये एक रात्र पापप्राप्ति मूर्तिप्राप्ति करण से सिद्ध होते हैं ॥

अब प्रिय! जो पापप्राप्ति मूर्तिप्राप्ति को व मानकर सर्वदा सर्वव्यापक सदान्तर्गामी स्थापकरी परमेश्वर को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुण्य सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सब भूरे भये कर्मों का द्रष्टा जानकर एक ब्रह्मज्ञ भी परमेश्वर से अपने को पृथक् न जान क, कुर्म करना ता कही रहा किन्तु मन में कुछ भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है जो मैं सब बनन और कर्म से भी कुछ भुक्त बनन कर्कश ता इस अन्तर्गामी क स्थाप से विना दृष्ट कर कदापि न शक्य। और नाम स्मरणमात्र से कुछ भी नही होता। देखा कि मिथी १

कहते हैं मुँह मीठा और भीम १ कहते हैं कड़वा नहीं होता किन्तु जीम से कलमे ही से मीठा वह कड़वापन जाना जाता है ॥

प्र०—क्या नाम लेना सर्वथा सिध्दा है जो सर्वत्र पुराणों में नामस्मरण का बड़ा महत्त्व दिया है ?

उ०—नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं । जिस प्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति खूबी है ॥

प्र०—इसकी कौसी रीति है ?

उ०—वेदविष्णु ॥

प्र०—महा जन चाप हमको कैलाश नामस्मरण की रीति कथ्याह्व ?

उ०—नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये । जैसे 'न्यामकरी' ईश्वर का एक नाम है इस नाम से इसका अर्थ है कि जैसे एकपक्षरहित होकर परमात्मा सब का प्रधानत्व स्वीकृत करता है जैसे उसको प्रणम्य कर श्रद्धापूर्वक स्मरण करना अनिवार्य कर्तव्य है । इस प्रकार एक नाम से भी बहुतों का कल्याण हो सकता है ॥

प्र०—हम भी जानते हैं कि परमेश्वर विराट्मय है परन्तु उसमें शिव विष्णु, गणेश सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम कृष्ण आदि अवतार लिये । इससे उसकी मूर्ति बनती है । क्या वह भी बात खूबी है ?

उ०—हां १ खूबी । 'अज एकपात्' * अकायम्' † इसादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म मरण और शरीरधारणरहित कैलों में कहा है तथा पुनः से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता क्योंकि जो आकाशका सर्वत्र व्याप्त समस्त और सुख दुःख इत्यादि गुणरहित है वह एक छोटे से बीरे गन्धाय और शरीर में कबोकर आसक्तता है । ज्ञाता जानता वह है कि जो एकदलीय हो । और जो अचक्षु अहम्बु जिसके बिना एक परमात्मा ही लब्धी नहीं है उसका अवतार कदापि जानो कल्याण के पुत्र का विनाश कर उसके पीत के दर्शन करने की बात कहना है ॥

प्र०—अब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है । पुनः चाहे किसी पदार्थ में आकाश करके पूजा करना अच्छा नहीं ? क्यों—

न काष्ठं पिपात इव न पापाणे न सुगमम् ।

भाव हि पिपात क्षयस्तस्मान्मृगयो हि कारयम् ॥

परमेश्वर सब न काष्ठ न पापाय न सुगम सं बनाने पराधीन है किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है । जहाँ भाव करें वहाँ ही परमेश्वर तिष्ठ करता है ॥

उ०—अब परमेश्वर सबका व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अच्छा न करना यह कौसी बात है कि किसी राजपूतों राजा का सब राज्य की सत्ता ॥ पुनः क एक सुधीसी भोंपड़ी का स्वामी मानकर [सुनो । वह] किना बड़ा अपमान है । किन्तु तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो जब

व्यापक मान्य हो करिष्य में स पुष्प पत्र ताड़ के ल्यों बाल ? कन्दन बित्ते ल्यों धात ? भूप को जडा के ल्यों दल ? कष्ट करिवाह भोज परमर्षी को धकड़ी स कूरना पीटना ल्यों करत हा ? तुम्हार हाथी में ह ल्यों बोधते ? गिर में ह ल्यों गिर पमल ? जल जलधि में ह ल्यों निवेध भरत ? जल में ह खान ल्यों करत ? क्योंकि जब सध पक्षों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करत हो बा ! व्याप्य की ! जो व्यापक की करते हो तो पापाब धकड़ी ध्यदि पर कन्दन पुष्पधि ल्यों पकसे हो ? और जो व्याप्य की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं एसा मूढ़ ल्यों बोधत हो ? हम पक्षधारी के पुजारी हैं एसा सल ल्यों नहीं बोधत ?

जब करिष्य 'भय' सहा है का मूढ़ ? जो कही सहा है तो तुम्हार भय के साधीन हाकर परमेश्वर कह हो जलज और तुम मृत्तिय में मुख्य रजसधि पापब में हीरा पक्ष धारि समुद्रके में मोती जब में फूट दुग्ध दधि धारि और भूषि में मेष टकन धारि की भयका करत उनको बैस ल्यों नहीं बनाते हो ? तुम जल दुग्ध की भयका कमी यहां करत कह ल्यों हाता ? और मुक्त की भयका सदैव करत हो कह ल्यों नहीं गत हाता ? कन्द्य पुष्प पत्र की भयका करत ल्यों नहीं हाता ? मरने की भयका नहीं करत ल्यों मर बात हा ? इसलिय तुम्हारी भयका सही नहीं । क्योंकि जिस में कही करत का नाम भयका कहत है । जिस धर्म में धर्म जब में जल जलज और जल में धर्म धर्म में जल समकन समकन है । क्योंकि जिस को बैसा जलका जल और जलका जलका चमकन है । इसलिय तुम समकन का भयका और भयका को समकन कहत हा ॥

प्र०—जही जलक वनमन्त्रों स जलकन नहीं करत तब तक दकन नहीं धान्य और जलकन करत स भय जलज और बितर्यन करने स चहा जल है ॥

उ०—जा मन्त्र के पदकर जलकन करत स दकन जलज है तो मूर्ख कन ल्यों नहीं हा जल ? और बितर्यन करत स चहा ल्यों नहीं जल ? और कह ० कही स जलज और कही जल है ? तुमको जलको एवं परमात्मा न धान्य और न जल है । जा तुम मन्त्रकन स परमेश्वर का पुजा कन हो तो उन्हीं मन्त्रों स धरत मर दुग्ध पुत्र के शरीर में जीव को ल्यों नहीं पुजा छत ? और धनु के शरीर में जीवका का बितर्यन करत ल्यों नहीं मर मकन ? मुना भई भाज भय धान्य ॥ न पावजी तुमका हाकर धरना प्रयोजन निह धत है । वही में पक्षधारी मृत्तिय और परमेश्वर के जलकन बितर्यन करत का पद कन भी नहीं है ॥

प्र०—माया रहागध्यन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु साहा ।

आमहागध्यन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु साहा ।

हि द्रवापीहागध्यन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु साहा ॥

इत्यदि केरमन्त्र है ल्यों कहत हो नहीं है ।

उ — धरे भर्मा ! तुमि को बोधीसी तो अपने काम में लाओ । वे सब कपोलकल्पित धर्ममार्गियों की बेवकिलद तन्त्रप्रणयों की पोसकिय पैरिया हैं, बेदबब नही ॥

प्र०—क्या तन्त्र सूत्र है ?

उ०—हां सर्वथा सूत्र । जैसे आचार्यन मन्त्रप्रतिष्ठादि पाषाणपरि मूर्ति विष्णुक केनों में एक मन्त्र भी नहीं जैसे 'ज्ञान समर्पयामि' इत्यादि वचन भी नहीं । अर्थात् इतना भी नहीं कि 'पाषाणादि मूर्ति रक्षयित्वा मन्दिरपु संस्थाप्य गन्धादिमिरक्षयेत्' अर्थात् फलपत्र की मूर्ति बना मन्दिरों में स्थापन कर कन्दन वृक्षरश्मि से पूजे । ऐसा ज्ञेयमात्र भी नहीं ॥

प्र०—जो केनों में बिधि नहीं तो कसबन भी नहीं है । और जो कसबन है तो 'प्रतो सभा विवेका' मूर्ति के दोबे ही से कसबन हो सकता है ॥

उ०—बिधि तो नहीं परन्तु परमेस्वर के कान में किसी अन्य पदार्थ को पृथगीय न मानना और सर्वथा विवेक किया है । क्या अपूर्वबिधि नहीं होती ? सुनो यह है—

अन्धन्तम' प्रविशन्ति येऽस्तन्मूर्तिमुपासते ।

ततोमूय इव स तमो य उ संभूत्याष्टु रता ॥ १ ॥ यत्तु अ १ म ॥

॥ तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ २ ॥ यत्तु अ २१ म १ ॥

यद्वाचा वाग्युद्धितं येन वाग्यमुच्यते ।

तदेव प्रष्टु त्वं विद्धि मेव यद्विदमुपासते ॥ १ ॥

धम्मनसा न मनुत येनाहुर्मनो मतम् ।

तदेव प्रष्टु त्वं विद्धि मेव यद्विदमुपासते ॥ २ ॥

यद्यक्षुपा न पश्यति येन वाचं वि पश्यन्ति ।

तदेव प्रष्टु त्वं विद्धि मेव यद्विदमुपासते ॥ ३ ॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिह श्रुतम् ।

तदेव प्रष्टु त्वं विद्धि मेव यद्विदमुपासते ॥ ४ ॥

यत्प्राप्ते न प्राप्तिरिति येन प्राज्ञः प्रसीयते ।

तदेव प्रष्टु त्वं विद्धि मेव यद्विदमुपासते ॥ ५ ॥ केनोपनि ॥

जो असंभूति अथवा अनुपपन्न अथवा प्रकृति कारण की प्रष्टु के लक्षण में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं । और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुए कर्मेक्य प्रथिती अर्थात् मूल पाषाण और वृक्षादि अक्षय और मनुष्यादि के शरीर की उपासना प्रष्टु के लक्षण में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अथवा महामूर्ख विरकाष्ट और दुःखकष्ट मरक में गिरके महास्वेष्ट मोगते हैं ॥ १ ॥ जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमपद की प्रतिमा परिमाण साधारण का मूर्ति नहीं है ॥ २ ॥ जो अपनी की वृक्ष अर्थात् यह जगत् ही सीमित असा विस्तृत नहीं । और जिसके कारण और

सद्य से बन्धी की प्रवृत्ति होती है उसी को मग्न जान और उपसमा कर और जो उससे मित्र है वह उपसमाणीय नहीं ॥ १ ॥ जो मन से 'इषया' करके मग्न में नहीं आता जो मन को जानता है, उसी को मग्न वृत्ति और उसी की उपसमा कर । जो उससे मित्र जीव और अन्तःकरण है उसकी उपसमा मग्न के स्थाप में मग्न कर ॥ २ ॥ जो आँख से नहीं शीघ्र पकता और जिससे ध्येय देखती है उसी को वृ मग्न जान और उसी की उपसमा कर और जो उससे मित्र सूर्य विद्युत् और अग्नि आदि जब पदार्थ है उनकी उपसमा मग्न कर ॥ ३ ॥ जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है उसी को वृ मग्न जान और उसी की उपसमा कर । और उससे मित्र वायुआदि की उपसमा अपने स्थाप में मग्न कर ॥ ४ ॥ जो शब्दों से अस्वाभ्यास नहीं होता जिससे मग्न गमन को मग्न होता है उसी मग्न को वृ जान और उसी की उपसमा कर । जो वह उससे मित्र अपु है उसकी उपसमा मग्न कर ॥ ५ ॥ इन्द्रादि बहुत स निषध है । निषध मग्न और अमग्न का भी होता है । 'मग्न' का अर्थ कोई कभी ऐसा हो उसको नहीं स मग्न बना । "अमग्न" का अर्थ है पुनः । वृ जोरी कभी मग्न करना । कुने में मग्न निषध । दुर्गों का मग्न मग्न करना । विषादीय मग्न रहना । इन्द्रादि अमग्न का भी निषध होता है । सा मनुष्यों के ज्ञान में अमग्न परमेश्वर के ज्ञान में मग्न का निषध किया है । इसलिये पापपापि मूर्तिपूजा अमग्न निषिद्ध है ॥

प्र०—मूर्तिपूजा में पुनः नहीं तो पाप तो नहीं है ?

उ०—कर्म वा ही प्रभु के हाते हैं—विहित—वा कर्ममत्ता स वेद में समभाववादि प्रतिपादित है । दूसर निषिद्ध—जो अकर्ममत्ता स मिथ्यामपवादों वेद में निषिद्ध है । जिस विहित का अनुष्ठान करना वह धर्म उसका न करना अधर्म है ऐसा ही विहित कर्म का करना अधर्म और न करना धर्म है । जब वहाँ स निषिद्ध मूर्तिपूजादि कर्मों को पुनः करते हो तो पापी क्यों नहीं ?

प्र०—इससे । वेद अमग्न है । उस समय मूर्ति का क्या काम था ? क्योंकि पहले तो देवता मग्न थे । वह रीति तो बीज स तन्म और पुत्राओं स बन्धी है । जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य मूल हो गया तो परमेश्वर को ध्यान में नहीं ला सक और मूर्ति का ध्यान तो कर सकत है इस कारण अमग्नियों के धिय मूर्तिपूजा है । क्योंकि छोटी-छोटी स बड़े तो मग्न पर पहुँच जाय । पहिली छोटी पादकर ऊपर जाया जाये तो नहीं आ सकत । इसलिये मूर्ति प्रथम छोटी है । इसको पूजते २ जब ज्ञान होम और अन्तःकरण पवित्र होम तब परमात्मा का ध्यान कर सकत । जिस कारण का मारमपदा प्रथम स्पृह धर्म में तीर, मोड़ी का गाँवा आदि मारता २ पञ्चान् स्पृह में भी मारता मार सकता है किसे स्पृह मूर्ति की पूजा करता २ पुनः स्पृह मग्न को भी मग्न होता है । जिसे अमग्नियों पुद्गियों का पद तब तक करनी है कि जब तक उनके बलि का मग्न नहीं जाती, इन्द्रादि प्रभु स मूर्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं ॥

उ०—जब बेइच्छित धर्म और बरबिस्ठाकरण में अभय है तो पुनः तुम्हारे करने से भी मूर्तिपूजा करना अभय है। जो १ प्रश्न वेद से विस्तृत है उ० १ का प्रमाण करना जानो वास्तविक होता है। सुनो—

नास्तिको बह्निम्बुक् ॥ १ ॥ मनु १।११ ॥

या वदयाद्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुहपुयः ।

सयास्ता निष्कलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि सा स्मृता ॥ २ ॥

उत्पद्यन्ते जययन्तः च याम्यतोऽभ्यामि कामिचित् ।

ताम्यर्पाद्यामिक्तया निष्कलाभ्यनुतामि च ॥ ३ ॥

मनु अ ११।१२—१३ ॥

मनुजी करते हैं कि जो बेहो की निष्ठा धर्मोत्पन्न अभय विस्ठाकरण करता है वह वास्तविक कहाता है ॥ १ ॥ जो प्रश्न बरबिस्ठा कुहपुय पुनो १ बनाय संसार को दुःखसागर में डुबानेवाले है वे सब निष्कल प्रेत्य तमोनिष्ठा प्रेत्य तमोनिष्ठा इस लोक और परलोक में दुःखसागर हैं ॥ २ ॥ जो हम वही १ विद्वत् प्रश्न उत्तर होत है १ वास्तविक होने से शीघ्र बह होजाये है। उक्त अभय निष्ठा और भय है ॥ ३ ॥ इसी प्रकार प्रश्न से प्रश्न जैमिनि महर्षि पर्यन्त का मत है कि बरबिस्ठा को न मानना किन्तु वेदनुष्ठान ही का आधार बना धर्म है। क्यों? वेद सत्य धर्म का प्रतिपादक है। इससे विद्वत् जितने तन्त्र और पुण्य है बरबिस्ठा होने से भूत है। जो कि वेद से विद्वत् पुनो १ हमसे कही हुई मूर्तिपूजा भी अभयप्रकार है। मनुष्यों का ज्ञान जब की पूजा से नहीं बह सम्प्रदाय किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी मह हो जाय है। इसलिये ज्ञानियों की मध्य सत्य सत्य ब्रह्म है पापबन्धन से नहीं। क्या पापबन्धन मूर्तिपूजा से परमेश्वर को ज्ञान में कभी ला सकता है? नहीं १ मूर्तिपूजा सीधी नहीं किन्तु एक बड़ी गद्दी है जिसमें गिरकर बन्धनबन्धन हो जाय है। पुनः उस गद्दी से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाय है। ही प्राप्ति धार्मिक विद्वानों से प्रश्न परम विद्वान् वाग्विदों के साथ से सत्य और सम्प्रदायपरि परमेश्वर की प्रति की सीधियों है। उस उत्तर पर मैं जान की बिजली दली है किन्तु मूर्तिपूजा करने १ ज्ञानी तो कहीं से पुनः प्रश्न सब मूर्तिपूजा प्रशंसा रहत मनुष्यस्य अभय या १ कहुन १ से मर गये और जो सब है वह होत १ भी मनुष्यस्य के धर्म सब धर्म और मोक्ष की वास्तविक धर्मों से विमुख होकर विरुद्ध बह हायवाले १ मूर्तिपूजा प्रश्न की प्रति में शून्य प्रमाण नहीं किन्तु धर्मिक विद्वान् और जैमिनि है। हमसे बताया १ प्रश्न को भी ज्ञान है। और मूर्ति विद्वानों के बरबिस्ठा नहीं किन्तु प्रश्न बरबिस्ठा मूर्तिपूजा का हाथ मुँहों के बरबिस्ठा प्रश्न की प्रति का आधार है। मुक्ति! जब का जो पितृ और पिता का ज्ञान हाय मर गये १ सभी परमात्मा को भी मर हो जायत १

उ०—अध्यास में सब निर हाय और विद्वान् में निर हाय का ज्ञान है बरबिस्ठा मूर्तिपूजा रहती नहीं ॥

३०—साधर में मन स्थिर नहीं हो सकता क्योंकि इसको मन घट
 ग्रहण करके उड़ी के एक २ अक्षय में वृमता और वृम में चौक जाता है। और
 गिराधर परमात्म के ग्रहण में वाक्यमार्थ मन अमन चौकता है तो भी अमन
 नहीं पाता। गिराधर होने से अमन भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण कम
 स्माय कम विचार करता २ अक्षय में मम होकर स्थिर होजाता है। और जो
 साधर में स्थिर होता तो सब अक्षय का मन स्थिर हो जाता क्योंकि अक्षय में
 मनुष्य की पुत्र धन मित्र आदि साधर में फँसा रहता है परन्तु किसी का
 मन स्थिर नहीं होता अतएव गिराधर में न अक्षय क्योंकि गिराधर होने से
 उसमें मन स्थिर होजाता है। इसलिये मूर्तिपूजन करना धर्म है ॥

ब्रह्म—उसमें जोड़ी अपने मन्त्रों में व्यय करते रहते हैं और उसमें
 प्रसन्न होता है। तीसरा—जो पुण्यों का मन्त्रों में मेला होवे स तन्मिथर बड़ाई
 कहेजा और रोगादि उत्पन्न होते हैं। चौथा—उसी को धर्म अर्थ कम और
 मुक्ति का साधन मानके पुनर्प्राप्ति होकर मनुष्यजन्म अर्थ ममता है।
 पाँचवाँ—आत्म प्रभर की विद्वत्स्वरूप नाम चरित्रपुत्र मूर्तियों के पुजारियों का
 देवमत्त वह होके विद्वत्मत्त में अक्षय आपस में घट बहा के देव का मन्त्र करते
 हैं। छम—उसी के मतोसे मैं शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते
 हैं। उक्त पराजय होकर राज्य स्वात्म्य और धन का लुप्त उनके शत्रुओं के
 स्वाधीन होता है और आप पराधीन अतिथारी के अह और कुम्हार के गण का
 समान शत्रुओं के कष्ट में होकर अनेकविध दुःख पड़े हैं। सतर्क—जब कोई
 किसी को कहे कि हम तब ईश्वर के आसक्त का नाम पर कपूर धों तो ईश्वर का
 उस पर अतिष्ठ होकर मारता का पाखी प्रभाव करता है। स ही जो परमेश्वर के
 उपासका के कथन हृदय और नाम पर पापपादि मूर्तियाँ भरत हैं उन बुद्धि
 पाखी का सत्वात्म परमेश्वर क्यों न करे ? आठवाँ—अमन होकर मन्त्र २
 द्वादेशान्तर में वृमते २ दुःख पड़े। धर्म संसार और परमार्थ का अमन वह
 करत और आदि से पीड़ित होते उगों से छाये रहते हैं। नववाँ—बुद्ध पुजारियों
 को जब देत हैं वे उस धन को वेस्था परधीममन मध मोभाहार बड़ाई
 बक्यों में व्यय करते हैं जिससे दाता के मुक्त का मूख वह होकर दुःख होता है ॥

दशवाँ—माता पिता आदि आशनीयों का अपमान कर पापपादि मूर्तियों
 का माय करके वृमता होजात है। ग्यारहवाँ—उन मूर्तियों को काई ठाढ़ धाकता
 का चोर से जाता है तब हा हा करके रोत रहते हैं। बारहवाँ—पुजारी पारस्त्रियों
 के संग और पुजारी परपुत्रों के संग का प्रया इष्टि होकर की पुत्र
 के दम के अक्षय का हाथ स खो दिते हैं। त्रहवाँ—स्थानी सबक की
 आत्म का प्रजन वकात् न होने से परस्पर विद्वत्माय होकर नष्ट होजाते
 हैं। चौदहवाँ—जब का अमन करने बस का आत्मा भी जड़बुद्धि होजाता है
 क्योंकि ज्ञेय का ज्ञय धर्म अमनकरता हाथ धा मा में अक्षय पाता है ॥

पन्द्रहवाँ—परमेश्वर ने मुनिपुत्र पुण्यादि पदाय पायु जस ६ दुःख विचारक
 और आरोग्य के शिष्य बनाए हैं, उनको पुजारीजी तोड़ताइ कर न जाने उन

पुष्पो को कितने दिव तक सुगन्धि आत्मस्थ में चक्कर वायु वाक् की शुद्धि करत और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता उसका अर्थ मात्र में ही कर देते हैं। पुष्पादि जीव के साथ मिश्र करकर उक्त सुगन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्तर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धयुक्त पदार्थ रचे हैं। सो कहना—पत्तर पर चढ़े हुए पुष्प चम्पक और अजत आदि सब का जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी का कुल में चक्कर सब के इतना उत्तम सुगन्ध आत्मस्थ में चकत है कि कितना मनुष्य के मख का और सड़कों की भी उसमें पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं। ऐसे १ अनेक मूर्तिपूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिये सर्वत्र पापपापि मूर्तिपूजा उन्मूल्य लोगों को शक्य है। और किन्होंने पापपापमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे वे पूर्णतः दोषों से बचने बचते हैं और बचेंगे ॥

प्र०—किन्ती प्रकर की मूर्तिपूजा करनी कदाही नहीं और जो अपने आत्मस्थ में पड़नेवाला पूजा शब्द प्रतीत परम्परा से चला आता है उसका यही पञ्चास्तनपूजा जो कि शिव किन्तु चम्पक पक्षेय और सुन्दर की मूर्ति बनकर पड़ते हैं वह पञ्चास्तनपूजा है या नहीं ? ॥

उ०—किन्ती प्रकर की मूर्तिपूजा न करवा किन्तु 'मूर्तिमात्र' जो बीजे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सम्भार करत आदिसे। वह पञ्चदेवपूजा पञ्चास्तनपूजा शब्द बहुत आच्छा अर्थवाला है परन्तु किन्तुहीन मूर्तों से उलझे उत्तम अर्थ को छोड़कर बिहुल अर्थ पकड़ लिया। जो आशंक्य सिद्धान्त पाँचों की मूर्तियाँ बनकर पड़ते हैं उनका लक्षण तो समी कर चुके हैं। वह जो सभी पञ्चास्तन केदोक और वैश्वानुश्लोक देवपूजा और मूर्तिपूजा है इसको—

मम नो वधी' पितरं मोत मन्तरम् ॥ १ ॥ पृष्ठ अ १९। मं १२ ॥
आचार्योऽग्र्यययैव ग्रहचारिणमिप्सुत ॥ २ ॥

अर्थ कां ११। व २। मं १० ॥

अतिधिगुहान्यगच्छत् ॥ ३ ॥ अर्थ कां १२। वृ १२। मं ११ ॥
अन्वत प्राचत मियमभासो अन्वत ॥ ४ ॥

अर्थ मं ८। वृ १९। मं ८ ॥

स्यमय प्रत्यर्धं ग्रहाति त्यामय प्रत्यर्धं ग्रहं यद्विष्यामि ॥ ५ ॥

तिथिरीयापदि वही १। पृष्ठ १ ॥

कतम पक्षो दय इति स ग्रह त्यदित्याद्युत ॥ ६ ॥

शतपथ कां १४। प्रपाठ ९। ग्राह्य ९। धर्म १ ॥

मातुर्य। मय पितृदयो मय आचार्यदयो मय अतिधिदयो मय ॥ ७ ॥

तिथिरीया व १। पृष्ठ ११ ॥

पितृभिर्भातृभिर्जीता पतिभिर्देपरैस्तथा ।

गृह्या भूपयितव्याश्च बहुकदवाणमीप्सुभिः ॥ ८ ॥

मनु अ २। २२ ॥

पूज्यो * श्रवणापति ॥ ६ ॥ मनुष्यवै ॥

प्रथम माता मूर्तिमयी पूजनीय देवता अर्थात् समताओं को तन मन धन से सेव्य करके माता को प्रसन्न रखना हिंस्र अर्थात् ताड़ना कभी न करना । दूसरा पिता स्वकर्तव्य देव । उसकी भी माता के समान सेवा करनी ॥ १ ॥ तीसरा आचार्य जो विद्या का देनेवाला है उसकी तन मन धन से सेव्य करनी ॥ २ ॥ चौथा अतिथि जो विद्या, धार्मिक विष्णुपटी सब की उन्नति चाहने वाला अम्न में प्रसन्न करता हुआ सदा उपदेश से सब को सुखी करता है उसकी सेवा करें ॥ ३ ॥ पाँचवाँ श्री के शिष्य पति श्रीर गुरु के शिष्य पति पूजनीय है ॥ ४ ॥ ये पाँच मूर्तिमात्र देव जिनके हाथ से मनुष्यवै की उत्पत्ति पावन सदा शिवा विष्णु श्रीर सत्योपदेश की प्राप्ति होती है । ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियाँ हैं । इनकी सेवा न करके जो पापाचारि मूर्ति पूजते हैं वे अतीव पाप्मन नरकागम्य हैं ॥

प्र०—माता पिता आदि की सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं ?

उ०—पापाचारि मूर्तिपूजा तो सर्वथा बोजने और मायादि मूर्तिमात्रों की सेवा करने में ही कल्याण है । बड़े धनपै की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष मुक्तदायक देवों को छोड़ के अनेक पापाचारि में शिर मारना मूर्ति ने इसीप्रकार स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने निवेद्य या मेल पूजा करेंगे तो वे स्वर्ग का होंगे और मेल पूजा करेंगे तो हमारे मुख का हाथ में कुछ न पड़ेगा । इसमें पापाचारि की मूर्ति बना उसके आगे निवेद्य पर बध्याचार्य ईं पू. राजा राजा काकाद्वय का अंगुष्ठ दिव्यता अर्थात् 'स्वमङ्गलं गृह्णात्य भोजनं पदार्थं बाह्यं प्रहीष्यामि' जैसे कोई किसी का दूधे का बिहार कि न बध्या अ और अंगुष्ठ दिव्यता के उसके आंग से सब पदार्थ के आप मोय वैस ही छोड़ा इस पुन्यारिओं अर्थात् पूजा नाम सम्पूर्ण ६ शक्तियों की है । मूर्तियों को चटक, मटक चटक चटक मूर्तियों का बना बना दिया आप देखा व बध्या के मुक्त बन मन के विचार निरुद्धि बनायी का मातृ मार के मीत्र करते हैं । जो कोई धार्मिक राजा होना तो इन पापाचारियों को पत्थर लादने बध्याने और घर रखने आदि कामों में लगे रहने पीने का दण्ड निबद्ध करना ॥

प्र०—जैसे श्री आदि की पापाचारि मूर्ति रखने ॥ अमान्यपति हानी है वैस बीनारंग राजा की मूर्ति रखने से बराम्ब और राजा की प्रति स्वी व होगी ?

उ०—नहीं हो सकती क्योंकि यह मूर्ति ६ उन्नत धर्म धारणा में ध्यान व विचार शक्ति पर उतरी है । शिरो ६ विद्या व वैराग्य और पराध के बिना विष्णु विज्ञान ६ विद्या शक्ति नहीं होगी और जो कुछ हाथ है सा उनके मय उपदेश और उनके इतिहासादि ६ रखने में हाथ है क्योंकि जिसका गुण का राज न जान के उनकी मूर्तिमात्र रखन से जीनि नहीं होगी । जीनि हाथ का कारण गुणज्ञान है । उन मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्चकत्वे में निरक्षर पुन्यारी भिक्षु ६

आजसी पुनर्वाच रहित ओहों मनुष्य हुए हैं । वे मृत होने से सब संसार में मृत्यु उन्हीं में फैलाई है । मृत क्षण भी मनुष्य नहीं है ॥

प्र०—देखो कसरी में 'चौराहे' का पथराह को 'आरमैर' आदि ने बड़े १ चमत्कार दिखाए थे । जब सुसज्जमान उनको छोड़ने गये उन्होंने जब उस पर तोप घोड़ा आदि मारे तब बड़े १ भयानक कर सब पंजा को मार डाला ॥

उ०—यह पाथाह का चमत्कार नहीं किन्तु यहाँ भयानक के बड़े डरा रहे हैंगे जबकि लम्बा ही कर है जब कोई उनको देखे तो वे कसरी को हीमते हैं । और जो वृत्त की चारा का चमत्कार होता था वह पुनर्वाच की सीमा थी ॥

प्र — देखो महादेव म्हेच्छ को दर्शन व देने के बिने रूप में और देखीमाचन एक म्हेच्छ के कर में था बिने । क्या यह भी चमत्कार नहीं है ?

उ०— महा सिद्धि कोटपाह काचमैर आरमैर आदि भूत प्रेत और मन्त्र आदि गन्ध [हों] उन्होंने सुसज्जमानों को सब के लोभ व हटाने ? जब महादेव और किन्तु की पुराणों में कहा है कि कनेक सिद्धिगुरु आदि बड़े भयानक बुद्धों को मर्त्य कर दिया तो सुसज्जमानों को भयानक नहीं न किया ? इससे यह सिद्ध होता है कि बिचारे पाथाह क्या कहते कहते ? जब सुसज्जमान मन्दिर और मूर्तियों को छोड़ते छोड़ते हुए कसरी के पास आने तब पंजापियों ने उस पाथाह के बिने को रूप में बाधा और देखीमाचन को म्हेच्छ के कर में बिना दिया । जब कसरी में आरमैर के कर के मारे मर्त्य नहीं करते और मन्त्र समय में भी कसरी का नाश होने नहीं देते तो म्हेच्छों के वृत्त क्यों न हटावे ? और अपने राजा के मन्दिर का क्यों नाश होने दिया ? यह सब पाथाह है ॥

प्र०— क्या मैं आह करने से पितरों का पाप दूरकर यहाँ के आह के पुनः प्रयास से पितर लोभ में आते और पितर अपना हाथ निष्पन्न कर बिबड करते हैं क्या यह भी बात सही है ?

उ०—सर्वथा मृत, जो यहाँ बिबड देने का बड़ी प्रयास है तो जिन पदों को पितरों के मुख के बिने बाजों दण्ड रहे हैं उनका धन गयाबासे केवलममबादि पाप में भरत है यह पाप क्यों नहीं दूरता ? और हाथ निष्पन्नता आज कब नहीं नहीं हीमता किन्तु पदों के हाथों के । यह कभी किसी पूर्व में गृहिणी में मुख मोड़ उसमें एक मनुष्य बैठा दिख होगा । पछात् उससे मुख पर कुछ बिना बिबड दिया होगा और उस कसरी ने उस बिबड हाथ किसी चारर के चमके गान के पों को इस प्रकार उठा हो तो आहर्ष नहीं । देते ही बिबड को हाथ छाया का यह भी सिद्धांत है ॥

प्र०—देखो ! कसरी की कसरी और आमाता आदि रबी का बालों मनुष्य मानते हैं क्या यह चमत्कार नहीं है ?

उ — कुछ भी नहीं । व चमके छोटा भव के मुख एक के पीप वृत्त चमक है वृत्त गन्ध में बिबड है यह नहीं सच । देते ही एक मूर्त के पीप वृत्त चमक मूर्तिगन्ध रूप गये में चमक वृत्त पात है ॥

प्र०—महा बह लो जाने दो परन्तु जगन्नाथजी में प्रभव जगन्नाथ है। एक कछेवर बहने के समय जगन्नाथ का खकड़ा समुद्र में स स्पर्शमेव जाता है। पृथ्वी पर ऊपर १ स्थल हबल भरने से ऊपर २ के पहिले १ एकल है। और जो कोई बड़ा जगन्नाथ की परछाई न जाने तो कुड़ी हो जाता है और रथ घाय से भाप जलता पापी को दर्शन नहीं होता है। इन्द्रमन के राज्य में कृताओं ने मन्दिर बनाया है। कछेवर बहने के समय एक राजा एक पण्डा एक बर्ह मर जाने चाहि जगन्नाथों को तुम मूढ न कर सकोगे ॥

उ०—विस्तृत चारह वर्ष पर्यन्त जगन्नाथ की पूजा की भी बह विरल होकर मधुर में जाय का मुख स मिखा का। मीने इन बातों का उत्तर पड़ा था जगन्नाथ न अब बात मूढ बतलाई। किन्तु विचार स विषय यह है कि जब कछेवर बहने का समय जाय है तब बीच में जगन्नाथ की खकड़ी से समुद्र में गिरते हैं। वह समुद्र की बहलियों से बिजल लग जाती है उसका से सुखर लोग मूर्तियां बनाते हैं। जब रसोई बनती है तब कछेवर पण्ड करके रसोइयों के विद्या जगन्नाथ की न जाने न बहने का है। भूमि पर चारों ओर का और बीच में एक जगन्नाथ पृथ्वी बनाते हैं। उन इपों के नीचे भी मिट्टी और एक जगन्नाथ पृथ्वी पर जायत पण्ड उनके लगे भोजन कर उस बीच के हबल में उसी समय जायत काय का। पृथ्वी क मुख जोड़े क लकी स पण्ड कर दर्शन करने वालों को जो कि जगन्नाथ हो पुजा के दितलगत है। ऊपर २ क हबलों से जायत निकल पके हुए जायतों को दितलगा नीचे क काय जायत निकल दितल क, उनसे कहते हैं कि कुछ हबलों क बिचे रख दो। आल के जगन्नाथ क पूरे हबले जगन्नाथ भरते और कोई १ मासिक भी बीच देते हैं। राज बीच जगन्नाथ मन्दिर में नैवेद्य जात है। जब नैवेद्य हो पुकृत है तब वे राज बीच जगन्नाथ मूढ कर का है। पण्ड जो कोई इपय देकर हबल सबे उल्लेख कर पहुँचत और शीत गृहल और सगु जगन्नाथों को खेक राज और जगन्नाथ पर्यन्त एक पंक्ति में बैठ मूढ एक दूसरे का भोजन करत हैं। जब वह पंक्ति उल्लेख है तब उन्हीं जगन्नाथों पर दूसरी को बैसते जात हैं। महा जगन्नाथ है। और बहुतो मनुज बड़ा जगन्नाथ उनका मूढ न कहे, अपने हाथ क्या प्यकर बने जात है, कुछ भी कुझरि रोग नहीं होत और उस जगन्नाथपुरी में भी बहुत स परछाई नहीं जात। उनको भी कुझरि रोग नहीं होत। और उस जगन्नाथपुरी में भी बहुत स कुड़ी हैं। जिस प्रति मूढ जाय स भी रोग नहीं पृथ्वी। और वह जगन्नाथ में जगन्नाथों के भिरवीचक बनाय है, क्योंकि मुमदा भीज्य और बहल की पहिल जगन्नाथ है। उली को जानो मूढों क बीच में भी और जात के न्याय बैसई है। जो भिरवीचक न हाथ ला वह जाय कभी न होती। और रथ के पहिलों के स्तन कछा बनाई है। जब उनका मूढी पुमाव है जमती है तब रथ जगन्नाथ है। जब महा के बीच में पहुँचत है तभी उसकी बीच को उल्लेख मूढ रथ स रथ महा रह जात है। पुझरी कोम पुझरत है। राज देखो पुझर करो जगन्नाथ जगन्नाथ हाथ जगन्नाथ रथ जगन्नाथ जगन्नाथ पर्यन्त रह। जब तक भेद जायती जायती है तब तक कने ही पुझरते हैं। जब का पुझरी है तब एक जगन्नाथी न ३

कमरे हुआ था जोड़कर आगे बढ़ा रह के हाथ धोकर स्तुति करता है कि "हे ब्रह्माय नमः । आप कुछ करके हम को बचाइये हमारा धर्म रक्षो" इन्हीं बोल आवाज बरकरार प्रवास कर रह पर जाता है । उन्हीं समय बीच को मुखा हुआ होते हैं और जब २ मज्ज बीच सहजों मनुज रस्ती खींचते हैं, हम कहता है । जब बहुत से लोग वहाँ को जाते हैं तब इतना कहा मन्दिर है कि जिसमें दिन में भी अन्धेरा रहता है और दीपक जलाना पड़ता है । उन मूर्तियों के आगे पड़ने बीच कर आगने के पर्व दोनों ओर रहते हैं पड़ने पड़ारी भीतर बड़े रहते हैं । जब एक ओर बाजे ने पर्व को खींच मन्द मूर्ति आग में आ जाती है । तब सब पड़ने और पड़ारी पुकारते हैं तुम मन्द करो तुम्हारे पाप बूट जायेंगे तब दर्शन होय । खींच करो । वे बिचारे मोक्ष मनुज पृथी के हाथ बूट जायेंगे हैं और मन्द पदा दूसरा बीच केते हैं तभी दर्शन होता है । तब जब अन्ध बीच के प्रसन्न होकर एक आने तिरस्कृत हो आने जाते हैं । इन्द्रजित्त नहीं है कि जिसने कुछ के खींच आग तक कहकरते में हैं । यह पण्डित राजा और सब का उपासक था । उसने आखीं अपने आग्रह मन्दिर पण्डित या इन्द्रजित्त कि आवाजें दण के मोजन का कहेवा इस रीति से सुनावे परन्तु वे मूर्त का जोड़ते हैं । देख मानो तो उन्हीं करीगरी को माना कि जिन चिरिप्यों ने मन्दिर बनाया । राजा पण्डित और सब उस समय नहीं मरते परन्तु वे तीनों वहाँ प्रवास रहते हैं जोड़ों को कुछ केते होंगे । उन्हींमें सम्मति करके उन्हीं समय प्रवास कहेवर बरखने के समय वे तीनों उपलब्ध रहते हैं । मूर्ति का इन्द्र पण्डित रहता है उसमें एक सोने के सगुण में एक सखगराम रजत है कि जिसको प्रतिदिन धो के बरखायुक्त बनाते हैं । उस पर रात्रि की रात्रन धारों में उन आगों ने फिर का तेजस कापेठ दिया होग । उसको धोके उन्हीं तीनों को पिछाया होगा कि जिससे वे कभी मर गये होंगे । मरे तो इस प्रकार और मोजन भद्रों के प्रसन्न किया होगा कि जगद्विजयी अपने शरीर बरखने के समय तीनों मर्त्य का भी सख से गये । वही मूर्ती काल पराये धन अपने के खिचे बहुत ही दुष्प्र करता है ॥

प्र०—जो रामेश्वर में गङ्गोत्री के जल बहाने समय छिद्र बह जाता है क्या यह भी पाद मूर्ती है ?

उ०—मूर्ती क्योंकि उस मन्दिर में भी दिन में अन्धेरा रहता है । दीपक रात दिन जला करते हैं । जब जल की धारा पड़ते हैं तब उस जल में बिजली के समान दीपक का प्रतिबिम्ब कमजोर है और कुछ भी नहीं । न रात्रि बड़े न बड़े । जिनका का उगता रहता है । ऐसी खींचा करके बिचारे विदुषियों को उल्टे हैं ॥

प्र०—रामेश्वर का रामचन्द्र ने स्थापित किया है कि जो मूर्तिपूजा परबिन्दु होती ना रामचन्द्र मूर्तिस्वरूपन को करत और आत्मीयिकी रामायण में नहीं लिखी ?

उ०—रामचन्द्र के समय में उस छिद्र का मन्दिर का नाम पिट भी न था किन्तु यह ठीक है कि इन्द्रजित्त एतत् राम नामक राजा न मन्दिर बना छिद्र का नाम रामेश्वर पर दिया है जब रामचन्द्र खिताबी का यह इनुमान मारि

के साथ बड़ा स चले आभयमार्ग में विमान पर बैठ जापोण्या को करते थे सब चीत्कारी से कहा है कि—

अथ पूर्व महादेव प्रसादमफरोहिमु । सनुयन्ध इति विख्यातम् ॥

बास्मीकि रा । बड़ा बने । सर्ग १२५ । श्लोक १ ॥

हे सीते ! तरे बिरोध से हम ज्यादा होकर बूमते थे और इसी लयन में आनुमान्य किया था और परमेश्वर की उपासना ज्ञान भी करते थे । वही जो स प विमु (ज्ञापक) देवों का देव महारथ परमात्मा है उसकी कृपा से हमको सब सम्मती वही पक्ष हुई है और वह वह सेतु हमने बांधकर बंध में आये, उस रावण को मार मुष्को से मारे । इसके सिवाय वहां बास्मीकि वे अन्य कुछ भी नहीं किया ॥

प्र०—“शत्रु द्वे काश्चिदाकन्त को । जिसने मुझा पिताया ममन को” ॥

इति में एक काश्चिदाकन्त की मूर्ति है । वह सब एक हुआ विद्य करती है । जो मूर्तिपूजा कही होती तो वह चमत्कार भी कृत हो जाय ॥

उ०—श्रुती १ । यह सब पोषणीका है क्योंकि वह मूर्ति का मुख पोषा होग्य । उसका द्विद पृष्ठ में निम्न के मिठी क पार दूसर ममन में सब काम होग्य । जब पुजारी हुआ अथ वेचन्यन छग्य मुख में नली जमा क पढ़ने अथ निम्न अथा होग्य तभी पीछे अथा आरमी मुख से शोचना होग्य । तो ह्मर हुआ यह १ पोषता होग्य । दूसरा द्विद एक और मुख के साथ छग्य होग्य । जब पीछे पूर्व मार दया होग्य तब एक और मुख के बित्रों से पुष्पा निम्नता होग्य उस समय बहुत स मूर्तों को अन्तर्हि पक्षों से सुदृक्क पन रहित करते होंगे ॥

प्र०—इतो । अकारती की मूर्ति हरिक से अन्त क साथ बड़ी आई । एक साथ रही साने में कई मम की मूर्ति मुख गई । क्या वह भी चमत्कार नहीं ?

उ०—अरी वह एक मूर्ति को जोर से आया होग्य और साथ रही के बगल मूर्ति का मुखय किसी अन्त आरमी ने गण्य मारा होग्य ॥

प्र०—इतो । मोमयपत्री गृहिणी से ऊपर रहना था और वहां चमत्कार था । क्या वह भी मिथ्या बात है ?

उ०—हां मिथ्या है सुनो ! बीच ऊपर पुष्पक पायाप छग्य रहने प । उस क चार्कन्य स वह मूर्ति अथ नही थी । जब “महमूर राजनी” अथ बड़ा था तब वह चमत्कार हुआ कि उसका समिर तादा गया और पुजारी भन्नों की दृष्टि हो गई और आगे और दण सह्य और स ध्यान गई । जो पोष पुजारी पूछ ‘उत्तरय लुमि अर्कन्य अन्त प कि “हे महारथ ! इस चार्कन्य का गू मारचय हमारी रक्षा कर’ आर वे करने केने रायधों को ममकने प कि आप मिथिज रहिये । महारथों नेर चयय बीरक को अन्त ह्ये । व मम अन्तों का मर चयये क अन्त कर ह्ये । अभी हमारा रक्षा समिर होता है । अनुमार् हुग्य आर अन्त ५ स्पष्ट रिश है कि हम सब अन्त का ह्ये’ वे विचार भाव राय आर चर्चि बोलों क चमत्कार स विधान में है । बिन्दे ही अन्तर्हि ३५

पापों ने कहा कि अभी तुम्हारी चलाई का मुहूर्त नहीं है। एक ने चामरों काटकर बतलाया। दूसरे ने योगिनी सामने दिखावाई इत्यादि बहकाने में रहे। जब श्लेष्मों की पीड़ा से आकर घेर लिया तब दुईसा से मागे किन्तु ही पाप पुण्यरी और इनके चेहरे फटने लगे। पुण्यारिषों ने वह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन मोड़ अपना खेचो मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। सुसहस्रमात्री ने कहा कि इन “कुतपरस्त” भरी किन्तु “कुतसिक्त” अर्थात् मूर्तों के तोड़ने वाले (मूर्तिभङ्ग) हैं। जा के मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की कुत हुई तब मुख्य पापाय प्रसन्न होने से मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अमर मोड़ के एक विग्रह। जब पुण्यरी और पापों पर कोड़ा पड़े तब रोने लगे। कहा कि कोय बतलाओ। मार के मारे मन्दिर बतला दिया। तब सब कोप लूट मार कर पाप और इनके चेहों को ‘गुलाम’ बिलारी का पिछवा पिछवा बस लुप्तका मल मूर्ति बहकाया और काय जाने को दिये। हाव। क्यों फलर की पूज कर सम्मन्त्र को मार हुए? क्यों परमेश्वर की मूर्ति व की जो श्लेष्मों के बाँध तोड़ बखले। और अपनी विग्रह करते। देखो। जिसकी मूर्ति हैं उतनी शूरवीरों की पूजा करत तो भी किसी रक्षा होती। पुण्यारिषों ने इन पापायों की उतनी मूर्ति की परन्तु मूर्ति एक भी अब शत्रुओं के शिर पर डकें व जारी। जो किसी एक शूरवीर पुण्य की मूर्ति के सत्य सेवा करते तो वह अपने सेवकों को अमरकति बचाता और उन शत्रुओं को मारता ॥

प्र०—आरिक्ता की रक्षाकोई जिसने ‘मर्मावस्था’ के पास हुँदी मर दी और बसक काय पुन दिया इत्यादि बात भी क्या फल है?

उ०—किसी साहस्य ने अपने दे दिये होंगे। किसी ने फल नाम उड़ा दिया होना कि भीहृष ने मेज। जब सन् १८१४ के वष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्तियाँ अन्तर्जालों ने उड़ाई थी तब मूर्ति कहाँ गई थी? प्रत्युत व्यपेर लोगों ने जिसकी बीरता की और खड़े शत्रुओं को मार परन्तु मूर्ति एक मन्त्री की शंख भी व तोड़ सकी। जो भीहृष के सत्य कोई होता तो इसके पुरे उड़ा देता और वे व्याप्त भिरते। मजा यह ता क्यों कि जिसका रक्त मार काय उसके शरणागत स्त्री व पीढ़े बचें ॥

प्र०—ज्योत्सामुखी का अमर रही है। सब को या जाती है और मराने देने तो आया प्य जाती और आया जोड़ देती है। सुसहस्रमात्र आरुहों ने उस पर जल की बहर पुण्यरी और छाड़े के तने जड़वाये थे तो भी म्यस्य व मुष्ठी और व सकी। दिसे हिंसाज भी आपी रात को सचरी का पहाड़ पर दिखाई देती पहाड़ को पर्वत कराती है अन्तर्जाल बोकाता और पर्वतम्य से विक्राने व पुनर्म्म नहीं इला हमरा बोपने से पूरा महापुरुष कराता। जब तक हिंसाज न हो आर तब तक अथ महापुरुष पत्रता है इत्यादि सब बातें क्या समन बाप्य पड़ीं?

उ०—नहीं क्योंकि यह ज्योत्सामुखी पहाड़ स आपी विक्रानती है। उसमें पुण्यरी पापों की विधि छोड़ा है। जिस बप्तर के भी के अमर में जलका का जाती भयग

कनने से या एक मारने से कुछ जाती थीर योवासा भी को का जाती रोच दोन जाती है उसी के समान वही भी है जैसे बूढ़े की आवाज में जो बड़ा ब्राम सब भ्रम हो जाता। अथवा या घर में ब्राम जाने से सबको का जाती है इससे वही क्या बिरोध है ? बिना एक मन्दिर कुण्ड और इधर उधर ब्राम रचना के हिमालय में ब कोइ सचारी होती थीर जो कुछ होता है वह सब पोप पुबारियों की बीबा से दूसरा कुछ भी नहीं। एक ब्राम थीर दूसरा का कुण्ड पन्य रखा है। बिम्बे नीच से सुनने करते हैं उसको सफ़ल पाया होगा मूढ़ मानते हैं। योनि का पन्य पोपजी ने पन्य हरने के बिये बबबा रखा है और हमारे भी उसी पन्य पोप बीबा के हैं। उससे महापुन्य हो तो एक पद पर हमारे का बोध का है तो क्या महापुन्य ही जान्य ? महापुन्य तो बने उन्म धर्मसुख पुन्यार्थ से होता है ॥

प्र०—अमृतसर का ताबाब अमृतसर एक मुंसी का पन्य आभा मीठ थीर एक मिची कम्ठी थीर गिरती नहीं रेवासर में बने ठरते अमरनाथ में आप से आप बिह का करते हिमालय से कन्तर के जोड़े का के सबको दर्शन देकर बने करते हैं, क्या यह भी मानने योग्य नहीं ?

उ०—नहीं उस ताबाब का नाम मात्र अमृतसर है जब कभी ब्राम होना तब उसका ब्राम ब्राम होना। इससे उसका नाम अमृतसर ब्राम होना। जो अमृत होता तो पुराणियों के मानने के मुस्य • कोई क्यों मरता ? मिची की कुछ बबबा ऐसी होगी जिससे बमली होगी थीर गिरती न होगी। रीठ कन्म के पियन्दी होंगे अमय गयोवा होगा। रेवासर में वेवा ठरने में कुछ करीमती होगी अमरनाथ में बने के पहाड़ बनते हैं तो ब्राम पन के पन बिह का बनना कैन आन्य है ? कन्तर के जोड़े पाखित होंगे पहाड़ की पहाड़ में से पोपजी दोनत होना दिखला कर ठम्य ठरते होंगे ॥

प्र०—हरद्वार स्त्री का द्वार हर की पैरी में ब्राम बने तो पाप ब्राम करते हैं थीर तपोवन में रहने से तपस्वी होता। रेवासाय गङ्गोचरी में गोमुख उचरकम्ठी में गुप्त कम्ठी किमुनी गाराप्य के दर्शन होते हैं। केदार थीर ब्रमीबाराप्य की पन्य का महीने तक मनुष्य थीर का महीने तक रेवठा करते हैं। महारेश का मुख निधाय में पन्यपति ब्राम केदार थीर गुप्ताय में जानु थीर पन्य पनान्य में। इसके दर्शन स्पर्शन कान करन स मुक्ति हो जाती है। वही केदार थीर पदरी से स्पर्न जाय्य करते तो का सफ़ला है इत्यादि बातें कैसी है ?

उ०—हरद्वार उन्म स पहाड़ों में जाने का एक मार्ग का आरम्भ है। हर की पैरी एक स्थान का बिने कुण्ड की क्षीणियों का ब्रामा है। सब पन्य तो “हाडपैरी” है क्योंकि दश देवान्तर के मुक्तों के हाड उसमें पहा करता है। पाप कभी नहीं कभी पद सफ़ला बिना भोये अमय बनी ब्राम। “तपोवन उच दग्य

तब होया । अब तो "मिथुन" है । तपोवन में जाने रहने से तप नहीं होता किन्तु तप तो करने से होता है क्योंकि वहाँ बहुत से दुष्कर्मकार मूढ़ बोलने वाले भी रहते हैं । "हिमवतः प्रभवति गङ्गा" पहाड़ के ऊपर से जल गिरता है । गोमुख का जलधर पोप खीका से बगल होय और वही पहाड़ पोप का स्पर्श है । वहाँ उत्तरजम्बी आदि जगल जगलियों के बिले बगल है परन्तु दुष्कर्मकारों के बिले वहाँ भी दुष्कर्मकारी हैं । देवताग पुराण के गणेशों की खीका है अर्थात् वहाँ बलबलम्बा और गङ्गा मिथी है इसलिये वहाँ देवता बसते हैं । ऐसे जगोवे व जगों तो वहाँ नील जल और ऊपर नील बने । तुल्यजम्बी तो नहीं है वह तो प्रसिद्ध जम्बी है । तीन गुण की भूमी तो नहीं वीरजती परन्तु पोपों की एक बीज बीज की होगी । वैसे जगलियों की भूमी और पारिषों की जम्बारी उदित बगलती रहती है । तत्पुनः भी पहाड़ों के भीतर जम्बा गर्मी होती है उसमें तप कर बल जम्बा है । उसके पास दूसरे कुनड में ऊपर का जल वा जहाँ गर्मी नहीं वहाँ का छाया है । इससे उत्पन्न है केवल का स्वयं का मृत्ति बहुत बगलती है । परन्तु वहाँ भी एक जमे हुए पत्थर पर पोप वा पोपों के जेबों से मन्त्रिर जगल रक्का है । वहाँ महान्त पुन्यारी पढे जगल के जम्बे गाँठ के पुरों से जगल केवल विपदाजम्ब करते हैं । वैसे ही बहरीपराजम्ब में जगलिय जगले बहुत से बँडे हैं । 'राजजम्बी' वहाँ के कुनड है । एक की जेब जमेक की एक बँडे हैं । पहाड़ति एक मन्त्रिर और पहाड़ती मृत्ति का जम भर रक्का है । अब कोई व जगे तमी पोप खीका बलबलती होती है । परन्तु वैसे तीर्थ के जोग भूत जगले होते हैं वैसे पहाड़ी जोग नहीं होते वहाँ की भूमि बड़ी रमणीय और पवित्र है ॥

प्र — किन्त्याजल में किन्त्येवरी जगली जगमुखा जम्ब जल है । किन्त्येवरी तीन समज में तीन रूप बलबलती है और उसके बाहे में मन्त्री एक भी नहीं होती । प्रथम तीर्थराज वहाँ गिर मुकलने सिद्धि । पहा पमुखा के सज्जम में जल करने से जगल सिद्धि होती है वैसे ही जगोण्या कई बार बल कर सब बलती सहित स्वर्ग में बलती गई । मन्त्रा सब तीर्थों से जगलिक दुष्कर्मज खीका जगल और जेबजगल जगलजगल जगे जगल से होती है । सूर्य जगल में कुनडेल में जगलों मन्त्रियों का मेला होता है जगल वे सब जगल मिथ्या हैं ।

उ०—प्रथम तो जगलों से तीर्थों मृत्तियां वीरजती हैं कि पापज की मृत्तियां और तीन जगल में तीन प्रकार के रूप होने का कारण पुन्यारी जगलों के बल जगलि जगलजगल पहिराने की जगलई है और मन्त्रिजगली जगलों जगलों होती हैं । वैसे जगली जगलों से देवता हैं । प्रयाग में कोई जगलित श्रेष्ठ जगलवे जगल जगल पोपजी की कुनड जगल दके मुकलज कराने का माहात्म्य जगलया वा पगलजगल होगा । प्रयाग में जगल करके स्वर्ग को जाता तो खोज कर कर में जाता कोई भी नहीं बीरजता किन्तु घर की सब जगले हुए बीरजते हैं जगलया वा। कोई वहाँ जगल मरता और उसजगल जीव भी जगलजगल में जगल के साथ पूजकर जगल जेता जगल । तीर्थराज भी जगल पोपों से भर है । जगल में जगल प्रयागज जगली नहीं हो सज्जम । वह पहाड़ी जगलजगल जगल है कि जगलजगल जगली बलती कुनड जगे जगली जगल जगलजगल सहित

तीन बार स्वर्ग में गईं । स्वर्ग में तो नहीं गईं वहीं की वहीं है परन्तु पोपजी के कुछ गपोंकी मैं अयोग्य स्वर्ग को डर गई । यह गपोंका शब्द रूप उड़ता भिरता है । ऐसे ही मैमियारस्य आदि की भी पोपजीका जाकनी । मधुरा तीन डोक से पिराकी" तो नहीं परन्तु उसमें तीन बन्तु बने कीजाकारी हैं कि मिलके मारे बख खख और अन्तरिच में किसी को कुछ मिछना कठिन है । एक बोले की कोर्द खान करने जाय अपना कर लेने को कहे रहकर बकते रहते हैं । जाग्रो बखमाय । भोग मर्जी और खड्डू खखे पीछे । बखमाय की जय १ मन्त्रों । दूसरे बख में कहुने कष्ट ही करते हैं मिलके मारे खान करमा भी बष्ट पर कठिन पड़ता है । तीसरे अन्तरिच के ऊपर खख कुछ कम कष्ट पगड़ी टोपी गहने और बूते तक भी न बोर्ने कष्ट खखे पछा वे मिया मार खखे और वे तीनों पोप और पोपजी के केर्दों के फूलीय हैं । मर्जी कष्ट आदि बख कहुने और कष्टों को कष्ट गुण आदि और बोर्ने की इच्छा और खड्डूकी से उनके सेक सेक किया करते हैं और कष्टकाय बख या तब या अब केखापनक्य खडा खडी और गुण केडी आदि की कीजा किया रही है । किसे ही दीपमाखिक्य कम मेका गोर्द्वय और मन्त्रपत्र में भी पोपों की कल पवती है । कुम्बेय में भी खडी कीकिक्य की खीजा समख हो । इनमें जो कोर्द बार्मिक परेपनरी गुण है इस पोपजीका से एक हो जाय है ॥

प्र०—यह मूर्तिपूजा और तीर्थ सनातन से कबे करते हैं कूटे कर्बोर हो सम्य है ॥

उ०—तुम सनातन किसको करते हो ? जो सदा से बख जाय है । जो यह सदा से होता तो कै और आग्रहादि अपिमुक्तिस्तुतकी में इकल बख नहीं खडी ? यह मूर्तिपूजा अर्थात् तीन सख बर्ष के इधर २ बखमर्ती और मैमियों से खडी है प्रथम आर्वाकले में खडी थी और वे तीर्थ भी खडी थे । जब मैमियों ने गिरनार पाखिठम शिखर शम्भुजय और आर्वा आदि तीर्थ बखने उनके अन्तर्गत इन खोमों ने भी बख किया । जो कोर्द इनके आरम्भ की परीजा कन्य आर्गे वे पवती की पुरानी स पुरानी खडी और तीर्थ के पत्र आदि खेख देरें तो मिछन हो अकम कि वे सब तीर्थ पांचसी अथवा एक सख बर्ष स इधर ही बने हैं । सख बर्ष से उधर कम खेख किसी के पास खडी मिछता इसस अनुबिक है ॥

प्र०—जो १ तीर्थ का बख कम महाध्य अर्थात् किसे "अन्यदेव स्रुतं पापं कष्टोदेवे दितइति" इत्यदि बते हैं वे सखी हैं या नहीं ?

उ०—नहीं क्योंकि जो पाप कूट जाते हैं तो इरिदों को पय राजपट, कपों को अर्ध मिछ जाती कोकिनों का कोर्द आदि रोग कूट जाय पक्ष मरी होता । इसीने पाप पुनः किसी का नहीं कूटा ॥

प्र —गङ्गागङ्गेति यो धूपाद्योमनाया शतरपि ।

मुच्यत सवपापम्यो विष्णुकोटं स गच्छति ॥ १ ॥

हरिहरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ २ ॥

प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति ।

आत्मनःकृतं मध्याह्ने सायाह्ने समञ्जसमात् ॥ ३ ॥

इत्यादि श्लोक पोपपुराण के हैं । जो सैकड़ों सड़कों कोट दूर से भी मन्त्र २
कहे तो उसके पाप पड़ होकर वह किन्तु शोक अर्थात् वैकुण्ठ को जाता है ॥ १ ॥

‘हरि’ इन दो अक्षरों का नामोन्धारण सब पापों को हर लेता है । इसे ही राम
कृष्ण शिव मगलती आदि नामों का महात्म्य है ॥ २ ॥ और जो मनुष्य
प्रतोज्ज्वल में शिव अर्थात् शिव का उसकी मूर्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया
हुआ मध्याह्न में दर्शन से जन्म भर का सत्यज्ञान में दर्शन करने से सात जन्मों
का पाप बूट जाता है । यह दर्शन का महात्म्य है ॥ ३ ॥ क्या सूझ हो जायगा ?

उ०—मिथ्या होने में क्या कष्टा ? क्योंकि गद्या १ का हर राम कृष्ण
भारतवर्ष शिव और मगलती नामधरण से पाप कमी क्यों बूटता ? जो बड़े तो
हुन्नी कोई न रहे और पाप करने से कोई भी न करे । जैसे आत्मनः पोपबीजा
में पाप पतकर हो रहे हैं मूर्तों को बिसास है कि इस पाप का नामधरण का
तीर्थयात्रा करेंगे तो पापों की विवृति हो जायगी । इसी बिसास पर पाप करके इस
श्लोक और परलोक का भ्रम करते हैं पर किन्ना हुआ पाप मोगन्य ही पश्य है ॥

प्र०—तो कोई तीर्थ नामधरण सब है या नहीं ?

उ०—है केवादि सप्त शाकों का पश्य पश्य धार्मिक विद्वानों का सदा
परोपकार समानुद्धान योग्यभ्यास निर्द्वैत निष्कपट, सत्यमय सब का मान्य
सत्य करण प्रत्यक्ष आचार्य अतिथि माता पिता की सेवा परमेश्वर की स्तुति
प्रार्थना उपासना आदि त्रिभिन्नविधा सुशीलता धर्मसुख पुण्यार्थ, नाम विज्ञान
आदि शुभ गुण कर्म दुष्टों से तारनेवाले होने से तीर्थ हैं और जो जलजलमय हैं
वे तीर्थ कनी नहीं हो सकते क्योंकि जल परैस्तरस्ति तामि तीर्थामि” मनुष्य
जिब करके दुष्टों से तारे उमम नाम तीर्थ हैं । जल कल तलान्यसे नहीं किन्तु
दुष्टकर तारनेवाले हैं । मनुष्य बीज आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि
उनसे समुद्र आदि को तरल है ॥

समानतीर्थे यासी ॥ अ ४ । पा ४ । १ ८ ॥

ममस्तीर्थाय च ॥ अ ४ । म १६ । म ४२ ॥

जो मनुष्यारी एक आचार्य [के पास] और एक शास्त्र को स्वयं १ पढ़ने हो
वे सब सतीर्थे अर्थात् समानतीर्थे सेवी होने हैं । जो केवादि शास्त्र और
महाभाष्यादि धर्म छपखी में व्याप्त हो उसका अर्थात् पदार्थ देखा और उससे विद्य
धेनी इत्यादि तीर्थ कहा है । नामधरण इसका बहुत है कि—

पश्य माम मदराश ॥ अ ४ । म २१ । म २ ॥

परमेश्वर का नाम बड़े का अर्थात् धर्मसुख कर्मों का करण है । इस मन्त्र
परमेश्वर ईश्वर व्यावहारिक दृष्टात् सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर का गुण कर्म

स्वभाव से है। जैसे ब्रह्म सब से बड़ा परमेश्वर ईश्वरी का ईश्वर ईश्वर सामर्थ्यशुद्ध, स्वायत्तकारी कभी सम्पन्न नहीं करता ब्रह्माह सब पर कृपायुक्ति रक्त्य सर्वशक्तिमान् अपने सामर्थ्य ही से सब कर्मों की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता सद्भाव स्थिति का नहीं होता ब्रह्मा विविध कर्मों के पक्षों का ब्रह्मण्यद्वारा विष्णु सब में व्याप्त होकर रहा कर्म्य महादेव सब पक्षों का स्वयं ब्रह्म प्रकृत्यद्वारा आदि कर्मों के अपने को अपने में धारण करे धर्मों से बड़ा हो समर्थ में समर्थ हो, समर्थों को बहाता बाध, अधर्म कभी न करे सब पर दया रखे, सब प्रकार के साधनों को समर्थ करे शिष्टाचार से नाश प्रसार के पक्षों को ब्रह्मण्य सब संसार में अपने धर्मों के तुल्य शुद्ध दुष्ट समये, सब की रक्षा करे विद्याप्रेम में विद्वान् रहने, दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों का प्रत्यक्ष से दण्ड और सबको की रक्षा करे इस प्रकार परमेश्वर के धर्मों का धर्म ब्रह्मण्य परमेश्वर के शुद्ध कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने शुद्ध कर्म स्वभाव को करते बाध हो परमेश्वर का धर्मप्रसार है ॥

प्र०—गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्पितृगुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुरेव परे ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सदा है। गुरु के पा पाके पीन्य किसी आशा कर कैसा कर्म गुरु होमी हो तो समर्थ के समर्थ कभी हा तो गरमिह के सरय मोही हा तो राम के तुल्य और कभी हा तो कृष्ण के समान गुरु को ज्ञान्य । आदि गुरुजी कैसा ही पाप करें तो भी ब्रह्मा न करनी क्षम्य का गुरु के दर्शन को जाने में पर २ में अधर्मेव का प्रस होता है वह बात ठीक है या नहीं ?

उ०—ठीक नहीं ब्रह्म विष्णु महेश्वर और परमेश्वर परमेश्वर के धर्म हैं । इसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकत वह गुरुमाहात्म्य गुरुस्थिती भी एक पक्षी पापकीटा है गुरु तो माता पिता ब्रह्मण्य और अतिथि होते हैं । उनकी सेवा करनी उनके विषय विज्ञा करनी देनी शिष्य और गुरु का धर्म है । परन्तु जो गुरु खोमी कोही मोही और कभी हो तो उसकी सर्वेय बोध देना विज्ञा करनी सबक विज्ञा से न माने तो कर्म पाप धर्मों का ब्रह्मण्य दण्ड प्रत्यक्षरय एक भी करने में कुछ दोष नहीं । जो विषय सगुणों में गुरुत्व नहीं है [पुरुष मायाधर] पूर्युक्त कर्मों विज्ञा केवलिकर मन्त्रोपदेश करने वाले हैं न गुरु ही नहीं किन्तु पक्षिण हैं । जैसे पक्षिण पक्षी के ब्रह्मण्य से ब्रह्मण्य से प्रयोजन विज्ञा करते हैं जैसे ही शिष्यों के केले केले के धर्म हर के धर्म प्रयोजन करते हैं वे—

बोहा—गुरु खोमी ब्रह्मा काकाजी, दोनों खोई दण्ड ।

महसागर में डूबत बैठ पत्थर की भाव ॥

गुरु समर्थ कि केले-केली पुत्र न डूब रहे हैं ही और केला समर्थ कि ब्रह्म ॥ ब्रह्म सीमान्त करने पाप दुष्टान् आदि काकाध ध दोनों कर्मशुद्धि मन्त्रसार के शुद्ध में डूबत हैं जैसे पत्थर की नील में केलेकाजे सगुण में डूब मरते हैं । ऐसे गुरु और केली के शुद्ध पर ब्रह्म एक पक्ष । उसके पास कोई ब्रह्म भी न रह

जो रहे वह दुःखस्थान में पहुँचे। जैसी पोपखीका पुनरी पुराखियों ने बताया है
जैसी हम गहरिने गुहरी ने भी खीका मचाई है। यह सब काम ल्यायी खोमी का
है। जो परमायी खोमी है वे आप दुःख पावें तो भी कम्बु का उपकार करवा नहीं
घोड़ते और दुःखप्रहात्म्य तथा तथा दुःखीता आदि भी इन्हीं खोमी कुम्भी
गुहरी ने बताया है ॥

प्र०—अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥

इतिहासपुराणस्याम्नां वेदार्थमुपबृंहयत् ॥ २ ॥ महाभारते ॥

पुराणस्याभिधानि च ॥ ३ ॥ मनु अ १। श्लोक २३२ ॥

इतिहासपुराणं पञ्चमो वेदानां पदः ॥ ४ ॥ श्री प्र ०। पं० १ ॥

इत्येवमिह निश्चितपुराणस्याभिधानं ० ॥ ५ ॥

पुराणविद्या के ० ॥ ६ ॥ सूत्र ॥

अथरह पुराणों के कर्ता व्यासजी हैं। व्यासमन्त्र का प्रमाण अथरह का
आदि ॥ १ ॥ इतिहास महाभारत अथरह पुराणों से वेदों का अर्थ पढ़ें वहाँ
जहाँकि इतिहास और पुराण वेदों ही के अर्थ अनुसृत हैं ॥ २ ॥ पितृकर्म में
पुराण और सिद्ध अर्थात् हरिर्धन की कथा सुनें ॥ ३ ॥ इतिहास और पुराण
पञ्चमवेद कहते हैं ॥ ४ ॥ अथर्ववेद की समाप्ति में अथर्व दिन बोधी ही पुराण
की कथा सुनें ॥ ५ ॥ पुराण सिद्ध वेदार्थ के अर्थ ही से वेद हैं ॥ ६ ॥ इत्यदि
प्रमाणों से पुराणों का प्रमाण और इन के प्रमाणों से सृष्टिपूजा और तीर्थों का भी
प्रमाण है क्योंकि पुराणों में सृष्टिपूजा और तीर्थों का विधान है ॥

प्र०—जो अथरह पुराणों के कर्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोंरे न
होते क्योंकि शारीरिकसुख भोगप्राप्त के आनन्द आदि व्यासजी प्रणों के देखने से
विहित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सम्यग्विधि पार्थिव योगी थे। वे देवी
मिथ्या कथा कमी न देखते और इससे वह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायों
परस्पर विरोधी लोगों ने भाग्यवादिक पक्षीय करोड़कल्पित प्रमाण बताये हैं, उनमें
व्यासजी के गुणों का कुछ भी नहीं था और वेदशास्त्र विद्वान् असम्यक् विचार
व्यास सत्त विद्वानों का काम नहीं किन्तु वह काम विरोधी ल्यायी, अविद्वान्,
धर्मों का है। इतिहास और पुराण विद्वान्पुराणकारि का काम नहीं किन्तु—

प्रमाणानुगतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथान्तरासीरिति ॥

वह अथरह और सूत्रों का बचन है। फेरब शतपथ स्वयं और मोपन
अथरह प्रणों ही के इतिहास पुराण कल्प गाथा और अथरहसी ने पांच काम
हैं। (इतिहास) जिस जनक और वाञ्छकत्व का सचाई। (पुराण) उग्रदुष्टि
आदि का बर्णन। (कल्प) वेद शतों के सामर्थ्य का बर्णन अर्थात् विरूपण
करना। (गाथा) किसी का दृष्टान्त दाहान्तकप कथा प्रसंग कल्प। (अथरहसी)
भक्तियों के प्रार्थनात्मक या आदर्शवादीय कर्मों का कथन करना। इन्हीं छ वेदार्थ का

बाध होता है। पितृकर्म अथवा आधियों की प्रार्थना में कुछ सुगन्ध अथवा चन्दन के अन्त में भी इन्हीं का सुगन्ध छिड़ा है क्योंकि जो व्यासकृत ग्रन्थ है उनका सुगन्ध सुगन्ध व्यासजी के जन्म के पश्चात् हो सकता है पूर्ण नहीं। जब व्यासजी का जन्म भी नहीं था तब वेदार्थ का पक्ष पक्ष सुगन्ध सुगन्ध थे। इसलिये सब से प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों ही में यह सब प्रमाण हो सकता है। इन सभी कथों के विषय श्रीमद्भागवत शिष्टपुराणवि मिथ्या का दूषित ग्रन्थों में नहीं हो सकता। जब व्यासजी ने वेद पर और पश्चात् वेदार्थ के आशय इसलिये उनका नाम 'वदन्नास' हुआ। क्योंकि व्यास कहते हैं बार बार की मरण रक्षा को अर्थात् ब्रह्मर के आत्मन से अन्तर अथवा क पार परमेश्वरों का वह पक्ष में और ब्रह्मदेव तथा त्रिमूर्ति आदि शिष्टों को पक्षों की वे नहीं तो उनका जन्म का मत "कल्पवृक्ष" था। जो कोई यह कहते हैं कि नहीं के व्यासजी ने इन्हें कैसे यह बात सूझी है क्योंकि व्यासजी के पिता पितामह पितामह, परापर शक्ति विविध और मन्त्र आदि ने भी नहीं यह पक्ष में। यह बात नहीं कर सकते।

प्र०—पुराणों में सब क्यों सूझी है वह क्यों सभी भी है ?

उ०—बहुतसी बातें सूझी हैं और कोई पुराणकारक स सभी भी है। जो सभी है वह वेदवि सम्प्रदायों की और जो सूझी है वे इन पक्षों के पुराणकर्म पर की है। जिस शिष्टपुराण में शिष्टों ने शिष्ट को परमेश्वर मान के विष्णु प्रमाण इन्द्र गन्धर्व और मूर्त्तियों को उनके हास धराये। विष्णुओं ने विष्णु पुराण आदि में विष्णु को परमात्मा माना और शिष्ट आदि को विष्णु के हास। श्रीमद्भागवत में वेदों को परमेश्वरी और शिष्ट विष्णु आदि को उसके किन्नर बनाये गन्धर्वकण्ड में मन्त्र को इन्द्र देव सबको हास कराये। भगवान् यह बात इन सम्प्रदायों पक्षों की नहीं तो किन्हीं है ? एक मनुष्य ८ क कथने में वेदों परस्पर विद्वद् बात नहीं होती तो शिष्टों के बनाये में कभी नहीं था सकता। इसमें एक बात का सभी मानें ता दूसरी सूझी और जो दूसरी कर सभी मानें ता तीसरी सूझी और जो तीसरी कर सभी मानें ता जन्म सब सूझी होती है। शिष्टपुराणकर्म शिष्ट स विष्णुपुराणकर्मों ने विष्णु स श्रीपुराणकर्मों श्री स मन्त्रपुराणकर्मों ने गन्धर्व स मूर्त्तपुराणकर्मों ने मूर्त्त स और वायुपुराणकर्मों स वायु स गृहि की उत्पत्ति प्रमाण विष्णु के पुत्र एक २ स एक २ जो जगत् का कारण किन्हीं उनकी उत्पत्ति एक २ स किन्हीं। कोई एक कि जो जगत् की उत्पत्ति शक्ति प्रमाण करनेवाला है वह उत्पन्न और जो उत्पन्न होता है वह गृहि का कारण कभी हो सकता है या नहीं ? तो अन्त पुत्र रहने के सिवाय कुछ भी नहीं कह सकते और इन सब के शरीर की उत्पत्ति भी इसी स हुई होगी कि न आप गृहि पक्षों और परिशिष्टों द्वारा संसार की उत्पत्ति के कर्ता नहीं कर सकते हैं ? और उत्पत्ति भी विद्वद् २ प्रमाण स मानें है जो कि सर्वथा असम्भव है कि—

शिष्टपुराण में शिष्ट ने इच्छा की कि मैं गृहि कर तो एक नारायण उदाहरण (स) उत्पन्न कर उसकी शक्ति स अन्त अन्त में स मन्त्र उत्पन्न हुआ। उसने दया

कि सब ब्रह्मन्त्र है । सब की ब्रह्मन्त्रि अत्र एक जग में पड़क ही । उससे एक ब्रह्मन्त्र अत्र और ब्रह्मन्त्र में से एक पुण्य उत्पन्न हुआ । उससे ब्रह्म ने कहा कि हे पुत्र ! सृष्टि उत्पन्न कर । ब्रह्म ने उससे कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं किन्तु तू मेरा पुत्र है । अर्धे विचार हुआ और विष्णुसहस्र वर्ष पर्यन्त दोनों जग पर कक्षत रहे । तब महादेव ने विचार किया कि जिसको मैंने सृष्टि करने के लिये भेजा था वे दोनों आपस में लड़ पड़ा रहे हैं । तब ब्रह्म दोनों के बीच में से तेजोमय शिख उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र आपस में चला गया उसको इसके दोनों सामर्थ होना । विचार कि इसका आदि अन्त अन्त अन्तिये । जो आदि अन्त से ही शीघ्र जाने वह पिता और जो पीछे का पाह लेके न जाने वह पुत्र कहा । किन्तु पूर्व का स्वप्न भर के बीच को चला और ब्रह्म हंस का शरीर धारण करके ऊपर को उठा । दोनों मनोकाम से चले । विष्णुसहस्र वर्षपर्यन्त दोनों चघते रहे तो भी उसका अन्त न पाया । तब नीचे से ऊपर किन्तु और ऊपर से नीचे ब्रह्म ने विचार कि जो वह देवा के से जाया होय तो मुझको पुत्र कल्या परोय । ऐसा सोच रहा था कि उसी समय एक गन्ध और केतकी का दूध ऊपर से उतर आया उससे ब्रह्म ने पूछा कि तुम क्यों से आये ? उन्होंने कहा हम सदाका वर्षों से इस शिख के आचार से चले आते हैं । ब्रह्म ने पूछा इस शिख का पाह है या नहीं ? उन्होंने कहा कि नहीं । ब्रह्म ने उनसे कहा कि तुम हमारे साथ चलो और ऐसी छाड़ी देना कि मैं इस शिख के तिर पर तुम की चारा बसाती की और दूध चले कि मैं दूध बसाता था ऐसी छाड़ी देओ तो मैं तुमको दिखाने पर से चले । उन्होंने कहा कि हम खुदी साची नहीं होंगे । तब ब्रह्म दुःखित होकर बोला जो छाड़ी नहीं देओगे तो मैं तुमको जमी मरान कर देता हूँ । तब दोनों ने कर के कहा कि हम वैसी तुम चले हो वैसी छाड़ी देखिये । तब तीनों नीचे की ओर चले । किन्तु प्रथम ही जाग्ये ने ब्रह्म भी पहुँचा । किन्तु से पूछा कि तू पाह से जाया या नहीं ? तब किन्तु बोला मुझको इस का पाह नहीं मिला ब्रह्म ने कहा मैं से जाया । किन्तु ने कहा कोई साची देओ । तब तब और दूध ने साची दी । हम दोनों शिख के तिर पर थे । तब शिख में से शब्द निकला और दूध को शाप दिया कि जिससे तू मूढ़ बोला इसलिये तब दूध मुझ का अन्त देखता पर जगत् में नहीं नहीं करेय और जो कोई क्लान्त्य उसका सम्मानात् होय । तब को शाप दिया कि जिस मुझ से तू मूढ़ बोली उसी से बिदा काय करगी । तब मुझ की पूजा कोई नहीं करेय किन्तु पूष की करेय और ब्रह्म को शाप दिया कि जिसस तू मिथ्या बोला इसलिये तारी पूजा संस्कार में नहीं नहीं होगी और किन्तु को कर दिया कि जिसस तू सत्य बोला इसस तारी पूजा सर्वत्र होगी । पुनः दोनों ने शिख की श्रुति की । उसस प्रसन्न होकर उस शिख में से एक अत्यन्त मूर्ति निकल आई और कहा कि तुमको मैंने सृष्टि करण के लिये भेजा था च्छादे मैं नहीं खम रह । ब्रह्म और किन्तु ने कहा कि हम बिना सामादी मूर्ति क्यों से

करें । तब महादेव ने अपनी कटा में से एक भस्म का गोला निकाल कर दिया कि जाओ इसमें से सब सृष्टि कथ्यको हल्यदि । मखा कोई हम पुराणों के बगनेवाले पोपीं स पड़े कि जब सृष्टित्त्य और पञ्चमहाभूत भी नहीं वे तो ब्रह्म किन्हु महादेव के शरीर जख कमख छिद्र गाय और केतकी का वृक्ष और भस्म का गोला क्या तुम्हारे बाप के घर में से आ गिरे ?

वैत ही भगवत् में किन्हु की नासि से कमख कमख से ब्रह्मा और ब्रह्म क रहिने पा क चमड़े से स्थानंमुख और बाँवें चमड़े से समरूपा राखी ब्रह्मर से ब्रह्म और मरीचि घादि ब्रह्म पुत्र इससे ब्रह्म प्रत्यपति इनकी तरह सबकिरीं का निबह कल्प स दबमें से दिति से देव हनु से वाक्य अविति से अद्विज किन्हा से पची कमु स सर्प सरमा स कुचं क्यक घादि और अन्न किरीं से हाथी बोरे अंड, गधा मैसा बास फूस और बबूख घादि ब्रह्म कति सहित उत्पन्न हो गले । यह रं यह ! भगवत् के बगनेवाले काकपुच्छक ! क्या कह्य तुमको देसी ? मिथ्या बातें दिखने में ललिक भी ब्रह्म और सरम न चार्ह, निर्रज जन्मा ही बन पया । मखा की पुरुष के रजनीर्ष के संयोग से मनुज्य तो बनते ही हैं परन्तु परमेश्वर की सृष्टिभ्य के बिना पण पची सर्प च्यदि कमी उत्पन्न नहीं हो सकते और हाथी अंड, सिंह कुच गवा और बूछादि का की के गर्भाशय में निष्ठ होने का अल्यार भी नहीं हो सकता है और सिंह च्यदि उत्पन्न होकर अपने मां बाप को नहीं न बगने और मनुज्य शरीर स पण पची बूछादि का हाथ सर्वोत्तर सम्य हो सकता है ?

बिचार है पोप और पापपणित इस महा असम्य कीका को जिसने सप्तर को अभी तक जमा रक्खा है । मखा हम महा सूड बातों को वे अपने पोप और बाहर भीतर की कुटी जाकों बाहे उनके केष्ट छुक्ते और भावत हैं कहे ही आत्मर्ष की बात है कि वे मनुज्य हैं वा अन्य कोई ! ! ! इस भाव्यतादि पुराणों के बगनेवाले नहीं नहीं गर्म ही में नष्ट हो गले वा ज्यस्त सम्य मर नहीं न गले ? क्योंकि हम पोपीं से बचत तो आत्मावर्त देव दुनों स बन जाता ॥

प्र०—इस बातों में शिरोष नहीं का सकता क्योंकि जिसका किबह उली का गीत” जब किन्हु की कृति करने खगे तप किन्हु को परमेश्वर अन्न को बास जब शिष के गुड गने खग तप शिष का परमात्मा अन्न को किंकर बभ्य और परमेश्वर की माया में सब बन सकता है । मनुज्य से पण च्यदि और पण स मनुज्यदि की उत्पति परमेश्वर कर सकता है । वंहा ! किन्हु करख अपनी माया से सब सृष्टि कही कर दी है । उधमें कीकसी बात अपणित है ? जो कर्म्य चाहे खो सब कर सकता है ॥

उ०—अरे मोख जांगा ! बिबाह में जिसके गीत गत है उसका सबसे बड़ा और दूसरे को बोधा वा मित्र अल्य उसका सब का बाप तो नहीं बघत ? कहा पोपजी ! तुम भ्यर और कुतामयी चारनों स भी बहकर अपनी हा अपना नहीं ? कि जिसके पांडू खगे उली को सबसे बड़ा कयाका और जिससे शिरोप

करो उसके सब से नीच खराबो । तुम्हो सब और धर्म से बड़ा प्रबोधन । किन्तु तुम्हो तो अपने स्वार्थ ही से काम है । माया अनुष्ण में हो सकती है । जो कि कभी कभी है उन्हीं को मायाही कहते हैं । परमेवर में कुछ कष्टादि दोष न होने से उसको मायाही नहीं कह सकते । जो प्राणि पृथि में कल्प और कल्प की कियों से पट्ट पड़ी सपने बुझादि हुए होते तो व्याधकाल भी ऐसे सत्यान नहीं होते ? चहिकम जो पहिले छिप जाये कही छीक दे और अनुमाप है कि पोपजी नहीं से बोझ काकर बहके होंगे—

तस्मात् काश्यप्य इमां प्रजा ॥ तत ॥ ५ । १ । १ । २ ॥

यतपय में यह किन्तु है कि यह सब छवि कल्प की कथाई हुई है ॥

काश्यप' कस्मात् पश्यको भवतीति ॥ विद ॥ १ । २ । २ ॥

छहिकता परमेवर का नाम कल्प इसलिये है कि परमक धर्मात् 'पश्यतीति पश्य' पश्य एव पश्यक' जो निर्भ्रम होकर कदाचर जागू सब जीव और हृदये कर्म सत्त्व विद्याओं को बचावत् देखता है और 'आद्यन्तयिपयश्च इह महान्यस्य के वचन से प्राणि का चरर अन्त और अन्त का कर्म प्राणि में घाने से परमक' से कल्प' बन गया है । इसका धर्म न ज्ञान के भाग के छोटे बड़ा अपय जन्म छहिकिक कल्प करने में यह किन्तु ॥

जैसे मार्कण्डेयपुराण के द्रुमापाद में देवी के शरीरों से तेज त्रिकस के एक देवी बनी उसने महिषासुर को मारा । रत्नबीज के शरीर से एक किन्तु धूमि में पक्षमे ल उसने सच्छ रत्नबीज के उत्पन्न होने से सब जगत् में रत्नबीज भर जगत् अधिर की नदी यह बसनी प्राणि गणोंसे बहुत से शिखर बन है । जब रत्नबीज से सब जगत् भरपय का तो देवी और देवी का सिद्ध और उसकी सत्य कहा रही थी ? जो कहा कि इसी से दूर २ रत्नबीज से तो सब जगत् रत्नबीज से नहीं मरा या ? जो भर जात्य तो पट्ट पड़ी मनुष्यादि प्राणी और जलकम मगर मनुष्य कल्प मत्स्यदि वन्तपति प्राणि कुछ कहा रहते ? कहा कही निमित्त ज्ञानय कि द्रुगापाद कथनेवाले पोप के घर में भ्रमकर बसे गये होंगे । । । देखिये क्या ही असमम कथ का गणोका भद्र की खहरी में उवाच्य त्रिकस और न किमय ॥

जब त्रिकको "भीमज्जागमत" कहते हैं उसकी खीछा सुनो । मध्यजी का पराचय मे अनुश्रुकी भाषक का उपस्था किन्तु—

ज्ञानं परमगुह्यं न यद्विज्ञानसमन्वितम् ।

सरहस्यं तद्वज्रं च धृष्टान् गदितं मया ॥

भाग स्क १ । अ ५ । भाक १ ॥

जब भगवान का मुख ही सूझ है तो उसका कुछ नहीं न भूझ होम ?

धर्म - इ मध्यजी ! तू मया परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्यबुद्ध और धर्म धर्म काम माह का चट्ट है उसी को मुख से प्रवच कर । जब विज्ञानगुह्य

० यतपय में निम्न पाठ भेद है—सर्वाः प्रजाः कल्पय इति ॥ त ॥

ज्ञान कहा तो परम अथाह ज्ञान का विशेषण रचना कार्य है और गुण विशेषण स
रहस्य भी पुनरुक्त है। जब मूक शोक अनर्थक है तो अन्ध धारणक क्यों नहीं ?
प्रश्नवाची को बर दिया कि—

ममाम् कस्यविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥

भाग्य स्कन्ध १। अ. ३। श्लोक ३६ ॥

आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रपञ्च में भी मोह को कभी न प्राप्त होने ऐसा
विश्व के पुनः दृश्य स्वरूप में मोहित होने काहरण किया। इन दोनों में स
एक वस्तु सभी दूसरी नहीं। ऐसा होकर दोनों बात भूरी। जब वैकुण्ठ में राजा
शेष शेष ईश्वरी गुण नहीं है तो सनकसिद्धि को वैकुण्ठ के द्वार में शेष क्यों
हुआ ? जो शेष हुआ तो वह स्वर्ग ही नहीं। तब जब विजय द्वारपात्र थे।
स्वामी की आकाश पात्रकी अवस्था थी। उन्होंने सनकसिद्धि को रोक्क तो क्या
अपराध हुआ ? इस पर किस अपराध काप ही नहीं लगा सकता। जब आप शत्रु
कि तुम पृथिवी में मिल पड़ो इसके करने से वह सिद्ध होता है कि वहाँ पृथिवी
न होगी। आकाश बहुत अग्नि और बल होगा तो ऐसा द्वार मन्दिर और जल
मित्रके आधार थे ? पुनः जब विजय ने सनकसिद्धि की सृष्टि की कि महाराज !
पुनः हम वैकुण्ठ में क्या आये ? उन्होंने अपने कहा कि जो प्रेम स वाचस्पति की
भक्ति करो तो सर्वत्र अन्ध और वा मित्र स भक्ति करने तो तीसरे अन्ध
वैकुण्ठ को प्राप्त होओगे। इसमें विचारवा चाहिये कि जब विजय वाचस्पति के
भीतर थे। उनकी रक्षा और सहाय करवा वाचस्पति का कर्तव्य क्या था। जो अपने
भीतरों का बिना अपराध हुआ क्यों उनकी अवस्था स्वामी दत्त न दत्त तो उसके
तीसरी की दुर्गता सब कोई कर सके। वाचस्पति को उचित था कि जब विजय
म स्वामी और सनकसिद्धि को शत्रु दत्त का नहीं कि उन्होंने भीतर अपने के
केवे इत क्यों किया और भीतरों स सब क्यों ? आप (क्यों) दिया उनके
दत्त सनकसिद्धि को पृथ्वी में बाध देना वाचस्पति का क्या था। जब इतना
प्रबल वाचस्पति के कर में है तो उसके शत्रु को कि विजय कहते हैं उनकी मित्रकी
दुर्गता हो अवनी नहीं है ॥

पुनः वे हिरण्यक और हिरण्यकल्प उपलब्ध हुए। उनमें स हिरण्यक को
बराह ने मारा। उसकी कथा इस प्रकार स सिद्धि है कि वह पृथ्वी को बराह के
समान खड़े गिराने पर सो गया। विष्णु ने बराह का स्वरूप धारण करके उसके
शिर के नीचे स पृथ्वी को मुख में धर लिया। वह उस दोनों की बराह हुई।
बराह ने हिरण्यक को मारबाधा। इन दोनों स कोई पूछ कि पृथिवी गात्र है या
बराह के सग्न ? तो कुछ न कह सके क्योंकि वैराग्यिक योग भूयोऽनिरूप्य के
शत्रु है। भवा जब खपेट कर गिराने परकी आप किस पर सोच ? और बराह
किस पर पग धर के बीच आये ? पृथिवी को तो बराहजी ने मुख में रखकी फिर
दोनों किस पर लड़े लड़े लड़े ? वहाँ ता और कोई दूरने की जगह नहीं थी किन्तु
मागध्यानि पुराण बगानेबासे पापजी की लुटती पर लड़े लड़े लड़े होंगे ? परन्तु
पोषजी किस पर साधा होमा ? यह बात इस प्रकार की है इस "गप्पी के घर

गप्पी जाने बोले गप्पीजी" जब मिथ्याचारियों के घर में दूसर गप्पी बोल जाते हैं फिर गप्प मारने में क्या कमती ! अब रहा हिरण्यकश्यप उसका कथन जो प्लुता था वह भक्त हुआ था । उसका पिता पहले का पाठशाळा में मेस्टर था । तब वह भण्डारपकी स कहता था कि मरी पढ़ी में राम २ शिक्षा देओ । अब उसके बाप ने मुझा उससे कहा तु इमार राजा का मजदूरी करता है ? हमने ने न माना । तब उसके बाप ने उसको बाँव के पहाड़ से गिराया रूप में अक्ष परणु उसको कुछ न हुआ । तब उसने एक छोटे का लम्मा चागी में तथा के उससे बोला—जा तेरा इतनेव राम सखा हो तो तु इसको पकड़ने से न अछेव । प्लुता पकड़ने को कहा—मम मैं राजा हुई अबने से लूँगा न गही ? चारण्य ने उस लम्मे पर झेटी २ बीठियों की पंक्ति कहाई । उसको भिन्न हुआ—वह लम्मे को का पकड़ा । वह पक गया । उसमें से मुसिह निकला और उसने वह को पकड़ के चमक बाँधा । प्लुता प्लुता को काह से चमके लाग । प्लुता से कहा कर मांग । उसने अपने पिता की सङ्गति हाँकी मानी । मुसिह ने कर दिया कि तेरे इच्छीत पुत्र सङ्गति को गले । अब देखो ! वह भी दूसर गप्पों का भाई गप्पों का है । किसी भगवत मुखने का बाँकेबन्धने का पकड़ के ऊपर से मिताने तो कोई न बचाने चमकाकर होकर मर ही जान । प्लुता को उसका पिता पहले के छिने मेकता का क्या हुआ कम किया था ? और वह प्लुता देता मुँह, पकड़ जोड़ बिनागी होकर चहता था । जो बसते हुए लम्मे से कीची चमके लगी और प्लुता स्पर्त करने से न जका इस बात को जो सची माने उसको भी लम्मे के छत्र लगा देना चाहिये जो वह न जके तो बाबा वह भी न जका होकर और मुसिह भी नहीं न जका ! प्रथम तीसरे लम्मे में हैकुछ में जाने का कर सत्यचरित्र का था । क्या उसको मुसुदा नारत्यक भूषण गया ? भगवत की रीति से प्रथम प्रत्यपति कश्यप हिरण्यक और हिरण्यकश्यप बीबी पीपी में होता है । इच्छीत पीपी प्लुता की हुई भी नहीं पुनः इच्छीत पुनः सङ्गति को गले वह देना भित्ति प्रमाद है ! और फिर वे ही हिरण्यक हिरण्यकश्यप रत्यक कुम्भकरक पुनः विद्यापात्र कश्यपक उग्रक हुए तो मुसिह का कर कहा उग्र गया ? मुँही प्रमाद की चर्तें प्रमादी लम्मे सुकते और लम्मे हैं बिनाही नहीं ॥

और चमुरची:—

रथेन वायुचरेण ॥ अमर लक्ष० १ । ५ अ ३४ । श्लोक ३८ ॥

अनाम गोकुल प्रति ॥ अमर लक्ष० १ । ५ अ ३८ । श्लोक २९ ॥

चमुरची लक्ष के देखने से वायु के कैा के समान होकरने लक्षे बोहों के रूप पर कैा के सुर्वोच से लक्षे और चार मील गोकुल में सुर्वोत्त समय पहुँचे अमर बोहों भगवत लक्षने लक्षे की परिक्रमा करते रहे होंगे ? वह मर्गा भूषकर भगवत लक्षने लक्षे के घर में बोहों हाँकने लक्षे और चमुरची चमुर सोमने होंगे ।

पुनः का करीर का कोरा बीबा और बहुतसा लम्मा शिक्षा है । मधुरा और गोकुल के बीच में उसको मारकर श्रीकृष्णजी ने बाँध दिया । ऐसा होता तो मधुरा और गोकुल दोनों दक्कर इस पोपजी का घर भी दूब गया होता ॥

और अन्तर्मेख की कथा उपपत्ति सिद्धी है—उसमें शारद के कहने से अपने
हृदयके उस क्षण ‘शारदम्ब’ उत्पन्न था। मस्ते धमन अपने पुत्र को पुष्करा। नीच
में शारदम्ब बूढ़ पड़े। तथा शारदम्ब उसके अन्तःकरण के स्थान का नहीं जानते थे
कि वह अपने पुत्र का पुष्करता है, सुझावों नहीं? जो ऐसा ही नाम महात्म्य है
तो आत्मकर्म भी शारदम्ब करके-अर्थों के बुद्धि बुझाने का क्यों नहीं चाते?
यदि यह बात सही हो तो कैसी लोग शारदम्ब व करके क्यों नहीं पूछ जाते?
ऐसा ही स्वातिप् शास्त्र सं विद्वद् मुनेष पर्यंत का परिमाण सिद्धा है और
विप्लव राज के रथ के चक्र की छोक सं समुद्र हुए, उजास छोड़ि मात्र
प्रियंशी है। इत्यादि मिथ्या बातों का गयोवा जगत् में सिद्धा है जिसका
अर्थ परामर्श नहीं ।

और यह मनुष्य वाक्य का अन्त है जिसके माई जगद्व ने धीमोहिम्न कहा है। देखो! उसने यह शोक अपने अन्तरे हिमाद्रि नामक स्थल में लिखे हैं कि भीमजगद्वपुष्प मैंने बनाया है। उस शब्द के तीसरे पत्र हमारे पास है। उनमें से एक पत्र खामया है। उस पत्र में शोर्मी का जो अन्तर्गत ना उस अन्तर्गत के हमने दो शोक अन्त के नीचे लिखे हैं जिसको देखना हो वह हिमाद्रि स्थल में देख लो—

हिमाद्रौ सन्निवस्यार्थं सुखेन निवसेत्पुनः ।

स्वर्गधाऽप्यायक्यानां च यद्यमार्य समासतः ॥ १०

भीमद्वाग्वर्तं नाम पुरातनं च स्मरितम् ।

विदुषा बोधद्वयेन श्रीकृष्णस्य यशोभिद्यम् ॥ २ ॥

इसी प्रकार के महपन्न में श्लोक के अन्तर्गत राजा के सन्निहित हिमाद्रि ने बान्धव पवित्र से कहा कि मुझ को तुम्हारे कपाड़े श्रीमन्नगम्भार के सम्पूर्ण सुवर्ण का समकल्प नहीं है इसलिये तुम संशय से श्लोकवत् सुचीपत्र कपाड़ो बिलम्बे रूप के मैं श्रीमन्नगम्भार की कला का संशय से जान लूँ। सो गोत्रे विद्या हुआ सुचीपत्र इस पादोत्तर ने बतलाया। उसमें छंद इस महपन्न में १ श्लोक लो गये हैं अर्थात् श्लोक स विद्या है ने गोत्रे विद्या श्लोक सब वाक्यान्त ने बतला है वे—

सोध्यन्तीति हि प्राहुः भीमव्यागवत् पुनः ।

पञ्च प्रज्ञा शीतकस्य सूतस्याधोत्तरं त्रिषु ॥ ११ ॥

प्रसाधतारण्योच्चेय व्यासस्य विभूतिः कृतास्तु ।

गारुडस्यात्र हेतुकिः प्रतीक्ष्यर्थे कश्चन च ॥ १२ ॥

सुखं प्रीत्यमिष्यस्वदत्तात्पाण्डवा वनम् ।

भीष्मस्य स्वप्नप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारिष्ठागमः ॥ १३ ॥

अस्तु परीक्षितो ज्ञान घृतराष्ट्रस्य निगमः ।

कृष्णमर्त्यस्य गच्छा ततः पापमहापथः ॥ १४ ॥

इत्यप्रादुर्गमि पाँदरण्यात्पाथ क्रम्यात् स्मृतम् ।

सपरम्पतिरन्धावं स्फीतं राज्यं ब्रह्मो नृप ॥ १५ ॥

इति कैराडो वाक्यान्तौ प्रोक्ता प्रोक्षिज्यावय' ।

इति प्रथमः स्कन्धः ॥ १ ॥

इत्यादि बारह सर्गों का सूचीपत्र इसी प्रकार बोधार्थ पवित्रत न बरकर हिमाद्रि सन्धि को दिया । जो विस्तार देकरा चाहे वह ओकांश के बगले हिमाद्रि प्रथम में देख लेवे । इसी प्रकार ग्रन्थ पुराणों की भी खीका समझनी परम्पु उड़ीस बीस इड़ीस एक दूसरे से बरकर हैं ॥

देखो ! श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अधुत्तम है । उनका गुण कर्म स्वभाव और चरित्र आस पुर्णों के सरण है । जिसमें कर्म अथर्व का धारण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त कुरा काम कुञ्ज भी किया हो ऐसा नहीं किया और इस भगवत् वाक्य ने अनुचित मकमाने होप लगाने हैं । कृप रही भक्तव्य आदि की बोरी और कृष्ण राखी से समानता परस्मियों से रासनकल्य श्रीका आदि मिथ्य होप श्रीकृष्णजी में लगाने हैं । इसको पद पद सुन सुन के जन्म मरणसे श्रीकृष्णजी की बहुवर्णी विन्या करते हैं । जो कह भगवत् न होय तो श्रीकृष्णजी के सरण महाभारतों की खुटी निम्ना क्योंकर होती ? शिशुपुराण में बारह श्लोकिर्हिङ्ग और चित्रमें प्रकट का शेष भी नहीं रात्रि को निग दीप किने सिङ्ग भी अन्धेर में नहीं बीकते ने सब खीका पोस्नी की है ॥

प्र०—जब वेद पढ़ने का सामर्थ्य नहीं रहा तब सृष्टि जब सृष्टि के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य न रहा तब पुराण बनाने केवत्त की और श्रुतों के बिचे क्योंकि इनको वेद पढ़ने सुनने का अधिकार नहीं है ॥

उ०—वह बात सिन्हा है क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने पढ़ाने ही से होता है और वेद पढ़ने सुनने का अधिकार सब को है । देखो ! धर्मी आदि जिन्हीं और कृष्णोप में आचरुति श्रुत ने भी वेद 'तैत्तिरीय' के पास पद का और कर्तव्य के २१ वें अध्याय के २ रे मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि वेदों के पढ़ने और सुनने का अधिकार मनुष्य मात्र को है । पुनः जो वेद २ मिथ्या प्रमाण बना खोली को धल प्रणों से विमुक्त आद में फँसा अपने प्रयोजन का लगाने हैं वे मद्रापापी क्यों नहीं ?

देखो ! प्रहों का काज कैसा बलाव्य है कि जिनने निम्नहीन मनुष्यों को प्रस दिया है । 'आह्वयेव राजस ७' ॥ १ ॥ सुर्व का मन्त्र ॥ इमं देव असपत्नः सुवन्म १' ॥ २ ॥ चन्द्र ॥ अतिमूर्खों विदः ककुमतिः १' ॥ ३ ॥ मङ्गल ॥ 'उत्पुष्पस्थो ५ ॥ ४ ॥ तुष ॥ इहस्पते अतिवर्णों + ॥ ५ ॥ इहस्पति ॥ 'रुक्मन्पसः ७ ॥ ६ ॥ शुक्र ॥ 'वाको देवीरमिह्य ८ ॥ ७ ॥

७ पद अ ३३ । मं ४३ ॥ + पद अ १३ । मं ३ ॥
 † पद अ ४ । मं ४ ॥ ‡ पद अ १३ । मं ४९ ॥
 पद अ ३ । मं १९ ॥ △ पद अ ३९ । मं १९ ॥
 × पद अ १२ । मं २४ ॥

शनि ॥ “कथा अधिपत आनुव ०” ॥ ८ ॥ राहु ॥ और “केतु कृष्णवस्त्रे ॥” ॥ १ ॥ इसके केतु की कथित कथते हैं ॥

(आठवें) यह पूर्व और भूमि का आकर्षण ॥ १ ॥ दूसरा धर्मगुण विद्यापक ॥ २ ॥ तीसरा अग्नि ॥ ३ ॥ और चौथा नक्षत्रमान ॥ ४ ॥ पंचम विद्यापक ॥ ५ ॥ षष्ठ वीर्य अथ ॥ ६ ॥ सप्तमो जल अथ और परमेस्वर ॥ ७ ॥ आठमो मित्र ॥ ८ ॥ नवमो ब्रह्मण्य अथ विद्यापक मन्त्र ॥ ९ ॥ दशों के आठवें नहीं। अर्थ न जानने से भ्रमजात में पड़े हैं ॥

प्र०—दशों का क्या होता है या नहीं ?

उ०—वैसा पोपकीछा का है वैसा नहीं किन्तु वैसा पूर्व कर्मका की किरण द्वारा उन्मत्त होकर सबका अनुकूलकर के सम्बन्ध मात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रतिष्ठित हुए दुःख के निमित्त होते हैं परन्तु जो पोपकीछा वाले कहते हैं “सुनो महापति सेन्धी ! यजमानो ! तुम्हारे अथवा आठमो कर्म स्वर्ग में कर में पाये हैं। अर्थात् कर्म का शरीर का मैं पाया है। तुम को बड़ा मित्र होय ! पर द्वारा तुम्हारे परदेस में बुद्धिके। परन्तु जो तुम दशों का दान कर पाय, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे” । इस से कर्मका चाहिये कि सुनो पोपजी ! तुम्हारा और दशों का क्या सम्बन्ध है ? यह क्या बस्तु है ?

पोपजी—देवाधीन जगत्सर्व मन्त्राधीनास्तु वैवता ।

त मन्त्रा ग्राह्याधीनास्तस्माद् ग्राह्यासुखतम् ॥

देवो वैसा प्रमाण है—देवताओं के आधीन सब जगत् सभी के आधीन सब देवता और वे मन्त्र ग्राह्याओं के आधीन हैं। इसलिये ग्राह्या देवता कहते हैं क्योंकि यदि जिस देवता को मन्त्र के बल से बुद्धि प्रसन्न कर कम सिद्ध करने का हमारा ही अधिकार है। जो हम में मन्त्राधिकार होती तो तुम्हारे से आस्तिक हमको संसार में रहने ही न देते ॥

सत्यवादी—जो जोर काहु, कुम्भी होय हैं वे भी तुम्हारे देवताओं के आधीन होंगे ? देवता ही उनके दुःख कम कराते होंगे ? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राज्यों में कुछ मेह न रहय। जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं उनके तुम चाहो सो कर सकते हो तो हम मन्त्रों से देवताओं को बरा कर राज्यों के कोष उन्मत्त अपने पर में भरकर देह के आनन्द लो दशों कोओते ? पर २ में शरीरपरि के देह आदि आचारान सेने को मार २ लो फिर हो ? और जिसको तुम कुंजर मन्त्र है। हमको क्या में करके चाहो जितना कम मिथ करो। विचारों मरीचों को लो बूट हो ? तुमको राज करने से यह प्रसन्न और न देने से धर्मसन्न होते ही तो हमको मूर्खोंदि दशों की प्रसन्नता प्रसन्नता प्रसन्न दिखायो। जिसको ८ वीं पूर्व, कर्म और दूसरे को तीसरा हो राज्यों की मन्त्र महीये में किया न पढ़िये तपी दुई भूमि पर अज्ञात। जिस पर प्रसन्न हैं उनके पग शरीर न जलने और जिस पर अधिक है उनके पल जल आदि तथ वीच मास में राजों का कम कर

पीरमासी की राशि भर मीराज में रहें। एक को शीत धरे दूसरे को ग्रीष्म के जानो कि यह धूर और सौम्यरश्मि धाके होते हैं और न्यय तुम्हारे यह सम्झनी है ? और तुम्हारी शक न तार उनके पास जाता जाता है ? अथवा तुम उनके न के तुम्हारे पास धाके जाते हैं ? जो तुम में मन्त्रादिक हो ता तुम स्वयं राज न बनाओ क्यों नहीं नय बाधो ? न कपुओं को अपने कल में क्यों नहीं कर लेते हो ? अस्तित्व का होता है जो वेद ईश्वर की प्राप्ति न मात्र और केवल पोषणीया बसावे। जब तुमको महाराज न देने जिस पर यह है वही महाराज को छोड़ो तो क्या बिगता है ? जो तुम कहो कि नहीं हम ही को देने से वे प्रसन्न होते हैं अन्य को देने से नहीं ता क्या तुमने नहीं का ठेकर से बिगा है ? जो देन बिगा हो तो सूर्योदय को अपने घर में बुला के बख मरो ॥

सब तो यह है कि सूर्योदय लोक बक है। वे न किसी को दुःख और न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं किन्तु बितने तुम महाराजोपजीवी हो वे सब तुम नहीं की सुविधा हो क्योंकि यह राज्य का सब भी तुम में ही अटित होता है। 'ये गृह्णन्ति ते प्रजा' को प्रवच करते हैं अन्ध नाम यह है। जब तक तुम्हारे अन्ध राजा राज सेक सहाय्य और हरिओं के पास नहीं पहुँचते तब तक किसी को नयाय का अन्ध भी नहीं होता जब तुम सचात् सूर्य सौम्यरश्मि सूर्योदय धूर रूप भर उन पर का करते हो तब क्या प्रवच किने अन्धों कमी नहीं बोलते और जो कोई तुम्हारे पास में न आवे उसकी बिगदा अस्तित्ववि राखी से करते फिरते हो ॥

पोपजी—देखो ! स्मोतिप् का अन्धक पक्ष। अन्धक में रहने वाले सूर्य अन्ध और राहु केतु का संयोग रूप प्रवच को पहिचे ही का देते हैं। वैसा वह प्रवच होता है वैसा नहीं का जो पक्ष प्रवच हो जाता है। देखो अन्धक हरि, राज्य यह सुखी बुद्धी नहीं ही से होते हैं ॥

सत्य०—जो वह प्रवचक प्रवच का है सो गवितविषय का है अविषय का नहीं। जो गवितविषय है वह सभी और अविषयविषय स्वस्थानिक सम्प्रत्यय का जोष के मूढ़ी है। जैसे अनुबोध प्रतिबोध धूमनेवाले पृथिवी और अन्ध के गवित से सब भिन्न होता है कि अनुक समन अनुक देन अनुक अन्धक में सूर्य का अन्ध प्रवच होय जैसे—

सावयस्यकमिन्नुर्बिभु भूमिमा ॥

यह सिद्धान्त सिरोमणि का अन्ध है और इसी अन्ध सूर्यसिद्धान्तवि में भी है सर्वात् जब सूर्य भूमि के मध्य में अन्धमा जाता है तब सूर्य प्रवच और जब सूर्य और अन्ध के बीच में भूमि जाती है तब अन्ध प्रवच होता है सर्वात् अन्धमा की आप्य भूमि पर और भूमि की आप्य अन्धमा पर पड़ती है। सूर्य अन्धक होने से उसने समुद्र आप्य किसी की नहीं पड़ती किन्तु जैसे अन्धकमान सूर्य का दीप से देहवि की आप्य उन्नी जाती है वैसे ही प्रवच में अन्धको। जो अन्धक हरि, प्रय राजा यह होते हैं वे अपने कर्मों से होते हैं नहीं से नहीं। बहुत से अन्धकवि जो अन्ध अपने अन्धक अन्धकी का बिगदा नहीं की गवितविषय के अनुभार करते हैं

तुम: कर्मों विरोध का विषय कथन मृतकीक पुन हो जाता है। जो कल सचा होता तो ऐसा कर्म होता ? इसलिये कर्मों की गति सभी और मूर्खों की गति कुछ कुछ भेद में करवा नहीं। मर्याद प्रद प्रामग में और शुद्धि भी प्रामग में पण्डित पर पर ह इसका समान्य कर्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं। कर्मों और कर्मों के कल का कर्ता भोक्तृ और कर्मों के कल मोक्षमे हारा परमात्मा है। जो तुम मूर्खों का कल मानो तो इसका उत्तर देखो कि जिस कल में एक मनुष्य का जन्म होता है जिससे तुम भुक्तवृत्ति मानकर जन्मपत्र बताते हो उसी समय में मृत्यु पर दूसरे का जन्म होता है या नहीं ? जो कहा नहीं तो मृत और जो कहा होता है तो एक कर्मवर्ती के साथ मृत्यु में दूसरा कर्मवर्ती राज्य क्यों नहीं होता ? हाँ इसका तुम कह सकते हो कि यह बीजा इसमें उतर भरने की है तो कोई माग भी देखे ॥

प्र०—क्या कलपुराण भी सृष्ट है ?

उ०—हाँ असम है ॥

प्र०—फिर मरे हुए जीव की क्या गति होती है ?

उ०—इसे उसने कर्म है ॥

प्र०—जो समस्त राजा विष्णुस मन्त्री उसके बड़े मन्त्र पर कल के पर्यंत के कल शरीर वाले जीव को पकड़कर ले जाते हैं। पाप पुण्य के अनुसार वरक स्त्री में बाँधते हैं। उसके छिने राज पुरव भाव, तर्पण गोदानादि बँटवारी नहीं करने के छिने करते हैं। वे सब बातें मृत क्योंकर हो सकती हैं ?

उ०—वे सब बातें पोषणीका के गणों हैं। जो कल के जीव कहा जाते हैं उनका धर्मराज विष्णुस जाति म्वाय करते हैं तो वे कलको के जीव पाप करें तो दूसरा कलको म्वाय जातिवे कि वही के म्वायजीव उनका म्वाय करें और पर्यंत के समान कलको के शरीर हैं तो शीघ्र क्यों नहीं और मरने वाले जीव को देखे में छोड़े हुए में उनकी एक शृंखला भी नहीं जा सकती और सब गली में क्यों नहीं एक जल ? जो कहा कि वे सृष्ट देह भी पारव कर जल है तो म्वाय पर्यंत शरीर के बड़े २ हाथ पोषणी म्वाय कल के कहा भरोगे ? जब जल में घनी जगती है तब कलम पिरीयिच्छति जीवों के शरीर पूर्य है। उनको पकड़ने के छिने चर्चक कल के म्वाय जाते तो कहा कलमर हो जन्म जातिवे और जब कलम में जीवों को पकड़ने को शीघ्र तब कभी उनका शरीर को म्वाय जल तो जिस पहाड़ के बड़े २ मिट्टि दूर पर शुद्धि पर गिरत है इस उनके बड़े २ चर्चक गदगपुराण के बोधने मुर्खे कलों के कल में म्वाय पर्वत ॥ २ दृष्ट मरने का घर का इस कथन सबक एक जन्मगी ता वे बड़े कलम जीव सब सज्जे ?

धर तर्पण दिव्यमरुत उन मरे हुए जीवों का तो नहीं पहुँचना किन्तु सुखों के प्रतिविधि पोषणी के घर उतर और हाथ में पहुँचता है। जो कलको के छिने को दृष्ट करत है वह तो पोषणी के घर में कथन कलम जाति के घर में

पहुँचता है। कैटरजी पर गाय नहीं जाती। पुनः किसी पूजक कर्म कर लेना। और हाथ तो यही ब्रह्मन्त्र का गाय दिया गया फिर पूज को कैसे पकड़ेंगे। क्या एक उद्यम ही बात में उपयुक्त है कि—

एक बात था। उसके घर में एक गाय बहुत अच्छी और बीस डेर दूध देने वाली थी। दूध उद्यम बड़ा स्फुरित होता था। कभी १ पोपजी के मुख में भी पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब बाढ़ का मुद्दा बन मरने कोमत तब इसी गाय का संकल्प करा लूँगा। कुछ दिनों में ऐल्मोस के उसके बाप का मरण समय आया। बीस वर्ष हो गई और बाढ़ से भूमि पर से सिंचाई प्रणाली ब्रह्मन्त्र को बचाने का समय था पहुँचा। उस समय बाढ़ के दूध मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे। तब पोपजी ने पुकारा कि ब्रह्मन्त्र। जब पू. इसके हाथ से जो दान करा। कष्ट १) कर्म विचार पितृ के हाथ में रख के बोला पक्षी संकल्प। पोपजी बोला कष्ट २। तथा दान ब्रह्मन्त्र मरता है। इस दूध समय तो सत्यार्थ गाय को छात्रों को दूध देती हो मुझी न हो उन प्रकार उद्यम हो। ऐसी गी का दान कर्म चाहिये ॥

जाटजी—हमारे पास तो एक ही गाय है उसके बिना हमारे बचने कहीं का निर्वाह न हो सकेगा इसलिये इसको न दूँगा। जो १) कर्म का संकल्प पर देना और दूध कर्मों से दूसरी दुपार गाय के देना ॥

पोपजी—कष्ट जी कष्ट। तुम अपने बाप से भी दान को अधिक समझते हो? क्या अपने बाप को कैटरजी नदी में डुबाकर डुबने देना चाहते हो? तुम अपने मुमुक्षु हुए। तब तो पोपजी की ओर सब कुदृष्टी हो गये क्योंकि उन सब को पहिले ही पोपजी ने ब्रह्मन्त्र रक्ता था और उस समय भी इरादा कर दिया। सब ने मित्रकर दूध से उसी गाय का दान उसी पोपजी को दिया दिया। इस समय बाढ़ कुछ भी न बोला। उसका पितृ मर गया और पोपजी ब्रह्मन्त्र सहित दान और दोहने की बखोई को से अपने कर्म में भी बांध बखोई पर पुनः बाढ़ के घर आया और मृतक के साथ समस्त भूमि में जाकर दान कर्म करता। वहाँ भी कुछ १ पोपजीका बकाई, पश्चात् इच्छात्र सविंदी करने चाहिये में भी इसको दूँगा। महाप्रकाशों ने भी लूटा और मुक्तों ने भी बहुतसा मांस पैर में भरा अपना जब सब किया हो चुकी तब बाढ़ ने जिस किसी के घर से दूध मांग लूँगा निर्वाह किया। और वह दिन प्रत्यक्ष बाढ़ पोपजी के घर पहुँचा। देखे तो गाय दूध बखोई मर पोपजी के उठने की तयारी थी। दूधने ही में जाटजी पहुँचे। उद्यमों से पोपजी बोला चाहिये। पश्चात् बँटिये।

जा०—तुम भी पुरोहितजी इधर आओ ॥

पो०—अपना दूध घर आऊँ ॥

जा०—महाँ १ दूध की बखोई इधर आओ। पोपजी बिचारे जा बँटे और बखोई सामने धर ही ॥

जा०—तुम बड़े क्रोड़ हो ॥

पो०—क्या मूठ किया ?

आ०—क्यों तुमने गन्ध किसकिये ली थी ?

पो०—तुम्हारे पिता के बैतराणी लकी घरने के लिये ॥

आ०—अच्छा तो तुमने बैतराणी लकी के किनारे पर गन्ध क्यों नहीं पहुँचाई ?
हम तो तुम्हारे घरमें पर रहे और तुम अपने घर बाँध बैठे । य लकने मेरे बाप ने
बैतराणी में किसने गोले लपेटे होंगे ?

पो०—कहाँ ? कहीं इस दान के पुत्र के प्रभाव से बूझरी गन्ध बनकर
कलमें उठार दिया होगा ॥

आ०—बैतराणी लकी कहाँ से किसकी दूर और किनारे की ओर है ?

पो०—अनुमान से कोई तीस जोड़ कोई दूर है क्योंकि उल्लास कोटि बोलन
पुलकी है और दक्षिण विध्वंस दिशा में बैतराणी लकी है ॥

आ०—इतनी दूर से तुम्हारा बिट्टी या लार का समाचार गन्ध हो उसका
बहर आया हो कि लकी पुत्र की गन्ध बन गई, अमुक के पिता को घर
उठार दिया बिचबाधो ?

पो०—इसका पास गन्ध पुत्र के लोभ के किनारे एक या लार नहीं बूझा
कोई नहीं ॥

आ०—इस गन्धपुत्र को हम क्या कैसे मारें ?

पो०—कैसे सब मानते हैं ॥

आ०—यह पुत्रक तुम्हारे पुत्राओं ने तुम्हारे जीविन के लिये बनाया है
क्योंकि पिता को किना अपने पुत्रों के कोई शिव नहीं । जब मेरा पिता मेरे पास
लकी पत्नी या लार मेलेगा लकी में बैतराणी लकी के किनारे गन्ध पहुँच दूँगा
और लकने पार उठार पुत्र गन्ध को घर में ले जा दूँगा लकी में और मेरे
लकनेको पिता करेगा । बाधो ! दूध की मरी हुई, लकनेको गन्ध बहवा लेकर
बाधनी अपने घर को लकना ॥

पो०—तुम दान लेकर लेते हो तुम्हारा अन्नान्न हो अन्नान्न ॥

आ०—तुप लकी लकी तो तेरा दिन लकी दूध के दिना जितना तुम्हें हम ने
पाया है लक कर किनारे दूध । लक पोपली तुप रहे और लकनी गन्ध बहवा
ले अपने घर पहुँचे ॥

जब ऐसे ही लकनी के से पुत्र हों तो पोपलीका संसार में न लके । लो ने
लोभा लकते हैं कि दृष्टान्त के पित्रों से दृष्ट अन्न अपित्री करने स शरीर के लप
जीन का मेख होके अंगुष्ठ मात्र शरीर बन के पश्चात् पश्चात् को जाता है तो मरती
समय कमलुती का आगा लकने होता है । लोकाशाह के पश्चात् पश्चात् लकने को
शरीर बन जाता हो तो अपनी लकी अन्नान्न और दूध मित्रों के मोह से लकी
नहीं लोभ पाता है ?

प्र०—लकी में कुछ भी नहीं मित्रता को दान किन लकने दे लकी लकी
मित्रता है । इसलिये लक दान लकने लकने ॥

उ०—उस तुम्हारे लकी लकी लोभ लकने जिसमें धर्मशास्त्र है लोभ लकी
को है, दूध मित्र और लकने में लूट निमग्न होने ॥

तुम्हारे करने के लिये स्वामी मैं कुछ भी नहीं मिलता ऐसे निर्दय कुत्तों के लिये मैं पालनी बनकर बराब रहूँ। वहाँ पहले २ मनुष्यों का क्या काम ?

प्र०—बस तुम्हारे करने से कमजोर और कम नहीं हैं तो मरकर भी क्या जाता और इनका स्वाद कैसा करता है ?

उ०—तुम्हारे गणपतुस्य का क्या हुआ तो धर्ममाया ही परमपुत्रों के दोषों की कि—

यमेन ॥ वायुना । सत्यराजम् ॥ ४ २ । १० ॥

इत्यादि वेदवक्त्रों से निश्चय है कि “यम” नाम कायु का है। और वायु के साथ धार्मिक में जीव रहते हैं और जो सत्यकर्ता पक्षपात रहित परमपुत्र “कर्मपुत्र” है वही सब का न्यायकर्ता है ॥

प्र०—तुम्हारे करने से मोक्षदायि दास किसी का न देता और न कुछ दास बनकर ऐसा सिद्ध होता है ॥

उ०—यह तुम्हारा क्या सर्वनाम्य है क्योंकि सुपात्रों को परोपकारियों को परोपकारार्थ सोच बाँधी हीरा मोती आदिक सब सब सत्य, कदापि दास बनकर काम नहीं है किन्तु सुपात्रों को कभी न देना चाहिये ॥

प्र०—सुपात्र और सुपात्र का संबंध क्या है ?

उ०—जो किसी कपटी स्वामी किसी काम को मोह से कुछ, पदार्थ करनेको छपटी मिथ्याकारी अधिपति, कुछही जानकी जो कोई दास हो उसके पास बरगमन मोक्षदायि दास का किसे पदार्थ भी हस्ता से मांगे ही ज्ञाना समुदाय न होना जो न दे उसकी विन्यास करना दास और माँगी मरणादि देना जानेक का जो सेवा करे और एक कर न करे तो उसका कुछ का जगत् जगत् से साधु का सेवा नना, लोगों को बहका कर जगत् और अपने पास पदार्थ हो तो भी मेरे पास कुछ भी नहीं है कदा सबको सुसदा सुसदा कर स्वार्थ सिद्ध करदा रत्न दिन भीष्ट मांगने ही मैं बहुत रहना निमित्त कहिये पर कबहुँ मर्यादा मर्यादा जगत् का बाँकर बहुत सा पदार्थ पदार्थ जगत् पुत्र उन्मत्त होकर मर्यादा होना सब मार्ग का विरोध और नून मार्ग में अपने प्रबोधार्थ बहका दिये अपने बेशी को केवल अपनी ही सेवा करन का उपदेश करदा जगत् जगत् पुत्रों की सब करने का नहीं, सत्त्विक विन्यास के विरोधी जगत् के जगत्कार जगत् को पुत्र मर्यादा विन्यास, सत्त्विक जगत् मर्यादा इह मिश्रों में स्वीकृति करदा कि वे सब असत्य हैं और जगत् भी मिथ्या है इत्यादि कुछ उपदेश करदा चाहे सुपात्रों के संबंध हैं और जो मर्यादा विन्यास के विन्यास के पदार्थ बहानेहारे मर्यादा सत्त्विकी परोपकार विन्यास पुत्रार्थी, उरार विन्यास, धर्म की विन्यास उचित करदा धर्मार्थ सत्त्विक निमित्त लुपति में हरे शोक रहित निर्दय जगत् की बागी जगत् सत्त्विक बरगमन ईश्वर के गुण कर्म स्वभावसुख बर्गमन करदा न्याय की रीति कुछ, पक्षपात विन्यास और सत्त्विकी ॥ पदार्थ पदार्थ के परोपकार किसी की जगत्

पक्षों व कर्षों पक्षों के पक्षार्थ समर्थानकर्ता अपने आपका के मुख्य धर्म का भी मुख्य दुःख है कि काम समझने वाले अधिकांश स्थिति यह दुराग्रहाभिमान रहित जसूर के समान अपमान और विर के समान मान को समझने वाले समर्थों को कोई भीति है अतिशय इसे उतने ही से प्रसन्न एक बार आपत्काल में माने भी न दन का बर्तने पर दुःख का दुरी चेष्टा न करना बर्हा से भट और कामा उसकी मित्रा न करना सुखी पुरुषों के साथ मित्रता दुःखियों पर कष्टा दुःख्याध्यायों से आत्मार्थ और पापियों से उपका कर्मात् समग्र्य रहित रह्य समझनी समझनी असमझनी निष्कपट, ईर्ष्या ईर्ष्याहित गम्भीराग्र्य छत्रुग्र्य जैसे से मुक्त और सर्वथा दुःखाग्र्य से रहित, अपने तन मग धन को परोक्षर करने में व्ययनेच्छा पराने मुक्त के सिधे अपने प्रार्थों को भी समर्पितकर्ता ह्यधिग्र्यग्र्यग्र्यमुक्त मुपाय होते हैं परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में प्रत्येक वक्ष और औपव पक्ष काल के अधिकांश सब प्रार्थी मान हो सकते हैं ॥

प्र०—क्या कितने प्रकार के होते हैं ?

उ०—तीन प्रकार के—उत्तम मध्यम और निम्न । उत्तम काल उसको कहते हैं जो एक काल और पाप को पावकर सत्यविषय धर्म की उद्यति रूप परोक्षरार्थ रहे । मध्यम वह है जो कठिनि का स्थान के सिधे दान कर । नीच वह है कि अपना या पराया कुछ उपकार न कर सक किन्तु वैश्याभिमानी या अंध भट्ट आदि को एवं एवं समय विराकार अपमानादि कुच्छा भी कर पात्र कुप्राय का कुप्य भी नद न जाने किन्तु “सब सब बारह पत्तरी” कथन शब्दों के समान विचार लवार्थ, दूधर धमाल्य को दुःख दूधर मुयी होने के सिधे दिया कर का अपम काल है अर्थात् जो परीक्षा पूर्वक विचार प्रमाणों का सम्यक् करे वह उत्तम और जो कुछ परीक्षा कर या न कर परन्तु जिसमें अपनी प्रशंसा हो उसको मध्यम और जो कालाकुल्य परीक्षाहित निष्कल दान रिक्त करे वह नीच काल कहला है ॥

प्र०—दान के काल कहां होते हैं या परलोक में ?

उ०—सर्वत्र होता है ॥

प्र०—स्थान होते हैं या कोई काल कालका है ?

उ०—काल कालका ईश्वर है जैसे कोई बार बार एवं कभीकाल में जन्म नहीं चाहता । तब उसको चक्षुष भजता है धर्मोपायों के मुख की रक्षा करता मुपाय चाह आदि से बचाकर उनको मुख में रक्ता है जैसे ही परमात्मा सबको पार पुरुष के दुःख को मुखकर चर्त्री को बचाकर मुपाय है ॥

प्र०—जो वे मग्न पुरुषादि मग्न हैं वेदार्थ या वेद की पुष्टि करवाते हैं या नहीं ?

उ०—नहीं किन्तु वेद के किोपी और उभर कहते हैं । तथा तंत्र भी ईश्वर ही है । जैसे कोई मनुष्य एक का मित्र सब संघन का शत्रु हो, पता हो पुरुष और तंत्र का मन्त्रन काल पुरुष होता है क्योंकि एक क्षण का विनाश काल काय वे मग्न हैं । हमने मन्त्रना किमी मनुष्य का कर्म नहीं किन्तु इनको मन्त्रना पदका है ॥

हम एकदशी वाले अपना पक्ष देखो। जो एक पावनीका घर को बना जाना तो पुनः जायों मोंही पान बहो मोंही और हम भी एकदशी किया करेंगे और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस धुंधे मरनेका आपत्तपक्ष से बचावेंगे।

हम चौबीस एकदशियों का नाम पूज्य १ रक्का है। किसी का 'बभवा' किसी का 'कमना' किसी का 'पुनरा' किसी का 'मिर्ज्या'। बहुत से इतिहास कहते हैं कि बहुतसे मिर्ज्या और बहुतसे बभवा और पुनरा और कमना और मोंही के राजपक्ष में कि जिस समय एक पक्ष पर जाय न पाने तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है मत करनेवालों को महा दुःख प्राप्त होता है। विशेषकर बभवा में सब विधवा कियों की एकदशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है। इस मिर्ज्या का नाम सक्का पीप मोंही के राजपक्ष की एकदशी का नाम मिर्ज्या रक्का होता तो भी कुछ भयान होता परन्तु इस पक्ष को क्या से क्या काम? "कोई बीमो का मरी पोपनी का पट पड़ा मरी" मर्या मर्या की सन्तोषिणीया की बच्चे का कुछ पुत्रों को तो कमी उपवास न करवा चाहिये परन्तु किसी को करना भी हो तो जिस दिन भोजन हो चुका न बचे उसदिन शर्करा (शर्करा) का दूध पीकर रहवा चाहिये। जो पूज्य में बड़ी करते और बिना भूख के भोजन करते हैं दोनों रोगप्रकार में मोटे का दुःख पड़े है। इन मर्यावियों के करने बिचने का प्रभाव कोई भी न करे।

अब तुम शिष्य मन्त्रोपदेश और मतमतांतर के चरित्रों का वर्णन करते हैं। मूर्तिपूजा सम्प्रदायी लोग मत करते हैं कि वेद सत्य हैं। आगे की २१ पञ्चवेद की १ : सम्प्रदायी की १ और अथर्ववेद की ६ रक्का है। इन में से चौबीसी शाखा मिलती है तोष जोष होगई है। उन्ही में मूर्तिपूजा और तीर्थों का प्रभाव होता। जो न होता तो पुराणों में कहाँ से आता? अब कर्म देखकर करण का अनुमान होता है अब पुराणों को देखकर मूर्तिपूजा में क्या आता है?

उ०—कैसे शाखा जिस वृक्ष की होती है उसके सारा वृक्ष पतती है बिना बहो। ऐसे शाखा जैसी बड़ी हो परन्तु उन में बिरोध बहो हो सकता। किन्तु ही जितनी शाखा मिलती है जब इन में पापवादि मूर्ति और अथर्व वेद बिरोध तीर्थों का प्रभाव नहीं मिलता तो अब कुछ शाखाओं में भी बहो या और फिर वेद पूर्ण मिलते हैं अब से बिना शाखा कमी बहो हो सकती और जो बिना है बचको शाखा कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता। अब यह बात है तो पुराण देहों की शाखा नहीं किन्तु सम्प्रदायी लोगों के परस्पर बिन्दवका प्रभाव क्या रूपे है।

देहों को तुम परमेस्वरकृत मानते हो तो "आत्मसत्त्ववादि" जपि मुनियों के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों को वेद क्यों मानते हो? जिस शाखा और पक्षों के देखने पर पोषण बढ़ और अन्न आदि वृक्षों की पहिचान होती है किन्तु ही जपि मुनियों के बिने बराबर चारों माहका अन्न उपाय और उपवास आदि छ वेदार्थ पहिचान आता है। इसलिये इन ग्रन्थों को शाखा माना है। जो बहो से बिना है अथर्व

ममत्व और अनुकूल का प्रमाण नहीं हो सकता । जो तुम पाद शास्त्रों में मूर्ति
आदि के ममत्व की कल्पना करोगे तो जब कोई ऐसा पद करेगा कि इस शास्त्रों
में कदांभम व्यवस्था उल्टी अर्थात् अस्वभाव और शुद्ध का नाम ममत्वआदि और
ममत्वआदि का नाम शुद्ध अस्वभाव आदि अस्वभावयोग्य अर्थात् अस्वभाव अस्वभाव
ममत्वआदि भर्मे अस्वभावआदि अस्वभाव आदि दिखा होगा तो तुम उससे भी उक्त
होगे जो कि हमसे दिया अर्थात् वेद और अस्ति शास्त्रों में भी ममत्वआदि का
नाम ममत्वआदि और शुद्ध आदि का नाम शुद्ध आदि दिखाई देता ही पाद शास्त्रों
में भी ममत्व आदि नहीं तो कदांभमव्यवस्था आदि सब अस्वभाव हो जायेंगे ।

वेदो वैमिषि व्यास और पतञ्जलि के समय पूर्वजता सब शास्त्र विद्वान्
की क्या थी ? यदि नहीं थी तो तुम कभी निरर्थक नहीं कर सकते और जो कहे
कि नहीं थी तो फिर शास्त्रों के होने का क्या प्रमाण है ? वेदो वैमिषि के
मीमांसा में सब कर्मकारण पतञ्जलि मुनि ने योगशास्त्र में सब उपनिषद्
और व्यासमुनि ने शारीरिक सुखों में सब अस्वभाव के अनुकूल दिखाई है उनमें
पादशास्त्रों में मूर्ति पद या अस्वभाव आदि तीनों का नाम विद्या ही नहीं दिखाई । किसे
कहाँ से ? जो कहे वेदों में होता तो किसे क्या कभी नहीं बोधते इसलिये इस
शास्त्रों में भी इन मूर्तिपद आदि का प्रमाण नहीं था । वे सब शास्त्र के नहीं हैं
क्योंकि इनमें ईश्वर के ही की प्रतीक धर के व्यास और संतारी जनों के
इतिहास आदि लिखे हैं, इसलिये वेद में कभी नहीं हो सकते । वेदों में तो केवल
मनुष्यों को विद्या का उपदेश किया है । किसी मनुष्य का नाम ममत्व भी नहीं ।
इसलिये मूर्तिपद का अस्वभाव है ।

वेदो ! मूर्तिपद से भीरामचन्द्र श्रीकृष्ण बाराह और शिव आदि की कही
किन्दा और उपहास होता है । सब कोई जानते हैं कि वे कहे महाशक्तिमान् और
उनकी भी शक्ति तथा अस्मिता अस्मिता और पार्वती आदि महाशक्तियों की
परमत्त्व का उनकी मूर्तियों मन्दिर आदि में एक के पुजारी लोग उनके नाम से
भीक मांगते हैं अर्थात् उनके भिक्षारी बनते हैं कि आधो ममत्व ! ममत्व !
छेद साहचर्य ! दर्शन कीलिये वैमिषि अस्वभाव आदि लिखे कुछ मंत्र पढ़ते
ममत्व ! सीताराम कृष्ण अस्मिता या राधाकृष्ण अस्मिता और मन्दिर
पार्वतीजी की तीन दिग्गज का आत्मयोग का अस्मिता अर्थात् अस्मिता या अस्मिता
भी नहीं मिला है । आज हमसे पास कुछ भी नहीं है सीता आदि को पशु की आदि
राधीजी या सेठजीजी का पशु पीजिये आज आदि सेठों तो ममत्व आदि को भी
जानते । सब सब पद पढ़े हैं, मन्दिर के कोने सब गिर पड़े हैं । कमर से गूदा
है और बुद्ध और जो कुछ था उसे पद से पड़े कुछ अर्थात् (गूदा) ने पद
पद पड़े । देखिये ! एक दिग्गज अर्थात् वे पद अस्मिता किन्दा कि इनकी आज भी
मिमत्व के नाम पड़े । अब हम आदि की क्या करें, इसलिये कभी की
कहानी है । अस्मिता और अस्मिता भी करणते हैं, सीताराम राधाकृष्ण
पद रहे हैं राधा और मन्दिर आदि उनके लोक अस्मिता में बैठे हैं । मन्दिर में
अस्मिता आदि कहे और पुजारी या मन्दिरजी अस्मिता अस्मिता गद्दी पर उठिया अस्मिता

बैठते हैं, महा धरती में भी ताका बना भीतर बन्ध कर बैठे हैं और आप सुन्दर
हल में पकड़ बिद्वान् सोते हैं। बहुत से पुकारी अपने कामकाज को अपनी में
बन्ध कर ऊपर से कमरे आदि बांध गले में छटाछ छेते हैं जिस कि बामरी अपने
बन्धे को गले में छटाछ छेती है ऐसे पुकारियों के गले में भी छटाछे हैं। जब
कोई मूर्ति को तोड़ता है तब हाथ २ कर जाती पीठ बकते हैं कि सीतारामजी
राधाकृष्णजी और गिरिपार्वती को दुष्टों ने तोड़ दिया। अब दूसरी मूर्ति मंगल
कर जो कि जन्मे शिखी ने सङ्गमरमर की कलाई हो स्थापन कर पूजनी चाहिये।
मरामत को भी के बिना मोग नहीं करता। बहुत नहीं तो बोधा सा बकल
मेखदेव। इन्हीं दिनों हल पर उतरते हैं और रासमयज्य का रामजीका के चला
में सीताराम का राधाकृष्ण से नीचा मंगलते हैं। जहाँ मेका मेका होता है वहाँ
कोकरे पर मुकुट कर कर्हिवा बना मार्ग में बैठकर नीचा मंगलते हैं। इन्हीं दिनों
को आप लोग विचार कीजिये कि कितने बड़े लोक की बात है ॥

महा कहो तो सीतारामादि ऐसे वरिष्ठ और मिथुन थे ? वह उनका उपहास
और निन्दा नहीं तो क्या है ? इससे नहीं अपने मानवीय पुत्रों की निन्दा होती
है। महा तिस समय सीता सुमित्राजी कम्पी और पार्वती को सड़क पर का
किन्नी मकन में नहीं कर पुकारी करते कि आपो इनका दर्शन करो और कुछ
मोट पूजा करो तो सीतारामादि इन मूर्तियों के करने से ऐसा काम कभी न करते
और न करने से जो कोई ऐसा उपहास उनका करता है उनके बिना सब दिसे
कभी बोलते ? हाँ जब कहीं से सब न पाया तो इनके कर्मों से पुकारियों की
बहुतसी शक्तिशालियों से प्रसन्नी रिजानी और सब भी मित्रता है और जब
तक इस कुर्म को न बोलेंगे तब तक मित्रता। इसमें क्या संदिग्ध है कि जो
आप्यायर्ष की प्रतिदिन महा हाथ पायायादि मूर्तिपूजकों का पराजय इन्हीं कर्मों
से होता है क्योंकि पाप का फल दुःख है इन्हीं पाप्यायर्ष शक्तियों के विनाश से
बहुतसी इन्हीं हमर्ष। जो न बोलेंगे तो प्रतिदिन अधिक २ होती जायगी। इनमें
से बममार्गी बड़े भारी अपराधी हैं। जब है नेका करते हैं तब साधन सब—

ॐ तुर्गाय नमः । भूमिदाय नमः । ये ह्रीं ह्रीं वामुगशायै नमः ॥

इन्हीं दिनों का उपदेश कर बैठे हैं और ब्याख में किये करके मन्त्रोपदेश
मन्त्रोपदेश करते हैं वैया—

ह्रीं धीं ह्रीं ॥ शम्भुतं वं प्रसी ॥ १३ ॥

इन्हीं और धनार्थों का पूजाभित्तक करते हैं। ऐसे ही सब महाविषयों के मन्त्रा—

ह्रीं ह्रीं ह्रीं वगलामुनयै फट् स्वाहा ॥ शा प्रसी ॥ १४ ॥

धरी २—

ह्रीं फट् स्वाहा ॥ कमलस तन्त्र नील मन्त्र १ ॥

और मारण मारण उपाय विद्वान् करीकर सब आदि प्रमाण करत है। सा
मन्त्र से ता कुछ भी नहीं होता किन्तु क्रिया से सब कुछ करत है। जब किसी
को मारने का प्रयोग करत है तब इतर करनेवाले ॥ जब सब छोटे या मिट्टी का

पुत्रका जिसको मरना चाहते हैं उसका क्या करते हैं। उसकी झुली धामि, कपड़ों में लुने प्रयोग कर देते हैं। बाँख, हाथ, पाँव में कीचड़ डोकाते हैं। उससे ऊपर मिराब का दुर्गा की मूर्ति क्या हाथ में धिराए दे उससे हाथ पर धागते हैं। एक बड़ी कपड़ों में मोस धारि का होम करने धागते हैं और ऊपर बूत धारि भेज के उसको निध धारि से मरने का उपवास करते हैं। जो अपना पुरस्कार के बीच में उसको मराना तो अपने को मिराब देवी की सिद्धिबद्धे बतलाते हैं। मिराबो मृतमाधम इत्यदि का पाठ करते हैं।

मारय २, उष्माठय २, विधेयय २, विमिथ २, मिमिथ २, वरीकुड २, काव्य २, मरुय २, जोटय २, माठय २, मम शत्रून् वरीकुड २, हैं पद लाहा ॥ कम्मसक ताव उष्माठय मरुय मं २—७ ॥

इत्यदि मन्त्र करते मय मांसधरि पनेह करते पीते चुकुरी के बीच में सिन्धु रीका देते कमी १ काधी धारि के बिने किसी आदमी को फड़ मर होम का कुम् १ उसका मांस करते भी हैं। जो कोई मिराबिक में जाने मय मांस व पीने व करने तो उसको मर होम का देते हैं। ऊपर से जो धागेरी होला दे का दल मनुष्य का भी मांस करता है। कमी कमी करनेवाले सिद्धा मूय भी करते पीते हैं।

एक चोखी मात और दूसरे बीजमाती भी होते हैं। चोखी मातको एक गुप्त कलम का मृमि में एक कलम करते हैं। काी सब की सिद्धा पुस्य कपड़ों, काकी बहिन मात पुस्यव धारि सब इच्छे हो सब कोय मिधमिधा का मांस करते सब पीते एक की को बड़ी कर उसके गुप्त इन्धिव की पूजा सब पुस्य करते हैं और उसका नाम दुर्गादेवी करते हैं। एक पुस्य को बड़ा कर उसके गुप्त इन्धिव की पूजा सब सिद्धा करती हैं। सब मय पी १ के कम्मस हो करते हैं सब सब सिद्धा के झुली के सब जिसको चोखी कहते हैं, एक बड़ी मही की बाँध में सब का मिधमर एक के एक १ पुस्य वसमें हाथ काय के जिसने हाथ में जिसका सब करने का जाता बहिन कम्म और पुस्यव नों व हो उस समय के बिने का उसकी की हो जाती है। कम्मस में कुम्में करने और बहुत लका करने से का धारि से कहते सिद्धाते हैं। का जाता काय कुम् कम्मों अपने १ कर को चले करते हैं सब मात १ कम्म १ बहिन १ और पुस्यव १ होजाती है और बीजमाती की पुस्य समान्य कर का में बीज काय मिधमर पीते हैं। वे पात्र देते कमी की मुक्ति के प्राशन करते हैं। सिद्धा सिद्धा समानता रहित होते हैं।

प्र०—रैव मत कासे तो चण्डे होते हैं ?

उ —चण्डे कहाँ से होते हैं। 'सिद्धा येतवाम रैवा पृतवाम' रैवे कम्ममाती मन्त्रोपदेशधरि से उलका धन करते हैं रैवे रैव की 'को मय सिधाय' इत्यदि पञ्चावरादि मन्त्रों का हवदेव करते सारा मरम बतल करते मही के और पाठ्यधरि के सिद्धा कम्मस करते हैं। और हर १ व व और करने के कम्म के समान व व व व मुक्त से कम्म करते हैं। उसका कम्म का करते हैं कि ताकी कम्म और व व कम्म बीजने से पार्वती कम्म और मरुदेव कम्मस होता है। क्योंकि का मरुतुर के काम से मरुदेव मरु दे सब व व और बड़े की

छात्रियां बड़ी भी और पाक बजाने से पार्वती आसन्न और मङ्गल प्रसन्न होते हैं क्योंकि पार्वती के पिता बृहस्पति का शिर कट जागी में बांध उसके पद पर बन्दे का शिर बांध दिया वा। उन्हीं अनुकरण को बन्दे के शब्द के सुन पाक बजाना मानते हैं। शिवरात्रि शरीर का न्त करते हैं, इस्रायि से मुक्ति मानते हैं इसलिये जैसे धम्ममार्गी भ्रान्त हैं वैसे शैव भी। इन में कितने कर कमजरे, मन्त्र मंत्री पुरी का आनन्द पर्वत और सागर तथा पुरुष भी शैव होते हैं। कोई १ दोनो दोनो पर चढ़ते हैं" अर्थात् धम्म और शैव दोनो मतों को मानते हैं और भित्ति ही वैष्णव भी रहते हैं अबक —

अन्त शक्त पद्मिनीयां समामभ्ये क वैष्णवा ।

नालाकपञ्चत श्रीमा विचरन्ति महीतले ॥

यह तन्त्र का श्लोक है। भीतर शक्त अर्थात् धम्ममार्गी बाहर शैव अर्थात् स्वाध्याय प्रवृत्त करते हैं और सम्य में कहते हैं कि हम वैष्णव [अर्थात्] किन्तु के उपासक हैं, ऐसे मन्त्र प्रकर के रूप धारण करके धम्ममार्गी लोग पृथिवी में विचरते हैं ॥

प्र०—वैष्णव तो अच्छे हैं ?

उ०—क्या कुछ अच्छे हैं जैसे वे जैसे वे हैं। देखो वैष्णवों की सीखा अपने को किन्तु का दास मानते हैं। उनकी से अधिकतर जो कि अज्ञेय होते हैं वे अपने को सर्वोपरि मानते हैं सो कुछ भी नहीं है ॥

प्र —क्यों सब कुछ नहीं ? सब कुछ है देखो ! ब्रह्मा में ब्रह्मण्य के चरित्रात्मिक के सत्य सिद्ध और बीच में पीछी रेखा भी होती है इसलिये हम अधिकार कहते हैं। एक प्राणायाम को कुछ दूसरे किसी को नहीं मानते। मङ्गल के सिद्ध का दर्शन भी नहीं करते क्योंकि हमारे ब्रह्मा में भी विराजमान है वह अज्ञेय होती है। आत्ममन्त्रादि शक्तों के पद करते हैं। ब्रह्मण्य की मन्त्रपूर्ण पूजा करते हैं। मंत्र नहीं ब्रह्म न मन्त्र पीते हैं, फिर अच्छे क्यों नहीं ?

उ —इस सिद्ध को हरिपरायण इस पीछी रेखा को भी मानना प्यर्थ है, क्योंकि यह तो तुम्हारे हृत् की करीबनी और ब्रह्मा का चित्र है। जैसा हृत् की ब्रह्मा चित्र चित्रित करत है। तुम्हारे ब्रह्मा में किन्तु के पद का चित्र कहाँ से आया ? क्या कोई ईश्वर में आकर किन्तु के पद का चित्र ब्रह्मा में कर आया ?

विचक्षी—और भी जग है का केतव ?

वैष्णव—केतव ह ॥

वि —तो यह रेखा जग होने से भी नहीं है। हम पूछते हैं कि भी ब्रह्माई हुई है का किया ब्रह्माई ? जो किया ब्रह्माई है तो यह भी नहीं क्योंकि इसको तो तुम निम्न अपने हृत् का बनाते हो फिर भी नहीं हो सकती। जो तुम्हारे ब्रह्मा में भी हो तो कितने ही वैष्णवों का बुरा मुख अर्थात् शोभा रहित क्यों रहित है ? ब्रह्मा में भी और पर २ भीष मन्त्र और सार्वभौम केन्द्र पर करते क्यों फिरते हो ? यह बात भीषी और निर्दोष की है कि कपास में भी और महा हरिणों के कम हो ॥

हममें एक परिक्रमण नामक वैष्णवमत था। यह जोरी राज्य मार, कुछ कम कर परमा भव हर वैष्णवों के पास वर प्रसन्न होता था। एक समय उसको जोरी में पशुधर्म कोई नहीं मिला कि जिसको लूटे। धातुय होकर फिरता था। नरामण ने समझा कि हमारा मत बुद्धि पाता है। सेठजी का स्वल्प वर भंगूड़ी छवि आभूषण पहिन रूप में बैठ के सामने जाये। अब तो परिक्रमण रूप के पास गया। सेठ से कहा सब वस्तु खींच दो नहीं तो मार डालूंगा। उतारते २ भंगूड़ी उतारने में देर लगी। परिक्रमण ने नरामण की भंगूड़ी कम भंगूड़ी ले ली। नरामण बड़े प्रसन्न हो खुर्चुर शरीर बना दर्शन दिया। कहा कि तु मेरा बड़ा प्रिय भक्त है क्योंकि तब जब मार लूट जोरी कर वैष्णवों की सेवा करता है, इसलिये तु धर्म है। फिर उसने नरामण वैष्णवों के पास सब गहने वर दिये। एक समय परिक्रमण को कोई साहूकर नीकर कर जहाज में किश के देशान्तर में ले गया वहाँ से जहाज में सुपारी मरी। परिक्रमण ने एक सुपारी तोड़ घाटा टुकड़ा कर बनिसे से कहा यह मेरी छापी सुपारी जहाज में घरपो और बिकवो कि जहाज में छापी सुपारी परिक्रमण की है। बनिसे ने कहा कि जाये तुम हजार सुपारी खेलेना परिक्रमण ने कहा नहीं हम धनमी नहीं हैं जो फूट लूट हैं। हम को तो छापी चाहिए। बनिसे ने, जो बिकवा मोठा मका था बिल दिया। अब अपने देश में बन्दर पर जहाज आया और सुपारी उतारने की ठिकारी हुई तब परिक्रमण ने कहा हमारी छापी सुपारी दे दो। बनिसे वही छापी सुपारी देने लग्य। तब परिक्रमण प्यावने क्षम मेरी जहाज में छापी सुपारी है छापा पाट लूण। राजपुत्रों तक भगाया गया। परिक्रमण ने बनिसे का सेवा दिखवाया कि इस ने छापी सुपारी देली बिली है। बनिसे बहुतसा कहा रहा परन्तु उसने व मात्र छापी सुपारी लेका वैष्णवों के अर्पण करी। तब तो वैष्णव बड़े प्रसन्न हुए। अन्तक उस ब्राह्मण परिक्रमण की मूर्ति मन्दिरों में रखते हैं। यह कथा भक्तमाल में लिखी है। बुद्धिमान् देखें कि वैष्णव, उनके सेवक और नरामण तीनों चोरमहजरी हैं या नहीं? कथि मजमतमन्तरी में कोई थोड़ा अच्छा भी होता है तथपि उन मत में रह कर सर्वथा अच्छा नहीं हो सकता ॥

अब जैसा वैष्णवों में फूट हुआ मित्र २ तिखक कपड़ी धारण करते हैं रामायणो पाण्ड में गोपीचन्दन बीच में छात्र बीमालता दोनों पतली देव बीच में छाया किन्तु, मन्त्रक कपड़ी छत्र और गौड़ बंगाली कटारी के तुल्य और रामायणकत्रे दोनों बड़ेसा (छा के बीच में एक सफेद गोष्ठ टीक इत्यदि इनका कथन बिजपण्ड २ है। रामायणो नरामण उ ब्रह्म में छात्र देता को छापी का बिन्दु और गोली भी हृदयकन्तरी क तरप में सापात्री विराजमान है इत्यदि कथन करता है ॥

एक कथा भक्तमाल में मिली है। कई एक मनुष्य गुरु के जीने सोता था। सोता २ ही मरणात्। अगर न काक न गिरा करी। यह सचारा पर तिखकभार दगाई थी। वही कम के दूत उसको खन जाने। इसने में बिन्दु क दूत भी पहुँच गये। दोनों विचार करते थे कि यह हमारा स्वामी की आज्ञा है हम बमखोक में

में लेनामगे। किन्तु के वृत्तों में कहा कि हमारे स्वामी की आज्ञा है वैकुण्ठ में ले जाने की। देखो इसके बहाने में दियाच का तिखक है। तुम कैसे ले जाओगे? तब तो यम के दूत चुप होकर चले गये। किन्तु के दूत सुपुत्र स उसको वैकुण्ठ में लेगये। धारात्मक ने उसको वैकुण्ठ में रक्खा। देखो जब चक्रमात् तिखक का जाने का ऐसा माहात्म्य है तो जो अपनी गीति और हाथ से तिखक करते हैं वे गरक य दूर वैकुण्ठ में जायें तो इसमें क्या बाधार्थ है!! हम प्रमत्त हैं कि जब बाढ़े से तिखक के करने से वैकुण्ठ में जायें तो सब मुख ऊपर छेपन करने का कासा मुख करने का शरीर पर छेपन करने से वैकुण्ठ से भी जाये सिधार जात है या नहीं? इससे ये बातें सब ध्वंसे हैं।

जब इनमें बहुत से जाली बकने की बहानी खग्य पूरी लपट जटा पदात्त सिद्ध का कर कर सेते हैं? बगुने के समान ज्वालाश्लिष्ट होते हैं गांजा मोग्य जल के सम लपटो काक नत्र स्रष्टं सब से कुत्तो २ जब विद्यान कीड़ी पैस मंग्यो एहत्तों के बहनों को पक्षककर चेहे बना सेते हैं। बहुत करके मग्न होम उनमें होते हैं। कोई विद्या को पकटा हो ता उसको पकने नहीं दत किन्तु कहत है कि—

पठितव्यं तदपि प्रसेप्यं दन्तकटाकटति किं फलम्यम् ॥

सन्तों का विद्या पकने से क्या काम क्योंकि विद्या पकने कहे भी मरजात है फिर दन्त कटाकट क्यों करना? साधुओं को बार पाम फिर धाम्य सन्तों की धाच करनी समझी का मज्जन काया ॥

जो किसी ने पूर्ण अभिव्य की पूर्ति न ली हो ता जालीजी का दर्शन कर ध्वंसे। उनके पास जो काई जाता है उनको बसा बसी करते हैं चाई वे जालीजी के धाच मो के समान क्यों न हो? जैसे जालीजी हैं पैस ही कपड़ सूत्रक गोरदिवे और जमात बाब मुतारसाई और धरखी कनछे जाती धीपद ध्वनि पक्ष्य है ॥

एक जाली का कथा श्री गणेशाय नमः" घोसला २ कुने पर जब भाने को गया। बड़ा परिश्रत बैठा था उसका श्रीगणेशाय नमः में घोसल दण्डकर बोला करे स्वपु। प्रगुद घोसला है "श्री गणेशाय नमः" एसा बोला। उसने थड छोटा मर गुस्सी के पास जा कहा कि एक बम्भन मर बोझने को समुद कहता है एसा सुनकर थड जालीजी उठ दूध पर गया और परिश्रत से कहा नू मर बड को बहकता है? नू गुक की धरखी क्या बता है? एक नू एक प्रधर का नाड जयता है हम तीन प्रधर का जानत है। "धीगनेसायनमं" श्रीगणेशायनमं" धीगनेसायनमं" ॥

परिश्रत—मुनो साधुजी? विद्या की बात बहुत कहिन है किना परे नहीं ध्यती ॥

जाली—बड के सब बिद्यान का हमने एगु मार या धजा में बोट एक हम सब डहा दिहे। सन्तों का पर कहा है। नू ब दूहा क्या जय ॥

पं०—एगो? जो मुमने विद्या पढ़ी हानी ता जय अपराधर क्यों बोधत? सब प्रधर का मुमको ज्ञान होगा ॥

आ०—अब तु हमारा गुरु बनता है ? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते ॥

पं०—सुनो कहाँ से ? बुद्धि ही नहीं है । उपदेश सुनने समझने के क्षिपे बिपक्ष चाहिये ॥

आ०—जो सब शास्त्र पढ़े सन्तों को व मनेसो जानो कि क्या कुछ भी नहीं पस ॥

पं०—हां हम सन्तों की सेवा करते हैं परन्तु तुम्हारे से दुर्दृष्टों की नहीं करते क्योंकि सन्त सज्जन विद्वान्, धार्मिक परोपकारी पुरुषों को कहते हैं ॥

आ०—देख हम रात दिन बंसे रहते भूली तापले गांधा करस के सेंकरी हम कण्ठसे तीन १ सोझा भोग पीले पांख भोग धनुष की पत्ती की मन्त्री कण्ठ करते संक्षिप्ता और बाधोम भी कण्ठ भिगाह करते कसा में एक रात दिन केमन रहते बुद्धि को कुछ नहीं समझते मीन मंगलर दिख कण्ठ करते रात मर देसी बाधो उन्नी जो पास में सोवे उसको भी बंदि कमी व जाने हृन्मदि सिद्धिवा और साधुप हम में हैं । फिर तु हमारी विन्दा क्यों करता है ? केत मानते जो हम को दिख करेय हम तुमको भ्रम कर दाखेंगे ॥

पं०—वे सब बचक्य घस्रायु मूर्ख और कर्मरहों के हैं, साधुओं के नहीं । सुनो “साधोति परायि धर्मकार्याणि स साधु” जो धर्मपुत्र उत्तम कर्म के सरा परोपकार में मग्न हो कोई दुर्गुण विषमों व हो विद्वान् प्रलोपदेष्ट से सब का उपकार को उसको साधु कहते हैं ॥

आ०—कह ने तु साधु के कर्म क्या जाने ? सन्तों का घर बड़ा है किसी सन्त से परकना नहीं नहीं तो देख एक बीमरा उद्यमर मन्त्र कपाह कुछव सेय ॥

पं०—सम्पन्न प्यली बाधो अपने कामस पर हम से बहुत गुत्त मर हो । जानते हो रामन कैसा है ? किसी को मनेसे तो एकके बाधोगे केन भोगोके केत बाधोगे व कोई तुमको भी मर करेय फिर क्या करोये ? यह साधु का बचक्य नहीं ॥

आ०—बचके केले ! किन शास्त्र का मुक्त दिखकाय ॥

पं०—तुमने कमी किसी महात्मा का संन नहीं किया है नहीं तो देखे सब मूर्ख व रहते ॥

आ०—हम धाय ही महात्मा हैं हमको किसी दूसरे की गत्र नहीं ॥

पं०—जिनके भ्रम नर होते हैं उनकी तुम्हारी ही बुद्धि और जमिमाय होता है ॥

आ०—बड़ा गम्य भासन हर और पयिद्यत पर को जाने ॥

अब धर्म्य धर्ती होगई तब उस धर्ती को बुद्ध समझ बहुतसे प्यली “धर्मदोष १” करते साहांग करके बडे । उस धर्ती ने पृष्ठ - अबे रामरसिया ! तु क्या पता है ?

रामरसन—महाप्राय । मैंने “धर्मसहस्रनाम” पढ़ा है ॥

अबे गोविन्दसिने । तु क्या पता है ?

गोविन्दसिने—मैं “रामसतनाम” पढ़ा हूँ प्रयुक्त प्यलीजी के पास से ॥

तब रामदास बोला कि महाराज 'आप क्या पढ़ें हैं ?

प्रा०—हम गीता पढ़े हैं ।

गम०—किसे पत्स !

प्रा०—बस ब्रह्म ! हम किसी का गुरु नहीं करत । जब हम परमात्मा में रहत थे । हमको ब्रह्म ही कहा जाता था । जब किसी धर्मवीर का ब्रह्म प्रविष्ट को दण्ड या लज गीता के गाने में पुरुष का कि उस कल्याणकारी ब्रह्म का क्या नाम है ? उस पुरुष का ब्रह्म ही कहा जाता था ।

[illegible]

इममे स पाथे क्य मन्त्र मम शिषाय" । शिष्यो क्य नृसिंहाय नमः ।
रामकर्मो क्य 'श्री रामचन्द्राय नमः' अथवा साधारणमात्राया नमः ।
कृष्णायसर्को क्य 'श्री राधाकृष्णाय नमः' । ममा भगवत वास्तुदेवाय"
और ब्रह्मसिंहो क्य 'गोविन्दाय नमः' । इय मन्त्रो क्य क्य मे पढने मात्र स
शिष्य क्य कृत हुँ और एनी २ शिष्य करत हुँ कि वरुण तु मे क्य मन्त्र पढने—

अथ पविस्तर सद्यस्त्र पयिगर आर पयिगर कुम्भा ।

शिव कहे सुन पायवी मूषा पवितर हुआ ॥

भद्रा स्म की वो बना मायु का विद्वान् हान अथवा जगत् के उपरान्त कर्म की कमी हो सकती है ? अच्छी रात दिन कहकर ध्यान (जगत्की कबड) उदात्त कर्म है । एक महीन में कई वर्षों की लकड़ी कुछ रत्न है । जो एक महीन की लकड़ी के मूल्य से कमपात्रि कर्म लोते ता शरीर धन से आभन् में रह । उबका हमनी बुद्धि कहाँ से आता ? और अपना नाम उभो धूनी में तपन ही से तरल हो भर लम्बा है । जो हम पत्थर लपटकी हासके ता उदयी मनुष्य हमन भी अधिक तरल होकर है । जो जय बहाव, रात खगलन तिराक कर्म से तरल हो हाजाव ता सब कई कर सक । व उपर के लक्षणों और भीतर के महार्थों ही हान है ।

प्र०—क्यातुम्ही गो बघा ?

१ - बहो ॥

प्र०—क्या चण्डू नहीं ? आध्यात्मिक मूर्खता का लक्षण क्या है ? कभी
नहीं हुआ ? मैं उनका पुत्र, चण्डू में भी कुछ हास्य । बड़ा लियु महाराज का
उत्तर अब नहीं था जब भी कभी मन्दार व । बड़े मित्र, उस कि जिस रूप का

आ०—अबे तू हमारा गुरु बनता है ? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते ॥

पं०—सुनो कहाँ से ? बुद्धि ही नहीं है । उपदेश सुनने समझने के बिना क्या चाहिये ॥

आ०—जो सब शास्त्र पढ़े सन्तों को न माने तो जानो कि वह कुछ भी नहीं पढ़ा ॥

पं०—हां हम सन्तों की संख्या करते हैं परन्तु तुम्हारे छे गुरुओं की नहीं करते क्योंकि सन्त सम्मन विद्वान्, धार्मिक परोपकारी पुरुषों को कहते हैं ॥

आ०—देख हम रात दिन बगे रहते भूमी छात्रों गाँवाँ घरों के सैकड़ों हम छात्रों तीन २ छोटा बंग पड़े गाँवाँ भोग चतुष्टय की पत्नी की मम्मी क्या करते शिक्षा और चाक्री भी चढ़ किम्वद्वि करते यहाँ में गुरु रात दिन बेगम रहते बुद्धि को कुछ नहीं समझते सीख मगनकर टिकन क्या करते रात भर पेसी खांसी उखरी को पास में सोवे उसको भी बलि कमी न माने इत्यादि सिद्धि और साधुपण हम में है । फिर तू हमारी किम्वद्वि क्यों करता है ? केत छात्रों को हम को शिक्षा करवा हम तुमको सम्मन कर रखेंगे ॥

पं०—ये सब सबक्य असंशु सुख और गम्यबर्हों के हैं साधुओं के नहीं । सुनो "साधुगति पराधि धर्मकापीयि स साधु" जो धर्मपुरुष उत्तम कर्म करे सब परोपकार में मग्न हो कोई दुर्गुण जिसमें न हो विद्वान् सत्वोपदेश से सब कर्म उपकार के उसको साधु कहते हैं ॥

आ०—कह ने तू साधु के कर्म क्या जाने ? सन्तों का घर बड़ा है किसी सन्त से अटकना नहीं नहीं तो देख एक बीमर उठकर मारवा क्या कर कुछ करे ॥

पं०—आज्ञा छात्री जानो अपने आसन पर हम से बहुत गुस्से मत हो । जानते हो राम कैसा है ? किसी को समोग तो एकद्वे आचोग द्वेद भोगोमे केत आचोगे या कोई तुमको भी मार कैमग फिर क्या करोगे ? वह साधु का सबक्य नहीं ॥

आ०—बसने केले ! किस राक्षस का मुक दिवकाया ॥

पं०—तुमने कमी किसी महात्मा का ज्ञा नहीं किया है नहीं तो देखे जब सुख न रहते ॥

आ०—हम आप ही महात्मा हैं हमको किसी दूसरे की गान नहीं ॥

पं०—जिबके आत्म बड़ होते हैं उनकी तुम्हारी सी बुद्धि और अभिमन होता है ॥

आ०—बस गम्य आसन पर और पवित्र भू को माने ॥

जब साज्या धर्ती होगई सब उस छात्री को बुद्धि समझ बहुतम छात्री "आचोगे २" करते साहाय करके बडे । उस छात्री ने पूजा—अब रामप्रतिष्ठा ! तू क्या पढ़ा है ?

रामराम—महाराज ! मैंने "वेदमुसहसरमाम" पढ़ा है ॥

अब गोविन्दप्रतिष्ठा ! तू क्या पढ़ा है ?

गोविन्दप्रतिष्ठा—मैं "रामसतसज" पढ़ा हूँ अमुक छात्रीजी के पास से ॥

क्यों सिखा ? और इसका रहस्य उनका बनाया संस्कृतो छात्र है याद है कि मैं संस्कृत में भी पढ़ा था। परन्तु बिना पढ़े संस्कृत क्या था संस्कृत ? हाँ उस प्रयोगों के सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था संस्कृतो बनाकर संस्कृत के भी परिचित बन गए हैं। भला यह क्या अपन मान्यताओं और अपनी प्रणयि की इच्छा के लिए कभी न करत। उनका अपनी प्रतिष्ठा की इच्छा भरत भी नहीं था। तैसी भाषा जानते थे बहुत रात और वह भी वह एक कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मान्यताओं के लिए कुछ भी किया हाथ ? इसीलिए उनके प्रथम में जहाँ लहो बहों की निम्ना और सुनि भी है क्योंकि जो पढ़ा न करत तो उसमें भी कोई वह का चर्च पढ़ता जब न पढ़ता तब प्रतिष्ठा वह होनी इसीलिए पहिल ही अपने शिष्यों के सम्म कहीं २ वरी के विरुद्ध बाधत थे और कहीं २ वर्ष के लिए प्रच्छा भी कहा है क्योंकि जो कहीं प्रच्छा न करत तो छात्र उनका शैलिक बाधत तैस—

यद् पठत प्रया मर चारो यद् कहानि ।

सम्प[साध] कि महिमा यद् न जान ॥ मुख्यपी पीवी ३ । वा ८ ॥

मानक प्रत्यक्षानी आप परमभर ॥ मु पी ८ । वा १ ॥

क्या वह पढ़त का मर गये और नाकजी चारि अपने का धर्म समझत थे ? क्या वह नहीं मर गये ? वह तो सब विषयों का भंडार है परन्तु जो चारों वरी का कहानी कह उसकी सब बात कहानी है। जो सुनी का प्राम सम्प हाता है वह विचार पढ़ों की महिमा कभी नहीं जान सकते। जो नाकजी वरी ही का मान करत तो उनका समझाव न करत न वे गुरु बन सकते थे क्योंकि संस्कृत विषय तो पढ़ ही नहीं थे तो दूसरे का पढ़ाव शिष्य कैसे बना सकते थे ?

यह सब है कि जिस समय नाकजी पंथा में हुए थे उस समय पंथा संस्कृत विषय से संबंध रहित मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने कुछ छात्रों का बचवा। नाकजी के समय कुछ उनका समझाव या बहुत से शिष्य नहीं हुए थे क्योंकि जबिना में वह था है कि मर पीव उनका सिद्ध बना था है। पढ़त बहुत से महत्त्व के रूबर के मान्य मान फल है ॥

हाँ 'नाकजी वह पंथा और रहम भी नहीं थे परन्तु उनके बहों न नाककादर' और 'उम्मागारी' चारि न वह सिद्ध और वह १ पधरंज न विषय है। नाकजी प्रया चारि न सिद्ध कहीं बलापीन की सचम इनका मान्य किना नाकजी के विरुद्ध में बहुत से पाठे न हाथी मान कहीं माली पढ़ा चारि रको न उठे हुए और समझ रको का पढ़ाव न था विषय है। भला वे पढ़ावे नहीं तो क्या है ? हमसे इनके बहों का हाथ है नाकजी का नहीं ॥

हमसे जो उनके पीव उनके पढ़क से उम्मागारी और रामराम चारि न विनेन। किन ही गरीबों के भाव बनाकर पढ़ में रहती है अपना इनका गुरु गरीब-महरी पढ़ा हुआ। उनके पीव हम पढ़ में किसी की व्याप नहीं मिताई गई किन्तु वही गुरु के विरुद्ध दाद १ दुम्नक थे उस सबका रूबर के विरुद्ध बंधन हो। हम छात्रों न भी नाकजी के पीव बहुत भी भाव करते। किनो

यह पुराण भी नहीं जान सकता उसका कबीर जानत है। सदा राखा है सा कबीर ही ने लिखाया है। इसका मन्त्र 'सत्यनाम कबीर' आदि है ॥

३०—पापम्यादि को छोड़ पछेग गद्दी तकिये पढ़ाई, म्योति भयात् दीप आदि का पूजा पापम्यमूर्ति में म्यून नहीं। क्या कबीर साहब मुकुण का का कहिवां भी जो फुलों से रूपक हुआ ? और अन्त में पूज होगया ॥

यहाँ जो यह बात सुनी जाती है वही सही होगी कि कोई तुझाहा करती में रहता था। उसके सबके बाहरक नहीं थे। एक समय बोड़ी सी रात्रि थी। एक गद्दी में चढ़ा जाता था तो देखा सबक के किनार में एक टोकरी में फूलों के बीच में उसी रात का चम्पा बाहरक था। वह उसको उठा लेगया अपनी बी को दिया उसने पाकव किया। जब वह बड़ा हुआ तब तुझाहे का कर्म करता था किसी पण्डित के पास संस्कृत पढ़ने के लिये गया उसने उसका अपमान किया। कहा कि—हम तुझाहे का नहीं पढ़ते। इसी प्रकार कई पण्डितों के पास किया परन्तु किसी ने न पढ़ाया। तब ऊपरतंग माया कणकर तुझाहे आदि नीच लोगों को समझने लग्य। तन्मतुं छेकर गयता था मजान करता था। शिरोप पण्डित राजा केवों की निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख लोग उसके जाह न फंस गये। जब मर गया तब लोगों ने उस सिद्ध बना दिया। जो २ उमरे जीते की बनाया था उसका उसके चेहरे पड़े रहे। जब को मृत्यु के जो शब्द सुका गयता है उसको बनहत शब्द सिद्धान्त छहराया। मज की इति को सुरति कहते हैं। उसको उस शब्द सुनने में लग्यता उसी का सन्त और परमेश्वर का ज्ञान बतलाते हैं। वहाँ कसब नहीं पहुँचता। वहाँ के समान सिद्धक और कन्दमादि कर्म की कंठी बाँधते हैं। महा विचार के लोको कि इसमें पायता की उन्नति और ज्ञान क्या कह सकता है ? वह ज्ञान सबको के लेश के समान कीजा है ॥

प्र०—पंजाब देश में नामकजी ने एक मार्ग बताया है क्योंकि वह मूर्ति का कल्पन करते थे मुसलमान होन से बचने के लिये भी नहीं कुछ किन्तु पूज्य बने रहे। देखो उन्होंने यह मन्त्र उपदेश किया है इसी से विदित होता है कि उनका आशय अच्छा था ॥

औं सत्यनाम कर्ता पुरुष निर्मा निर्भर अकालमूर्त अजोनि सहस्रं गुरुप्रसाद अप आदि सब ज्ञादि सब है भी सब नामक होसी भी सब ॥ जपजी पीजी ॥

(ओ३म्) जिसका सत्य नाम है वह कर्ता पुरुष भव और कैरहित कल्याणमूर्ति जो कस में और ओवि में नहीं जाता अकालमाल है उसी का अप पुरु की कृपा से कर वह परमात्मा आदि में सब का ज्ञान की आदि में सब वर्तमान में सब और हास भी सब ॥

३ — नामकजी का ज्ञान तो अच्छा था परन्तु बिना कुछ भी नहीं था। हाँ माया उस दश की जो कि व्योम की है उस जानत थे। केरादि शब्द और संस्कृत कुछ भी नहीं जानत थे। जो जानते होते तो निर्भय शब्द को निर्मो

३०—अच्छा तो वेदमार्ग है जो पक्का जाय तो पक्की नहीं तो सदा गलत करते रहोगे। इनके मत में दाम्बजी का जन्म गुजरात में हुआ था। पुनः जयपुर के पास “धामर” में रहते थे तबही का काम करते थे। ईश्वर की धृति की विचित्र बीका है कि दाम्बजी भी पुकारे जाय गये। जब कश्मिरी शास्त्रों की बातें जोड़कर ‘दाम्बरम् १’ में ही मुक्ति मान्य थी है। जब सत्योपदेशक नहीं होते तब पक्ष २ ही बचने बचा करते हैं ॥

याये दिन हुए कि एक “रामल्लेही” मत शम्भुपुरा से चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्म को छोड़ कर “राम १” पुनरुत्था अथवा मान्य है। इसी में ज्ञान स्थान मुक्ति मान्यते हैं। परन्तु जब मूक बगती है तब “राम नाम” से रोटी शाक नहीं निकलता क्योंकि कामपाल आदि तो गृहस्थों के घर ही में मिलते हैं। व भी मूर्तिपूजा को चिखलते हैं परन्तु आप स्वयं मूर्ति बन रह हैं। जिनों के घर में बहुत रहते हैं क्योंकि रामजी को “रामकी” के बिना कामन्व ही नहीं मिल सकता। अब थोड़ा सा क्लिष्ट रामल्लेही के मत विषय में लिखते हैं—

एक रामचरित्र नामक साधु हुआ है जिसका मत मुख्य कर ‘शम्भुपुरा’ स्थान मेवाड़ से चला है। वे “राम १” कहने ही को परम मन्त्र और इसी का सिद्धान्त मानते हैं। उनका एक ग्रन्थ कि जिसमें सन्तद्वयजी आदि की कथा है पंजा लिखते हैं—

इनका वचन—भरम रोग तब ही मिट्या रट्या मिरखन पार।

तब अम का कागज फट्या कल्पा कम तब खार ॥ सन्धी ॥ १ ॥

अब बुद्धिमान् लोग विचार करें कि राम १ कल्प से जन्म जो कि चरम है का कामकाज का पारानुक्रम शम्भुपुरा स्थान किये हुए कर्म कभी बूढ़ सकते हैं या नहीं? यह कल्प मनुष्यों को पापों में फँसाता और मनुष्यजन्म को बह कर दमा है। अब इनका जो मुख्य गुण हुआ है ‘रामचरित्र’ इसका बचन—

महमा नाव प्रताप की सुनी सरवसु चित्त जाइ।

रामचरण रसना रटौ कम सकल भङ्ग जाई ॥

जिन जिन सुमर्षा जाय हूँ सा सब उतरया पार।

रामचरण जो बीसर्षा सो ही अम के द्वार ॥

राम बिना सब भूठ बतायो। राम भजत बूढ़या सब कम्पा ॥

जन्म भर सूर है परकम्पा। राम फहे तिन हूँ मैं नाहीं ॥

तीन श्लोक में कीरति गाहीं। राम रटत अम आर न काही ॥

राम नाम जिन पधर तराई। भगति हेनि श्रीगार ही धरही ॥

ऊँच नीच कुल भई विचार। सा ता जन्म आपसो हारे ॥

सठा के कुल बीसे नाहीं। राम राम कह राय समझाही ॥

पसा कुल जो कीरति गाये। हरि हरि जन को पार न पाये ॥

राम मर्ता का जन्म ना आव। आप आपकी बुद्धि सम गाये ॥

हैं। ने जाना प्रभु की पुराणों की मिथ्या कथा के मुख्य बना दिने परन्तु प्रकाशकी आप परमेश्वर का के उस पर कर्मोपासना जोड़कर, इनके शिष्य मुक्त हो गये। इसने बहुत विचार कर दिया नहीं जो मानवजी ने कुछ अधिक क्रिष्ण ईश्वर की बिम्बी थी उस करते करते तो अच्छा था ॥

अब उदासी कहते हैं हम बड़े निर्मले कहते हैं हम बड़े प्रकाशकी तथा धृतराष्ट्र कहते हैं कि सर्वोपरि हम हैं ॥

इसमें गोविन्दसिंहजी धरवीर हुए जो सुसज्जमानों ने उनके पुत्रपौत्रों को बहुत सा हुक्म दिया था उससे कैर खेला चाहते थे परन्तु इनके पास कुछ सामग्री न थी और उधर सुसज्जमानों की बाइकाही प्रभावित हो रही थी। इन्होंने एक पुरस्कार कर दिया। प्रसिद्धि की कि मुझ को इसी से कर और खड़ा दिया है कि तुम सुसज्जमानों में सबसे तुम्हारा विजय होगा। बहुत सारा लोग उसके साथी हो गये और इन्होंने जिस सामग्रियों में पंचमकर कायिकियों ने 'पंच संस्कार' कहा है उस पंच ककर खोजे इनके पंच ककर पुत्र के उपयोगी थे। एक—'कंठ' अर्थात् जिसका रक्तने से खड़ाई में अच्छी और तबकर स कुछ बचकर हो दूसरा—'कंठ' जो शिर के ऊपर पगड़ी में अच्छी डोम रखते हैं और हाथ में 'कंठ' जिसका हाथ और शिर सब सके। तीसरा—'कंठ' अर्थात् ऊपर के ऊपर एक जंघिया कि जो बौहने और धूने में अच्छा होता है बहुत करके अच्छे के सह और वह भी इसको इसीविध धारण करते हैं कि जिससे शरीर का मर्मस्थान बच रहे और अच्छा न हो। चौथा—'कंठ' कि जिसका केत सुभरते हैं। पाँचवा—'कंठ' (कंठ) जिसका शत्रु स भेद भयकर होने स खड़ाई में कम आता। इसीविधे यह रीति गोविन्दसिंहजी ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के शिष्य की थी अब इस समय में उनका रक्तना कुछ उपयोगी नहीं है परन्तु अब जो कुछ क प्रयोजन क शिष्य का कर्तव्य भी उनका धर्म क साथ मान ली है ॥

मूर्ति पूजा तो नहीं करते किन्तु उसका क्रिष्ण मन्त्र की पूजा करते हैं। क्या यह मूर्ति पूजा नहीं है? किसी जगह वरुण के सामने धिर मुक्तना का उसकी पूजा करना सब मूर्तिपूजा है। जिस मूर्ति कहीं ने अपनी बुद्धि जगत्त जीवित खड़ी की है उस इन लोगों ने भी कर ली है। जिस पुत्रारी खाना मूर्ति का दर्शन करता भेद चाहता है उस मानवजी खाना मन्त्र की पूजा करते करता भेद भी चाहता है अर्थात् मूर्तिपूजा काय जिलाय वेद का मन्त्र करता है उतना न खाना मन्त्र सादर बाध नहीं करता ॥

हो यह कहा जा सकता है कि इन्होंने बड़ों को न मुया न रक्त क्या करें? जो मुने और इनमें से चाहें तो बुद्धिमत्ता खाना जा कि इसी पुराणही नहीं है वे सब मन्त्ररत्न काय वैदिक में पाया जाता है। परन्तु इन सब न भाव्य का कदाहु बहुत सा दया दिया है और इसका दयाय का विचारसक्ति बुद्धिमत्ता को भी दयाय वैदिक की उक्ति कर ता बहुत अच्छी बात है ॥

य एतन्मयी का मानी जा सकता है ?

३ — प्रश्न तो बेरमानी है जो पन्ना बाप तो पन्ना मही तो सदा गाता करते रहोगे। इनके मत में बम्बूजी का जन्म गुजरात में हुआ था। पुनः अजपुर के पास 'घामेर' में रहते थे तबही का जन्म करते थे। ईश्वर की छवि की विचित्र खीछाई कि बम्बूजी भी पुजाने लग गये। अब बहादि शाहों की बरतें जोड़कर 'ठाकुराम १' में ही मुक्ति भाग ली है। अब समोपदेशक नहीं होते उन पंथ १ ही बचने चला करते हैं ॥

बोले दिन हुए कि एक 'रामलक्ष्मी' मत रामपुरा से चला है। उन्होंने सब बेरोक कर्म को छोड़ के राम १ पुनरावा प्रस्थापित किया है। उसी में जल ज्वल मुक्ति प्राप्त है। परन्तु अब भूख लगती है तब 'राम राम' से रोटी तक नहीं निकलता क्योंकि कल्पवृक्ष आदि तो गृहस्थों के लक्ष्मी में मिश्रित हैं। व भी बर्षिष्ठा को बिछारते हैं परन्तु आप स्वयं मूर्ख बने रहे हैं। किसी के सङ्ग में बहुत रहते हैं क्योंकि रामजी को 'रामलक्ष्मी' के बिना भालम् ही नहीं मित्र सकता। अब बोध सा विशेष रामलक्ष्मी के मत विषय में लिखते हैं—

एक रामचरित नामक साधु हुआ है जिसका मत मुख्य रूप 'ठाकुरा' लक्षण मेधा है। वे राम १ कहते ही को परम मन्त्र और इसी का सिद्धांत मानते हैं। उनका एक मन्त्र कि जिसमें सन्तवासनी आदि की कच्ची है ऐसा लिखते हैं—

उतका वचन—भरम रोग तब ही मिछा रह्या मिछान राह ।

तब उम का कागज पन्ना कन्ना कर्म तब जाह ॥ साखी ॥ १ ॥

अब बुद्धिमान लोग विचार करें कि 'राम १' कहने से जस जो कि ब्रह्म है वह वस्तु का पापापुण्य कागज कन्ना किन्तु हुए कर्म कमी कूट सकते हैं वह नहीं ? यह केवल मनुष्यों को पापों में फँसाना और मनुष्यवत्त्व को नष्ट कर देना है। अब इनका जो मुख्य गुण हुआ है 'रामचरित' उसका वचन—

महमा नाथ प्रताप की सुनी सरवण चित्त जाई ।

रामचरित रसना रटी कर्म सकल भङ्ग जाई ॥

जिन जिन सुमया नाथ हूं सो सब उतरवा पार ।

रामचरित जो बीसया सो ही उम के द्वार ॥

राम बिना सब भूट बतायो । राम भक्त सुदया सब कर्मा ॥

बन्ध अरु सूर बेर परकम्मा । राम कहे तिन हूं मैं नाहीं ॥

तीन लोक म कीरति नाहीं । राम रहत जग द्वार न जाने ॥

राम नाम किन पथर तराई । भगति हेति अंतर ही धरही ॥

अन्ध भीष कुल भेद विचार । सो ता जन्म आपणो द्वारे ॥

संतों के कुल दीखे नाहीं । राम राम कह राग समझाही ॥

ऐसा कुरा जो कीरति गाथ । हरि हरि उम को पार न पावे ॥

राम सता का अन्त ना आवे । आप आपकी बुद्धि सम गाथ ॥

इनका अर्थ—प्रथम तो रामचरण आदि के प्रथम देखने से चिन्तित होकर है कि यह प्रमीय एक सत्ता सीधा अनुभव था। मन्त्र कुछ पढ़ा था नहीं तो ऐसी गपधपौस क्यों लिखता। यह केवल इनको प्रम है कि राम १ कहने से कर्म बुरा बन केवल वे अपना और दूसरों का जन्म जोते हैं। जन्म का मन्त्र तो बड़ा भारी है परन्तु रामसिपाही जोर करके, व्यास छर्प बीज और मन्त्र आदि का मन्त्र कभी नहीं छूटा। आगे रात दिन राम १ किया करें कुछ नहीं होमा। जैसे—

सत्तर १ कहने से मुक्त मीठा नहीं होता जैसे सत्यार्थआदि कर्म जिने किम राम १ करने से कुछ भी नहीं होमा और यदि राम १ करना ... इनका राम नहीं सुनता तो जन्म मर कहने से भी नहीं सुनेगा और जो सुनता है तो दूसरी का भी राम १ करना पार्व है। इस लोगों ने अपना पट भरवा और दूसरों का भी जन्म मर करने के लिये एक पावनरुत कहा किया है सो वह बड़ा आश्चर्य इस सुनते और रक्षत है कि राम तो पदा रामसिपाही और जन्म करते हैं राक्षसेही का। जहां देखो वहां राक्ष ही राक्ष सन्तों को धेर रही हैं यदि ऐसा १ पावनरुत म कहते तो आर्जुनवर्ष देश की दुर्गता क्यों होती ? वे बीज अपने केहों को मूढ़ लिखते हैं और जिना भी जन्मी एक के दृष्टान्त प्रमाण करती हैं। दृष्टान्त में भी जिनों और साधुओं की सीखा होती रहती है ॥

अब दूसरी इनकी साक्षात् 'केदार' प्रम मरवाइ देश से नहीं है। उसका इतिहास—एक रामदास नामक जाति का देह बड़ा आकाश था। उसके दो बेटे भी। यह प्रम बहुत दिव तक बीज होकर कुत्तों के साथ काटा रहा। पीछे कभी कृष्णपत्नी। पीछे रामदेव का "कर्मविद्य" † क्या। अपनी दोहों जिनों के साथ गता था। पूरे भूमता १ सीपछ † में देहों का गुण रामदास + का उससे मिठा। उससे इनको "रामदेव" का पन्ना कता के जन्मा क्या कमाया। उस रामदास ने अपना प्रम में जगह बनाई और इसका इधर मत क्या। उधर रामपुर में रामचरण का। उसका भी इतिहास ऐसा सुना है कि यह जगपुर का बनिषा था। उसने 'रांठड़ा' प्रम में एक साधु से देह लिया और उसको गुद किया और रामपुर में जाके दिखी जमाई ॥

॥ अर्थात् एक बार राम १ करने से । सं ॥

† रात्रिप्राने में 'कर्म' लोग जगह कछ रज कर "रामदास" आदि के गीत जिनका वे 'राध' कहते हैं 'जगहों और जग्य जातिओं का मुनते है व 'कर्मविद्ये' कहलाते हैं ॥

सीपछ' बीजमर के राज्य में एक बड़ा प्रम है ॥

+ गुण हरिरामदास ने बहुत गुरदा (बजाई) जाति ५ थ। गुण हरिरामदास क कले रामदास जगुत मन्त्रवा (बजाई+देह महार) जाति के थे। व दि सं १ ८३ आशुष्य बरी १३ शुक्लवार को जन्म प्रति म १८२४ दि आश्विन बरी ० अंगभार का शरीर बड़ा। (ज सि ग)

माछे मनुष्यों में पाण्डवों की जड़ गीत जम जाती है जम गई । हम सब में ऊपर के रामचरण के बच्चों के प्रमाण से चेष्टा करके बीच बीच का कुछ मंद नहीं । माछव्य से अन्धकार पूर्णता हममें केले बसते हैं । अब भी कृष्णपत्नी से ही हैं क्योंकि मछी के कुत्तों में ही रहते हैं और साधुओं की भूमि जग है । वेदधर्म का मत्ता पिता संसार के व्यवहार से बहक कर कुछ सेते और चेष्टा बना बने हैं और राम नाम का महामन्त्र मानते हैं और इसी को "कुच्छम" १ वेद भी करते हैं । राम २ करने से अचान्त जन्मों के पाप बूट जाते हैं । इसके विधि मुक्ति किसी की नहीं होती । जो बात और प्रजास के साथ राम २ कहा करता है उसको मन्त्रगुण करते हैं और सत्यगुरु को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हैं उसकी मूर्ति का ध्यान करते हैं । साधुओं के कसब थोके पीत हैं । जब गुरु से चेष्टा दूर जान ता गुरु के बच और रानी के बच अपने पास रख लेते । उसका करवायुन विष लेते रामदास और हररामदास के बच्ची के पुस्तक को कृ स अधिक मानते हैं । उनकी परिष्कमा और घाट दबकण् प्रथम करते हैं और जो गुरु समीप हा ता गुरु को दबकण् प्रथम कर लेते हैं । जी का पुस्तक को राम २ एकदा ही मन्त्रोपदेश करते हैं और बमत्समस्त ही स कल्याण मानते पुनः पढ़ने में पाप समझते हैं । उनकी सत्की—

पण्डिताई पाने पढ़ी ओ पूरबको पाप ।

राम २ सुमरना बिना रहग्या रीतो आप ॥

कद पुराण पढ़े पढ़ गीता राममन्त्र विष रह यथ रीता ॥

मेरे २ पुस्तक बचते हैं जी को पति की मन्त्र करने में पाप और गुरु और साधु की सब में धर्म कतछाते हैं बच्चीधर्म को नहीं मानते । जो माछव्य रामचेष्टी न हा तो उनके बीच और चाँदास रामचेष्टी हो तो उसको बचन पावते हैं अब इधर का अचान्त नहीं मानत और रामचरण का बचन जो ऊपर लिख देने कि—मगति हेति अंगार हि अरखी ॥

मछि और सन्तों के विष अचान्त को भी मानते हैं इत्यादि पाण्डव पण्डव इनका जितना है ता सब अचान्तकेन्द्र का अहितकारक है इतने ही है बुद्धिमान् पण्डितना समझें ॥

प्र०—गोकुलिये गुसाइयों का मत तो बहुत अच्छा है दत्ता कैसा ऐश्वर्य भोगते हैं क्या यह ऐश्वर्य छोड़ा के लिया ऐसा हो सकता है ?

उ०—बह ऐश्वर्य गृहस्थ लोगों का है गुसाइयों का कुछ नहीं ॥

प्र०—कह १ ! गुसाइयों के ज्ञाप स है क्योंकि वेसा २ ऐश्वर्य दूसरों को क्यों नहीं मिलता ?

उ०—दूसर भी इसी प्रकार का कुछ मन्त्र रखें तो ऐश्वर्य मिलने में क्या समेह है ? और इस अधिक पूर्णता करत ता अधिक भी ऐश्वर्य हो सकता है ॥

१ पुच्छम चर्चान् पूष्य ॥

प्र०—बाहरी बाह ! इसमें क्या पूर्णता है ? वह तो सब गोखोक की सीखा है ।

उ०—गोखोक की सीखा नहीं किन्तु गुहाहों की सीखा है । जो गोखोक की सीखा है ता गोखोक भी ऐसा ही होगा ॥

एक मठ 'सिद्ध' देव स चला ह क्योंकि एक सिद्ध ही सच्यम्बम्ब मम्मक मम्मक किन्ना कर किसी कारण ॥ मठा पिता और सी को बोध क्यती में ज के उसने संन्यास ले लिया था और गुरु बोला था कि मेरा किन्ना नहीं हुआ । बैकपेता से उसके मठा पिता और सी ने पुत्र कि क्यती में संन्यासी हो गया है । उसके मठा पिता और सी क्यती में पहुँच कर जिसने उसके संन्यास रिच था उससे कहा कि हस्तारे पुत्र को संन्यासी क्यों किया देखो ! इसकी यह बुझती सी है और सी ने कहा कि बणि चाप मेरे पति को मेरे साथ ब करें ता मुझको भी संन्यास द दीजिये । तब तो उसको बुझा के कहा कि तु बड़ा मिथ्यामयी है, संन्यास बोध गुहाधम कर क्योंकि तुने गुरु बोधकर संन्यास लिया । उसने पुनः कैसा ही किया । संन्यास बोध उसके साथ हो लिया ॥

देखो इस मठ का गुरु ही गुरु क्यत स चला । जब सिद्ध देव में पने उसको क्यति में किसी ने न दिया । तब वहाँ से किन्ना कर पूसने छाग । बारबारस जो क्यती के पास है उसके समीप 'चंपारक' नामक जङ्गल में चले जाते थे । वहाँ कोई एक लकड़ को जङ्गल में बोध चारों ओर दूर १ क्षणी जला कर चला गया था क्योंकि बोधने लगे थे यह समय था जो क्षणी न जलाऊँगा तो क्षणी कोई जीव मर जायेगा ॥

सच्यम्बम्ब और उसकी सी ने लकड़ को लेकर अपना पुत्र बना दिया । फिर क्यती में जा रहे । जब वह लकड़ का बड़ा हुआ तब उसके मा बाप का शरीर मर गया । क्यती में वात्सल्यका से पुत्रात्मका तब कुछ पक्का भी रहा फिर और कहीं जा के एक किन्तुस्वामी के मन्दिर में चेष्टा हो गया । वहाँ स कमी कुछ कठोर होने से क्यती को फिर चला गया और संन्यास ले लिया । फिर कोई कैसा ही अतिचरित्रका मम्मक क्यती में रहता था । उसकी लकड़ की पुझी भी । उसने इससे कहा न संन्यास बोध मेरी लकड़ की स किन्ना करके । वसा ही हुआ । जिसके बाप ने किसी लोका की थी वसी पुत्र क्यों न कर ? इस सी को पने नहीं चला गया कि जहाँ प्रथम किन्तुस्वामी के मन्दिर में पड़ा हुआ था । किन्ना करने स उसका वहाँ स किन्ना दिया । फिर मम्मक में कि जहाँ चरित्र ने घर कर रहता है जाकर अपना प्रपञ्च सबके प्रथम की कुछ बुद्धियों से छेड़ने लप्य और मिथ्या बातों की प्रसिद्धि करन लप्य कि श्रीकृष्ण मुझको मित्र और कहा कि जो गोखोक ॥ 'देवीजीव' मर्मलोक में जाते हैं उनके मम्मकम्बम्ब चरित्र स पवित्र करके माझाक में भजा । इत्यादि मूर्तों का प्रथमका की बातें मुझ क बोधे स क्षणों का प्रथम ५ (चौसती) पञ्चव बनाने और मित्रचरित्र मम्मक बना दिव और उचमें भी भव रहता है—

भी कृष्ण शरत् मम । श्री कृष्णाय गोपीजनपद्मभाय स्वाहा ॥

वे दोनों संप्रत्यक्ष मन्त्र हैं परन्तु अर्गंशा मन्त्र ब्रह्मसम्बन्ध और समर्पण करने का है —

भीकृष्ण शरत् मम सहस्रपरिवत्सरमितफालव्यतकृष्णविषोग-
अमिततापमन्त्रेशान्ततिरोभावोऽहं भगवत कृष्णाय श्लेष्मिप्रयाणान्त
करकृत्यमाद्य दारागारपुत्रासन्निहपरारणात्मना सह सम्प्राप्यामि
दासोऽहं कृष्ण तवांसि ॥

इस मन्त्र का उपदेश करके शिष्य शिष्याओं को समर्पण करते हैं। 'कृष्णायति' यह 'कृष्ण' तन्त्र मन्त्र का है। इससे विदित होता है कि यह ब्रह्म मन्त्र भी कममार्गियों का मेव है। इसी से बीसह गुसाईं काम ब्रह्मा करते हैं। 'गोपीध्वजमेति' क्या कृष्ण गाणियों ही को शिष्य से श्रवण को नहीं? किन्तु का शिष्य यह दाता है जो शिष्य अथवा शिष्याओं में प्रसा हो। क्या भीकृष्णकी पक्षे य ?

यस "सहस्रपरिवत्सरेति" —सहस्र वर्षों की अवकाश मन्त्र है क्योंकि ब्रह्म और उसके शिष्य कुछ अवकाश नहीं हैं। क्या कृष्ण का शिष्य सहस्र वर्षों से ब्रह्मा और श्रवण से अथवा अब ही ब्रह्म का मन्त्र न या ब्रह्म मन्त्रा या उसके पूर्व अपने किसी जीवों के अन्तर्गत करने को क्यों न श्रवण ? 'तत्त्व' और "कलेव" वे दोनों पञ्चात्मकी हैं। इनमें से एक का ग्रहण करना उचित था हो का नहीं ?

'अनन्त' शब्द का पाठ करना अर्थ है क्योंकि जो अनन्त सत्त्व रक्षक तो सहस्र शब्द का पाठ न रक्षक श्रवण और जो सहस्र शब्द का पाठ रक्षक तो अनन्त शब्द का पाठ रक्षक सर्वथा अर्थ है और जो अनन्तमन्त्र ही "तिरीक्षित" अथवा अथवा रक्षित रहे उसकी मुक्ति के लिये ब्रह्म का होना ही अर्थ है क्योंकि अनन्त का अन्त नहीं होता ॥

भगवाद्ब्रह्मण्यन्तःकरण और उसके धर्म की कल्प पुत्र प्रसन्नय का अर्थ कृष्ण को क्यों करना ? क्योंकि कृष्ण पूर्वकर्म होने से शिष्य के श्रेष्ठि की इच्छा नहीं कर सकत और श्रेष्ठि का अर्थ करना भी नहीं हो सकत क्योंकि श्रेष्ठ अ अर्थ से नक्षत्रिणां पूर्वमत्त रह करमा है। उनमें जो कुछ अथवा बुरी कल्प है मन्त्रमन्त्रादि का भी अर्थ केवल का मन्त्रम ? और जो पत्र पुस्तक्य कर्म होते हैं उसका कृष्णार्पण करने से उनके पत्र मन्त्रा भी कृष्ण ही होवें अथवा नाम तो कृष्ण का कर्त है और समर्पण अपने शिष्य करता है। जो कुछ रह में मन्त्र मन्त्रादि हैं वह भी गोसाईंजी के अर्थ कर्ण ही होता ? क्या मीरा १ मन्त्र और कदम्ब १ पृ" और वह भी शिष्य है कि गोसाईंजी के अर्थ करना अनन्त मन्त्र शब्द के नहीं। यह सब कर्णमन्त्रपुत्र और परमेश्वर पदार्थ हरने और ब्रह्मण्यन्तःकरण का भी बीका रची है ॥ इसी यह ब्रह्म का मन्त्र —

आपस्तम्बस्य पञ्च पञ्चादश्यां महानिधि ।

साक्षाद्भगवता प्राप्तं तत्पुत्राय उच्यते ॥ १ ॥

ब्रह्मसम्बन्धकरणास्तर्पणा श्रवणीवयो ।

सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दाया पञ्चविधा स्मृता ॥ ॥

सहसा देशकालोत्था लोकवैभक्तिरुपिता ।
 सर्वयोग्याः स्पर्शबाल्यं न मन्तव्याः कदाचन ॥ ३ ॥
 अस्यथा सर्वदोषार्था न निवृत्तिः कथञ्चन ।
 असमर्पितवस्तुनां तस्याहर्निशमाचरत् ॥ ४ ॥
 निवर्दिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः ।
 न मृतं वेददेशस्य जामिमुक्तिसमर्पणम् ॥ ५ ॥
 तस्यैवादी सर्वकस्यै सर्ववस्तुसमर्पणम् ।
 दत्तापहारवधमं तथा न सकर्तुं हरेः ॥ ६ ॥
 न प्राद्यमिति वाक्यं हि मिथ्यमार्गपरं मतम् ।
 सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति ॥ ७ ॥
 तथा कस्यै समर्प्यैव सर्वेषां प्रवृत्ता ततः ।
 गंगात्वे गुणदोषार्था गुणदोषादिवर्णनम् ॥ ८ ॥

इत्यदि श्लोक गोसाइयों के सिद्धान्तप्रकाश दिखीं हैं जिसमें वही गोसाइयों के मत का मूख तत्व है। भक्ता इतना कोइ पूछे कि श्रीकृष्ण के देहान्त हुए कुछ कम पाँच सप्ताह क्यों होते वह बहुत से भक्तों का मत ही थायी रत को कैसे सिद्ध सके ? ॥ १ ॥

जो गोसाइ का चेला होता है और उसको सब पदार्थों का समर्पण करता है उसके शरीर और जीव के सब दोषों की निवृत्ति हो जाती है वही बहुत कम मात्र मूर्खों को कहकर कर अपने मत में खाने का है जो गोसाइ के चेले यक्षियों के सब दोष निवृत्त हो जायें तो रोग दारिद्र्यादि दुःखों से पीड़ित क्यों रहें ? और वे होय पाँच प्रकार के होते हैं ॥ २ ॥

एक—सहज होय जो कि स्वभाविक अथवा कम कोचरि से उत्पन्न होते हैं। दूसरे—किसी दत्त काल में जाला प्रकार के पाप किये जायें। तीसरे—लोकों में जिनको मत्स्यामय कहते और वेदोक्त जो मिथ्याभाषणादि हैं। चौथे—लंबोमत्र जो कि दुर सत् स अथवा खोरी जारी मत्ता भगिनि कथा पुस्तक, पुस्तकी आदि से संयोग करना। पाँचवें—स्पर्श अस्पर्शियों का स्पर्श करना हय पाँच दोषों को गोसाइ लोगों के मत काके कभी न मानें क्योंकि वेदोक्त करें ॥ ३ ॥

अथ कोइ प्रश्न होयों की निवृत्ति के सिद्ध नहीं है किना गोसाइयों के मत के। इसलिये बिना समर्पण किये पदार्थों को गोसाइयों के चले न भायें। इसलिये इनके कथ धरनी की कथा पुस्तक और अन्धविश्वासियों को भी समर्पित करते हैं परन्तु समर्पण का निश्चय यह है कि जब जो गोसाइयों की व्यवस्था में समर्पित न होय तब ही उसका स्वामी स्वामी को स्पर्श न कर ॥ ४ ॥

इसका गोसाइयों का चम समर्पण करके पञ्चम अथवा २ पदार्थ का भोग करें क्योंकि स्वामी के भोग का पञ्चास समर्पण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

इससे प्रथम सब कर्मों में सब वस्तुओं का समर्पण करें। प्रथम गोसाइयों को भाषादि समर्पण करके पञ्चम व्यवह करें जिस ही इति का सम्पूर्ण पदार्थ समर्पण करके व्यवह करें ॥ ६ ॥

गासाईजी के मत से मित्र मार्ग के कल्पमात्र को भी गोसाइयों के चेष्टा बखी कभी न मुनें न ग्रहण करें यही उनके शिष्यों का व्यवहार सिद्ध है ॥ ७ ॥

बस ही सब कलुषों का समर्पण करके सब के बीच में प्रकटि कर । उससे पञ्चान् वीस गात्र में बाण्य अष्ट मिश्रकर गङ्गाकन हो जल है वैसे ही अपने मत में गुण और बुरे के मत में दोष है इसलिये अपने मत में गुणों का वर्णन किया करें ॥ ८ ॥

अब इन्होंने गोसाइयों का मत सब मतों से अधिक अपना प्रमाणन सिद्ध करवाया है । मन्ना इन गोसाइयों का कोई पुत्र कि मन्ना का जन्म भी गुन नहीं जानत ता शिष्य शिष्याओं का मन्नासम्बन्ध किस कर सकोग ? जा कहो कि हम ही मन्ना हैं हमसे साथ सम्बन्ध होन से मन्नासम्बन्ध हो जाता है । सो गुन में मन्ना के गुण कर्म स्थाय्य एक जी नहीं है पुनः क्या गुन कबल मोग ब्रह्मस के शिष्य मन्ना बन पा हो ? मन्ना शिष्य और शिष्याओं का गुन अपने साथ समर्पित करके छुट करत हो परन्तु गुन और गुमारी की कन्या तथा पुत्रवत् अपरि असमर्पित रहजान से अछुट रह पन का नहीं ? और गुन असमर्पित कलु का अछुट नाकत हो गुन उनसे उत्पन्न हुए गुन छाग अछुट क्यों नहीं ? इसलिये गुनका भी उचित है कि अपनी की कन्या तथा पुत्रवत् अपरि को अन्य मत बाहों के साथ समर्पित कराया करो । जो कहा नहीं ? नहीं तो गुन भी अन्य की पुत्र तथा अपरि पदाओं को समर्पित करवा दोष दखो ॥

मन्ना अब खों जा हुआ सो हुआ परन्तु अब तो अपनी मिथ्या प्रत्यग्रि बुराईयों का बोहो और मुन्दर ईश्वरक वेदविहित रूपन में आकर अपने मनुष्यकपी जन्म को मज्ज कर बर्मे बर्मे जन्म मात्र इन जगुहय चहों को मन्ना हाकर धामन् भागा ॥

और इन्होंने ' व गोसाईं छाग अपने सम्बन्ध का पुष्टि' मार्ग कहत है । अपने मन्ने पोने पुष्टि हाग और सब शिष्यों के मन्ना बपह भाग ब्रह्मास करन को पुष्टिमार्ग कहत है परन्तु इससे पड़ना चाहिये कि जब वह दुःखदायी भ्रान्तरादि रोग प्रकट होकर इस मन्ना के मरत है कि जिनका नहीं जन्मत हुआ । सब पड़ा ता पुष्टिमार्ग नहीं किन्तु पुष्टिमार्ग है । वीस कुटी के शरीर की सब धनु रिपक २ के विच्छ जन्मी है और ब्रह्मास करना हुआ शरीर धोक्ता है पनी ही बीछा इनकी भी रेखन में जाती है । इसलिये परकमार्ग भी इसी का ब्रह्मास मर्पित हा सत्य है क्योंकि दुःख का नाम मरक और दुःख का नाम र्का है ॥

इसी प्रकार मिथ्या ज्ञान एकक विचार बाह्य भाग मनुष्यों का ज्ञान में प्रमाणा और अपने धारको भीहृष्य मान कर सब के लक्ष्मी बनत है । यह कहत है कि जिनके रही जीव गोसाईं से नहीं जानत है सबके उत्तर करने के शिष्य हम बीछा पुष्टिचम जन्म है जब का हमारा उत्तर न था सब का गोसाईं की प्रकृति नहीं जानी । क्या वह भीहृष्य पुष्टि और सब शिष्यों है । बाह्य जी बह ' भया गुहास मत है ' गोसाइयों के जिनके बह है व सब मापिका नन जन्मी ॥

अब विचारिये मखा जिस पुरुष के दो बी होती हैं उसकी बड़ी दुर्दशा हो जाती है तो कहां एक पुरुष और कौनों की एक के पीछे जगी है उसके दुःख का क्या पाराधर है ? जो कहो कि श्रीकृष्ण में बड़ा भारी सामर्थ्य है सब को प्रसन्न करते हैं तो जो उसकी बी जिसको स्वामिनीजी कहते हैं उसमें भी श्रीकृष्ण के समान सामर्थ्य होगा क्योंकि वह उगकी जगहजगि है। जैसे यही बी पुरुष की कमजोरी मुख्य अथवा पुरुष से बी की अधिक होती है तो गोखोक में क्यों नहीं ? जा फेसा है तो अन्य किणों के साथ स्वामिनीजी की प्रसन्नता खड़ाई क्लेश सचता होगी क्योंकि सपत्नीभाव बहुत पुरा होता है। पुनः गोखोक स्वामी के बहने मरकम्प होगया होगया अथवा जैसे बहुत बीगामी पुरुष भगवत्परादि रोगों से पीड़ित रहता है वैसा ही गोखोक में भी होगा। कि ! कि ! कि !!! देत गोखोक से मरकम्प ही विधरा मखा है। देखो जैसे वहां गोसाईंजी अपने को श्रीकृष्ण मानते हैं और बहुत किणों के साथ खीसा करके से भगवत्परा तथा प्रेमेश्वरि रोगों से पीड़ित होकर महा दुःख भोगते हैं। अब कहिये किन्तु स्वयं गोसाईं पीड़ित होता है तो गोखोक का स्वामी श्रीकृष्ण इस रोगों से पीड़ित क्यों न होगा ? और जा नहीं है तो उनका स्वयं गोसाईंजी पीड़ित क्यों होत है ?

प्र०—मरकम्प में बीखमलार धारण करने से रोग दोष होता है गोखोक में नहीं क्योंकि यहां रोग दोष ही नहीं है ॥

उ०—‘भोग रोगमलम्’ जहां भोग है वहां रोग अवश्य होता है और श्रीकृष्ण के श्लोकमोक्ष किणों से सम्मान होते हैं या नहीं और जो होते हैं तो खड़े २ होत हैं या खड़की २ ? अथवा दोनों ? जो कहा कि खड़कियां ही खड़कियां होती हैं तो उनका किन्तु किन्तु सत्य होता होगा ? क्योंकि वहां किन्तु श्रीकृष्ण के वृत्ता कोई पुरुष नहीं जो वृत्ता है तो तुम्हारी प्रतिज्ञामानि हुई। जो कहो खड़के ही खड़क होत हैं तो भी वही रोग प्राप्त पड़ेगा कि उनका किन्तु कहां और किन्तु सत्य होता है ? अथवा घर के घर ही में गलत कर भत है अथवा अन्य किसी की खड़कियां या खड़के हैं तो भी तुम्हारी प्रतिज्ञा गोखोक में एक ही श्रीकृष्ण पुरुष वह हो जगमी और जा कहो कि सम्मान होते ही नहीं तो श्रीकृष्ण में वपुंसकत्व और किणों में वपुंसकत्व दोष प्रायेण ॥

मखा यह गाकुन क्या हुआ ? जाता किसी के वादसाह की बीकियों की मखा हुई। अब जो गोसाईं खोला शिष्य और शिष्याओं का तन मन तथा धन अपने चर्यस कर लेते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि तन ता किन्तु सत्य में बी और पति के समर्पण हो जाता है पुनः मन भी वृत्त के समर्पण नहीं हो सकता क्योंकि मन ही के सत्य तन का भी समर्पण करना वह सकता और जो करें तो अभिचारी कहलगा। अब रहा धन उसकी भी वही बीखा समझो अथवा मन के किन्तु नृप भी चर्यस नहीं हो सकता। इस गोसाईंको का अभिप्राय यह है कि कममें ता क्या और धनकह करें हम ॥

जिनने बहुत सम्पदाकी गोसाईं खोला है व जग सो गिहरी जगति में नहीं है और जा कोई इनको धन भद्रक खड़की दता है वह भी जगिषादा होकर भद्र

हो जाता है क्योंकि वे जाति से पतित किने गये और विषाहीन एक दिन प्रमद में रहते हैं। और इन्हें ! जब कोई गासाईजी की पधरावती करता है तब उसके घर पर जो पुष्पाप फूल की पुतली के समान बैठा रहता है वह कुछ बोलता न आसक्त। विचारा बोले तो तब जो मूर्ख न होय, "मूर्खाणा वलं मोक्षम" क्योंकि मूर्खों का बड़ा मौन है जो बोले तो उसकी पाख निकल जाय परन्तु स्त्रियों की आर भूषण आगाकर लाभता रहता है और जिसकी आर गासाईजी रहें तो जानो बड़े ही आनन्द की बात है और उसका पति भाई, बन्धु मत्ता पिता बड़े प्रसन्न होते हैं। वहाँ सब स्त्रियों गोसाईजी के पग पत्नी हैं जिस पर गोसाईजी का मन बना का कृपा हो उसकी आत्मा पर सदा रहते हैं वह स्त्री और उसके पति आदि अपना धर्मधाम्य समझते हैं और उस की स उसके पति आदि सब कहते हैं कि नू गासाईजी की आश्वस्त्य में जा और जहाँ कहीं उसके पति आदि प्रसन्न बड़ी बात वहाँ पत्नी और कुटुम्बों से काम सिद्ध करा करते हैं। सब पत्नी तो एक काम करनवाले उनके सम्मिलित में और उनके समीप बहुत सदा रहते हैं ॥

जब इनकी इच्छा की वीछा आया इस प्रकार मंगल है—आधा मन्द गासाईजी की बहूजी की आकाजी की पत्नीजी की मुनिबाजी की बाहरिबाजी की गश्वाजी की और आठुरजी की। इन सब दुखियों का पहा मास मरते हैं। जब कोई गोसाईजी का सबक मरने लगता है तब उसकी पत्नी में पम गोसाईजी परत है और जो कुछ मिळता है उसको गोसाईजी गढ़क कर जत है वना वह कम महाप्रयत्न और कष्टों का सुखलकी के समान नहीं है ?

कोई २ बड़ा विद्वान् में गोसाईजी की बुद्धि और उन्हीं से सबके सबकी का परिशिष्ट करता है और कोई २ सबक जब आरिषा पान आया गासाईजी के शरीर पर जो आता कष्ट का उबटना करके फिर एक बड़े पात्र में पहा एक गासाईजी को जो पुल मिळ के पान करता है परन्तु किन्तु जोवन पान करती है। पुन जब गोसाईजी पीछम्वर पहिर और लदाई पर सब बाहर निकल आता है और पत्नी उसी में परत आती है। फिर उस जब का आचमन उसके सबक करत है और अपने ममाका परत पान बीही गासाईजी का रहते हैं। वह आकर कुछ निष्ठा जत है यह एक बीही के कष्ट में जिसका उभय सबक मुख के आनन्द का रहते हैं उनमें बीक उगल आता है। उनकी भी प्रसारी बटती है जिसका पम प्रसारी करने है ॥

जब विद्वान् कि वे आता किम प्रसन्न के मनुज है जो मृत्यु और आनन्द हमरा ना इनका है। हमरा । बहुत स ममर्षक पत है। उनमें स किम ही कष्टों के हान का पान है आनन्द का नहीं। किम ही कष्टों के हान का भी बड़ी पान मरने को पा पत है परन्तु पत्ता गुह बीनी की आदि पान स उनका लक्ष्य किम जता है क्या करें किम जो इनका भावें ना वरुण ही हान स ना वेहें ॥

व कहते हैं कि हम आठुरजी के रहत राम भाम में बहुत पान पान पान रहे है परन्तु वे रहत राम भाम पान ही करत है और मर पान ना बड़े २ पान

होत है अर्थात् होखी के समान पिचकपरिया भर कर कियों के अत्यन्तनीव प्रकाश प्रसीत् गुप्त स्थान हैं उन पर मारते हैं और रसविक्रम (जो) प्रकाश के बिने निमित्त कर्म है उसको भी करते हैं ॥

प्र०—गुसाईजी रोखी दाख कही भगत ताक और मझी तथा खरू आदि को प्रत्यक्ष हाथ में बैठ के ता बहीं बेचते किन्तु अपने बौद्धों पादरों को पचखें बांड फेंते हैं वे खोग बेचते हैं गुसाईजी नहीं ॥

उ —जा गुसाईजी उसको मरिक्क रुपये देवें तो वे पचखें क्यों बेचें ? गुसाईजी अपने बौद्धों के हाथ दाख भगत आदि बौद्धों के बन्धों में बंध रहे हैं । वे के अन्तर हाथ बाजार में बेचते हैं । जो गुसाईजी स्वयं बाहर बेचते तो बौद्ध जो प्रकाशवादि हैं वे तो रसविक्रम शेष से बंध जाते और अपने गुसाईजी ही रसविक्रम कपी पाप के मझी होते । प्रथम तो इस पाप में आप बूधे फिर धौरी को भी समेत और कहीं १ बापद्वारा आदि में गुसाईजी भी बन्धते हैं । रसविक्रम करना नीचों का काम है उन्मों का नहीं । ऐसे १ खोगों ने इस आत्मोन्मत्त की अधोगति कर दी ॥

प्र०—स्वामी नारायण का मत कैसा है ?

उ०—‘पादसी शीतका रूखी ताबतो वाहन कर’” जैस गुसाईजी की जनहरवादि में किञ्चित् लीखा है किश ही स्वामी नारायण की भी है ॥

देखिये ! एक सहजानन्द नामक ज्योत्स्ना के समीप एक ग्राम का जन्म हुआ था प्रकाशारी होकर गुजरात काठियावाड़ कच्छभुज आदि स्थानों में भ्रमता था । उसने देखा कि वह एक मूर्ख और मोखा पाया है चन्दे जैस इन का अपने मत में कुछछ जैसे ही यह खोग भुक्त सकते हैं । वहाँ उसने दो बार ठिण्य बनाने । उनमें आपस में सम्मति कर प्रसिद्ध किया कि सहजानन्द नारायण का अन्तर और बड़ा सिद्ध है और मन्त्रों को अनुभुज मूर्ति धारण कर साबाल् दहन भी दता है । एक बार काठियावाड़ में किसी काशी बाल् जिसका नाम ‘राधाधर’ पण्ड का भूमिप (त्रिभोवार) था उसको शिष्यों ने कहा कि तुम अनुभुज नारायण का दर्शन करना चाहो तो हम सहजानन्दजी से प्रार्थना करें ? उसने कहा बहुत अच्छी बात है । वह मोखा पादसी था । एक कोठरी में सहजानन्द ने तिर पर मुकुट धारण कर और शत्रु चक्र अपने हाथ में ऊपर को धारण किया और एक दूसरा पादसी उसके पीछे लधा रह कर गद्ग पत्र अपने हाथ में लेकर सहजानन्द की गण्ड में स आस को हाथ निधार अनुभुज के मुख बंध रन गये । राधाधर स उनके चेहों ने कहा कि एक बार सोच उठ दग के फिर जांच मीच बना और भद्र इधर को चले जाया । जो बहुत दूरमा ता नारायण कोप कर्म । अर्थात् बखों के मन में ता वह था कि हमारे पण्ड की परीक्षा न कर लेंगे । उन्मों कर्म वह सहजानन्द कड़ावत और विषयत हुए । तम के कर्म पारय कर रहा था । अन्धेरी कोठरी में गया था । उसने चेहों ने एक हम जादूत स कादरी के और उन्मत्ता किश । राधाधर न गया तो अनुभुज मूर्ति हीची फिर भद्र दीरक को पाद में कर रिया । व सब भीच तिर नमस्कार का

दूसरी बार जबे चाप और उसी समय बीच में बाणों की कि तुम्हारा धन्य भ्रमण है। जब तुम महाराज के कक्ष हाजिराओ। उसने कहा बहुत धन्यी बात। जब जो फिर के दूसर कथाम में गये तब जो दूसर लक्ष धारण करके सहजामन्त्र पारी पर बैठा मिठा। तब चलो ने कहा कि इसो जब दूसरा स्वल्प धारण करके पढ़ा विराजमान है। वह पादुकापर हबक आका में रैस गया। वहीं स उनके मत की जब जमी क्योंकि वह एक बड़ा भूमिपा था। वहीं आपनी जब जमा की पुनः हथर उधर पुमता रहा सब को उपपस करता था बहुतों को साधु भी बनाता था ॥

कमी १ किसी साधु की कथन की बाणी को मखकर मूर्धित भी कर रहा था और सब स कहता था कि हम ने इनकी सम्राधि कहा थी है। ऐसी २ पूरुता में अतिशय के मोझे मोझे लोग उसके पंच में रैस गये। जब वह मर गया तब उसक कथों ने बहुत पान्थक फैलाया ॥

इसमें यह इरादा उचित होमा कि जिस कोई एक चारी करता फक्का गया था। अन्त्याधीन व उसका भाक कम कस काखने का दयक दिया। जब उसकी नाक कटती गई तब वह पूर्व नाचने गये और इसने शरण। खतों ने पूछा कि नू क्यों इसका है? उसने कहा कुछ कहने की पठ नहीं है। खतों ने पूछा पंथी कैलसी बात है? उसने कहा कही मारी आनर्थ की बात है हमने ऐसी कमी नहीं देखी। खतों ने कहा कहा क्या बात है? उसने कहा कि मेरे सम्मने सजाम् अनुमुंन नरापस खदे हैं। मैं इसका बड़ा प्रसन्न होकर नाचता गया आपन धम्म का धन्यदाय रहा है कि मैं नारापस का सजाम् दर्शन कर रहा हूँ। खतों ने कहा हमको दर्शन क्यों नहीं होता? वह बाबा नाक की चाद हा रही है जो नाक कटता खतों ता नारापस बीले नहीं तो नहीं। उसने स किसी मूर्ख ने कहा कि नाक ज्ञान ता ज्ञान परन्तु नारापस का दर्शन अकरण करना चाहिये। उसने कहा कि मेरी भी नाक कटता नारापस का दिखताया। उसने उसकी नाक कट कर कथ में कहा कि नू भी ऐमा ही कर नहीं तो मरा और तब उपहास हाय। उसने भी समन्ध कि जब नाक तो छाती नहीं इसलिये पछा ही कहा डीक है तब ता वह भी बड़ी उलो क समान बाचने, कुरन धाने बजाने, इसन और कहन मया कि मुक को भी नारापस बीकता है ॥

ऐस हात १ एक लहक मनुष्यों का मुकह हाथ्या और बड़ा कम्हाइस मया और अपन समन्ध का नाम 'नारापसदर्शी' रकस। किसी मूर्ख राजा ने मुना उमका दुहाय। जब राजा उनके पास गया तब ता ने बहुत कुछ बाचने, कुरने इसन काय। तब राजा ने पूछा कि यह क्या बात है? उन्होंने कहा कि आचात् नारापस हम का बीकता है ॥

राजा—हम का क्यों नहीं बीकता?

नारापसदर्शी—जब तक पाक है तब तक नहीं बीकता और जब नाक कटता खत तब नारापस प्रसन्न बीकते ॥

उस राजा ने विचारा कि यह बात डीक है। [राजा ने कहा] अतिथीजी मुहने रमिने। अतिथीजी ने उत्तर दिया जो दुबस पाककता रहमी क

गया। फिर उस पूर्व से शीशानजी के कम में मनोपदेश किया कि चाप भी हस्तकर
 सब से कहिये कि मुझ को बारापन्थ दीकता है। अब तक कटी हुई नहीं आयेगी।
 जो ऐसा न कहे तो तुम्हारा बड़ा बड़ा होगा सब लोग हँसी करेंगे। अब इसका
 सब कहना हुआ और शीशानजी से बड़ोका हाथ में से नाक की घाव में काया
 किया। अब शीशानजी से राजा ने पूछा कहिये मारामन्थ दीकता है या नहीं ?
 शीशानजी से राजा के कम में कहा कि कुछ भी नहीं दीकता हुआ इस पूर्व से
 सबको मनुष्यों को बारापन्थ किया। राजा ने शीशान से कहा कि अब क्या करना
 चाहिये ? शीशान ने कहा इनको एकद्व के करिब बरह देना चाहिये जब जो जीवों
 सब को कन्दीवर में रखना चाहिये और इस दुष्ट को कि जिसने इस सबको किड़ा
 है, यों पर बड़ा बड़ी दुर्दशा के साथ मारना चाहिये। अब राजा और शीशान कम
 में बैठ करके सबेरे तब उन्होंने करके सलाले की पैयारी की पन्तु चर्ची और कौन
 ने बैठा से रखना था न मरना सके। राजा ने आज्ञा दी कि सब को एकद्व बेचियां
 बंधा दो और इस दुष्ट का काया मुक्त कर यों पर बना इसके कंध में बड़े जूतों
 का हार पहिना सर्वत्र घुमा दोकरों से बड़ा राजा इस पर बसना बाँक २ में जूतों
 से पिछा कुत्तों से हँकना मरना बाँका बाँके। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे
 भी ऐसा काम करते न करेंगे। अब ऐसा हुआ तब तक कटे का सम्मान सब
 हुआ। इसी प्रकार सब बेह बिराही दूसरों के कम हरने में बड़े कदुर है।
 अब सम्मानों की बीका है ॥

ये स्वामी मारामन्थ मत बाँके बचकर ब्रह्म कर्मपुत्र काम करते हैं। कितने ही
 मूर्खों के बहकने के छिने मरते समय करते हैं कि सबसे मोरे पर बैठ सद्गुरुमन्थजी
 मुक्ति को छेड़ने के छिने जाने हैं और जिस इस मन्दिर में एक बार आया करते
 हैं। अब ऐसा होता है तब मन्दिर के भीतर पुकारी रहत है और नीचे बुझना
 जाय रक्खी है। मन्दिर में छेड़ काम में जाने का बिज रखते हैं। जो किसी ने
 करिपन्थ बदाय्य बड़ी दुकाम में फँक दिया सर्वत्र इसी प्रकार एक करिपन्थ दिन
 में सबका बार निकलत है फेड़ ही सब परामों को बचते हैं। जिस काति का छात्र
 हो उससे बैसा ही काम करते हैं। जिस बापित हो उससे बापित का कुम्हार छेड़
 कुम्हार का शिल्पी छेड़ शिल्पी का बकिने से बकिने का और शूद्र छेड़ शूद्रदि का
 काम सेते हैं। अपने सेकों पर एक कर (टिकस) बाँक रक्खी है। बाँकों मोकों
 अपने उम के एकद्व कर छिये हैं और करते जाते हैं। और जो मही पर बैठा है
 अब पुरुष किया करता है कामपन्थादि पहिना है। जहाँ कहीं परामन्थी होती
 है वहाँ मोड़किने के समाज गुहार्जी बहूजी आदि के काम से ये पुरुष सेते हैं ॥

अपने को "सत्तही" और दूसरे मत बाँकों को "कुसही" करते हैं। अपने
 सिध्द ब्रह्म बैसा भी उत्तम धार्मिक बिद्वान् पुरुष क्यों न हो परन्तु उत्तम
 मान्य और सब कमी नहीं करते क्योंकि काम्य मतका की सब करने में पाप
 मितते हैं। म्पिदि में उनके छात्र सीवनों का हस्त नहीं रखते परन्तु गुप्त न जान
 क्या सीखा होती होगी ? इसकी म्पिदि सर्वत्र म्पुन हुई है। कहीं २ छात्रों
 की परछीमकादि सीखा म्पिदि होया है। और उनमें जो २ बड़े २ हैं। वे सब

मस्ते हैं तब आपको गुप्त कुने में फँक देकर प्रसिद्ध करते हैं कि प्रभु महाराज सप्रेम वैकुण्ठ में गये। सहस्रायुधजी घाटे डेगये। हमने बहुत प्रार्थना करी कि महाराज इनको न छोड़ाये क्योंकि इस महात्मा के यहाँ रहने से अच्छा है, सहस्रायुधजी ने कहा कि नहीं अब इनकी वैकुण्ठ में बहुत आवश्यकता है इसलिये छोड़ते हैं। हमने अपनी भाँख से सहस्रायुधजी को और विमान को देखा तथा जो मरने लगे थे उनके विमान में बैठा दिया ऊपर को डेगये और पुष्पों की लगे करते गये। और अब कोई सारा भीमार पकता है और उसके बचने की चारा नहीं होती तब कहता है कि मैं कब रात को वैकुण्ठ में जाऊँगा। मुझा है कि उस रात में जो उसके प्राण न बूँटें और सुदृढ़ हो गया हो तो भी कुने में फँक देते हैं क्योंकि जो उस रात को न फँक दें तो झूठे पर्व हैं इसलिये ऐसा काम करते होते।

ऐसे ही अब गोकुलिया गुसाईं मरता है तब उसके चेहरे कहते हैं कि “गुसाईंजी जीसा बिलार कर गये”। जो अब गुसाईं स्वामी बारायत बाबाओं का उपदेश करने का मन्त्र है वह एक ही है। ‘बीकुण्ड शरण’ मम इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि बीकुण्ड मेरा शरण है अर्थात् मैं बीकुण्ड के शरणगत हूँ परन्तु इसका अर्थ बीकुण्ड मेरे शरण को प्राप्त अर्थात् मेरे शरणगत हों ऐसा भी हो सकता है। ये सब बितने मत हैं वे कियहीन होने से अज्ञाना राजबिन्दु बरकरार करते हैं क्योंकि उनको विद्या के विषयों की खबर नहीं है।

प्र —मात्र मत तो अच्छा है ?

उ०—जैसे अन्य मतवालों की हैं वैसे ही मात्र भी है क्योंकि वे भी चमत्कृत होते हैं इन्हीं चमत्कृतों से इतना मिलेप है कि रामानुजीय एक बार चमत्कृत होते हैं और मात्र वर्ष २ में फिर २ चमत्कृत होते करते हैं। चमत्कृत काल में पीछी ऐसा और मात्र कभी ऐसा कहते हैं। एक मात्र परिणत से किसी एक महात्मा का साक्षात् दृष्टा वा।

महाराज—तुमने वह कभी ऐसा और और (विचार) क्यों कहा ?

शास्त्री—इसके अगले से हम वैकुण्ठ को जानेंगे और बीकुण्ड का भी शरीर स्वाम स्व वा इसलिये हम अच्छा विचार करते हैं।

म०—जो कभी ऐसा और और कहा अगले से वैकुण्ठ में जाते हों तो सब कुछ अच्छा कर खोजो तो कहा जाओगे ? क्या वैकुण्ठ के भी पार उतर जाओगे ? और जैसा बीकुण्ड का सब शरीर अच्छा वा वैसे तुम भी सब शरीर अच्छा कर बिधा करो। तब बीकुण्ड का शरण हो सकता है। इसलिये वह भी पूर्ण के शरण है।

प्र०—चित्रकृत का मत कैसा है ?

उ०—जैसा चमत्कृत का, जैसे चमत्कृत का से रंगो पाते और अत्यन्त के बिना किसी को नहीं मानते वैसे चित्रकृत चित्रकृति से रंगे पाते और बिना

महारेव के अन्य किसी को नहीं मानते । इधर मिलेप यह है कि विज्ञानवित्त पापाय का एक विज्ञ सोने काका चांदी में मैकल के गले में बांध रखते हैं । जब पापी भी पीते हैं तब उसको दिवा के पीते हैं, कलक भी मन्त्र रीत के तुल्य रहता है ।

ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज

प्र०—ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज तो अन्तर है या नहीं ?

उ०—कुछ १ बातें अच्छी और बहुतसी बुरी हैं ।

प्र०—ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज सब से अच्छा है क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं ।

उ०—नियम समीक्ष में अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्यादीय लोगों की कल्पना समीक्षा कल स्विकार हो सकती है ? जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजियों ने ईसाई मत में मिलने से बोले मनुष्यों को अच्छे और कुछ १ पापायादि मूर्तिपूजा को इत्यादि अन्य बाह्य प्रयोगों के करने से भी कुछ बचाने इत्यादि अच्छी बातें हैं परन्तु इन लोगों में स्वदेशमति बहुत मूल है । ईसाइयों के आचरण बहुत से बुरे हैं । आपराध विद्यादि के नियम भी बदल दिये हैं ।

१—अपने देह की प्रशंसा का पूर्वजों की बर्खास्त करनी तो बुर रही उसके पहले पेट भर निम्ना करते हैं । व्याकरणों में ईसाई आदि चरित्रों की प्रशंसा भरपेट करते हैं । प्रत्यदि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रभुत देसा करते हैं कि क्या चरित्रों के चरित्र में आज पर्यन्त कोई भी विज्ञान नहीं हुआ । आध्यात्मिक लोग सदा से मूर्ख कहे जाते हैं । इनकी उन्नति कभी नहीं हुई ।

२—वेदार्थियों की प्रतिष्ठा तो बुर रही परन्तु निम्ना करने से भी पुण्य नहीं रहते । ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में सचुओं की संख्या में 'ईसा' 'यूसा' 'मुहम्मद' 'नाम' और 'किल्ल' लिखे हैं । किसी आदि महर्षि का नाम भी नहीं लिखा । इसके अन्त में है कि इन लोगों ने नियम नाम लिखा है उन्हीं के मतानुसारी मत रखे हैं । मन्त्रा का आध्यात्मिक में उल्लेख हुए हैं और इसी देह का सब सब काया दिया सब भी करते पीते हैं (फिर मन्त्र) अपने मन्त्र पिता पितामहर्षि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक धन काया ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों का एतद्देशक संस्कृतविद्या का रचित अपने को विद्वान् प्रकटित करना है । इतिहास भाषा पद के परिच्छिन्नमिमांसी होकर अतिथि एक मत बचाने में प्रवृत्त होकर मनुष्यों का किरा और बुद्धिचरक कम स्वीकार हो सकता है ?

४—चन्द्रेय पवन अन्यत्रादि स भी खाने पीने का भय नहीं रहता । इन्होंने बड़ी समझ होकर कि खाने पीने और आतिथेय लोग से हम और हमारा देह सुधार आपका परन्तु पंखी बातों का सुधार तो बड़ा उल्लेख विद्याय होता है ।

१—प्र०—आतिथेय ईश्वरकृत है या मनुष्यकृत ?

उ०—ईश्वर और मनुष्यकृत भी आतिथेय है ।

प्र०—कौन से ईश्वरकृत और कौन से मनुष्यकृत ?

उ०—मनुष्य पशु, पक्षी वृक्ष जल जन्तु आदि जातिवां परमेश्वर कृत हैं। जैसे पशुओं में गौ चरक इति आदि जातिवां वृक्षों में पीपल बर, आम आदि, पक्षियों में हांस कम्ब कर्णादि जलजन्तुओं में मत्स्य मकरादि जातिमेव हैं ऐसे मनुष्यों में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र अश्वत्थ जातिमेव ईश्वरकृत हैं। परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्व कर्मात्मकत्वका में शिक्षा आये जैसे ही ही गुण कर्म, स्वभाव से बर्णव्यवस्था भावनी अभ्यस है। इसमें मनुष्यकृतत्व उनके गुण कर्म, स्वभाव से पूर्वोक्तगुणार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि कर्मां की परीचापूर्वक व्यवस्था करनी रत्न और विद्याओं का कर्म है। भोजनमेव भी ईश्वरकृत और मनुष्यकृत है। जैसे सिंह मांसप्राप्ति और चरवा मेंस्य कसादि का आहार करते हैं। वह ईश्वरकृत और देश काल कष्ट मेव से भोजनमेव मनुष्यकृत है ॥

प्र०—देखो यूरोपियन लोग मुम्बई को कोय पतखून पहारते होयक में सब के हत्य का करते हैं इसीलिये अपनी बपती करते जाते हैं ॥

उ०—वह तुम्हारी भूल है क्योंकि मुसलमान अश्वत्थ लोग सब के हत्य का करते हैं तुम उनकी उन्नति क्यों नहीं देखी ॥

जो यूरोपियनों में आश्वत्थत्व में बिगड़ न करवा खदका खदकी को निज सुविधा करवा करना स्वयंका बिगड़ होना बुरे १ आदिमियों का उपदेश नहीं होयक वे बिगड़ होकर जिस किसी के पाकपह में नहीं बैठते जा कुछ करते हैं वह सब परस्पर बिचार और सम्य से विभिन्न करके करते हैं अपनी स्वयंवि की उन्नति के लिये तन मन धन लगव करते हैं आश्वत्थ को जोड़ कर उद्योग किया करते हैं। देखो ! अपने देश के बने हुये जूते को आदिस और कपडारी में पाने देने हैं इस देशी वस्त्र को नहीं। इसने ही मैं समझ लेखो कि देश के बने वस्त्रों का भी किताब मूल प्रतिष्ठा करने हैं उसका भी चम्ब देशत्व मनुष्यों का नहीं करते ॥

देखा ! कुछ सौ वर्ष छ ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों का हुक् और आज तक — योग माझे कपड़े आदि मिले हैं ऐसा कि स्वदेश में पहिरते न परन्तु अपने देश का आश्वत्थ ही पोडा और तुम में स बहुत छ सोनो करछी इसी बि चीर वे बुद्धिमान् धारत हैं।
 बुद्धिमान् और जो जिण कर्म पर रहत रहत हैं।
 करता है। व देश कर्मां सहाय दन है और चण्ड ल उनकी
 कोय वन है पीने है और
 है और भी कोह
 है धाम

बेटी है तो उसी समय उसका निर्मल्य साथ धूम्र करने और बिना धारि
धन्य लोग कर देते हैं। यह आतिथेय नहीं तो क्या? और तुम मोठे भाई
को कहते हैं कि हम में आतिथेय नहीं। तुम अपनी मूर्खता से मान भी लेते
हो। इसलिये जो कुछ करना वह सोच विचार के करना चाहिये जिससे पुनः
परमात्मा करना न पड़े ॥

देखो! देव और जीव की आकाशवाणी रोमी के बिने है मीरोग के बिने
नहीं। विद्याधर नीरोग और विचाररहित अधिष्ठ रोग से ग्रस्त रहता है। उस रोग
के इलाके के बिने सम्बन्ध और सम्बन्ध है। उनको ७ अधिष्ठ से यह रोग
है कि जाने पीने ही में कर्म रहता और जाता है। जब किसी को जाने पीने में
अनाचार करता देखते हैं तब कहते और काव्य हैं कि धर्मग्रह हो गया। उसकी
पत्त न सुनना और न उनके पास बैठने न उनको अपने पास बैठने देते। जब
कहिये कि तुम्हारी विद्या स्वार्थ के बिने है अपना परमार्थ के बिने? परमार्थ तो
सभी होता है कि जब तुम्हारी विद्या से उस आकाशवाणी को ध्यान पहुँचता। जो
कहो कि वे नहीं देखते हम क्या करें? यह तुम्हारा दोष है जबकि नहीं क्योंकि
तुम जो अपना आकाशवाणी रक्ते हो तुम से मेम कर न उपलब्ध होते तो
तुमने सबको न न उपलब्ध बना करके अपना ही सुख किया तो यह तुमको
क्या अपराध लग्न क्योंकि परोपकार करना धर्म और पराधीन करना अधर्म
कहता है इसलिये विद्या को अनाश्रित्य व्यवहार करके आकाशवाणी को दुःखसागर
से तारने के बिने नैतिकता होना चाहिये। सर्वथा मूर्खों के साथ कर्म न
करने चाहिये किन्तु जिसमें उनकी और अपनी विद्य २ प्रति उन्नति हो ऐसे कर्म
करने उचित हैं ॥

प्र०—हम कोई पुस्तक ईश्वरवाणीत का सर्वथा ध्यान नहीं मानते क्योंकि
मनुष्यों की बुद्धि विभ्रान्त नहीं होती इससे उनके बगाने प्रत्येक सब ग्रन्थ होते
हैं। इसलिये हम सब से सब ग्रन्थ करते और ग्रन्थ को छोड़ देते हैं। जाने
किस वेद में आदिष्ट का कुरान में और अन्य किसी ग्रन्थ में हो हमको प्रमाण है,
असम्बन्ध किसी का नहीं ॥

उ०—जिस बात से तुम सम्बन्धी होना चाहते हो उसी बात से अज्ञानवादी
भी ग्रस्त हो। क्योंकि जब सब मनुष्य आन्तरिक नहीं हो सकते तो तुम भी
मनुष्य होने से आन्तरिक हो। जब आन्तरिक के बचन सर्वथा में आन्तरिक
नहीं होते तो तुम्हारे बचन का भी विकास नहीं होगा। फिर तुम्हारे बचन पर
भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विपुल अज्ञ के समान
ग्रन्थ के पात्र है। फिर तुम्हारे व्याख्यात पुस्तक बनाय का प्रमाण किसी को न
करना चाहिये। जैसे ता औरजी दुष्करी बनने का गीत के हा रोकर दुष्करी
बन गये। कुछ तुम सत्य नहीं कि अन्य मनुष्य सब नहीं हैं। कल्पित
प्रम से अज्ञान का प्रमाण कर सब को दाद भी दत हूँ इसलिये सर्वथा

परमार्थ के बचन का सहाय हम अल्पजनों को प्रकरण होना चाहिये। वैसा कि वेद के व्याख्यान में किया करते हैं। वैसा तुमको प्रकरण ही मानना चाहिये नहीं तो यतो अष्टमस्ततो अष्ट हो जाता है। जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है जिसमें अष्टम अष्ट भी नहीं तो उक्त प्रकरण करने में शङ्का करनी अपर्याप्त और परार्थ हानिमात्र कर लेनी है इसी बात से तुमको आत्मान्वर्त्तन छोड़ अपना नहीं समझ्य और तुम आत्मान्वर्त्तन की उन्नति के प्रकरण भी नहीं हो सके क्योंकि सब घर के मिथुन स्वर हो। तुमने समझा है कि इस बात से हम लोग अपना और परमा उपकार कर सकेंगे सो न कर सकते हैं।

छेदे किती के दो ही माता पिता सब संसार के लड़कों का पालन करने लगे सब का पालन करवा तो असम्भव है किन्तु उस बात से अपने लड़कों को भी नष्ट कर बैठें ऐसे ही धर्म लोगों की गति है। मछा वैद्यदि सत्य शास्त्रों को मने किन्तु तुम अपने बच्चों की सत्ता और असत्ता की परीक्षा और आत्मान्वर्त्तन की उन्नति भी कर सकते हो। जिस देश को रोग हुआ है उसकी औषध तुम्हारे पास नहीं और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आत्मान्वर्त्तन तुम्हारे धर्म मठियों के सदा समझते हैं। अब भी समझकर बदरि के मान्य स देशोन्नति करने लगे तो अच्छा है। जो तुम यह कहते हो कि सब सत्य परमेश्वर से प्रकटित होता है पुनः जड़ियों के शाखाओं में ईश्वर से प्रकटित हुए सत्यार्थ वेदों को क्यों नहीं मानते? हाँ पढ़ी करण है कि तुम लोग वेद नहीं पढ़ें और न पढ़ने की इच्छा करत हो। क्योंकि तुमको बरोक ज्ञान हो सकेगा।

१—तुमारा ज्ञान के उपादान प्रकरण के बिना ज्ञान की उत्पत्ति और जीव को भी उत्पन्न करते हो वैसा इसाई और मुसलमान आदि मानते हैं। इससे उत्तर स्पष्टपुष्टि और जीवधर की व्याख्या में देव कीजिये। प्रकरण के बिना धर्म का होना सर्वथा असम्भव और उत्पन्न करने का कार्य न होना भी वैसा ही असम्भव है।

२—एक यह भी तुम्हारा दाव है कि पञ्चाक्षर और धर्मना से पापों की निवृत्ति मानत हो। इसी बात से पाप बढ़ गये हैं क्योंकि पुराणी लोग तीर्थोदि बाण स जैनी ज्ञान भी बचकर मन्त्र रूप कर और तीर्थोदि स ईसाई लोग ईश्वर के विश्वास से मुसलमान लोग 'लोबा' करने हैं पाप का बूट जना बिना धर्म के मानत हैं। इस से पापों से भय न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत हो गई है इस धर्म में मन्त्र और धर्मनसमाप्ती भी पुराणी आदि के समान हैं। जो वेदों को मानत तो बिना भाग के पाप पुण्य की निवृत्ति न होने से पापों से दूर और धर्म में सदा प्रवृत्त रहन जो भाग के बिना निवृत्ति मार्ग तो ईश्वर आम्नापकारी दाव है।

३—जो तुम जीव की प्रकृत उन्नति मानत हो सो कभी नहीं हो सकती क्योंकि सखीम जीव के मुख्य धर्म स्वभाव का अर्थ भी समीप होना प्रकरण है।

४०—परमेश्वर दयालु है सखीम धर्मों का चरम प्रकृत है दया।

४१—दया के ना परमेश्वर का ध्यान नष्ट हो जाय और लक्ष्मों की उन्नति भी कोई न करेगा क्योंकि बोधे से भी लक्ष्मों का प्रकृत चरम परमेश्वर है दया।

और पश्चात्तप का मार्गका से पाप बाधें मिलने हों बूझ जायेंगे ऐसी बातों का धर्म की हानि और पापकर्मों की वृद्धि होती है ॥

प्र०—इस स्थानाधिक ज्ञान को देख से भी बड़ा मान्य है नैमित्तिक को नहीं क्योंकि जो स्थानाधिक ज्ञान परमेश्वरदत्त इस में न होता तो वरों को भी कैसे पद पदा सम्पन्न सम्पन्न सकते ? इसलिये हम लोगों का मत बहुत अच्छा है ॥

उ०—यह गुह्यारी बात विरह्यक है क्योंकि जो किसी का दिया हुआ ज्ञान होता है वह स्थानाधिक नहीं होता । जो स्थानाधिक है वह सहज ज्ञान होता है और वह वह वह वह सत्ता उससे उद्यति करे भी नहीं कर सत्ता क्योंकि अज्ञानी मनुष्यों में भी स्थानाधिक ज्ञान है क्यों वे अपनी उद्यति नहीं कर सकते ? और जो नैमित्तिक ज्ञान है वही उद्यति का कारण है । देखो ! तुम हम बातयाचक में कष्टम्यकर्तव्य और धर्मापमं कुछ भी डीक २ नहीं जगते थे । जब हम विद्वानों से परे तभी कर्तव्यकर्तव्य को समझने लगे । इसलिये स्थानाधिक ज्ञान को सर्वोपरि मानना डीक नहीं ॥

४—जो आप लोगों ने पूर्व और पुनर्जन्म नहीं माना है वह ईसाई मुसलमानों से शिष्य होगा । इसका भी उक्त पुनर्जन्म की व्याख्या से समझ लेना । परन्तु इसका समझो कि जीव शाश्वत चर्चात् मिल है और उसके कर्म भी प्रत्यक्ष से मिल हैं । कर्म और कर्मफल का विरा सम्पन्न होता है । क्या वह जीव कहीं निकम्मा बेमर रहा था या रहेगा ? और परमेश्वर भी निकम्मा तुम्हारे करने से होता है । पुनर्जन्म न मानने से कलहाभि और चकलाभ्यागम नैपुण्य और वैश्य होने भी ईश्वर में छल है क्योंकि जन्म न हो तो पार पुण्य का फल माय की हानि होजाय क्योंकि जिस प्रकार दूसर को मुखा दुःख हानि घाम पहुँचाना होता है वैसे उसका फल बिना शरीर धारण किये नहीं होता । हमारा पूर्वजन्म का पार पुण्यों के बिना मुक्त दुःख की प्रति इस जन्म में क्योंकर होवे ? जो पूर्वजन्म का पापपुण्यमुच्छर न होवे तो परमेश्वर चण्डालकरी और बिना मोय किये फल का समान कर्म का फल होजाय इसलिये वह भी मत्त धन बातों की अच्छी नहीं ॥

१ — और एक वह कि ईश्वर के बिना दिव्य गुणधर्म परमेश्वर और विद्वानों को भी देव न मानना डीक नहीं क्योंकि परमेश्वर महादेव और जो देव न हस्त का सब देवों का स्वामी हान से महादेव क्यों कहाता ?

११—एक अग्निहोत्रादि पराधर कर्तों का कर्तव्य न समझना अच्छा नहीं ॥

१२—अग्नि महादेवों का किन उरकारों का न मानकर ईसा आदि का पीछे भुक्त पक्ष्य अच्छा नहीं ॥

१३—और दिव्य कारवाहिय वरों का जन्म कर्णदिव्यधों की मूर्ति मानना मरेया समझत है ॥

१४—और जो दिव्य का चिह्न व्यापरीत और शिष्य को दाह मुमक्षमाव ईश्वरों के साथ वह जगता लगे है । अब इनतुल आदि बच पहिरत हा

और 'तमनों' की इच्छा करते हो तो क्या पड़ोपवीत आदि का कुछ बड़ा फल होसकता था ?

१२—और प्रज्ञा से डेकर पीछे १ आर्ज्यान्तर्ग में बहुत से विचार होसने हैं उनकी प्रवृत्ति न करके पुरोपविषय ही की सृष्टि में अंतर पड़ना पड़पात और सुखामय के बिना क्या कहा जाय ?

१३—और बीजाक्षर के समान वह चेतन के योग से बीजोत्पत्ति मानना, उन्पत्ति के पूर्व बीजोत्पत्ति का न मानना और उत्पत्ति का मात्र न मानना कुरूप विरुद्ध है। जो उन्पत्ति के पूर्व चेतन और वह वस्तु न था तो जीव कहां से आया और संयोग किनका हुआ ? जो हृदय दोनों को अविच्छेद मानते हो तो ठीक है परन्तु सृष्टि के पूर्व ईश्वर के बिना दूसरे किसी तत्त्व को न मानना वह अत्यन्त पक्ष अर्थ हो जायगा ॥

इसविषय जो उचित करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिलकर उसके दार्शनिकानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये वहीं तो कुछ हान न होसकती क्योंकि हम और आपको उचित उचित है कि जिस देश के पड़ोसों से अपना शरीर बना जब भी पासब होता है आये होगा उसकी उचित सब मय धन से सब करने मिलकर प्रीति से करें। इसविषये जिस आर्यसमाज आर्यान्तर्ग देश की उचित का कसब है वैसे दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज का कसब सदाका देखें तो बहुत अच्छी बात है क्योंकि समाज का सीमावर्त बड़ा ससुखाय का काम है एक का नहीं ॥

प्र०—आप सब का करवत करते हो बात हो परन्तु आप १ धर्म में सब आये हैं। करवत किसी का न करना चाहिये। जो करते हो तो आप इसके विशेष नया कतलाने हो ? जो कतलाने हो तो क्या आप से अधिक या तुल्य कोई पुन्य न वा और न है ? ऐसा अभिमान करना आपका उचित नहीं क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में एक १ से अधिक तुल्य और न्यून बहुत हैं। किसी का कमवत करना उचित नहीं ॥

उ०—धर्म सब का एक होता है क अनेक ? जो कहे अनेक होते हैं तो एक दूसरे से विरुद्ध होते हैं या अविरुद्ध ? जो कहे कि विरुद्ध होते हैं तो एक के बिना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहे अविरुद्ध हैं तो प्रथम १ होना जरूर है। इसविषये धर्म और अधर्म एक ही है अनेक नहीं। यही हम विशेष करते हैं कि जिस सब सम्प्रदायों के उपदेशों को कोई राजा इच्छा करे तो एक सदाय से कम नहीं होये परन्तु इनका मुख्य भाग वही तो पुरानी किरानी बीबी और कुदानी बार ही है क्योंकि इन चारों में सब सम्प्रदाय आजाते हैं ॥

कोई राजा उनकी श्रमा करके कोई जिज्ञासु होकर प्रथम धर्ममार्गी से पूछे— हे महाराज ! मैंने आजतक न कोई गुह और न किसी धर्म का प्रदय किया है कहिये ! सब धर्मों में से उचित धर्म किसका है ? जिसको मैं प्रदय करूं ॥

धर्ममार्गी—इच्छा है ॥

जिह्वासु—ये बीसो मिलनामने कैसे हैं ?

बा०—सब मूले और नरकगमनी हैं क्योंकि कोलात् परतर नहि”
इस वचन के प्रमाण से हमारे धर्म से पर कोई धर्म नहीं है ॥

जि०—आपका क्या धर्म है ?

बा०—मालती का भावना मय भांसादि पात्र मन्मथों का संचल और
रूपमय छादि चौंसठ तन्त्रों का भावना इच्छादि । जो नृमुक्ति की इच्छा करता
है तो हमारा चेष्टा हो वा ॥

जि०—आपका परन्तु और महायन्त्रों का भी वर्णन कर पढ़ पाऊँगा ।
पतात् किसने मेरी छाया और दीप्ति होगी उसका चेष्टा हो अर्थात् ॥

बा०—पर क्यों आंति में पड़ा है । ये लोग तुम्हको वहककर अपने आँसु
में फँसा देंगे । किसी के पास मत जाये हमारे ही शरणागत हो जा नहीं तो
पड़तायेम । देख ! हमारे मत में योग और मोक्ष दोनों हैं ॥

जि०—आपका देख ता चार्क ॥

छात्रो चलाकर रीत के पास जाने पड़ा तो ऐसा ही उत्तर उसने दिया । इतना
कितोप कहा कि बिना रीत छात्र मन्मथमय और जिह्वाचर्च के मुक्ति कभी
नहीं होती । यह उसको जोड़ लीन केरन्तीनी के पास गया ॥

जि०—कहो महासाह ! आपका धर्म क्या है ?

कदावती—हम धर्माधर्म कुछ भी नहीं मानते इस साक्षत् मय हैं हम में
धर्माधर्म नहीं है । वह जगत् सब मिथ्या है और जो अपनी दुःख केतन हुआ
जाये तो अपने को ब्रह्म मान जीवमान को जोड़ निरामुक्त होजायगा ॥

जि०—जो तुम ब्रह्म निरामुक्त हो तो ब्रह्म क तुम कर्म स्वभाव तुम में
क्यों नहीं ? और शरीर में क्यों बंधे हो ?

बा०—तुम्हको शरीर दीकत है इसी से तु आगत है । हमको कुछ नहीं
दीकता बिना ब्रह्म के ॥

जि०—तुम देखनेवाले कौन और किसको देखते हो ?

बा०—देखनेवाला ब्रह्म और ब्रह्म को ब्रह्म देखता है ॥

जि०—क्या हा ब्रह्म है ?

बा०—नहीं अपने आपको देखता है ॥

जि०—क्या कोई अपने कन्धे पर आप चढ़ सकता है ? तुम्हारी बात कुछ
नहीं केवल आपकापने की है ॥

उसने छात्रो चलाकर ईश्वरी के पास जाके पड़ा । उन्होंने भी वैसा ही कहा
परन्तु इतना कितोप कहा कि निरामुक्त के बिना सब धर्म लोभ जगत् का कत्ता
आदि ईश्वर कोई नहीं जगत् आदि कर्म सब जैसा का वैसा बना है और पया
रहेगा । या नृहमारा क्या होगा क्योंकि हम सम्बन्धी प्रयात् सब प्रकार से
आप्य है उत्तम बातों को मागत हैं । ईश्वरार्थ सब मिल सब मिथ्याही है ॥

आगे बहा के ईसाई से पूछा । उसने धम्मार्थी के मुख सब जगह सबाह किये । इतना क्रोध कतलाना सब मनुष्य पायी हैं अपने सम्मुख से पाप करी बूट्या । किन्ना ईसा पर विचार के पवित्र होकर मुक्ति को वहीं पा सकता । ईसा ने सब के प्रत्यक्ष के किये अपने प्रत्यक्ष देकर क्या प्रत्यक्षित की है । 'इहमाय ही चेसा होसा' ॥

जिह्मसु मुनकर मौखी सहाय के पास गया । उनसे भी ऐसा ही जगह सबाह हुए । इतना क्रोध कहा कान्ठरीक सुना उसने धम्मार्थ और कुरान्ठरीक के विना माने कोई मित्रता नहीं पा सकता । ओ इस महाहय को नहीं मानता वह होशनी और कथित है, कथितुसज्ज है' ॥

जिह्मसु मुनकर कैन्धव के पास गया । कैसा ही सबाह हुआ । इतना क्रोध कहा कि इसने सिद्ध के अपने देकर कमाना करता है' ॥

जिह्मसु ने मग में समझ कि जब मन्थर मन्थी पुष्टि के विपरीत चार, कान्ठ और कान्ठ नहीं बरत तो कमान के पक्ष क्यों करें ?

फिर आगे बहा तो एक मत कान्ठों ने अपना १ को सबा कहा । कोई हमारा कभीर सबा कोई मानक कोई दाम्, कोई बज्ज कोई सहजामन्द कोई माधव आदि का बहा और कान्ठार कतलाने मुखा । सहजों से पूछ उनके परस्पर एक दूसरे का विरोध देकर क्रोध विषय किन्ना कि हमने कोई गुण करन योग्य नहीं क्योंकि एक २ की सूत्र में नीलो विन्नावले गवाह हो गये । जिस सूत्रे बुद्धमहार का कैन्ध और भद्रक आदि अपना २ कान्ठ की बहाई दूसरे की दुराह करते हैं ऐसे ही वे हैं । ऐसा जान—

तद्विद्वान्मर्थे स गुहमेवामिगच्छत् । समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १ ॥
तस्मै स विद्वानुपसृपाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शम्भ्विताय ।
यनाह्वरं पुष्यं केद् सत्यं प्रोवाच तन्तस्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ २ ॥

मुचक १ । अं २ । मं १२ । १३ ॥

उस सत्य के विद्वान्मर्थे वह समित्पाणि अर्थात् हाथ जोड़ करिकहा होकर बहकि ब्रह्मनिष्ठ परमात्मा को जानबहार गुण के पास आये । इस पालविहों के आका में वे गिर ॥ १ ॥ जब पूरा जिह्मसु विद्वान् के पास आय उस शान्तचित्त जितभिरप समीप ब्रह्म जिह्मसु को बहार्थ ब्रह्मविद्या परमात्मा के गुण कर्म लम्बक का उपरुत कर और जिस २ साकन से वह आका बहार्थ कर्म माध और परमात्मा का जग्य सब कैसी सिद्धा किन्ना करे ॥ २ ॥ जब वह एस पुरुष के पास आकर बासा कि—महाराज ' जब इस सग्यार्थों के बहार्थों से मरा चित्त भ्रंत हमका क्योंकि जा मैं हमने स किसी एक का बहा हाऊंग या नीली विन्नावले से विरोधी हाना देगा । जिसके नीली विन्नावले कान्ठ और एक मित्र है उससे मुझ कभी नहीं हा मरुत । हमविष काय मुकमे उपरुत कीजिय जिसके मैं प्रत्यक्ष कर ॥

आत विद्वान्—वे सब मत कथिष्यज्जय विषयविरोधी है । मूर्छे, वामर और जट्टी मनुष्य का बहकाकर अपना आका में चंदा के अपना प्रवाज सिद्ध करत

हैं। वे बिना अपने मनुष्यजन्म के पक्ष से रहित होकर अपना मनुष्यजन्म व्यर्थ समझे हैं। देख! जिस पक्ष में वे सहज एकमत हैं वह वेदमत आद्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो वह व्यक्तिगत सूक्ष्म धर्मों का पक्ष है।

प्रि०—इसकी परीक्षा कैसे हो?

प्राप्त०—यू आन्टर इन २ पार्तों को पूरा। सब की एक सम्मति हो जायगी।

तब वह उन सहजों की मबरहरी के बीच में खड़ा होकर बोला कि मुझे सब बोलो! सत्यमापक्ष में धर्म है वा मिथ्या में? सब एकदम होकर बोले कि सत्य मापक्ष में धर्म और असत्यमापक्ष में अधर्म है। कैसे ही बिना पक्षों के प्रत्यक्ष करने पूर्व प्रत्यक्षता में बिना सत्यता प्रत्यक्ष सत्य जन्मद्वारा आदि में धर्म और अविद्य प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष न करने अविचार करने कुछ ही अज्ञान असत्य जन्मद्वारा सब कष्ट, हिंस्र पराधीन करने आदि कर्मों में? सब ने एक मत होने कहा कि बिना के प्रत्यक्ष में धर्म और अविचार के प्रत्यक्ष में अधर्म।

तब प्रिन्सिपल ने सब से कहा कि तुम इसी प्रकार सब जने एक मत हो सब धर्म की उन्नति और मिथ्याधर्मों की हानि क्यों नहीं करते हो?

ब सब बोले जो हम ऐसा करें तो हमको कैसा पूजा? हमारा क्या हमारी आत्मा में न रहे, जीविका वह होनाय फिर जो हम आनन्द कर रहे हैं। तो सब आप सत्य। इसलिये हम जानते हैं। तो भी अपने ९ मत का उपरान्त और प्रमाण करते ही हैं क्योंकि रोटी खाने लकड़ से बुनियाँ रखने मकड़ से पत्ती पत है। देखो! संसार में मूखे सत्य मनुष्य को क्यों नहीं बता और न पूजता जो कुछ होनायगी और पूरता करता है वही पशुपति पता है।

प्रिन्सिपल—जो तुम ऐसा पालक बचाकर आत्म मनुष्यों को छाते हो तुमको राजा इन्हें क्यों नहीं बता?

मत वाले—हमने राजा को भी अपना चेला बना लिया है। हमने पक्ष प्रमाण किया है बूझा नहीं।

प्रि०—अब तुम कुछ से आत्म मतस्य मनुष्यों को हम उनकी हानि करते हो परमेस्वर के सामने क्या उत्तर दोगे? और बार बार में पक्षों को बोले जीव के बिने इत्यादि क्या अपराध करना क्यों नहीं बूझते?

मत०—अब ऐसा होगा सब देखा जायगा। मरक और परमेस्वर का इन्हें अब हम सब होय सब का आनन्द करत हैं। हमको प्रसन्नता से अन्धवि परार्थ देते हैं कुछ प्रसन्नता से नहीं बोलें फिर ऐसा इन्हें क्यों रहे?

प्रि०—कितने बड़े बाबक को प्रसन्नता के अन्धवि पक्षों हर बता है कि उसको इन्हें मित्रता है कि तुमको क्यों नहीं मित्रता? क्योंकि—

अज्ञो भवति ये वास्तु पिता भवति मन्त्रद० ॥ मनुष्य १। अथ २३ ॥
जो ज्ञानरहित होता है वह बाबक और जो ज्ञान का सम्पन्न है वह पिता और इह कहता है। जो बुद्धिमान् विद्वान् है वह तो मुन्धारी पक्षों में नहीं चलाता किन्तु अज्ञानी धाम जो बाबक का छात्र है उनकी छात्रों में तुमको राजावत प्रसन्न होता चाहिये।

मठ०—जब राजा प्रजा सब हमारे मत में है तो हमको दण्ड क्यों दब क्या है ? जब देसी व्यवस्था होगी तब इन बातों को छोड़कर दूसरी व्यवस्था करेंगे ।

जि०—जो तुम बड़े १ वर्ष मास मारते हो सो विषयवास्तव कर गृहस्थों के बच्चे बच्चियों को पढ़ाओ तां तुम्हारा और गृहस्थों का व्यवसाय हो जाय ।

मठ०—जब हम वास्तविकता से लेकर मरवा तक के सुखों को छोड़ें वास्तविकता से बुद्धवत्ता पर्यन्त विषय पढ़ने में छौं पश्चात् पढ़ाने में और उपदेश करने में कर्मभर परिश्रम करें हमको क्या प्रयोजन ? हमको ऐसा ही छाकों अपने मित्र मानते हैं, किन करते हैं उसको क्यों छोड़ें ?

जि०—इसका परिणाम तो बुरा ही देखो ! तुमको कौ रोय होते हैं कौन मर जाते हो बुद्धिमानों में विमिश्र होते हो फिर भी क्यों नहीं समझते ?

मठ०—आर्य धर्म !

टका धमएका कर्म टकाहि पर्यं पवम् ।

पश्य गृहे टका नास्ति हा टका टकटकायत ॥ १ ॥

आना अशकजा मोका रूप्योऽसी भगवान् सपम् ।

अतर्ह सर्व इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम् ॥ २ ॥

तु बच्चा है संसार की बातें नहीं जानता देख ! इसे के किछ धर्म उन्म के बिना कर्म टकर के किना परमपद नहीं हाता जिसके कर में टकर नहीं है पर हाय ! टकर १ करता १ उत्तम पढ़ावों को टकर १ देखता रहता है कि हाय ! मेर पात टकर होता तो इस उत्तम पढ़ावों को मैं मानता ॥ १ ॥ क्योंकि सब कोई सोचत कन्धालुख मरत्य मन्त्रान् का कर्म मन्त्र करते हैं सो तो नहीं बीकता परन्तु सोचत करने और पैसे बीबीकम अंत कन्धालुख का कैय है कही सपम् मन्त्रान् है इसलिये सब कोई अपनी की आज में जाये रहते हैं क्योंकि सब काम अपनी से सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥

जि०—अरे है तुम्हारी नीतर की बीका बाहर जाम्नां तुमने कितना पर पाकरत कहा किया है यह सब अपने सुख के लिये किया है परन्तु इसमें कर्म का नाश होता है क्योंकि बीका समोपदेश में संसार को काम पहुँचता है ऐसी ही असमोपदेश से हाथि होती है । जब तुमको धन का ही प्रयोजन था तो बीकरी व्यापारिक कर्म करके धन को इच्छा क्यों नहीं कर लेते हो ?

मठ०—उसमें परिश्रम अधिक और हाथि भी हो जाती है परन्तु इस हमारी बीका में हाथि कमी नहीं होती किन्तु सर्वथा काम ही काम होता है । देखो ! तुकड़ी दूध दाल के चरपाकृत से कपड़ी बाँध के केला मूँदये से कर्मभर का फलान् हो जाता है फिर क्यों किये चकारें सब प्रकटा है ॥

जि०—वे छोटा बबुलसा धन किसलिये होते हैं ?

मठ०—धर्म लार्थ और मुक्ति के लार्थ ॥

जि०—जब तुम ही सुख नहीं और न मुक्ति का स्वल्प न साधन जानते हो तो तुम्हारी सेवा करने काकों को क्या प्रियेय ?

मत्त०—क्या इस बात में मिश्रता है ? नहीं किन्तु भरकर पत्राण परबोक में मिश्रता है । जिसका ये लोग हमको बताते हैं और सब करते हैं यह सब इन लोगों को परबोक में मिश्रता है ॥

जि०—इसका ता दिया हुआ मिश्रता है या नहीं तुम जाने सबों का क्या मिश्रता ? बरक का क्या हुआ ?

मत्त०—हम भजन करा करते हैं इसका मुक्त हमको मिश्रता ॥

जि०—तुम्हारा भजन तो ठीक ही के सिधे है । के सब सब नहीं पड़े रहें और जिस मांसविषय का वहाँ पाकता है वह भी भजन होकर वहीं रह जायगा या तुम परमेश्वर का भजन करते होते तो तुम्हारा आत्मा भी पवित्र होता ॥

मत्त०—क्या हम चाहते हैं ?

जि०—भीतर के सब मिश्रता है ॥

मत्त०—तुमने कैसे जाना ?

जि०—तुम्हारी बात बहाने व्यवहार से ॥

मत्त०—महामायाओं का व्यवहार हाथी के हाथ के समान होता है । जिस हाथी के हाथ खाने के मिश्र और बिलखाने के मिश्र हाथ है वैसे ही भीतर से हम पवित्र हैं और बाहर बोलामाना करते हैं ॥

जि०—जो तुम भीतर से शुद्ध हाथ तो तुम्हारे बाहर के काम भी शुद्ध हाथ इसलिये भीतर भी मिश्रता है ॥

मत्त०—हम क्यों बोलें तो परन्तु हमारे काम तो भय है ॥

जि०—जिस तुम शुद्ध हो सब तुम्हारे काम भी होंगे ॥

मत्त०—एक मत्त कभी नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्यों के गुण कभी स्वभाव मिश्रता है ॥

जि०—जो व्यवस्था में एकता सिद्ध हो सम्मन्वयविधि धर्म का प्रत्यक्ष और सिध्यन्वयविधि धर्म का ज्ञान करें तो एकमत व्यवस्था हो जाय और हा मत व्यवस्था समाप्ता और व्यवस्था समाप्ता रह्य है के ता रही । परन्तु धर्मोपदेश अधिक होने और धर्मोपदेशी न्यून होने से संसार में सुख बढ़ता है और जब धर्मोपदेश अधिक होता है तब दुःख । जब सब विद्वान् एकता उपदेश करें तो एकमत होने में कुछ भी विघ्न न हो ॥

मत्त०—आजकल कश्चिपुत्र है सत्यपुत्र को काम मत चाहता ॥

जि०—कश्चिपुत्र काम काम का है आज विभिन्न हाथ से कुछ धर्मार्थ के काम में सफल बरक नहीं किन्तु तुम ही कश्चिपुत्र की मूर्तिपत्नी बन रहे हो या मनुष्य ही सत्यपुत्र कश्चिपुत्र न हो तो कोई भी ज्ञान में धर्मोपदेश (व्यवस्था) नहीं होता के सब मत्त के गुण हाथ है स्वभाविक नहीं ॥

इसका कहना यह है कि ज्ञान का ज्ञान । ज्ञानसे क्या कि ज्ञानज्ञान ! तुमने मत्त उठाया किया नहीं तो मैं भी किसी के ज्ञान में व्यवहार न कर रहा हो जाता, धर्म में भी इन धर्मविषयों का व्यवहार और वहाँक मत्त मत्त का व्यवहार किया करूँगा ॥

आप्त—यही सब मनुष्यों का मिलेप बिहान् और संन्यासियों का काम है कि सब मनुष्यों को सब का सब सब और असल का करण पता सुना के सबोपेक्ष से उपकार पहुँचाना चाहिये ॥

प्र०—जा ब्रह्मचारी संन्यासी हैं वे तो ठीक हैं ?

प०—वे आश्रम तो ठीक हैं परन्तु कामकाज इनमें भी बहुतसी पड़ना है । किन्तु वे ही नाम ब्रह्मचारी रखते हैं और कुछ कुछ कर ब्रह्मचारी सिद्धाई करते और आप पुरश्चर्यादि में कैसे रहते हैं बिना पढ़ने का नाम नहीं लेते कि जिस हाथ से ब्रह्मचारी नाम होता है उस ब्रह्म चाचात् वे पढ़ने में परिश्रम कुछ भी नहीं करते । वे ब्रह्मचारी कबरी के गन्ध के छल के सख्त निरर्क हैं । और जो वे संन्यासी विवर्णीय एवम् कमपदार्थ से मित्रात्मक करते फिरते हैं जो कुछ भी वेदमार्ग की उन्नति नहीं करते, छोटी चकल में संन्यास लेकर चूमते हैं और बिनाश्रम को छोड़ देते हैं । ऐसे ब्रह्मचारी और संन्यासी इधर उधर सब सब पापबन्धों मूर्खियों का दर्शन पूजन करते फिरते बिना कामकाज भी मीन हो रहते एकदम देह में कबल का पीकर सोते पड़े रहते हैं और ईर्ष्या रूप में ईदकर सिद्ध कुवेष्ट करके निर्वाह करते कष्टान्न सब और सब पदार्थमात्र से अपने को कृतात्म समझते अपने को सर्वोत्कृष्ट मानकर उच्च काम नहीं करते बस संन्यासी भी जन्म में जन्म करत हैं और जो सब सब का हित चाहते हैं वे ठीक हैं ॥

प्र०—मित्री पुरी मसली चादि गुस्साई सोम तो अच्छे हैं ? क्योंकि मयकली बांधकर एकर उधर चूमते हैं सिककों साजुओं को चामकर करते हैं और सर्वत्र भ्रष्ट मत का उपदेश करते हैं और कुछ २ पते पतल भी हैं इसलिये वे अच्छे होंगे ॥

उ०—वे सब इस नाम पीछे से करिपत किये हैं सम्यक्तन नहीं उनकी मयकली केवल मोक्षार्थ हैं । बहुत से साधु मोक्ष ही के लिये मयकली में रहते हैं दम्ती भी हैं क्योंकि एक को महन्त बना सर्वान्ध में एक महन्त जो कि उनमें प्रधान हाथ है वह नहीं पर पैद जगता है । सब महन्त और साधु को हाकर हाथ में पुण्य से—

नारायणं पद्मभयं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रं पराशरं च ।

व्यासं शुकं गोवर्धनं महात्मन् ॥

इत्यादि भक्त पद के हर १ नाम उनका ऊपर पुण्यपत्तों का साक्षात् प्रदर्शन करते हैं । जो कोई इसका न कर उमर का रहा भी करिप है । वह दम्त संसार का विनश्वाने के लिए करते हैं जिसका जगत् में प्रतिष्ठा होकर माध मित्रे । किन्तु वे ही मठधारी गृहस्थ हाकर भी संन्यास का अभिज्ञान मात्र करते हैं कर्म कुछ नहीं । संन्यास का कर्म कर्म है जो पार्थिव समुदास में बिना भक्त से उत्पन्न न करके धर्म समग्र प्राप्त है । जो कोई चण्डाल उपदेश कर उसकी बिराधी होते हैं । बहुत पक्षान्न भक्त साधु भारव करते और कोई १ दिन संन्यास का अभिज्ञान राज है और जब कभी साधुवर्ध करते हैं तो अपने मत का चर्चा साधुवर्धपात्र का न्यायन और चण्डाल आदि के गवहन में प्रवृत्त रहते हैं ।

वेदमार्ग की उन्नति और परापरताका मार्ग है। तब के कलह से प्रभु नहीं होते। ये संन्यासी लोग ऐसा समझते हैं कि हमको कलह से बचा प्रमाण ? हम तो महात्मा हैं। ऐसे लोग भी संसार में आरक्ष्य हैं।

अब देखें हैं तभी तो वेदमार्गविरोधी काममार्गवि संन्यासी ईसाई मुसलमान जैसी आदि बड़े बड़े धर्म भी बढ़ते जाते हैं और हमसे बड़ा होता जाता है जो भी इनकी आँख नहीं खुलती। तुम कहाँ से ? जा। कुछ उबके मन में परोपकार बुद्धि और कर्तव्यकर्मा करने में उत्साह होने। किन्तु अपनी प्रतिष्ठा खाने पीने के सामने धर्म अधिक कुछ भी नहीं समझते और संसार की निष्ठा से बहुत डरते हैं। पुनः (कोकबन्ध) काक में प्रतिष्ठा (विलेपना) पक्ष बगवें में लपक होकर निष्कर्मोग (पुत्रेपन्ना) पुत्रकृति पर मोहित होना इन तीन पक्षों का स्वभाव अर्थात् अर्थ है। जब पक्षों की नहीं बूझी बुझा संन्यास क्योंकर हो सकता है ? अर्थात् परापरताके वेदमार्गपक्ष से ज्ञात के कलह करने में अहर्निश प्रभु का संन्यासियों का मुख्य काम है। जब अपने २ अधिकार क्यों को नहीं करते पुनः संन्यासवि गमन कराया क्यों है। नहीं तो जैसे पुरुष स्वच्छ और स्वार्थ में परिणत करते हैं तब अधिक परिणत परापर करने में संन्यासी भी लपक रहे। तभी सब काममें उन्नति पर रहे।

देखो ! हमारे सामने पाकपाक मत करते जाते हैं। ईसाई मुसलमान तक होते जाते हैं। तबिक भी तुमसे अपने कर की रक्षा और बूझी को मित्रता नहीं बन सकता। कने तो तब जब तुम करवा चाहो ! अर्थात् वर्तमान और अविश्वत् में उन्नतिपक्ष नहीं होते तबही काममार्ग और धर्म स्वभाव मनुष्यों की बुद्धि नहीं होती। जब बुद्धि के कारण वेदवि संन्यासियों का परापरताका अहर्निश कामका के अर्थक्य अर्थात् समोपकार हात है तभी परोपकार हाती है ॥

अब देखो ! बहुत सी पाकपाक की कर्तव्य तुमको समझना पड़ती है। जैसे कोई छात्र या दुष्कर्मकार पुत्रवि एन की सिद्धिवां मतकाता है तब उसने पास बहुत की जाती है और छात्र जाकर पुत्र मंगली है और पक्षजी सब को पुत्र हात का आशीर्वाद देता है। उनमें छ मिस २ के पुत्र होता है वह १ समझती है कि पक्षजी के कलह से हुआ। जब उससे कोई पक्ष कि सुधरी कुछी गयी और कुछकुटी आदि के कलह किसे पक्षजी के कलह से होता है ? तब कुछ भी उत्तर न दे सकेगी। जा कोई कह कि मैं कहूँ का बीता रक्ष करता है या आपसी नहीं मर जाता है ?

कितने ही मूर्ख लोग पक्षी माया रक्षते हैं कि बड़े २ बुद्धिमान भी बोलना जाता है कि धर्मपक्षी के रूप। ये लोग पक्ष सत्त मित्र के दूर २ दूर में जाते हैं। जा शरीर से बीजकाक में लपका होता है उसका सिद्ध क्या होता है। निष्कर्म का धर्म में बनाया हात है उसका समीप जाकर जे उक्त सिद्ध को पक्ष है उसका स्वभाव काम में जाके पक्षम लपके जिस किसी का पक्ष है। तुमने पक्ष महात्मा का बड़ा कहीं रक्ष का नहीं ? वे पक्ष सुधर पक्ष है कि वह महात्मा कीन और कैसा है ?

साधक—बड़ा सिद्ध हुआ है। मन की बातें कठकाठ हैं। जो मुक्त हो जाता है वह हो जाता है। बड़ा योगिराज है। उसके दर्शन के लिये हम अपने मन द्वार बंद कर रहे हैं। मैंने किसी से सुना था कि वे महात्मा इधर की ओर चले हैं।

गृहस्थ—जब वे महात्मा तुमको मिलें तो हमको भी कदाचित् दर्शन करेंगे और मन की बातें पूछेंगे। इसी प्रकार जिस मन का मन में फिरत और हर एक को उस सिद्ध की बात कहकर रात्रि को हफ्ते होकर सिद्ध साधक करते पीते और सो रहते हैं। फिर भी प्रातःकाल कागध ग्राम में जाके उसी प्रकार दो तीन दिन कहकर फिर चारों साधक किसी एक २ बगल पर बैठते हैं कि वह महात्मा मिले गये। तुमको दर्शन कराया हो तो अच्छी। वे जब तैयार होते हैं तब साधक उनसे पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो? हमसे कहो। कोई पुत्र की इच्छा करता कोई धन की कोई रोग विचारण की और कोई शत्रु के जीतने की। उनको वे साधक से ज्ञाते हैं। सिद्ध साधकों ने जिस सक्ति किया होता है अर्थात् जिसको धन की इच्छा हो उसको रात्रि की ओर जिसको पुत्र की इच्छा हो उसको समस्त जिसको रोग विचारण की इच्छा हो उसको बाईं ओर और जिसको शत्रु जीतने की इच्छा हो उसको पीछे से खेचा के सामने खड़े के बीच में बैठाते हैं।

जब कमलभर करते हैं उसी समय वह सिद्ध अपनी सिद्धाई की मस्त से सब स्वर से बोधता है कदा कदा हमारे पास पुत्र रखते हैं ओ व पुत्र की इच्छा करते आता है? इसी प्रकार धन की इच्छा करने वाले से 'कदा कदा पैसियां रखती हैं जो धन की इच्छा करते आता? पत्नीयों के पास धन कहाँ बरा है?' रोग वाले से 'कदा हम पैस हैं जो व रोग बुझाने की इच्छा से आता? हम पैस नहीं तो तेरा रोग बुझाएँ। ज किसी पैस के पास'। परन्तु जब उसका पितृ रोमी हो तो उसका साधक प्रसन्न हो माता रोमी हो तो तर्जनी जो माई रोमी हो तो मध्यमा जो की रोमी हो तो अनामिका जो कन्या रोमी हो तो अक्षिपिका अंगुली कहा जाता है। उसको देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पितृ रोमी है तेरी माता तेरा माई तेरी की और तेरी कन्या रोमी है। तब तो वे चारों के चारों को मोहित होकर बैठे हैं। साधक कोय उनसे कहते हैं, देखो कैसा हमने कहा था किस्ते ही हैं न गरी?

गृहस्थ—हाँ जिस तुमने कहा था किस्ते ही हैं। तुमने हमारा बड़ा उपकार किया और हमारा भी बड़ा आनन्दोत्सव था जो केले महात्मा मिले किन्तु दर्शन करके हम कृतार्थ हुए।

साधक—सुनो ध्याई! ये महात्मा मयोगामी हैं। वहाँ बहुत दिन रहने वाले नहीं। जो पुत्र इच्छा चाहती है लेना हो तो अपने २ सामर्थ्य के अनुसार इच्छा तब मन धन से खेचा करो क्योंकि "खेचा से मेवा मिचली है" जो किसी पर प्रसन्न होना तो जाने क्या कर रहे हैं। सन्तों की गति आपस है।

गृहस्थ केले छहो पचा की बातें सुनकर बड़े हर्ष से उनकी प्रशंसा करते मन की ओर आते हैं। साधक भी उनके सप्राय ही खड़े जाते हैं क्योंकि कोई उनका पादचर्य काज न देवे। उन पण्डितों का जो कोई मित्र मित्रा उसका प्रशंसा करते

हैं। इसी प्रकार जो २ खाजकों के साथ जाते हैं उन २ का हाथ सब बन्द होते हैं। जब काम में हड़्डा मज्दूरा है कि अमुक और एक बड़े भारी सिद्ध करने हैं जसो उनके पास। जब मेला का मेला जाकर बहुत से लोग पाने लगते हैं कि महाराज। मेरे मन का हाथ कहिये तब तो आवश्यक के विचार जाने से सुपचार होकर मौन स्थापन होता है और कहता है कि हमको बहुत मत सदाचो तब तो यह उसके साथ ही करने का बातें हैं जो तुम हमको बहुत सदाचो तो बड़े जाम्य और जो कोई बड़ा आदमी होता है वह साथ ही के साथ पुकारे पड़ता है कि हमारे मन की बात कहलाओ तो हम सब मानें। साथ ही ने पूछा कि क्या बात है? मनमाने ने उससे कहा। तब उसको उसी प्रकार के संकेत से बोलाये बैठक देता है। उस सिद्ध ने समझ के यह कह दिया तब तो सब मेला मन से सुनखी कि भरो। बड़े ही सिद्ध पुण्य हैं। कोई मित्राई, कोई पैसा कोई रक्का कोई धनकी, कोई कनका और कोई चीन्हा समझी में करता है। फिर जबतक मारता बहुतसी रही तब तक बनेह हूट करते हैं और किसी २ दो एक आँख के बन्दे गाँव के पुरों को पुण्य होने का घाटीवाँ या रास उदा के देखेता और उदास छाहों अपने लेकर कह देता है कि जो लो सखी मक्ति होगी ता पुण्य हो जानय। इस प्रकार के बहुत से आ होते हैं जिसकी शिक्षा ही परीक्षा कर सकते हैं और कोई नहीं। इसलिये केवदि किया का पण्य समझ करण होता है जिसका कोई उसको छाह में न किता सके, चीन्हा को भी बन्द सके। क्योंकि मनुष्य का वेद दिया ही है। किता शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो पान्यकला से उच्च शिक्षा पते हैं वे ही मनुष्य और शिक्षा होते हैं। जिसको कुछ है वे कुछ पानी महामूर्ख होकर बने हुए पते हैं। इसलिये ज्ञान को विशेष कहा है कि जो जानता है वही मनुष्य है।

न पश्चि यो यथा शुक्लप्रकर्षं स तस्य निम्नां सततं करोति ।

पथा किराती करिकुम्भजता मुक्ता परिस्रज्य विमर्ति गुहा ॥

इ अ अ ११। को १२॥

यह किसी कवि का श्लोक है। जो जिसका शुक्ल नहीं जानता वह उसकी निम्ना निरन्तर करता है। जैसे बहली मीठकी गजमुखाओं का छोड़ गुम्हा का हन पहिब करती है जैसे ही जो पुण्य शिक्षा समी धार्मिक सत्पुण्यों का पत्नी धामी पुण्यपूर्ण विवेचित्र सुगीत होता है वही धर्मार्थ काम मोक्ष को प्राप्त होकर इस जन्म और पर जन्म में बड़ा आनन्द में रहता है ॥

यह पार्श्वार्थ विचारों लोगों के मत विषय में संकेत से किया। इसके ज्ञानों जो मोक्षार्थ धर्म राजाओं का इतिहास मिथ्या है इसके सब सबों को ज्ञान के सिद्धे प्रदर्शित किया जाता है ॥

जब मोक्षार्थ आचार्यद्वितीय राजवंश कि जिसमें श्रीमान् महाराज "शुचिद्वि" स उनके महाराज "कथापाल" पर्यन्त हुए हैं उस इतिहास को लिखत है। और श्रीमान् महाराज "स्वर्णवर्ण" मनु अ उनके महाराज "शुचिद्वि" पर्यन्त का इतिहास महामातृतादि में लिखत ही है और इससे सब बच्चों का हृदय क कुछ इतिहास का

वर्तमान विदित होना । यद्यपि यह विषय विषयी समिहित “हरिश्चन्द्रचरितम्” व
‘मोहनचरितम्’ जो कि पाश्चिमाय भीमायुद्धों से निष्पन्न था (जो राजपूत
द्वय मन्सू राज उदयपुर किशोरपुर में सप का विदित है) उससे हमने अनुसर कि
है । यदि ऐसे ही हमारे आर्ष सज्जन लोग इतिहास और विषय पुस्तकों का खोज
प्रकार करेंगे तो देश को बड़ा ही लाभ पहुँचाना । उस पत्र के सम्पादक महाशय
अपने मित्र स एक प्राचीन पुस्तक जो कि संस्कृत विषय के १०८२ (सप्तहत्ती वर्ष)
का विषय हुआ था उससे प्रत्यक्ष कर अपने संस्कृत १९३३ मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष १६-१
क्रिष्ण अर्थात् दो पाश्चिमी पक्षों में थापा है जो निम्न लिखे प्रमाण आदिसे—

आर्यावर्तदेशीय राज्यावली ।

इन्द्रमय में अर्ष लोगों ने भीमम्हायने “कलपाक्ष” पर्वत राज्य विजय, त्रि
भीमम्हायने ‘पुषिष्ठि’ से महाराज ‘परापाक्ष’ तक बंध अर्थात् पीढ़ी अनुक्रम
१२४ (एकश्री बीसोस) राज्य वर्ष ४१२० मास ६ दिन १४ समय में हुए है
इत्यम् आदि—

राज्य	वर्ष	मास	दिन
आर्यराज्य	१८४	४१२७	६

भीमम्हायने पुषिष्ठिदि बंध अनुक्रम पीढ़ी ३ वर्ष १०० मास ६
दिन १० । इत्यम् विस्तार—

आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन	आर्यराज्य	वर्ष	मास	दि
१ राज्य पुषिष्ठि	३६	८	१६	१६ पुषिष्ठि	४२	११	
२ राज्य परीक्षित	६	०		१७ शूरसेन (६)	२८	१	
३ राज्य जयसेन	८४	०	१३	१८ पर्युत्तम	२२	८	१
४ राज्य अजमेर	८२	८	१२	१९ मेधावी	२२	१	१
५ द्वितीयाय	८८	२	८	२० समधीर	२	८	१
६ पुत्रमय	८१	११	२०	२१ भीमसेन	४	६	१
७ विजय	०६	३	१८	२२ बृहद्विजय	४२		१
८ पुष्टीय	०६	१	२४	२३ अर्षमय	४/		
९ राज्य बाल्य	०८	०	२१	२४ अरुण			
१० राज्य शूरसेन	०८	०	२१	२५ अर्षविजय			
११ पुष्टीय	६३	२	२	२६ अरुण			
१२ अर्षमय	६३	१	४	२७ पुष्टीय			
१३ अर्षमय	६४	०	४	२८ अर्षमय			
१४ पुष्टीय	६९		१४	२९ भीमसेन			
१५ अर्षमय	६१	१	१	३० अर्षमय			

राज्य अर्षमय के अर्षमय विषय के अर्षमय राज्य का

१७ वर्ष २ मास ३ दिन १० ।

आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन	आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन
१ विजय	१०	३	२३	२ कर्म	४२	३	२४
२ पुरसेवी	४२	८	२१	३ सज	३२	२	१४
३ बीरसेवी	२२	१	०	४ समरपुत्र	२०	३	१६
४ धर्मकुशावी	४०	८	२३	५ समीपाव	२२	११	२५
५ हरिश्चि	३२	६	१०	६ दुराव	२५	४	१३
६ परमसेवी	४४	२	२३	७ बीरसाव	३१	८	११
७ सुखपाव	३	२	२१	८ बीरसावसेन	४०		१४

राजा बीरसावसेन को बीरमहा प्रमाण में मारकर राज्य किया वंश १६ वर्ष ४४२ मास २ दिन ३ । इनका विस्तार—

आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन	आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन
१ राजा बीरमहा	३२	१	८	९ सेवपाव	२८	११	१०
२ धर्मिष्ठि	२०	०	१३	१० माधिकाव	३०	०	२१
३ समरपुत्र	२८	३	१	११ कमलानी	४२	२	१
४ सुखपाव	१२	४	१	१२ राजपुत्र	८	११	१३
५ बीरसेन	२१	२	१३	१३ अन्धक	२८	६	१०
६ महीपाव	४	८	०	१४ हरिपाव	२६	१	२३
७ राजपाव	२६	४	३	१५ बीरसेन(दू)	३५	२	२
८ संमराज	१०	२	१	१६ धर्मिष्ठे	२३	११	१३

राजा धर्मिष्ठे मगधेश के राजा को “अन्धक” नामक राजा प्रमाण के में मार कर राज्य किया वंश पीढ़ी ३ वर्ष ३०४ मास ११ दिन २६ । इनका विस्तार—

आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन	आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन
१ राजा अन्धक	४२	०	२४	१ अन्धराज	४५	२	२
२ महर्षी	४१	२	२३	२ राजसेन	४०	४	२८
३ समरपुत्र	२०	१	१५	३ धर्मिष्ठक	२९	१	८
४ महापुत्र	३	३	८	४ राजपाव	३५		
५ दुराव	२८	२	२५				

राजा राजपाव को सामन्त महापुत्र में मारकर राज्य किया पीढ़ी १ वर्ष १४ मास १ दिन ० । इनका विस्तार नहीं है ।

राजा महापुत्र के राज्य पर राजा विजयार्थि न “अन्धक” (अन्ध) से लड़ाई करके राजा महापुत्र का मार के राज्य किया पीढ़ी १ वर्ष ३३ मास १ दिन ० । इनका विस्तार नहीं है ।

राजा विजयार्थि को राजाधिराज का उमराव समुद्रपाव नामी पितृ के में मारकर राज्य किया पीढ़ी १६ वर्ष ३०२ मास ४ दिन २० । इनका विस्तार—

आर्ष्यराजा	वर्ष	मास	दिन	आर्ष्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ समुद्रप्राप्त	२७	१	१	१ अमृतप्राप्त	३६	१	१३
२ अमृतप्राप्त	३६	२	७	१ कलीप्राप्त	१९	२	२०
३ सहायप्राप्त	११	३	११	११ महीप्राप्त	१३	८	१
४ देवप्राप्त	२७	१	२८	१२ हरीप्राप्त	१७	८	१
५ मरसिंहप्राप्त	१८		२	१३ सीसप्राप्त	११	१	१३
६ रामप्राप्त	२७	१	१७	१४ मदनप्राप्त	१७	१	१३
७ रघुप्राप्त	२२	३	२२	१५ कर्मप्राप्त	१६	२	२
८ योकिन्दप्राप्त	२७	१	१७	१६ विष्णुप्राप्त	२३	११	१३

राजा विष्णुप्राप्त ने पश्चिम दिशा का राजा (महाबलचन्द्र बोहरा था) इस पर चढ़ाई करके मीरान में बचपई की इस बचपई में महाबलचन्द्र ने विष्णुप्राप्त को मारकर हुन्नराला का राज्य किया पीढ़ी १

वर्ष १३१ मास १ दिन १६ । इतका विस्तार—

आर्ष्यराजा	वर्ष	मास	दिन	आर्ष्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ महाबलचन्द्र	२७	२	१	१ कल्याणचन्द्र	१	२	७
२ विष्णुचन्द्र	१९	७	१२	७ भीमचन्द्र	१६	२	६
३ अमीरचन्द्र † १			२	८ खोजचन्द्र	१३	३	२२
४ रामचन्द्र	१३	११	८	९ गोकिन्दचन्द्र	३१	७	१२
५ हरीचन्द्र	१७	६	२७	१ राजा पद्मवती ‡ १			

राजा पद्मवती मर गई । इसके पुत्र भी कोई नहीं था इसलिये सब सुल्तानों ने सज्जद करके हरिप्रेम बैरानी को गद्दी पर बैठा के सुल्तानो राज्य करने लगे पीढ़ी ७ वर्ष २ मास दिन २१ । हरिप्रेम का विस्तार—

आर्ष्यराजा	वर्ष	मास	दिन	आर्ष्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ हरिप्रेम	७	२	१६	१ योपलक्ष्मिप्रेम	१२	७	२८
२ योकिन्दप्रेम	२	२	८	२ महाबल	६	८	२६

राजा महाबल राज्य छोड़ के कम में तपस्वी करने लगे + वह बहादुर के राज्य आधीछेन ने मुन्के हुन्नराला में जाके शाप राज्य करने लगे पीढ़ी १२ वर्ष १२१ मास ११ दिन २ । इतका विस्तार—

आर्ष्यराजा	वर्ष	मास	दिन	आर्ष्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ राजा आधीछेन	१८	२	२१	७ कल्याणसेन	७	८	२१
२ विद्यालक्ष्मसेन	१२	३	२	८ हरीसेन	१२		२२
३ केराक्षसेन	१२	७	१२	९ जेमसेन	८	११	१२
४ माधवसेन	१२	७	२	१ बालकसेन	२	२	१३
५ मयूरसेन	२	११	२७	११ आधमीसेन	२६	१	
६ भीमसेन	२	१	३	१२ रामोदरसेन	११	२	१३

७ किसी इतिहास में भीमप्राप्त भी लिखा है । † इसका नाम कहीं मानकचन्द्र भी लिखा है । ‡ वह पद्मवती योकिन्दचन्द्र की राजा थी । + अर्थात्—बहु समाचार । सं ।

राजा रामोदरसिंह ने अपने उमराव को बहुत बुद्धि दिया इसलिये राजा के उमराव दीपसिंह ने सना मिका के राजा के सपन खर्चाई को उस खर्चाई में राजा को मारकर दीपसिंह आप राज्य करने लगे पीढ़ी ६ वर्ष १ मास ६ दिन २९ । इनका विस्तार—

आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन	आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन
१ दीपसिंह	१०	१	२६	४ मरसिंह	४२	०	१२
२ राजसिंह	१०	२		५ हरिसिंह	१३	२	२६
३ रवसिंह	६	८	११	६ जीवसिंह	८		१

राजा जीवसिंह ने कुछ करण के लिये अपनी सप सेना उधर दिया को मंत्र हो वह सपर तुषीराज चौहान बैराट के राजा ने सुनकर जीवसिंह के ऊपर खर्चाई करके चाये और खर्चाई में जीवसिंह को मारकर इन्द्रज्य का राज्य किया ० पीढ़ी २ वर्ष ८ मास दिन २ । इनका विस्तार—

आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन	आर्यराज्य	वर्ष	मास	दिन
१ तुषीराज	१२	२	१६	४ उदयपाल	११	०	२
२ उदयपाल	१०	२	१०	५ वरपाल	२६	४	२०
३ तुर्वनपाल	११	४	१४				

राजा वरपाल के ऊपर मुस्तान गहातुरीन गोरी गह छत्रपी से खर्चाई करके भाग्य और राजा वरपाल को प्रयाग के लिये मैं संकट १२४६ साल में पकड़कर बंद किया पकड़ इन्द्रज्य जर्मान् दिखी का राज्य आप (मुस्तान गहातुरीन) करने लग्य पीढ़ी २३ वर्ष ४२ मास १ दिन १० । इनका विस्तार बहुत इतिहास पुस्तकों में लिखा है इसलिये यहाँ नहीं लिखा । इसके भग्य बीर ब्रह्ममठ बिच में लिखा जायगा ॥

इति धर्महयानन्दसरसती सामीकृत सत्याध्यायार्य सुभापायिमूर्धित
आपायर्त्तियमतधण्डमविवय पफादश' समुद्रास' सम्पू' ॥ ११ ॥

० इसके भग्य और इतिहासों में इन मन्त्र है कि महाराज तुषीराज के ऊपर मुस्तान गहातुरीन गोरी चरक भाग्य और बड़े बार बार मन्त्र छत्र पीर मन्त्र भग्य में मन्त्र १२४६ में पारम को पूर के करण महाराज तुर्वनपाल को जोग चन्दा का पारम दण्ड को प्रयाग पकड़ दिखी (इन्द्रज्य) का राज्य प्राप्त कर भग्य, मुगलमन्त्रों का राज्य पीढ़ी ४२ वर्ष ६१३ तक रहा ॥

अनुभूमिका (२)

जब आर्यावर्तस्य मनुष्यों में सत्त्वसत्त्व का बलवत् निर्वाप करनेवाली वेदविद्या ब्रह्मर चरित्वा वैद्य के सत्त्वसत्त्वतर करने हुए, यही जैन धारि के विद्यविद्यसत्त्व-प्रचार का विमित्त हुआ ॥

क्योंकि वास्मीकीय और महाभारतादि में वैदिकों का नाममात्र भी नहीं लिखा और वैदिकों के ग्रन्थों में वास्मीकीय और भारत में कथित "समृद्धिवादि" की भाषा बने कितारपूक लिखी है इससे यह सिद्ध होता है कि वह मत इसके पीछे चला क्योंकि जैसा आपने मत को बहुत प्राचीन जैसी जोग लिखते हैं वैसा होता तो वास्मीकीय धारि ग्रन्थों में उनकी क्या प्रकरण होती इसलिये वैयस्य इस ग्रन्थों के पीछे चला है ॥

कोई बने कि वैदिकों के ग्रन्थों में से कथाओं को लेकर वास्मीकीय धारि ग्रन्थ बने होंगे तो इसके बहुत धारिसे कि वास्मीकीय धारि में तुम्हारे ग्रन्थों का नाम लेना भी क्यों नहीं ? और तुम्हारे ग्रन्थों में क्यों है ? क्या पित्र के बल का दर्शन पुत्र कर सकता है ? कभी नहीं । इसके पक्षी सिद्ध होता है कि जैन और मत हीन शास्त्रादि मतों के पीछे चला है ॥

जब इस बारहवें (१९) समुदास में जो २ वैदिकों के मत विषय में लिखा गया है सो २ उनके ग्रन्थों के पते पूर्ण लिखा है इसमें जैसी जोगों को हुए न मान्य धारिसे क्योंकि जो २ हमने इसके मत विषय में लिखा है वह केवल समासस्य के निर्वाचन है न कि विशेष का शक्ति करने के लिये ॥

इस लेख को जब जैसी बीह्व या शान्त जोग देखेंगे तब आपको सत्त्वसत्त्व के निर्वाप में विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होवेगा । जन्मक काही प्रतिधारी होकर प्रीति से यह या लेख न विषय बात तत्काल समासस्य का निर्वाप करी हो सकता । जब विद्वान् जोगों में समासस्य का विचार करी होता सभी अधिज्ञानों को महा सम्प्रसार में पदकर बहुत हुआ ब्रह्मण्य पवता है, इसलिये इस के जब और जसस्य के जब के लिये मिलान से यह या लेख करण हमारी मनुष्यव्यक्ति का मुख्य काम है ॥

यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो । और वह बीह्व जैन मत का विषय विषय इसके अन्त मत धारों को आपसी काम और बोध करने वाला होगा क्योंकि वे जोग आपने पुस्तकों को किसी अन्त मत धारों को देखने पाने या लिखने को भी नहीं देते । बने परिग्रह से मेरी और विशेष धार्म्यसमाज सुम्बर्ग के मन्त्री "सेठ" सेकन्दास कुम्हार" के पुत्रार्थ से अन्त मत हुए हैं तथा कर्मीका "जैयभाकर" बन्धनस्य में अपने और सुम्बर्ग में "अम्बरकरधार" अन्त के अपने से भी सप्त जोगों को वैदिकों का मत देखना सहज हुआ है ॥

महा यह किम विद्याओं की बात है कि अपने मत के पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखाना ! इसी से धिक्कृत होता है कि इन ग्रन्थों के पढ़ाने वालों को प्रथम ही शत्रु भी कि इन ग्रन्थों में असम्भव बातें हैं जो दूसरे मत वाले देखेंगे तो पचकन करेंगे और हमारे मत वाले दूसरे के ग्रन्थ देखेंगे तो इस मत में भ्रष्ट न रहेगी ॥

अतः, जो हो परमत्त बहुत मनुष्य पक्ष हैं जिनको आपने रोप तो नहीं रोखते किन्तु दूसरों के रोप दखने में समुत्तुल्य रहते हैं । यह न्याय की बात नहीं क्योंकि प्रथम आपने रोप दख निश्चय के पश्चात् दूसरों के बातों में त्रिष्टुके निश्चय । आप इन बौद्ध जैनों के मत का विषय सब सज्जनों के समुत्तुल्य पदार्थ हैं, जैसा है वैसा विचारें ॥

किमधिकलेखन पुसिम्हयैषु ॥

अथ द्वादशसमुद्भासारम्भ

अथ नास्तिकमतान्तर्गतधारणाकथोद्देशेनमतव्यखण्डनमखण्डनविषयम्
व्याख्यासम्भ

कोई एक ब्रह्मपति नामा पुरुष हुआ था जो वेद ईश्वर और ब्रह्मवि उक्त
धर्मों को भी नहीं मानता था देखिये उपरका मत—

यावज्जीवं सुखं जीवेद्यास्ति सुखोऽरगोऽनरः ।

मस्मीभूतस्य ब्रह्मस्य पुनरागमनं कुतः ॥

कोई मनुष्यदि प्रणी पुरुष के अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है
इसविषय जब तक शरीर में जीव रहे जब तक सुख से रहे । जो कोई कहे कि
धर्माचरण से यह होता है जो धर्म को छोड़े तो पुनर्जन्म में क्या हुआ फले
उपको 'अरक्त' उत्तर देता है कि घरे भोखे मरूँ ! जो मरे के पश्चात् शरीर
मरम होकरता है कि जिसने क्या पिपा है वह पुनः संसार में न आये इसविषये
जैसे होसके जैसे धर्म में रहो लोक में भीति ॥ से बखो देवर्ष को कपडो
और उससे इच्छित भोग करो बड़ी लोक समझे परलोक कुछ नहीं ।

देखो ! दुखी जब अग्नि बज्र, इव चार मृतों के परिणाम से यह शरीर
बना है इसमें इनके बना से कितना उत्पन्न होता है जैसे मादक द्रव्य बने
पीने से मद्य (कषा) उत्पन्न होता है इसी प्रकार जीव शरीर के साथ उत्पन्न
होकर शरीर के साथ के साथ आप भी बह हो जाता है फिर किसके पाप
पुण्य का क्या होगा ?

तच्छैतन्यविशिष्टादृष्टं यय आत्मन् ब्रह्मादिरिक्त आत्मनि प्रमद्व्यभावात् ॥

इस शरीर में चरों मृतों के संयोग से जीवपन्न उत्पन्न होकर उम्मी के शिरो
के साथ ही बह होकरता है क्योंकि मर पीछे कोई भी जीव प्रमद नहीं होता इन
एक प्रमद ही को मानते हैं क्योंकि प्रमद के बिना अनुमानादि होते ही नहीं ।
इसविषये मुख्य प्रमद के सामने अनुमानादि पीछे होने से उक्त प्रमद नहीं
करते । सुन्दर की के आधिपत्य से आत्मन् का करण पुरुषार्थ का फल है ॥

उत्तर—वे पृथिव्यादि भूत जब हैं उन्को पेश की उत्पत्ति कभी नहीं हो
सकती । जिस घट मरता पित्त के संयोग से रूढ़ की उत्पत्ति होती है वैसे ही आदि
पृष्ठ में मनुष्यादि शरीरों की आकृति परमेश्वर कर्ता के बिना कभी नहीं हो
सकती । मर के समान पेश की उत्पत्ति और विनश्वर नहीं होता क्योंकि मर
पान को होता है जब को नहीं । पदार्थ मर अर्थात् घट होता है पान्नु धर्म
झिनी का नहीं होता इन्ही प्रकार घटपन होने से जीव का भी अभाव न मानना

॥ अर्थात् पृथिवी भीति स । सं ॥ १ सवर्णमसंमद (अरक्तकर्मसं) सं ॥

चाहिये । जब जीवमय्य सहेह होता है तभी उसकी प्रकृता होती है जब शरीर को जोड़ देता है तब वह शरीर जो मृत्तु को प्राप्त हुआ है वह विसा केतममुक्त पदे या विसा नहीं हो सकता ॥

यही बात बृहदारण्यक में कही है—

माह मोहं दर्शामि अनुविद्वत्तिष्ठमायमात्मति ॥

आश्वलायन कहते हैं कि हे मैत्रेयि ! मैं मोह से अन्त नहीं करता किन्तु आत्मा अभिगम्यती है जिसके योग से शरीर बंधा करता है जब जीव शरीर से वृषक हो जाता है तब शरीर में ज्ञान कुछ भी नहीं रहता जो वह से वृषक आत्मा न हो तो जिसके हयोग से केतवत्ता और वियोग से अकृता होती है वह वह से वृषक है जैसे घोंब सब को देखती है परन्तु अपने को नहीं इसी प्रकार प्रत्यक्ष का करने वाला अपने का ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं कर सकता । जैसे अपनी आँख से सब को प्यारि पदार्थ देखता है वैसे आँख को अपने ज्ञान से देखता है । जो ब्रह्म है वह ब्रह्म ही रहता है उत्पत्ति नहीं होती । जिस बिना आचार आश्रय करके के बिना करने अकर्मवी के बिना अकर्म और कर्ता के बिना कर्म नहीं रह सकते वैसे कर्ता के बिना प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है ।

जो सुन्दर की के आश्रय अमर्यम करने ही को पुण्यार्थ का पद मन्त्रा तो बहिक सुख और बससे दुःख भी होता है वह ही पुण्यार्थ ही का पद मन्त्रा । जब ऐसा है तो स्वर्ग की हानि होने से दुःख भोगना पड़ेगा । जो कबो दुःख के दुःखों और सुख के बहाने में पड़ करवा चाहिये तो मुक्ति सुख की हानि हो जाती है इसलिये वह पुण्यार्थ का पद नहीं ॥

आश्वलायन—जो दुःख संयुक्त सुख का मन्त्रा करते हैं वे मूर्ख हैं, जैसे पन्थार्यो भाव का प्रत्यक्ष और सुख का ज्ञान करता है वैसे संसार में बुद्धिमन्त्र सुख का प्रत्यक्ष और दुःख का ज्ञान करें क्योंकि इस लोक के उपस्थित सुख को जोड़ के अनुपस्थित स्वर्ग के सुख की इच्छा कर पूर्वकर्मित बनेका अग्निहोत्रादि कर्म उपमन्त्र और अन्तर्भव का अनुष्ठान परलोक के लिये करते हैं वे अज्ञानी हैं । जो परलोक है ही नहीं तो उसकी प्राप्ति करना मूर्खता का काम है, क्योंकि—

अग्निहोत्रं त्रयो ववातिरुपार्थं मरुमगुण्डनम् ।

बुद्धिपोरुपहीमनां जीविभति बृहस्पति ॥

आश्वलायनश्रौतसूत्रम् 'बृहस्पति' कहता है कि अग्निहोत्र तीन वेद तीन इन्द्र और मन्त्र का अष्टम बुद्धि और पुण्यार्थ रहित पुण्यार्थ वे ओषिक बगलही है । किन्तु कहीं कभी प्यारि से अमर्यम रूप दुःख का भाव बरक ओषिकिद्व पद परमेश्वर और वेद का ज्ञान होता मोह अमर्यम कुछ भी नहीं ॥

उ०—विश्वकर्मो सुखमात्र को पुण्यार्थ का पद मन्त्राकर विषय दुःख निवारकमन्त्र में अन्तर्गुण्डन और स्वर्ग मन्त्रा मूर्खता है । अग्निहोत्रादि बाकी से

० बृहस्पति अ० ॥ ५॥ २॥ १०॥ १॥ ॥

† सर्वद्वयसंयुक्त, आश्वलायनश्रौतसूत्रम् । पृ० ॥

अनु, इति ब्रह्म की इति इहा भारोम्भता का होया उससे बर्न चर्न कम और मोच की सिद्धि होती है उसको न जानकर वेद ईश्वर और वेदोक्त बर्न को विन्या कराना भूतों का काम है । जो त्रिदशक और मत्स्यधराय का कथन है सो ठीक है । यदि कष्टकर्मि से उत्पन्न हो हुआ का नाम नरक हो तो उससे अधिक महातोषादि नरक क्यों नहीं ? कल्पि राजा को ऐक्यवन् और प्रजापादक में समर्थ होने से अह मायें तो ठीक है परन्तु जो आनन्दकामरी पत्नी राजा हो उसके भी परमेस्वरत्व मान्य हो तो तुम्हारे बैसा कोई भी मूर्ख नहीं । शरीर का विच्छेद होतप्रमत्त मोच है सो गरहे कुछ धारि और तुम ॥ क्या मेह रहा ? किन्तु अन्तरी ही मात्र मित्र रही ॥

आरवाक—अद्विद्वन्तो ज्ञानं गीतं गीतस्पर्शस्वयाऽनिज ।

केकेर्दं चिच्छितं तस्मात्स्वमावाप्तवु व्यधस्थिति ॥ १ ॥

न स्वयों माऽपवर्गों वा नैवात्मा पारसीकिक ।

नैव वर्णाश्रमादीनां क्रिया हि फलदायिका ॥ २ ॥

पशुमधिहतं स्वर्गं ज्योतिषोमे गमिष्यति ।

स्वपिता यजमानेन तत्र कसाद्य हिंस्यते ॥ ३ ॥

मृतानामपि अन्तुनां अमर्दं चेत्पुष्टिकारकम् ।

गच्छतामिह अन्तुनां व्यर्थं पापेयकहस्मम् ॥ ४ ॥

स्वर्गस्थिता यदा वृत्तिं गच्छन्त्युस्तत्र क्षान्तः ।

प्रासादस्योपरिस्थाप्यमान कसाद्य क्षीयते ॥ ५ ॥

पावस्त्रीकस्तुल्यं जीवेद्वर्षं कृत्या घृतं पिबेत् ।

मस्मीमूढस्य वेदस्य पुनरागमर्षं कुतः ॥ ६ ॥

यदि गच्छेत्परं कोणं देहादेव विभिर्नातः ।

कसान्द्रयो ॥ आयाति बन्तुस्नेहसमाकुलः ॥ ७ ॥

ततश्च जीयनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्तिव ।

मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विधये कश्चित् ॥ ८ ॥

अथो वेदस्थ कर्त्तारो मयश्चूर्तमिश्राचरा ।

अर्परीतुर्परीत्यादि परिहृतानां अथ स्मृतम् ॥ ९ ॥

अम्बस्यात्र हि शिखन्तु पक्षीप्राज्ञ प्रक्षींचितम् ।

मपदेस्तद्वत्परं येन प्राहायार्तं प्रक्षींचितम् ॥ १० ॥

मांसानां कादनं तद्वधिश्राधरसमीरितम् ॥ ११ ॥

अन्यथा अम्बक बीज और जीव भी अणु की अप्रति सम्यक् प्रमाण है जो १ स्वभाविक गुण है उक्त १ स अणुसंयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं कोई अणु का कर्ता नहीं ॥ १ ॥ परन्तु हममें स अन्यथा वेदा मान्यता है । किन्तु परलोक और जीवमय बीज जीव मान्यते हैं अन्यथा नहीं । रोष इव तीव्री का मत कोई १ बात जोड़ के प्रकाश है । न कोई स्वर्ग न कोई नरक और न कोई परलोक

में जानेवाला प्रायश्चित्त है और व बर्त्ताव्य की निम्ना कथ्यमान है ॥ १ ॥ जो ब्रह्म में पशु को मार होम करने से ब्रह्म स्वर्ग को जाता हो तो ब्रह्मसत्त्व अपने पितादि को मार होम करने स्वर्ग को क्यों नहीं मेळता ॥ ३ ॥ जो मर बुद्धिवाँ को मार भ्रष्ट और तर्पण पृथिव्यरक्त होता है तो परवेष्ट में जानेवाले मार्ग में निर्दोषार्थ प्रायश्चित्त और प्रसादि को क्यों से करते हैं ? क्योंकि जैसे मृतक के नाम से तर्पण निम्ना हुआ पदार्थ स्वर्ग में पहुँचता है तो परवेष्ट में जाने वालों के शिवे उनके सम्बन्धी भी मर में उनके नाम से तर्पण करते देवगन्धर्व में पहुँचते हैं जो वह नहीं पहुँचता तो स्वर्ग में वह क्यों कर पहुँच सकता है ॥ ४ ॥ जो मर्त्यलोक में दण्ड करने के स्वर्गस्थानी तुल्य होते हैं तो नीचे देवे से कर के ऊपर किन्तु तुल्य तुल्य क्यों नहीं होता ? ॥ ५ ॥ इसलिये जब तक जीवे जब तक मुक्त से जीवे जो मर में पदार्थ व हों तो प्रायश्चित्त के प्रायश्चित्त के प्रायश्चित्त नहीं परोपण क्योंकि जिस शरीर में जीव ने प्रायश्चित्त किया है [और जिससे प्रायश्चित्त किया है] जब होवो का पुनरावृत्ति व होया फिर किन्तु के जीव भोग्य और जीव देव्य ॥ ६ ॥ जो सोच करते हैं कि मनुष्यस्य जीव मित्र के परलोक को जाता है वह बात निम्ना है क्योंकि जो ऐसा होता तो कुटुम्ब के मोह से ब्रह्म होकर पुनः मर में क्यों नहीं जायता ? ॥ ७ ॥ इसलिये वह प्रायश्चित्तों ने अपनी जीविका का उपाय किया है । जो दण्डगन्धर्व मृतक किया करते हैं वह सब उनकी जीविका की खाँटा है ॥ ८ ॥ वेद के ब्रह्म-हमे मांड पूर्व और विद्याचार अर्वात् राक्षस से तीन हैं 'चर्चरी' 'तुर्चरी' इत्यादि पक्षियों के चूर्चलमुक्त वचन हैं ॥ ९ ॥ देखो चूर्चों की तर्पण बाँधे के बिना को जी मार कर उनके नाम समस्त प्रायश्चित्त की खाँ से कल्याण कल्या से ब्रह्म प्रादि विद्वान् चूर्चों के किया नहीं हो सकता ॥ १ ॥ और जो मांस का प्रायश्चित्त है वह वेदमार्ग राक्षस का वचन है ॥ ११ ॥

उ०—विद्य वेदम परमेश्वर के निर्माण किन्ने जब पदार्थ स्वर्ग प्रायश्चित्त में सम्मान से निधमपूर्वक मित्रकर उत्पन्न नहीं हो सकते । जो सम्मान से ही होत हों तो द्वितीय पूर्व चन्द्र बुद्धि और नक्षत्रादि लोक प्रायश्चित्त प्रायश्चित्त क्यों नहीं बन जाते हैं ? ॥ १ ॥ स्वर्ग मुक्त भोग्य और मरक दुःख भोग्य का नाम है । जो जीवमय व होता तो मुक्त दुःख का भोग्य भी हो सक ? जैसे इस समय मुक्त दुःख का भोग्य जीव है जैसे परलोक में भी होता है क्या प्रत्यक्षपक्ष और परोपण प्रादि किन्तु भी बर्त्ताव्यियों की विद्वान् होगी ? कभी नहीं ॥ २ ॥ पशु मर क होम करवा देवादि सप्तगणों में नहीं नहीं किन्तु और मृतकों का प्रायश्चित्त करवा कर्मोपकल्पित है क्योंकि वह देवादि सप्तगणों के बिना होने से सम्बन्धित प्रायश्चित्त प्रायश्चित्त का प्रायश्चित्त है इसलिये इस बात का लक्षण प्रायश्चित्त है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ जो कण्डू है उसका भक्षण कभी नहीं होता विद्वान् जीव का भक्षण नहीं हो सकता देह मय हो जाता है जीव नहीं, जीव तो दूसरे शरीर में जाता है इसलिये जो कोई प्रायश्चित्त कर जिाने प्रायश्चित्त का इस लोक में भोग्य का नहीं देवे है व विद्वान् प्रायश्चित्त दूसरे जन्म में दुःखकपी मरक भोग्य हैं इसमें दुःख प्रायश्चित्त नहीं ॥ ६ ॥ देह का मित्र कर जीव कल्याण और शरीरान्तर को प्रायश्चित्त

होता है और उसको पूर्णब्रह्म तथा कुटुम्बादि का शम्भु कुछ भी नहीं रहता, इसलिये पुनः कुटुम्ब में नहीं आसक्तता है ॥ ७ ॥ हाँ मायाओं ने प्रेतर्षा अपनी जीविभार्य बना लिया है परन्तु बेदोक्त यह होने से असम्भवी है ॥ ८ ॥ अब कहिये जो चारबाक आदि ने वेदादि सत्यशास्त्र देखे सुने वह पढ़े होते वेदों की किम्बा कभी न करते कि वेद भांड भूत और मिथ्यावाक्यत् पुण्यों ने बलप्रभे हैं ऐसा बलब कभी न मिथ्यापते हाँ भांड भूत मिथ्यावाक्यत् महाभारदि टीकाकार हुए हैं उधकी पूर्णत है वेदों की नहीं परन्तु शोक है चारबाक आत्मावाक्य बौद्ध और जैमिनी पर कि इन्होंने मूढ़ चार वेदों की संहिताओं को भी न सुना यह देख और न किसी मिथ्या से पता इसलिये वह ब्रह्म बुद्धि होकर कटप्रांग वेदों की किम्बा करने लगे, कुछ धर्ममार्गियों की प्रमादशून्य कपोलकल्पित ब्रह्म टीकाओं को देखकर वेदों से विरोधी होकर अविव्याक्यी अगाध समुद्र में जा गिर ॥ ९ ॥ महा विचारक आदिने कि जो से अन्त के किंग का प्रवृत्त करने उसके सम्मान करना और नजमान की कथा से हाँसी उठा आदि करना सिक्क धर्ममार्गी लोगों से अन्त मनुष्य का धर्म नहीं है किन्तु हम महात्मापी धर्ममार्गियों के ब्रह्म वेदार्थ से विपरीत अग्रह व्यक्त्यन कीव करता ? धर्ममार्ग शोक तो हम चारबाक आदि पर है जो कि किन्तु विचारने वेदों की किम्बा करने पर उत्तर हुए । तबिक तो अपनी बुद्धि से कम केते । क्या करें विचारने उनमें इतनी किन्तु ही नहीं थी जो सम्मान्य का विचार कर सत्त का महत्त्व और अस्तव का अवहन करते ॥ १ ॥ और जो मांस खाता है वह भी उन्हीं धर्ममार्गी टीकाकारों की जीवा है इसलिये उनके एकस काय बधित है परन्तु वेदों में नहीं मांस का काय नहीं लिखा इसलिये इत्यादि मिथ्या बातों का पाप उन टीकाकारों को और जिन्होंने वेदों के धामे सुने किन्तु मजमाली किम्बा की है मिथ्यामेह उनको लगेगा । सब तो यह है कि जिन्होंने वेदों से विपरीत किन्ता और करते हैं और करेंगे वे अवश्य अविव्याक्यी अन्तकार में पड़े सुख के बदले शब्द हुए किन्तु पाँचें अन्त ही लूब है इसलिये मनुष्यमान को वेदकुल्लव बहना समुचित है ॥ ११ ॥ जो धर्ममार्गियों ने मिथ्या कपोल-कल्पना करके वेदों के नाम से अपना प्रमोदन सिद्ध करना जर्जर क्लेश मध्यम मांस खाते और परकी गमन करने आदि कुछ धर्मों की प्रवृत्ति होने के धर्म वेदों को कब्रह्म करपा इन्हीं बातों को देखकर चारबाक बौद्ध तथा बौद्ध लोग वेदों की किम्बा करने लगे और एक एक वैदिक ब्रह्मवाक्य की धर्मार्थ प्रवृत्ति मत्त कहा किन्तु । जो चारबाक आदि वेदों का मूल्यार्थ विचारते तो पूड़ी टीकाओं को देखकर सत्त वेदोक्त मत से नहीं हाथ धो बैठते । क्या करें 'विनाशकाळे विपरीत-बुद्धि' का ब्रह्म होने का समान वाक्य है तब मनुष्य की उचरी बुद्धि होसती है ॥

अब जो चारबाक आदिमें में मेव है तो किन्तु हैं—ने चारबाक आदि बहुलता कठों में एक है परन्तु चारबाक वेद की उत्पत्ति के सत्त जीवोत्पत्ति और उसके धर्म के धर्म ही जीव का भी वाक्य माक्य है । पुनर्जन्म और परलोक को नहीं मानता एक प्रमद प्रमाद के किन्तु धनुमाक्यदि प्रमादों को भी नहीं मानता । चारबाक राज का धर्म जो कोसने में प्रमद और विरोधार्थ वैदिक होत है । और

बीज और प्रत्यक्षदि ज्यों प्रमाण्य अर्थादि जीव पुनर्जन्म परलोक और मुक्ति को भी मान्य है। इतना ही अत्यन्त से बीज और त्रिभिर्वा क्य मेह है परन्तु स्थितिकता क्य इतर की किन्ता परमतद्वेष यः यतना [चापे कहे ज्ञा कर्म] और ज्ञात् क्य कर्मा कहे। यही इत्यादि वस्तु में सब एक ही है। यह अत्यन्त क्य मत संशेष से दृष्टा दिष्ट ॥

अथ योद्धमत क विषय में संशेष स लिखते हैं—

कार्थ्यकारसुभावाद्वा लभावाद्वा नियामकात् ।

अधिनामायनियमो दृशनाम्तरदृशनात् ॥

कार्थ्यकारसुभावात् अर्थात् कार्थ्य के दर्शन से अत्यन्त और अत्यन्त के दर्शन स अत्यन्तदि क्य साधारण्य प्रत्यक्ष संशेष में अनुमान होता है, इसके किन्ता त्रिभिर्वा के समुच्चय अत्यन्त पूर्ण नहीं हो सकते इत्यादि कथनों से अनुमान को अधिक मानकर अत्यन्त स निम्न शास्त्रा बीजों की हुई है ॥

बीज चार प्रकार के हैं—एक “माध्यमिक” दूसरा “योग्य” तीसरा “सौम्यमिक” और चौथा “वैम्यमिक” ॥

“बुद्ध्या निवृत्तते स ‘बीज’” जो बुद्धि स सिद्ध हो अथवा जो २ वर्य अथवा बुद्धि में अत्यन्त उच्च १ को माने और जो २ बुद्धि में २ वर्य उच्च १ को नहीं माने ॥

इसमें स पहिला “माध्यमिक” सर्वोच्च मान्य है अर्थात् जितने पदार्थ हैं वे सब अत्यन्त अर्थात् चाहे में नहीं होते अत्यन्त में नहीं रहते अत्यन्त में जो प्रतीति है क्य भी प्रतीति समय में है पदार्थ अत्यन्त होता है जैसे अत्यन्त के पूर्व यह नहीं था अत्यन्त के पदार्थ नहीं रहता और अत्यन्त समय में अत्यन्त और पदार्थमय में जाने स अत्यन्त नहीं रहता इसलिये अत्यन्त ही एक तत्त्व है ॥

दूसरा “योग्य” जो बाह्य अत्यन्त मान्य है अर्थात् पदार्थ भीतर ज्ञान में अत्यन्त है बाहर नहीं जैसे अत्यन्त आत्मा में है तभी अनुभव कह्य है कि यह तत्त्व है जो भीतर ज्ञान न हो तो नहीं क्य अत्यन्त ऐसा मान्य है ॥

तीसरा “सौम्यमिक” जो बाहर अर्थ क्य अनुमान मान्य है क्योंकि बाहर कोई पदार्थ अत्यन्त अत्यन्त नहीं होता किन्तु एक ऐसा अत्यन्त होने स संशेष में अनुमान किन्ता जाता है इसलिये ऐसा मत है ॥

चौथा “वैम्यमिक” है अत्यन्त मत बाहर पदार्थ अत्यन्त होता है भीतर नहीं “अर्थ मीलों घट” इस प्रतीति में नीचपुरुष अत्यन्त बाहर प्रतीति होती है क्य ऐसा मान्य है ॥

यद्यपि इनका आचार्य कुछ एक है तथापि विष्णो क बुद्धिभक्त स चार प्रकार की शास्त्र हो गई है जिस वर्णन इन में ज्ञान पुरुष परमेश्वर और विष्णु मध्यमपदार्थ भक्त कर्म करत हैं। समय एक परन्तु अथवा २ बुद्धि क अनुमान निम्न १ वर्य करत है ॥

यस हन पूर्वीक जाती हैं 'माध्यमिक' सब को चक्षिक मानता है क्योंकि जब २ में पुष्टि के परिणाम होने से जो पूर्व जग में प्राप्त वस्तु या वस्तु ही दूसर जग में नहीं रहता इसलिये सब को चक्षिक मानना चाहिये ऐसे मानता है ॥

दूसरा "योगाचार" जो प्रवृत्ति है सो सब बुद्ध्यक्ष है क्योंकि प्राप्ति में समुद्र कोई भी नहीं रहता एक की प्राप्ति में दूसर की हानि कभी हो रहती है इस प्रकार मानता है ॥

तीसरा "सौमन्यिक" सब परार्थ अपने २ कक्षों से कक्षित होते हैं किंतु जग के चिह्नों से गद्य और बोध के चिह्नों से बोधा प्राप्त होता है किंतु कक्षक जग में सदा रहते हैं ऐसा कहता है ॥

चौथा "वैमर्षिक" शून्य ही को एक परार्थ मानता है ॥

प्रथम माध्यमिक सबको शून्य मानता था उसी का पक्ष वैमर्षिक का भी है इसलिये चौथों में बहुत से विचार पक्ष हैं इस प्रकार चार प्रकार की मानना मानते हैं ॥

३०—जो सब शून्य हो तो शून्य का जानने वाला शून्य नहीं हो सकता और जो सब शून्य होवे तो शून्य को शून्य नहीं जान सके इसलिये शून्य का ज्ञाता और जग दो परार्थ सिद्ध होते हैं और जो योगाचार वाला शून्यत्व मानता है तो पर्वत इसके नीचे होना चाहिये जो कहे कि पर्वत नीचे है तो उसके ऊपर में पर्वत के समान अन्यथा कहा है ? इसलिये बाहर पर्वत है और पर्वतज्ञान आत्मा में रहता है । सौमन्यिक किसी परार्थ को प्रत्यक्ष नहीं मानता तो वह अन्य स्वयं और वस्तुत्व वचन की अनुमेय होना चाहिये प्रत्यक्ष नहीं जो प्रत्यक्ष न हो तो अर्थ यह "ननु प्रयोग की व होना चाहिये किन्तु अर्थ वहीकहेगा" वह अर्थ का एक देश है और एक देश का नाम यह नहीं किन्तु समुदाय का नाम यह है । "यह यह है" यह प्रत्यक्ष है अनुमेय नहीं क्योंकि सब जगत्तों में प्रत्यक्षी एक है उससे प्रत्यक्ष होने से सब अर्थ के जगत्तों में प्रत्यक्ष होते हैं अर्थात् सात्विक यह प्रत्यक्ष होता है । चौथा वैमर्षिक वाला परार्थों को प्रत्यक्ष मानता है वह भी ठीक नहीं क्योंकि वही ज्ञाता और ज्ञान होता है वही प्रत्यक्ष होता है यद्यपि प्रत्यक्ष का विषय बहर होता है तद्वन्त जग आत्मा को होता है कैसे जो चक्षिक परार्थ और वस्तुत्व जग चक्षिक हो तो प्रत्यक्षिज्ञा अर्थात् मैंने वह बात की थी ऐसा प्रत्यक्ष न होना चाहिये परन्तु पूर्व यह जग का प्रत्यक्ष होता है इसलिये चक्षिकवाद भी ठीक नहीं । जो सब बुद्ध्यक्ष ही हो और शुद्ध बुद्ध भी न हो तो बुद्ध की अपेक्षा के बिना बुद्ध्यक्ष सिद्ध नहीं हो सकता बीसे रात्रि की अपेक्षा से दिन और दिन की अपेक्षा से रात्रि होती है इसलिये सब बुद्ध्यक्ष मानना ठीक नहीं । जो स्वच्छन्द ही मानें तो वेद रूप का कक्षक है और रूप धर्म है बीस अर्थ का रूप अर्थ के रूप का कक्षक वस्तु कक्षक से सिद्ध है और मन्त्र दृष्टिरी से धर्मिय है इसी प्रकार मिश्रमिश्र कक्षक कक्षक मानना चाहिये । शून्य का जो उक्त पूर्व दिना है वही अर्थात् शून्य का जाननेवाला शून्य से सिद्ध होता है ॥

सर्वस्य संसारस्य दुःखात्यक्त्यर्थं सर्वतीर्थैकरसंगतम् । ॥

जिनको बौद्ध तीर्थहार मानते हैं उन्हीं को बौद्ध भी मानते हैं, इसलिये ये दोनों एक हैं और पूर्णतः भावनाचतुष्टय अर्थात् चार व्यवसायों से अलग व्यवसायों की विवृति से मुख्यतः विद्यार्थी अर्थात् मुक्ति मानते हैं अपने शिष्यों का योग्य आधार का उपदेश करते हैं गुण के बचन का प्रमाण करना। अथर्वि पुत्रि में व्यवसाय होने से वृद्धि हो अनेकवार आसती है उसमें से प्रयत्नकर्ता—

रूपविज्ञानब्रह्मानन्दार्सस्कारस्तंभकः । ॥

(प्रथम) जो इन्द्रियों से रूपवि विज्ञान प्रवृत्ति किया जाता है वह "रूपसम्बन्ध" (द्वितीय) आद्यविज्ञान प्रवृत्ति का व्यवसाय व्यवहार का "विज्ञानसम्बन्ध" (तृतीय) रूपसम्बन्ध और विज्ञानसम्बन्ध से उत्पन्न हुआ मुख्य मुख्य आदि प्रतीतिक्रम व्यवहार को व्यवसायसम्बन्ध" (चौथा) गौ आदि ज्ञान का व्यवसाय नामी के साथ भावना रूप का "संवाक्यसम्बन्ध" (पाचवा) व्यवसायसम्बन्ध से उत्पन्न आदि क्लेश और बुद्धि तुल्य उपलब्ध मर, प्रभाव अस्मिन्मन धर्म और धर्मरूप व्यवहार का "संस्कारसम्बन्ध" मानते हैं। सब संसार में दुःखरूप दुःख का मर दुःख का व्यवसाय व्यवसाय करने संसार से कृपा आसक्ति में अधिक मुक्ति और अनुमान तथा जीव का न मानना बौद्ध मानते हैं ॥

इत्यत्र लोकनायका सत्त्वात्म्यपञ्चानुगाः ।

मिथ्यन्त बहुधा लोक उपायेषुभिः किल ॥ १ ॥

गम्भीरोक्तानभेदान् कश्चिद्योऽप्यकक्षुषाः ।

मिथा हि इत्यत्र मिथ्यामन्यतद्वयलक्षणा ॥ २ ॥

अर्थानुपान्य बहुधा द्वावद्वयतन्त्राणि यः ।

परितः पूजनीयानि किमन्येरिह पूजिते ॥ ३ ॥

आनेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।

मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वावद्वयतनं बुधैः ॥ ४ ॥

अर्थात् जो ज्ञानी विद्वान्, जीवन्मुक्त ज्ञानों के साथ पुत्र आदि तीर्थहारी के वरानों के स्वरूप को जाननेवाला जो कि मित्र २ पराधों का उपदेशक है मित्रका बहुत से मेह और बहुत से उपायों से कहा है अन्तर्गत मान्य ॥ १ ॥ बड़े गम्भीर और प्रसिद्ध मेह से कहीं २ गुप्त और प्रकृता से मित्र २ गुप्तों के उपदेश जो कि लून लक्षणावुक्त पूर्व कह अपने उनको मान्य ॥ २ ॥ जो द्वावद्वयतन पूजा है वही मोक्ष करनवाली है उस पूजा के बिना बहुत से द्वावद्वय पराधों को प्रसन्न होकर द्वावद्वयतन अर्थात् सात प्रकार के कर्म विनाप वर के सब प्रकार से पूजा करनी चाहिये अन्य की पूजा करन से क्या प्रयोजन ॥ ३ ॥ इसको द्वावद्वयतन पूजा कह है—बाँच शास्त्र इन्द्रिय अर्थात् धोत्र तक बहुत,

, अथर्वतन संज्ञा (बौद्धार्थ) ॥ ॥

वाधिविच विचार ॥ ॥

विद्या और अधिष्ठा। पाँच कर्मोन्मिश्र अर्थात् ब्रह्म, इत्य, पाप गुण और उपसर्ग
१ इन्मिश्रों और मन, बुद्धि इन्हीं का सम्मेलन अर्थात् इनको आत्मन्य में प्रवृत्त
रखना इत्यादि बीज का मत है ॥ ४ ॥

उत्तर—जो सब संसार दुःखरूप होता तो किसी जीव की प्रवृत्ति व होनी
चाहिये, संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रसन्न ही रहती है इसलिये सब संसार
दुःखरूप नहीं हो सकता किन्तु इसमें कुछ दुःख दोनों हैं और जो बीज अंग
देख ही सिद्धान्त मानते हैं तो बाधपापादि करना और पथ्य तथा मोक्षपाप
सेवन करके शरीर रक्षण करने में प्रवृत्त होकर कुछ नहीं मानते हैं ? जो कहे कि
हम प्रवृत्त तो होते हैं परन्तु इसको दुःख ही मानते हैं तो वह कथन ही सम्यक्
नहीं क्योंकि जीव कुछ बाधकर प्रवृत्त और दुःख जानके निवृत्त होता है। अंत
में जर्म विद्या निष्ठा अन्तर्गादि भेद अन्तर्गत सब सुखकरक हैं इनको कोई भी
विद्या दुःख का विद्या नहीं मान सकता किन्ना बीजों के। जो पाँच स्कन्ध हैं वे
भी पूर्ण ० अपूर्ण हैं क्योंकि जो देश २ स्कन्ध विचारने कर्म तो एक २ के अन्त
मेव ही समझे हैं ॥

जिन तीर्थंकरों को उपदेशक और लोकनाथ मानते हैं और अर्थात् जो शरीरों
का भी नाश परमात्मा है उसको नहीं मानते तो उन तीर्थंकरों ने उपदेश किससे
पाया ? जो कहे कि एकात्म्य हुआ तो ऐसा कथन सम्यक् नहीं क्योंकि अन्त
के विना कर्म नहीं हो सकता अन्तर्गत उनके कर्मव्युत्पन्न ऐसा ही होता तो सब
भी उनमें विद्या पडे पड़ने से सब सुखाने और आशियों के सम्मुख किन्ना किन्ना शान्ति नहीं
होनाते सब नहीं होते तो ऐसा कथन सर्वथा निर्मूलक और बुद्धिगम्य सन्निपात
रोगग्रस्त मनुज के बर्ताने के समान है ॥

जो शून्यरूप ही प्रवृत्त उपदेश बीजों का है तो किन्नाय वस्तु शून्यरूप कभी
नहीं हो सकता जो सृष्टि अस्तित्वरूप तो होताता है इसलिये यह भी कथन
असम्बन्धी है। जो शून्यों के उपार्जन से ही पूर्णतः हावशास्त्रपूजा मोक्ष का अन्त
मानते हैं तो क्या प्रथम और अन्तर्गत जीवत्मा की पूजा नहीं नहीं करते ? सब
इन्मिश्र और अन्तर्गत की पूजा भी मोक्षान्तर है तो इन बीजों और विषयों नहीं
में क्या मोक्ष रहा ? जो अन्तर्गत से बीज नहीं सब सके तो कदाचित् भी नहीं रही कदा
पैदा करते हैं कदा मुक्ति का क्या काम ? क्या ही अन्तर्गत अपनी अधिष्ठा की उन्नति
की है किन्नाय सादर्य इनके विद्या दूसरों से नहीं का सकता ॥

विचार तो नहीं होता है कि इनको वेद ईश्वर से विरोध करने का नहीं पडा
मिथा। पूर्व तो सब संसार की दुःखकपी अन्तर्गत की फिर जीव में हावशास्त्रपूजा
पूजा अर्थात् क्या इनकी हावशास्त्रपूजा अन्तर्गत के पदार्थों से बाहर की है जो
मुक्ति की चेष्टाकारी हो सके, तो भला कभी जाँच मीच के कहे रक्त इत्यादि
का इहे कभी प्राप्त हो सकता है ? पंथा ही इनकी बीजा वेद ईश्वर को व मानने से
हुई, धर्म भी कुछ नहीं तो वेद ईश्वर का आश्रय छोड़ अपना अन्तर्गत सफल करें ॥

विशेषविज्ञास' ग्रन्थ में बीहों का इस प्रकार का मत लिखा है—

बीह्यानां सुगतो देवो विभ्वं च चक्षुर्मगुरम् ।

आर्यसंशक्त्या तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात् ॥ १ ॥

बुद्धमापन्नं चैव ततः समुद्यो मतः ।

मार्गलोप्यस्य च व्याख्या क्रमेण भूपतामतः ॥ २ ॥

बुद्धसंसारिणः स्कन्धास्तं च पञ्च प्रकीर्त्तिताः ।

विज्ञानं कर्मा संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥ ३ ॥

पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषया पञ्च मानसम् ।

धर्मापन्नमेतानि ब्राह्मण्यतनानि तु ॥ ४ ॥

रागादीनां गणोऽयं स्मात्समुद्रेति नृणां इति ।

आत्मसमीपस्वभावाक्यं च स्मात्समुद्य' पुनः ॥ ५ ॥

सृष्टिकारः सर्वसंस्कार इति वा वासनास्थिरः ।

स भाग इति विज्ञेय' स च मोक्षोऽभिधीयते ॥ ६ ॥

प्रत्यक्षानुमानं च प्रमाणद्वितयं तथा ।

चतुःप्रमाणिका बोद्धा व्याख्या येमापिकाद्य' ॥ ७ ॥

अर्था ध्यानाग्निगतो धर्माविच्छेदः स तु मस्यतः ।

सौम्यस्मिन्नन प्रत्यक्षमाद्योऽर्थो न बहिमतः ॥ ८ ॥

आकापसहिता बुद्धिर्पोंगात्स्वतस्य संमता ।

कथनां संविदं स्वस्यां मस्यन्ते मध्यमा पुनः ॥ ९ ॥

रागादिज्ञानसंस्थानयासनाच्छब्दसम्भवा ।

चतुर्णामपि बीह्यानां मुक्तिरेषा प्रकीर्त्तिता ॥ १० ॥

कृतिः कमयश्चतुर्मास्यं धीरे पूर्वाह्नमोक्षणम्

संचो रक्षाम्बरस्थं च शिथिलं बीह्यभिपुभिः ॥ ११ ॥

बीहों का सुगतदेव बुद्ध मस्यन् पञ्चबीह देव और जगत् चक्षुर्मगुर आर्षपुष्ट
और आर्षा की तथा तन्नों की प्रत्यक्ष संज्ञादि प्रसिद्धि से चार तन्नों बीहों में
मन्तव्य पदार्थ हैं ॥ १ ॥ इस विषय को बुद्ध का घर जाने तदन्तर तमुद्य
अर्थात् उत्पत्ति होती है और इनकी व्याख्या ग्रन्थ छ सुबो ॥ २ ॥ संस्कार में
बुद्ध ही है जो पञ्चस्कन्ध पूर्व कह जाते हैं उनको जानना ॥ ३ ॥ पञ्च मायेन्द्रिय
उनके शब्दादि विषय पांच और मन बुद्धि अन्तःकरण चर्मे का व्यापक वे द्वारण
हैं ॥ ४ ॥ जो मनुष्यों के इन्द्र में रागद्वारादि समूह की उत्पत्ति होती है वह
समुद्य और जो व्याप्य अज्ञा के संस्कन्धी और स्वभाव है वह व्याप्य इन्हीं
स फिर समुद्य होता है ॥ ५ ॥ सब संस्कार कथिक हैं जो वह व्याप्य स्थिर
होना वह बीहों का मार्ग है और यही शब्द तब शब्दरूप हो जाना मोक्ष है
॥ ६ ॥ बीह ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण मानते हैं । चार प्रकार
॥ ७ ॥ हैं—वैयर्थिक सौम्यस्मिन्न योगाचार और भाव्यमिद ॥ ८ ॥ इन

में वैयक्तिक ज्ञान में जो अर्थ है उसको विद्यमान मानता है क्योंकि जो अर्थ नहीं है उसका होना सिद्ध पुरुष नहीं मान सकता और सौभाग्यिक मीत को प्रत्यक्ष पदार्थ मानता है बाहर नहीं ॥ ८ ॥ योग्यचार व्याकरण सहित विज्ञानपुत्र पुत्रि को मानता है और व्यापकिक केवल अपने में पदार्थों को मानता मानता है पदार्थों को नहीं मानता ॥ ९ ॥ और रागादि ज्ञान के प्रत्यक्ष की वस्तु के बाह्य से उत्पन्न हुई सुक्ति क्यों बीजों की है ॥ १ ॥ ॥ सुप्रति का कला कर्मरहस्य, मूँद मूँदारे कर्मरहस्य पद पृथाद्वय चर्चाम् ६ बने से पूर्व मान्य, अनेक्य न रहे रक्त बल का धारण यह बीजों के साधुओं का वेत है ॥ ११ ॥

उ — जो बीजों का सुप्रति बुद्ध ही वेत है तो उसका गुण बीज का । और जो सिद्ध ब्रह्मण ही तो चिरत्न पदार्थ का वह नहीं है ऐसा उत्तर न होना चाहिये जो ब्रह्मण होता तो वह पदार्थ ही नहीं रहता पुनः उत्तर निश्चय होने । जो अधिकार्य ही बीजों का मार्ग है तो इनका मोक्ष भी ब्रह्मण होना । जो ज्ञान से कुछ अर्थ ज्ञान ही तो जब ज्ञान में भी शान होना चाहिये और वह अक्षय्यदि किन्ना किन्ना पर करता है । मन्ना जो बाहर हीकटा है वह निम्ना कैसे हो सकता है । जो व्याकरण से सहित पुत्रि होवे तो उत्प होना चाहिये जो केवल ज्ञान ही इत्य में अत्यन्त होवे बाह्य पदार्थों को केवल ज्ञान ही मान्य ज्ञान तो ज्ञेय पदार्थ के किन्ना ज्ञान ही नहीं हो सकता जो वास्तव्यत्व ही सुक्ति है तो सुप्रति में भी सुक्ति माननी चाहिये ऐसा मानना विद्य से निम्न होने के कारण तिरस्करणीय है । इत्यादि बातें संक्षेपता बीजमतकों की प्रवर्तित कर दी है । अब बुद्धिमान् विचारशील पुरुष अन्वेषण करने काव्य ज्ञानों कि इनकी कैसी विद्य और कैसा मत है । इनको जीव ज्ञेय भी मानते हैं ॥

यहाँ से आगे जैनमत का वर्णन है ॥

मन्त्ररत्नकर १ मन्ना कल्पकाल में विज्ञानविहित बातें लिखी है—

बीज ज्ञेय समय २ में कर्णिकपत्र से (१) आत्मन (२) अक्ष (३) बीज, (४) पुरुष ॥ ये चार ज्ञान मानते हैं और जीव ज्ञेय चर्मसिद्धय अचर्मसिद्धय आत्मसाक्षिजन्य पुरुषसाक्षिजन्य बीजसिद्धय और अक्ष इत्येक ज्ञानों को मानते हैं । इनमें अक्ष को अक्षिजन्य नहीं मानते किन्तु ऐसा कहते हैं कि अक्ष उपचार से ज्ञान है, वस्तुतः नहीं ॥

उन्में से “चर्मसिद्धय” जो व्यतिपरिवर्तनीय से परिवर्तन को प्राप्त हुआ जीव और पुरुष इत्येकी व्यति से समीप से सम्भव करने का हेतु है वह चर्मसिद्धय और वह अक्षेयप्रवेष्ट परिवर्तन और जीव में व्यापक है । दूसरा “अचर्मसिद्धय” यह है कि जो किरता से परिवर्तनीय हुए जीव तथा पुरुष की किन्ति के आत्म का हेतु है । तीसरा “आत्मसाक्षिजन्य” उन्को कहते हैं कि जो अब ज्ञानों का आधार जिसमें अक्षप्रवेष्ट प्रवेष्ट किन्ति आदि किन्ना करने वाले जीव तथा पुरुषों की अक्षप्रवेष्ट का हेतु और सर्वव्यापी है । चौथा “पुरुषसाक्षिजन्य” यह है कि जो अक्षजन्य सुध्य विद्य एक रक्त, कर्ण पञ्च रूपों कर्ण का किन्ना करने और

गहने के सम्प्रत्ययाद्य होता है। पाँचवाँ 'जीवस्तिष्ठन्' जो केतनाद्यवयव द्वारा वर्यं में उपपुत्र अन्तर्गत्त पर्वतों से परिखासी होनेवाला कर्त्ता मोक्ष है और वर्य 'अथ' यह है कि जो पूर्वोक्त पञ्चस्तिष्ठन्को वर परव्य अपरव्य मनीन प्रवीणता वर विद्वत्त्व प्रसिद्ध वर्तमानव्य पर्वतों से युक्त है वह अथ कहाता है ॥

समीक्षा—जो बीहों वे वार वर्य प्रतिसमय में मनीन २ माने हैं वे मूठ हैं क्योंकि अन्तरा अथ जीव और परमात्मा वे मने वर पुराने कभी नहीं हो सकते क्योंकि वे अन्तरा और अन्तरात्म से अविनाशी हैं पुत्र अथ और पुराव्य पम कैसे वर सकता है और जीवियों वर मानव्य भी ठीक नहीं क्योंकि धर्माधर्म वर्य नहीं किन्तु पुत्र हैं वे दोनों जीवस्तिष्ठन् में वर वारते हैं इत्यन्तिने अन्तरा परमात्मा जीव और अन्तरा मानते तो ठीक वर और जो वर वर्य वैरोचिक में माने हैं वे ही ठीक हैं क्योंकि पुत्रिणादि पाँच तन्त्र अथ विद्या धार्या और मन वे वर पुत्र २ पदार्थ विहित हैं पुत्र जीव को केतन मान कर ईश्वर को न मानव्य वह जीव बीहों की सिन्ध पक्षपात की वार है ॥

अथ जो बीह और जीव कोय समझी और काहाव मानते हैं सो यह है कि सन् वर्य" इसको प्रथम मन्त्र कहते हैं क्योंकि वर अपनी वर्तमानव्य से युक्त अर्थात् वर्य है इसने अन्तरा वर विरोध किया है। दूसरा मन्त्र "असन् वर्य" कहा नहीं है प्रथम वर के वर से इस वर के असन्त्रा से दूसरा मन्त्र है। तीसरा मन्त्र यह है कि सन्त्रा वर्य" अर्थात् वर कहा तो है परन्तु वर नहीं क्योंकि वर दोनों से युक्त हो गया। चौथा मन्त्र "अतोऽप्य जीव अथ्य वर्य" दूसरे वर के अन्तरा की अन्तरा अपने में होने से वर अथ्य कहाता है, कुम्पत् उसकी दो संज्ञा अर्थात् वर और अथ्य भी है। पाँचवाँ मन्त्र यह है कि वर को वर कहाव्य अथोन्त्र अर्थात् वर में वरव्य वर्य है और पठन्त्र वर्य है। वर्य मन्त्र यह है कि जो वर नहीं है वर कहने वीर्य भी नहीं और जो है वर है और कहने वीर्य भी है और सारवा मन्त्र यह है कि जो कहने को वर है परन्तु वर नहीं है और कहने के वीर्य भी नहीं यह सप्तममन्त्र कहाता है। इसी प्रकार—

स्यास्ति जीवोऽथ प्रथमो मन्त्र ॥ १ ॥

समाधस्ति जीवो द्वितीयो मन्त्र ॥ २ ॥

स्याद्यत्तयो जीवस्तृतीयो मन्त्र ॥ ३ ॥

स्यास्ति नास्तिरूपा जीवमपुर्वो मन्त्र ॥ ४ ॥

स्यास्ति [अ] अथ्ययो जीव पञ्चमो मन्त्र ॥ ५ ॥

स्याधस्ति [अ] अथ्ययो जीव पष्ठो मन्त्र ॥ ६ ॥

स्यास्ति [अ] नास्ति अथ्ययो जीव इति सप्तमो मन्त्र ॥ ७ ॥

अर्थ—“हे जीव” ऐसा कहव हाव तो जीव के विरोधी वर पदार्थों वर जीव में अन्तरात्म मन्त्र प्रथम कहाता है। दूसरा मन्त्र यह है कि नहीं है जीव” वर

में ऐसा कर्म भी होता है इससे यह दूसरा भ्रम कटता है। *
 करने योग्य नहीं यह तीसरा भ्रम। जब जीव शरीर धारण करता।
 और जब शरीर से युक्त होता है तब अग्रसिद्ध रहता है ऐसा कर्म ऐसे
 कर्मों में गण्य कइते हैं। जीव है परन्तु कइने योग्य नहीं जो ऐसा कर्म
 पश्य भ्रम कइते हैं। जीव प्रत्यक्ष प्रमाण से कइने में नहीं सक्षम
 कर्म प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा प्रमाणद्वारा है उसको पश्य भ्रम कइते हैं। एक
 जीव का अनुमान से होना और अदृश्यपथ में न होना और एकत्र न
 बस २ में परिक्रम को प्राप्त होना अस्ति नास्ति न होने और
 व्यवहार भी न होने यह सातवाँ भ्रम कइता है ॥

इसी प्रकार निष्काम ससम्पत्ती और अमितकाम ससम्पत्ती तथा
 निष्काम धर्म गुण और पदार्थों की प्रत्येक वस्तु में ससम्पत्ती होती है।
 गुण स्वभाव और पदार्थों के अस्तित्व होने से ससम्पत्ती भी प्रमाण होती है।
 बीज तथा बीजियों का ज्ञातव्य और ससम्पत्ती ज्ञान कइता है ॥

समीक्षक—यह कर्म एक अन्वयान्वय में साधर्म्य और
 अतितात्पर्य हो सकता है। इस तरह प्रमाण को दोषकर
 अज्ञानियों के चिन्तने के लिए होता है। हेतु। जीव का अज्ञान
 का जीव में प्रमाण रहता ही है जैसे जीव और कर्म के सम्बन्ध होने
 और केवल तथा कर्म होने से वैयर्थ्य प्रमाण जीव में केवल (अस्ति
 कर्म (अस्ति) नहीं है। इसी प्रकार कर्म में कर्म है और केवल
 इससे गुण कर्म स्वभाव के समाप्त धर्म और विरक्त धर्म के विचार से न
 ससम्पत्ती और ज्ञातव्य सत्यता से समर्थ में व्युत्पन्न है फिर कर्म
 किस कर्म का है? इसमें बीज और बीजों का एक मत है।
 होने से निष्काम भी हो सकता है ॥

अब इसके आगे केवल वैयर्थ्य विचार में विचार करना है—

विशेषितं द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम् ।

अपानेयमुपादेयं हेतुं हेतुं च कुर्वत ॥ १ ॥

हेतुं हि कर्तृगतावि तत् कर्ममविवेकितम् ।

अपानेयं परं कर्पोतिकपयोमौक्तकस्यम् ॥ २ ॥

जैव लोग "चित्" और "अचित्" अर्थात् केवल और अज्ञान
 मानते हैं उन दोनों के विवेक का नाम विवेक, जो २ प्रकार के होते हैं।
 के ज्ञान करने वाले को विवेकी कइते हैं ॥ १ ॥ अज्ञान का कर्म
 तथा ईश्वर के ज्ञान विवेक है इस अविवेकी मत का ज्ञान और ज्ञान
 परममोक्तिकप्य जो जीव है असत्य प्रमाण करवा कर्म है ॥ २ ॥

० नहीं (है परन्तु) इतना ज्ञान अधिक प्रतीत होता है। अज्ञान की
 पद ही ठीक मार्ग तो तीसरे और पाँचवें भ्रम में कुछ कतर नहीं का
 मूल में तीसरे भ्रम का अर्थ भी 'जीव कइने योग्य नहीं' इत्यादि है। ॥

मर्णात् जीव के विषय दूसरा कोश तब ईश्वर को नहीं मानते कोई भी भगवादि सिद्ध ईश्वर नहीं ऐसा बीड़ जैन लोग मानते हैं। इसमें राजा शिखण्डाद्वयी 'इतिहासतिमिरवाणक' ग्रन्थ में लिखते हैं कि इनके दो नाम हैं एक जैन और दूसरा बीड़ वे पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु बीड़ों में धर्ममार्गी भ्रमसाहचारी बीड़ हैं इनके साथ जैमिनों का विरोध है परन्तु जो महावीर और गौतम गणधर हैं उनका नाम बीड़ों ने कुछ रक्खा है और जो जैमिनों ने गणधर और जिनकर इसमें 'जिन' की परम्परा जैनमत है ॥

उन राजा शिखण्डाद्वयी ने अपने 'इतिहास तिमिरवाणक' ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में लिखा है कि "स्वामी कण्डुगार्थ" से पढ़िये जिन' को हुए कुछ हजार वर्ष के सम्मत्ता गजने हैं। सारे भारतवर्ष में बीड़ अथवा जैनधर्म फैला हुआ था। इस पर बोध—“बीड़ कहने से हमारा आशय उस मत से है जो महावीर के गणधर गौतम स्वामी के समय से कण्डु स्वामी के समकालिक वेदविक्रम सार भारतवर्ष में फैला रहा और जिसको कथोक्त और सम्प्रति महाराज ने मान्य उससे जैन कहकर किसी तरह नहीं बिकल सकते। “जिन” जिससे “जैन” बिकला और वह जिससे बीड़ बिकला दोनों पर्यायवाची शब्द हैं कोश में दोनों का अर्थ एक ही लिखा है और गौतम को दोनों मानते हैं कर्त्तृ हीपर्यंत इत्यादि पुराने बीड़ ग्रन्थों में शास्त्रमणि गौतम कुछ को अक्षर महावीर ही के नाम से लिखा है। एक इसके समय में एक ही उक्त मत रहा होगा। हमने जो जैन न बिकला गौतम के मत आखों को बीड़ लिखा उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि इसको हमने देशवालों ने बीड़ ही के नाम से लिखा है।” ऐसा ही अमरकोश में भी लिखा है—

सर्वेषु सुगतो पृथो धर्मराजस्तथागतः ।

समन्तमष्टो भगवन्मागधिलोकजिह्विनः ॥ १ ॥

पञ्चमिष्टो वराहकोऽव्ययवाही विनायकः ।

मुनीन्द्र श्रीघनः शास्ता भनिः शाक्यमभिस्तपः ॥ २ ॥

स शाक्यसिंहः सर्वार्थः सिद्धः शौखेननिश्चयः ।

गौतमश्चाक्यपुण्ड्र मायादेवीसुतश्च सः ॥ ३ ॥

अमरकोश की १ की १ श्लोक ११ से १२ तक ॥

अब देखो ! वह जिन और बीड़ तथा जैन एक के नाम हैं या नहीं ? क्या अमरकोश भी कुछ जिन के एक लिखने में भूल गया है ? जो अविज्ञान जैन हैं वे तो न अपना मानते और न दूसरे का बेवक इमाज से वर्णन करत हैं परन्तु जो ईश्वरों में विश्वास हैं वे सब जानते हैं कि “जुड़” और “जिन” तथा “बीड़” और “जैन” पर्यायवाची हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं। जैन लोग कहते हैं कि जीव ही परमेश्वर हो जाता है वे जो अपने तीर्थङ्करों को ही देवकी मुक्ति प्राप्त और परमेश्वर मानते हैं भगवादि परमेश्वर कोई नहीं। सर्वज्ञ बीतराज चार्द्व देवकी तीर्थङ्कर जिन वे पः गण्डिकों के राजाओं के नाम हैं। अद्विष्ट का स्वरूप चन्द्रसुरि ने “अष्टविश्वसङ्ग्राह” ग्रन्थ में लिखा है—

सर्वज्ञो वीतरागादिवोपरत्रैतोमपयूजितः ।

यथास्थितार्थवादी च त्वेवोऽहम् परमेश्वरः ॥ १ ॥

कैसे ही 'तीतादिताँ' ७ ने भी किया है कि—

सर्वज्ञो वक्ष्यत तावन्मेवामीमस्मदादिभिः ।

दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति भिन्नं वा योऽनुमापयेत् ॥ २ ॥

न 'यागमविधि' कश्चिद्विध्यसर्वज्ञबोधकः ।

न च तत्रार्थवादानां तात्पर्यमपि कल्पते ॥ ३ ॥

न चान्यार्थप्रधानैस्तद्वस्तित्वं विधीयत ।

न चानुपादितुं शक्यः पूर्णमन्यैरबोधितः ॥ ४ ॥

जो हमारे दोषों से रहित प्रेमोन्मत्त में पड़नाम बचानु पड़ाही का क्या सर्वज्ञ चाहे दे नहीं परमेवर है ॥ १ ॥ जिसलिये हम इस समय परमेवर को नहीं देखते इसलिये कोई सर्वज्ञ जगत्परि परमेवर प्रत्यक्ष नहीं जब ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं तो अनुमान भी नहीं कर सकता क्योंकि एक देव प्रत्यक्ष के बिना अनुमान नहीं हो सकता ॥ २ ॥ जब प्रत्यक्ष अनुमान नहीं तो प्रथम अर्थात् जिस जगत्परि सर्वज्ञ परमात्मा का बोधक शब्दप्रमाण ही नहीं हो सकता जब तीनों प्रमाण नहीं तो अर्थेश्वर अर्थात् सृष्टि बिना परकृति अर्थात् पराने और का बचन और प्रमाण अर्थात् इतिहास का तात्पर्य भी नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ और अन्वयप्रमाण जगत् बहुमीहि प्रमाण के रूप परेश परमात्मा की छिद्र का विधान भी नहीं हो सकता पुनः ईश्वर के उपदेशों से सुने बिना अनुमान भी कैसे हो सकता है ॥ ४ ॥

इसका प्रमाणन अर्थात् उदाहरण—जो जगत्परि ईश्वर न होता तो "चाहे" देव के प्रमाण पितृ जगत्परि के शरीर का साध्य कीन बचता ? बिना संप्रोक्तता के बधानेन सर्वज्ञत्वप्रमाणन बधोचित कार्य करने में उपयुक्त शरीर न ही नहीं सकता और जिस पदार्थों से शरीर बना है उनके जड़ होने से स्वयं इस प्रकार की उत्तम रचना से पुत्र शरीर कम नहीं बन सकते क्योंकि उनमें बधानेन कवन का ज्ञान ही नहीं और जो जगत्परि दोषों से सहित होकर जगत्परि दोष रहित होता है वह ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिस निमित्त से वह जगत्परि से मुक्त होता है वह मुक्ति उस निमित्त के पूरक से उत्तम कार्य मुक्ति भी अनित्य होगी । जो शरीर और जगत्परि है वह सर्वव्यापक और सबकुछ कभी नहीं हो सकता क्योंकि जीव का स्वरूप एकदली और परिमित गुण कर्म स्वभावधरा होता है वह सब विषयों में सब प्रकार बधानेन नहीं हो सकता इसलिये गुम्हार तीर्थेश्वर परमेवर कभी नहीं हो सकते ॥ १ ॥ क्या तुम जो प्रत्यक्ष पदार्थ हैं जगत्परि को मानते हो प्रमाण को नहीं ? प्रिये जान स कप और कप से शरीर का प्रमाण नहीं हो सकता केन ।

• तीनामिन' अर्थात् मालिकमीमांसक । ५ ॥

† यहाँ कर्म ६ जगत् इन्द्रियों से परमात्मा का भी प्रमाण नहीं हमारा इतना और कुछ चाहिये ॥

अथादि परमात्मा को देखने का साधन अनुमानाकरण विद्या और योगाभ्यास से
 पवित्रात्मा परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है जैसे बिना पड़े विद्या के प्रबोधनों की
 प्राप्ति नहीं होती ऐसे ही योगाभ्यास और विज्ञान के बिना परमात्मा भी नहीं दीख
 पड़ता जैसे मृत्ति के कणों में गुच्छ हो कर देख जाय के गुणों से अल्पवैदित सम्बन्ध
 से पृथिवी प्रकट होती है वैसे इस स्थिति में परमात्मा की रचना विशेष सिद्ध इस
 के परमात्म प्रकट होता है और जो पापान्तर्याम्य समस्त में मय शब्द अर्थ
 प्रकट होती है वह अन्तर्धर्मी परमात्मा की ओर से है इसमें भी परमात्मा प्रकट
 होता है । फिर अनुमान के होने में क्या सम्यक् हो सकता है ॥ १ ॥ और प्रकट
 तथा अनुमान के होने से सामान्य प्रमाण भी निरा अग्राहि सर्वज्ञ ईश्वर का
 बोधक होता है इसलिये शब्द प्रमाण भी ईश्वर में है । जब तीनों प्रमाणों से
 ईश्वर को ज्ञान प्राप्त सकता है तब सर्वज्ञ सर्वशक्ति परमेश्वर के गुणों की प्रतीक्षा
 करना भी क्यापे पड़ता है क्योंकि जो निरा पदार्थ है उनके गुण, कर्म स्वभाव
 भी निरा होते हैं उनकी प्रतीक्षा करने में कोई भी प्रतिकूलक नहीं ॥ ३ ॥ जैसे
 मनुष्यों में कर्ता के बिना कोई भी कार्य नहीं होता वैसे ही इस महत्त्वपूर्ण का
 कर्ता के बिना होना सर्वथा असंभव है । जब पंडा है तो ईश्वर के होने में शक
 को भी सम्यक् नहीं हो सकता । जब परमात्मा के उपदेश करनेवालों से मुक्ति
 पश्चात् उसका अनुभव करना भी सरल है ॥ ४ ॥ इससे जनों के प्रत्यक्ष
 प्रमाणों से ईश्वर का अस्तित्व करना आदि व्यवहार अनुचित है ॥

प्र०—अनादिरागमद्वयार्था न च सर्वज्ञ आदिमान् ।

कृत्रिमेव त्वसत्यं स कथं प्रतिपाद्यत ॥ १ ॥

अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्येः प्रतीयत ।

प्रकटपठ कथं सिद्धिरन्योऽभ्यासयोज्योः ॥ २ ॥

सपञ्चोक्ततया यावत् सत्यं तेन तद्वसितम् ।

कथं तनुमयं सिम्भात् सिद्धमूक्तान्तराद्यत ॥ ३ ॥

धीय में सर्वज्ञ हुआ अग्राहि शब्द का अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि किन्
 हुए असत्य वचन से उसका प्रतिपादन किन् प्रकार से हो सका है ॥ १ ॥ और जो
 परमेश्वर ही के वचन से परमेश्वर सिद्ध होता है तो अग्राहि ईश्वर का अग्राहि शब्द
 की सिद्धि (और) अग्राहि शब्द से अनादि ईश्वर की सिद्धि अन्वयान्तराद्यत होप
 पड़ता है ॥ २ ॥ क्योंकि सर्वज्ञ के कथन से वह वेदवचन अन्य और उद्धी वेदवचन
 से ईश्वर की सिद्धि करते हो वह कैसे सिद्ध हो सकता है ? उस शब्द और
 परमेश्वर की सिद्धि का किये तीव्रता को प्रमाण चाहिये जा देखा मन्त्रोपे तो
 अन्वयान्तराद्यत होप पड़ता है ॥ ३ ॥

३०—इमं शेष परमेश्वर और परमेश्वर का गुण कर्म, स्वभाव का अग्राहि
 मन्त्र है अनादि विषय पदार्थों में अन्वयान्तराद्यत नहीं जा सकता । जैसे कर्म
 से कारण का ज्ञान और कारण का कारण का बोध होता है कर्म में कारण का
 स्वभाव और कारण में कारण का स्वभाव निरा है कि परमेश्वर और परमेश्वर का अन्वय

हो आप क्योंकि ईश्वर बनने के प्रथम जीव का पश्चात् किसी निमित्त से ईश्वर बना तो फिर भी जीव हो जायगा । अपने जीवन् स्वभाव को कभी नहीं छोड़ सकता क्योंकि अमरत्वका यह जीव है और अमरत्वका एक रक्षण इसलिये इस अमरत्व स्वतन्त्र ईश्वर को मानना योग्य है । देखो ! जिस वर्तमान समय में जीव पाप पुण्य करता मुक्त दुःख योग्य है कि ईश्वर कभी नहीं होता । जो ईश्वर विनाशान् म होता तो इस जगत् को कैसे बना सकता ? जो कर्मों का प्रगल्भकत् अमरत्व प्राप्त मानते हो तो कर्मसमन्वय सम्बन्ध से नहीं रहेगा जो अमरत्व सम्बन्ध से नहीं वह संयोग्य होने अर्थित होता है जो मुक्ति में विना ही म मायते हो तो वे मुक्त जीव जान नाके होते हैं या नहीं ? जो कहो होते हैं तो अन्तः ० विना अपने हुए । क्या मुक्ति में पापकत् एक हो जाते एक ठिक्कने पड़े रहते और कुछ भी चेष्टा नहीं करते तो मुक्ति क्या हुई किन्तु अण्यकार और अन्धन में पड़ गये ॥

ना०—ईश्वर व्यापक नहीं है जो व्यापक होता तो सब वस्तु केवल क्यों नहीं होती ? और व्यापक पक्षि ईश्वर शुद्ध अमर की उच्च मध्यम विद्वत् अमरत्व क्यों हुई ? क्योंकि सब में ईश्वर एकता व्याप्त है तो कुर्याई कुर्याई म होनी चाहिये ॥

आ०—व्यापक और व्यापक एक नहीं होते किन्तु व्यापक एकदली और व्यापक सबरेली होता है जिस आकार सब में व्यापक है और भूषण और अण्यदि सब व्यापक एकदली है जिस पृथिवी आकार एक नहीं कि ईश्वर और जगत् एक नहीं जिस सब अण्यदि में आकार व्यापक है और अण्यदि आकार नहीं कि परमेश्वर केवल सब में है और सब अन्त नहीं होता कि विद्वत् अविद्वत् और धर्मज्ञ और अधर्मज्ञ बराबर नहीं हात विद्वदि सगुण और अमरत्वकदि कर्म सुखीकदि स्वभाव के नृणाधिक होने से अमरत्व पक्षि ईश्वर शुद्ध और अमरत्व के तारे माने अन्त है । क्यों की व्यापक प्रीति "ब्रह्मसमुद्गास" में छिन्न आने है वही देखो ॥

ना०—जो ईश्वर की रचना से गृहि होती ता मर्यादित कि क्या कम ?

आ०—देखी गृहि का ईश्वर कहाँ है कि गृहि का नहीं, जो जीवों के कर्तव्य कम है उनको ईश्वर नहीं करता किन्तु जीव ही करता है किसे कुछ कम अथवा अण्यदि ईश्वर ने उत्पन्न किया है उसका लेकर मनुष्य म पीछे म पूर्व म छोटी अदि वस्तु बनाई और म पछे ता क्या ईश्वर उत्पन्न वस्तु इन कर्मों को कभी अन्त ? और जो न करें तो जीव का जीवन भी न हास है इसलिये अमरत्व में जीव के गरीबी और अन्त का अन्त ईश्वरजीव पश्चात् अन्त पुण्यदि की उत्पत्ति करता जीव का कर्तव्य काम है ॥

ना०—जब परमात्मा अमर अमरि विद्वान् अमरत्वक है तो जगत् के प्रथम और दुःख में क्यों पड़ा ? अमरत्व पक्षि दुःख का अमरत्व क्या कम का साधारण मनुष्य भी नहीं करता ईश्वर ने क्यों किया ?

विषयदि गुण मिल होने से ईश्वरप्रसीत केव में प्रगल्भ होय नहीं जाय ॥ १ ॥
 ॥ १ ॥ १ ॥ और तुम तीर्थङ्करों को परमेश्वर मानते हो यह कमी नहीं ब
 सक्य क्योंकि विना माय पिता के उमय्य शरीर ही नहीं होय तो वे उपज्जा-
 नाय और मुक्ति का कैस पा सकते हैं ? कैसे ही संयाग का अ्यादि सम्य होय
 है क्योंकि विना विप्रेता के संनोय हो ही नहीं सक्य इसलिये अ्यादि छत्रिक
 परमात्मा को मायो ॥

देखो ! चाहे कितना ही कोई सिद्ध हो तो भी शरीर अ्यादि की रण्य
 को पूर्णता से नहीं जान सक्य जब किन्हीं जीव सुपुति द्वा में जाय है तब
 उसके कुछ भी भाव नहीं रहय जब जीव दुःख को प्राप्त हाय है तब उल्ल
 ज्ञान भी न्यून हो जाय है, ऐसे परिच्छिन्न सामान्यसे एक देव में रहनेसे को
 ईश्वर मानना विना अान्तिपुत्रिपुत्र कीर्तियों से अन्य कोई भी नहीं मान सक्य । जो
 तुम कहो कि वे तीर्थङ्कर अपने माय पिताओं से हुए तो वे ॐ किन् से और
 कन्से माय पिता किन् से ? फिर उनके भी माय पिता किन् से हुए । इसादि
 अनन्तत्व आगेकी ॥

आस्तिक और नास्तिक का संवाद ॥

इसके आगे प्रत्यक्षप्रत्यक्ष के दूसरे व्याग आस्तिक नास्तिक के संवाद के
 प्रसंग पर वही लिखते हैं जिसको बने १ कीर्तियों ने अपनी सम्मति के साथ माय
 और मुन्या में अन्तर्धान है ॥

नास्तिक—ईश्वर की इच्छा से कुछ नहीं होय जो कुछ हाय है वह कर्म से ॥

आस्तिक—जो लग कर्म से होता है तो कर्म किससे होय है ? जो कहो
 कि जीव अ्यादि से होय है तो विना अ्यादि छायाओं से जीव कर्म करय है वे किससे
 हुए ? जो कहो कि अ्यादि अन्त और स्वयय से होते हैं तो अ्यादि का कृत्य
 असम्भव होकर तुम्हारे मत में मुक्ति का अभाव हाय । जो कहो कि प्रत्यक्षप्रत्यक्ष
 अ्यादि सत्य हैं तो किन् वर के ज्ञ के कर्म विवृत्त हो जायेंगे । वाय ईश्वर
 अन्तप्रता न हो तो पाप के फल दुःख को जीव अपनी इच्छा से कमी नहीं
 मोगेय जैसे और अ्यादि जारी का फल अन्त अपनी इच्छा से नहीं प्राप्त किन्तु
 प्रत्यक्षप्रत्यक्ष से मोपते कैसे ही परमेश्वर के मुन्या से ही जीव पय और पुन्य के
 कर्मों को मोपते हैं प्रत्यक्षप्रत्यक्षप्रत्यक्ष हा जायय अन्त के कर्म अन्त को मोपने पड़ेंगे ॥

मा०—ईश्वर अक्रिय है क्योंकि जो कर्म करय होय तो कर्म का फल
 भी अ्येय पयता इसलिये जैसे हम केवली माय मुक्तों की अक्रिय मानते हैं
 जैसे तुम भी मानो ॥

आ०—ईश्वर अक्रिय नहीं किन्तु सक्रिय है जब केवल है तो कर्ता क्यों नहीं ? और
 जो कर्ता है तो वह विना स पुन्य कमी क्या हा सक्य । जैसा तुम अक्रिय अन्त
 के ईश्वर तीर्थङ्कर को जीव से बने हुए मानते हो इस प्रकार के ईश्वर को कर्त्ता भी
 विना नहीं मान सक्य क्योंकि जो निमित्त स ईश्वर बने हो अक्रिय और पराधीन

कपास सूत कपड़ा पत्ररक्षा कुपट्टा चोटी पगड़ी धादि कपड़े कमी नहीं आते । जब ऐसा नहीं तो ईश्वर कर्ता के बिना यह विविध जगत् और नामा प्रभर की रचना कितने कैसे बन सकती ? जो हृदयमें से स्वर्गसिद्ध जगत् को मानो तो स्वर्गसिद्ध उपरान्त ब्रह्मादिकों को कर्ता के बिना प्रलय कर दिखलाओ जब ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते पुनः तुम्हारे प्रमाथयन्त्र कपण को नीब बुद्धिमान मयाव सकता है ?

ना०—ईश्वर विरक्त है या मोहित ? जो विरक्त है तो जगत् के प्रपञ्च में क्यों पड़ा ? जो मोहित है तो जगत् के बचाने को समर्थ नहीं हो सकेगा ॥

ज्ञा०—पस्तेमर में बैराग्य का मोह कभी नहीं घट सकता क्योंकि जो चरित्रापक है वह जिसको छोड़े और जिसको ग्रहण करे ? ईश्वर स उत्तम का उदयको प्रकाश कोई पदार्थ नहीं है इसलिये किसी में मोह भी नहीं होता बैराग्य और मोह का होना बीच में रहता है ईश्वर में नहीं ॥

ना०—तो ईश्वर को कण्ठ क्य कर्ता और जीवों के कर्मों के फलों क्य दत्ता
मानोग तो ईश्वर प्रपञ्ची होकर दुःखी हो जायगा ॥

आ०—महा चनेच्छिष्य कर्मों का कर्ता और शक्तियों को फलों का दाता धार्मिक न्यायानुसार सिद्धान्त कर्मों से कहीं संसृत या प्रपञ्ची होता है तो परमेश्वर अथवा समारम्भक महा प्रपञ्ची और बुद्धी स्वयंस्वर होया ? हां तुम अपने और अपने तीर्थङ्करों के समान परमेश्वर को भी अपने अज्ञान से समझते हो सो तुम्हारी चक्षुष की सीमा है। जो अक्षिप्रादि दोषों से कृत्य चाहो तो वेदादि सम्प्रदायों का आश्रय लेओ नहीं प्रम में पड़े १ दोषों कहे हो ?

अब जब लोग जगत् को वैसा मानते हैं वैसा इसके सूर्यों के अनुसार दिखवाते और संश्लेषण मूढार्थ के लिये एकात् सम सूर्य की समीक्षा करके दिखवाते हैं—

मूल—स्यमिच्छयाऽप्यस्य नृणां संसारोत्थानम् ।

मोहाद् कम्म गुरु ठिद् विचारं वसन्तु भवन्तीतिरो ॥

अथर्ववेदस्य मन्त्रा इति १ । पर्वण्युक्त २ । सूत्र ३ ॥

यह एकतरफा मध्य प्रान्त के सम्मानजनक प्रदर्शन में गौरव और
मनाजीर का संघर्ष है ।

इसका संघर्ष से उपजीगी यह जान है कि यह संसार सबकुछ प्रगल्भ है न कभी इसकी उत्पत्ति हुई न विनाश होता है अथवा किसी भी वस्तु का अन्त नहीं सो ही आस्तिक आस्तिक के संसार में [है] हे गुरु ! अन्त का कर्ण काई नहीं न कभी बना और न कभी नाश होता ॥

स — जो संयोग से उत्पन्न होता है वह अभावि प्रकृत कभी नहीं हो सकता और उत्पत्ति तथा विनाश हुए बिना कर्म नहीं रहता अर्थात् में बितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब संयोगज उत्पत्ति विनाशवाले देखे जाते हैं पुनः अगत् उत्पन्न और विनाशवाला क्यों नहीं ? इसप्रकारे तुम्हारे तीर्थहरो को अन्धक बोध नहीं था जो उसके सम्बन्ध प्राप्त होता तो ऐसी असम्भव बातें क्यों प्रकट ? ईश तुम्हारे गुरु हैं ईशे तुम शिष्य भी हो तुम्हारी बातें सुनने वाले का पदार्थज्ञान कभी नहीं हो सकता । मन्त्र जो प्रत्यक्ष समुक्त पदार्थ प्रकट है उसकी उत्पत्ति और विनाश

आ०—परमात्मा किसी प्रपञ्च और दुःख में नहीं गिरता न अपने अन्त को छोड़ता है क्योंकि प्रपञ्च और दुःख में गिरना जो एकदली हो उन्नत हो सकता है सर्वदली का नहीं। जो अनादि विद्यामन्त्र आत्मस्वरूप परमात्मा अन्त को न बन्धने तो अन्त कीज बन्ध सके ? अतः बन्धने का जीव में अन्तर्भाव और जब मैं स्वयं बन्धने का भी सामर्थ्य नहीं इससे वह सिद्ध हुआ कि परमात्मा ही अन्त को अन्तता और सदा आत्मन्त में रहता है। जैसे परमात्मा परमस्तुति के सहित करता है कैसे माता पिताका विमिश्र करण स भी उत्पत्ति का प्रत्यक्ष नियम उसी ने किया है ॥

ना०—ईश्वर मुक्तिकारण गुण को छोड़ करण की सृष्टिकारण धारण और प्रत्यक्ष करने के लिये में क्यों पड़ा ?

आ०—ईश्वर सदा मुक्त होने स तुम्हारे साधकों से सिद्ध हुए तीर्थारों के समाप्त एकदली में रहनेवाले अन्तर्भाव मुक्ति स मुक्त अन्तर्भाव परमात्मा नहीं है। जो अन्तर्भाव गुण कर्म स्वयम्भुक्त परमात्मा है वह इस निमित्तपरमाण्व अन्त को बन्धता धारता और प्रत्यक्ष करता हुआ भी अन्त में नहीं पड़ता क्योंकि अन्त और मोक्ष समेकता से है। जैसे मुक्ति की अपेक्षा से अन्त और अन्त की अपेक्षा स मुक्ति होती है जो कभी वह नहीं या वह मुक्त क्योंकि कहा जा सकता है ? और जो एकदली जीव है ने ही वह और मुक्त सदा हुआ करते हैं। अन्त सर्वदली सर्वमात्मक ईश्वर अन्तर्भाव का निमित्तिक मुक्ति के अन्त में जैसे कि तुम्हारे तीर्थार हैं कभी नहीं पड़ता इसलिये वह परमात्मा सदैव मुक्त अन्त है ॥

ना०—जीव कर्मों के अन्त फल ही भोग सकता है जैसे प्राय पीने के मद को स्वयम्भ भोगता है इसमें ईश्वर का काम नहीं ॥

आ०—जैसे किन्तु राजा के अन्त अन्त चोरानि दुष्ट मनुष्य स्वयं कर्मों का अन्तर्भाव में नहीं जाते न के अन्त चाहत है किन्तु राजा की अन्तर्भावस्वरूप अन्तर्भाव स पदका का अन्तर्भाव राजा दख देता है इसी अन्तर्भाव जीव को भी ईश्वर अपनी अन्तर्भावस्वरूप से स्वयं कर्मोंसुसार अन्तर्भाव दख देता है क्योंकि कोई भी जीव अपने दुष्ट कर्मों के अन्त भोगता नहीं चाहता इसलिये अन्त परमात्मा अन्तर्भाव होना चाहिये ॥

ना०—अतः मैं एक ईश्वर नहीं किन्तु जितने मुक्त जीव हैं न एक ईश्वर है ॥

आ०—वह कर्म सर्वथा अन्तर्भाव है क्योंकि जो प्रथम वह होकर मुक्त हो तो पुनः अन्त में अन्तर्भाव पड़े क्योंकि वे स्वयम्भुक्त सदैव मुक्त नहीं जब तुम्हारे चौबीस तीर्थार पहिले वह स पुनः मुक्त हुए फिर भी अन्त में अन्तर्भाव गिरने और जब बहुत स ईश्वर हैं तो जैसे जीव अन्तर्भाव होने स अन्तर्भाव गिरत है कि ईश्वर भी अन्तर्भाव गिरत है ॥

ना०—हे मुझ ! अतः का कर्मों काई नहीं किन्तु अतः स्वयम्भुक्त है ॥

आ०—वह अन्तर्भाव की कितनी नहीं भूख है भक्षा किन्तु कर्मों के कोई कर्म के किन्तु कोई अन्तर्भाव में होता रहता है ? वह पसी पाठ है कि जैसी भूख के अन्त में स्वयम्भुक्त विद्यामन्त्र रोटी बन्धक अन्तर्भाव के फल में नहीं जाती है।

क्याप्त सुत कपडा चक्ररक्षा रुपड़ा छोटी पगड़ी आदि बनके कमी नहीं आते । जब पेसा नहीं तो ईश्वर कर्ता के बिना वह विविध वस्तु और मात्रा प्रभर की रचना कितने कैसे बन सकती ? जो हठधर्म से स्वयंसिद्ध वस्तु को मानो तो स्वयंसिद्ध अपराध बन्धुवियों को कर्ता के विना प्रत्यक्ष कर दिखलाओ जब पेसा सिद्ध नहीं कर सकते पुनः तुम्हारे प्रमादशून्य कर्म को कौन बुद्धिमत् मान सकता है ?

ना०—ईश्वर विरक्त है वा मोहित ? जो विरक्त है तो वस्तु के प्रपञ्च में क्यों पड़ा ? जो मोहित है तो वस्तु के बंधाने को समर्थ नहीं हो सकेगा ॥

आ०—परमेश्वर में वैराग्य वा मोह कमी नहीं कर सकता क्योंकि जो सर्वज्ञात्मा है वह किसीको छोड़े और किसीको प्रवृत्त करे ? ईश्वर से उत्पन्न वा उत्पन्नो वास्तव कोई पदार्थ नहीं है इसलिये किसी में मोह भी नहीं होता वैराग्य और मोह का होना जीव में पड़ता है ईश्वर में नहीं ॥

ना०—जो ईश्वर को वस्तु का कर्ता और जीवों के कर्मों के कर्त्ता का दाता मान्यो तो ईश्वर प्रपञ्ची होकर बुद्धी ही जगत् ॥

आ०—महा अनेकविध कर्मों का कर्ता और प्राणियों को कर्मों का दाता धार्मिक व्यवसायीय विद्वान् कर्मों में नहीं बँधता न प्रपञ्ची होता है तो परमेश्वर अजन्त सामान्यवृत्ता प्रपञ्ची और बुद्धी सर्वोत्तर होकर ? हाँ तुम अपने और अपने तीर्थहरो के समान परमेश्वर को भी अपने अज्ञान ॥ समझते हो सो तुम्हारी अविद्या की सीखा है । जो अविद्यादि दोषों का दूरण चाहो तो वेददि सम्प्रदायों का आश्रय लेओ क्यों अज्ञ में पड़े २ ओकरें आते हो ?

अब जैव लोग वस्तु को जैसा मानते हैं वैसा इनके मूर्खों के अनुसार दिखलाने और संघपना दूषार्थ के लिये प्रयत्न सब युद्ध की समीक्षा करके दिखलाने हैं—

मूल—स्रष्टाविशेष अखण्ड वा नृगाह संसार चोरकान्तरे ।

मोहाह कर्म गुण ठिह विवर्ता बसनु ममहर्षियरो ॥

प्रकटप्रकटकर प्रकाश हुआ २ । पहिलठक २ । सूत्र २ ॥

यह प्रसार अथ धार्मिक प्रत्य के सम्बन्धप्रकार प्रत्यक्ष ॥ पौतम और महावीर का संवाद है ॥

इक्ष्वा संघप स उपयोगी वह कार्य है कि वह संसार अनादि अजन्त है न कभी इसकी उत्पत्ति हुई न विनाश होता है अर्थात् किसी का कल्पना जगत् नहीं सो ही धार्मिक गार्हिक का संवाद में (है हे मूढ़ ! वस्तु का कर्ता कोई नहीं न कभी ब्रह्मा और न कभी नष्ट होता ॥

म — जो संबन्ध का उत्पन्न होता है वह अनादि अजन्त कभी नहीं हो सकता और उत्पत्ति तथा विनाश हुए बिना कर्म नहीं रहता जगत् में जितना पदार्थ उत्पन्न होता है वे सब संबन्धित उत्पत्ति विनाशवाले रूप पाने हैं पुनः जगत् उत्पन्न और विनाशवन्ता क्यों नहीं ? इसलिये तुम्हारे तीर्थहरो को मुख्य बोध बड़ी का जो दबका सम्बन्ध ज्ञान होता तो कभी असम्भव आते क्यों विनाश ? किन्तु तुम्हारे गुण है वस गुण शिख भी हो तुम्हारी बातें मुझने जाने का पदार्थज्ञान कभी नहीं हो सकता । मझा जो प्रवृत्त सबुद्ध पदार्थ शीघ्रता है इसकी उत्पत्ति और विनाश

क्यात्स सूत क्यादा प्रत्यक्ष रूपसे होती पगड़ी आदि कान्हे कमी नहीं करते । जब ऐसा नहीं तो ईश्वर कर्त्ता के बिना वह विविध जगत् और मान्य प्रकर की रचना किये कैसे बन सकती ? जो हृदयमें से स्वर्गसिद्ध जगत् को मानो तो स्वर्गसिद्ध उपरोक्त ब्रह्मदिकों का कर्त्ता के बिना प्रत्यक्ष कर दिखलाओ जब ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते पुनः तुम्हारे प्रमादगुण्य कथन को कौन बुद्धिमत् मान सकता है ?

भा०—ईश्वर बिरक्त है क मोहित ? जो बिरक्त है तो जगत् के प्रपञ्च में क्यों पड़ा ? जो मोहित है तो जगत् के बनाने को समर्थ नहीं हो सकेगा ॥

आ०—परमेश्वर में वैराग्य का मोह कमी नहीं कर सकता क्योंकि जो सर्वव्यापक है वह किसीको छोड़े और किसीको प्रहस्य कर ? ईश्वर से उल्लस का उसको प्रपञ्च कोई परार्थ नहीं है इसलिये किसी में मोह भी नहीं होता वैराग्य और मोह का होना जीव में पड़ता है ईश्वर में नहीं ॥

भा०—जो ईश्वर को जगत् का कर्त्ता और जीवों के कर्मों के फलों का दाता मानो तो ईश्वर प्रपञ्ची होकर बुद्धी हां कायगा ॥

आ०—भगवा प्रत्यक्ष कर्मों का कर्त्ता और प्रक्रियाओं को कर्मों का दाता धार्मिक न्यायाधीश सिद्धात् कर्मों में नहीं फँसता न प्रपञ्ची होता है तो परमेश्वर धनन्त समान्यब्रह्मा प्रपञ्ची और बुद्धी क्योंकर होगा ? हां तुम अपने और अपने तीर्थहृत्तों के समान परमेश्वर को भी अपने प्रपञ्च से समझते हो हां तुम्हारी प्रक्रिया की सीधा है । जो प्रक्रियादि दोषों से उत्पन्न चाहो तो वैराग्य समझाओं का प्रपञ्च छोड़ो नहीं प्रम में पड़े १ दोषों काते हो ?

जब तब लोग जगत् को वैराग्य मानते हैं किता इनके मूर्खों के अनुसार दिखलते और संकष्टः मूर्खार्थ के लिये पण्डित स्वयं मूर्ख की समीक्षा करके दिखलते हैं—

मूख—समिन्धुश्रद्धा अकल्प का नृगाह संसार घोरकान्तरे ।

मोहाह कम्म गुरु ठिद विचारै वसनु ममहर्षिधरो ॥

प्रकरधरकाकर माय दुस्ता २ । पहीरालक २ । सूत्र २ ॥

यह रक्सार मग वास्तव प्रत्य के सम्मन्धप्रकर प्रकर में गौतम और महाश्वर का संघर्ष है ॥

इसमें संक्षेप से उपयोगी यह कर्म है कि यह संसार अवधि धनन्त है न कमी इसकी उत्पत्ति हुई न विधाय होता है अर्थात् किसी का बनना जगत् नहीं सो ही आस्तिक भक्ति के मन्त्र में [है] है मूर्ख ! जगत् का कर्त्ता कोई नहीं न कमी बना और न कमी बसा होता ॥

स —जो संयोग से उत्पन्न होता है वह अवधि धनन्त कमी नहीं हो सकता और उत्पत्ति तथा विनाश हुए बिना कर्म नहीं रहता जगत् में चितने परार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब संयोगात् उत्पत्ति विनाशवाले बन जाते हैं पुनः जगत् उत्पन्न और विनाशवाला क्यों नहीं ? इसलिये तुम्हारे तीर्थहृत्तों को सम्यक बाध नहीं का जो उनके सम्यक ज्ञान होता तो पूरी असम्भन बातें क्यों दिखते ? किन्तु तुम्हारे पुन है किने तुम शिष्य भी हो तुम्हारी बातें तुमने बाधे का परार्थज्ञान कमी नहीं हो सकता । मछा जो प्रत्यक्ष संयुक्त परार्थ दीकता है उसकी उत्पत्ति और विनाश

क्योंकर नहीं मानते ? अर्थात् इसके आचार्य या शिष्यों को भूगोल कावेद मिल भी नहीं पड़ती थी और न सब यह विद्वान् इनमें हैं नहीं तो विद्वद्विहित एवं प्रसम्मत बातें क्योंकर मानते और कहते ? देखो ! इस पृथ्वि में पृथिवीकल्प अर्थात् पृथिवी भी जीव का शरीर है और जलकल्पदि भी जीव मानते हैं इसको क्यों ही नहीं मान सकता । और भी देखो ! हमकी मिथ्या बातें किन तीर्थंश्रुओं का मन खोम सम्यग्ज्ञानी और परमेश्वर मानते हैं उनकी मिथ्या बातों के वे मरने हैं—

रक्तसार माष' (इस माष को मैन लोग मानते हैं और यह ईसाई सन् १८०१ अंग्रेज ता १८ में बहारस जैन प्रयागर त्रेस में बालकचन्द्र उन्नी के कृपाकर प्रसिद्ध किया है) के १२२ पृष्ठ में कबल की इस प्रकार व्याख्या की है अर्थात् समय का घाम सुखकाय है और असंख्यत समर्थों को आशुति कहते हैं । एक श्लोक सर्वत्र काय उत्तर सहज दोसी सोसह आशुतिपों का एक "सुख" होता है कैसे तीस सुखों का एक दिवस' कैसे पन्द्रह दिवसों का एक "पक्ष" कैसे दो पक्षों का एक "मास" कैसे बारह माहों का एक "वर्ष" होता है कैसे छत्र काय श्लोक कृपण सहज श्लोक वर्णों का एक "पूर्व" होता है ऐसे असंख्यत पूर्वों का एक 'पक्षोपम' कबल कहते हैं । असंख्यत इसको कहते हैं कि एक बार क्लेश का बीरस और उठका ही पहरा हुआ शौर्यर उसको हनुमिने मनुष्य के शरीर के विद्वद्विहित आशु के दुष्क्यों से मरना अर्थात् वर्तमान मनुष्य के कल से हनुमिने मनुष्य के बाह्य चर इतर ब्रह्मने माष सुख होता है । जब हनुमिने मनुष्य के चर सहज ब्रह्मने बाह्यो को हकका करें तो इस समय के मनुष्य का एक बाह्य होता है पक्ष हनुमिने मनुष्य के एक बाह्य के एक अंगुष्ठ माष के छत्र चर घट २ दुष्क्यों करने से १ १० १२९ अर्थात् बीस बाह्य सत्याचने छत्र एक सो कल्प दुष्क्यों होते हैं ऐसे दुष्क्यों से पूर्वोक्त कुषा को मरना उसमें से सौ वर्ष के अन्तर एक १ दुष्क्या निवृत्तकाय जब छत्र दुष्क्यों निवृत्त बार्ने और कुषा काही हो जाय तो भी यह असंख्यत कबल है और जब उसमें से एक २ दुष्क्यों के असंख्यत दुष्क्यों करने उच दुष्क्यों से उछी कुष को देता उस के मरना कि उसने अपर से अक्षरणी राख की सेवा अच्छी जाय तो भी न हने उच दुष्क्यों से सौ वर्ष के अन्तर एक दुष्क्या निवृत्तके जब यह कुषा रीता हो जाय तब उसमें असंख्यत पूर्व एवं तब एक २ पक्षोपम कबल होता है । यह पक्षोपम कबल कुष के छत्रत से बाक्य । जब दशश्लोक श्लोक पक्षोपम कबल बीस तब एक 'साम्योपम' कबल होता है जब दश श्लोक श्लोक साम्योपम कबल बीस बाह्य तब एक 'असर्प्यशी' कबल होता है और जब एक असर्प्यशी और एक अक्षरणी कबल बीस बाह्य तब एक 'अक्षरणी' होता है । जब अक्षरणी कबलकाय बीस बाह्य तब एक "पुष्पकपरावृत्त" होता है । जब अक्षरणीक कबलको कहते हैं ? जो विद्वान् पुष्पकों में जब छत्रतों से कबल की संख्या की है उससे अपरान्त 'अक्षरणीक' कहाता है कैसे अक्षरणी पुष्पक पुरावृत्त कबल जीव को मरते हुए बीते हैं इत्यदि ।

सुभो ध्याई प्रवित विद्वान्को सोमो ! शिष्यों के प्रण्यों की कबल संख्या कर सकते हो या नहीं ? और तुम इसको सब की माप सकते हो या नहीं ? देखो ! इस

तीर्थंकरों ने देवी पश्चिमविष्य पड़ी थी ऐसे १ तो इसके मत में पुनः और शिष्य हैं, जिसकी अवधिष्य का कुछ पाराधन नहीं। और इनका अन्धेर सुनो रक्षार माय पू १३३ से लेके जो कुछ कृत्यान्ते अर्थात् जैमिनी के सिद्धान्त मन्त्र जो कि उनके तीर्थंकर अर्थात् अवमन्त्रेण से लेकर महावीर पर्यन्त भीषीस हुए हैं उनके अन्तों का सारसंग्रह है ऐसा रक्षार माय पू १३८ में लिखा है कि पुनर्विष्यका के बीच सिद्धी पावाद्यादि पुनर्विष्य के अन्त अन्त में रहने वाले जीवों के शरीर का परिमाण एक अंगुल का असंख्यताया अमन्त्रा अर्थात् अतीव सूक्ष्म होते हैं उनका आयुमान अर्थात् वे अधिक से अधिक २० सहस्र वर्ष पर्यन्त जीत हैं। (रक्ष पू १३६) कवस्वति के शरीर में यह अमन्त्र जीव होते हैं वे स्यवारक कवस्वति कहाती है जो कि कवभूकाम्मुल और कवन्तकाम्मुल होते हैं उनको स्यवारक कवस्वति के बीच कवसे चाहिये उनका आयुमान अमन्त्रमुहूर्त होता है परन्तु वहां एतत्क इतका मुहूर्त समझना चाहिये और एक शरीर में जो एकेनैव अर्थात् स्वयं इन्द्रिय इतना है और उसमें एक जीव रहता है इसको अन्ते कवस्वति कहते हैं उसका देहमात्र एक सहस्र पोखन अर्थात् पुत्राश्विओं का पोखन ४ कम्प का परन्तु जैमिनी का पोखन १ (रक्ष कवका) कोशों का होता है ऐसे बार स्यार कोश का शरीर होता है उनका आयुमान अधिक से अधिक दस सहस्र वर्ष का होता है ॥

अब जो इन्द्रियवाले जीव अर्थात् एक उनका शरीर और एक कुछ जो एक कीर्ती और वृद्धि होते हैं उनका देहमात्र अधिक से अधिक अक्षतासीस कोश का स्पृह शरीर होता है। और उनका आयुमान अधिक से अधिक बारह वर्ष का होता है। वहां बहुत ही सूक्ष्म मन्त्र क्योंकि इतने बने शरीर का आयु अधिक लिखता और अक्षतासीस कोश की स्पृह वृद्धि जैमिनी के शरीर में पवती होगी और उन्हीं ने देखी भी होगी और का अमन्त्र देखा कहां जो इतनी बड़ी वृद्धि के देखें ॥ (रक्षार माय पू १३८) ॥

और देखो ! इनका अमन्त्राङ्गुल बीहू काहूँ, कवारी और मन्त्री एक वायव के शरीरवाक होते हैं इनका आयुमान अधिक से अधिक ३० महीने का है। देखो भाई ! बार १ कोश का बीहू अमन्त्र किन्ती ने दृश्य व होम जो बाह्य मीध तक का शरीर बाह्य बीहू और मन्त्री जी जैमिनी के मत में होती है देह बीहू और मन्त्री उन्हीं के घर में रहते होंगे और उन्हीं ने देखे होंगे अमन्त्र किन्ती ने स्यार में गयी देखे होंगे कभी देखे बीहू किन्ती किन्ती को करते तो उनका क्या हास होम्य ?

अक्षर मन्त्री पश्चि के शरीर का मात्र एक सहस्र पोखन अमन्त्र १

कोश के पोखन के द्विस्व ४ ॥ (एक कोश) कोश का शरीर होता है और एक कोश 'पूर्व' वर्षों का इनका आयु होता है किन्तु स्पृह अक्षर विषय जैमिनी के अमन्त्र किन्ती ने न देखा होगा और अनुपपन्न इन्हीं आदि का रहमान दो कम्प ४ मन्त्र कोशपर्यन्त और आयुमान औरन्ती सहस्र वर्षों का इत्यदि देखे बने २ शरीरवाले जीव भी किन्ती कोशों ने देखे होंगे और मानते हैं और कोई बुद्धिमान नहीं मान सकता ॥ (रक्षार माय पू १३९) अक्षर

स्वोन्मत्त नहीं मानते ? अर्थात् इसके व्यापार्य वा श्रमियों को भूगोल कपोल सिद्ध भी नहीं आती थी और न अब यह सिद्ध हममें है नहीं तो विद्वत्सिद्धि क्यों असम्भव बातें स्वोन्मत्त मानते और करते ? देखो ! इस सृष्टि में पृथिवीपर ज्योत् पृथिवी भी जीव का शरीर है और अखण्डपरि भी जीव मानते हैं इसको क्यों वे नहीं मान सकते ? और भी देखो ! इनकी मिथ्या बातें जिन तीर्थंकरों को मैं लोग सम्भवज्ञानी और परमेश्वर मानते हैं उनकी मिथ्या बातों के वे मूर्ख हैं—

रक्तसार भाग (इस भाग को मैं लोग मानते हैं और यह इसी सन् १८०४ अग्रेज वा १८ में बंगालस जैन प्रयागर प्रेस में लक्ष्मणकर शर्मा ने कृष्णकर प्रसिद्ध किया है) के १४२ पृष्ठ में कल की इस प्रकार व्याख्या की है अर्थात् समय का नाम सृष्ट्यन्तर्गत है और अर्धक्यात समयों को आध्यात्मिक कहते हैं । एक श्रेष्ठ संस्कृत शास्त्र सत्तर सप्तश श्लोकी सोलह आध्यात्मिकों का एक 'सुहृद्' होता है कैसे तीस सुहृद्ओं का एक 'दिक्पति' कैसे पन्द्रह दिक्पतियों का एक 'पर्व' कैसे दो पर्वों का एक 'मास' कैसे बारह मासों का एक 'वर्ष' होता है कैसे छत्र का एक श्रेष्ठ कृष्ण का एक श्रेष्ठ श्रेष्ठ श्रेष्ठ वर्षों का एक 'पूर्व' होता है ऐसे अर्धक्यात रूपों का एक 'पञ्चोपम' कहा करते हैं । अर्धक्यात इसको कहते हैं कि एक बार केवल का औरस और अन्तर्गत ही पहरा कुशा कोदकर उसको सुगुहिये मनुष्य के शरीर के विद्वत्सिद्धि बातों के दुष्कर्तों से जन्म अर्थात् वर्तमान मनुष्य के कल से सुगुहिये मनुष्य के कल बार इबार कलबरे मया सृष्ट्य होता है । जब सुगुहिये मनुष्य के बार सप्तश कलबरे बाधों को इच्छा करें तो इस समय के मनुष्य का एक मास होता है ऐसे सुगुहिये मनुष्य के एक मास के एक क्षण मया के छत्र का भाग १ दुष्कर्त कहते हैं १ १० १२९ अर्थात् बीस का एक कलबरे सप्तश एक सो जन्म दुष्कर्त होते हैं ऐसे दुष्कर्तों से पूर्णतः कुशा को मरणा अन्तर्गत से छी बर्ष के अन्तरे एक १ दुष्कर्ता विद्वत्सिद्धि का एक सप्तश दुष्कर्त का है और कुशा का ही हो व्याप तो भी यह संस्कृत कहा है और जब अन्तर्गत से एक १ दुष्कर्त के अर्धक्यात दुष्कर्त कहते हैं दुष्कर्तों से उसी कुप को ऐसा अन्त के मरणा कि उसके ऊपर से अन्तर्गत रात्रा की सेवा कही जाय तो भी न बने जब दुष्कर्तों से छी बर्ष के अन्तरे एक दुष्कर्ता विद्वत्सिद्धि का यह कुशा रीति हो जाय तब अन्तर्गत अर्धक्यात पूर्व पर्व तब एक १ पञ्चोपम कहा होता है । जब पञ्चोपम कहा कुशा के अन्तर्गत से व्यापक । जब दशक्यात श्रेष्ठ पञ्चोपम कहा बीस तब एक 'आयुषोपम' कहा होता है जब दश श्रेष्ठ श्रेष्ठ अन्तर्गत पञ्च कहा बीस अर्थ तब एक 'अन्तर्पर्वणी' कहा होता है और जब एक अन्तर्पर्वणी और एक अन्तर्पर्वणी कहा बीस जब तब एक 'अन्तर्पर्वणी' होता है । जब अन्तर्गत अन्तर्गत बीस कहें तब एक 'अन्तर्पर्वणी' होता है । जब अन्तर्गत अन्तर्गत विद्वत्सिद्धि कहते हैं ? जो सिद्धांत पुराणों में जब अन्तर्गत से कहा की अन्तर्गत की है अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत कहा है कैसे अन्तर्गत पुराण पुराण का कल जीव को अन्तर्गत रूप बीते हैं इत्यादि ।

मुनो पदं गच्छित विद्वत्सिद्धि लोगो ! श्रमियों के अन्तर्गत की कल संस्कृत का कहो का नहीं ? और तुम इसको क्या भी मान सकते का नहीं ? देखो ! इस

कमी नहीं हो सकता । जो कार्य कर्मात् को जिस मासो तो उसका करण कोई न होगा किन्तु यही कार्यकारणक हो जायगा जो ऐसा कहो तो अपना कार्य और करण आपसी होने से धर्मोऽन्याय और धर्म्याय होय चाहेगा जैसे अपने कर्म पर आप करण और अपना पिता पुत्र आप नहीं हो सकता इसलिये कर्मात् का कर्ता कारण ही मायका है ॥

प्र०—जो ईश्वर को कर्मात् का कर्ता मानते हो तो ईश्वर का कर्ता कौन है ?

उ०—कर्ता का कर्ता और करण का करण कोई भी नहीं हो सकता क्योंकि प्रथम कर्ता और करण के होने से ही कार्य होता है जिसमें संबोध विभोग नहीं होता जो प्रथम संबोध विभोग का करण है उत्तम कर्ता व करण किसी प्रकार नहीं हो सकता । इसकी विशेष व्याख्या आठों समुदास में छह की व्याख्या में किसी है ऐसा केन । इन तीन लोगों को स्पष्ट बात का भी मध्यम्य ज्ञान नहीं था परम सूक्ष्म चक्षुस्मिन् का बोध कैसे हो सकता है इसलिये जो तीन लोग छह को चक्षुश्चि अन्त मारते और ज्ञानपूर्वकों को भी अन्तर्चि अन्त मारते हैं और अतिगुह्य प्रतिपेक्षा में पूर्वकों और अतिगुह्य में भी अन्तर्चि पूर्वकों को मारते हैं वह प्रकारकारण के प्रथम मध्य में लिखा है वह भी बात कमी नहीं वह सकती क्योंकि जिसका अन्त कर्मात् मारता होती है उसके सब सम्बन्धी अन्तर्चि हो होते हैं यदि अन्त को अन्तर्चि कहते तो भी नहीं वह सकता किन्तु जोअपेक्षा में वह बात वह सकती है । परमेश्वर के सामने नहीं क्योंकि एक १ ज्ञान में अपने २ एक २ कार्यकारण सम्बन्ध को अस्मिन्ना पर्वणों से अन्त सम्बन्ध मानना केवल अस्मिन् की बात है । जब एक परमात्मा प्रत्य की सीमा है उसमें अन्त स्मिन्नाकम् पर्वण कैसा वह सकते हैं ? ऐसा ही एक २ ज्ञान में अन्त गुह्य और एक गुह्य प्रदेष्ट में अस्मिन्नाकम् अन्त पर्वणों को भी अन्त मारण केवल वास्तव्य की बात है क्योंकि जिसके अस्मिन्नाकम् का अन्त है तो अन्त रहने वालों का अन्त नहीं । ऐसी ही अन्ती जोही मिथ्या बातें किसी हैं । अब जीव और अजीव इन दो पदार्थों के अस्मिन् में अस्मिन् का अस्मिन् ऐसा है—

चेतनाऽस्यो जीवः अनाजीवस्तद्व्यक्तः ।

स्तकर्मपुत्राणां पुण्यं पापं तत्र विपर्ययः ॥

वह "विपर्यय" का वचन है । और यही "प्रकारणक" भाग पहिले में 'अपचक्षत' में भी लिखा है कि चेतन काकम् जीव और अना जीव अजीव कर्मात् अह है । अन्तर्चि पुण्य पुण्य और पापकर्मक पुण्य पाप कहते हैं ॥

समी०—जीव और अह का अन्त तो ठीक है परन्तु जो अहकम् पुण्य है वे पापपुण्यपुण्य कमी नहीं हो सकते क्योंकि पाप पुण्य करने का स्वभाव अह में होता है । अह, वे अस्मिन् अह पदार्थ हैं वे सब पाप पुण्य के रहित हैं जो जीवों का अन्तर्चि माया है वह तो ठीक है परन्तु अह अह और अहकम् जीव को मुक्ति दान में सर्वेश मायका कह है क्योंकि जो अह और अहकम् है अहकम् अहकम् जो सबका अस्मिन् अहकम् । जीव जोय कर्मात् जीव जीव के कर्म और

गर्मज जीवों का रहमान उन्हाड़ एक लहरा बोजल बर्बात् । (एक प्रोक) कोरों का और आमुग्रम एक कोर पूर्ण नहीं का होता है इतने ल शरीर और आमुग्रम जीवों को भी इन्हीं के आच्छादों ने स्वय में देखे होंगे । तब यह महा मूढ़ बात नहीं कि जिसका कदापि सम्मान न हो सके ?

अब सुनिये भूमि के परिमाण को । (एकस्मर भाग पू १२१) इस लिये बोजल में अस्तक्यत द्वीप और अस्तक्यत समुद्र है । इन अस्तक्यत का सम्मान बर्बात् जो बर्बात् सगरोपम" काव में कितना समान हो उतने द्वीप तथा समुद्र जगज । अब इस पृथिवी में बन्दुद्वीप" मयस सब द्वीपों के बीच में है इतना समान एक काव बोजल बर्बात् एक अरब कोश का है और इसके चारों ओर अस्त समुद्र है उक्त समान हो काव बोजल कोश का है बर्बात् हो अरब कोश का । इस बन्दुद्वीप के चारों ओर जो वातकीकृत" काव द्वीप है उक्त काव काव बोजल बर्बात् चार अरब कोश का सम्मान है और उसके पीछे काधोमधि" समुद्र है उक्त काव काव बर्बात् काव अरब कोश का सम्मान है उसके पीछे पुष्करवर्त" द्वीप है उक्त सम्मान सोहाइ कोश का है उस द्वीप के भीतर की कोरें हैं उस द्वीप के व्यास में मनुष्य बसते हैं और उसके उपरान्त अस्तक्यत द्वीप समुद्र है उसमें विषय भोवि के बीच रहते हैं । (एकस्मर भाग पू १२१) बन्दुद्वीप में एक हिमकत एक पेरककत एक हरिकर्ष एक रत्नक एक देवकुल एक उत्तरकुल वे का क्षेत्र है ॥

स्मृती — सुनो माई भूगोलविद्य के आनेवाले लोगों ! भूगोल के परिमाण करने में तुम मूढ़े का जैव ! जो जैव मूढ़ गने हों तो तुम उन्को समझाओ और जो तुम मूढ़े हो तो उन्को समझ खेचो । वास्तव विचार कर देखो तो यही निजब होता है कि जैवियों के आच्छाद और शिष्यों ने भूगोल कपोल और गणितविद्य कुछ भी नहीं पढ़ी थी । पढ़े होते तो महा अस्तमम यपोषा क्यों मारते ? भला पेसे अधिज्ञान् पुष्प जगत् को जकटु का और ईश्वर को ब मर्ने इसमें क्या आनन्द है ? इसलिये जैवी लोग अपने पुस्तकों को किन्हीं विद्वान् जग मत्कों को नहीं देते क्योंकि जिनको वे जोस आमाधिक तीर्थद्वरों के बगने हुए सिद्धान्त सम्य मानते हैं उनमें इसी प्रकार की अधिजानुक्त धर्म भरी नहीं है इसलिये नहीं देखने देते जो देखें तो पीछे लुप्त जग इसके विषय जो कोई मनुष्य कुछ भी बुद्धि रखता होगा वह कदापि इस गणोवाक्याय को सब नहीं मान सकेय यह सब प्रपञ्च जैवियों ने जगत् को अगाधि मानने के लिये कहा किया है परन्तु यह निरा मूढ़ है । हाँ जगत् का कारण अगाधि है क्योंकि यह परमात्मा अगि तत्त्वस्वरूप अकृतु क ई वस्तु उनमें निमगपूर्वक बनने का किमप्ये का सम्मान्य कुछ भी नहीं क्योंकि जब एक परमात्मा जग किसी का नाम है और स्वयय प पुष्प १ रूप और जग ई है अपने आप यन्त्रात्मक नहीं बन सकते । इसलिये इसका कर्मात्मका केतन कारण है और वह कर्मात्मका ज्ञानस्वरूप है । देखो पृथिवी सूर्यादि सब छोटी को निज में एकत्र जगन्त अगाधि केतन परमात्मा का कम है जिसमें संवाय रचना किये वीरता है वह स्थूल जगत् अगाधि

कमी नहीं हो सकता। जो कर्म जगत् को भिन्न भावोंसे तो उत्पन्न करता कोई न होगा किन्तु यदि कर्मकारणरूप हो जाना जो ऐसा कहोगे तो अपना कर्म और कारण आपसी होने से सम्बन्धोन्नासक और सम्बन्धोपशेष होनेसे अपने कर्मों पर आप नष्ट हो और अपना पिता पुत्र आप नहीं हो सकता इसलिये जगत् का कर्ता अद्वय ही मानना है ॥

प्र०—जो ईश्वर को जगत् का कर्ता मानते हो तो ईश्वर का कर्ता क्यों है ?

उ०—कहाँ का कर्ता और कारण का कारण कोई भी नहीं हो सकता क्योंकि प्रथम कर्ता और कारण के होने से ही कर्म होता है जिसमें संबोध विरोध नहीं होता जो प्रथम संबोध विरोध का कारण है उसका कर्ता व कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता। इसकी विशेष व्याख्या आर्य समाज में सृष्टि की व्याख्या में मिली है देख लेना। इस बीच लोगों को स्पष्ट बात का भी अभाव ज्ञान नहीं तो परम सृष्टि सृष्टिविद्या का बोध कैसे हो सकता है इसलिये जो ईश्वर लोग सृष्टि को असाक्षि जगत् मानते और इन्द्रपुत्रों को भी असाक्षि अजन्त मानते हैं और प्रतिगुण प्रतिवेश में पर्वतों और प्रतिक्षु में भी अजन्त पर्वत को मानते हैं वह प्रकारकाकार के प्रथम भाग में लिखा है वह भी बात कमी नहीं वह सफ़टी क्योंकि विषय जगत् अर्थात् सर्वांग होती है उसके सब सम्बन्धी अन्तर्गते ही होते हैं यदि अजन्त को असाक्षि कहते तो भी नहीं वह सफ़टी किन्तु असाक्षि में वह बात यह सफ़टी है। परमेश्वर के सामर्थ्य नहीं क्योंकि एक २ इन्द्र में अपने २ एक २ कर्मकारण सामर्थ्य को अविनाश पर्वतों से अजन्त सामर्थ्य मानना केवल अविद्या की बात है। जब एक परमात्मा जगत् की सीमा है उसमें अजन्त विनाशक पर्वत कैसे रह सकते हैं ? देखे ही एक २ इन्द्र में अजन्त गुण और एक गुण प्रेश में अविनाशक अजन्त पर्वतों को भी अजन्त मानना केवल बाह्यकर्म की बात है क्योंकि जिसके अविनाश का जन्त है तो उसमें रहने वालों का जन्त नहीं नहीं ? देखी ही जगत् की सीमा नहीं सिद्धात यह लिखा है। अब बीच और अन्तर्गत इन दो पर्वतों के विना में कैदियों का निवास देखा है—

चेतनासहस्रसो जीवः आत्मजीवस्तत्स्यकः ।

सत्कर्मपुत्रगजाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः ॥

यह त्रिवेणीसुरि का वचन है। और वही “प्रकाशरत्नम्” नाम पत्रिका में “अनन्तरा” में भी लिखा है कि चेतना सहस्र जीव और अजन्त रहित अजीव अर्थात् अहं है। अन्तर्गत पुण्य पुण्य और पापकर्मक पुण्य पाप कहते हैं ॥

समी०—जीव और अहं का अर्थ तो ही है परन्तु जो अहंकर्म पुण्य है वे पापपुण्यपुण्य कमी नहीं हो सकते क्योंकि पाप पुण्य करने का स्वभाव अहं में होता है। दूसरे, वे जितने अहं पर्वत हैं वे सब पाप पुण्य से रहित हैं जो जीवों को असाक्षि मानते हैं वह तो ही है परन्तु उन्हीं अहं और अहंकार जीव को मुक्ति दान में सर्वत्र मान्य मूल है क्योंकि जो अहं और अहंकार है उन्हीं सामर्थ्य भी अहंकार सर्वत्र रहण्ड। जीव लोग जगत् जीव जीव के कर्म और

गर्मज जीवों का वेदमय उच्छ्वस एक सदा बोजन प्रदात् १ (एक श्लोक) कर्मों का और आधुमान एक श्लोक 'पूर्व' कर्मों का होता है। इतने से शरीर और आधुमान जीवों को भी इन्हीं के आचार्यों ने स्वयं में देखे होंगे। तब वह महा मूढ़ बात नहीं कि जिसका कदापि सम्भव न हो सके ?

अब सुनिचे भूमि के परिमाण को । (एकसार भाग पृ. १२२) इस श्लोक में अर्धव्याप्त द्वीप और अर्धव्याप्त समुद्र हैं । इन अर्धव्याप्त का प्रमाण अर्धत्वा को अर्धत्वं 'अर्धोपम' आदि में चित्ता सम्यक् हो उतने द्वीप तय समुद्र सम्यक् । अब इस पृथिवी में 'अर्धद्वीप' प्रथम सब द्वीपों के बीच में है इसका प्रमाण एक आकाश बोजन प्रदात् एक अरब कोट का है और इससे चरों ओर अरब समुद्र है उसका प्रमाण दो आकाश बोजन कोट का है अर्थात् दो अरब कोट का । इस अर्धद्वीप के चारों ओर जो 'आतकीकृत' अर्ध द्वीप है उसका चार आकाश बोजन प्रदात् चार अरब कोट का प्रमाण है और उसके पीछे 'अर्धद्वीप' समुद्र है उसका आठ आठ अर्धत्वा आठ अरब कोट का प्रमाण है उसके पीछे 'अर्धद्वीप' द्वीप है उसका प्रमाण सोलह कोट का है उस द्वीप के भीतर जो चरों है उस द्वीप के आगे में अर्धव्याप्त समुद्र है और उसके उपरान्त अर्धव्याप्त द्वीप समुद्र है उसमें विषय बोधि के बीच रहते हैं । (एकसार भाग पृ. १२३) अर्धद्वीप में एक हिमवन्त एक पेरवन्त एक हरिन्त एक रज्ज्वन्त एक देवकुन्त एक उत्तरकुन्त के का चर है ॥

समी०—सुनो भाई मूढोच्चरित के आनन्दको सोचो ! मूढोच्चरित के परिमाण करने में तुम मूढ़े का डीज ? जो डीज मूढ़ गये हो तो तुम उनको समझना और जो तुम मूढ़े हो तो उनसे समझ लेओ । धारणा विचार कर देखो तो वही शिक्षा होता है कि जिनकी के आचार्यों और शिक्षों ने मूढाका उच्छ्वस और अर्धव्याप्त कुछ भी नहीं पड़ी थी । फले होने तो महा असम्भव प्रदात् स्वयं मारते ? महा देव अर्धव्याप्त पुनः अर्धत्वा को अर्धत्वा और ईश्वर को न मारें इसमें क्या आश्चर्य है ? इसलिये जैसी जोग अपने पुस्तकों को किसी पिता का मन्त्रों का नहीं ऐसे क्योंकि जिनको ने योग आचार्यिक तीर्थद्वारों के अर्धत्वा पुनः सिद्धांत अर्धत्वा मागत है उनमें इसी प्रकार की अर्धव्याप्त बातें भी पड़ी हैं इसलिये नहीं देखने देखे जो देखें तो पक्ष लुप्त अर्धत्वा इसके किन्तु जो कोई मनुष्य कुछ भी बुद्धि रहता होय वह कदापि इस गणोच्चरित को सत्य नहीं मान सकेय वह सब प्रपञ्च जैशिवों से अर्धत्वा का आचार्यिक मानने के लिये कहा किया है परन्तु यह निरा मूढ़ है । हाँ अर्धत्वा का अर्धत्वा अर्धत्वा है क्योंकि वह परमात्मा अर्धत्वा तत्त्वस्वरूप अर्धत्वा है परन्तु उनमें निरामयपूर्ण बनने का निरामय का सम्पूर्ण कुछ भी नहीं क्योंकि अब एक परमात्मा अर्धत्वा किसी का नाम है और स्वयं से पुनः १ अर्धत्वा और अर्धत्वा के अर्धत्वा आचार्यिक अर्धत्वा नहीं बन सकेय । इसलिये इनका अर्धव्याप्त अर्धत्वा अर्धत्वा है और वह अर्धव्याप्त अर्धत्वा है । एता पृथिवी मूर्खों से सब कोनों के विषय में रहना अर्धत्वा अर्धत्वा अर्धत्वा परमात्मा का अर्धत्वा है जिनमें अर्धत्वा अर्धत्वा अर्धत्वा अर्धत्वा है वह अर्धत्वा अर्धत्वा अर्धत्वा

उ०—जो केवल कर्म ही शरीर धारण में विमित हो ईश्वर धारण न हो तो वह जीव मृत कर्म कि वही बहुत दुःख हो उसके धारण कमी न करे किन्तु परा जन्मे १ कर्म धारण किया करे । जो कहो कि कम प्रतिबन्धक है तो भी जैसे बोर आपसे आके कभीमूढ़ में नहीं जाता और स्वयं कंठों भी नहीं जाता किन्तु राज्य देता है इसी प्रकार जीव को शरीर धारण करने और उसके कर्मोत्पत्ति पर देवे उसे परमेश्वर को तुम मानो ॥

प्र०—मद (मठा) के सामान कर्म स्वयं प्राप्त होता है वह देने में दूसरे की आवश्यकता नहीं ॥

उ०—जो देता हो तो जैसे मर्यादा करनेवालों को मद कम कष्टा जन्यता की बहुत कष्ट है, जैसे जिस बहुत वाप पुत्रन करने वालों को मृत्यु और कमी १ मोक्ष १ पाप पुत्रन करनेवालों को अधिक कष्ट होता यहिने और छोटे कर्मोंको को अधिक कष्ट होने ॥

प्र०—विशेष जैसा कर्मत्व होता है उसका विश्व ही कष्ट दुःख करता है ।

उ०—जो स्वयं से है तो उसका कृपा न मित्रता नहीं हो कष्टता ही जिस दुःख तक में विमितों से मक्त करता है उसके मुक्ताने के विमितों से मृत भी जाता है देता मरणा डीक है ॥

प्र०—संयोग के बिना कर्म परिधाम को प्राप्त नहीं होता जैसे दूध और कर्मा के संयोग के बिना दही नहीं होता इसी प्रकार जीव और कर्म के योग से कर्म का परिधाम होता है ॥

उ०—जैसे दही और कर्मा का मिश्रणका तीव्रता होता है जैसे ही बीजों को कर्मों के कष्ट के साथ मिश्रणका तीव्रता ईश्वर होता यहिने क्योंकि वह परम स्वयं विषय से संयुक्त नहीं होते और जीव भी असत्य होने से स्वयं अपने कर्मोंको को प्राप्त नहीं हो सकते इससे वह सिद्ध हुआ कि बिना ईश्वरस्यविषय एहिधाम के कर्मोत्पत्ति नहीं हो सकती ॥

प्र०—जो कर्म से मुक्त होता है वही ईश्वर कहाता है ॥

उ०—वह असादि कष्ट से जीव के साथ कम छोटे हैं तो उसके जीव मुक्त कमी नहीं हो सकते ॥

प्र०—कम का कर्म सारि है ॥

उ०—जो सारि है तो कर्म का योग असादि नहीं और संयोग की सारि में जीव विधर्म होता और जो विधर्म को कर्म कम गया तो मुक्तों को वह कष्टा और कम कर्मों का समन्वय जर्बालु मिल सम्भव होता है वह कमी नहीं होता इसलिये जिस १ में समुदाय में जिस जाने हैं जिस ही मरणा डीक है । जीव ज्ये जैसा अपना ज्ञान और क्षमार्थ नहाने तो भी वही परिमित ज्ञान और असीम क्षमार्थ रहेगा । ईश्वर के सामान कमी नहीं हो सकता । ही मित्रता क्षमार्थ बढ़ता उचित है उतना योग से बढ़ा सकता है और जो विमितों में

बन्ध बन्धवि मायते हैं। यहाँ भी जिनियों के तीर्नहार मुख गये हैं क्योंकि संतुष्ट जगत् का कर्मव्यवस्था प्रत्यक्ष सं कर्म और जीव के कर्म बन्ध भी बन्धवि नहीं हो सकते। जब ऐसा मायते हो तो कर्म और बन्ध का कृत्या नहीं मायते रहे! क्योंकि जो बन्धवि पदार्थ है वह कभी नहीं बूट सकता। जो बन्धवि का भी कर्म मानोगे तो तुम्हारे सब बन्धवि पदार्थों के साथ का प्रसङ्ग होगा और जब बन्धवि को मिल मानोगे तो कर्म और बन्ध भी मिल होगा और जब सब कर्मों के बूटने का मुक्ति को मायते हो तो सब कर्मों का कृत्याकर्म मुक्ति का निमित्त बुद्धा तब निमित्तिणी मुक्ति होगी तो सदा यही रह सकेगी और कर्म कर्मों का विषय सम्बन्ध होने से कर्म भी कभी न बूटेंगे पुनः जब तुमने अपनी मुक्ति और तीर्नहारों की मुक्ति विषय मायी है जो नहीं बन सकेगी।

प्र०—कैसे बान्ध का ब्रिहत्त उतारने का धर्म के संयोग होने से बौद्ध पुनः नहीं जगता इसी प्रकार मुक्ति में क्या बुद्धा और पुनः जन्म-मरण-संसार में नहीं आता।

उ०—जीव और कर्म का सम्बन्ध ब्रिहत्त और जीव के सम्बन्ध का है किन्तु इनका सम्बन्ध सम्बन्ध है। इससे बन्धवि काह स जीव और उसमें कर्म और कर्म-व्यवस्था का सम्बन्ध है जो उसमें कर्म करने की शक्ति का भी सम्बन्ध मानोगे तो सब जीव पापवत्त्व हो जायेंगे और मुक्ति को मानने का भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। कैसे बन्धवि काह का कर्मव्यवस्था बूट कर जीव मुक्त होता है तो तुम्हारी निज मुक्ति से भी कृत्या बन्धन में पड़ेगा क्योंकि कैसे कर्मकर्म मुक्ति के साथ-साथ से भी कृत्या जीव का मुक्त होगा मायते हो किसे ही विषय मुक्ति से भी बूट के सम्बन्ध में पड़ेगा साथ-साथ से सिद्ध बुद्धा पदार्थ मिल कभी नहीं हो सकता और जो जगत् सिद्ध के विषय मुक्ति मानोगे तो कर्मों के विषय ही बन्ध प्रसङ्ग हो जगत्। कैसे बन्धों में निज जगत् और बोध से बूट जाता है पुनः निज जगत् जगत् है, किसे सिद्धाव्यय हेतुओं का राज्ञेयवि के ब्रह्म से जीव को कर्मकर्म फल जाता है और जो सम्बन्धान्न द्वाय चरित्र से निर्मल होता है और निज जगत् के कर्मों से बन्धों का जगत् मानते हो तो मुक्त जीव संसारी और संसारी जीव का मुक्त होना असम्भव मानना पड़ेगा क्योंकि कैसे विमिश्रों से मक्षिणता बूझी है किसे विमिश्रों से मक्षिणता का भी जगत्गी इसविषये जीव को बन्ध और मुक्ति प्रत्यक्ष से बन्धवि मानो बन्धवि जगत् से नहीं।

प्र०—जीव निर्मल कभी नहीं था किन्तु मक्षसहित है।

उ०—जीव निर्मल कभी नहीं था तो निर्मल भी कभी नहीं हो जगत्। कैसे यह बन्ध में पीछे से जगत् बुद्ध निज को बोध से बुद्धा को है उसके स्वभाविक स्वरूप का नहीं बुद्धा जगत् निज विषय भी बन्ध में बन्ध जाता है इसी प्रकार मुक्ति में भी जगत्।

प्र०—जीव पूर्णोपाधित कर्म ही से शरीर चारण कर होता है ईश्वर का साधन बन्ध है।

उ०—जो केवल कर्म ही शरीर धारण में विमिश्र हो ईश्वर धारण न हो तो वह जीव बुरा जन्म कि वहाँ बहुत दुःख हो उससे धारण कमी न करे किन्तु धरा धरने १ जन्म धारण किया करे । जो कहे कि कम प्रतिकर्षक है तो भी जैसे चोर चापसे चाके कन्धीपुह में नहीं जाता और स्वयं फंसी भी नहीं जाता किन्तु राज्य देता है इसी प्रकार जीव को शरीर धारण कराने और उससे कर्माध्याय कर देने कहे परमेश्वर को तुम मानो ॥

प्र०—मद (मदा) के समान कर्म स्वयं प्राप्त होता है वह देने में दूसरे की आवश्यकता नहीं ॥

उ०—जो ऐसा हो तो जैसे मदपान करनेवालों को मद कम जलता जलानाही को बहुत जलता है जैसे किम बहुत पाप पुण्य करने वालों को न्यून और कमी १ बोझ १ पाप पुण्य करनेवालों को अधिक कम होता चाहिये और छोटे कर्मों को अधिक कम होने ॥

प्र०—विद्वान् वैद्य सम्भव होता है उत्तम वैद्य ही कम हुआ करता है ॥

उ०—जो स्वभाव से है तो उसका कृपा न मिश्रता नहीं हो जलता ही जैसे कुछ बल में विमिश्रों से मल जलता है, उसके फुलने के विमिश्रों से सूट भी जाता है ऐसा समझा दीजिए ॥

प्र०—संयोग के बिना कर्म परिचय को प्राप्त नहीं होता जैसे दूध और कागज के संयोग के बिना दही नहीं होता इसी प्रकार जीव और कर्म के योग से कर्म का परिचय होता है ॥

उ०—जैसे दही और कागज का मिश्रणका तीसरा होता है जैसे ही दोनों को कर्मों के फल के साथ मिश्रणका तीसरा ईश्वर होता चाहिये क्योंकि जब परार्थ कर्म विद्वान् से संयुक्त नहीं होते और जीव भी जलपत्र होते से स्वयं अपने कर्मफल को प्राप्त नहीं हो सकते, इससे यह सिद्ध हुआ कि बिना ईश्वरसम्पित अधिकार के कर्मफलजनक नहीं हो सकती ॥

प्र०—जो कर्म से मुक्त होता है वही ईश्वर कहा जाता है ॥

उ०—जब जगत्पति स्वयं से जीव के साथ कम करते हैं तो सबसे जीव मुक्त कमी नहीं हो सकती ॥

प्र०—कम का कण्य चाहिये है ॥

उ०—जो चाहिये है तो कर्म का योग जगत्पति नहीं और संयोग की चाहि में जीव विरक्त होता और जो निष्कर्म को कर्म सम गया तो मुक्तों को सम जगत्पति और कम कर्म का समान धर्मात् किस सम्भव होता है यह कमी नहीं दुःख, इसलिये वैद्य ६ में समुदाय में शिवाचार है किम ही समझा दीजिए । १४५ चाहे प्रिय जगत्पति और सामर्थ्य बढावे तो भी उसमें परिमित मात्र ही सामर्थ्य रहेगा । ईश्वर के समान कमी नहीं हो सकती । १४६ चाहे प्रिय जगत्पति, उद्योग योग से बड़ा करता है और वा १४७

आर्हत योग देह के परिमाण से जीव का भी परिमाण मानते हैं। उनके पास चाहिये कि जो ऐसा हा तो हावी का जीव कीड़ी में और कीड़ी का जीव हवी में कैसे सम्म सम्म ? वह भी एक मूर्खता की बात है क्योंकि जीव एक सूक्ष्म रूप है जो कि एक परमाणु में भी रह सकता है। परन्तु इसकी लक्षित शरीर के साथ विद्युत् की और आदी आदि के साथ संयुक्त हो रहती है। उसके सब शरीर का वर्तमान व्यवस्था है। अच्छे सब से अच्छा और तुर सब से पुत ठ व्यवस्था है ॥

अब जैन लोग धर्म इस प्रकार का मानते हैं:—

मूल—र जीव भवतुहाहं एक धिय हरह जिसमयं धम्मं ।

इयत्ताणं परमं तो सुहृदभ्य मूढ मुसिघोषि ॥

प्रकरणरत्नाकर भाग २ । पृष्ठीतक १ । सूत्र १ ।

अरे जीव ! एक ही निवस्य जीवितरागमयित धर्म संसारसम्बन्धी जन्म मरण आदि दुखों का हरणकर्ता है। इसी प्रकार सुदेव और सुगुप्त भी जैन मत वाले को जानना । इतर जो बौद्धों का परमेश्वर से लेके महावीर पर्यन्त बौद्धों से जो कुछ अन्य हरिहर आदि कुदेव हैं, उनकी अपने कल्याणों को जीव पूजा करते हैं, वे सब मनुष्य जन्मे गये हैं। इसका यह भावार्थ है कि जैन मत के सुदेव सुगुप्त तथा सुपर्ण को जोड़ के अन्य कुदेव कुगुप्त तथा कुपर्ण को सेवन से कुछ भी कल्याण नहीं होता ॥

समी०—अब विज्ञानों को विचारना चाहिये कि ईश्वर निम्नानुक्त अपने धर्म के पुतक है ॥

मूल—अरिहं द्यो सुगुह सुखं धम्मं च पंच नवकातो ।

अथाणं कपक्काणं निरम्तरं चत्तर दिपपम्भि ॥

प्रक० भा २ । पृष्ठी १ । सू १ ।

जो अरिहत् देवैकान्त पञ्चादिक के योग्य सुख पदार्थ उत्तम कोर्त बरि, पंच जो देवों का देव योग्यमान अरिहन्त देव ज्ञान विद्यावान् शास्त्री का उपदेश सुन करण मखरहित सम्बन्ध विना दयापूज्य भोजिनमयित जो धर्म है श्री बुद्धि में पढ़ने वाले प्रियों का उद्धार करनेवाला है और अन्य हरिहरों का धर्म संसार से उद्धार करनेवाला नहीं और पंच अरिहन्तादिक परमेश्वरी लक्ष्यसम्बन्धी उनको नमस्कार से उद्धार पदार्थ धर्म है अर्थात् भद्र है अर्थात् एक वस सम्बन्ध ज्ञान दर्शन और अरिहत् यह जैनों का धर्म है ॥

समी०—अब मनुष्यमात्र पर क्या नहीं वह क्या न पमा ज्ञान के बढ़ने ध्यान, शरीर के (बढ़ने) अन्ध और अरिहत् के बढ़ने पूरे मरण कोन्धी धरपी क्या है ? जैनमत के धर्म की प्रशंसा:—

मूल—मा ॥ कुणसि तव परत्तन पटसि म गुणसि वसि मा वाधम् ।

ता इत्थि सपिंसि अं द्यो इह अरिहन्तो ॥

प्रक० भा २ । पृष्ठी १ । सू २ ॥

है मनुष्य ! जो वृत्त पर चरित नहीं कर सकता व सुख पर सक्त व प्रभुवादि कर बिचार कर सकता और सुपापादि को दान दे नहीं सकता तो भी जो वृत्त पर एक चरित्व ही हमारे आराधना के योग्य सुख, सुधर्म वैभवंत में ब्रह्मा रक्षा सर्वोत्तम बात और ब्रह्म का करण है ॥

समी०—वर्षादि दया और जमा अन्धी वस्तु है। तप्यापि पक्षपात में कैसे से दया अन्धी और जमा अन्धी हो जाती है इसका प्रयोग यह है कि किसी चीज को दुःख न देना वह बात सर्वथा संभव नहीं हो सकती क्योंकि दुःख को दण्ड देना भी दया में गणनीय है। जो एक दुःख को दण्ड न दिया जाय तो सबको मनुष्यों को दुःख प्राप्त हो इसलिये वह दया अन्धी और जमा अन्धी हो जाय। वह तो ठीक है कि सब प्राणियों के दुःखकारण और सुख की प्रति का उपाय करना दया कहाती है। केवल जब दुःख के पीछे कुछ मनुष्यों को बचना ही दया नहीं कहाती किन्तु इस प्रकार की दया शैवियों की व्यवसाय ही है क्योंकि ऐसा बरतते नहीं। क्या मनुष्यादि पर कष्ट किसी मत में क्यों न हो दया करके उनको प्रत्युपायों से सम्भर करना और वृत्तरे मत के सिद्धांतों का मान्य और सेवा करना दया नहीं है ? जो इनकी सही दया होती तो 'विकेक्यत' के पृष्ठ २२१ में देखो क्या लिखा है। एक 'परमती की लुपि' अर्थात् उनका दुःखकीर्तन कमी न करना। वृत्त 'उनको नमस्कार' अर्थात् बचना भी न करनी। तीसरा 'आवापन' अर्थात् अन्य मतवालों के साथ बोझा बोझना। चौथा 'संक्षपन' अर्थात् उनसे दूर १ न बोलना। पाँचवा 'उनको दण्ड बरतना' अर्थात् इनको अपने पीछे की कस्तु भी न देनी। छठा 'अन्धपुष्पादि दान' अन्य मत की प्रतिमा पूजन के लिये अन्धपुष्पादि भी न देना। ये छः पक्ष अर्थात् इन छः प्रकार के कर्मों को शीघ्र छोड़ कमी न करें ॥

समी०—अब बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि इन शैवी लोगों की अन्य मत वाले मनुष्यों पर कितनी अन्धी, कुपि और द्वेष है। अब अन्य मतवाले मनुष्यों पर इसकी अन्धी है या फिर शैवियों को दवाहीन कहाय संभव है क्योंकि अपने बराबरी ही की छान करण विशेष धर्म नहीं कहाय उनके मत के मनुष्य उनके पर के समान हैं इसलिये उनकी सेवा करते अन्य मतवालों की नहीं, फिर उनको दयावान् कौन बुद्धिमान् कह सकता है ? किन्तु पृष्ठ १८ में लिखा है कि मनुष्य के राजा के मनुषी नामक शिष्या को शीघ्र बलिषी ने अपना विशेषी समर्थ कर मार खाया और आखोनाहा (आधित) करके दान हो गये। क्या यह भी दया और जमा का प्रत्यक्ष कर्म नहीं है ? जब अन्य मतवाली पर आपसे छेने पर्यन्त ईर-बुद्धि रखते हैं तो इनको दयावान् के स्थान पर ईरक कहाय ही अर्थक है ॥

अब सम्पन्न दर्शनार्थि के लिये 'आर्हतःश्रवणसंज्ञा परमात्मनस्य' में कथित है। सम्पन्न श्रवण, सम्पन्न दर्शन, ज्ञान और चरित्व ये चार माधमार्ग के संपन्न हैं, इनकी अपेक्षा योगदान ने की है। जिस रूप से जीवार्थि द्रव्य अर्थात्

उपार्ग उच्छ्रुत के श्रेष्ठ दिखाने से जो विचार बर्बाद होतगा तीर्थङ्गों की छाया का मङ्ग होता है यह दुःख का हेतु पाप है विनेश्वर के कहे सम्मन्त्रादि धर्म प्रदत्त करवा बड़ा करिण है इसलिये विषय प्रकृत विषय छाया का मङ्ग न हो देना करवा करिणे ॥

समी — जो जगते ही मुक्त सं जगती प्रार्थना और जगते ही धर्म को बड़ा मङ्गल और दूसरे की मित्रता करपी है यह धर्मका की बात है क्योंकि प्रार्थना उसी की दीन है कि विषयकी वृद्धि विज्ञान करें । जगते मुक्त से जगती प्रार्थना तो बार की करते हैं ता क्या से प्रार्थनाही हो सकते हैं ? इसी प्रकार की इसकी करते हैं ॥

मूल—बहुगुणविस्मय निजघो वस्तुसमन्ती तदावि मुक्तघो ।

अह परमविमुक्तो बिह बिग्नकरो विसहरो ज्ञीय ॥

प्र० भा० १ । पृ० पृ० १८ ॥

कैसे विचार सर्व में यत्नि लगाने योग्य है कैसे जो वैभवत में यही वह कहे किताब बड़ा धार्मिक पवित्र हो उसको क्या देना ही वैश्वी को बलि है ॥

समी०—देखिये । निजघो वृत्त की बात है जो इसके केले और आत्मावि विज्ञान होते तो विज्ञानों के प्रेम करते, जब इसके तीर्थङ्ग सहित अविज्ञान है तो विज्ञानों का मङ्गल क्यों करें ? क्या सुखों के मङ्गल का वृत्त में पड़े को कोई लगता है ? इससे यह कि बिह बिग्न वैश्वी के कैसे दूसरे की पचपटी इसी वृत्तायी निजघो हीने ॥

मूल—आरुण्य पा विषय पाव भस्मिन्नपणवेसु तोवि पावरया ।

अ वसिन्व सुखयमा धया किविपाय पयसु ॥

प्र० भा० १ पृ० पृ० १० ॥

प्रत्येक दर्शन की वृत्तिही धर्मात् वैभवत विरोधी अनन्तर दर्शन की वैश्वी योग्य न करें ॥

समी०—दुर्दिमान् साग विचार केमें कि यह निजघो पमरपन की बात है जब तो यह है कि विज्ञान मत लग है इससे किता से पर यही होता, इसके आत्मावि जाते से कि हमारा मत पोरपाय है जो वृत्त के सुगर्भों को बचकन हो बचकन इसलिये धर्म की मित्रता क्यों और मूल क्यों के पोरपायों ॥

मूल—नामपि तस्स असुहं जेषा निदिताह मिच्छ पय्याह ।

जेसिं अणुसंगाह भस्मीण्यवि होरपाय मर ॥

प्र० भा० १ । पृ० पृ० १० ॥

जो वैभवत से मिच्छ पर्य है वे धर्म मनुष्यों को पापी करेगाये हैं इसलिये निजघो के धर्म धर्म को न मानकर वैभवत ही को मानना भेद है ॥

समी०—इसका यह किह होता है कि जब जगति विराज मित्रा ईश्वरों कापि दूर धर्मकन प्रकृत में सुखलेखना वैभवत है जेसे वैश्वी योग्य धर्म के मिच्छ है किह क्यों भी वृत्त के मङ्गलका महाविश्व और धर्मी न होत । क्या एक जोर से धर्म की मित्रता और जगती जति प्रार्थना करवा यह मनुष्यों की क्यों

है उन्हीं रूप से विम-प्रतिपादित प्रख्यापुष्पार विपरीत जन्मिनिबेनादिरमिष को जन्म
प्रख्याप विममय में प्रीति है सो सम्पत्क जन्मय भी सम्पत्क इत्यं है ।

रुचिर्जिनोक्त तत्त्वंपु सम्यक् व्यख्यानमुच्यते • ।

विशेषतः तर्कों में अत्यन्त अज्ञान करनी चाहिये क्योंकि अत्यन्त गरीबी ।

यथस्थितवस्यानां संक्षेपाद्विस्तरेण ना ।

यो बोधस्त्वमभासु सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः ॥

विषय प्रकट के पीछे यदि तब हैं उभय संशय वा निश्चय से जो बोध होना है उन्ही को सम्यक् ज्ञान बुद्धिमान् कहते हैं ॥

सूर्ययाऽनवद्ययोगानां स्वागच्छारिषमुच्यते ।

कीर्तितं तद्विंशतिं प्रसन्नमेवेन पञ्चम्या • ॥

अहिंसासूनुतास्तेषां सव्यापिप्रवृत्ताः ॥

[illegible]

इसमें कहीं विरहित होता है कि इनके व्यापारों काभी वे पूर्ण विग्रह नहीं क्योंकि जो व्यवसाय निष्ठा व करते तो ऐसी कूदी बातों में कोई व संशय व उलझ प्रयोजन सिद्ध होता । देखो यह तो सिद्ध होता है कि वैदिकों का मत व्यापारोपेक्षा और वैदमय एवं का व्यापार करनेवाला इतिहासि देव मुनेय और इनके व्यवसायिकी का मुनेय इन्हो कोन कहीं तो क्या वैदिक ही व्यवसाय द्वारा व व्यवसाय । और भी इनके व्यापारों और व्यवसायों की सूच देव को—

मूत्र—मिथुनर आशुष ग्रहों यमना वस्तुतः श्रेष्ठ ऐश्वर्य ।

आम्हा अंगे पावता मिथ्याय पुण्यं वसम् ॥

मन्त्र पञ्चाङ्ग २ । पञ्चमी ६ । शु. ११ ।

* एवं दर्शनबीज (आहर्तृदर्शन) सं

उभय असम्भवात् न करे किंसे कोई क्षमा करके अपने सिद्ध की प्राप्ति खोजने को जाय तो वह उसी को का खोले कैसे ही कुपुत्र अर्थात् अन्धमार्गियों का उपकार करना असम्भवात् न कर होगा है अर्थात् उनसे सदा अशङ्क ही रहना ।

समी०—किंसे जैन लोग विचारते हैं कैसे दूसर मत वाले भी विचारें तो जैनियों की कितनी दुर्बला हो ? और उनका कोई किसी प्रकार का उपकार न करे तो उनके प्युक्त से कम नह होकर कितना दुःख प्राप्त हो ? किंसा प्राय क क्षिये जैनी नहीं नहीं विचारते ? ॥

मूत्र—तह जह तुहह धम्मो जह जह तुहहणं हाहं काहं उवत्तं ।

सम्महिठि विपासं तह तह जह स सम्भत्तं ॥

प्र० भा २ । पृष्ठी सू ४२ ॥

कैसे २ दार्शनिक विद्वत् पाण्डित्य उत्तम तथा कुलीनिकादिक और अन्य दर्शनी विद्वद्दी परिश्रमक तथा विद्वदिक दुष्ट लोगों का अस्तिप्राप्य वह सम्भार पूज्यदिक होय कैसे २ सम्भार एति जीवों का सम्भारन विशेष प्रवर्धित होय वह नहा सम्भार है ॥

समी०—अब दखो ! क्या इन जैनों से अधिक ईर्ष्या होय विद्वदियुक्त वृत्ता कोई दान ? हो दूसर मत में भी ईर्ष्या होय है परन्तु जितनी इन जैनियों में है उतनी जितनी में नहीं और होय ही प्राय का मूत्र ह, इसलिये जैनियों में प्रायश्चित्त नहीं न हो ? ॥

मूत्र—संगोवि आण अहिंसे तेसि धम्मो ज पञ्चमस्मि ।

मुत्तुय चोरसंगं करन्ति त खोरियं पाया ॥

प्र० भा २ । पृष्ठी सू ४२ ॥

इसका मुख्य प्रयोजन इतना ही है कि कैसे मूत्रज चोर के संग के वासिक-वेदमि दण्ड से भय नहीं करते किंसे जैनमत से मिल चोर जनों में किन्त जब अपने धर्मव्यवस्था से भय नहीं करते ॥

समी०—तो किंसा मनुष्य होय है वह प्रका अपने ही सरस वृत्तों को सम्भार है । क्या वह बात सम हो सकती है कि जन्म सब चोरमत और जैन का साहचर्य मत है ? जब तक मनुष्य में यदि अज्ञान और कुसंग का अशुद्धि होती है तब तक वृत्तों के साथ यदि ईर्ष्या, द्वेषादि दुष्टता नहीं दानव्य, किंसा जैनमत प्राप्त होय है ऐसा प्राय काई नहीं ॥

मूत्र—अच्छ पसुमहिस् अरफा एवम् होमन्ति पाय भयमीय ।

पूजन्ति तपि सदा हा हीजासीमरापस्त ॥

प्र० भा २ । पृष्ठी सू ४३ ॥

एवं सूत्र में जो मिथ्याजी अर्थात् ईश्वरार्थ मित्र सब मिथ्याजी और प्राय सम्भारणी अर्थात् अन्ध अन्ध प्राणी जैन लोग सब पुण्यव्यय इसलिये जो कोई मिथ्याजी के धर्म का कथन कर वह प्राणी है ॥

कही है ! मिलेकी जोग तो नहीं किसी के मत के हों। उनमें लम्बे को लम्बा और
होने को बुरा कहते हैं ॥

मूल—वा वा गुणश्च अकल्मषं सामी न तु अचिह्नकस्तस्स पुच्छरिणो ।

कह सिद्ध पयस्य कह सुगुण सावया कह इय अकल्मष ॥

प्रक भा १। पट्टी सू ११।

सर्वज्ञमयित विन लक्षण जीव के सुगुण और जीव धर्म कहा और उनसे भिन्न
कुगुण धर्म भागों के उपदेशक कहा धर्मात् हमारे सुगुण सुखेन सुधर्म और धर्म
के कुरेन कुगुण कुधर्म हैं ॥

समी०—यह बात केर वैचित्र्यकारी न कही के समान है। जैसे वह अपने
कहे बरों को मीठ और बुरारी के मीठों को कड़ और बिकम्मे बतवाती है। इसी
प्रकार की वैचित्र्यों की बातें हैं वे जोग अपने मत से मित्र मत्स्याहों की सेवा में
बड़ा अकल्मष धर्मात् पाप भिन्ने हैं ॥

मूल—सणो इच्छं मरथं कुगुण अर्थात् इहेह मरथाह ।

तो बरिसत्थं गहियु मा कुगुणसेवथं भहम् ॥

प्रक भा १। सू १०।

जैसे प्रथम विद्वान् जानें कि सूर्य में मन्दि का भी प्रकाश करण अहित है। जैसे
धन्य मूर्तिधियों में श्रेष्ठ धार्मिक पुण्यों का भी श्लाघा कर देना । जब उससे भी
विशेष भिन्ना धन्य मत काहों की करते हैं। जैनमत से मित्र सच कुगुण धर्मात्
वे सूर्य से भी बुरे हैं। उनका वर्णन लेना संग कभी न करण चाहिये क्योंकि
सूर्य के संग से एक कर मरथ होता है और अन्धमार्गी कुगुणों के संग से कनेक
कर अन्ध मरथ में गिरना पड़ता है। इसलिये हे मन्त्र ! अन्धमूर्तिधियों के कुगुणों
के फल भी मत कहा वह क्योंकि जो न अन्धमूर्तिधियों की कुगु भी उक्त करण तो
हुत्त में पड़ेगा ॥

समी०—देखिये प्रेमियों के समान कठोर आन्त होपी किम्बत्, धृष्टा दुष्ट,
बुरारे मत बाधे कोई भी न होगा, इन्हींके मन से वह विचार है कि जो हम धर्म
की भिन्ना और जननी प्रशंसा न करेंगे तो हमारी सच और प्रतिष्ठा न होगी
परन्तु यह बात उनके हीमार्ग की है। क्योंकि जब तक उत्तम सिद्धान्त का संग न
करेंगे तब तक इनको धर्माध आन और सच धर्म की प्राप्ति कभी न होगी,
इसलिये प्रेमियों को उचित है कि अपनी विषयविद्वद् मिथ्या पातों को बंद करके
सत्य बातों का प्रवृत्त करें तो उनके दिलों में कल्याण की पाठ है ॥

मूल—किं मथिमी कि करिमी तालु हयासास धिठ तुटाए ।

अ वसिष्ठस्य सिंगं विवर्तितं न रयम्मि मुय जय ॥

प्रक भा १। पट्टी सू ११।

जिनकी कल्याण की प्राप्ति वह हाथों की, तुम्हें काम करने में प्रति पुर
दुष्ट शोचने से न क्या करण और क्या करण क्योंकि जो उसका उपकार करो तो

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो जैन कुछ में जन्म लेकर मुक्ति को प्राप्त तो कुछ धामार्थ नहीं परन्तु जैन भिन्न कुछ में जन्मे हुए सिन्धुवादी धम्ममार्थी मुक्ति को प्राप्त हो इसमें क्या बाधार्थ है इसका चक्षितार्थ यह है कि जैन मत अपने ही मुक्ति को ज्ञाते हैं अन्य कोई नहीं जो जैनमत का ग्रहण नहीं करत वे भ्रमजाली हैं ॥

समी०—क्या जैनमत ॥ कोई कुछ न परक्यामी नहीं होता ? [वे] सब ही मुक्ति में जाते हैं और धम्म कोई नहीं ? क्या वह अम्मचपन की बात नहीं है किना मोचे मनुष्यों के ऐसी बात कौन मन्त्र सक्ता है ॥

मूख—ठिक्कय राबं पू आ संमत्त गुणाय फारिणी मखिया ।

सावियमिच्छत्तपरी जिव्हा समय वसिया पूआ ॥

अथ भा १। पट्टी सू ६ ॥

एक जिन मूर्तियों की पूजा सब और इससे भिन्नमार्गियों की मूर्तिपूजा क्यार है । जो जिन मार्ग की आज्ञा पासता है वह तत्त्वज्ञानी जो नहीं पासता है वह तत्त्वज्ञानी नहीं ॥

समी०—क्याही ! क्या क्या ॥ क्या तुम्हारी मूर्ति पाप्यादि जड़ पदार्थों की नहीं हैती कि केवल्यदिकों की है ? जैसी तुम्हारी मूर्तिपूजा सिन्धु है वैसी ही मूर्तिपूजा केवल्यदिकों की भी सिन्धु है जो तुम तत्त्वज्ञानी क्यते हो और जनों को भ्रमजाली क्यते हो इससे विवित है कि तुम्हारे मत में तत्त्वज्ञानी नहीं ॥

मूख—जिव्हा आया प धम्मो आया रहिआय कुबं आइमुत्ति ।

इयमुत्ति ज्जक्य तत्तं जिव्हा आयाए कुबहु धम्मं ॥

अथ भा १। पट्टी सू ६२ ॥

जो जिवरेव की आज्ञा दया जमादि कम धर्म है उससे अन्य सब आज्ञा धर्म हैं ॥

समी०—यह किसमे क्ये धम्माल की बात है क्या जैनमत स भिन्न कर्म की पुण्य कल्यादी धर्मात्मा नहीं है ? क्या उस धार्मिक जन को न मान्य चाहिये ? हाँ जो जैनमतका मनुष्यों के मुख, जिह्वा धर्मों की न होती और धम्म की धर्मों की हाँती तो वह बात यह सक्ती थी । इससे अपने ही मत के ग्रन्थ बचन सगु धर्म की ऐसी बर्णों की हैं कि ज्ञाना मर्त्य के क्ये धर्म ही जैन लोग बन रह हैं ॥

मूख—उम्ममि भारपाउविज सि दुरकाइ सम्मरंतायम् ।

मयदाय्ज अवुर हरिहर रिदि समिदि पि उदोस्तं ॥

अथ भा १। पट्टी सू ६२ ॥

इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि जो हरिहरादि देवों की स्मृति है वह बरक का हनु है उससे दलके जैनियों के शोभाय लगे हो ज्ञत है जिस राजाका मंग वरन स मनुष्य मरय तक दुःख पाता है जिस जिनम्न आज्ञा मंग से नहीं न उम्म मरय दुःख पायेगा ॥

समी०—जैसे जन्म के क्षणों में चासुबद्ध, कपडिय जपडा, मनुष्य के जैसे प्राणियों में अर्थात् दुर्धर्मों में विविध आदि सब होते हैं वैसे क्या तुम्हारे पदस्थ भी सब होते नहीं हैं जिससे महाकष्ट होता है ? वहाँ काममार्गियों की जीव ज खरब तो डीक है परन्तु जो आत्मदेवी और मस्तदेवी आदि को माफ़े । उनका भी खरब करते तो अन्धकार । जो कहें कि हमारी देवी विष्णु नहीं है इन्द्र देव मिथ्या है क्योंकि आत्मदेवी ने एक पुरुष और दूसरे पुरुष की भी निष्कल की भी पुनः वह राक्षसी और दुष्टों का विषय की जगह नहीं । और अपने पदस्थ आदि जहाँ की अतिशय और बचनी आदि को कुछ पद स्थ की बात है क्योंकि दूसरे के उपवासों की तो मिथ्या और अपने उपवास की शक्ति करना मूर्खता की बात है हाँ जो सत्यमार्गवादि मत पारण करते हैं । तो सब के विषे उत्तम है, वैदिकी और अन्य किसी का उपवास उन नहीं है ।

मूल—कस्त्य बंदियास्य माहय दुष्णय अरकसिरकाय ।

भक्तामरकताय विद्याय अति दुरेण्य ॥

मन्त्र भा १ । पृष्ठी ५ पृ २१ ।

इसका मुख्य मन्त्रार्थ यह है कि जो केवल पारण अथवा बोधों का पद पद पदोक्त मिथ्यापति देवी आदि देवताओं का पद है जो इसके माननेवाले हैं वे सब दुष्टाने और दुष्कर्मवाले हैं क्योंकि उनकी के पद वे सब कष्ट पदों और बीतराम पुरुषों से दूर रहते हैं ॥

समी०—अन्य मार्गियों के दृष्टान्तों की कुछ कहना और अपने देवताओं के सब कष्ट केवल पदप्राप्त की बात है और अन्य काममार्गियों की देवी आदि का निषेध करते हैं परन्तु जो 'आत्मविष्णु' के पद १६ में लिखा है कि आत्मदेवी रात्रि में भोजन करने के कारण एक पुरुष के रूप का मात्र उसकी जीव विषय काही उसके बड़े करने की जीव निष्कल कर उस मनुष्य के रूप ही ॥ देवी को विष्णु नहीं नहीं माफ़े ? रक्ताराम मन्त्र १ पृष्ठ ६० में इसी का लिख है—मस्तदेवी एकिकों को पारण की मूर्त होकर ग्रहण करती की इसको मैं वैसी नहीं नहीं माफ़े ॥

मूल—किं सोपि अणुति व्यस्यो आस्यो अन्तर्ही किं गच्छेति ।

अह मिच्छुरया आस्यो गुणगुणममच्छुरं पद ॥

मन्त्र भा १ । पृष्ठी ५ पृ २१ ।

जो जीवमत विरोधी मिथ्याजी अर्थात् मिथ्या धर्मवाले हैं वे कौन अन्य । जो जन्मे तो बने नहीं ? अर्थात् जीव ही वह होजाते तो अच्छा होता ॥

समी०—देखा इनके बीतरामाश्रित रूप धर्म दूसरे मत वादों का जीवन भी नहीं चाहते केवल इनका द्वा धर्म कवचमात्र है और जो है जो बुद्ध जीवों और पशुओं के विषे है जीव भिन्न मनुष्यों के विषे नहीं ॥

मूल—सुखे मग्ना आपा सुहृण गच्छति सुख प्रमाप्ति ।

अपुण्य भगवत् आपा मग्ना गच्छति तं सुखं ॥

मन्त्र भा १ । पृष्ठी ५ पृ २१ ॥

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो जीव कुछ में जन्म लेकर मुक्ति को प्राप्त तो कुछ आशय्य नहीं परन्तु जीव मित्र कुछ में जन्मे हुए मित्रात्मी अन्वयार्थी मुक्ति को प्राप्त हो इसमें क्या आशय्य है इसका अतिशय यह है कि जीव मत्त बड़े ही मुक्ति को जाते हैं अन्व कोई नहीं जो जीवमत्त का प्रहस्य नहीं करते वे नरकगामी हैं ॥

समी०—क्या जीवमत्त में कोई कुछ न नरकगामी नहीं होता ? [ये] सब ही मुक्ति में जाते हैं और अन्व कोई नहीं ? क्या यह उन्मत्तपन की बात नहीं है किन्तु भोले मनुष्यों के ऐसी बात कौन मान सकता है ॥

मूक—तिष्ठत्य रासं पू आ संमत्त गुणाय कारिणी भक्षिया ।

स्राधियमिच्छस्यरी त्रिषु समय वक्षिया पूजा ॥

अथ भा २। पट्टी सू ३ ॥

एक जीव मूर्तियों की पूजा सार और इसका भिक्षुमार्गियों की मूर्तिपूजा अन्तर है । जो जीव मार्ग की छाया पावता है वह तत्त्वज्ञानी जो नहीं पावता है वह तत्त्वज्ञानी नहीं ॥

समी०—बाहरी ? क्या कहना ॥ क्या तुम्हारी मूर्ति पापघाति जब पदार्थों की नहीं वही कि कल्याणदिकों की है ? इसी तुम्हारी मूर्तिपूजा मित्रा है किसी ही मूर्तिपूजा कल्याणदिकों की भी मित्रा है जो तुम तत्त्वज्ञानी कन्त हो और अन्वों को तत्त्वज्ञानी कन्त हो इसका निर्दिष्ट है कि तुम्हारे मत्त में तत्त्वज्ञानी नहीं ॥

मूक—असि आसा ए धम्मो आसा एहिआस कुडं अहमुत्ति ।

इयमुत्ति उन्मत्त एतं असि आणाय कुसहु धम्मं ॥

अथ भा २। पट्टी सू ३२ ॥

जो जिनका की छाया इस समाधि रूप धर्म है उसका अन्व सब छाया धर्म है ॥

समी०—यह कितने बड़े अन्व का की बात है क्या जीवमत्त का मित्र कोई भी कुछ अन्ववादी धर्मगमा नहीं है ? क्या उक्त धार्मिक धर्म को न आत्म्या चाहिये ? हाँ जो जीवमत्तका मनुष्यों के मुक्त, विद्वत्त करने की न होती और अन्व की करने की होती तो वह बात यह सकती थी । इसका अपने ही मत्त क अन्व बचन, बापु आदि की एही बहानों की है कि जन्मा मर्त्य क बड़े धर्म ही जीव सोम कह रहे हैं ॥

मूक—अन्ममि नारयावविज्ज सि दुरक्काह सम्भरताणम् ।

भग्गाए अणुह हरिहर रिद्धि समिद्धि वि उन्मासं ॥

अथ भा २। पट्टी सू ३२ ॥

इसका मुख्य अर्थ यह है कि जो हरिहरादि एवों की विमुक्ति है वह नरक का हनु है उन्मत्तों द्वारा जीवों के रोमांच गये हो जाते हैं और राजाका मग करने का मनुष्य मरत्य तक कुछ पाया है और जिनका छाया भंग न क्या न उन्म मरत्य कुछ अन्व ॥

समी — देखिये ! जैमिनी के आचार्य आदि की मानसमूर्ति बर्षों इस के कष्ट और होंग की खीझा था तो इनके भीतर की भी सुखार्थ । हरिहरी और उनके उपस्थलों के ऐश्वर्य और बरती को देख भी नहीं सकते उनके रोमांच इसलिये बड़े हाते हैं कि तुम्हारे की बरती क्यों हुई ? बहुधा वैसा चाहते होते कि इनका धन ऐश्वर्य इनको सिद्ध था और वे बरिष्ठ ही था तो कष्ट और उपाया का प्रयास इसलिये करते हैं कि वे जैन लोग धन के बड़े कुसामरी को धरतुम्हारे हैं । क्या सूटी बात भी धन की मान लेनी चाहिये ? जो ईर्ष्याहीन है तो जैमिनी से का के हस्ता कोई भी न होगा ।

मूक—ओ देर सुखधर्म सो परमप्या अवमि न हु अन्नो ।

किं कथ्यतु कुम्भ सरिसो इय रतत होइकरपाबि ॥

प्र० पृ० २ । पद्य सू० ११४

वे मूर्ख लोग हैं जो जैनधर्म के विरुद्ध हैं और जो त्रिवेन्द्रभाषित वर्गीपरत छानु का पुराना अपन प्रपञ्चता है व तीव्रहरी के तुल्य हैं इनके तुल्य कोई भी नहीं

समी०—क्यों न हो ! जो जैनी लोग बोक्क-बुद्धि न होते तो ऐसी कत नही मान सकते ! जैसे केना विन्य अपने के तुल्य की तुल्य नहीं करती ऐसे ही वे बात भी दीखती है ॥

मूक—ओ अमुण्डिग गुण दोपति कह अजुहासुंठिम भच्छा ।

आहतेविदम भच्छता विस अमिआय तुल्लत्त ॥

प्र० पृ० २ । पद्य सू० ११५

त्रिवेन्द्रगण लुप्त शिवांत और विनमत के उपद्रवाधी का नाम करना जैमिनी को उचित नहीं है ॥

समी०—यह जैमिनी का इत पक्षपात और अविचारता नहीं तो क्या है ! किन्तु जैमिनी को थोड़ी सी बात धोड़ के धन्य सब लगता है । जिसकी कुछ थोड़ी सी भी बुद्धि होगी वह जैमिनी के रूप, शिवांतधन और उपद्रवाधी को रूप तुल्य विचार तो उही समान विस्मयेह बोध लय ॥

मूक—अयण वि मुगुह विअपहहन्स कसिन उल्लसर मम्म ।

आह कह विअपहिलेय उल्लुआय हरर अंधत्तम् ॥

प्र० पृ० २ । पद्य सू० ११६

जो त्रिवेन्द्र के अनुग्रह चाहते हैं व पूजनीय और जो विरुद्ध बरतते हैं वे अपरुह हैं । ईश्वरुद्धों को मानना बर्षात् अल्पमार्गियों को न मानना ॥

समी — भया जो जैन लोग धन्य अज्ञानियों को पट्टाब् केने करक न चाँसत तो उबक बाध में स बृहत्त आपनी मुक्ति के साधन कर जन्म सफल कर सेत भया जो कोई मुमको कुमार्गी, कुगुह, शिष्याधी और रूपरेहा कह तो मुम को किना नु ल कप ? फल ही जो मुम तुम्हारे को नु ग्राहक हा इसलिय तुम्हारे मन में अन्तर वाले बहुत थरी हैं ॥

मूल—तिहुअस अरु मरत वरुण निअमिअ ज न अप्पासुम् ।

विरमति न पापार्थ धिखी भिठत्तुं ताणम् ॥

अक भा २ पद्यी सू १३३

जा यत्पुण्यं दुःख हो ता भी दुःखि, व्यापारादि कर्म जैनी जाग म करें क्योंकि ये कर्म नरक में ले जाने वाले हैं ।

समी०—अब कोई जैयिनी स पूछे कि तुम व्यापारादि कर्म क्यों करते हो ? इन कर्मों को क्यों नहीं छोड़ देते ? और जा जोड़ देओ ता तुम्हारे शरीर का पापम पोषण भी न होसके और जा तुम्हारे करने से सब काम छोड़ दें तो तुम क्या बहुत खाते जीभोग ? ऐसा समझना का उपदेश करना सर्वथा व्यर्थ है क्या करें विचार किया सत्यं के बिना जा मन में चाप्य सो एक दिया ॥

मूल—तस्या इमास अइमा फारसुरहिपा अनाण गण्ठसु ।

अ अंति उस्तुत्त तसिदिदिच्छापम्मिअ ॥

अक भा २ पद्यी सू १२१

जा जैयस्य स सिद्ध शास्त्रों के सामने खड़े हैं वे अपनाऽपम हैं अपने कोई स्वाजन भी सिद्ध होता हो तो भी जैव मत स सिद्ध न माने अपने कोई स्वाजन सिद्ध होता है ता भी अन्य मत का त्याग करते ॥

समी० - तुम्हारे मुख्यपुस्तों से के के साजसज्जित होने और होंगे उन्होंने क्या दूसरे मत को ग्राहीप्रदान के अन्य कुछ भी दूसरी बात न की और न करेंगे । महा जहाँ १ जैनी लोग अपना प्रवाजन सिद्ध होता देखते हैं वहाँ बेसी के भी बेह कम जात हैं ता ऐसी मिथ्या खम्बी चौड़ी बातों के हाँकने में अधिक भी ज्ञान नहीं जाती वह बड़े शोक की बात है ॥

मूल—अवीर असिस्त जिआ मिरइ उस्तुत्त असिस्तसुओ ।

सागर फाही फेरेईहि उइ अइभी मपरण ॥

अक भा २ पद्यी सू १२२

जा कोई अन्य कह कि जैन साधुओं में धर्म है इमार और अन्य में भी धर्म है ता वह मनुष्य आदाम् प्राय वर्ष तक नरक में रहकर फिर भी नीच जन्म पाता है ॥

समी०—अदर 'बाह' विद्या के शत्रु था ! तुमने नहीं विचार इमा कि इमास मिथ्या वक्तों का कोई खबरन न कर दूरीधिये यह अपहर वक्त सिद्ध है ना असम्भव है । अब कहाँ तक तुमको समझाई तुमने तो मूढ़ निन्दा और अन्य मतों से विरोध करने पर ही करिच्छ होकर अपना प्रवाजन सिद्ध करना मायामोहा के समान समक क्षिण है ॥

मूल—दूर फरण दूरमि साहुरं तह यभावण दूर ।

अिधम्मसाहहारं पि तिरक दूरकाड निठपइ ॥

अक भा २ पद्यी सू १२०

क्रिस्त मनुष्य स जिनधर्म का कुछ भी अनुमान न हो सके तो भी जो जैवधर्म सत्य है अन्य कार्य नहीं इतनी अन्तर्मात्र ही से कुछ स ठर जाय है ॥

समी०—यथा इससे अधिक मूर्खों को अपने मतमात्र में धरने की हसी कीजती बल होगी ? क्योंकि कुछ कर्म करना व पने और मुक्ति हो ही जान देना भी न मल कीनता होगा ?

सूत्र—करया होशी दियसो जया सुगुरुन पास्यमूखमि ।

उस्तुत मे स पिसमव एहि ओनिमुषेसुमिधम्म ॥

प्रश्न-भा २। पृष्ठी सु १२८।

जो मनुष्य हैं वो विनयमय चर्यात् श्रेष्ठों के शास्त्रों को सुनूँ, उन उच्च श्रेष्ठों के मत के श्रेष्ठों को कभी न सुनूँ, यह इतनी इच्छा करे वह इतनी इच्छामय ही से इच्छामय से उच्छाता है ।

सामी०—यह भी बात सोचे मनुष्यों को संसाधने के बिना है क्योंकि यह प्रतीत हुआ है यहां के दुष्कालापर से भी नहीं तथा और पूर्वजन्म के भी संश्लि पापों के दुष्काली फल योगे निभा नहीं कर सकता। जो देसी १ मूल अर्थात् निष्कामिन्द्रिय न बिकसते तो इसके अधिव्यक्तन प्रणियों को वेदादि शास्त्र तथा मूल समाधायन बालकर इनके पोषक प्रणियों को जोर देत परन्तु ऐसा बाल्य का इन अधिव्याधियों को बांधा है कि इस बाध से कोई तब बुद्धिमत्त सख्यगी परे कर सके तो सम्भव है परन्तु अल्प बुद्धियों का प्रयत्न तो यति कठिन है ॥

मूल - जङ्गाजैर्हमरिषं सुम्यबहारं विस्रोहिषं तत्स ।

अप्या पितुन्व बोधी मिय अप्या एह गच्छामो ।

॥ अथ श्रीमद्भगवत्पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

जो विद्यार्थियों ने कबे सूर्य विषयि हृति माग्य' पार्थी माग्यो हैं वे ही हम
जगन्नाथ और हुम्नाह जगन्नाथ के कबरे से चरित्रयुक्त होकर सुखों के मस्त होते हैं
मग्य मग्य के मग्य देखने से गयीं ॥

[illegible]

मूल—अविज्यस्य सि विष्णु नाहो लोभाया राविपरक ए भूभो ।

ता तं तं मय तो कइ मयसि ओपि आशारम

मन्त्र भा २ । पाणी सु १४८ ।

जो उत्तम प्रत्यक्षान् मनुष्य होते हैं वे ही जिनपरम का प्रत्यक्ष ज्ञान है
अर्थात् जो जिनपरम का प्रत्यक्ष नहीं करते उनका प्रत्यक्ष वह है ॥

समी०—क्या वह बात मूल की चीज खूब नहीं है ? क्या ज्ञान मत्त में
अप्रत्यक्षानी चीज जिनपरम में महामात्रणी कोई भी नहीं है ? चीज को यह कहो कि
अपनी अर्थात् जिनपरमअर्थे आपस में कलेश न करें किन्तु प्रीतिपूर्वक करें, इसका
वह बात सिद्ध होती है कि दूसर के साथ कलेश करने में बुराई जिन लोग नहीं
मानते हैं, वह भी इन की बात समुक्त है क्योंकि ज्ञान पुण्य समझों के साथ
जिन चीजों को सिखा दकर सुनिश्चित करते हैं चीज जो वह सिखा कि प्रत्यक्ष
जिदबही परित्यक्तअर्थे अर्थात् संन्यासी चीज तापअर्थि अर्थात् शरीरि अर्थि जिन
जिनपरम के साथ है । अब देखिये कि सब को मनुष्यस्य स दक्षत चीज निम्ना करते
हैं या जिनियों की क्या चीज जमाकर धर्म कहाँ रहा ? क्योंकि जिन दूसर पर हो
रक्षक क्या जमा कर मनुष्य चीज इकक समान कोई दूसरा हिंसक रूप होय नहीं जिन
होयमूर्तिना जिनो कोय है कि दूसर यावे ही होये । अपमर्थ स लोक महावीर
वर्मण २४ तीर्थङ्करा को यही इषी सिध्दासी कहें चीज जिनपरम मानमअर्थे को
सन्निपातअर्थ स फल पुण्य मानें चीज उनका धर्म करक चीज जिन के सन्तान समझें
तो जिनियों को कितना बुरा कहेय ? इसलिये जेही ज्ञान निम्ना चीज वरमत्तपुण्य
रूप मत्त में दूसर महाकलेश मत्त रहे हैं इस बात को जानें हैं तो बहुत
अप्यु हाव ॥

मूल—एगो अगुरु एगो वि साध गो व इच्छाणि विषहाणि ।

तच्छुप अ जिह्वाध्वं वरुणरत्नं न विद्यन्ति ॥

अथ भा २ । वही सू १२० ॥

सब धारकों का एकदुधधर्म एक है । केवलज्ञान अर्थात् जिनप्रतिविम्ब मूर्ति
एक चीज जिह्वाध्व की रसा चीज मूर्ति की पूजा करना धर्म है ॥

समी०—अब इसी जिन्या मूर्तिपूजा का कहा क्या है वह सब जिनियों
के कर न चीज प्राणवर्तों का मूल की जिनपरम है ॥

आवृत्त दिनज्ञान पूजा १ में मूर्तिपूजा के प्रत्यक्ष —

मन्त्रकारण विषाहो ॥ १ ॥ अनुसरण साधन ॥ २ ॥ पपाई इम ॥ ३ ॥

आगा ॥ ४ ॥ विष पन्थणो ॥ ५ ॥ यथारक्षणं तु विधि पुण्यम् ॥ ६ ॥

इत्यदि धारकों को यहिह ज्ञान में नवधर का जप का ज्ञान ॥ १ ॥

एसा नवधर जप बीड़ में धारक है अन्तर काय ॥ २ ॥ नीमर अन्तर्प्रतिविम्ब

इसा किन है ॥ ३ ॥ चीज ज्ञान धारकों में प्रत्यक्षानी मोह है उस धारक

साधनिक है या ज्ञान उसका सब जतीवार नियम करने न का धारकपक

धारक या भी उपचार स ज्ञान कहाय है सो बोध करण ॥ ४ ॥ पाँचवें कियकर

अर्थात् मूर्ति का नवधर अन्तर्प्रतिविम्ब पूजा करण ॥ ५ ॥ इस प्रत्यक्षान् ज्ञान

नवधरमन्त्रिमुक्त विधिपूर्वक कहण इत्यदि ॥ ६ ॥ चीज इन्ही ज्ञान में ज्ञान १

बहुत भी विधि जिनो है अर्थात् ज्ञान के अन्तर्प्रतिविम्ब में जिनप्रतिविम्ब अर्थात्

नीमरुतो की मूर्ति पूजा चीज ज्ञान नवधर नवधर ज्ञान में व १ २ ३ ४ ५ ६ ॥

मन्दिर बनाने के निश्चय—पुण्यने मन्दिरों को बनाने और सुधारने से मुक्ति हो जाती है। मन्दिर में इस प्रकार व्यवहार बैठे। नये भाव प्रीति से पूजा करें “जिनेन्द्रोऽस्य” इत्यादि मन्त्रों से आराधना कराया और “अस्तव्यस्तमपुष्पभूपदीप्तैः” इत्यादि से आराधना करायें। रक्तसार भाग के १२ में पृष्ठ में मूर्तिपूजा का उपाय बताया है कि पुजारी को रक्तार व प्रसाद कोई भी न रोक सके ॥

समी०—ये बातें सब प्रयोगपरिष्ठा हैं क्योंकि बहुत से बीच पुजारीयों से रक्तारि रोकते हैं। रक्तसार पृष्ठ २ में लिखा है मूर्तिपूजा से रोग पीडा को मारापोप हट जाते हैं। एक किस्ती में २ बीड़ी का पूजा कराना उसने १८ फेद का रक्त पूजा उसका नाम कुमारपूजा हुआ या इत्यादि सब बातें मूर्ती और मूर्तियों को बनाने की हैं क्योंकि अनेक जैनी लोग पूजा करते २ रोगी रहते हैं और एक बीघ का भी रक्त पाचपादि मूर्तिपूजा से नहीं मिलता और जो पांच २ बीड़ी का पूजा करने से रक्त मिल तो पांच २ बीड़ी के पूजा करने से रक्त भूयोक्त का रक्त नहीं कर लेते ? और रक्तवचन नहीं भोगते हैं ? और जो मूर्तिपूजा करके रक्तसार से तर जाते हैं तो श्राव सम्मन्वयन और चारिण नहीं करते हो ? रक्तार भाग पृष्ठ १२ में लिखा है कि गोतम के चरुहो में अमृत और उसके स्मरण से मन्त्रांकित रक्त प्राप्त है ॥

समी०—जो देखा हो तो सब जैनी लोग अमर हो जाने चाहियें सा नहीं होते इससे यह इनकी केवल मूर्तियों का व्यवहार की बात है दूसरे इसमें कुछ भी कम नहीं। इनकी पूजा करने का छोटा रक्तार भाग पृ २१ में—

अस्तव्यस्तमपुष्पभूपदीप्तैः रक्तारिरेण पञ्चमहे ॥

उपचारवरीजिनेन्द्रान् रक्तिरेण पञ्चमहे ॥

इन सब कल्प पावक पुण्य रूप दीप भिक्षु वक्त और प्रतिवेद उपचारों से जिनेन्द्र प्रभात तीर्थहरी की पूजा करें। इसी से हम कहते हैं कि मूर्तिपूजा जिनियों से नहीं है। (विशेषरूप पृष्ठ २१) जिन मन्दिर में मोह बड़ी अन्ध और भवसागर के पार उठाने वाला है। (विशेषरूप पृष्ठ २१ से २२) मूर्तिपूजा से मुक्ति होती है और जिन मन्दिर में जाने से सन्तुष्ट होते हैं जो जब पञ्चपादि से तीर्थहरी की पूजा कर वह गरुड से घट स्वर्ग को जाय। (विशेषरूप पृष्ठ २२) जिन मन्दिर में पञ्चमहेपादि की मूर्तियों के पूजने से धर्म धर्म काम मोह की सिद्धि होती है। (विशेषरूप पृष्ठ २१) जिनमूर्तियों की पूजा करें तो सब जगत् का लोभ हट जायें ॥

समी०—यह देखो ! इनकी प्रविष्टिबुद्ध अक्षम्यता बातें जो इस प्रकार से पापदि पुरे कर्म घट जायें मोह न जाये भवसागर से पार उठ जायें सन्तुष्ट जायें करक को बाध स्वर्ग में जायें धर्म धर्म काम मोह को घट होयें और सब लक्षण हट जायें तो सब जनी जाग सुधी और सब पदार्थों की सिद्धि को घट क्यों नहीं होत ? इसी विशेषरूप के २ पृष्ठ में लिखा है कि जिन्होंने जिनमूर्ति का स्थापन किया है उन्होंने अपनी और अपने दुःख को जीविता राखी

श्री ई । (विष्णुस्मृत्यार पृष्ठ १२२) शिव विष्णु आदि की मूर्तियों की पूजा करना बहुत पुरी है अर्थात् गरक का स्थापन है ॥

समी०—महा कब शिवादि की मूर्तियाँ परब के साधन हैं तो ऐश्वर्य की मूर्तियाँ क्या किसी नहीं ? आ कहें कि हमारी मूर्तियाँ त्यागी शांत और शुभमुद्रायुक्त हैं इसलिये जानकी और शिवादि को मूर्ति किसी नहीं इसलिये बुरी हैं तो इनसे कह्यज्ज कहिये कि तुम्हारी मूर्तियाँ तो बाबाओं स्वामी के मन्दिर में रहती हैं और जान्म के लिये कहता है पुनः त्यागी किसी ? और शिवादि की मूर्तियाँ तो शिव ब्रह्मा के भी रहती हैं वे त्यागी क्यों नहीं ? और जो शांत कहो तो जब पदार्थ सब निश्चय होने से शांत हैं । सब मूर्तों की मूर्तिपूजा व्यर्थ है ॥

प्र०—इमारती मूर्तियां बच आभूषणादि पालन नहीं करती इन्होंने अपनाई हैं ॥

३०—सब के सामने लड़ी सुरियों का रहना और रहना पड़ना हीना है ॥

प्र०—जैसे की यह चित्र या मूर्ति देखने से अमनोव्यपत्ति होती है वैसे सब कुछ और प्राणिमों कि मूर्तियों को देखने से दाम गुण प्राप्त होते हैं।

३०—जो पापकर्म मूर्तिमयी के देखने से गुप्त परिचय मानते हैं तो उसके अन्तर्गत गुप्त भी गुप्तार में आजायेंगे। जब जबकुछि होंगे तो सर्वत्र नष्ट हो जायेंगे। दूसरे जो उच्च विद्वान् हैं उनके लक्ष्य तथा संकल्प से मूर्तियों की अधिक होगी और जो १ दोष ग्यारहों समुत्पत्तियों में लिखे हैं वे सब पापकर्म मूर्तिपूजा करने वालों को बताते हैं। इसलिये वेदों के मूर्तिपूजा में कुछ अनेकानेक बहाना है किसे इनके मन्त्रों में भी बहुत सी अस्मय कर्तें लिखी हैं यह इनका मन्त्र है। उक्त अंग प्रह १ में—

नमो अग्निर्वातस्य नमोऽसिंहाय नमो आथरियास्य नमो उवस्त्रापास्य
नमो ह्योप सप्तस्यस्य एसो पञ्च नमुद्धरो सुव्य पायप्स्यास्यो
मनुजस्यस्य च सप्तै सिपहर्मा ह्यह मनुजम् ॥ ११ ॥

इस मन्त्र की वड़ा माहात्म्य लिखा गया है और सब कैथियों का यह गुह्यमन्त्र है। इसका ऐसा माहात्म्य क्या है कि मन्त्र पुराण पाठों की भी कथा को प्रभावित कर दिया है। आचार्यिण कृत्य पृष्ठ ३—

नमुष्कार नवपङ्क्त ॥ १० ॥ अङ्ककर्म । मन्ताण्यमन्तो परमो इमुत्ति
धेयास्यधेयं परमं इमुत्ति । तत्ताण्यतत्तं परमं पविर्त्तं संसारसत्ताण्यदुद्धायात्तं
॥ १० ॥ ताणं अद्यन्तु ना अत्थि । जीयाणं मयसात्तर । पुद्गलं ताणं इमं
मुत्तु । नमुष्कारं सुपोषयम् ॥ ११ ॥ कर्म । अण्णेममन्तरसं चिन्नाणं ।
उद्धाणं साररिग्गिमात्तासुसात्तासुसाणं । कत्तोय भव्वाणमिपस्सवात्तो न
अवपत्ता नवकारमन्तो ॥ १२ ॥

जो यह मन्त्र है पश्चिम घोर परममन्त्र है यह ज्ञान के बोध में परममन्त्र है तथा में परममन्त्र है बुद्धों से प्रेषित संस्कारी जीवों को बचकर मन्त्र प्राप्त है जिसे श्री समुद्र के पार उत्तारण की सीमा होती है ॥ १ ॥ ॥ जो यह बचकर मन्त्र है यह बोध के समाप्त है या इसको धोकर दत्ते हैं वे मन्त्रात्मक में प्रकृते हैं

मन्दिर बनाने के नियम—पुजने मन्दिरों को बनाने और सुधारने में मुक्ति हो जाती है मन्दिर में इस प्रकार व्यवहार करें बड़े मात्र प्रीति से पूजा करें 'अग्निमेन्द्रिय' इत्यादि मन्त्रों से कामादि कथना और 'अन्नचान्न' मनुष्यभूषणार्थ इत्यादि से शब्दादि ब्रह्म । रक्तसर माग के १२ वें पृष्ठ में मूर्तिपूजा का यह विवरण है कि पुजारी को राजा व प्रजा कोई भी न रोक सके ॥

समी०—वे बातें सब कपोलकल्पित हैं क्योंकि बहुत से जैन पुजारी को राजादि रोकते हैं । रक्तसर पृष्ठ ३ में लिखा है मूर्तिपूजा से राग पीडा और महादोष दूर होते हैं । एक किस्ती ने २ बीड़ी का पूजा करना उसने १८ सेठ का राज सत्ता उसका नाम कुमारपद्म बुधा था इत्यादि सब बातें मूर्ति और मूर्तियों को हटाने की हैं क्योंकि अनेक जैनी लोग पूजा करते १ रोमी करते हैं और ल बीजे का भी राज पावसादि मूर्तिपूजा से नहीं मिलता और जो पांच २ बीड़ी का पूजा करने से राज मिले तो पांच ० बीड़ी के पूजा करने से सब भूषण का राज लब्ध नहीं कर लेते ? और राजपद लब्ध भोगते हैं ? और जो मूर्तिपूजा करते : समर से तर ऊठ हों तो ज्ञान सम्यग्दर्शन और चारित्र्य लब्ध करते हो ? रक्त माग पृष्ठ १३ में लिखा है कि गोमय के चमड़े में अमृत और उसके समस्त मन्त्रांकित फल फला है ॥

समी०—जो ऐसा हो तो सब जैनी लोग समर हो जाने चाहियें सो न होते इससे यह इनकी केवल मूर्तियों का व्यवहार की बात है वृत्त इसमें ऊन : कम नहीं । इनकी पूजा करने का भोक्त रक्तसर माग पृ २१ में—

अन्नचान्नभूषणैरप्य शीपास्तकैर्मन्त्रिष्यसन् ।

उपचारयैर्जिह्माम्नान् रुचिरैरप्य यज्जमहे ॥

इस जब कल्पन कल्पन पुण्य दूर शीप मैत्रेय कल और अतिशेह उपकार से जिह्म चर्मात् तीर्थङ्करों की पूजा करें । इसी से हम कहते हैं कि मूर्तिपूजा कीर्तियों से बड़ी है । (विवेकसर पृष्ठ २१) जिन मन्दिर में मोह नहीं आता और भक्तिकार के पार उधारने बाधा है । (विवेकसर पृष्ठ २१ से २२) मूर्तिपूजा में मुक्ति होती है और जिन मन्दिर में जाने से सत्पुण्य पाते हैं जो जब कल्पादि से तीर्थङ्करों की पूजा कर वह मरक से दूर ल्हा को जान । (विवेकसर पृष्ठ २२) जिन मन्दिर में कल्पमन्त्रादि की मूर्तियों के पूजने से धर्म धर्म कम और मोह की सिद्धि होती है । (विवेकसर पृष्ठ २१) जिनमूर्तियों की पूजा कर तो सब जगत् के लोभ दूर जायें ॥

समी०—यह देखो ! इनकी अनिमित्तक असम्भव बातें जो इस प्रकार से पापादि दूर कर्म दूर अर्थ मोह न पावे भक्तिकार से पार उठन पावें सत्पुण्य कायर्षे मरक को दात स्वर्ग में जायें धर्म धर्म कम मोह को दूर होय और सब लोभ दूर जायें तो सब जैनी लोग मुक्ति और सब पदार्थों की सिद्धि को प्राप्त नहीं करी लेते ? इसी विवेकसर के २ पृष्ठ में लिखा है कि जिह्मे जिह्ममूर्ति का स्थापन किया है उन्होंने अपनी और अपने कुटुम्ब की जीविका लगी

शिक्षा है कि भौक्य्य सोसरे घरक में गया । निवेकसार पृष्ठ १०२ में शिक्षा है कि
 धन्यन्तरि घरक में गया । निवेकसार पृष्ठ ४८ में जागी जाजम क्यजी मुहा
 कितने ही अज्ञान स तप कह करक भी कुगति को पाते हैं । रणसर भा पृष्ठ १०१
 में शिक्षा है कि जब बसुरेव बाबात् शिष्ट बसुरेव शिष्ट बसुरेव स्वर्गम् बसुरेव,
 पुरुषोत्तम बसुरेव सिंहपुरव बसुरेव पुरुष पुत्रवरीक बसुरेव दत्त बसुरेव, धनमय
 बसुरेव और भौक्य्य बसुरेव व सब ग्यारहवें बारहवें बीसवें पन्द्रहवें अग्यारहवें,
 पौसवें और बाईसवें तीर्थङ्करों क समय में गरक को गये और लक्ष्यति बसुरेव
 अथात् अथप्रीत्यतिबसुरेव, सारक्यतिबसुरेव मोदक्यतिबसुरेव मनुष्यतिबसुरेव
 विश्रम्भ्यतिबसुरेव बह्वीप्रतिबसुरेव प्रह्लादप्रतिबसुरेव रावणप्रतिबसुरेव और
 अर्धमनुष्यतिबसुरेव वे भी सब गरक को गये और कल्पगण्य में शिक्षा है कि
 धनमय स धन महामौर पर्यन्त २४ तीर्थङ्कर सब मोक्ष को प्राप्त हुये ॥

समी०—महा कोरे बुद्धिमान् पुरुष विचारें कि इसके सारु गृहस्थ और तीर्थङ्कर त्रिममें बहुत स केव्याम्यामी परकीयमी बार आदि सब ईशमतस्य स्वयं और मुक्ति का गने और जीहृम्यादि महाधार्मिक मझम्य सब नरक का गव यह कितनी बड़ी बुरी बात है । प्रयुक्त विचार कर लें तो सारु पुरुष का जिनियों का सङ्ग करना का उनका देखना भी बुरा है क्योंकि जो इसका सङ्ग करे तो ऐसी ही मूर्खी के साथ उसका भी इत्थन में स्थित हो जायगी क्योंकि इन महाहठी दुरात्मही मनुष्यों का सङ्ग ले विचार्य पुराह्वों का ज्ञान कुछ भी पस्ते न परेगा । हाँ जा जिनियों में उच्चमज्ज ० है उसमें सत्सङ्गादि करने में भी दोष नहीं । विषयवार पृष्ठ २२ में लिखा है कि गुरुदि तीर्थ और करारी आदि पत्रों का ज्ञान स कुछ भी परामर्श सिद्ध नहीं हाता और अपने विचार पाछीय्या और अन्य आदि तीर्थ पात्र मुक्तिपरम्य के इन बाते हैं ॥

समी०—यहाँ विचारना चाहिये कि किस शिव रूप्यछादि के तीर्थ और क्षेत्र
जब स्थल बदलकर है किन्तु स्थितियों के भी हैं हममें से कुछ की निम्ना और दूसरे
की शक्ति करमा मूर्खता का काम है ॥

ॐ की मुद्रि का वणन ॥

(लक्ष्मण भा. पृष्ठ २३) महावीर रत्नधर जीनयजी से कहते हैं कि अर्थलोक में कुछ सिद्धिपिठा बनाये हैं स्वर्गपुरी के ऊपर बैठासीस ज्ञान बोजन धाम्नी और उतनी ही बाड़ी है तथा ये बाजन मोटी है । ईश ज्ञानी का स्केत द्वार का मोदुराव है इसमें भी उतनी है । ज्ञान के सामान्य प्रकाशमान और स्वरिक से भी निर्मल है वह सिद्धिपिठा औरतों के ज्ञान की शिक्षा करे । और इस सिद्धिपिठा के ऊपर विष्णु भक्त उतनी भी मुक्त पुरुष जन्म रहते हैं वही जन्म मर्यादा काई शेष नहीं और आनन्द कष्ट रहते हैं । पुनः जन्ममरण में नहीं जान शेष कर्मों से मुक्त हैं वह ईश्वरों की मुक्ति है ।

● दो उलमयनर हामय वह हम चधर प्रीन्या में कही व रहय ।

और जो इसका प्रह्व करत हैं वे दुःखों से तर जाते हैं । जीनों को दुःखों से प्रपक् करने काका सब प्राणी का नगणक मुक्तिकारक इस मन्त्र के सिवा दूसरा नहीं ॥ ११ ॥ अनेक भयान्तर में उत्पन्न हुआ शरीर सम्बन्धी दुःख मन्त्र जीनों को भयसमाप्त से तारने काका नहीं है जब तक नवकार मन्त्र नहीं पढ़ा तब तक भयसमाप्त से जीव नहीं तर सकता । यह अर्थ सूत्र में कहा है और जो अष्टिगुण अष्ट महाभयों में अष्टाष्ट एक नवकार मन्त्र को जोड़कर दूसरा कोई नहीं है महाराज कैदूर्य नामक भविष्य प्रह्व करने वाले अथवा शत्रुमन्त्र में समीप एक ६ प्रह्व करने में आने बिसे सुशुभम्बधी का प्रह्व करे धार सब हास्यादी न नवकार मन्त्र रहस्य है ॥

इस मन्त्र का अर्थ यह है—(नमो अरिहन्ताय) सब तीर्थहरी को नमस्कार । (नमो सिद्धाय) जैनमत के सब सिद्धों को नमस्कार । (नमो धारिण्याय) वैश्व मत् के सब धारियों को नमस्कार । (नमो वसन्ताय) जैनमत के सब उपपन्नियों को नमस्कार । (नमो खोष सम्बन्धाय) जिनके जैनमत के साधु इस लोक में हैं उन सब को नमस्कार है । वक्षि मन्त्र में वैश्व पद नहीं है तथापि जैनों के अनेक ग्रन्थों में सिद्ध जैनमत के ज्ञान किसी को नमस्कार भी न करना शिक्षा है इसलिये यही अर्थ ठीक है । (तन्मित्रेण पृष्ठ १६१) जो मनुष्य शकड़ी पत्थर को देखुदि कर पूजता है वह अपने जीनों को प्राप्त होता है ॥

समी—जो ऐसा हो तो सब कोई दर्शन करके सुखरूप प्राणों को प्राप्त क्यों नहीं होते ? (रत्नसार भाग पृष्ठ १) पार्वत्याय की मूर्ति के दर्शन से जब वह हो जात है । अथमात्म्य पृष्ठ २१ में लिखा है कि लज्जाम्ब मन्त्रियों का जीर्णोद्धार किया इत्यादि मूर्तिपूजा विषय में इनका बहुत सा ज्ञान है इसी से अमन्त्र जात्य है कि मूर्तिपूजा का मूल कारण जैनमत है ॥

अब इन जैनों के साधुओं की जीजा देखिये (विवेकसार पृष्ठ २२८) एक जैनमत का साधु काका केरव से भोग करके पद्मात् स्नानी होकर स्वर्गलोक को गया । (विवेकसार पृष्ठ ६) अर्थात् मूर्ति आरति से भूषण कई कई पर्वत वट सेत के कर में विषय भोग करके पद्मात् स्वर्गलोक को गया । श्रीकृष्ण के पुत्र अंबव मुनि को स्नाक्षिण कदा से गया पद्मात् देवता हुआ । (विवेकसार पृष्ठ १२६) जैनमत का साधु विद्वन्मयी अर्थात् वेदवारी मात्र हो तो भी उत्तम उत्तम भक्त्य भोग करें । यही साधु उद्धारित हैं यही अष्टाष्ट अरि सब पूजनीय हैं । (विवेकसार पृष्ठ १६८) जैनमत का साधु अरिहारी हो तो भी धान्य मत् के साधुओं से छोड़ है । (विवेकसार पृष्ठ १७१) धान्य भोग जैनमत के साधुओं को परिहरित अष्टाष्टरी देखें तो भी उत्तम उत्तम करनी चाहिये । (विवेकसार पृष्ठ २१६) एक और वे पाँच बूढ़ी लोचन आरति प्रह्व किया वरु कदा और पद्माद्यपि किया कने महीने में केवल ज्ञान पाने सिद्ध होयगा ॥

समी—अब देखिये इनके साधु और पुरुषों की जीजा । इनके मत् में बहुत दुर्कर्म करने काका साधु भी अष्टाष्टि को गया और विवेकसार पृष्ठ १६ में

मर्त्य में भेषिक के बोरे की छत से मरकर हुमन्नाय के बोम से द्युर्लोक नाम
महर्लोक देखा हुआ । अथपिज्ञान से मुण्डको वहाँ आया जहाँ बन्धनपूर्वक अग्नि
दिखाके गया ॥

समी०—इत्यादि विषयविषय असम्मान मिथ्या बात के कहने वाले महावीर
को सर्वोत्तम मानना महाभ्रांति की बात है ॥

अम्हदिनकृत पृष्ठ १९ में लिखा है कि मुलकमल साधु से बनें ॥

समी०—देखिये इनके साधु जी महाब्रह्म के समान होगये । क्या तो साधु
कोई परम सुख के साधूपन्य भीम कोने बहूमूल्य होने से घर में रख लेते होंगे
तो आप भीम हुये ?

(रत्नसार पृष्ठ १ २) इन्होंने कृत्रिमे पीतने का पकबे आदि में पान
होता है ॥

समी०—अब देखिये इनकी विषयविषयता क्या वे कर्म व क्रिमे करने लगे
मनुष्यादि मय्या बैठ की सके ? और कैसी सोम भी पीवित होकर मर जायें ॥

(रत्नसार पृष्ठ १ ७) बानीया बगवने से एक कच पान माखी को बपता है ॥

समी०—जो माखी को कच पान बपता है तो अनेक जीव पत्र पत्र फूल
और कृपा से आचमिष्ठ होते हैं तो करोड़ों गुंजा पुष्प भी होना ही है इस पर
कुत्र पान्य जी व दिया, वह मित्रान्य अन्धेर है ॥

(लक्ष्मिकेक पृष्ठ १ २) एक विष बमिष्ठ साधु भूख से कैला के घर में बड़ा
पका और धर्म से मिठा मागी कैला बोली कि वहाँ धर्म का वहाँ किन्तु धर्म का
कम है तो उस बमिष्ठ साधु ने साते बारह काच पान्य उलके घर में क्यों दौं ॥

समी०—इस बात को लम विद्या बहबुद्धि पुष्प के भीम मानेया ?

रत्नसार भाग पृष्ठ ६० में लिखा है कि एक पाचन्य की मूर्ति बोने पर बड़ी
हुई उसका जहाँ स्मरण का वहाँ उपस्थित होकर रचा करतो है ॥

समी०—अबो जीवोजी ! आजकल हमारे वहाँ बोरी काच आदि और मनु
से मय होता ही है तो तुम अस्मय स्मरण करके कचवी रचा क्यों नहीं बना लेते
हो ? क्यों वहाँ वहाँ पुत्रिष्ठ आदि राजस्वलों में मात्र २ पिते हो ?

अब इनके साधुओं के कचन्यः—

सरजोहरसा मैधमुजो सुश्रितमूर्त्यकः ।

भेताम्बरः समशीला मिसहा जैनसाधन ॥ १ ॥

सुश्रिता पिच्छिकाहस्ता पाणिपादा दिगम्बरः ।

ऊष्मोचिनो गृहे दातुर्द्वितीयाः सुश्रितमूर्त्यकः ॥ २ ॥

भुङ्क्ते म केवर्ध व ली मोक्षमति दिगम्बरः ।

प्रादुरपामर्त्य मेदो महान् भेताम्बरः सह ॥ ३ ॥

जैन के साधुओं के कचन्यार्थ त्रिवेदपुरी ने इन श्लोकों में कहे हैं—(सरजो-
हरसा) कमरी रक्ता और मिशामांग के काच धार के काच सुश्रित का देना

मार्ग में भेषिक के बोले की टाप से मत्सर शुभजान के योग से स्तुति का काम महर्षिक देखा हुआ । अथभिज्ञान से सुपुत्रों वहाँ आया जाल कन्दर्पार्क भद्रि दिखाने गया ॥

समी०—इन्द्रादि विष्णुविष्णु असम्भव मिथ्या बात के कहने वाले महावीर को सर्वोत्तम मतान्त महाप्राप्ति की बात है ॥

मातृदिव्यपुत्र पृष्ठ १५ में लिखा है कि पुरुषनन्द साधु से लेवे ॥

समी०—देखिये इन्के साधु भी महाप्राप्ति के समान होयेंगे । वर तो साधु लेवे परन्तु पुरुष के धामपुत्र कीव लेवे वहसुख होवे स घर में रख लेते होंगे तो क्या कीव दूये ?

(रत्नसार पृष्ठ १ : २) पूजने, पूजने पीसने सब करने कादि में पाप होता है ॥

समी०—अब देखिये इन्की विद्याहीनता भला वे कर्म न किने क्यों तो मनुष्यप्रति प्रसन्न कैसे जी लेंगे ? और जैनी लोग भी पीड़ित होकर मर क्यों ॥

(रत्नसार पृष्ठ १ : ७) जगदीश कहते हैं एक सब पद मायी को छपता है ॥

समी०—जो मायी को सब पाप जगता है तो अनेक जीव पद सब कुछ और जगता से आनन्दित होते हैं तो करोड़ों गुना पुण्य भी होय ही है इस पर कुछ ज्ञान भी न दिया वह कितना आनन्द है ॥

(उल्लिखित पृष्ठ २ : १) एक दिन कस्मि साधु मूढ से केन्द्र के घर में जहा गया और धर्म से सिखा माँगी केला बोली कि क्या धर्म का नहीं किन्तु धर्म का कर्म है तो उस कस्मि साधु ने सारे बारह जगत् भरती वसुके घर में बर्षा दी ॥

समी०—इस बात को सब विद्या महामुद्रि पुत्र के कौन मानेगा ?

रत्नसार पृष्ठ १० में लिखा है कि एक पापनन्द की मूर्ति बोले पर जहाँ हुई उसका जहाँ अरथ को वहाँ उपस्थित होकर रचा करती है ॥

समी०—कहो कैलाशी ! आनन्द तुम्हारे वहाँ बोरी अथवा अग्नि और शत्रु से सब होता ही है तो तुम उसका अरथ करके अपनी रचा क्यों नहीं बना लेते हो ? क्यों जहाँ वहाँ उपस्थित अग्नि उल्लेखनी में मरे २ छिटे हो ?

अब इनके साधुओं के बचनः—

सरजोहरका मैसभुजो लुब्धितमूर्खः ।

भेताम्बरः समष्टिमा मि'सङ्गा जैनसाधक' ॥ १ ॥

लुब्धिता पिच्छिकाइस्ता पाणिपात्रा दिगम्बराः ।

ऊर्ध्वाशिनो गृहे वातुर्द्वितीयाः स्तुतिर्मर्षय' ॥ २ ॥

मुक्ते न केवलं न ह्री मोक्षमति दिगम्बरः ।

प्रातुरेपाम्य भवो महान् भेताम्बरः सह ॥ ३ ॥

शैव के साधुओं के बचनार्थ विमलचन्द्री ने इन श्लोकों में कहे हैं—(अजा-हरण) जगती रक्षा और मित्रा माँ के कन्या शिर के सब लुब्धित कर देना

स्वैत कम धारण करवा जमावुक्त रहवा, किसी का सङ्ग न करवा देस बचसु
 शैमिनी के श्वेताम्बर (हैं) जिसको पति कहते हैं ॥ १ ॥ दूसरे दिग्गम्बर कम
 कम धारण न करवा धिर के पाद उखाड़ बाजना पिच्छिन्न (एक कम के सूँ।
 पारु खगने का साधन) काय में रखवा ओ कोइ मित्रा दे तो हान में के
 का खेप दे दिग्गम्बर दूसरे गम्बर के साथ होत हैं ॥ २ ॥ और मित्रा दे
 बाबा गुरुस्य कम भोजन कर चुके उसके पश्चात् भोजन करें। वे निर्वर्षि धर्म
 तीसरे गम्बर के साथ होते हैं। दिग्गम्बरों का श्वेताम्बरों के साथ इत्यादि ही वे
 हैं कि दिग्गम्बर खोप की† का अपर्णा‡ नहीं कहते और श्वेताम्बर कहते हैं इत्यर्थ
 कर्त्तों से मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ मह इन्के साधुओं का मेरु है। इससे के
 खोपों का केसह्वजन सर्वत्र प्रसिद्ध है और पांच मुनि तुल्य कम इत्यदि भी लिख
 है। निम्नस्तर पृष्ठ ११६ में लिखा है कि पांच मुनि तुल्य कम चरितप्रिय
 किवा प्रबोधि पांच सूरी धिर के पाद उखाड़ के साथ हुआ। (कस्तूरकमण्डप १
 १ ८) केसह्वजन करे धी के बाधों के तुल्य लगे।

समी०—कम कहिये डील खोमो। तुम्हारा क्या धर्म कहाँ रहा। क्या का
 हिंसा प्रार्थना करते अपने हाथ से ह्वजन करे चाहे उसका गुरु करे या अन्य को
 परानु मिलन क्या कम उस जीव को होता होया। जीव को का देना ही हिंसा
 कहाती है ॥

निम्नस्तर पृष्ठ ८ संस्कृत १६३३ के पाद में श्वेताम्बरों में से इतिथ और
 इतिथों में से सेरहपन्थी चरित डीली लिखते हैं। इन्हिये खोम प्रत्यक्षरि मूर्ति
 को नहीं मानते और वे मोक्षक लय को मोक्ष सर्वथा मुक्त पर पड़ी बांधे रहते
 हैं और उली चरित भी कम पुस्तक बाँधते हैं सभी मुक्त पर पड़ी बाँधते हैं कम
 सम्य नहीं ॥

प्र०—मुक्त पर नहीं प्रत्यक्ष बाँधना चाहिये क्योंकि “कनुकन” प्रबोधि को
 धनु में धूम धरित कहे जीव रहते हैं वे मुक्त के पाद की उखाड़ से मरते हैं
 और उसका पाप मुक्त पर पड़ी न बाँधने कहे पर होता है इसलिये हम खोम मुक्त
 पर पड़ी बाँधना प्रत्या समझते हैं ॥

उ०—कह कहत निध और प्रत्यक्ष चरित प्रत्या की रीति से अनुक्त है
 क्योंकि जीव प्रत्यक्ष समर है धिर के मुक्त की पाद से कभी कभी मर सकते,
 इन्को तुम भी प्रत्यक्ष समर मझते हो ॥

प्र०—जीव तो नहीं मरता परानु को मुक्त के कण्ठ धनु से उन्को पीका
 पङ्कती है उस पीका पङ्कतले कहे को पाप होता है इसलिये मुक्त पर पड़ी
 बाँधना प्रत्या है ॥

† ह मे अपरी में—“जी का संसार नहीं करते और श्वेताम्बर करते हैं”
 देना पाठ है ॥

‡ अपर्णा—मोक्ष ॥

* नहीं पृष्ठ धर्मका देना यह गन्ध प्रतीत होता है ॥

उ०—बह भी तुम्हारी बात सर्वथा असम्भव है क्योंकि पीसा देने बिना किसी जीव का किंचित् भी निर्बाह नहीं हो सकता । जब मुख की वायु से तुम्हारे मत में जीवों को पीसा पहुँचती है तो बचने, बचने बैठने हाथ उठाने और चेन्नादि के बचाने में पीसा असम्भव पहुँचती होगी, इसलिये तुम भी जीवों को पीसा पहुँचाने से मूक नहीं रह सकते ॥

प्र०—हाँ जहाँ तक जब सके जहाँ तक जीवों की रक्षा करनी चाहिये और जहाँ हम नहीं बच सकते वहाँ अशक्त हैं क्योंकि सब वायु आदि पदार्थों में जीव भरे हुए हैं जो हम मुख पर कपड़ा न बाँधें तो बहुत जीव मरें कपड़ा बाँधने से मृत्यु मरते हैं ॥

उ०—बह भी तुम्हारा कथन पुच्छिग्न्य है क्योंकि कपड़ा बाँधने से जीवों को अधिक दुःख पहुँचता है जब कोई मुख पर कपड़ा बाँधे तो उच्छ्वस मुख का वायु जब के नीचे से पार्श्व और मौल समक्ष में नासिका द्वारा इच्छा होकर केग से निकलता है उससे उच्छ्वस अधिक होकर जीवों को विशेष पीसा तुम्हारे मतानुसार पहुँचती होगी ॥

देखो ! जैसे घर व कोठरी के सब दरवाजे बन्द किये व परदे लगे जायें तो उसमें उच्छ्वस विशेष होती है सुखा रहने से उठनी नहीं होती किन्तु मुख पर कपड़ा बाँधने से उच्छ्वस अधिक होती है और सुखा रहने से मृत्यु जैसे तुम अपने मतानुसार जीवों को अधिक दुःखदायक हो और जब मुख बन्द किया जाता है तब नासिका के द्वारों से वायु एक इच्छा होकर केग से निकलता हुआ जीवों को अधिक पका और पीसा करता होगा ॥

देखो ! जैसे कोई मनुष्य अग्नि को मुख से छूटता और कोई नहीं छे तो मुख का वायु फैलने से कम बल और नहीं का वायु इच्छा होने से अधिक बल व अग्नि में जलता है जैसे ही मुख पर पड़ी बाँध कर वायु के रोकने ॥ पश्चिम्य द्वारा अतिक्रान्त से निकल कर जीवों को अधिक दुःख देता है इससे मुख पर पड़ी बाँधने बाहों से नहीं बाँधने बल कमजोर हैं और मुख पर पड़ी बाँधने से अक्षरों का वायुमय काल प्रसन्न के साथ उच्छ्वस भी नहीं होता निरनुवाकिक अक्षरों का वायुमयिक बोलने से तुमको हीन लगता है तथा मुख पर पड़ी बाँधने से दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध भरा है । शरीर से मिलता वायु निकलता है वह दुर्गन्धयुक्त प्रसन्न है जो वह रोच्य पद तो दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ जाय जैसा कि कम "जाजर" अधिक दुर्गन्धयुक्त और सुखा हुआ मृत्यु दुर्गन्धयुक्त होता है जैसे ही मुखपट्टी बाँधने इच्छाकर मुखपट्टा और स्त्राव न करये तथा कदा न पीने से तुम्हारे शरीर से अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होकर अंतर्म में बहुत से रोग करके जीवों को अतिपी पीसा पहुँचता हो उतना पद तुमको अधिक होता है । जैसे मंथ आदि में अधिक दुर्गन्ध होने ॥ किमु-चिकर" अर्थात् देना आदि बहुत प्रकार के रोग उत्पन्न होकर जीवों को दुःख-दायक होते हैं और मृत्यु दुर्गन्ध होने व रोग भी मृत्यु होकर जीवों को बहुत

स्वैत कल पारक करण्य जमायुक्त रहण्य किसी का सङ्ग न करण्य ऐसे बहसुक्त
 वैमिर्षी के स्वैताम्बर (हैं) जिसको पति कहते हैं ॥ १ ॥ दूसरे दिग्गम्बर कर्म
 कल बतल्य न करना शिर के बाह्य उच्छाद बलकण्य विभिन्न (एक कल के एतों न
 प्यङ्गु बापने का साधन) बगल में रखना जो कोई मित्रा दे तो हाथ में लेन
 का योग्य ये दिग्गम्बर दूसरे प्रभार के साधु होते हैं ॥ २ ॥ और मित्रा से
 बाधा पृथक् अथ भोजन कर चुके उसके पश्चात् भोजन करें । वे विभिर्षी कर्म
 तीसरे प्रभार के साधु होते हैं । दिग्गम्बरों का स्वैताम्बरों के साथ इतना ही धे
 है कि दिग्गम्बर जोम की † का बापका † नहीं कहते और स्वैताम्बर कहते हैं इसकी
 बातों से मोच को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ यह इनके साधुओं का धेद है । इनसे मैं
 छोटी का केतुह्वान सर्वत्र प्रसिद्ध है और पांच मुष्टि ह्वान करण्य इत्यदि भी विज्ञ
 है । निरुपकार भा पृष्ठ २१६ में लिखा है कि पांच मुष्टि ह्वान कर चारित्र्य अथ
 निम्न अर्थात् पांच सूरी शिर के बाह्य उच्छाद के साधु हुआ । (कस्तूरकण्ठ पृ
 १ ८) केतुह्वान करने की के बाह्य के तुल्य रखे ।

समी०—कल कहिये कौन लोगो । तुम्हारा क्या कर्म क्यों रहा ? क्या वह
 दिग्गम्बरों बाहे अपने हाथ से ह्वान करे बाहे उच्छाद तुल्य करे या अन्य कोई
 परम्पु पितृय क्या वह उस जीव को होता होना ? जीव को क्या देना ही दिग्ग
 कहाती है ॥

निरुपकार पृष्ठ २ संख्या १६३३ के साथ में स्वैताम्बरों में से इतिहा और
 इतिहा में से तेरहपत्नी बाहि होती लिखते हैं । इतिहा जोम पापकर्मि मृ
 की बड़ी मागते और वे भोजन स्थान को जोर सर्वत्र मुख पर पड़ी बांधे रह
 हैं और उन्ही अग्नि भी जब पुस्तक बांधते हैं उन्ही मुख पर पड़ी बांधते हैं कम
 समान नहीं ॥

प्र०—मुख पर पड़ी प्रकल्प बांधना चाहिये क्योंकि “बहुमन” अर्थात् उ
 कल में सूच्य शरीर बांधे जीव रहते हैं वे मुख के बाह्य की उच्छाद ध मारते ।
 और उच्छाद पाप मुख पर पड़ी न बांधने बांधे पर होता है इसलिये हम जोम मुख
 पर पड़ी बांधना अर्थात् समझते हैं ॥

उ०—यह पठ लिख और प्रत्यक्ष बाहि प्रमाथ की रीति स कलुष है
 क्योंकि जीव अन्न अमर है फिर वे मुख की बाह्य ध कभी नहीं मर सकते,
 इनको तुम भी अन्न अमर मागते हो ॥

प्र०—जीव तो नहीं मरता परन्तु जो मुख के उच्छाद बाधु ध इनको पीडा
 पङ्कती है उस पीडा पङ्कत्यने बाधु को पाप होता है इसलिये मुख पर पड़ी
 बांधना अर्थात् है ॥

† इ ये काली में— की का संसर्ग नहीं करते और स्वैताम्बर करते हैं”
 क्या पाठ है ॥

‡ अर्थात्—मोच ॥

• यही पृष्ठ संख्या देना यह क्या प्रतीत होता है ॥

उ०—यह भी तुम्हारी बात सर्वथा असम्भव है क्योंकि पीड़ा दिये बिना किसी जीव पर विधिपूर्वक भी किराह नहीं हो सकता । जब मुख की वायु स तुम्हारे मत में जीवों को पीड़ा पहुँचती है तो वहने फिरने बैठने, हाथ उठाने और नेत्रादि के चलावने में पीड़ा अत्यन्त पहुँचती होगी, इसलिये तुम भी जीवों को पीड़ा पहुँचाने से पूरक नहीं रह सकते ॥

प्र०—हैं जहाँ तक कम सके वहाँ तक जीवों की रक्षा करनी चाहिये और जहाँ हम नहीं बचा सकते वहाँ अत्यन्त है क्योंकि सब वायु आदि पदार्थों में जीव न रहें हैं जो इन मुख पर कपड़ा न बाँधें तो बहुत जीव मरें कपड़ा बाँधने से मृत्यु मरते हैं ॥

उ०—यह भी तुम्हारा कथन पुनरुक्त है क्योंकि कपड़ा बाँधने से जीवों को अधिक दुःख पहुँचता है जब कोई मुख पर कपड़ा बाँधे तो उसका मुख का वायु एक के पीछे से दूसरे और भीन समथ में नासिका द्वारा हटता होकर बाह्य निकलता है इससे अत्यन्त अधिक होकर जीवों को विशेष पीड़ा तुम्हारे मतानुसार पहुँचती होगी ॥

देखो ! किस घर व कोठरी के सब दरवाजे बन्द किए व परे दाले जायें तो उसमें अत्यन्त क्लिष्ट होती है लुका रहने से रुकनी नहीं होती ऐसे मुख पर कपड़ा बाँधने से अत्यन्त अधिक होती है और लुका रहने से मृत्यु जैसे तुम अपने मतानुसार जीवों को अधिक दुःखदायक हो और जब मुख बन्द किया जाता है तब नासिका के द्वारों से वायु एक हटता होकर बाह्य से निकलता हुआ जीवों को अधिक परेश और पीड़ा करता होगा ॥

देखो ! जैसे कोई मनुज अग्नि को मुख से निकल और कोई बच्ची से तो मुख का वायु दिसने से कम बल और बच्ची का वायु हटता होने से अधिक बल से अग्नि में लगता है वैसे ही मुख पर पट्टी बाँध कर वायु के रोकने से नासिका द्वारा अतिरिक्त से निकल कर जीवों को अधिक दुःख देता है इससे मुख पर पट्टी बाँधने वाली से नहीं बाँधने वाले धर्मार्थ हैं और मुख पर पट्टी बाँधने से अकरोँ का पराजित्य ज्ञान प्रपन्न के साथ अकारण भी नहीं होगा निरनुभासिक अकरोँ को आनुभासिक बोलने से तुमको बात खपता है ज्ञान मुख पर पट्टी बाँधने से दुर्लभ भी अधिक करता है क्योंकि शरीर के भीतर दुर्लभ पाया है । शरीर से अतिरिक्त वायु निकलता है वह दुर्लभपुत्र प्रपन्न है जो वह रोग आदि तो दुर्लभ भी अधिक बड़ बात देखा कि कम्ब 'जाडकर' अधिक दुर्लभपुत्र और लुका हुआ मृत्यु दुर्लभपुत्र होता है जैसे ही मुखपट्टी बाँधने, अन्तर्धन्य मुखमकलन और स्नायु न करने तथा बल न पोने से तुम्हारे शरीर से अधिक दुर्लभ उत्पन्न होकर अन्तर में बहुत से रोग करके जीवों को अतिपी पीड़ा पहुँचते हो उम्मा पत्र तुमको अधिक होता है । जैसे मक आदि में अधिक दुर्लभ होने से 'विस्-विषम' अर्थात् ईजा आदि बहुत प्रकार के रोग उत्पन्न होकर जीवों को दुःख-दायक रहते हैं और मृत्यु दुर्लभ होने से रोग भी मृत्यु होकर जीवों को बहुत

दुःख भरी पहुँचता इससे तुम अधिक दुर्भाग्य बराने में अधिक जराही हो
जो मुझ पर पड़ी बरी बाँधले, दण्डपातन, मुष्णपातन, पाप करने का, लं
को शुद्ध करने है, ने तुम सं बहुत बाँधे हैं ॥

जैसे चमकती हैं के दुर्गन्ध के सहस्रस से प्रकट रहने वाले बहुत बड़े हैं।
जैसे चमकती हैं के दुर्गन्ध के सहस्रस से निर्मल बुद्धि नहीं होती, जैसे हम जो
हमारे सूर्यों की भी बुद्धि नहीं बरती। जैसे रोग की अधिकता और बुद्धि के
स्वरूप होने से जमाबुद्धि की भाषा होती है, जैसे ही दुर्गन्धबुद्धि हमारा जो
हमारे सूर्यों का भी बर्तमान होता होगा ।

प्र०—जैसे बन्द मन्दार में बसने हुए व्यक्ति की आवाज बाहर निकल आती है वैसे ही हम मुक्तपट्टी बांध के खुद को रोक कर बाहर के लोगों को मूल मुक्त पट्टीयाने कहते हैं। मुक्त पट्टी बांधने के बाहर के खुद के लोगों को पीका नहीं पड़ती और जैसे सामने व्यक्ति मन्दार है उसको आवाज बाहर देने से कम बाधता है और खुद के जीव शरीर को होने से बचाने पीका प्रयत्न पड़ती है ॥

उ०—यह तुम्हारी बात बचकन्य की है, प्रथम तो देखो जहाँ किंग और
पीतर के मनुष्य का बोम बाहर के मनुष्य के साथ ब हो तो जहाँ चमि बस ही की
सकता जो इनके मलब देखना चाहो तो किसी चमूस में दीप जलाने पर
किंग कब करके देखो तो दीप उस समय कुछ बचकन्य । जैसे तुम्हो पर धने जहाँ
मनुष्यदि प्रानी बाहर के मनुष्य के बोम के किन्हीं नहीं की सकते जैसे चमि से
नहीं बस सकता जब धुक और से चमि का कैम रोमज जल तो दूसरी ओर
अधिक कैम से निकलेगा और हल की जाय करके से मुक्त पर जाय मनुष्य जलानी है
मनुष्य का जाय हल पर अधिक कम रही है, इसलिये तुम्हारी बात ठीक नहीं ।

प्र०—इसको सब कोई समझता है कि जब किसी को मनुष्य से बोला गया
 या विपन्न होकर आता कहा जाता है तब मुक्त कर पड़ा का हान्य समझता है तब
 मुक्त से मुक्त उठकर या भुर्राज्य उसको न जाने और जब पुनः नाना
 कारणों से मुक्त उठकर उस पर फिर से बोला जाता है कि विपन्न आता है
 मुक्त पर पड़ी का नाना कारण होता है ।

उ०—इससे यह सिद्ध हुआ कि जीव-रक्षार्थं मुखपट्टी धोपना जरूरी है, जो नई मसूजा से बाध करता है तथा मुख पर हाथ का पड़ा इसदिने रक्त है कि उस पुत बल को दूसरा कोई न सुन धोने क्योंकि जब कोई मसिद्ध बल करता है तब कोई भी मुख पर हाथ का पड़ा नहीं करता इससे क्या सिद्ध होता है कि पुत बल के सिने यह बात है ॥

हमारा धर्म है कि हम दूसरों के दुःखों को दूर करने के लिए तैयार रहें। हमें यह याद रखना चाहिए कि हमारे पास किसी भी क्षण दूसरों की मदद करने का अवसर हो सकता है। इसलिए हमें हमारे दिलों को खोलकर रखना चाहिए और दूसरों की समस्याओं को समझने का प्रयास करना चाहिए।

य खगना वायु तो दूसरों की ओर वायु के फैलने से बात भी फैल जाय जब वे दोनों एकत्र में बात करते हैं तब मुक्त पर हाथ या पडा इसलिये नहीं लगते कि वहाँ तीसरा कोई मुक्तने बाधा नहीं । जो वहाँ ही के ऊपर धूक न गिरे इससे क्या छोटी के ऊपर धूक गिराना चाहिये ? और उस धूक से क्या भी नहीं लगता क्योंकि हम दूरक बात करें और वायु हमारी ओर से दूसरों की ओर जाय तो तो सूख होकर उसक शरीर पर वायु के साथ बसकर लगकर गिरेगी, उसपर होय गिरना प्रविष्ट की बात है क्योंकि जो मुक्त की उच्छता से जीव मरत से उसके पीवा पहुँचती हो तो क्याक या ओह महीने में सूर्य की महा उच्छता से वायु काय के जीवों में से मर किना एक भी न बच सके, सो उस उच्छता से भी न जीव नहीं मर सकते इसलिये यह तुम्हारा सिद्धान्त क्या है क्योंकि जो तुम्हारे तीर्थेश्वर भी पूर्व विद्वान् होते सो वृत्ती व्यर्थ बातें क्यों करते ? ऐसी पीवा उन्हीं जीवों का पहुँचती है जिसकी वृत्ति ० सब जगत्तों के साथ निरम्य हो इसमें प्रमाणः—

पञ्चादयवयोगास्तुवर्तयित्ति ॥ सांख्य च २। सू. २० ॥

जब पाँचों इन्द्रियों का पाँचों विषयों के साथ सम्बन्ध होता है तभी मुख का दुःख की प्रसि जीव की होती है । इस बधिर को ग्राहीमनुष्य जन्मे को कर का अर्थ न सूर्य व्यापारि भवशायक जीवों का बसा जाय । राज्य बहिरी जन्मे को स्वयं, विप्रस रोग बाधे को गन्ध और राज्य विद्वान्ध को रस प्राप्त नहीं हो सकता इसी प्रकार उन जीवों की भी व्यवस्था है ॥

इसी जब मनुष्य का जीव सुषुप्ति रण में रहता है तब उसको मुख का दुःख की प्रसि कुछ भी नहीं हाती क्योंकि वह शरीर के भीतर तो है परन्तु उसका बाहर के चक्षुषों के साथ उस समय सम्बन्ध न रहने से मुख दुःख की प्रसि नहीं कर सकता और इस द्वेष का पात्रकण्ड के बाहर साथ बस की वस्तु किता या मुख के सभी दुःख के शरीर के चक्षुषों को करते से भीतर है उसका उस समय कुछ भी दुःख विरित नहीं हाता का अनुभव जयस जन्म स्थान शरीर बाधे जीवों को मुख का दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता । इस मूर्तिन प्रसि मुख दुःख को प्राप्त नहीं हो सकता का वे वायुव्यापारि के जीव भी प्रत्यक्ष मूर्तिन होने से मुख दुःख का प्राप्त नहीं हो सकते फिर इनको पीवा से बचान की बात सिद्ध कैसे हो सकती है ? जब उनका मुख दुःख की प्रसि ही मरत नहीं हाती तो अनुमान्यारि वहाँ कैसे कुछ हो सकता है ॥

प्र०—जब वे जीव हैं तो उनके मुख दुःख क्यों नहीं होय ?

उ०—मुखो ओछे व्याहृता । जब तुम सुषुप्ति में हात हा तब तुमका मुख दुःख प्राप्त क्यों नहीं होने ? मुख दुःख की प्रसि का अनु प्रसिद्ध सम्बन्ध है । जभी हम बलक उच्छ दे जाय है कि क्या मुख के बाहर जन्म जन्मों का भीते बाधते

धीर करते हैं। जैसे उनके मुख विविध नहीं होता इसी प्रकार प्रतिपक्षित करने को मुख मुख नहींकर प्राप्त होते नहींकि वही प्रति होने का स्थान कोई भी नहीं।

प्र०—देखो! विद्योति जहाँसे मिलने हरे शाक प्राप्त और कर्मसूत्र है उनके हम लोग नहीं करते नहींकि विद्योति में बहुत और कर्मसूत्र में प्रकृत और है, जो हम उनके साथ तो उन जिनों को मारने और पीड़ा पहुँचाने से हम लोग पापी हो जायें ॥

उ०—यह तुम्हारी वही अविद्या की बात है नहींकि हरित शाक करने में जीव का मरना उस को पीड़ा पहुँचानी नहींकर मारते हो? मरना जब तुम्हारे पीड़ा प्राप्त होती प्रकृत वही शीकती है और जो शीकती है तो हमने जो विद्योति को तुम कभी न प्रकृत देख का हमने विद्योति सकोने। जब प्रकृत नहीं तो अनुभाव उपभाव और समप्रभाव भी कभी नहीं यह प्रकृत फिर का हम ऊपर उतर वे जाये हैं यह इस बात का भी उतर है नहींकि जो प्रकृत प्रकृतकर महासुप्रति और महाप्रकृत में जीव है इनका मुख मुख की प्रति मायका तुम्हारे तीर्णद्वारों की भी मुख विविध होती है जिनमें तुम्हारे एसी बुद्धि और विद्योति उद्वेग किता है मरना जब पर का प्रकृत है जब उसमें रहनेवाले प्रकृत नहींकर हो सकते हैं? जब कर्म का प्रकृत हम देखते हैं तो उसमें रहने वाले जीवों का प्रकृत नहीं। इससे यह तुम्हारी बात वही मुख की है।

प्र०—देखो! तुम लोग विद्योति उद्वेग किने कर्म पापी पीते हो का क्या उन करते हो जिस हम उद्वेग पापी पीते हैं किने तुम लोग भी विद्योति करो ॥

उ०—यह भी तुम्हारी बात प्रकृतका की है नहींकि जब तुम पापी की उद्वेग करते हो तब पापी का जीव सब मारत होये और उद्वेग करीर भी जब में रंधकर यह पापी सीक के चर्क के तुल्य होवे स जाये तुम उनके शरीरों का "देखा" पीते हो इसमें तुम नये पापी हो और जो उद्वेग जब पीते हैं व नहीं नहींकि जब उद्वेग पापी विद्योति तब उद्वेग में जाये स किन्तु उद्वेगता पात्र का के साथ वे जीव बाहर निकल जायें। जबकब जीवों को मुख मुख प्राप्त पहुँच रीति से नहीं हो सकता पुनः इसमें पाप किता का नहीं हमरा ॥

प्र०—जैसे अभावि स किने उद्वेगता पाके जब स बाहर जीव नहीं न निकल जायेंगे?

उ०—हां किन्तु ता करते परन्तु जब तुम मुख का बाध की उद्वेगता स जीव का मारता मारते हो ता जब उद्वेग करने स तुम्हारे मध्यस्थकर जीव मर जायें व अधिक पीड़ा पाकर विद्योति और उनके शरीर उस जब में रंध जायें इससे पुन अधिक पापी होओगे का नहीं?

प्र०—हम अपने हाथ स उद्वेग जब नहीं करते और न किसी गुरुत्व को उद्वेग पात्र करने की आज्ञा दत है इसप्रति हम को पार नहीं ॥

उ०—जो तुम उद्वेग जब न करते न जीव ता गुरुत्व उद्वेग नहीं इसप्रति उद्वेग पार के भागी तुम ही हो प्रकृत अधिक पापी हो नहींकि

मिथी एक गृहस्थ को उन्मत्त करने को कहते तो एक ही ठिकाने उन्मत्त होया जब वे गृहस्थ इस भ्रम में रहते हैं कि मैं जाने साधुजी जिस के घर को आरोग्य इसलिये प्रत्येक गृहस्थ अपने २ घर में उन्मत्त जख कर रहते हैं इसलिये पाप के सभी मुख्य दुम ही हो । दूसरा अधिक भय और भयि के जखने से भी ऊपर सिखे प्रमाणे रसाई, केटी और व्यापारादि में अधिक पापी और भयभंगामी होते हो । फिर जब दुम उन्मत्त करने के मुख्य विमिश्र और दुम उन्मत्त जख के पीने और उन्मत्त के न पीने के उपदेश करने से दुम ही मुख्य पाप के भंगी हो और जो दुम्हाय उपदेश मान कर देसी करते करते हैं वे भी पापी हैं ॥

जब देखो कि दुम नहीं आविष्य में होते हो या नहीं कि प्राप्ति १ जीवों पर दया करनी और भय मत्त नहीं की विन्वा, अतुष्टकर करना तथा बोधा पाप है । जो दुम्हाये तीर्थद्वारा का मत सदा होया तो छवि में इतनी बर्षा नदियों का जलवा और इतना जख नहीं उलपत ईश्वर ने किया । और सुर्व को भी उलपत न करता क्योंकि इस में ओहम्कार्योह जीव दुम्हाये मत्ततुष्टकर मरते ही होंग । जब वे विद्यमान वे और दुम जिसको ईश्वर मानते हो उन्होंने दया कर सुर्व का राग और मेव को नष्ट नहीं न किया । और पूर्णतः प्रकर स विद्य विद्यमान प्रविष्टों के दुम्हाय दुम की प्राप्ति कम्पदुष्टादि पदार्थों में रहनेवाले जीवों को नहीं होती सर्वथा सदा जीवों पर दया करया भी दुम्हाय का करवा होया है क्योंकि जो दुम्हाये मत्ततुष्टकर सदा मत्तुष्ट हो जाते और साधुजी का कोई भी दख न देने से विमिश्र बड़ा पाप खड़ा हो जाय । इसलिये दुमों को बचाकर दख देने और ओहों के पावन करने में दया और इसलिये विपरीत करने में दया बसक्य धर्म का मत्त है ॥

किन्तु एक जीवी लोग दुम्हाय करते जब व्यक्तारों में खूब बोझते परया भय मरते और हीनों को दुम्हाय आदि दुम्हाय करते हैं, उनके विचारय में विमिश्र उन्मत्त नहीं नहीं करते । और मुक्तपदी बांधने आदि हीम में नहीं रहते हो ?

जब दुम चेष्टा चेष्टा करते हो तब कैरातुष्टकर और बहुत दिक्कत भूये रहने में पराने का अपने आत्म को पीड़ा से और पीड़ा को प्रस होके दुस्तों को दुम्हाय देने और आत्मदुष्ट आर्षात् आत्मा का दुम्हाय दन बाध होकर जिसका नहीं मरते हो । जब हाथी धोरे बैध छंद पर अपने और मत्तुष्टों को मत्तुष्टी करने में पाप जीवी लोग नहीं नहीं गिन्ते । जब दुम्हाये जख अतुष्टांग पदों को खम नहीं कर सफत तो दुम्हाये तीर्थद्वार भी सदा नहीं कर सफते । जब दुम कया बांधते हो तब सार्थ में व्यथाओं के और दुम्हाये मत्ततुष्टकर जीव मरते ही होंग इसलिये दुम इस पाप के मुख्य करवा नहीं होते हो । इस भाँड़े कम्प स बहुत समक सेना कि जब जब कदा वायु के व्यापारशरीर बाध असमत्तमूर्तिव जीवों का दुम्हाय का दुम्हाय कमी नहीं पहुँच सफत ॥

जब जीवियों की और भी ओहोसी अस्मत्त कया सिक्ते हैं । दुम्हाय आदिवे और यह भी ज्ञान में रहना कि अपने हाथ स सारे जीव दान का बहुत होख है और कदा की संख्या जीवी पूर्ण सिख जब है कि जो ही दान - -

रहस्यर मास १ पुण्ड १६६—१६७ तक में विद्यमान है—(१) अयमनेत्र
 का शरीर २ (पौनस्य) अयुष् सप्तम्य और ८३ (चौरासी ब्राह्मण)
 'पूर्व' वर्ष की आयु। (२) अयमिन्द्रिय का ४६ (चारसी पञ्चम) अयुष्
 परिमाण का शरीर और ७२ (बहुरार ब्राह्मण) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (३)
 संमन्वय का ४ (चार सी) अयुष् परिमाण शरीर और ६ (छाट
 ब्राह्मण) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (४) अयमिन्द्रिय का ३२ (छाट) तीस सी)
 अयुष् का शरीर और २ (पञ्चम ब्राह्मण) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (५)
 सुमन्वित्य का ३ (तीनसी) अयुष् परिमाण का शरीर और ४
 (चारसी ब्राह्मण) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (६) पञ्चम का १३ (एक सी
 ब्राह्मण) अयुष् का शरीर और ३ (तीस ब्राह्मण) 'पूर्व' वर्ष की आयु।
 (७) पञ्चम्य का २ (दोसी) अयुष् का शरीर और २ (बीस
 ब्राह्मण) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (८) अयमनेत्र का १६ (छेसी) अयुष्
 परिमाण का शरीर और ३ (दस ब्राह्मण) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (९)
 सुमन्वित्य का १ (सी) अयुष् का शरीर और २ (दो ब्राह्मण)
 'पूर्व' वर्ष की आयु। (१०) शीतलकाय का ३ (कच्चे) अयुष् का शरीर और
 १ (एक ब्राह्मण) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (११) श्रेयसिकाय का ८
 (बससी) अयुष् का शरीर और ८३ (चौरासी ब्राह्मण) वर्ष की आयु।
 (१२) अयुष्पूज्य स्वामी का ७ (सत्त) अयुष् का शरीर और ७२
 (बहुरार ब्राह्मण) वर्ष की आयु। (१३) विमलकाय का ६ (सत्त) अयुष् का
 शरीर और ६ (छाट ब्राह्मण) वर्ष की आयु। (१४) अयमनेत्र का
 ५ (पञ्चम) अयुष् का शरीर और ३ (तीस ब्राह्मण) वर्ष की आयु।
 (१५) अयमनेत्र का ७५ (पैदाबिस) अयुष् का शरीर और १
 (दस ब्राह्मण) वर्ष की आयु। (१६) अयमिन्द्रिय का ४ (चारसी) अयुष्
 का शरीर और १ (एक ब्राह्मण) वर्ष की आयु। (१७) अयुष्पूज्य का
 ३६ (पैदाबिस) अयुष् का शरीर और ३६ (पञ्चम्य सहस्र) वर्ष की आयु।
 (१८) अयमनेत्र का ३ (तीस) अयुष् का शरीर और ८३ (चौरासी
 सहस्र) वर्ष की आयु। (१९) महीनाय का २६ (पञ्चम) अयुष् का
 शरीर और २६ (पञ्चम सहस्र) वर्ष की आयु। (२०) सुमन्वित्य का
 १ (बीस) अयुष् का शरीर और ३ (तीस सहस्र) वर्ष की आयु।
 (२१) वेमिकाय का १४ (बीस) अयुष् का शरीर और १ (दस
 सहस्र) वर्ष की आयु। (२२) वेमिकाय का १ (दस) अयुष् का शरीर
 और १ (एक सहस्र) वर्ष की आयु। (२३) पार्ष्णिक का (सी) हाथ का
 शरीर और १ (सी) वर्ष की आयु। (२४) महावीर स्वामी का ७ (सत्त)
 हाथ का शरीर और ७२ बहुरार वर्ष की आयु ॥

ये बीबीस तीर्थंकर जिनमें ७ सत्त ब्रह्मण्य वाले पाप्मन् और पुण्ड हैं। इन्हीं
 का श्रेणी श्रेष्ठ परमेश्वर अयमनेत्र हैं और वे सब मोक्ष का गन्ने हैं। इसमें सुमन्वित्य
 नाम विचार सेवें कि इतने वर्ष शरीर और इतना आयु अयुष्पूज्य देह का होय कभी

सम्भव है ? इस प्रश्नोत्तर में बहुत ही थोड़े मनुष्य बस सकते हैं । इन्हीं कैबिरों के प्रयोगों केकर को पुराखियों ने एक बाण इस सङ्घ और एक सङ्घ वर्ष प्रायः का विषय सो भी सम्भव नहीं हो सकता तो कैबिरों का कल्प सम्भव कैसे हो सकता है ?

अब और भी सुखी कल्पमात्र पृष्ठ ४—नागसेतु ने प्रथम की बराबर एक शिवा धनुषी पर बरबी (१) । कल्पमात्र पृष्ठ १२—महावीर ने धनुष से पृथ्वी को बर्बाद करने के लिये प्रयोग किया गया (१) । कल्पमात्र पृष्ठ ४१—महावीर को सर्व के कर्मा कथित के बरखे हुए निष्कला और वह सर्व ८०० वर्षों के लिये (१) । कल्पमात्र पृष्ठ ४७—महावीर के पाग पर और पञ्चाल और पाग का (१) । कल्पमात्र पृष्ठ १६—बोटे से पाग में बंद हुआ (१) ॥

रक्तसार मा १ प्रथम पृष्ठ १७—शरीर के मूल को बर्बाद और बर्बाद करने । निष्क-
सार मा १ पृष्ठ १२—कैबिरों के एक इन्सान प्राण ने कोषित होकर अनेक-
अनेक रूप पञ्च एक शरीर में प्राण प्राण की और (वह) महावीर तीर्थंकर का
कतिपय था । निष्कसार मा १ पृष्ठ १२०—प्राण की प्राण अनेक मायवी
बाह्ये । निष्कसार मा १ पृष्ठ २२०—एक कोठा केरवा ने बाह्यी में सरसों
की डेरी बना उसके ऊपर फुलों से बनी हुईं सुईं कभी कर उस पर अच्छे प्रभ
का किया परन्तु सुईं का में गहरे व पाई और सरसों की डेरी बिकरी
की (१११) निष्कसार पृष्ठ २२८—एकी कोठा केरवा के साथ एक सुखमुनि
ने १२ वर्ष तक भोग किया और पञ्चात् हीना केकर सत्पति को गया और कोठा
केरवा भी वैभयर्न को पाकती हुई सत्पति को गई । निष्क- मा १ पृष्ठ १८२—एक
सिद्ध की कन्या को गले में पहिनी जाती है वह २ अठारह एक केरवा को
लिय होती रही । निष्क मा १ पृष्ठ २२८—पञ्चात् पुत्र की प्राण केव की
प्राण और वन में वह से निर्वह गुह के रोक्ने माता पिता कुलाचार्य शरीर
योग और धर्मोन्निह हन क के रोक्ने से वन में मृत्युता होने से वन की हानि
की होती ॥

समी०—अब देखिये इनकी मिथ्या बातें ! एक मनुष्य प्रथम के बराबर
प्राण की शिवा को धनुषी पर कभी बर सकता है ? और पृथ्वी के ऊपर धनुष से
बाण से पृथ्वी कभी हन सकती है ? और वन से प्राण ही नहीं तो कल्पेय भी ?
महा शरीर के कर्मा से हुए निष्कला किसी ने नहीं रखा सिवाय इन्द्राय के
इसरी बात नहीं, उसके कर्मा बाधा सर्व तो सर्व में गया और महात्मा श्रीकृष्ण
प्रादि तीसरे बरक को गये, वह किसी मिथ्या बात है । वन महावीर के पाग
पर और पञ्चात् सब उसके वन जब क्यों न गये ? अन्त बोटे से पाग में कभी
बंद था सकता है ? जो शरीर का मूल नहीं उतारते और लुप्त होते हैं वे दुर्गन्ध
उन महावरक भोग्ये हैं । जिस प्राण ने बरक बाधा उसकी दवा और वन
की गई ? जब महावीर के सङ्घ से भी उलका प्राण्य पवित्र न हुआ तो अब
महावीर के मरे पीछे उसके प्राण्य से जीव योग कभी पवित्र न होंगे । प्राण की

एकतर माता १ पुत्र १९९—१९० तक में विद्य है—(१) अपमर्श
 का शरीर २ (पाँचसी) यशस्व का शरीर ८३ (चौरसी सात) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (२) अश्विनाय का ३२ (चौरसी पचास) यशस्व
 परिमाण का शरीर और ७९ (बहतर सात) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (३)
 संमन्वाय का ३ (चार सी) यशस्व परिमाण शरीर और ९ (सप्त
 सात) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (४) अश्विनाय का ३२ (साढ़े) तीस सी
 यशस्व का शरीर और २ (पचास सात) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (५)
 सुमन्वाय का ३ (तीससी) यशस्व परिमाण का शरीर और ३
 (चौरसी सात) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (६) पञ्चम का १४ (एक सी
 चौरसी) यशस्व का शरीर और ३ (तीस सात) 'पूर्व' वर्ष की आयु।
 (७) पञ्चम का २ (दोसी) यशस्व का शरीर और २ (बीस
 सात) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (८) अश्विनाय का १२ (दोसी) यशस्व
 परिमाण का शरीर और १ (एक सात) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (९)
 सुमन्वाय का १ (सी) यशस्व का शरीर और २ (दो सात)
 'पूर्व' वर्ष की आयु। (१०) अश्विनाय का ३ (पञ्च) यशस्व का शरीर और
 १ (एक सात) 'पूर्व' वर्ष की आयु। (११) अश्विनाय का ८
 (असी) यशस्व का शरीर और ८३ (चौरसी सात) वर्ष की आयु।
 (१२) यशस्व स्वामी का ७ (सप्त) यशस्व का शरीर और ७२
 (बहतर सात) वर्ष की आयु। (१३) अश्विनाय का ३ (सप्त) यशस्व का
 शरीर और ९ (सप्त सात) वर्ष की आयु। (१४) अश्विनाय का
 २ (पचास) यशस्व का शरीर और ३ (तीस सात) वर्ष की आयु।
 (१५) अश्विनाय का ३२ (पैंतासीस) यशस्व का शरीर और १
 (एक सात) वर्ष की आयु। (१६) अश्विनाय का ४ (चौरसी) यशस्व
 का शरीर और १ (एक सात) वर्ष की आयु। (१७) अश्विनाय का
 ३२ (पैंतीस) यशस्व का शरीर और ३२ (बचवसे सप्त) वर्ष की आयु।
 (१८) अश्विनाय का ३ (तीस) यशस्व का शरीर और ८३ (चौरसी
 सप्त) वर्ष की आयु। (१९) अश्विनाय का २२ (पचास) यशस्व का
 शरीर और २२ (पचपन सप्त) वर्ष की आयु। (२०) सुमन्वाय का
 ३ (बीस) यशस्व का शरीर और ३ (तीस सप्त) वर्ष की आयु।
 (२१) अश्विनाय का १४ (चौरस) यशस्व का शरीर और १ (एक
 सप्त) वर्ष की आयु। (२२) अश्विनाय का १ (एक) यशस्व का शरीर
 और १ (एक सप्त) वर्ष की आयु। (२३) पञ्चम का (सी) हाथ का
 शरीर और १ (सी) वर्ष की आयु। (२४) अश्विनाय का ७ (सप्त)
 हाथ का शरीर और ७२ बहतर वर्ष की आयु ॥

ये चौबीस तीर्थंकर जिनके के मत ब्रह्म के चारो ओर हैं। इन्हीं
 का जैसी बात परमेश्वर मानते हैं जीव के सब भाव को देने हैं। इसमें बुद्धिमान
 १ विचार करें कि इतने बड़े शरीर और इतना आयु मनुष्य के कौन कभी

अत्रात्र है । इस अर्थियों को यह ठहरे हुए कि जम्बूद्वीप में एक सूर्य और एक चन्द्र से कम नहीं चलता क्योंकि इसी वही पृथिवी को तीस वही में चन्द्र सूर्य केसे आ सकें, क्योंकि पृथिवी को जो जोरा सूर्यादि से भी वही माल्ये है, वही इसकी वही मूल है ॥

तो सवि दो रवि पंती पार्श्वरिपाह सठिसंकाया ।

मरं पपादिणं माणुससिचं परिचरति ॥

अथ य ४ । संप्र ०३ ॥

मनुष्यलोके में चन्द्रमा और सूर्य की पंक्ति की संख्या कहते हैं दो चन्द्रमा और दो सूर्य की पंक्ति (येही) हैं वे एक १ काल जोड़व वर्षात् चार काल कोर के कोरके से चलत हैं जेसे सूर्य की पंक्ति के कोरके एक पंक्ति चन्द्र की है इसी प्रकार चन्द्रमा की पंक्ति के कोरके सूर्य की पंक्ति है इसी रीति से चार पंक्ति है व एक १ चन्द्रपंक्ति में ६६ चन्द्रमा और एक १ सूर्यपंक्ति में ६६ सूर्य हैं वे चारों पंक्ति जम्बूद्वीप के मकरवर्त की अवधिवा करती हुई मनुष्यवर्त में परिभ्रमण करती हैं अर्थात् जिस समय जम्बूद्वीप के मकर एक सूर्य दृश्य दिशा में विरत, उस समय वृषभ सूर्य उत्तर दिशा में भिद्य है वैसी अक्षयसमुद्र की एक २ दिशा में दो २ चलत फिरते आतकीकपके ६ आसोद्विके ११ पुष्करार्ध के ३६ इस प्रकार सब मित्राकर ६६ सूर्य दृश्य दिशा और ६६ सूर्य उत्तर दिशा में अपने २ कम से फिरते हैं । और जब इन दोनों दिशा कसकसूर्य मित्राये ज्ये तो १३१ सूर्य और ऐसे ही अक्षय २ में चन्द्रमा की चारों दिशाओं की पंक्तियां मित्राये ज्ये तो १३२ चन्द्रमा मनुष्यवर्त में भ्रमण करते हैं । इसी प्रकार चन्द्रमा के काम वक्रादि की भी पंक्तियां बहुत ही जगती ॥

समी०— अब इसी मारु । इस मूणोके में १३२ सूर्य और १३१ चन्द्रमा जैसी के कर परतले होमे मका जोतपते होमे या वे जीते कैय है ? और पृथिवी में भी सीत के मारे जैसी काम जम्बू अल होमे ? ऐसी अक्षयवर्त में मूणोके अयोके के व जम्बूके बाधे कैसते हैं भ्रम नहीं । अब एक सूर्य इस मूणोके के सप्त भ्रम अनेक मूणोको को प्रकरत है तब इस मारु के मूणोके की क्या क्या कहनी ? और जो पृथिवी व जूमे और सूर्य पृथिवी के चारों धार जूमे तो कई एक बरों का दिव और एत होवे और मुमैकल्प हिमावत के दृश्य कई ज्ये, यह सूर्य के भ्रमने देखा है कि जेस बने के समयने राई का राय भी ज्ये, इस बातों को जैसी समय अब तक इसी मत में रह्य तब तक नहीं जान सकते किन्तु सदा अंधेर में रह्य ॥

सप्तचररा सहियासर्वाजो कुस निरवससं ।

सप्तपञ्चदशनाप पञ्चमुपसचिराय ॥

अथ य ४ । संप्र ०३ ॥

अथ अथिच अदिह या जैसी के अथ मनुष्यवर्त अथय से सब औरह पन्थोके अपने अथयदेय करके धिये ॥

आज्ञा मानवी चाहिये परन्तु जैन बीजा बधिये हैं इसलिये राजा से कर कर वह
 बात शिख हो होगी । कमेरा बेरना चाहे उसका करीब किसी हो । इसका हो तो
 भी सरसों की बेरी पर सुई कड़ी कर उसके ऊपर बाधना सुई का न बिना
 और सरसों का न बिना । अतीव भूख नहीं तो क्या है ? कर्म किसी को
 किसी प्रवृत्ति में मी न बोधना चाहिये चाहे कुछ भी हो जाय । महा कथा कह
 का होता है वह निम्नप्रति ५ अर्थात् किस प्रकार से समझा है ? यह देखी २
 प्रसम्भ कदाही इनकी शिखें तो शैबियों के बोने पोनों के सरस बहुत
 वह प्राय इच्छिये प्रतिक नहीं शिखें अर्थात् पोनीसी इव शैबियों की बरें बोने
 के रोष सब मिश्र बाध मय है देखिये—

दो ससि दो रवि पड़मे । जुगुणा कवया मिधाय ईसं मे । बारस
 ससि बारस रवि । तप्यमि इति विद ससि रविषो ।

अथवा म ३ । श्रीमद्गीता सूत्र ०० ॥

जो जन्मद्वीप बाध पोषण अर्थात् ३ (चार) बाध कोय का शिखा है
 उनमें यह परिचा होय कदाय है इसमें दो चन्द्र और दो सूर्य हैं और ऐसे ही
 जन्म समुद्र में उससे जुगुणे अर्थात् ३ चन्द्रमा और ३ सूर्य हैं । तथा प्रातकी
 जन्म में बारस चन्द्रमा और बारस सूर्य हैं । और इनके तिगुना करने से चर्यास
 होते हैं उनके साथ दो जन्मद्वीप के और बार जन्म समुद्र के मिश्रकर जन्मद्वीप
 चन्द्रमा और जन्मद्वीप सूर्य अर्थात् ३ समुद्र में हैं । इसी प्रकार काले २ द्वीप
 समुद्रों में पूर्णतः जन्मद्वीप के तिगुना करें तो एकसी जन्मद्वीप होते हैं, उनमें
 प्रातकी जन्म के बारस (जन्म समुद्र के ३ (चार) और जन्मद्वीप के दो दो २
 इसी रीति से निकल कर १०८ (एकसी जन्मद्वीप) चन्द्र और १०८ सूर्य
 जन्मद्वीप में हैं यह भी चाहे मनुष्यकेय की गणना है परन्तु जहाँ तक मनुष्य
 नहीं पड़े हैं वहाँ बहुत से सूर्य और बहुत से चन्द्र हैं और जो पिछले चर्या
 जन्मद्वीप में बहुत चन्द्र और सूर्य हैं वे फिर हैं । पूर्णतः एकसी जन्मद्वीप को
 तिगुना करने से ३३२ और उनमें पूर्णतः जन्मद्वीप के दो चन्द्रमा दो सूर्य चर २
 जन्म समुद्र के और बार २ प्रातकीजन्म के और जन्मद्वीप अर्थात् ३ के
 मिश्राने से ३३२ चन्द्र तथा ३३२ सूर्य जन्म समुद्र में हैं वे सब बरें
 श्रीजिनभद्रायाजीमममम मे वही “शैब्यजी” में तथा “शैब्यजन्मद्वीप एवम्”
 मध्ये और “चन्द्रपञ्चति” तथा “सूर्यपञ्चति” मनुष्य सिद्धान्तग्रन्थों में इसी प्रकार
 कहा है ।

समी०—अब सुनिये शृणुके के बाने बाधो ! इस एक भूगोल में एक
 प्रकार ३३२ (चारसी बाधे) और दूसरे प्रकार चर्यास चन्द्र और सूर्य शैबी
 बोय मानते हैं । आप सोचें का कहा मान्य है कि वेदमहापुराणी सूर्य सिद्धान्तदि
 ओतिष् प्रणी के जन्मद्वीप से शीक २ भूगोल जन्मद्वीप धरित हुए जो बरें
 जैन ० के महा चम्पेर में होते तो जन्मद्वीप चम्पेर में रहते जैसे कि जैनी लोग

आजकल है । इन ग्रन्थियों को यह ठाना हुई कि जम्बूद्वीप में एक सूर्य और एक चन्द्र से कम नहीं चलता क्योंकि इतनी बड़ी पृथिवी को तीस वर्षी में चन्द्र सूर्य कैसे घा सके, क्योंकि पृथिवी को जो जोय सूर्यादि से भी बड़ी मान्यते है, पही इनकी बड़ी मूल है ॥

हो ससि हो रवि पंती एगंतरियासु सठिसंभाषा ।

मदं पयादिणंता माणुसकिन्ते परिभ्रमति ॥

अथवा भा ७ । संवत् ७३ ॥

मनुष्यलोक में चन्द्रमा और सूर्य की पंक्ति की संख्या करते हैं हो चन्द्रमा और हो सूर्य की पंक्ति (घेयी) हैं वे एक १ आकाश पोजन अर्थात् चार आकाश कोठ के आंतरे से चलते हैं जैसे सूर्य की पंक्ति के आंतरे एक पंक्ति चन्द्र की है इसी प्रकार चन्द्रमा की पंक्ति के आंतरे सूर्य की पंक्ति है इसी रीति से चार पंक्ति हैं व एक १ चन्द्रपंक्ति में ६६ चन्द्रमा और एक २ सूर्यपंक्ति में ६६ सूर्य हैं वे चारों पंक्ति जम्बूद्वीप के मेकसकत की अरविष्ठा करती हुई मनुष्यलोक में परिभ्रमण करती हैं अर्थात् जिस समय जम्बूद्वीप के मेकस एक सूर्य दक्षिण दिशा में गिरता, उस समय दूसरा सूर्य उत्तर दिशा में गिरता है किंतु ही अथर्वसमुद्र की एक २ दिशा में हो २ चलते फिरते घातकीकयव के ६ आहोरात्रिके ११ पुष्करार्ध क ३६ इस प्रकार सब मिछाकर ६६ सूर्य दक्षिण दिशा और ६६ सूर्य उत्तर दिशा में अपने २ कम घ घिरत हैं । और जब इन दोनों दिशा के सब सूर्य मिछाने कावें तो १३२ सूर्य और ऐसे ही अथर्व २ में चन्द्रमा की दोनों दिशाओं की पंक्तियां मिछाई कावें तो १३२ चन्द्रमा मनुष्यलोक में आका चलते हैं । इसी प्रकार चन्द्रमा के साथ मन्त्रादि की भी पंक्तियां बहुत ही आनवी ॥

समी०— अब देखो भाई ! इस भूगोल में १३२ सूर्य और १३२ चन्द्रमा जैसीयों के परतपते होंगे भला जोतपते होंगे तो वे जीते कैसे हैं ? और एहि में भी रात के मारे जैनी अंग अकल आते होंगे ? ऐसी अदम्यम बल में भूगोल समोह के व जानने वाले कैसात है अन्य नहीं । अब एक सूर्य इस भूगोल के सारा आकाश घनेक भूगोलों को प्रसरता है तब इस छोटे से भूगोल की क्या क्या करनी ? और जो पृथिवी व जूमे और सूर्य पृथिवी के चारों ओर जूमे तो कई एक बरों पर दिन और रात होवे और सुमेरु किम हिमाचल क दूसरा कोई नहीं, यह सूर्य के आगने ऐसा है कि जिस घने के आगने राई का शाना भी नहीं इन वातों को जैनी छोला जब तक कधी मत में रहैप तब तक नहीं जान सकते किन्तु सारा आन्धेर में रहेप ॥

समस्तचरस सधियासमर्थलोगं कुस निरपससं ।

सप्तपञ्चदशमाप पंचयसुपदसधिरद्वय ॥

अथवा भा ७ । संवत् १३२ ॥

अथवा चरित सधित जो केवली वे केवळ समुत्पात अथवा घ घर्ष और आकाशोक्त अपने आकाशदेव अक धिरेये ॥

समी०—जैनी लोग ११ (बीह) राज्य मानते हैं उसमें से चौरहवें की शिक्षा पर सर्वोपेक्षित विमान की जगह से ऊपर बोने हुए पर सिद्धिच्छा तथा दिव्य ध्यानात्मक की शिक्षा कहते हैं। उसमें केवल अर्थात् शिक्षा केवलज्ञान सर्वज्ञता और पूर्ण परिक्रिया प्राप्त हुई है ये उस लोक में जाते हैं और अपने ध्यानात्मक से सर्वज्ञ रहते हैं। जिसका प्रवेश होता है वह विमु नहीं, जो विमु नहीं वह सर्वज्ञ केवलज्ञानी नहीं हो सकता क्योंकि जिसका ध्यानात्मक एकदेशी है, नहीं जाता जाता है और वह, मुक्त, ज्ञानी अज्ञानी होता है सर्वज्ञापी सर्वज्ञ ऐसा नहीं हो सकता जो जैनों के तीर्थंकर जीवनमय अल्प अल्पज्ञ होकर स्थित थे वे सर्वज्ञात्मक सर्वज्ञ नहीं हो सकते किन्तु जो परमात्मा अवाक्यन्त सर्वज्ञात्मक, सर्वज्ञ, पवित्र अकल्मष है उसको जैनी लोग मानते हैं कि जिसमें सर्वज्ञादि गुण अवाक्यन्त होते हैं ॥

गम्भिररति पक्षिपादः । सिद्धं उद्धोसत आन्वेष्टः ।

मुच्यन्ते दुष्टाणि अन्तमुहुः । अंगुष्ठं अर्शं च भागवत् ॥ २४१ ॥

यहाँ मनुष्य दो प्रकार के हैं। एक गर्मज सूखे को गर्म के विना बरफ हुए। उसमें गर्मज मनुष्य का उच्छिन्न तीन परपोष्य का जलु अन्न और तीन कोश का शरीर ॥

समी०—महा तीन परपोष्य का जलु और तीन कोश के शरीरवाले मनुष्य इस जगत् में बहुत बोने लगा सर्व और फिर तीन परपोष्य की जलु ऐसा कि पूर्ण शिक्षा माने हैं कतने सम्यक् तक सीधे तो जैसे ही उसके सन्तान भी तीन कोश के शरीर वाले होने चाहिये जैसे मुन्दा से शहर में हो और कलकत्ता जैसे शहर में तीन का चार मनुष्य विद्यमान कर सकते हैं। जो ऐसा है तो जैनों ने एक जगत् में जहाँ मनुष्य शिक्षे हैं तो उसके रहने का जगत् भी जहाँ कोशों का चाहिये तो सब जगत् में ऐसा एक जगत् भी न बल सके ॥

पशुया जलरकयोपरा । विरक्तमा सिद्धिच्छिन्नपक्षिहविमला ।

तनुपरि गजोन्मूलं जोगन्तो तच्छु सिद्धिर्है ॥ २४२ ॥

जो सर्वोपेक्षित विमान की जगह से ऊपर १२ बोधन सिद्धिच्छा है वह अक्षरा और ध्वेपन और पोषण ४२ (पैतासीस) काच बोधन प्रमाण है वह सब ध्वेपन अर्थात् मुक्तमय एष्टिक के समान विरक्त सिद्धिच्छा की सिद्धिर्है है इसको कोई 'ईश्वर' 'अप्पता' ऐसा नाम कहते हैं वह सर्वोपेक्षित शिक्षा विमान से १२ बोधन अक्षर भी है यह परमार्थ केवली मुक्त जगत् है यह सिद्धिच्छा सर्वार्थ मय जगत् में पाद बोधन लूक है वहाँ से १ दिशा और १ उपदिशा में अक्षरी २ मन्त्री के पाद के अक्षर पतली ध्वेपनध्वन और ध्वेपन वरके सिद्धिच्छा की लक्षण है उस शिक्षा से ऊपर १ (एक) बोधन के अक्षर कोचक है वहाँ सिद्धों की स्थिति है ॥

समी०—जब विचारना चाहिये कि जैनों के मुक्ति का कथन सर्वोपेक्षित विमान की जगह से ऊपर ४२ (पैतासीस) काच बोधन की शिक्षा अर्थात् यह

देसी घण्टी और निर्मल हो तथापि उसमें रहनेवाले मुख भी एक मन्त्र के बन्ध हैं क्योंकि उस शिखा से बाहर निकलने में मुख के मुख से दूर जाते होंगे और जो भीतर रहते होंगे तो उनको शत्रु भी ब समझा होगा यह केवल कल्पनामात्र घटितियों को रीताने के लिये प्रयोज्य है ॥

वित्तिश्चरि दिस सरीरं । पार सन्नोयर्थति कोसव उकोसं
ओयससइस पण्डित्य । उहे वृद्धन्ति विसेसन्तु ॥

प्रथमः मा ४ । संप्रसू. २६० ॥

सांशिकोत्पन्न स एनेमिग्रिफ का शरीर १ सङ्घन पोषण के शरीरबद्धा उत्पन्न
जायगा और हो इन्फिक्शनस जो शङ्कादि का शरीर २२ पोषण का जायगा और
क्युरिन्ग्रिफ अमरादि का शरीर ३ कोश का और एनेमिग्रिफ एक सङ्घन पोषण
धर्मात् ४ सङ्घन कोश के शरीर बन्ने जायगा ॥

समी०—यार २ सहाय कोय के प्रमाण वाले शरीरधारी हों तो मृगाक्ष में तो बहुत थोड़े मनुष्य धारोत् सिक्कों मनुष्यों व मृगोक्ष उस भर जाय किसी को पहचाने की कम्प ही न रहे फिर वे जैवियों से रहने का ठिकाना और मार्ग पाँव और बा इन्होंने खिरा है तो अपने घर में रख लें परन्तु यार सहाय कोय के शरीर वाले को निश्चयार्थ कोई एक क सिक् ३२ (पचीस) सहाय कोय का घर तो चाहिये एक एक घर के बसाने में जैवियों का साथ घब चुक जाय तो भी घर न बस सके । इसलिये बड़े बड़ा सहाय कोय की कुछ बसाने के खिप छोड़े कहां से बालेंगे ? और जो उसमें जम्मा जगाने हो वह भीतर प्रकाश भी नहीं कर सकया इसलिये ऐसी कलें मिथ्या हुआ करती हैं ॥

ते पूजा पक्षे विदुषं विद्याय यद्वृत्ति संप्रदि ।

वह्निष्म असंख । सुप्रमे यन्म पश्यन् ।

प्रकृत्य म् ४ । सपुत्रेण । समाप्तकृत्य स् ४ ॥

पूँछ एक अंगुल कोम के खरहो स ५ कोय का नीस और बदन म्दिय
कुछा हो, अंगुल म्माक काम का खरह सब मिश्र क बीज काम सचामन सहज
पुच्छी पक्व होते हैं और अधिक सखधिक (१३ ७ १२ १ ४ १४ १२ १२ २)
४२ १६ २६ ० २० २३ ६) सिंघोख मोवाधड़ी : "सग
काथ बसत ह्याह पुच्छी थार भावाधड़ी श्रीरीष साध पेसत हजार पुसी
पक्षिप्त इतने भावाधड़ी तथा वयोधीष काथ उधीष हजार भीली सम इतने
भावाधड़ी तथा सचामने छात्र बनन हजार और बःसी भावाधड़ी इतनी बाटका
फन बोडन परपोरम में सर्वे स्पृष्ट रोग खरह की धन्य होने यह भी संख्याकर
हता है पूँछ एक काम खरह के असंख्याता खरह मन स कर तब असंख्यात
पुष्प रोमाए होते ॥

७ ह म कमी में आक विम्वर दिया हुआ है और हाथिने पर उसके
एक में मोहामोहो किया हुआ है और ३३ क आय स्वर विराम भी नहीं
है अतः यही आक पाठ ही उचित मनीत हुआ है ॥

समी०—अब देखिये । हमकी गिनती की रीति एक अंगुल प्रमाणांश रोम के कितने बरत किये वह कमी गिनती की गिनती में जा सकते हैं ? और अपने अपारम्प मन से असंख्य बरत कल्पते हैं इससे वह भी सिद्ध होता है कि यूरोप बरत छाप से किये होते । अब हम से न हो सके तब मन से किये, भका वह पत कमी सम्भव हो सकती है कि एक अंगुल रोम के असंख्य बरत हो सकें ॥

अंगुलीपद्मायं शुक्रजोयात्कारक बहुधिरर्कमी ।

अवयार्हपासेसा । कथया भावुगुलकुगुणाय ॥

अध्याय भा ४ । अष्टमोऽध्यायः सू १२ ॥

प्रथम अंगुलीय का साक्ष बोझ का प्रमाण और पोषा है और कभी कभी सप्त सप्त द्वीप अंगुलीय के प्रमाण से दुगुणे १ है । इस एक पृथिवी में अंगुलीय और अतः सप्त द्वीप है जैसे कि पूर्व दिख गये हैं ॥

समी०—अब अंगुलीय से द्वात्रिंश द्वीप हो साक्ष बोझ, तीसरा चर साक्ष बोझ चौथा अतः साक्ष बोझ पाँचवां अतः साक्ष बोझ षष्ठ अतः साक्ष बोझ और सातवां अतः साक्ष बोझ और अतः प्रमाण यह अतः अधिक सप्त के प्रमाण से इस पन्द्रह साक्ष परिधि काये भूगोल में कौनका समा सकते हैं ? इससे यह अतः केवल सिद्ध है ॥

कुम्भस्य शुक्रसी सहासा । अष्टमेवन्तमरई उपर विजय ।

दोहो महागर्ह । अनुदस सहासा उपत्तेय ॥

अध्याय भा ४ । अष्टमोऽध्यायः सू १३ ॥

कुम्भस्य में मय (चौथी) सहासा वरी है ॥

समी०—अब कुम्भस्य बहुत बोझ देता है उसको व देखकर एक सिद्ध अतः दिखने में हमको काय भी न आई ॥

यामुत्तरा उताड । शग सिद्धास्यार कापुर्व ।

अतः सु वितासु नियासय विधि भवसिद्ध मखसं होई ॥

अध्याय भा ४ । अष्टमोऽध्यायः सू १४ ॥

उत्तर दिशा के विरोध इतिहास और उत्तर दिशा में एक १ सिद्धासन काय्य कहिये, उन सिद्धासों के नाम इतिहास दिशा में अतिप्रचुर कम्पना, उत्तर दिशा में अतिरिक्त कम्पना सिद्धा है, उन सिद्धासों पर तीर्थंकर बैठते हैं ॥

समी०—देखिये ! हम 'हरी के जम्भोत्तर' काय्य की दिशा को देखी ही सुक्ति की सिद्धा उनको बहुत है । कभी तक दिखें किन्तु जब पाएँ सुख कम्पना एति को भोजन ॥ 'अपुत्री है, इसका कुम्भ है । है । हमकी भी व

में * बुद्धों पक्षों में से एक पक्ष की परीक्षा करने से कल्पे या पक्षे हैं जब
पक्ष विधित हो जाते हैं ऐसे ही इस बोधे से चेक या सम्यक बोध बहुत ही बल
सम्पन्न होये, बुद्धिमानों के सामने बहुत शिक्षण आवश्यक नहीं क्योंकि विद्यार्थनक
सम्पूर्ण अध्ययन के बुद्धिमान् लोग ज्ञान ही लेते हैं । इसके अग्रे ईश्वरों के मत
के दिव्य में विश्वास आनन्द ॥

इति श्रीमद्भगवत्सुखसूत्रादिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते
महास्विकृतमहासुखसूत्रादिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते
प्राक्शसमुद्रासः सम्पूर्णः ॥ १२ ॥

समी०—अब देखिये ! इनकी गिनती की रीति एक अंगुल प्रमाण कोम के कितने कण्ड किं यह कमी किसी की गिनती में आ सकते हैं ? और उसके पर्याप्त मन से असंख्य कण्ड कहते हैं इससे यह भी सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त कण्ड हाथ से किये होंगे । जब हाथ से न हो सके तब मन से किये मध्य यह कण्ड कमी सम्भव हो सकती है कि एक अंगुल राम के असंख्य कण्ड हो सके ॥

अंशुदीपप्रमाणं शुद्धशोभाप्रसरकं बहुविरलमो ।

कवयार्द्रपासेसा । कलपा मातुगुणवुगुणात् ॥

प्रकरण भा ४ । अङ्गुल सप्त सू १२ ॥

प्रथम अंशुदीप का जाल बोझ का प्रमाण और सोडा है और बाकी कण्डादि सात समुद्र सप्त द्वीप अंशुदीप के प्रमाण से दुगुणे १ है । इस एक दुगुणी में अंशुदीपादि और सात समुद्र हैं अर्थात् कि पूर्ण सिद्ध आवे हैं ॥

समी०—जब अंशुदीप से दृष्टा द्वीप हो जाल बोझ, तीसरा चार जाल बोझ, चौथा आठ जाल बोझ, पाँचवां सोडह जाल बोझ, छह बत्तीस जाल बोझ और सातवां बीसठ जाल बोझ और इतने प्रमाण का उसके अधिक समुद्र के प्रमाण से इस पन्द्रह स्रष्टा परिधि वाले भूगोल में क्योंकि सप्त सकते हैं ? इससे यह बात केवल सिद्धा है ॥

कुन्दरं शुद्धसी सहसा । कुम्भेकान्तनरई उपर विजय ।

होवो महानरई । अनुक्त सहसा उपरोध ॥

प्रकरण भा ४ । अङ्गुल सप्त सू १३ ॥

कुम्भेक में ८४ (चौदावीं) जाल नदी है ॥

समी०—अब कुम्भेक बहुत बड़ा देश है उसको न देखकर एक सिद्धा यह सिद्धने में इनको कल भी न आई ॥

यामुचरा उवाच । इगं सिद्धासंयाड अहपुर्ण ।

कड सु वितासु मिवास्तस, विसि मयकिता, मज्जस्य होई ॥

प्रकरण भा ४ । अङ्गुल सप्त सू १४ ॥

इस सिद्धा के कितने बकिच और उतर दिशा में एक १ सिद्धासं व्याख्या आरिये, जब सिद्धाची के नाम बकिच दिशा में अतिपाण्डु कम्बका उतर दिशा में अतिरिक्त कम्बका सिद्धा है, जब सिद्धासं पर तीर्थहर केते हैं ॥

समी०—देखिये ! इनके तीर्थहरी के कम्बोत्तरादि करने की सिद्धा को, देखी ही मुक्ति की सिद्धा सिद्धा है देखी उनकी बहुतसी बातें प्रोचमात्र है । कदा तक सिद्धे किन्तु जब ध्यान के पीछा और सुख्य बीबी पर नाममात्र रूप करना एभि को मोक्ष न करना, वे तीन बातें अशुद्ध हैं, बाकी अितना इच्छा कम्ब है सब असम्भव है । इसी ही प्रेम से मुक्तिमात्र कोम बहुत सदा जाय पड़े । जोदा सदा यह ध्यान-मात्र विषय है जो इनकी सम्प्रमाण बातें सब सिद्धे तो इतने पुष्ट होयवें कि एक पुरुष यातु भर में वह भी न सके इसलिये अर्थात् एक हबो

और दूसरा सूख हो तो भी कुछ बोवा सा दिवाव बहावा है। यदि कभी
प्रतिवादी समाधान दिग्गज के बिचे बाह प्रतिवाद करें तो प्रकरण निराप हो जाय।
अब मैं इस १३ वें अनुवाक में ईसाईमत निरपक बोवा सा दिवाव सब के
सम्मुख अप्रिय करता हूँ, निवारिये कि कैसा है ॥

अकमतिलेखेन पिबत्तसवरेषु ॥

अनुभूमिका (३)

जो यह वादवचन का मत है वह केवल ईसाईयों का है जो यहाँ किन्तु इससे बहुरी आदि भी प्रभावित होते हैं। जो यहाँ १३ (तेहरें) समुदाय में इसाई मत के विषय में लिखा है इसका यही अर्थ है कि वादवचन वादवचन के मत के ईसाई मुख्य हो रहे हैं और बहुरी आदि गौण हैं, मुख्य के अर्थ से गौण का अर्थ हो गया है इससे बहुरीयों का भी अर्थ समझ लीजिये। इसका जो विषय यहाँ लिखा है जो केवल वादवचन में के कि विषयों ईसाई और बहुरी आदि सब मानते हैं और इसी प्रकार जो अपने अपने का कुछ अर्थ समझते हैं।

इस प्रकार के व्यापार बहुरूप हो गए हैं जो कि इनके मत में कोई २ पादरी हैं उन्होंने लिखे हैं। उसमें से कम्पार्नी का संस्कृत व्यापार देख कर मुझसे वादबल में बहुत बरी वजह हुई है। उसमें से कुछ बोली जो इस १३ (तेरहवें) समुदाय में सब के विपरीत लिखी है, वह केवल केवल सब की बुद्धि और अस्मत् के हाथ होने से लिखे है न कि किसी को दुःख देने का हाथि करने अथवा मित्र्य होर अथवा के अर्थ। इसका अविश्वस उक्त बोली में सब कोई समझ लेने कि यह प्रकार कैसा है और इनका मत भी कैसा है ॥

इस लेख से गहरी प्रतीति है कि यह मनुष्यमात्र का ऐश्वर्य भुगत है जिसका प्रतिफल प्राप्त होगा और सभी प्रतिपत्ति होके विचार कर ईश्वर मनुष्य का प्रयत्नोद्धार सब कोई कर सकते हैं। इससे एक यह प्रतीति सिद्ध होगी कि मनुष्यों को ईश्वरविपरीत बातें कहकर मनुष्योत्थान करना मनुष्य और ईश्वरविपरीत ईश्वर ईश्वरविपरीत विचार विधि होकर सब और ईश्वरविपरीत का स्वामी प्रत्यक्ष और ईश्वरविपरीत का ईश्वरविपरीत का स्वामी प्रतीति से हो सकेगा ।

एक मनुष्यों को उचित है कि सब के मतानुसार पुस्तकों का ऐसा समझना शुरू सम्मति वा असम्मति से ही किन्हीं, नहीं तो कुछ करें क्योंकि जैसे पहले से परिचित होता है वैसी बुझने से बहुत होता है। यदि ओसा दूसरे को नहीं समझा सके तथापि आप स्वयं ही समझ ही जाता है जो कोई पक्षपातपूर्ण वाच्यक होके देखते हैं, उनको न अपने और न अपने गुण दोष विहित हो सकते हैं।

[illegible]

कम में व मूख न बूक कभी हो सकती है और बाह्यज में ईश्वर की सृष्टि बेहोश किसी इसलिये वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकती है । प्रथम ईश्वर की भाषा क्या परापूर्व है ?

ई०—वेदम ॥

समी०—कह स्याम्बर है वा विराम्बर तथा व्यापक है वा एकदेशी ?

ई०—विराम्बर वेदम और व्यापक है परन्तु किसी एक सवाह्र पत्रेय, चौथा प्राचमाल्य आदि स्थानों में विशेष करके रहता है ॥

समी०—जो विराम्बर है तो उसको किसने देखा ? और व्यापक का जल पर डोहना कभी नहीं हो सकता मन्त्रा जब ईश्वर का भाषा जल पर डोहना था तब ईश्वर कहां था ? इससे बड़ी सिद्ध होता है कि ईश्वर का शरीर कहीं अन्तरिक्ष किम्ब होम्ब अण्डम धरने कुछ आर्या के एक दुम्बे को जल पर डोहना होम्ब जो देखा है तो विष्णु और सर्वेश्वर कभी नहीं हो सकता जो विष्णु नहीं तो अण्ड की रचना, आरम्भ प्राचम और चौथी के कर्मों की अन्तर्याम प्रकल्प कभी नहीं कर सकता क्योंकि जिस परापूर्व का एकत्र एकदेशी उसके गुण कर्म स्वाम्य भी एकदेशी होते हैं, जो देखा है तो वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अण्डमाल्य कर्म-स्वाम्यमाल्य सविद्यामाल्यमाल्य किम्ब हृदय पुत्र, मुक्त्यमाल्य, अण्डमाल्य, अण्डमाल्य हृदयमाल्य केहीं में कहा है, उन्नी को माल्य उन्नी दुम्बमाल्य अण्डमाल्य होम्ब, अण्डमाल्य नहीं ॥ १ ॥

२—और ईश्वर ने कहा कि अन्तरिक्षा होवे और अन्तरिक्षा हो गया ॥ और ईश्वर ने अन्तरिक्षा को देखा कि अण्डमाल्य है ॥ पर्व १ । अथ १—२ ॥

समी०—क्या ईश्वर की बात जब कम अन्तरिक्षा ने सुन ली ? जो सुनी हो तो इस अण्डम भी सुनी और और अण्डम का प्रकल्प हमारी दुम्बारी बात क्यों नहीं सुनता ? अण्डम जब होया है, वह कभी किसी की बात नहीं सुन सकता क्या जब ईश्वर ने अन्तरिक्षा को देखा तभी आया कि अन्तरिक्षा अण्डमाल्य है ? पदिके नहीं अण्डमाल्य या जो अण्डमाल्य होता तो देखा कर अण्डमाल्य क्यों अण्डम ? जो नहीं अण्डमाल्य या तो वह ईश्वर ही नहीं इसलिये दुम्बारी बाह्यज ईश्वरकृत और उन्नीमें कहा हुआ ईश्वर सर्वेश्वर नहीं है ॥ २ ॥

३—और ईश्वर ने कहा कि पाण्डिों के माल्य में आचमाल्य होवे और पाण्डिों को पाण्डिों से विद्याम करे तब ईश्वर ने आचमाल्य को आचमाल्य और आचमाल्य के बीच के पाण्डिों को आचमाल्य के कम के पाण्डिों से विद्याम किम्ब और देखा हो माल्य और ईश्वर ने आचमाल्य को सर्वेश्वर कहा और आचमाल्य और विद्याम हृदय दिव हुआ ॥ पर्व १ । अथ १—३ ॥

समी०—क्या आचमाल्य और अण्डम ने भी ईश्वर की बात सुन ली ? और जो अण्डम के बीच में आचमाल्य न होता तो अण्डम रहता ही क्यों ? प्रथम आचमाल्य में आचमाल्य को सवा पाण्डम आचमाल्य का अण्डमाल्य अण्डमाल्य हुआ । जो आचमाल्य सर्वेश्वर कहा तो वह सर्वव्यापक है इसलिये सर्वेश्वर सर्वेश्वर हुआ फिर अण्डम को सर्वेश्वर है वह अण्डम अण्डम

अथ त्रयोदशसमुह्नासारम्भः

अथ कृष्णीनमस्तविपर्य समीक्षिष्यामः



अब हमने आगे ईश्वरों के मत विषय में लिखते हैं जिससे सब को विदित हो जाय कि इन्धन मत निर्दोश और इन्धनी बाहुबल पुस्तक ईश्वरकृत है या नहीं ? प्रथम बाहुबल के लीसेय का विषय लिखा जाय है—

१—आरम्भ में ईश्वर ने आत्मरा और पृथिवी को धृष्ट और पृथिवी बेटीछ और सुखी थी ॥ और यहिराज पर अम्बिवाता या और ईश्वर का अम्मा जल के ऊपर बसेला या ॥ पर्व १ । आत्म १—२ ॥

समीक्षक—आरम्भ किसको कहते हो ?

ईसाई—सृष्टि के प्रथमोत्पत्ति को ॥

समी०—क्या नहीं सृष्टि प्रथम हुई इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी ?

ई०—हम नहीं जानते हुई थी या नहीं ईश्वर जाने ॥

समी०—क्या नहीं जानते तो इस पुस्तक पर लिखास क्यों किया कि जिससे सम्येह का निवारण नहीं हो सकय ? और इसी के भारोले लोगों को उपदेश कर इस सम्येह से मरे हुए मत में क्यों चंरते हो ? और जिसस्येह सम्येहप्रतिवारण केरमत्त को स्वीकार क्यों नहीं करते ? क्या तुम ईश्वर की सृष्टि का हाथ नहीं जानते तो ईश्वर को कैसे जानते होगे ? आत्मरा किसको जानते हो ?

ई०—पोख और ऊपर को ॥

समी०—पोख की उन्नति किस प्रकार हुई ? क्योंकि वह विमु पदार्थ और अतिमुष्ण है और ऊपर नीचे एक सा है । क्या आत्मरा नहीं सुना या सब पोख और आत्मरा या या नहीं ? जो नहीं या तो ईश्वर आत्म का ऊपर ॥ और नीचे क्यों रहते थे ? किन्तु आत्मरा के कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सकता इसलिये हमारी बाहुबल का कथन कुछ नहीं । ईश्वर बेटीछ उन्नत ज्ञान कर्म बेटीछ होय है या सब बीजवाला ?

ई०—बीजवाला होता है ॥

समी०—तो कहाँ ईश्वर की कथाई पृथिवी बेटीछ थी ऐसा क्यों किया ?

ई०—बेटीछ का अर्थ यह है कि ऊंची नीची की बराबर नहीं थी ॥

समी०—फिर बराबर किसने की ? और क्या सब भी ऊंची नीची नहीं है ? इसलिये ईश्वर का कथन बेटीछ नहीं हो सकय क्योंकि वह सरल है, इससे

०—अर्थात् प्रकृति ॥

समी०—अब ईश्वर ने आदम में बायीं कर्मात्मा उसमें आदम रक्षा तब ईश्वर नहीं जानता था कि उसको पुनः वहाँ से निकालना पड़ेगा ? और अब ईश्वर ने आदम को पृथ्वी से काला तो ईश्वर का स्वरूप नहीं हुआ और जो है तो ईश्वर भी पृथ्वी से बना होना ? अब उससे कबुकी में ईश्वर ने आदम को पृथ्वी से बाहर ईश्वर का स्वरूप का क्या मिला ? जो मिला था तो ईश्वर आदम के स्वरूप में नहीं बना जो एक है तो आदम और ईश्वर एक ही हुए और जो एक से है तो आदम का अस्तित्व अस्त, मरणादुक्ति अब बुधा, तुष्य आदि होना ईश्वर में आने फिर वह ईश्वर नहीं बन हो सकता है ? इसलिये वह तीरेत की बात हीक नहीं विवित होती और वह पुनःक भी ईश्वर-कृत नहीं है ॥ २ ॥

१—और परमेश्वर ईश्वर ने आदम को बायीं ओर में बाया और वह अस्मिता तब उसने उसकी पक्षियों में से एक पक्षी निकाली और उसकी सन्धि ० मर्तस मर दिया और परमेश्वर ईश्वर ने आदम की उर पक्षी से एक गरी बनाई और उसे आदम के पास लाया ॥ पर्व १ । आ ११—१२ ॥

समी०—जो ईश्वर ने आदम को पृथ्वी से काला तो उसकी जी, जो पृथ्वी से नहीं नहीं बनाया ? और जो गरी को हड्डी से बनाया तो आदम को हड्डी से नहीं नहीं बनाया ? और जैसे वर से निकलने से गरी नाम हुआ तो बारी ११ वर आदम भी होना चाहिये और उसमें परस्पर प्रेम भी थी । जैसे जी के साथ पुनः प्रेम करे जैसे पुनः के साथ जी भी प्रेम करे । देखो विद्वान् लोगो ! ईश्वर की कैसी पारमेश्वरिणी अर्थात् "विद्यासती" विद्यासती है । जो आदम की एक पक्षी निकल कर गरी बनाई तो अब मनुष्यों की एक पक्षी कम नहीं नहीं होती ? और जी के शरीर में एक पक्षी होनी चाहिये क्योंकि वह एक पक्षी से बनी हुई है । क्या जिस स्मृती से सब कर्म बनाया वह स्मृती से जी का शरीर नहीं बन सकता था ? इसलिये वह अत्यन्त कम अतिमन्य अतिमन्य से निकल है ॥ १ ॥

०—अब सर्व भूमि के हर एक पक्ष से विद्या परमेश्वर ने बनाया था और उसने जी से कहा क्या मिलान ईश्वर ने कहा है कि इस गरी के हर एक पक्ष से न बनाया ॥ और जी ने सर्व से कहा कि हम तो इस गरी के पक्षों का प्रेम करते हैं । परन्तु उर पक्ष का कल जो बायीं के बीच में है ईश्वर ने कहा कि हम उसे न खाया और न बुना, बहो-किमरवाधो । तब सर्व ने जी से कहा कि हम मिलान न मनेगे । क्योंकि ईश्वर जानता है कि विद्या विन तुम उर काधो तो गरी की पक्षों का प्रेम नहीं करोगे । और अब जी ने देखा, वह पक्ष काये में सुस्थान और पक्ष में सुन्दर और बुद्धि देने में योग्य है तो उसके कल में से विद्या और आप्य और अपने पक्षों की विद्या और उसने आप्य तब उर दोहों की पक्षों का प्रेम नहीं और वे जान गये कि हम गरी हैं जो उन्होंने अर्थात् के पक्षों को विद्या के विद्या और अपने पक्षों को विद्या तब परमेश्वर ईश्वर ने सर्व से कहा कि जो तु ने यह किया है इस अन्या

है । जब सूर्य उत्पन्न हो नहीं हुआ था तो पुनः दिन और रात कहाँ से हो गई, पेसी असम्भव नहीं था तो की जानती में मरी है ॥ १ ॥

४—जब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समाप्त करवें ॥ तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया इससे उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया उसने उन्हें घर और गली बताया ॥ और ईश्वर ने उन्हें आशीर्वाद दिया ॥ पर १ । आ २६—२८ ॥

समी०—यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र आत्मस्वरूप आनन्दमय आदि सत्त्वयुक्त है उसके सत्त्व आदम नहीं नहीं हुआ ? जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूप में नहीं क्या और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप ही को उत्पन्न किया किन्तु पुनः का प्रमाण क्यों नहीं ? और आदम को उत्पन्न कहाँ से किया ?

ई०—मही से बनाया ॥

समी०—मही कहाँ से बनाई ?

ई०—अपनी कुदरत अर्थात् सामर्थ्य से ॥

समी०—ईश्वर का सामर्थ्य कहाँ है या नहीं ?

ई०—कहाँ है ॥

समी०—जब कहाँ है, जगत् का कर्तव्य अर्थात् पुनः फिर अस्मत् से याव नहीं मानते हो ?

ई०—छवि के पूर्ण ईश्वर के लिए कोई कष्ट नहीं था ॥

समी०—जो नहीं था तो वह जगत् कहाँ से बना ? और ईश्वर का सामर्थ्य प्रत्यक्ष है या गुप्त ? जो प्रत्यक्ष है तो ईश्वर से सिद्ध दूसरा पदार्थ या और जो गुप्त है तो गुप्त से प्रत्यक्ष क्यों नहीं जब सम्भव जैसे रूप से प्रति और उस से बन नहीं जब सम्भव और जो ईश्वर से जगत् बना होता तो ईश्वर के सत्त्व गुप्त कर्म, स्वभाववाला होता । उसके गुप्त कर्म स्वभाव के सत्त्व न होने से नहीं निश्चय है कि ईश्वर से नहीं क्या किन्तु जगत् के कर्तव्य अर्थात् परमात्मा आदि नाम कहे जगत् से बना है । जैसे कि जगत् की उत्पत्ति कैलाश तारों में बिछी है कैली ही मानसो, बिछी ईश्वर जगत् को बनाता है । जो आदम का भीतर का स्वरूप और और बाहर का मनुष्य के सत्त्व है तो कैला ईश्वर का स्वरूप नहीं नहीं ? क्योंकि जब आदम ईश्वर के सत्त्व बना तो ईश्वर आदम के सत्त्व अस्वरूप होना चाहिये ॥ ४ ॥

२—तब परमेश्वर ईश्वर ने भूमि की धूल से आदम को बनाया और उसके मनुष्यों में जीवन का वाद्य दूध और आदम जीवन प्राप्त हुआ ॥ और परमेश्वर ईश्वर ने आदम में पूर्व की और एक बाड़ी लगाई और उस आदम को सिद्ध करने बताया था उसमें रखा ॥ और उस बाड़ी के मध्य में जीवन का पेड़ और मधे दूरे के ज्ञान का पेड़ भूमि से उगना ॥ पर १ । आ ०—६ ॥

सूत्री०—जब ईश्वर ने आदम में बाड़ी बनाकर उसमें आदम स्वरूप तथा ईश्वर बाड़ी आत्मता यह कि उसकी पुनः वहाँ से निष्कासना प्रयोग ? और जब ईश्वर ने आदम को पृथ्वी से बनाया तो ईश्वर का स्वरूप बाड़ी बुद्धि और जो है तो ईश्वर भी पृथ्वी से बना होगा ? जब उसके मनुष्यों में ईश्वर ने भास प्रकाश तो वह भास ईश्वर का स्वरूप वा यह भिन्न ? जो भिन्न था तो ईश्वर आदम के स्वरूप में नहीं बना जो एक है तो आदम और ईश्वर एक ही हुए और जो एक से है तो आदम के साथ जन्म मरण बुद्धि, जन्म बुद्धि तथा अग्नि दोष ईश्वर में आये फिर वह ईश्वर क्योंकर हो सकता है ? इसलिये वह तीरथ की बात हीन नहीं विदित होती और यह पुष्टक भी ईश्वर-कृत नहीं है ॥ ५ ॥

१—और परमेश्वर ईश्वर ने आदम को बाड़ी बीड़ में बाँधा और वह सोमया तथा उसके उसकी पक्षियों में से एक पक्षी निष्कासी और उसकी समिति ७ मांस पर दिया और परमेश्वर ईश्वर ने आदम की उस पक्षी से एक बारी कहाँ और उसे आदम के पक्ष बाँधा ॥ पर्व २ । अथ २१—२२ ॥

सूत्री०—जो ईश्वर ने आदम को पृथ्वी से बनाया तो उसकी बाँ, जो पृथ्वी से क्यों नहीं बनाया ? और जो बारी को हड्डी से बनाया तो आदम को हड्डी से क्यों नहीं बनाया ? और जैसे घर से निष्कासे से गरी नाम हुआ तो गरी स घर आदम भी होगा यदिसे और उसमें परस्पर प्रेम भी रहे । ईश्वर की के साथ पुनः प्रेम करे जैसे पुनः के साथ जी भी प्रेम करे । ऐसी विद्वत् लोगो ! ईश्वर की कैसी पक्षीनियम अर्थात् "निष्कासनी" निष्कासी है ! जो आदम की एक पक्षी निष्कास कर बारी कहाँ तो सब मनुष्यों को एक पक्षी बन क्यों नहीं होती ? और जो के शरीर में एक पक्षी होती यदिसे क्योंकि वह एक पक्षी से बना हुई है । क्या जिस समाप्ती से सब जन्म बनाया उस समाप्ती से बाँ का शरीर नहीं बन सकता था ? इसलिये वह पक्षिक का चिकित्सक चिकित्स से निष्का है ॥ ६ ॥

७—जब अर्च्य भूमि के हर एक पक्ष से जिस परमेश्वर से बनाया वा पूर्व या और उसने बाँ से कहा क्या निश्चय ईश्वर ने कहा है कि इस बाँ के हर एक पक्ष से बनाया ॥ और बाँ ने अर्च्य से कहा कि हम जो इस बाँ के पक्षों का फल करते हैं । परन्तु उस पक्ष का फल जो बाँ के बीच में है ईश्वर ने कहा कि तुम उसे काया और मनुष्य बनाओ कि नर नाथो । तब अर्च्य ने बाँ से कहा कि तुम निश्चय व मरोगे । क्योंकि ईश्वर ज्ञाता है कि जिस दिन तुम उस बाँको तुम्हारी बाँसे तुम्हें अर्च्य और तुम सबे दुरे की परिचय में ईश्वर के समान हो जाओगे । और जब बाँ ने देखा वह पक्ष, बाँसे में सुखाय और यदि में सुन्दर और बुद्धि देने में योग्य है तो उसके पक्ष में से सिखा और बाँसे और अपने पक्ष को भी दिख और उसने बाँसे तब सब दोषों की बाँसे तुम्हें बाँ और वे जान गये कि हम बाँसे हैं, जो उन्होंने अन्धकार के पर्तों को मिटा के सिखा और अपने दिने छोड़ना बनाया तब परमेश्वर ईश्वर ने अर्च्य से कहा कि जो तु ने यह किया है इस कारण

तु अपने दोर और हर एक वच के पट्ट से अधिक आपित होग्य । तु अपने पै के बल जलोग्य और अपने भीकन भर बूझ जलोग्य ॥ और मैं तुक मैं और की मैं तेरे बग और उसके बग में और जलोग्य वह ते गिर को जलोग्य और तु उसकी पड़ी को जलोग्य ॥ और अपने की को कहा कि मैं तेरी पीड़ा और गम-बराब को बहुत बकाईगा । तु पीड़ा से बकाब जलोग्य और तेरी हृदय को प्रति पर होगी और वह तुक पर प्रमुख जलोग्य ॥ और उसने आदमी से कहा तु ने जो अपनी पड़ी का राज माया है और जिस पेड़ से मैंने तुझे जलने को बजाया था तु ने जलना है । हृदय कर्मज सुमि तेरे जिये आपित है, अपने भीकन भर तु जलस पीड़ा के जल जलोग्य ॥ और वह बड़ी और जलजल तेरे जिये जलजली और तु जल का जल पट्ट जलोग्य ॥ तीरेत जलजली १ । छा १—७ । १४—१८ ॥

स्त्री०—जो ईश्वरी का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस सूर्य सूर्य जलजल कैलाश को नहीं जलगा ? और जो बकाया तो बड़ी ईश्वर आपराज का जलमी है क्योंकि जो वह उसके बूझ न जलगा तो वह दुष्टा नहीं करता ? और वह पूरे जलम नहीं जलगा तो जिया आपराज उसके पापी नहीं जलगा ? और जल पड़ा तो वह सूर्य नहीं था किन्तु मनुज का क्योंकि जो मनुज न होता तो मनुज को जल नहीं कर सक्ता ? और जो आप मनुज और दूसरे को बूझ में जलाने उसको ईश्वर जलना चाहिये जो नहीं कैलाश जलजली और हृदय जलने उस की को नहीं जलजल किन्तु जल जल और ईश्वर ने जलम और हृदय से बूझ कहा कि इसके जलने से तुम मर जाओगे जब वह एक जलजल और जलम जलने जलगा था तो उसके जल जलने से नहीं बजा और जो बजा तो वह ईश्वर जलम और जलजल जलगा । क्योंकि जल बूझ के जल मनुजों को जल और बूझ करक से जलजल और मनुजजल नहीं, जब ईश्वर ने जल जलने से बजा तो उस बूझ को जलजल किन्तु जलने की थी ? जो अपने जलने की तो जल आप जलजली और मनुजजलजल था ? और जो बूझों के जलने जलगा तो जल जलने में आपराज जलमी न बूझ और जलजल कोई भी बूझ जलजल और मनुजजल जलने में नहीं जलगा जल ईश्वर ने जलजल बीज भी जल कर जल ? ऐसी जलों से मनुज जलमी जलमी होता है तो ईश्वर कैला नहीं नहीं बूझ ? क्योंकि जो कोई दूसरे से जल, जल करक वह जलमी, जलमी नहीं न होग्य ? और जो जल तीनों को जल दिया वह जल आपराज से है । पुनः वह ईश्वर जलजलजली थी बूझ और वह जल ईश्वर को होता चाहिये । क्योंकि वह बूझ बोधा और जलको जलजल । वह “जलजल” देखो ! जल किन्तु बीज के जलजल और जलजल का जलम हा जलगा था ? और जल जल के कोई जलमी जलजल कर सक्ता है ? जल जलम बड़ी जलने के बूझ न न ? और जल जल पाठ जलजल जल मनुजों को ईश्वर के जलने से जलजल बूझ तो जो जल में जल जल जलजल में जलजल वह जल नहीं नहीं ? और जो वह जल हा तो वह जल है । जब जलम का जलमी जल जलजल सिद्ध नहीं होता तो ईश्वर जल जल मनुजों को जलम के जलजल

से मन्त्राय हाथ पर आपराधी क्यों करते हैं ? मन्त्रा पृथा पुस्तक और पृथा ईश्वर कभी बुद्धिमार्थी के सम्मान योग्य हो सकता है ? ॥ ११ ॥

८—और परमेश्वर ईश्वर ने कहा कि ब्रह्मा ! आहम अपने गुरु के ज्ञान में हम में से एक की गहरे बुद्धि और अथ पृथा व होने कि वह अपना हाथ अपने और जीवन के पद में से भी खेकर खावे और अमर हो जाय सो उसने आहम को निष्कस दिया और आहम की यात्री की पूर्ण और करोवीन चमकते हुए बह्म जो चारों ओर घूमते में छिने हुए अरामे त्रिसे जीवन के पद के मार्ग की रक्षा करे ॥ ती पर्व ३ । अथ २२ । २३ ॥

समी०—मन्त्रा इश्वर को ऐसी इच्छा और अम क्यों बुद्धि कि ज्ञान में हमारे तुल्य बुद्धि ? क्या वह गुरी बात हुई ? वह गुरु ही क्यों पड़ी ? क्योंकि ईश्वर के तुल्य कभी कहे नहीं हो सकता परन्तु इस खेल में बड़ी सिद्ध हो सकता है कि वह ईश्वर क्यों था किन्तु मनुष्य पितृप या ब्राह्मण में जहाँ कहीं ईश्वर की बात आती है वहाँ मनुष्य के तुल्य ही लिखी आती है । जब ब्रह्मा आहम के ज्ञान की बगती में ईश्वर किन्तु बुद्धि बुद्धि और फिर अमरत्व के पद जाने में किन्तु ईश्वर की और अमर जब उसको बाड़ी में रक्षा तब उसको भविष्यत् का ज्ञान नहीं था कि इसको पुनः निष्कस पदेय इसलिये इसलिये ईश्वर ईश्वर सर्वज्ञ क्यों था और अमरके लक्ष्म का पहिरा रक्षा वह भी मनुष्य का अमर है ईश्वर का नहीं ॥ ८ ॥

९ और कितने दिनों के पीछे भी बुद्धि कि आहम भूमि के पदों में से परमेश्वर के छिने मंद लाया ॥ और हाथीन भी अपनी मुखा ० में से पहिलीही और मोड़ी २ मेव लाया और परमेश्वर ने हाथीन और उसकी मंद का आहर किया परन्तु आहम का उसकी मंद का आहर न किया इसलिये आहम अति कुपित हुआ और अत्यन्त मुह पुलाया ॥ तब परमेश्वर ने आहम से कहा कि तू क्यों मुह है और तेरा मुह क्यों फूट गया ॥ ती पर्व ३ अथ २—३ ॥

समी०—बहि ईश्वर मांसावादी न हो तो मेव की मंद और हाथीन का सम्भार और आहम का तथा उसकी मंद का विरम्भर क्यों करता ? और पृथा अग्राहा अग्राहे और हाथीन की मृत्यु का कारण भी ईश्वर ही बुद्धि और प्रिय आपस में मनुष्य अथ एक दूसरे से बने करते हैं किसे ही ईश्वर की ईश्वर की बातें हैं क्योंकि मैं आया जाया उसका अग्राहा भी मनुष्यों का कर्म है इसलिये चिरित होता है कि वह ब्राह्मण मनुष्यों की कर्म है ईश्वर की नहीं ॥ ९ ॥

१०—जब परमेश्वर ने आहम से कहा कि तब आई हाथीन क्यों है और वह बाधा में नहीं जानता क्या मैं अपने आई का रक्षण करता हूँ तब उसने कहा तू न क्या किया ? तब आई का हृदय का अमर भूमि में मुझे पुकारता है और अब तू अभी से पतित है ॥ ती पर्व ३ अथ ४—११ ॥

• भव बन्धनों के मुखा ॥

समी०—क्या ईश्वर का हृदय के बिना पूर्ण है? हाजीब का हाथ मही आनन्द का और साहू का हाथ भूमि से कमी किसी का पुष्पर सक्त है? ने सब फलें प्रविष्टाओं की है इसलिये वह पुष्कर न ईश्वर और न विद्वान् का बनाया हो सकता है ॥ १ ॥

११—और इनके मनुसिद्ध की उत्पत्ति के पीछे तीव्र की बर्षों ईश्वर के साथ साथ बसता था ॥ ती पर्व २। भा १२ ॥

समी०—महा ईश्वरों का ईश्वर मनुष्य न होता तो इन्हें इसके साथ २ क्यों बसता? इससे जो बेरोक निराकार ईश्वर है उसी को ईसाई लोग भावें तो उबका बनाया होने ॥ ११ ॥

१२—और उबसे बेरिनी अलग हुई ॥ तो ईश्वर के पुर्ण ने आनन्द की प्रविष्टों को देखा कि वे सुन्दरी हैं और उनमें से किन्हें उन्हीं ने कहा उन्हें बसा ॥ और सब दिनों में पुष्पी पर शून्य ने और उबसे पीछे भी सब ईश्वर के पुष्प आनन्द की प्रविष्टों से मित्रे तो उनके आनन्द अलग हुए जो कलकल हुए जो आगे से नमी ने ॥ और ईश्वर ने देखा कि आनन्द की बुद्धि पुष्पी पर खुल हुई और उनके सब की किता और आनन्द प्रविष्टि के एक बुरी होती है ॥ तब आनन्द को पुष्पी पर अलग करने से परमेवर पक्षपात और उसे अति शोक हुआ ॥ तब परमेवर ने कहा कि आनन्द को बिसे मैंने उत्पन्न किया आनन्द से वे के पटुन जो और ईश्वरों को और आनन्द के प्रविष्टों को पुष्पी पर से नष्ट कर द्य नर्देकि उन्हें बनावे से मैं पक्षपात ॥ ती पर्व ३। भा १—० ॥

समी०—ईश्वरों से पूछा चाहिये कि ईश्वर के बने बीज है? और ईश्वर की बी सास अमर, अमर और अमरबी बीज है? नर्देकि सब तो आनन्द की प्रविष्टों के साथ निरुद्ध होने से ईश्वर इनका अमरबी हुआ और जो उबसे अलग होते हैं वे पुष्प और मरीच हुए, तथा ऐसी सब ईश्वर और ईश्वर के पुष्कर की हो सकती है? किन्तु यह सिद्ध होता है कि तब आनन्द मनुष्यों ने वह पुष्कर बनाया है वह ईश्वर ही नहीं को सर्वज्ञ न हो न अविज्ञान की बात करने वह बीज है तथा सब धृति की थी तब आगे मनुष्य हुए होते देख नहीं आनन्द का? और पक्षपात अति शोकप्रति होना, मूल से असम करने पीछे पक्षपात करना यदि ईश्वरों के ईश्वर में का सकता है कि ईश्वरों का ईश्वर पूर्ण विद्वान् बेसी भी नहीं वा नहीं तो आनन्द और विज्ञान से अति शोकप्रति से पुष्कर हो सकता था। महा पटु पक्षी भी बुद्ध हो पक्षे यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा बिपरीत क्यों होता? इसलिये वह न ईश्वर और न वह ईश्वरपुष्प पुष्कर हो सकता है जैसे बेरोक परमेवर सब पाप लोका हुए शोकप्रति से रहित "अविज्ञानम् एवम्" है उबसे यदि ईसाई लोग मानते थे सब भी भावें तो अपने मनुष्य सम को सक्त कर उन्हें ॥ १२ ॥

१३—उस नाम की कम्पाई तीनसो हाथ और बीजाई पचास हाथ और बीजाई तीस हाथ की होने ॥ तू नाम में आनन्द १० और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरे बेटों की प्रविष्टों तेरे साथ और आगे कहीं से से बीजा आनन्द हो हो अपने

आम नाम में बोला जिससे कि वे तेरे साथ जीते रहें वे घर और बारी होंगे ।
बही में त उससे मांति २ के और दोर ० में से उसके मांति २ के और पुष्पी के
हर एक रँगैयों में से मांति २ के हर एक में छ दो २ तुम्ह पास आवें,
जिससे जीते रहें । और तू अपने छिये खाने को सब समझी अपने पास इच्छा
कर वह तुम्हारे और उनके छिये मांगन होग्य ॥ सो ईश्वर की सारी आज्ञा के
समाज नृह ने किया ॥ ती पर्व २ । अ १२ । १८—२२ ॥

समी०—महा कोई भी बिद्वान् ऐसी विषय से निरुद्ध असम्भव बात के
कथ को ईश्वर मान सकता है ? क्योंकि इतनी बड़ी बीड़ी अर्थात् नाम में हाथी
हथनी उठ उठनी चाहि कोहों जन्म और उनके खाने पीने की चीजें व सब
कुटुम्ब के (सहित) भी समा सकते हैं ? वह इसलिये मनुष्यद्वय पुस्तक है जिससे
बद लेना किया है वह बिद्वान् भी नहीं था ॥ १३ ॥

१४—और नृह ने परमेश्वर के छिये एक बेड़ी कहाई और सार पवित्र पशु और
हर एक पवित्र पक्षियों में से छिये और हाथ की मेंड उस बेड़ी पर चढ़ाई और परमेश्वर
ने मुण्डय सृष्य और परमेश्वर ने अपने मन में कहा कि जाह्मी क छिये में १५
को फिर कभी छाप न दूँगा । इस कारण कि जाह्मी के मन की मानस उसकी
चढ़ाई से पुरी है और जिस रीति स मीने सार जलधारियों को मत्ता फिर कभी न
माँदगा ॥ ती पर्व ८ । अ २ —२१ ॥

समी०—बही के कथन, होम करने के खेल स बड़ी सिद्ध होता है कि ये बातें
कौनों से बदलना में गड़ हैं क्या परमेश्वर के बाक भी है कि जिससे मुण्डय सृष्य ?
क्या वह ईसाहूँ का ईश्वर मनुष्यद्वय असफल नहीं ? कि कभी छाप देना है और
कभी पक्षता है कभी करता है छाप न दूँगा पक्षे रिवाज और फिर भी
हम प्रथम सब को मार बाका और सब करता है कि कभी न माँदगा !!!
वे क्यों सब बदलों की सी है ईश्वर की नहीं और न किसी बिद्वान् की, क्योंकि
बिद्वान् की भी बात और प्रतिया स्थिर होती है ॥ १४ ॥

१५—और ईश्वर ने मूढ़ का और उसका पक्षे को जलधारी रिवाज और उगई
कहा ॥ कि हर एक पीला बज्जता जन्म तुम्हारे मांगन क छिये होग्य । मीने हरी
सरकारी क समाज सारी जन्म तुम्हें ही कथन मान उसका जीव अपना उसके
छाह समस्त मत प्यवा ॥ ती पर्व २ । अ १ । ३—४ ॥

समी०—क्या एक को प्रत्येक इतर दूसरों को मानस करने स इच्छा
हजारों का ईश्वर नहीं है ? जो मानस विरा एक एक को प्रत्येक दूसरे को दिखावें
महाप्राणी नहीं हैं ? इसी प्रकार वह बात है क्योंकि ईश्वर क छिये सब प्राणी
पुत्रक है एसा न हावे स इच्छा ईश्वर कमाईक कथन करता है और मन
मनुष्यी का दिमक भी इसी न कथन है इसलिये ईसाहूँ का ईश्वर निरव दाने
से पुरी क्यों नहीं ? ॥ १५ ॥

१६—और सारी पुबिबी पर एक ही बोली और एक ही भाषा थी ॥ फिर उन्होंने कहा कि याथा हम एक नगर और एक गुम्माद जिसकी चाही लप्ते की बहने अपन खिने बनाये और अपन नाम व कर्ने न हो कि हम सारी पुबिबी पर विज मित्र हो जायें ॥ तब ईश्वर उस नगर और उस गुम्माद के जिसे प्रारम्भ के समान बनाये थे देखने को उठरा ॥ तब परमेश्वर ने कहा कि देखो वे लोग एक ही हैं और अब सब की एक ही बोली है अब वे ऐसा २ कुल करने लगेंगे वे जिस पर मन लगावेंगे उससे प्रकाश न किये जायेंगे ॥ याथा हम उन्हें और वही उनकी भाषा को गुरुनवाये जिससे कि एक दूसरे की बोली न समझें ॥ तब परमेश्वर ने उन्हें वही से सारी पुबिबी पर विज मित्र किया और वे उस नगर के बनाने से प्रकाश रहे ॥ टी पर ११ । या १ । ४—८ ॥

सुमी — अब सारी पुबिबी पर एक भाषा और बोली होती उस समय सब मनुष्यों को परस्पर प्रत्यक्ष प्रामाण्य प्राप्त हुआ होगा परन्तु क्या किना जाय वह ईसाइयों के ईर्ष्यक ईश्वर ने सब की भाषा एकवक्ता के सब का सम्मान किया उसने यह बड़ा प्रकाश किया । क्या यह ईश्वर के काम से भी कुछ काम नहीं है ? और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसाइयों का ईश्वर समझाई प्रकाश प्रारि पर रहता था और लोगों की उन्नति भी नहीं चाहता था । यह सिद्ध एक अविज्ञान के ईश्वर की बात और यह ईश्वरोंक दुस्तक कर्मीकर हो सम्भव है ? ॥ १६ ॥

१७—तब उसने अपनी पत्नी सारी से कहा कि देख मैं जानता हूँ तु देखने में सुन्दर की है ॥ इसलिये मैं होम कि मित्री तुझे देखें तब वे कहेंगे कि यह उसकी पत्नी है और तुझे मार चाहेंगे परन्तु तुझे बीती रक्खें ॥ व कहिबो कि मैं उसकी पत्नि हूँ जिससे तेरे करन मेरा मया होव और मेरा मया तेरे होव से जाय रहे ॥ टी पर १२ । ११—१३ ॥

सुमी—अब देखिये ! अमिरहाम बड़ा पैगम्बर इसाई और मुसलमानों का मया है और उसके काम मिथ्याभाष्यादि हुए हैं, भला जिसके पैस पैगम्बर हों उनके सिद्ध का कल्याण का मारी कैसे सिद्ध सके ? ॥ १७ ॥

१८—और ईश्वर ने अमिरहाम से कहा तु और तेरे पीछे लग कर उसकी पीछिबी मैं मेरे मित्रम को माने तुम मेरा मित्रम को मुझ से और तुम से और तेरे पीछे तेरे कर से हूँ जिसे तुम मानोये सो यह है कि तुम मैं से हर एक प्रत्यक्ष का कलना किया जाय । और तुम अपने शरीर की कलना करो और मर और तुम्हारे मय में मित्रम का किन्तु होया और तुम्हारी पीछिबी मैं रहे एक मय विम के प्रत्यक्ष का कलना किया जाय जो कर मैं उत्पन्न होव प्रत्यक्ष या किसी परदेही से जो तेरे कर का न हो ॥ कये से मोख किया जाय जो तेरे कर में उत्पन्न हुआ हो और जो तेरे कये से मोख किया गया हो सम्मान उसका कलना किया जाय और मेरा मित्रम तुम्हारे मोच में सर्वदा मित्रम के खिने होय ॥ और जो प्रकाश काक मित्रकी कलना का कलना न हुआ हो सो याही अपने कोय से कर जाय कि उसने मेरा मित्रम तोड़ा है ॥ टी पर १४ । या २—१४ ॥

सुमी०—अब देखिये ईश्वर की अत्यन्त आशा की जो यह कहता: अथ ईश्वर को यह होता तो उस चमके को छादि छवि में कल्पता ही नहीं और जो यह कल्पना है वह रचाने है जैसा आकाश के ऊपर का चमका क्योंकि यह गुप्त स्वयं प्रति कोमल है जो उस पर चमका न हो तो एक कीड़ी के भी करने और बोड़ीसी चोट लगने से बहुत सा दुःख होने और यह अच्युतज्ञ के पसार कुछ मूर्खता कपड़ों में न छोड़े इस्यदि बातों के लिये इसका कल्पना गुरा है और अब ईश्वर को इस आशा को क्यों नहीं करते ? यह आशा अथ के लिये है इसके न करने से ईसा की गवाही जो कि अत्यन्त के पुस्तक का एक किन्तु भी कृत्य नहीं है सिद्ध होमर्त इसका सोच विचार ईश्वर कुछ भी नहीं करते ॥ १८ ॥

१४—अब ईश्वर अविद्याम सं क्यों कर चुका तो अन्तर चमका गया ॥ ती १०। आ २२ ॥

सुमी०—इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर मनुष्य या पशुवत् या जो ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आता जाता रहता या यह कोई इन्द्रबासी पुस्तक सिद्ध होता है ॥ १४ ॥

१ —किर ईश्वर उसे मनुष्य के कष्टों में दिखाई दिया और वह दिन को अम के समय में अपने तन्मू के द्वार पर बैठा था ॥ और उसने अपनी आँखें उठाई और नय देख कि तीन मनुष्य उसके पास चले हैं और उन्हें देख के वह तन्मू के द्वार पर से उबकी जैद को दौड़ा और खुसि एक बपुसत् की ॥ और कहा कि हे मेरे स्वामी यदि मैंने अब आपकी छवि में अनुमत् प्रसा है तो मैं आपकी विनती करता हूँ कि अपने हाथ के पास से उन्हें न जाइये ॥ इसका होना ता बोधा वह आपा आप और अपने करण छोड़ने और वेद लगे विषय कीजिये ॥ और मैं एक और रोटी खाऊँ और आप कुछ दूजिये उसके पीछे आपसे कहिये क्योंकि आप इसलिये अपने हाथ के पास आये हैं । तब वे बोले कि जैसा तुने कहा किया कर और अविद्याम तन्मू में सर। पास उल्लेखी से गया और उसे कहा कि फुरती कर और तीव्र मनुष्य आका पिताम से के गूब और उसके पुनः के रम ॥ और अविद्याम कुछ ही और दौड़ा गया और एक अत्यन्त कोमल बड़का व के हाथ को दिया और उसने भी उसे सिद्ध करने में मदद किया ॥ और उसने मन्दाव और रूप और वह बड़का जो पकपा या किया और उनके आगे धरा और आप उनके पास वेद लगे कहा रहा और उन्होंने कहा ॥ ती १८। आ १—८ ॥

सुमी०—अब देखिये ! सख्त कोमों ! जिसका ईश्वर बढ़ने का मांस खाये उसके उपपत्तक गण कहने यादि पदार्थों को क्यों छोड़ें ? जिसको कुछ दना नहीं और मांस के खाने में अत्युर रहे वह क्या जिसका मनुष्य के ईश्वर कभी हो सकता है ? और ईश्वर के साथ जो मनुष्य व जाने कीजिये ? इससे सिद्ध होता है कि अज्ञानी मनुष्यों को एक मण्डली की, अन्तर्गत जो प्रधान मनुष्य या अत्यन्त परम अत्यन्त में ईश्वर रक्खा होना इन्हीं बातों से दुर्दिन्य कोम इनके पुस्तक को ईश्वरद्वारा नहीं मान सकते और न वेले को ईश्वर समझते हैं ॥ २० ॥

२१—श्रीर परमेश्वर ने अचिरहाम से कहा कि सरा नहीं वह कहे मुसुमार्ह कि जो मैं बुझिया हूँ सचमुच वास्तवक नहीं । क्या परमेश्वर के सिने कोई बात प्रत्यक्ष है ॥ ती १८ । आ १३—१४ ॥

समी०—अब देखिये ! कि क्या ईसाइयों के ईश्वर की खीसा कि जो बहुत ब सिनों के समान विपुला श्रीर लाया मारा है ! ! ! ॥ २१ ॥

२२—तब परमेश्वर ने समुद्रधमूरा पर गम्भक श्रीर आग परमेश्वर की ओर से बपला ॥ श्रीर उन बगरी को श्रीर सारे भीमान को श्रीर बगरी के सार विधासियों को श्रीर जो कुछ भूमि पर उगता था उलटा दिया ॥ ती २० ॥ पर १६ । आ २४—२५ ॥

समी०—अब वह भी खीसा वास्तवक के ईश्वर की देखिये ! कि जिसको वास्तवक आदि पर भी कुछ था व झाई । क्या वे सब ही अपराधी थे जो उनकी भूमि उलटा के था मारा ? वह बात ग्याव था श्रीर कियेक से किन्तु है किन्तु ईश्वर ऐसा कम करे उनके उपद्रवक क्यों व करें ? ॥ २१ ॥

२३—आओ हम अपने पिता को शान्त रस पिछाई श्रीर हम उनके साथ शपथ करें कि हम अपने पिता से कंध बकावें । तब उन्होंने उस रात अपने पिता को शान्त रस पिछाया श्रीर पछिछीन्नी गई श्रीर अपने पिता के साथ शपथ किया ॥ हम उस आज रात भी शान्त रस पिछाई लू उनके शपथ कर । सो तुत की दोन्नी बहिनो अपने पिता से धर्मिन्नी हुई ॥ ती २० ॥ पर १६ । आ २२—२४ । २५ ॥

समी —देखिये ! पिता पुत्री भी जिस मर्यादा के कले में कुर्मी करने से व कब उनके ऐसे कुछ मय को ओ ईसाई आदि पीने हैं उनकी दुपई का क्या फायदा है ? इसलिये सज्जन लोगों को मय के पीने का प्रम भी ब सेना चाहिये ॥ २३ ॥

२४—श्रीर अपने कहने के समान परमेश्वर ने सरा से मेर किया श्रीर अपने वचन के समान परमेश्वर ने सरा के विपक्ष में किया ॥ श्रीर सरा धर्मिन्नी हुई ॥ ती २० ॥ पर ११ । आ १—२ ॥

समी०—अब विचारिये कि सरा से मेर कर गर्मकटी की वह कम कैसे हुआ ? क्या बिना परमेश्वर और सरा के तीसरा कोई धर्मस्थापन का भारण शक्य है ? ऐसा निश्चित होता है कि सरा परमेश्वर की कृपा से गर्मकटी हुई ! ! ! ॥ २४ ॥

२५—तब अचिरहाम ने बड़े लड़के उठ के रोटी श्रीर एक पकाव में बह बिचा श्रीर हाकिम के कले पर पर दिया श्रीर अपने को भी उस छीप के उठे बिचा किया ॥ उसने लड़के को एक मगरी के लले दाख दिया ॥ श्रीर वह उनके समुक्त बैठ के बिहा २ रोई ॥ तब ईश्वर ने उस वास्तवक का गम्भ सुन ॥ ती २० ॥ पर ११ । आ १४—१५ ॥

समी०—अब देखिये ! ईसाइयों के ईश्वर की खीसा कि प्रथम तो सरा का पचपत करके हाकिम को खा ले विधायक भी श्रीर बिहा २ रोई हाकिम श्रीर

एवम् मुखा बचके का, वह कैसी अद्भुत बात है ? वह ऐसा हुआ होगा कि ईश्वर को भ्रम हुआ होगा कि वह वाक्य ही होता है मन्त्रा वह ईश्वर और ईश्वर की पुस्तक की बात कभी हो सकती है ? किन्तु साधारण मनुष्य के कर्म के इस पुस्तक में मोड़ी सी बात स्वयं के सब प्रसार गयी है ॥ २२ ॥

२१—और इस बातों के पीछे भी हुआ कि ईश्वर ने अभिधात की परीक्षा की और उसे कहा । हे अभिधात ! तू अपने बेटे को अपने इच्छाते इच्छात को जिसे तू प्यार करता है उसे । उसे होम की मेड के खिन्ने चढ़ और अपने बेटे इच्छात को जीप के उस बेड़ी में खकड़िरी पर चढ़ा ॥ और अभिधात ने झुरी छके अपने बेटे का घात करने के खिन्ने हाथ बढ़ाया ॥ तब परमेश्वर के तू त न स्वर्ग पर जो उसे पुकारा कि अभिधात १ ! अपना हाथ बचके पर मत बढ़ा उस कुत्र मत कर क्योंकि मैं बोलता हूँ कि तू ईश्वर का करता है । ती उत्तर पूर्व २२ । पद्य १—२ । ४—१२ ॥

समी०—अब स्पष्ट होगया कि वह वाक्य का ईश्वर वाक्य है सर्वज्ञ नहीं और अभिधात भी एक मोक्षा मनुष्य था । नहीं तो ऐसी बात क्यों करता ? और का वाक्य का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो उसकी अभिधात प्रकाश को भी सर्वज्ञता से बाध होता । इससे निश्चित होता है कि ईश्वर ही का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं ॥ २३ ॥

२०—सा बाप हमारी समाधि में जो पुत्र के एक में अपने पुत्र को पालिये जिसमें आप अपने पुत्र का पाले ॥ ती उत्तर पूर्व २३ । पद्य १ ॥

समी०—मुझे के पालने से संसार की बड़ी छानि होती है क्योंकि वह सब के सब को दुर्गन्धजन्य कर रोग फैला देता है ॥

प्र०—देखो ! जिससे प्रीति हो उसको बचाना पड़ती बात नहीं और मरना है कि उसको मुखा देना है इच्छाके मादका पदार्थ है ॥

३०—आ मुत्रक का प्रीति करते हो ता अपने घर में क्यों नहीं रहते ? और मरते भी क्यों हो ? जिस जीवियता से प्रीति की वह निकल गया अब दुर्गन्धजन्य मिट्टी से क्या प्रीति ? और का प्रीति करते हो ता उसको शुक्ली में क्यों पावत हो क्योंकि किसी का कोई कहे कि तुम्हारे भूमि में पाल ही ता वह पुत्र कर प्रत्यक्ष कमी नहीं होता उसका मुख आँक और शरीर पर पूरा प्रत्यक्ष, हँस तथा वाक्य झुंटी पर पल्लव रखता कैवली प्रीति का भ्रम है ? और समूह में बाध के पालने से बहुत दुर्गन्ध होकर शुक्ली से निकल बाध को किम्वदकर वाक्य वाक्य करवा है वृत्ता एक मुँह के खिन्ने कम से कम १ हाथ खन्नी और २ हाथ चौड़ी भूमि चाहिये इसी दिसान से सी हजार या सत्त प्रपक्ष बाधों मनुष्यों के खिन्ने किन्ती भूमि स्वर्ग इक जाती है । न वह लठ न काँचा और न बसने के कम की रहती है इच्छाके सबल पुरा पालना है । उससे कुछ पाँदा पुरा जब में समस्त क्योंकि उसको बसन्तु उसी समय और प्रक के का छले हैं परन्तु जो कुछ बाध का मख जब में रहेगा वह सबकर जगत् का दुर्गन्धजन्य दमन । उससे कुछ एक बाधा पुरा प्रत्यक्ष में बाधना है । क्योंकि उसको मोक्षाहारी पद्य पकी तूच पालिये तथापि जो उसके हाथ की मन्त्रा और मख सबकर दुर्गन्ध जन्य उत्पना

जगत् का अनुपकार होय और जो जगत्मा है वह सर्वोत्तम है क्योंकि उसके सब पदार्थ भक्त होकर वायु में उड़ जायेंगे ॥

प्र०—जगत्मा से भी दुर्गन्ध होता है ॥

उ०—जो अग्नि ॥ जगत्मा तो बोझासा होता है परन्तु गंधने आदि से बहुत कम होता है और जो विधिपूर्वक प्रीता कि वेद में लिखा है मुर्दे के तीन हाथ गहरी साँसेली हाथ चीकी, पाँच हाथ जम्बी लछे में वेद बीता अर्थात् जगत्मा उठाने बेदी कोढ़कर शरीर के बराबर भी उसमें एक छर में रखी भर कलसूरी माछा भर केसर द्यब भूल से भूल भाव भव भन्दन अधिक आई जिससे छे, जगत्मा लाल कलसूरी आदि और पञ्चांग आदि की छक्कियों को बेदी में जमा उस पर मुहो रक्त के पुष्प चरों और ऊपर बेदी के मुह से एक १ बीता तक भर के भी की जाहूति देकर जगत्मा आदिने इस प्रकार से राह करें ता बहुत भी दुर्गन्ध न हो किन्तु इसी का नाम जम्बोदि नामध पुरस्सेब नष्ट है और जो इन्द्र हो तो बीस छे से कम की विश्व में न द्यबे चहरे वह भीक माँहने का जगति द्यबे के होने अथवा राय का मिश्रने से प्राप्त हो परन्तु उसी प्रकार राह कर और जो पूजादि किसी प्रकार न मिश्र लगे तथापि गंधने आदि से केवल छक्की से भी बहुत कम जगत्मा उत्पन्न है क्योंकि एक विश्व भर भूमि में अथवा एक बेदी में लाखों छोटी छक्क जगत्मा उत्पन्न हैं भूमि भी गंधने के समान अधिक नहीं जाहूती और कम्ब के द्यबने से कम भी होता है इससे गंधना आदि सर्वथा निषिद्ध है ॥१०॥

११—परमेश्वर मेरे स्वामी अविद्यात्म का ईश्वर बन्ध है जिससे मेरे स्वामी को अपनी दया और अपनी सहाई जिया न छोड़ा मार्ग में परमेश्वर ने मेरे स्वामी के भ्रातृत्वं के पर की ओर मेरी अनुमति कि ॥ ती उत्प पूर्व ११ । आ १० ॥

स्वामी०—क्या वह अविद्यात्म ही का श्वर का ? और और जिसे आत्मका विपरीत न अनुमे जोय अनुमति अर्थात् जगत्मा १ चक्रकर मार्ग दिखलाते हैं तथा ईश्वर ने भी विश्व तो आत्मका मार्ग क्यों नहीं दिखलाया ? और मनुष्यों से क्यों क्यों नहीं करता ? इसलिये बेदी चरों ईश्वर न ईश्वर के पुच्छक की कमी नहीं हो सकती किन्तु जगत्मा मनुष्यों की हैं ॥ २२ ॥

१३—इसमध्यस्थ के बेदी के ने नाम हैं—इसमध्यस्थ का पश्चिमीय नवीत और कीदर और अद्विष्टक और मिश्रमात्र और मिश्रमात्र और दूमा और मस्तक । इतर और ठीमा इतर नवीत और निद्रमा ॥ ती उत्प पूर्व १२ । आ ११—१२ ॥

स्वामी०—वह इसमध्यस्थ अविद्यात्म से उसकी हाजिरा दली का हुआ था ॥ १३ ॥

१ —मैं तेरे पिता की कृति के समान स्थापित भोजन कण्डली और नू अपने पिता के प्रस से जाहूतो जिससे वह काय और अपने मरने से अपने तुके आशीष देवे ॥ और रिक्त न अपने पर में से अपने अडे बेदे पत्नी का अच्छा पश्चिमादि दिया और कभी के मेरी का अमरा उसके हाथों और गले की चिकनाई पर अपने तब बचकन अपने पिता से बोधा कि मैं आपका पश्चिमीय पत्नी हूँ

आपके करने के समान मैंने किया है उठ बेसिये और मेरे अंदर के मांस में से
आपके जिससे आप का प्राण मुझे आलीप दे ॥ ती उत पर १० । आ
४—१ । १२—१९ । १३ ॥

समी०—इसने ! एस भूत कपट स अलीबाद सेक पध्यात् सिद्ध और
पसमर वयस ई क्या वह आधर्य की बात नहीं है ? और फेस ईसाइयों के अनुया
हुए हैं पुनः इनके मत की गड़बड़ में क्या ग्यूनता हो ॥ ३० ॥

११—और पचकृत विद्यान को लकड़ उध और उस पावर का जिस उसने
अपना उलीस्र किया था कम्मा खड़ा किया और उस पर ठक बाधा ॥ और उस
स्वयं का नाम केम्पूह रक्खा ॥ और वह पत्थर जा मैंने कम्मा खड़ा किया
इधर का कर हमाय ॥ ती उत पर २८ । आ० १८—१९ । २२ ॥

समी०—अब इतिवत् ! जइसियों के काम इन्हीं ने पत्थर पूज और पुजकने
और इसको मुसलमान कामा कवतकमुकरस कहत हैं क्या यही पत्थर इधर का
कर और उसी पत्थर मात्र में इधर रहता था ? बाह २ जी ॥ क्या कहना है
इसाइ कामा ! महाबुतपरस ठा गुम्ही हा ॥ ३१ ॥

१२—और इधर ने राखिष को समरस किया और इधर ने उसकी मुनी और
उसकी काज को खोला और वह गर्मिखी ॥ और पया जमी और बोली कि इधर
न मरी किन्दा दूर किंई ॥ ती उत पर २ । आ २९—३३ ॥

समी०—बाह इसाइयों के इधर ! क्या कहा बायटर है किन्हीं की कोल
गोखने का कौन्स राफ का जोषय थ जिसस घोखी प सब बरें अन्धायुग्म
की है ॥ ३२ ॥

१३—परन्तु इधर आरामी साकन कने स्वयं में एत को आया और उस कहा
कि कौन्स रह तू इधर बचकृत को मछा दुरा मत कह क्योंकि अपन दिता क
अ वह निपट अभिछापी है तूने किस्किने मर इली का पुण्या है ॥ ती उत
पर ३१ । आ ३४ । ३ ॥

समी०—एह हम नयना छिन्ने ई इजारी मनुष्यों का स्वयं में आया बाते
किं जमूल साकात् मिछा, काया पिना काय, गवा आदि बाइबल में छिन्ने ई
परन्तु अब न जाने यह है का नहीं ? क्योंकि अब किन्ती को स्वयं व जागृत मे
की इधर नहीं मिछता और वह भी विरित हुआ कि ये जइसी काम पापय्यादि
मूर्खियों को दूष माकन वृत्त ॥ परन्तु इसाइयों का इधर भी पत्थर ही का दूष
मानता है यही ती इली का पुराया कैस घट ? ॥ ३३ ॥

१४—और बचकृत अपने आदी कहा गया और इधर के दूत उसस या
मिछ ॥ और बचकृत ने उन्हें दूक के कहा कि वह इधर की सना है ॥ ती उत
पर ३९ । आ १—२ ॥

समी०—अब इसाइयों के इधर के मनुष्य हमने में कुछ भी नदिराव नहीं
रहा क्योंकि अब भी रहता है । अब सेना हुई तब राख भी होय और जहाँ
बसो जहाँ अके कहाई भी करता होय नहीं ता अन्य रखने का क्या प्रयाजन
है ॥ ३४ ॥

१२—और बचकूब अकेला रह गया और वहाँ पी पड़े थीं एक बच उसका मजबूत करता रहा । और जब उसने देखा कि वह उस पर प्रकाश न हुआ तो उसकी जाँव को भीतर से हुआ तब बचकूब के जाँव की बस उसके सड़ मजबूत करने में चढ़ गई ॥ तब वह बोला कि तुझे जाने दे क्योंकि पी पड़ती है और वह बोला मैं तुझे जाने न देऊँगा जब तक तू मुझे छातीप न देवे ॥ तब उसने उस कहा कि तेरा नाम क्या ? और वह बोला कि बचकूब ॥ तब उसने कहा कि तारा नाम प्राण को बचकूब न हमारे परमपु इष्टानेका क्योंकि तुने ईश्वर के प्राण और मनुष्यों के प्राण प्राण की गार्ह मजबूत किया और जीता ॥ तब बचकूब ने वह कहके उससे पूछा कि अपना नाम बताइये और वह बोला कि तू मरा नाम नहीं पूछता है और उसने उस कहा छातीप दिया ॥ और बचकूब उस स्थान का नाम फ्यूएल रक्खा क्योंकि मैंने ईश्वर को प्रकाश देखा और मेरा प्राण क्या है ॥ और जब वह फ्यूएल से पर गया तो स्वर्ग की ज्वालि उस पर पड़ी और वह अपनी जाँव से संवसता था । इसलिये इसलिये के वंश उस जाँव की बस को जो चढ़ गई पी प्राण की नहीं कात क्योंकि उसने बचकूब के जाँव की बस को जो चढ़ गई पी हुआ था ॥ टी उप ५ २३ । या २४—२५ ॥

समी०—जब ईसाइयों का ईश्वर बचकूब है तभी तो सर और उसके पर पुत्र होने की कृपा की मर्याद वह कभी ईश्वर हो सकता है ? और देखा । जीसा कि एक बच नाम पुत्र तो दूसरा अपना नाम ही न बतलाने और ईश्वर ने उसकी बाड़ी को कहा तो ही और जीसा गया परमपु को बचकूब होना तो जाँव की बाड़ी को बचकूबी भी करता और ऐसे ईश्वर की मक्ति से जैसा कि बचकूब बचकूब रहा तो अन्य अन्त भी संवसते होंगे । जब ईश्वर को प्रकाश देखा और मजबूत किया वह बात किया करीर अन्त के कैल हो सकती है ? वह केवल बचकूब की जीसा है ॥ २६ ॥

२६—और बचकूब का पहिलीय हर परमेश्वर की दृष्टि में बुरा था तो परमेश्वर ने उस मार काटा ॥ तब बचकूब ने सोचाय का कहा कि अपने गार्ह की पत्नी फल जा और उससे व्याह कर अपने गार्ह के बिले बंध गया ॥ और सोचाय ने गया कि वह कंठ मेरा न होगा और वीं हुआ कि जब वह अपने भव की पत्नी फल गया तो बीर्ज की भूमि पर मिला दिया ॥ और बचकूब वह भव्य परमेश्वर की दृष्टि में बुरा था इसलिये उसने उसे भी मार काटा ॥ टी उप ३८ । या ७—१ ॥

समी —जब वह धीमिले ! व मनुष्यों के काम हैं कि ईश्वर के ? जब उसके प्राण नियोग हुआ तो उसको नहीं मार काटा ? उसकी बुद्धि ठह रही न करदी ? और कैदाक नियोग भी प्रथम सर्वत्र बसता था वह निजय हुआ कि नियोग की बातें सब वहाँ में बसती थी ॥ २७ ॥

तीरत यात्रा की पुस्तक ॥

२८—जब मूसर अपना हुआ और अपने भाइयों में से एक इयाबी को देखा कि मिथी उस मार रहा है ॥ तब उसने ईश्वर उभर दृष्टि किई क्या कि कोई

वहीं तब उसने उस मित्री को मार बाँका और बाहू में उसे धिमा दिया ॥ जब वह दूसरे दिन बाहर गया तो देखा दो हजाराजी आपस में मगल रहे हैं तब उसने उस प्रियेरी को कहा कि तू अपने पचीसी को क्यों मारता है ॥ तब उसने कहा कि किसने तुझे इस पर प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष ज्ञापी उद्घाटना ? क्या तू चाहता है कि जिस रीति से तुने मित्री को मार बाँका मुझे भी मार लझे तब मूसा का और माता निकला ॥ ती वा पर्व १ । आ ११—१२ ॥

समी०—अब देखिये ! जो बाइबल का मुख्य शिक्षकर्ता मत्त का आचार्य सूच्य कि जिसका चरित्र ओबादि बुधुओं से कुछ मनुष्य की इजा करने बाँका और औरकत राजद्वन्द्व से बचनेवाला समस्त जब बात को विपरीत या तो भूट बोझने बाँका भी प्रकल्प होता ऐसे को भी जो ईश्वर मिखा का पैम्बर बना उसने बहुधा यदि का मत बसाया वह भी मूसा ही के सख्त हुआ । इसलिये ईसाइयों के जो मूख पुका हुए हैं वे सब सूझ से यदि लेकर के बाँकी प्रकल्प में वे विप्लवकल्प में वहीं इजादि ॥ ३० ॥

३८—और फलव मेला मारो ॥ और एक मूदी बाँका लेखो और उसे उस छोड़ में जो बासत में है और के बाँका की बीकट के और हुन की दोनों और उसका बापा और तुम में से कोई बिहान जो अपने घर के द्वार से बाहर न जाने ॥ क्योंकि पजेवर मित्र के मारने के दिने बाँका पर बाँका और जब वह ऊपर की बीकट पर और हुन की दोनों और छोड़ को ऐसे तब परमेवर द्वार से भीत बाँका और बाँका तुम्हार क्यों मैं न जाने देता कि मारे ॥ ती वा प १२ । आ २१—२३ ॥

समी —महा वह जो टोके समझ करने लगे के समान है वह ईश्वर सर्वज्ञ कमी हो सकता है ? जब छोड़ का क्षण ऐसे सभी इच्छासे कुछ का घर जाने प्रकल्प नहीं । वह कम बुद्धि बुद्धि लगे मनुष्य के सख्त है । इससे वह विदित होता है कि वे बाँके किसी बाँकी मनुष्य की बाँकी हैं ॥ ३८ ॥

३९—और यों हुआ कि परमेवर ने आजी रात को मित्र के देश में सारे पहिलीठ को फिराकन के पहिलीठ से लेके जो अपने सिहासन पर बैठाया या उस कनुओं के पहिलीठ को का कनीमाह में वा पशुन के पहिलीठ समस्त कन किं और रात को फिराकन उठा वह और उसके सब सेकक और सार मित्री उठ और मित्र में बड़ा विचार या क्योंकि कोई घर न रहा जिसमें एक न मरा ॥ ती वा प ११ । आ २४—३ ॥

समी०—बाह ! बाँका आभी रात का बाहू के समान निर्भी होकर ईसाइयों के ईश्वर ने लड़के लगे कुछ और पशु तक भी किया प्रपरा मार दिये और कुछ भी क्या न बाहू और मित्र में बड़ा विचार होता रहा तो भी क्या ईसाइयों के ईश्वर के बिना का किमुतया यह न हुई ? देख कम ईश्वर का तो क्या किन्तु किसी बाँका मनुष्य के भी करने का नहीं है । यह आचार्य नहीं क्योंकि विदित है 'मासाइरिस' कुतो क्या' जब ईसाइयों का ईश्वर माँक्यारी है ता उलको क्या करने का क्या काम है ? ॥ ३९ ॥

४ — परमेश्वर तुम्हारे किये कुछ करेगा । इस्रायेल के संतान से यह कि वे जाना करें ॥ परन्तु तू अपनी जूही उठा और समुद्र पर अपना हाथ बड़ा और उससे हो जाना कर और इस्रायेल के संतान समुद्र के बीचों बीच से सूखी भूमि में होकर चले जाएंगे ॥ ती या प १४ । या १४—१६ ॥

समी — क्यों जी जान ता ईश्वर मेरी के पीछे गहरिये के समान इस्रायेल कुछ के पीछे २ बोला करता था अब न जाने कहाँ चमत्कार हुआ गया ? नहीं तो समुद्र के बीच में से चारों ओर के रेखाश्रितियों की सड़क बनवा छत जिससे सब संसार का उपकार होता और नाम यादि बनाने का काम बूट जाता । परन्तु क्या किया काम ईसाइयों का ईश्वर न जाने कहाँ बिप रहा है ? हमारे बहुत सी मूर्ख के साथ असम्मान बोला पाश्चात्य के ईश्वर ने की है परन्तु यह विदित हुआ कि ईसा ईसाइयों का ईश्वर है किं ही उसके प्रकट और देसी ही उसकी बर्मा पुस्तक है । देसी पुस्तक और देसी ईश्वर हम लोगों से दूर रहे तभी अच्छा है ॥ ४ ॥

४१—क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर अधिकृत सर्वशक्तिमान् हूँ । फिरों के अपराध का दण्ड उनसे पुत्रों को जो मेरा कैर सकते हैं उनकी तीसरी चौथी पीढ़ी की वैसा हूँ ॥ ती या प २ । या २ ॥

समी०—अब यह किताब का क्या है कि जो पित्त के अपराध से ४ चर पीढ़ी तक दण्ड बना अच्छा समझना । क्या अच्छे पित्त के कुछ और कुछ पित्त के अच्छे सम्मान नहीं होते ? जो देस है तो चौथी पीढ़ी तक दण्ड कैसे दे सकेगा ? और जो पाँचवी पीढ़ी से आये हुए होगा उसको दण्ड न दे सकेगा ? किताब अपराध किसी को दण्ड देना अन्त्यापकारी की बात है ॥ ४ ॥

४२—विज्ञान के दिन को उसे पवित्र रखने के किये समझ कर ॥ ज्ञः दिव छौं तू परिष्कृत कर ॥ और सत्ता दिव परमेश्वर तेरे ईश्वर का विज्ञान है । परमेश्वर ने विज्ञान दिव को आशीर्वाद दी ॥ ती या प २ । या २—३ ॥

समी०—क्या रक्षित एक ही पवित्र और ज्ञः दिव अपवित्र है ? और क्या परमेश्वर ने ज्ञः दिव तक बड़ा परिष्कृत किया था कि जिससे एक के समान दिव लोग्ण ? और जो रक्षित को अन्त्यापकारी दिया तो सोमेश्वर यादि ज्ञः दिवों को क्या दिया ? अर्थात् आप दिया होगा देस काय विद्वान् का भी नहीं तो ईश्वर का क्योंकर हो सकता है ? अब रक्षित में क्या पुनः और सोमेश्वर यादि ने क्या दोष किया था कि जिससे एक को पवित्र लगा कर दिया और अन्त्यापकारी को देते हैं अपवित्र कर दिये ? ॥ ४२ ॥

४३—अपने पक्षीसी पर मूखी सखी मत दे । अपने पक्षीसी की बी और उसके दास उसकी शूरी और उसके बैक और उसके गाने और किसी वस्तु का जो तेरे पक्षीसी की है आश्चर्य मत कर ॥ ती या प २ । या १६—१७ ॥

समी०—अब । तभी तो ईसाई जीव परदेसियों के साथ पर देखे मुझसे हैं कि ज्ञानो ज्ञास सब पर भूख सब पर बैसी यह केवल मतवाचिष्ठानु और पक्षपात की बात है ऐसा ही ईसाइयों का ईश्वर अवश्य होगा । यदि कोई कहे कि

इस सब मनुष्य मात्र को पशुपती मन्त्रों हैं तो सिवाय मनुष्यों के अन्य कौन सी चीज राखी गये हैं कि जिसको अपशुसी गिमें ? इसलिये ये बातें स्वीकृत मनुष्यों की हैं ईश्वर की नहीं ॥ ४३ ॥

४४—आप सब लोगों में सब हर एक बड़े को और हर एक की को को पुत्र्य स संयुक्त हुई हो प्रायः सं मारा । परन्तु वे बेहियाँ जो पुत्र्य स संयुक्त नहीं हुई हैं उन्हें अपने बिये जीती रक्खो ॥ तौ गिनती ५ ३१ । आ १७-१८ ॥

समी०—बाहजी ! मूसा पान्थर और तुम्हारा ईश्वर बन्य है ! कि जो ची, बबक बूढ़ और पण्य प्राप्ति की इला करने से भी अलग न रहे और इसमें स्पष्ट निमित्त होय है कि मूसा बिचपी या क्योंकि जो बिचपी न होय तो अक्षतबानि अर्थात् पुत्रों स सम्पन्न न की बूढ़ कन्धारों का अपने बिये (स्त्री) मंज्यता व उसको ऐसी निर्दोषी व बिचपीपन की आज्ञा क्यों देता ? ॥ ४४ ॥

४५—जो कोई किसी मनुष्य का मात और बड़ नर आप बड़ निभय प्राप्त किया जान ॥ और बड़ मनुष्य प्राप्त में न खण्य है परन्तु ईश्वर ने उसके हाथ में सीप दिया है तब में तुम्हें मागने का क्वाब क्या दृग् ॥ तौ आ ५ २१ । आ १९-२३ ॥

समी०—जो बड़ इश्वर का न्यय सचा है तो मूसा एक आदमी को नार पादकर माग दया था उसका यह बूढ़ क्यों न हुआ ? जो कहा ईश्वर न मूसा का मारव के निमित्त सीपा था तो ईश्वर पण्यपत्नी हुआ क्योंकि उस मूसा का पत्रा स न्याय क्यों न होम दिया ? ॥ ४५ ॥

४६—और कुशल का बलिदान बेहोँ आ परमेश्वर क बिये बहाम्य ॥ और मूसा ने आपा छोड़ करे पत्रों में रक्ख और आपा छाह बेही पर बिचक्य व और मूसा ने उस छोड़ को करे छापी पर बिचक्य और क्या कि यह छाह उस निभय का है जिस परमेश्वर ने इस बातों क करय तुम्हारे सच किया है ॥ और परमेश्वर ने मूसा स कहा कि पहाड़ पर मुक्त पास का और क्या रह और तुम्हें पत्थर की पटियाँ और व्यवस्था और आज्ञा जो मैंने लिखी है दृग् ॥ तौ आ ५ २४ । आ २-९ । ८ । १९ ॥

समी०—अब देखिये ! ये सब ज्ञानी ज्ञापी को अपने हैं या नहीं ? और परमेश्वर क्यों का बलिदान सचा और बेही पर छाह बिचक्य यह कती ज्ञानीपन असाभयता की वजह है ? जब ईसाहूनों का नुरा भी बेहोँ का बलिदान सब ता उसके भक्त पाप क बलिदान की प्रसारी आ पेट क्यों न अरे ? और जगत् की इतिन क्यों न करें ? देखी २ पुरी बातें बाइबल में भरी है इसी क कुसल्यारों स बेहोँ में भी ऐसा कुछ हाव लगना चाहते हैं परन्तु बेहोँ में ऐसी बातों का काम भी नहीं और यह भी निभय हुआ कि ईसाहूनों का ईश्वर एक पहाड़ी मनुष्य का पहाड़ पर रहता था जब का नुरा क्वाही जगती अगज नहीं क्या जानता और न उसको प्राप्त था इसलिये शम्बर की पटियों पर लिख २ दया था और हन्दी ज्ञानियों क समग्र ईश्वर की वन देता था ॥ ४६ ॥

४०—धीर बोला कि तू मेरा रूप नहीं देख सकता क्योंकि मुझे देख के कोई मनुष्य न मियेगा ॥ धीर परमेश्वर ने कहा कि देख एक क्वात्र मेर पास है धीर तू उस दीखे पर बड़ा रह ॥ धीर भी होग कि जब मेरा विमल चक्षक निकलेगा तो मैं तुम्हें पहाड़ के दरार में रहस्यवादी धीर अब भी ना निकलूँ तुम्हें अपने हाथ से बाँधूँगा ॥ धीर अपना हाथ उठा खूँगा धीर तू मेरा पीछा देखगा परन्तु मेरा रूप दिखाई न देगा ॥ ती पृ ५ ३३। पा २ — २३ ॥

समी०—अब देखिये ! इसाहूँ का ईश्वर केवल मनुष्यवत् शरीरधारी धीर मूढ़ता से कैसा प्रपन्न रह के आप स्वयं ईश्वर नाम पढ़ा ओ पीछा देखेगा रूप न देखेगा तो हाथ से उसको बाँध दिया भी न होया । जब क्षुद्रा ने अपने हाथ से मूढ़ता को बाँधा होगा तब क्या उसके हाथ का रूप उल्टने न देखा होगा ? ॥ ४० ॥

अथ व्यवस्था की पुस्तक ती० ॥

४१—धीर परमेश्वर ने मूढ़ता को बुझाया धीर मरदखी के तन्मू में से यह वचन उसे कहा कि ॥ इसापूख के छान्ताल में से बोल धीर उन्हें कह बहि कोई तुम में से परमेश्वर के क्षिप् मेट कावे तो तुम दोर में से जर्बान् गन्व बैख धीर भेद ककी में से अपनी मेट काया ॥ ती का व्यवस्था की पुस्तक प १। पृ १—२ ॥

समी०—अब विचारिये ! इसाहूँ का परमेश्वर पाप बैख चारि की मेट खेने बाबा ओ कि अपने क्षिने बखिदाव करावे के क्षिने उपदेश करता है वह बैख गन्व चारि पद्यों के छोड़ मांस का भूषण प्यासा है या नहीं ? इसी से वह अधिष्ठक धीर ईश्वरकेहि में मिया कमी नहीं ना सत्य किन्तु मोहग्रही मपत्री मनुष्य के शरणा है ॥ ४१ ॥

४२—धीर कह उस बैख को परमेश्वर के आगे बखि करे धीर हाकन के बरे पात्रक छोड़ को निरख कर्ने धीर छोड़ को बख्खेरी के चारों धार ओ मरदखी के तन्मू हार पर है क्षिर्के ॥ तब कह उस मेट के बखिदाव की बाह निरखे धीर उसे टुकरा १ करे ॥ धीर हाकन के बरे पात्रक बख्खेरी पर आप रक्खे धीर उस पर ककरी चुर्ने ॥ धीर हाकन के बरे पात्रक उसके टुकरों को धीर शिर धीर निरखाई को उम ककरीचों पर ओ बख्खेरी की आग पर है क्षिर् से धरें ॥ क्षिर्से बखिदाव की मेट होवे ओ आग से परमेश्वर के सुगन्ध के क्षिने मेट किया गया ॥ ती कवचकवच की पुस्तक प १। पा ५—६ ॥

समी०—तबकि विचारिये ! कि बैख को परमेश्वर के आगे उसके भक्त मारें धीर वह मरदखे धीर छोड़ को चारों धीर क्षिर्के चारि में होम करें ईश्वर सुगन्ध खेने भक्ता कह कहाई के कर से कुछ कम्पती खिन्ना है ? इसीसे न पाइबख ईश्वरकृत धीर न वह बख्खेरी मनुष्य के सत्य खीचावारी ईश्वर हो शकता है ॥ ४२ ॥

५ — धीर परमेश्वर मूढ़ता से वह कहे बोला बहि वह अधिष्ठक किया हुआ पात्रक खेनों के पाप के समाप्त पाप करे तो वह अपने पाप के करण को उसने

रत्न है। एक यह बात ईसाइयों की बाइबल में बड़ी चरमूत है कि किय कहे किये पाप से पाप [भी] बूट जाय क्योंकि एक तो पाप किये और दूसरे जीवों की ईश्वर की ओर मूल आत्मज्ञ से मोस आधा और पाप भी बूट गया। भला क्योंत क बच क मरणा मरोहण से यह बहुत देर तक लक्ष्यता इमग लव भी ईसाइयों को दया नहीं आती। दया क्योंकि आये इनके ईश्वर क उपरुह ही ईश्वर करने क है और जब सब पापों क प्रथम प्रवर्धित है तो ईसा क विश्वास से पाप बूट जाता है यह कहा आत्मज्ञ क्यों करता है ? प २२ ॥

२३—तो उसी बखिदाव की आज उसी राजक की हमी जिसने उस बखाय और समस्त भोजन की बेट आ लभूर में पकाई जगें और सब को कबली में बचवा लव पर सा उसी राजक की हमी ॥ ती ६ प ०। प ८—३ प

समी०—हम जानते थे कि वहाँ दूरी के माने और मन्त्रियों के पुकारियों की पोपजीका विधि है परन्तु ईसाइयों के ईश्वर और उनके पुकारियों की पापजीका उससे सबलतया बचक है क्योंकि जय क राम और भाजम के पदार्थ पाने क पाने फिर ईसाइयों ने कूच मौज उकाई हमी और सब भी उकाई होंगे ? मरणा कोई मनुज एक कबक क मरणाये और दूसरे कबक को उससे मांस सिखाते देखा कभी हो सकता है ? केह ही ईश्वर के सब मनुज और पशु, बड़ी आदि सब जीव पुनर्जन्म है। परमेसर देखा कय कभी नहीं कर सकता। इसी से यह बाइबल ईश्वरक और इसमें बिजय ईश्वर योग इसके माननेपसे भर्मा कभी नहीं हो सकते पृथी ही सब कलें लवज्यलक्य आदि पुनर्जन्म में मरी है कदा तक गिनदें ॥ २३ ॥

गिमती की पुस्तक ॥

२४—तो यही ने परमेसर के दूत को अपने हाथ में लखकर लंबे हुए मार्ग में चला देखा लव गयी मार्ग से अलग कर में कियाई उल्लेख मार्ग में भिन्ने के बिम्ब कलधाम ने यही को छाकी से मरग ॥ लव परमेसर ने यही क सु ह कोवा और उसने कलधाम से कहा कि मैंने तेरा क्या किया है कि तूने मुझे सब ठीक कर मरा ॥ ती गि प २२। प २३। २८ ॥

समी०—कयम तो गले लव ईश्वर के दूतों को देखते थे और आत्मक विराज पावरी आदि जेह क धर्म मनुजों को भी लुहा या उसके दूत नहीं दीखते हैं, क्या आत्मक परमेसर और उसके दूत हैं क नहीं ? यदि हैं तो क्या बड़ी चीज में होते हैं ? या रोपी कयना कयन भूमाध में चले गये ? या किसी अन्य कयने लव गये क कय ईसाइयों से कल हो गये ? कयक मर गये ? निश्चित नहीं होता कि क्या हुआ ? अनुमान तो देखा होता है कि जो सब नहीं हैं नहीं दीखते तो लव भी नहीं थे और क दीखते हों किन्तु वे केवल मनमाये गयोहे उकाई हैं ॥ २४ ॥

समुपलब्ध की दूसरी पुस्तक ॥

२५—और उसी दल देखा हुआ कि परमेसर क बचन यह कहे वातव को पाने कि आ और मेरे देखक वाज्य से कह कि परमेसर को कहता है मेरे

मित्रता के बिना तु एक कर समानता नहीं जब स इसराएल के समान के मित्र
स मित्रता छाया देने ता आज के दिन जो कर मैं क्या न किया परन्तु तब मैं
और बेर में फिर किया ॥ ती समुद्र की दूसरी पु प ७ । का ४—६ ॥

समी०—अब कुछ समझें व रहा कि ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् देहधारी
नहीं है और उदाहरण दत्त है कि मैंने बहुत परिश्रम किया ईश्वर उभर खोजता फिरा
तो अब हाउर पर बगाने तो उसमें आराम कर ॥ नहीं ईसाइयों को एत ईश्वर
और ऐसे पुस्तक को मानने में क्या नहीं आती ? परन्तु क्या करें बिचार कैसे
ही गये अब विद्वानों के बिना क्या पुस्तक बनाना उचित है ॥ २२ ॥

राजाओं की पुस्तक ॥

२१—और बहुत स राजा मनुष्य ब्रह्म के राज्य के उन्नीसवें वर्ष के पाँचवें
मास आठवीं तिथि में बहुत के राजा का एक संवत् मनुष्य अष्टम जा मित्र सेवा
का प्रधान अष्टम या अष्टमसहस्र में आया और उसने समेकित का मन्दिर और राजा
का मन्त्र और मन्त्रालय के सारे कर और हर एक कर्षक का जहा विषय और
कर्मियों की सारी सजा में जो उस मित्र सभ के अन्तर्गत के साथ भी अष्टमसहस्र
की भीलों का चारों ओर से वा विषय ॥ ती ॥ प २२ । का ८—१ ॥

समी०—क्या किया आज ईसाइयों के ईश्वर ने तो अपने आराम के
दिने शब्द आदि स कर मन्त्रालय या उसमें आराम करता होना परन्तु मनुष्य
अष्टम ने ईश्वर के घर को नष्ट कर दिया और ईश्वर का उसके दूतों की सेवा
कुछ भी न कर सकी प्रथम तो इनका ईश्वर नहीं खोजता मारता या और
बिखरी होता या परन्तु अब अपना घर जहाँ तुम्हारा बैठा व जाने पुपुष्य नहीं
बैठा रहा ? और न जाने उसके दूत बिचार मान गये ? ऐसे समय पर कोई भी
कर्म न आया और ईश्वर का पराक्रम भी न जाने क्या कह गया ? यदि वह दूत
आयी हो ता जो २ विजय की बातें प्रथम लिखी सो २ सब लभ्ये ही गई । क्या
मित्र के लड़के लड़कियों के मारने में ही शूरवीर गया या अब शूरवीरों के सामने
पुपुष्य हो बैठा ? वह तो ईसाइयों के ईश्वर ने अपनी विन्ता और अविद्या करा
ही । ऐसे ही इसाई इस पुस्तक में निम्नलिखित कहानी है ॥ २३ ॥

अश्वर का दूसरा माग ॥

काका क समाचार की पहिली पुस्तक ॥

२४—सो समेकित मेर ईश्वर ने इसराएल पर मरी सेवा और इसराएल में
से सत्तर सत्तर पुत्र मिल गये ॥ काका २ । प २१ । का १० ॥

समी —अब देखिये ! इसराएल के ईसाइयों का ईश्वर भी छोटा ! जिस
इसराएल कुछ को बहुत स कर दिने ने और सत्तर दिन दिन के पक्ष में खोजता
या अब मर खोपित होकर मरी बाण क सत्तर सत्तर मनुष्यों को मार गया
जो वह किसी कवि ने लिखा है अब है कि—

सख कथ कण मुद्रा कपस्तुधः सख कथे ।

आप्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः ॥ १ ॥

जैसे कोई मनुष्य जय में प्रसन्न पक्ष में आसन्न होता है अथवा जय २ में प्रसन्न आसन्न होवे उसकी प्रसन्नता भी अवश्यापक होती है। वैसे ही वा ईसाइयों के ईश्वर की है ॥ २० ॥

प्रेम की पुस्तक ॥

२८—और एक दिन ऐसा हुआ कि परमेश्वर के आगे ईश्वर के पुत्र का पद हुए और ईशान भी उनके मन्त्र में परमेश्वर के आगे आ खड़ा हुआ। और परमेश्वर ने ईशान से कहा कि तू कहाँ से आता है तब ईशान ने उत्तर दे के परमेश्वर से कहा कि पृथिवी पर बहुत और ईश्वर उपर से फिरते जसा आता हूँ। तब परमेश्वर ने ईशान से पूछा कि तूने मेरे हाथ प्रेम की जानी है कि उसके समान पृथिवी में कोई नहीं है। वह सिद्ध और तब जन ईश्वर से करता और पाप से बचता रहता है और जब जो अपना सचाई को घर रखता है और तब मुझे उसे आकर सब करने को आता है। तब ईशान ने उत्तर दे के परमेश्वर से कहा कि नाम के बिना नाम ही जो मनुष्य का है सो अपने प्राण के बिना क्या। परन्तु जब अपना हाथ बड़ा और उसके हाथ मांस का है तब वह भिन्नगुण होने लगे सामने आयेगा। तब परमेश्वर ने ईशान से कहा कि देख वह ठेर हाथ में है केवल उसके प्राण को बचा। तब ईशान परमेश्वर के आगे आ खड़ा गया और प्रेम की गिर से तबने ही बुरे लोगों से मारा ॥ अथ प्रेम प २। आ १—७ ॥

समी०—अब देखिये! ईसाइयों के ईश्वर का सामर्थ्य कि ईशान उसके सामने उसके मर्त्य को दुःख देता है न ईशान का स्वयं न अपने मर्त्य को बचा सकता है और न दुःखों में से कोई उसका सामर्थ्य कर सकता है। एक ईशान ने अपने मर्त्य कर सकता है और ईसाइयों का ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं है। जो सर्वज्ञ होता तो प्रेम की परीक्षा ईशान से नहीं करता ॥ २८ ॥

अपेक्ष की पुस्तक ॥

२९—हाँ मेरे आत्मकरण से बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है और मैंने बुद्धि और वादार्थ्य और मूर्खता आदि को सब आत्मन में आत्म विद्या कि वह भी सब का पूरा है। क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा लोभ है और जो ज्ञान में बढ़ता है सो दुःख में बढ़ता है ॥ अथ अपेक्ष प १। आ १९—२८ ॥

समी०—अब देखिये! जो बुद्धि और ज्ञान परीक्षाधीन हैं उनको दो मानते हैं और बुद्धि बुद्धि में लोभ और दुःख आत्मन विद्या ज्ञानियों के ऐसा देखा और कर सकता है। इसलिये वह वादार्थ्य ईश्वर की कथा तो सब किसी विद्या की भी बचाई नहीं है ॥ २९ ॥

वह जो ज्ञाना तीर्थ जगत् के निम्न में विद्या इसके आगे कुछ मर्त्यचित्त आदि इन्दीय के निम्न में विद्या आता है कि जिसको ईसाई लोग बहुत आभाषण मानते हैं। जिसका नाम इन्दीय रखता है उसकी परीक्षा बोधी ही कहते हैं कि वह नहीं है ॥

मत्तीरचित इति ॥

१ — पीतुलीय का जन्म इस रीति से हुआ उसकी माता मरिचम की पूसक से मंगली हुई थी पर उनके इच्छा होने के पहिले ही वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भकृती है देखो परमेश्वर के पुत्र दूत ने स्वयं में उसे दर्शन दे कहा है इन्द्र के सन्तान पूसक तु अपनी की मरिचम को वहाँ जाने से मत रूक क्योंकि जो गर्भ रहा सो पवित्र आत्मा से है ॥ इ पर्व १। अ। १८। २०। ४

समी०—इन बातों को कोई बिद्वान् नहीं मान सकता कि जो प्रसपादि प्रमाण और सङ्ग्रह से विद्वद् हैं। इन बातों को मानना मूल मनुष्य ब्रह्मियों का धर्म है सम्य विद्वानों का नहीं। अज्ञा जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ सकता है? जो परमेश्वर भी निजम को उच्छेद्य पच्छा करे तो उसकी अज्ञा को कोई न माने और वह भी सर्वज्ञ और विघ्न है। देखे तो जिस १ कुम्हारिक के गर्भ यह आचरण काई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है और मूढ़ मूढ़ कह दे कि परमेश्वर के दूत ने मुझको स्वयं में कह दिया है कि वह गर्भ परमात्मा की ओर से है विसय यह असम्भव प्रपञ्च रहा है विसय ही स्व से कुम्हारी का गर्भकृती होना भी पुराणों में असम्भव सिद्धा है। देखी १ बातों को आका के अन्धे गड के पूरे लोग मानकर प्रमत्ता में गिरते हैं। यह देखी बात हुई होगी किसी पुत्र के साथ समागम होने से गर्भकृती मरिचम हुई होगी इसने का किसी दूत ने देखी असम्भव बात उचारी होगी कि इसमें गर्भ ईश्वर की ओर से है ॥ १ ॥

११—एक आत्मा पीतु को जन्म में ले गया कि शिशुन से उसकी परीक्षा की जाए। वह आधीस दिन और आधीस रात उपवास करके पीछे मुखा हुआ एक परीक्षा करनेवाले ने कहा कि जो गृह्य का पुत्र है तो कहे कि ये पत्थर तोड़ना बल उन्हें ॥ इ पर्व १। अ। १—३ ॥

समी०—इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ है कि ईसाई भी का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं क्योंकि जो सबज्ञ होता तो उसकी परीक्षा शिशुन से क्यों करता स्वयं जान छटा मन्त्र किसी ईसाई का आचरण आधीस रात आधीस दिन मुखा रखें या कभी बल सकेय? और इससे वह भी सिद्ध हुआ कि न वह ईश्वर का बल और न कुछ उसमें क्यामत धर्मोत् सिद्धि भी नहीं तो शिशुन के सामने पत्थर की तोड़ना क्यों न बल दता? और आप मुखा क्यों रहता? और सिद्धान्त यह है कि जो परमेश्वर ने पत्थर कहा है उनको राटी कोई भी नहीं बल सकता और ईश्वर भी पूर्वकृत निजम को उच्छेद्य नहीं कर सकता क्योंकि वह सर्वज्ञ और उसके सब काम किया मूढ़ मूढ़ कहें ॥ ११ ॥

१२—उसने उनसे कहा मत पीतु आका। मैं तुमको मनुष्यों के मनुष्य बनाऊँगा। व तुम्हें जाओ का जोहके उसका पीतु हो लिये ॥ इ प १। अ। १२—२१ ॥

समी०—विदित होता है कि इसी पाप आका को तीस में दण्ड आकाओं में सिद्ध है कि (अन्त्या लोग अपन माता पिता को दण्ड और मान्य करे जिससे

उनकी उमर बड़े सौ) ईसा ने व अपने माता पिता की सेवा की और दूसरे को भी माता पिता की सेवा से जुवाने। इसी अपराध से फिरकीनी व रहा और वह भी विदित हुआ कि ईसा ने मनुष्यों के फैसले के विषे एक मत कहा था है कि बाप में मनुष्यों के समान मनुष्यों को स्वयं में फैसाकर अपना प्रयोजन साधें। अब ईसा ही ऐसा था तो बापका के पादरी लोग अपने बाप में मनुष्यों को फैसावे तो क्या बापका है? क्योंकि जैसे बड़ी २ और बहुत अधिकारी को बाप में फैसानेवाले की प्रतिष्ठा और नीमिष बाधनी होती है ऐसे ही जो बहुतों को अपने मत में फैसा वे उसकी अधिक प्रतिष्ठा और नीमिष होती है। इसी से वे लोग जिन्होंने वेद और शास्त्रों को व पढ़ा व सुन अब विचार मोझे मनुष्यों को अपने बाप में फैसा के उसके मा बाप कुटुम्ब आदि से दूर कर देते हैं। इससे सब विद्वान् शास्त्रों को उचित है कि स्वयं इनके प्रमत्ताह से बचकर बाप अपने मोझे मनुष्यों के बचने में लगे रहें ॥ १२ ॥

१३—तब पीछे सारे गादीक देश में उनकी छायाओं में उपदेश करता हुआ और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में हर एक रोम और हर व्यक्ति को पढ़ा कता हुआ पढ़ा किया। सब रोमियों को जो न्याय प्रकर के रोगों और पीडाओं से दुःखी थे और भूतप्रदों और दुर्भाग्यो के अर्धांगियों को उसके पास खाने और उसने पढ़ा किया ॥ ई म प १। प १३—१४ ॥

समी०—जैसे बापका पोपकीया निमिषसे मन्त्र पुरस्कार प्राप्तकरे और और मन्त्र की पुस्तकी देने से धूर्तों को निमिषका रोमों को जुवाने कहा हो तो वह ईसाई को बात भी सही होने इस प्रकार मोझे मनुष्यों को मन्त्र में फैसाने के विषे वे कहें हैं। जो ईसाई लोग ईसा की कर्तों को मानते हैं तो पढ़ा के देनी मोमी को कहें नहीं नहीं मानते? क्योंकि वे कहें इन्हीं के सत्य हैं ॥ १३ ॥

१४—बाप के जो मन में होत है क्योंकि स्वयं का राज्य उन्हीं का है। क्योंकि मैं तुम से सब कहता हूँ कि जब जो बापका और शुक्ति दख व जायें तब जो अनरुपा से एक माध्य अवका एक निम्न विषय पढ़ा हुए नहीं टलेय। इसविषे इन अति छोटी भाषाओं में से एक को लोग करे और लोगों को ऐसे ही सिखाने वह स्वयं के राज्य में सब से जोय कहानेय ॥ ई म प १। प १४—१५ ॥ १५—१६ ॥

समी०—जो स्वयं एक है तो राजा भी एक हाथा चाहिये इसविषे मिलने होत है वे सब स्वयं को जानेंगे तो स्वयं में राज्य का अधिकार निमिषे होगा? अर्थात् परस्पर कहार्थ विवर्तन करेंगे और राज्यकावस्था कबड बबड हो जायगी और होत के करने से जो कजके लोग तब तो डीक नहीं जो निमिषाणी छोये तो भी डीक नहीं क्योंकि होत और अभिमान एकदम नहीं किन्तु जो मन में होत होत है उसका प्रलोभ कमी नहीं होत इसविषे वह बात डीक नहीं। जब बापका शुक्ति दख जायें तब अनरुपा भी दख जायगी। ऐसी अविम अनरुपा

मनुष्यों की होती है सर्वज्ञ ईश्वर की नहीं और वह एक प्रखोमम और भव मात्र दिवा है कि जो इध आजायी का न मानेगा वह स्वर्ग में सब से छोटा गिरा जायगा ॥ ६४ ॥

६२—हमारी दिन भर की रोटी काज हमें ३। अपने लिये पृथिवी पर धन का स्वयं मत करो ॥ इ म प ३। आ ११। १३ ॥

समी०—इसमें निहित होता है कि जिस समय इस का जन्म हुआ है उस समय जोमा जगजी और हरिद्र ये तथा ईसा भी बैसा ही हरिद्र या। इसी से तो दिन भर की रोटी की प्रसि के लिये ईश्वर की प्रार्थना करता और सिद्धांता है। अब ऐसा है तो ईसाई जाय प्रथम सज्जन क्यों करते हैं? उनको चाहिये कि ईसा के कथन से किन्द न बलकल सब दान पुण्य करके दीन होजायें ॥ ६५ ॥

६६—हर एक जो मुक्त स है प्रभु २ कला है। स्वर्ग के राज्य में प्रवृत्त नहीं करेंगे ॥ इ म प ३। आ २१ ॥

समी०—अब विचारिये कब २ पत्नी किरप सहैय और कुलीन जोमा जो वह ईसा का कथन सत्य है देखा समझे तो ईसा को प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न करें यदि इस बात की न मार्गा ता पाप से कभी नहीं बच सकेंगे ॥ ६६ ॥

६७—उस दिन मैं बहुतों मुक्त स कहूँगे तब मैं उनसे खोद के कहूँगा मैंने तुमको कभी नहीं जाना है। कुकर्मा करनेहार मुझसे दूर होओ ॥ इ म प ३। आ २२—२३ ॥

समी०—देखिये ईसा जगजी मनुष्यों को विधास करने के लिये स्वर्ग में स्थापार्थीय बनवा चाहता था यह कथन मोझे मनुष्यों का प्रखोमम देने की बात है ॥ ६७ ॥

६८—और ऐसो एक कोही ने था उसको प्रवास कर कहा है प्रभु! जो आप चाहें ता मुझे छुड़ कर सकते हैं पीछे ने हाथ बरा उस एक कहा मैं तो चाहता हूँ छुड़ होजा और उसका कोइ गुरमत शुद्ध होमया ॥ इ म प ३। आ २—३ ॥

समी०—ये सब बातें भाजे मनुष्यों के प्रसाध की हैं क्योंकि जब इसाई जोमा इन विद्या महिम्मकिन्द कालों को सत्य मानते हैं तो शुभचार्न्य पन्थकारि करवप आदि की बातें जो पुराण और भारत ० में अनेक ईश्वरों की मरी हुई घना को प्रिया ही इहस्पति के पुत्र कथ क इकहा २ कर जानवर और मरिचुषी का प्रिया दिवा फिर भी शुभचार्न्य ने जीता कर दिवा पद्यत् कथ का मरकर शुभचार्न्य को प्रिया दिवा फिर भी उसको बेट में जीता कर बादर मिमसा घान मर गया उसको कथ न जीता किया। कथप धरि ने मनुष्य सहित कुछ को लक स भय्य हुए पीछ पुनः कुछ और मनुष्य को प्रिया दिवा भयन्तरि

उसकी उमर बढ़े सो) ईसा ने न अपने माता पिता की सेवा की और दूसरे को भी मर्यादा दित्त की संघ से जुड़ाये। इसी अपराध से चिरंजीवी ब रहा और वह भी विरहित हुआ कि ईसा ने मनुष्यों के ईश्वराने के दिये एक मत ब्रह्मात्म है कि ब्रह्म में मनुष्य के समान मनुष्यों को समस्त में ईसाकर अपना प्रयोजन सार्थ। जब इस ही सेवा या तो ब्राह्मण के पादरी लोग अपने ब्रह्म में मनुष्यों को ईश्वराने तो क्या ब्रह्मर्षि है? क्योंकि ईश्वर बड़ी २ और बहुत अधिकारों को ब्रह्म में ईश्वराने की प्रतिष्ठा और अधिकार प्रकटी होती है ऐसे ही जो बहुतों अपने मत में ईसा को उसकी अधिक प्रतिष्ठा और अधिक होती है। इसी। लोग जिन्होंने देव और साकों को न पता न सुन्य उन विचारों मोझे मनुष्यों अपने ब्रह्म में ईसा के उद्योग या बाद कुटुम्ब आदि से पुनर् कन देते हैं। इस विचार व्यर्थों को उचित है कि स्वयं इसके प्रमत्ताय से बचकर ब्रह्म न मोझे मनुष्यों के बचाने में सार रहें ॥ १२ ॥

१३—तब पीछे सारे गच्छिष्ठ एक में उसकी समझों में उपदेश न हुआ और राम्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में हर एक और हर व्यक्ति को ब्रह्मा करता हुआ फिर किया। सब रोमियों को जो प्रचार न होय और पीछाओं से दुःखी वे और मृत्युमलों और सुगीमों के अर्द्धांगियों को उसके पास जाने और उसने ब्रह्मा किया ॥ १३ ॥

समी०—ईसे ब्राह्मण पोपजीया कियाये, मन्त्र धुरावर्य घायी बीज और मन्त्र की चुड़की देने से मूर्ती को विचारकता रोगी को जुड़ाय सक तो वह ईश्वर की कल भी लबो होने इस कारण मोझे मनुष्यों को में ब्रह्मने के दिये वे व्यर्थ हैं। जो ईसाई लोग ईसा की कल को मन्त्रों वहां के देवी मोर्तों की कल स्वी नहीं मानते? क्योंकि वे व्यर्थ हैं, सार्य हैं ॥ १३ ॥

१४—पन्थ के जो मत में दीन हैं क्योंकि स्वयं का राज्य उन्हीं। क्योंकि मैं तुम से सब कहता हूँ कि जब जो ब्राह्मण और गृध्मि दख र सब जो ब्रह्मणा से एक मात्र ब्रह्म एक किन्तु विषय पुत्र हुए नहीं। इसलिये इन प्रति जोड़ी ब्राह्मणों में से एक को योग के और लोगों के विचारों वह स्वयं के राज्य में सब से छोटा ब्रह्मण्य ॥ १४ ॥

१—४। १८—१९ ॥

समी०—जो स्वयं एक है ता दीन भी एक है। यह अधिकार इसी दीन है वे सब स्वयं का अधिकार तो स्वयं में राज्य का अधिकार किन्तु ब्रह्मण परस्पर ब्रह्मण भिदाई करें और राज्यब्रह्मणा ब्रह्म ब्रह्म और दीन के करने से जो ब्रह्मण छोड़ो सब तो दीन नहीं जो किन्तु भी दीन नहीं क्योंकि दीन और अधिकार एकवर्ष नहीं किन्तु जो मत। ई उन्का सम्पत्ति कभी नहीं है। यह ब्रह्मण्य वह बात दीन नहीं। गृध्मि दख जार्गे सब ब्रह्मणा भी दख जायगी। देवी धर्म

७१—वीरु ने अपने १२ शिष्यों को अपने पास बुला के उन्हें अत्यन्त भूतों पर अधिकार दिया कि उन्हें किसी भी और हर एक रोग और हर व्याधि को चढ़ा करें। बोखनेहार तो तुम नहीं हो परन्तु तुम्हारे पिता का आत्म तुममें बोधता है। मरु समझो कि मैं पृथिवी पर मिखाप करवाने को नहीं परन्तु कर्म चढ़वाने को आया हूँ। मैं मनुष्यों को उसके पिता से और बड़ी को उसकी मा से और पत्नी के उसकी सास से अलग करने आया हूँ। मनुष्य के घर ही के लोग उसके भी होंगे ॥ ई म प १। अ १३। १७—२६ ॥

समी०—वे व ही शिष्य हैं जिनमें से एक २ (तीस) ३ के लोग पर ईसा का एकदमेश्वर और अन्य बरख कर अलग २ भगवत्, महा न करते जब किन्तु ही स विद्वत् है कि भूतों का आत्म या मिखापना किन्तु औपधि का पन्थ के व्याधियों का सृष्टि सृष्टि से असम्भव है इसलिये ऐसी २ बातों का मानना अज्ञानियों का काम है यदि जीव बोखनेहार नहीं ईश्वर बोखनेहार है तो जीव क्या काम करते हैं? और सब का मिखापपन्थ के एक सुख का दुःख को ईश्वर ही भगवत् हाथ वह भी एक मिखाप पन्थ है और ईसा ईसा कूट कर्म और चढ़ाने को आया था बड़ी आश्चर्य कहें जायें मैं कह रहा हूँ, यह कैसी बुरी बात है कि कूट कर्म से सबका मनुष्यों को दुःख होता है और ईसाईयों न इसी को सुसम्भ्र समझ लिया होगा क्योंकि एक दूसरे की कूट ईसा ही अच्छी मानता था तो यह क्यों नहीं मानते होंगे? यह ईसा ही का काम हाथ कि घर के लोगों के लक्ष्मण के लोगों को बचाना यह भगवत् पुण्य का काम नहीं ॥ ७१ ॥

७२—तब वीरु ने उनका कहा तुम्हारे पास किन्तु रात्रियों ई उन्होंने कहा सत्य और बड़ी मनुषियों तब उसका लोगी का भूमि पर केवल की आत्म ही तब उसने तब सत्य रात्रियों को और मनुष्यों का अन्य मान के लोका और अपने शिष्यों को दिया और शिष्यों ने लोगों को दिया सा सब का के लक्ष्मण दुःख और जो दुःखे सब रह उनके लक्ष्मण उनके घर अपने जिन्होंने अपना सो चिन्तों और चढ़कों को लोका बार लक्ष्मण पुण्य से ॥ ई म प १२। अ २७—३६ ॥

समी०—जब इसलिये! क्या वह आश्चर्य के कूट किन्तु और इन्द्रजाही आदि के समान पक्ष की बात नहीं है? उन रात्रियों में अन्य रात्रियों नहीं से आया है? यदि ईसा में ऐसी सिद्धिवा होती तो आप मनुष्य दुःख गुण्डर के लक्ष्मण करने को क्यों भगवत् करता था अपने लिये मिही पायी और पत्नी आदि स मोहनमय रात्रियों क्यों न गया थी? वे सब बातें लक्ष्मण के लक्ष्मण की है, जैसा किन्तु ही साधु बैरागी ऐसी पक्ष की बातें करने लगे मनुष्यों को करते हैं, किन्तु ही ने भी है ॥ ९ ॥

७३—और तब वह हरदक मनुष्य को उसके कार्य के अनुसार कर्म दाय ॥ ई म प १६। अ २० ॥

समी०—जब कर्मोनुसार कर्म दिया जलगा ता ईश्वरों का पाप बन्धन का उपराध करना लक्ष्मण है और वह सत्य हा ता वह मनुष्य होव। यदि कोई

मे खाखीं मुर्खें मिथाने छाखीं कोड़ी चाखि रोमिनी को चढ़ा किया, छाखीं जम्मे और बहिरो को चाख और कप दिने इत्यादि कथा को मिथ्या क्यों कहते हैं ? जो उक्त बातें मिथ्या हैं तो ईश्वर की बात मिथ्या क्यों नहीं जो दूसरे की बात को मिथ्या और अपनी मूढ़ी को सच्ची कहते हैं तो इन्हीं क्यों नहीं ? इसलिये ईसाइयों की बातें केवल हठ और छद्मों के समान हैं ॥ ६८ ॥

६९—तब मृतप्रसन्न मनुष्य कबरस्थान में से निकल उठते या मिथे को पहा खों प्रतिप्रबन्ध थे कि उस मार्ग से कोई नहीं जा सकता था और देखो उन्होंने बिना के कहा हे बीछ ईश्वर के पुत्र ! आपकी हमसे क्या काम क्या आप समझ के धर्मो हमें पीड़ा देने को नहीं माने हैं ? सो मूर्खों ने उससे निकली कर कहा जो आप हमको लिखकते हैं तो सुखों के सुख में पैरने हीलिये उसने उल्लेख कहा आपको और वे निकल के सुखों के सुख में पैरने और देखो सुखों का साथ सुख कहावे पर वे धर्म में हीन धर्म और पानी में डूब मरा ॥ ई म प प । आ २५—२१ । २२ ॥

समी०—जब वहाँ तनिक विचार करें तो वे बातें सब मूढ़ी हैं क्योंकि मरा हुआ मनुष्य कबरस्थान से कभी नहीं निकल सकता वे किसी पर न जाते न संवाद करते हैं वे सब बातें छाखीं खोयो की हैं जो कि मर चुकी हैं वे देखी बातों पर लिखस करते हैं और उन सुखों की इच्छा करी, सुखरवाओं की हावि करने का पाप ईसा को हुआ होगा और ईसाई लोग ईश्वर को पापकर्म और पवित्र करने का काम मानते हैं तो उक्त मूर्खों को पवित्र क्यों न कर सकें ? और सुखरवाओं की हावि क्यों न भर दी ? क्या आत्मक के सुनिश्चित ईसाई धर्म का लोग इस पयोकी को भी मानते होते ? यदि मानते हैं तो भ्रमराज में पड़े हैं ॥ ६९ ॥

७—देखो लोग एक अर्द्धांगी को जो काले पर पड़ा था उल्लेख पास बाये और बीछ ने उक्त लिखस देखके उस अर्द्धांगी से कहा हे पुत्र ! उसका कर तब पाप घमा किये गये हैं मैं जमिनी को नहीं परन्तु पवित्रों को पकड़ताप के किये बुझाने जाता हूँ ॥ ई म प २ । आ २ । १३ ॥

समी०—वह भी बात कैसी ही असम्भव है किसी पूर्व लिख माने हैं और जो पाप जमा करने की बात है वह केवल मोक्षे लोगों को प्रक्षोभ देकर दिखाना है । पैर दूसरे के पिरे मर भाग और अक्षीय रखे का कथा दूसर को नहीं प्रस हो सकता कम ही किसी का किया हुआ पाप किसी के पास नहीं जाता किन्तु जो करता है वही भोगता है वही ईश्वर का न्याय है यदि दूसरे का किया पाप तुम्हें दूसरे को प्रस होव प्रथम न्यायाधीश स्वयं का खेरे का कर्तव्य ही को कथनोत्तर जब ईश्वर मर तो वह अन्त्यमकरी होखे । वही धर्म ही कर्मपाथक है ईश्वर का धर्म कोई नहीं और भ्रमराजों के जिसे ईश्वर चादि की कुछ आश्चर्यका भी नहीं और न पवित्रों के किये क्योंकि पाप किसी का नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

सिद्ध होता है और बाबा के समान होने के लोभ से वह चिदित होता है कि ईसा की बात निम्न और अविश्वस्य से बहुतसी सिद्ध भी और वह भी उसके मन में था कि लोग मेरी बातों को बाबा के समान मान लें उन्हें लाखों रुपय भी नहीं, बाबा मीन के मान लेंगे बहुत से ईसाइयों की कसबखिसी खाई है नहीं तो एसी बुद्धि, बिनाबिस्व जहाँ क्यों मान्ये ? और वह भी सिद्ध हुआ कि ईसा आप बिनाहीन बाबाबुद्धि हो तो मान्य को कसबख बनने का उपदेश क्यों करता ? क्योंकि जो ऐसा होता है वह दूसरे को भी अपने सखा बनाना चाहता ही है ॥ २२ ॥

२३—मैं तुम से सब कहता हूँ धनवालों को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा । फिर भी मैं तुमसे कहता हूँ कि ईश्वर के राज्य में धनवाह के प्रवेश करने से छंद का सुई के गाने में से जाना सख्त है ॥ ई म प १४ । पृ २३-२४ ॥

समी०—इससे वह सिद्ध होता है कि ईसा हरिश्च था । धनवान् लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते हैं जो इसलिये वह सिखा हुआ परन्तु वह बात सब नहीं क्योंकि धनवान् और हरिश्चों में अपने घुरे होते हैं जो कोई धनवान् काम करे वह अपना और कुछ काम करे वह कुछ कमा पाता है और इससे वह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था सर्वत्र नहीं, सब देश है तो वह ईश्वर ही नहीं जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है पुनः उसमें प्रवेश करने का न करने का यह कसब कसब अविश्व की बात है और इससे वह भी जाना कि जिसने ईसाई धनवान् हैं क्या वे सब स्वर्ग ही में जायेंगे ? हरिश्च सब स्वर्ग में जायेंगे ? जहाँ समिक सा विचार ईश्वरवादी करते कि जिसकी सामग्री धनवान् के पास होती है उसकी हरिश्च के पास नहीं यदि धनवान् लोग निवेक से धर्ममार्ग में ध्यान करें तो हरिश्च भी पति में बने रहें और धनवान् उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं ॥ २४ ॥

२५—बाबा व अगले कदम मैं तुम से सब कहता हूँ कि नई धर्म में जब मनुष्य का पुत्र बनने के लिये क सिद्धसक पर बैठे तब तुम भी जो मेरे पीछे हो बिचे हो पारह सिद्धसकी पर बैठ के इच्छासेक के पारह कुम्हों का न्याय करो । जिस किसी ने मेरे नाम के बिचे नहीं का भावपूर्ण का पहिनी का मान्य पिता का पौ का बहनों का भूमि को न्याय है सो ही गुना पाकेय और अचान्त जीवन का अधिकारी होग ॥ ई म प १३ । पृ २५-२६ ॥

समी०—अब देखिये ! ईसा के भीतर की खीसा कि मेरे नाम से मेरे पीछे भी लोग न निकल जायें और जिसने ३) अपने के लोग से अपने गुह को एकत्र मरवाया है सो पापी भी इसके पास सिद्धसक पर बैठेंगे और इच्छासेक क कुछ का पचपात से न्याय ही न किया जायगा किन्तु जबक सब गुनाह सख और अन्य कुम्हों का न्याय करेंगे । अनुमान होता है इसीलिये ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पचपात कर किसी मोरे ने काके को मार दिया हो तो भी बहुत पचपात व विपदायी कर जोड़ देते हैं । देखा ही ईसा क स्वर्ग का भी न्याय हम सब और इससे बड़ा होच जाया है क्योंकि एक धर्म की आदि में मरा और एक कथामद

कहे कि जमा करने के योग्य जमा किये जाते और जमा न करने के योग्य जमा नहीं किये जाते हैं यह भी ठीक नहीं क्योंकि सब कर्मों का फल बंधाधोम्य देने ही से न्यय और पूरी बना होती है ॥ ७३ ॥

७४—हे भविष्यती और इतीहो लोगो ! मैं तुमसे क्या कहता हूँ । यदि तुमको धर्म के एक शब्द के तुल्य विचार हो तो तुम इस पहाड़ से जो कहोगे कि वहाँ से वहाँ चला जाय वह चला जायगा और कोई कर्म तुमसे अपेक्षा नहीं होता ॥ इ ॥ प १० । अ १० । ३ ॥

समी०—अब जो ईसाई लोग उपदेश करते फिरते हैं कि "आधो इमार मल में पाप जमा कराओ सुक्ति पाओ" यदि वह सब सिद्धांत बात है क्योंकि जो ईसा में पाप बुझाने विचारस जमाने और पवित्र करने का समर्थ होता तो अपने शिष्यों के व्यापारों का विचार विचार पवित्र क्यों न कर देता ? जो ईसा के साथ २ हजारों से कम लोगों को कुछ विचारों और कदाचित्करी न कर सका तो वह मरे पर न जाने कहाँ है ? इस समय किसी को पवित्र नहीं कर सकते जब ईसा के चेहे शिष्य विचार से रहित थे और उन्होंने वह ईश्वर पुस्तक बर्ण है तथा इसका प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि जो भविष्यती अपवित्रता का कर्मों मनुष्यों का फल होता है उस पर विचार करना कदाचित् की इच्छा करके मनुष्यों का कर्म नहीं और इसी से वह भी सिद्ध हो सकता है कि जो ईसा का कर्म सचा है तो किसी ईसाई में एक धर्म के शब्द के समान विचार बर्ण ईसा नहीं है जो कोई कहे कि हम में कुछ का बोझ विचार है तो बखते कहना कि आप इस पहाड़ को मार्ग में से हटा दें यदि उनके हटाने से इच्छा तो भी पूरा विचार नहीं किन्तु एक धर्म के शब्द के आधार है और जो वह सब तो समझे एक धर्म भी विचार ईसा बर्ण धर्म का ईश्वरों में नहीं है यदि कोई कहे की वहाँ सममान यदि होयों का नाम पहाड़ है तो भी ठीक नहीं क्योंकि जो देख हो तो मुझे कभी कभी सुखान्तों को चला करवा भी चाहती चाहती विचारों और बातों का बोझ करके सचेत हस्त विचार होता जो देख मानें तो भी ठीक नहीं क्योंकि जो देख होता तो स्थितियों को पूरा क्यों न कर सकता ? इसलिये असमर्थ बात कदा ईसा की अज्ञानता का प्रमाण कहता है मध्य जो कुछ भी ईसा में विचार होती तो ऐसी अत्यन्त बड़बोझ की बातें क्यों कह देता ? तथा (विराट्पादों देते परन्वीऽपि इमाकत) कि जिस देव में कोई भी कुछ न हो तो उस देव में परबत का कुछ ही सब प्रकाश और अन्ध गिर जाता है कि महाब्रह्म की अज्ञानता के इतने में ईसा का भी होना ठीक था पर अज्ञान ईसा को क्या गन्त हो सकती है ? ॥ ७४ ॥

२—मैं तुम्हें क्या कहता हूँ जो तुम सब न विचारों और वाक्यों के समान न होनाओ ता कर्मों के राज्य में प्रवेश न करने पाया ॥ इ ॥ प १८ । अ २ ॥

समी०—अब अपनी ही इच्छा से सब का विचार धर्म का कारण और न विचार करके का कारण है तो कोई किसी का रूप कुछ नहीं हो सकता पहा

८ —आत्मनः और पुनर्जन्म का बोध परन्तु मेरी बातें कभी न छूँगी ॥

ई म प २२। आ २२ ॥

समी०—यह भी बात अविद्या और मूर्खता की है मन्ना आत्मनः दिखाकर कहा जाता है ? जब आत्मनः अस्तित्व होने से वेद से हीकला नहीं तो इसका विज्ञान कौन देख सकता है ? और अपने मुँह से अपनी बर्बाद करवा अपने मनुष्यों का कर्म नहीं ॥ ८ ॥

८१—तब वह उनसे जो नहीं चोर है कहेगा हे आपति लोगो ! मेरे पास से उस अवन्त आता मैं आपको जो कैलाश और उसके वृत्तों के किने तैयार की गई है ॥ ई म प २२। आ २३ ॥

समी०—मन्ना यह कितनी बड़ी पक्षपात की बात है जो अपने शिष्य है उनके लार् और जो दूसरे हैं उनको अवन्त आता मैं गिराना परन्तु जब आत्मनः ही न होय तो अवन्त आता करक बहिरुत कहा खेगी ? जो कैलाश और उसके वृत्तों को ईश्वर न बखला तो इतनी करक की तैयारी क्यों कस्ती पकती ? और एक कैलाश ही ईश्वर के लय सं न बदा तो यह ईश्वर ही क्या है ? क्योंकि उसी का वृत्त होकर बानी होम्य और ईश्वर उसके प्रथम ही एक्य कर बानीपूह में न बाक लय न म्मर लय पुनः उसकी ईश्वरता क्या ? जिसने ईश्वर को भी बाह्यतः दिन कुछ दिया ईश्वर भी उद्यम कुछ न कर लय तो ईश्वर का वेद होम्य लयें हुआ । इसलिये ईश्वर ईश्वर का न वेद और न बाह्यतः का ईश्वर ईश्वर हो सकता है ॥ ८३ ॥

८२—तब करह शिष्यों में से एक बहुराह इसकरिबोटी लय एक शिष्य प्रथम बाककी के पास गया और कहा जो मैं बीछ को आप लोगों के हाथ पकड़ा तो आप लोग मुझे क्या दिये उन्होंने उसे तीन रुपये देने की व्यवस्था ॥ ई म प २३। आ १४—१५ ॥

समी०—जब देखिये ! ईश्वर की लय क्रामात् और ईश्वरता यहां कुछ गई क्योंकि जो उसका प्रभाव शिष्य का वह भी उसके स्वरूप से सं परिभाषा न हुआ तो बीछों को वह मरे पीछे परिभाषा क्या कर सकेगा ? और उसके बिना ही लोग उसके मरते में कितने उग्रसे जाते हैं क्योंकि जिसने स्वरूप सम्बन्ध में शिष्य का कुछ कथनात् न किया वह मरे पीछे किसी का कथनात् क्या कर सकेगा ॥ ८४ ॥

८३—जब वे जाते थे तब बीछ वे रोड़ी सेके चम्पबाद किया और उस तोड़ न शिष्यों को दिया और कहा लोगो लोगो यह मेरा देह है और उसने कटोरा से १ कम्पबाद मान्य और उनके देहे कहा तुम इससे पीछो क्योंकि यह मेरा जोहू भरीयू लने निषम का है ॥ ई म प २३। आ २४—२५ ॥

समी०—मन्ना यह पूरी बात काई भी सम्म करेगा ? किन्तु अविज्ञान यहकी मनुष्य के शिष्यों के कानों की बीछ की अपने माँह और पीने की बीछों को जोहू नहीं कह सकता और इसी बात को व्याजक के ईश्वर लोग मनुमोजन

की रात के विच्छिन्न मरा, एक तो आदि से अन्त तक आया ही मैं पड़ा रहा कि कम भयप होय और दूसरे का इसी समय ज्ञान होगया यह किताब बड़ा अमूल्य है और जो मरक में जायगा सो अमन्त कम तक बरक भोगे और जो स्वर्ग में जायगा वह सदा स्वर्ग भोगेय यह भी बड़ा अमूल्य है क्योंकि अन्तधारे स्थापन और कर्मों का पक्ष अन्तधारा होय चाहिये और तुल्य पाप या पुण्य दो बीबी का भी नहीं हो सकता इसलिये धारतन्त्र से अधिक मूल्य कुछ कुछ बाँटे अनेक स्वर्ग और मरक ही तभी कुछ कुछ भोग सकते हैं सो ईसाइयों के पुस्तक में कहीं व्यवस्था नहीं इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत या इसा ईश्वर का पेटा कभी नहीं हो सकता । यह नये अर्थ की बात है कि कदापि किसी के मां काप ही नहीं हो सकते किन्तु एक की एक मां और एक ही काप होता है अनुमान है कि मुसलमानों ने जो एक को ७२ जिनो अद्विस्त में मिलाती हैं दिखा है सो नहीं से दिया होगा ॥ ७० ॥

७८—भोर की जब काल को फिर आता था तब इसको भूक जगी और मार्ग में एक गूजर का बूढ़ बेल के यह पक्ष पास आया परन्तु उस में और कुछ न पाया केवल पक्ष और उसको कहा कुछ मैं फिर कभी पक्ष न देखेंगे इस पर गूजर का पक्ष दुःखत सुन गया । ई म प २१ । पृ १८—१९ ॥

समी०—सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि यह बड़ा शान्त समाधिस्थ और ओबादि होपरहित का परन्तु इस बात की बखाने से ज्ञात होता है कि ईसा ओबा और बहुत के अपरहित का और वह बड़ा ही मनुष्यपक्ष के लम्बायुक्त बर्तता का । मन्त्रा जो कुछ बच पड़ा है उसका तथा अपराध था कि उसको लाप दिया और यह सुन गया उसके शप से तो न सुन होय किन्तु कोई पेसी ओबादि बखाने से सुन गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं ॥ ७८ ॥

७९—जब दिनों के वखेय के पीछे दुःखत एवं अविचार हो आपस और बाद अपनी ओरि न देव तारे अन्तः से फिर पक्षी और अन्तः की सेवा किम जायगी ॥ ई म प २३ । पृ २३ ॥

समी०—यह भी ईसा ! तारों की किम किम से फिर पक्षी करने वाला और अन्तः की सेवा कीयती है जो किम जायगी ! जो कभी ईसा ओबा की किम पक्षी तो अन्तः जान लेता कि ये तारे सब भूयोय हैं क्योंकि मिरर हल्ले मिरर होता है कि ईसा वहाँ के कुछ में अन्तः हुआ था सदा बकरे औरने बीकना अन्तः और ओबा का करता रहा होगा जब तरक उठी कि मैं भी इस बड़ा ही देश में फैलकर हो जाऊँगा क्यों करके जाय । किन्तु पाते उस के कुछ न आपसी भी किन्तु और बहुत ही दूरी वहाँ के लोग बड़ा ही से माव है । ईसा आजकल यूरोप देश उन्नतिपुक्त है ईसा पूर्व होता तो इसकी किन्तु ईसा भी न बखती । जब कुछ किम हुए पक्षात् भी अन्तः के पक्ष और इत से इस पक्ष मत को न ओबा कर लैना सत्य वेदमार्ग की ओर नहीं मुक्ते नहीं इसमें स्पष्ट है ॥ ७९ ॥

८ — अयोध्या और पुष्पिणी इतनी बारीकी परन्तु मेरी बातें कभी न उठेंगी ॥

ई म प २४। आ २२ ॥

समी०—यह भी बात अविद्या और मूर्खता की है मन्त्राचार्य हिंसक कहा आपराध ? जब आचार्य अतिलक्ष्म होने से बच से हीरका नहीं तो इसका हिंसक और बेवकूफ है ? और अपने मुँह से अपनी बड़ाई करना अपने मनुष्यों का काम नहीं ॥ ८ ॥

८१—तब वह उसके जो बहिर् ओर है कहेगा वे आपित होंगे ! मेरे पास से उस अमल भाग में जाओ जो रीतान और उसके दूतों के दिये तपार की गई है ॥ ई म प २४। आ २३ ॥

समी०—अब वह किसी बड़ी पक्षपात की बात है जो अपने शिष्य हैं उनको सर्व ओर जो दूसरे हैं उनको अमल भाग में गिराया परन्तु जब आचार्य ही न रहेगा तो अमल आप बरक पहिला कहा रहेगी ? जो रीतान और उसके दूतों को ईश्वर न बचाता तो इसी तरह की तैयारी क्यों कभी पड़ती ? और एक रीतान ही ईश्वर के भय से न बच तो वह ईश्वर ही क्या है ? क्योंकि उसी का दूत होकर बली होकर और ईश्वर उसको प्रथम ही पकड़ कर बन्धनगृह में न बंधा अथवा न मार अथवा कुछ उसकी ईश्वरता क्या ? जिसने ईसा को भी असीस दिन कुछ दिया ईसा भी उसका कुछ न कर अथवा तो ईश्वर का सेवा होना जरूर हुआ । इसलिये ईसा ईश्वर का न सेवा और न आश्चर्य का ईश्वर ईश्वर हो सकना है ॥ ८१ ॥

८२—तब बारह शिष्यों में से एक बहुराज इसकरिपोली नाम एक शिष्य प्रधान राजाओं के पास गया और कहा जो मैं बीभू को आप लोगों के हाथ पकड़ा तो आप लोग मुझे क्या देंगे उन्होंने उसे तीस रुपये देने को कहा ॥ ई म प २४। आ २४—२५ ॥

समी०—अब देखिये ! ईसा की सब कामना और इश्वरता वहाँ तक गई क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य का वह भी उसके आचार्य संग से पवित्रात्मा न हुआ तो औरों को वह मरे पीछे पवित्रात्मा क्या कर सकेगा ? और उसके किनासी लोग उसने मरोह में कितने ठगाने जात हैं क्योंकि जिसने आचार्य सम्बन्ध में शिष्य का कुछ कहाथा न किना वह मरे पीछे किसी का क्याथा क्या कर सकेगा ॥ ८२ ॥

८३—अब वे जाते थे तब बीभू न रोटी खेके बन्धनगृह किया और उस तोह के शिष्यों का दिया और कहा खेओ खाओ वह मरा देह है और उसने क्योरा से ९ बन्धनगृह मन्त्र और उनके देहे कहा तुम इससे पीओ क्योंकि यह मेरा कोह धर्मार्थ मरे निवास का है ॥ ई म प २४। आ २४—२५ ॥

समी०—अब वह ऐसी बात कोई भी सम्य कहेगा ? क्या अधिपति राजा मनुष्य के शिष्यों से खाने की चीज को अपने मांस और पीने की चीजों को कोह नहीं कह सकता और इसी बात को आचर्य के ईसाई लोग प्रमुनोजव

कहते हैं धर्मात् जाने पीने की बीजों में इस के मांस और खोह की प्रत्यक्ष कर
काते पीते हैं वह किसकी तुरी बात है, जिन्होंने अपने गुण के मांस खोह को भी
जाने पीने की प्रत्यक्ष से न बोझा तो और को कैसे बोझ सकते हैं ? ॥ ८२ ॥

८३—और वह पिता को और जन दो के दोनों पुत्रों को अपने संभ सेगन्ध
और लोक करने और बहुत उदास होने लगा तब उसने उसके कन्हा कि मेरा मन
पहां की अति उदास है कि मैं मरने पर हूँ और बोझा छोड़ के कहे वह मुह के
कह गिरा और प्रार्थना की हे मेरा पिता ! जो होसके तो वह कबोरा मेरे पास से
उठ जाय ॥ ८३ ॥ म प ३६ । पृ ३०—३१ ॥

समी०—देखो ! जो वह केवल मनुष्य न होता ईश्वर का केवल और
विभवदर्शी और विद्वान् होता तो ऐसी अनोखी सेवा न करता इससे स्पष्ट
निर्दिष्ट होता है कि वह प्रपंच ईश्वर ने प्रकृत उसके केवलों ने सृष्टमूर्त ब्रह्मण्ड है
कि वह ईश्वर का केवल मूल मन्त्रिण्य का केवल और पाप कर्म का कर्ता है । इससे
समझन चाहिये वह केवल साधारण सृष्टा स्रष्टा अविद्वान् का न विद्वान्, न
बोधी न सिद्ध का ॥ ८३ ॥

८४—वह बोझता ही था कि देखो बहुराह जो बारह दिनों में छे दूक या
या पण्डित और छोटी के प्रधान कर्मकी और मन्त्रीकी की ओर से बहुत बोझ
कर्म और छात्रिणी जिसे उसके संभ बीर के पञ्चपात्रेदारे ने उन्हें वह पत्र दिष्ट
या जिसको मैं ब्रह्म उसको पञ्चको और वह तुल्य बीर प्राप्त का बोझा है तुम
प्रबाम और उसको ब्रह्मा । तब उन्होंने बीर पर हाथ बाध के उसे पञ्चपात्र
सब दिष्ट उसे बोझ के मध्य । अन्त में दो सृष्टे साक्षी आके बोझे इसने कहा
कि मैं ईश्वर का मन्दिर का छकता हूँ उसे तीन दिन में फिर कर्म सज्जता हूँ । तब
महापञ्चक कहा हो बीर से कहा गया तब कुछ बहर करी देता मे खोग मेरे किन्तु
क्या साक्षी के हैं । परन्तु बीर तुम रहा इस पर महापञ्चक ने उससे कहा मैं
तुम्हें जीवते ईश्वर की किन्ता देता हूँ, हम से वह तब ईश्वर का पुत्र जीव है कि
नहीं । बीर उससे बोझा तब तो वह कुछ तब महापञ्चक ने अपने कर्म कर्म
के कहा वह ईश्वर की किन्ता कर कुछ है अब हमें छात्रिणी का और क्या
प्रयोग देखो तुमने समी उसके मुख से ईश्वर की किन्ता सुनी है । अब क्या
विचार करते हो तब उन्होंने उत्तर दिया वह कर्म के बोझ है । तब उन्होंने
उसके मुह पर धु कर्म और उसे ब्रह्मे मारे, औरों ने ब्रह्मे मार के कहा हे जीव !
हमसे मन्त्रिण्यसाक्षी बोझ किन्तु तुम्हें माता । पितरस बहर जंगने में केवल या
और एक दासी उस पात्र आके बोझी तब भी बीर साक्षीकी के सज्ज या उसने
सबों के सामने मुख के कहा मैं नहीं जानता तब क्या कहती । अब वह बहर
केवली में गया तो दूसरी दासी ने उसे देख के ओ खोग कहा मे पञ्चके कहा वह
भी बीर साक्षी के सज्ज था । उसने किन्ता आके फिर मुकता कि मैं उस मनुष्य
का नहीं जानता हूँ तब वह पिछर देवे और किन्ता जाने जाया कि मैं उस मनुष्य
को नहीं जानता हूँ ॥ ८४ ॥ म प ३६ । पृ ३०—३१ ॥ ४३—४४ । ४४ ॥

समी०—अब देख लीजिये कि जिसका इतना भी सामर्थ्य था प्रताप नहीं था कि अपने केले को एक बिन्दुस कर सकें और वे केले चाहे जगह भी क्यों न जाते तो भी अपने गुरु को जोर से न पकड़ते न मुझते न मिथ्यामापन करते न झूठी धिया करते और ईसा भी कुछ करमाती नहीं था वीसा तौरत में लिखा है कि लूत के घर पर फाड़नों को बहुत से मारने को वह अपने वे कहीं ईश्वर के दो गुरु वे उन्होंने उन्हीं को सम्हाल कर दिया। यद्यपि यह भी बात असम्भव है तथापि ईसा में तो इतना भी सामर्थ्य न था और आत्मकल कितना कमजोर उसके कम पर ईसाइयों ने बना रक्खा है। मर्या ऐसी दुर्दशा से मरने से आप स्वयं पूरु या समाधि बना अपना किसी प्रकार से प्रथम ज्ञेयता का सम्हाल था परन्तु वह बुद्धि किता किता के कहां से उपस्थित हो ? वह ईसा यह भी कहता है कि ॥ २२ ॥

म१ मैं जानी अपने पिता से किन्ती नहीं करता हूँ और वह मेरे पास स्वर्गियों की गारह सेवकों से अधिक पहुँच देगा ॥ इ० म प २१ ॥
॥ २३ ॥

समी०—असम्भवता भी जाता अपना और अपने पिता की बड़ाई भी करता करता पर कुछ भी नहीं कर सकता। देखो आत्मर्ष की बात जब महाप्रबल ने पूछा था कि वे जोर से तेरे बिन्दु साजी केते हैं इच्छा उत्तर दे तो ईसा चुप रहा वह भी ईसा न सम्हाल न किया क्योंकि जो सच था वह कहीं अक्षर्य वह देता तो भी सम्हाल होता। ऐसी बहुत सी अपने अक्षर्य की बातें करता उचित न थी और जिन्होंने ईसा पर पूरा दोष आचार्य मारा उसके भी उचित न था क्योंकि ईसा का उस प्रकार का अपराध नहीं था वीसा उसके विषय में उन्होंने किया परन्तु वे भी तो जान्ती थे ज्ञान की बातों को क्या समझें ? वह ईसा झुम्मुट ईश्वर का देता न बनता और वे उसके साथ ऐसी बुराई न करते तो दोनों के बिने उनका कम था परन्तु इतनी विद्या अमात्मता और अन्वयगीकता कहां से लाते ? ॥ २२ ॥

म२—बीरा अक्षर्य जाने क्या हुआ और अक्षर्य ने उससे पूछा क्या तु बहुतियों का राजा है, बीरा ने उसके कहा आप ही तो कहते हैं। अब प्रजापत्य प्रबल और प्रचीन लोग उस पर दोष लगाते थे तब उसने कुछ उत्तर नहीं दिया तब विद्वान ने उसके कहा क्या तु नहीं सुनता कि वे जोर से तेरे बिन्दु कितनी साजी केते हैं। परन्तु उसने एक बात का भी उसको उत्तर न दिया यहाँ को कि अक्षर्य ने बहुत अक्षर्य किया। विद्वान ने उसके कहा तो मैं बीरा से को बीरा कहा जाता है क्या कह ? लोगों ने उससे कहा वह कुरु पर बनाया जाये और बीरा को कोई मार क कुरु पर बनाये जाने को स्वीक दिया। तब अक्षर्य के पोषाची ने बीरा को अक्षर्य मकान में धाके धारी पछात उस पास हथौड़ी की और उन्होंने उसका बंध उतार के उस बांध बाण पहिराया और कटी का मुकुट गुरु क उसके गिर पर रक्खा और उसके दाहिने हाथ पर बरंड दिया और उसके बाएँ पुटल ठेक के वह वह के उसे उठा दिया हे पहुँचियों के राजा। मर्याम और उन्होंने उस पर धूँका और उस नईट को से उसके गिर पर मारा। अब वे उसके

छा कर तुझे तब उससे वह बाग उतार के उसी का वह पहिरा के उसे फल पर बसाने को बोलते । जब वे एक स्थान पर जो गछ गया वा अर्थात् खोपड़ी का कण्ठ कटता है पहुँचे तब उन्होंने सिरके में पिच मिखा के उस पीने को दिया । परन्तु उससे बीज के पीना न चाहा तब उन्होंने उसे क्रूर पर बसाया और उन्होंने उसका शोचन उसका शिर के ऊपर छात्रवा तब ही उन्हें एक शहिबी भोर और दूसरा बाई भोर उसके संग कहीं पर बसाने लगे । जो लोग उपर से आते आते वे उन्होंने अपने शिर दिखा के और वह कहे उधकी निम्न की । हे अम्रित के आह्वेहारे अपने को बचा जो तू ईश्वर का पुत्र है तो फल पर से उतर आ । इसी रीति से प्रथम पात्रकों ने भी अन्धकारों और प्राणीनों के संगियों ने छा कर कहा उससे औरों को बचाया अपने को बच नहीं सकता है जो वह इच्छासेव का राजा है तो फल पर से सब उतर आये और हम उसका विधम करेंगे । वह ईश्वर का भक्त रक्ता है । यदि ईश्वर उसको चाहता है तो उसको भव बसाने क्योंकि उससे कहा मैं ईश्वर का पुत्र हूँ । जो वह उससे संग बसाने लगे उन्होंने भी इसी रीति से उसकी निम्न की । दो प्रहर से तीसरे प्रहर को सारे देश में अन्धकार होमना तीसरे प्रहर के निम्न बीज ने बने सब से पुष्कर के कहा 'पूखी पूखीसामा समकनी' अर्थात् हे मेरे ईश्वर ! हे मेरे ईश्वर ! तुने कौ सुने ल्याय है । जो लोग वहाँ बसे वे उसमें से किसी ने वह पुष्कर कहा वह पुष्पाह को बुझता है । उनमें से एक ने तुल्य बीज के इस्त्र केके सिक्के में निमोच और वह फल रक्त के उसे पीने को दिया तब बीज ने फिर कहे सब से पुष्कर के सब ल्याय ॥ इ म प २० । आ ११—१२ २२—२३ २४—२१ २३—२४ । २० २ ॥

समी०—सर्वथा बीज के सब उन पुष्कों ने बुरा काम किया परन्तु बीज का भी दोष है क्योंकि ईश्वर का न कोई पुत्र न वह किसी का रूप है क्योंकि वह किसी का बाप होने तो किसी का अमर स्थाया सम्पत्नी यदि भी होने और जब अन्धकार ने पूछा था तब क्या सब का उतर देना था और वह डीक है कि जो २ आदर्श कर्म प्रथम किये हुए सब होत तो सब भी क्रूर पर से उतर कर सब को अपने शिर बसा लेता और जो वह ईश्वर का पुत्र होता तो ईश्वर भी उसके बचा लेता जो वह निम्नकर्षणी होता तो सिक्के में पिच मिखे हुए को बोझ के कौ दोषता ? वह पहिले ही से अमर्य होता और जो वह अन्धकारी होता तो पुष्कर २ के सब स्वी ल्यामता ? इससे वह जानता चाहिये कि चाहे कोई कितनी ही अनुराई कर परन्तु अन्त में सब सब और क्रूर मूढ़ हो जाता है इससे वह भी सिद्ध हुआ कि बीज एक उस समय के अन्धारी मनुष्यों में कुछ अच्छा था न वह अन्धकारी न ईश्वर का पुत्र और न मित्र का क्योंकि जो ऐसा होत तो ऐसा वह कुछ नहीं योग्य ? ॥ प ० ॥

सम—और देना क्या मूर्खोच हुआ कि परमेश्वर का एक दूत उतरा और था के अन्त क हार पर से फल सुक्य क उस पर देता । वह पहा पहा है और उसने कहा कि जो अन्ध है । जब वे उसके शिरों को सम्प्रेष आती थी, देखो

बीछ उनसे था मिठा कहा कल्याण हो और उन्होंने मित्र था उसके पाँव पकड़ के उसको प्रणाम किया । तब बीछ ने कहा मठ करो जाके मर माइनों से कहरो कि वे गधरीय को बाँधे और वही छ मुझे देखवे । म्पराह यिन्म गधरीय को उस पर्यंत पर गये जो बीछ ने उन्हें कलाया था और उन्होंने उसे देख के उसको प्रणाम किया पर कितनों को संदेह हुआ । बीछ ने उनके पास था उनसे कहा स्वर्ग में और पुनिषी पर समस्त अविष्मर मुझसे दिना गया है और वृद्धों में अगत् क अन्त हों सब दिन तुम्हारे संग हूँ ॥ ६ ॥ म प २८ । आ २ । ६ । ६—१ । १६—१८ । २ ॥

समी०—यह बात भी अत्यन्त वास्तविक नहीं क्योंकि चरित्रम और विषयमिद्वह । प्रथम ईश्वर के पास वृत्तों का हाथा उनको जहाँ तहाँ भेजना ऊपर से उतरना क्या तहसीलदारी कलेसरी के समान ईश्वर का क्या दिव्य ? क्या उसी शरीर से स्वर्ग को गया और जी अन्त ? क्योंकि जब क्षिप्तों ने उनका पूरा पकड़ के प्रणाम किया तो क्या वही शरीर था ? और वह तीन दिनकों सब क्यों न गया ? और अपने मुख से सब का अविष्मरी बसन्त कच्छ इन्म की बात है । यिन्मो छ मिद्वह और उनसे सब बातें करनी असम्भव है क्योंकि जो वे बात सब हों तो आश्चर्य भी कोई क्यों नहीं जी अन्त ? और कभी शरीर से स्वर्ग भी क्यों नहीं जाते ?

यह मत्पौरचित्त हंजीय का विषय हो हुआ अब मार्करचित्त जीव के विषय में लिखा जाता है ॥ ८८ ॥

माक रचित इन्जीय ॥

८८—यह क्या बड़ई नहीं ॥ ६ मार्क प ६ । आ २ ॥

समी०—असल में पूछक बड़ई था इसलिये इस भी बड़ई था । कितने ही वर्ष तक बड़ई का काम करता था पञ्चात् शिम्बर कथा २ ईश्वर का सेवा ही बन गया और उन्नीसी जागो ने बना लिखा तभी बड़ी करीमारी बड़ाई । अन्त पूर पूर अन्त करण इसका काम है ॥ ८९ ॥

लुकरचित्त इन्जीय ॥

९ — बीछ ने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है कोई बचम नहीं है केवल एक अगत् ईश्वर ॥ लू प १८ । आ १६ ॥

समी०—जब ईश्वर ही एक अद्वितीय ईश्वर कहता है तो ईश्वरों ने परिग्रह्य विक और पुत्र तीन कहा छ क्या दिये ? ॥ १० ॥

११—तब उद्य हरिदू के पास गया । ईश्वर बीछ का रूप के प्रति आनन्दित हुआ क्योंकि वह उसको बहुत दिन से देखना चाहता था इसलिये कि उसके विषय में बहुतसी बातें सुनी थी और उसका कुछ आदर्श कर्म देखने की उसका प्रार्थना हुई, उसने उससे बहुत बातें पूछी वस्तु उसने उस कुछ उत्तर न दिया ॥ लूक प १६ । आ ८—१॥

समी०—बहु शक्त मचीरचित में नहीं है इसलिये वे साही बिगड़ गये क्योंकि स्वही एकदो होने चाहिये और जो ईसा मरु और कर्मसाही होता तो (हेरोर को) उल्ट देता और कर्मसात भी दिखसाता इससे निश्चित होता है कि ईसा में बिगड़ और कर्मसात कुछ भी न थी ॥ २१ ॥

पोहनरचित सुसमाचार ॥

२२—आदि में बचन का और बचन ईश्वर के संग का और बचन ईश्वर का । यह आदि में ईश्वर के संग का । सब कुछ उसके द्वारा बना पया और जो बना गया है कुछ भी उस बिना नहीं बना गया । उसमें जीवन का और वह जीवन मनुष्यों का उद्विग्नता का ॥ प १ । आ १—४ ॥

समी०—आदि में बचन बिना कदा के नहीं हो सकता और जो बचन ईश्वर के संग का तो वह कदा कदा हुआ और बचन ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जब वह आदि में ईश्वर के संग का तो पूर्ण बचन का ईश्वर का वह नहीं हो सकता बचन के द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती जब तक उसका कारण न हो और बचन के बिना भी पुनर्जाप रह कर कर्ण सृष्टि कर सकता है जीवन किसमें या क्या या इस बचन से जीवन आदि मानवों को आदि है तो आदि के मनुष्यों में बाध कर्मका सुख हुआ और क्या जीवन मनुष्यों ही का उद्विग्नता है आदि का नहीं ? ॥ २२ ॥

२३—और विचारी के समक्ष में जब जीवन विमोच के पुन विह्वल इस्त्रिबोटी के मन में उठे पन्थाने का मत बाध पुन का ॥ प १३ । आ २ ॥

समी०—यह बात सब नहीं क्योंकि जब कोई ईसाइयों से पूछे कि ईश्वर सब को ब्रह्मन्ता है तो ईश्वर को जीवन ब्रह्मन्ता है जो कदा ईश्वर बाध का बाप ब्रह्मन्ता है तो मनुष्य भी बाप से बाप ब्रह्मन्ता है पुन ईश्वर का क्या काम ? और यदि ईश्वर का बचने और ब्रह्मन्ता का परमेस्वर है तो कदा ईश्वर का ईश्वर ईसाइयों का ईश्वर उदा परमेस्वर ही ने सब को उसके द्वारा ब्रह्मन्ता बना देवे बचन ईश्वर के हो सकते हैं । सब तो नहीं है कि वह ईसाइयों का पुस्तक और ईसा ईश्वर का क्या किन्हीं ने बचने के ईश्वर हो तो ही किन्तु न वह ईश्वरका पुस्तक न इसमें कहा ईश्वर और न ईसा ईश्वर का क्या हो सकता है ॥ २३ ॥

२४—तुम्हारा मत लाकुल न होने ईश्वर पर विचार करो और तुम्ह पर विचार करो । मर पिता के घर में बहुत से रहने के स्थान हैं नहीं तो मैं तुम्हारे कदम में तुम्हारे बिने कर्म विचार करने आया हूँ और जो मैं आपके तुम्हारे बिने कर्म विचार कर तो फिर आपके तुम्हें अपने वहाँ के आशय कि यहाँ मैं राहू तहाँ तुम भी रहो बीटु ने उधर कहा मैं ही मार्ग और सब और जीवन हूँ बिना मर द्वारा का कर्म बिना पात नहीं पहुँचता है । जो तुम मुझे आमत तो मर पिता को भी आते ॥ प १४ । आ १—४ ॥

समी०—अब इन्होंने ये इसा के कर्म कथा पोपसीखा स कमती है ? जो एसा मर्च व रक्ता ला उसके मत में कौन फसता ? क्या इसा ने अपने पिता को स्नेह में ले लिया है ? और जो कह ईसा के कथ है ला परधीन होने स कह इन्पर ही नहीं क्योंकि इन्पर किसी की सिधारेण नहीं सुनता । क्या इसा के पहिले कोई भी इन्पर को नहीं माल हुआ होगा ? ऐसे लाल आदि का प्रलोभन क्या और जो अपने मुख स आप मार्ग सम्य और जीवन बणता है वह सब प्रभर स प्रमी कहलात है इसस कह बात सम्य कभी नहीं हो सकती ॥ ३४ ॥

३५ मैं तुमस सब ९ कहता हूँ जा मुख पर विचार कर जो काम में करता हूँ उन्हें वह भी करोण और इसस को काम करोण ॥ जो ९ १४ ।
आ १२ ॥

समी०—अब इन्होंने जो इसार्थ बोध इस पर पूरा विचार रखते हैं क्या ही मुँह बिछाने आदि काम कभी नहीं कर सकते ? और जो विचार स भी आश्चर्य काम नहीं कर सकते ला ईसा ने भी आश्चर्य काम नहीं किये थे । एसा निश्चय मानना चाहिये क्योंकि स्वयं इसा ही कहता है कि तुम भी आश्चर्य काम करोण तो भी इस समय इसाई काई एक भी नहीं कर सकते तो किसी दिने की आँख फूट गई है वह इसा का मुँह बिछाने आदि का कामकर्ता मान लेते ? ॥ ३२ ॥

३६—जो चर्चत सार ईश्वर है ॥ जो ९ १० । आ ३ ॥

समी —अब चर्चत एक ईश्वर है ला इसाईकी कर तीन कहना सबस मिथ्या है ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार बहुत दिनों इन्हीके में सम्बन्ध करते मरी हैं ॥

याहम के प्रकाशित पाप्य ॥

अब याहम की प्रभुस बातें सुनो :—

३७—और अपने २ सिर पर खाने के मुख दिने हुए थ । और लाल चट्टीपक सिंहासन के लाल अलते में जो ईश्वर के बालों काप्ता है । और सिंहासन के चाम कर्च का समुद्र है और सिंहासन के आसपास चार मन्त्री हैं जो लाल पीपु नेत्रों स भरे हैं ॥ जो ३ १ । आ ३—६ ॥

समी०—अब इन्होंने एक काम के मुख्य इसाईको का स्पर्श है और इनका ईश्वर भी हीपक के समान प्रति है और मोने का मुख्यदि पाभूषण धारण करना और लाल पीपु नेत्रों का होना अत्यन्तविशेष है । इस बातों का कौन मान सकता है ? और क्या सिंघादि चार पुरु डिग है ॥ ३७ ॥

३८—और मैं सिंहासन पर बसवहार के शक्ति हाथ में एक पुस्तक लाना ला भीतर और पीठ पर लिखा हुआ था और गाल दाहिने स उम कान पर ही दुई थी । वह पुस्तक काखन और उसकी दाहिने लाइन के बाज कौन है और व स्वर्ग में व शक्ति पर व शक्ति के बीच काई वह पुस्तक काखन प्रथम उस देवद

पश्यतः यः । और मैं बहुत रोने लगा इसलिये कि पुस्तक बाँटने और पढ़ने पश्यतः उसे देखने के बोन कोई नहीं मिला ॥ वो प प २ । पा १—४ ॥

समी०—अब देखिये ईसाइयों के स्वर्ग में सिंहासनों और मनुष्यों का एक और पुस्तक कई जगहों से कन्ध किया हुआ जिसको बाँटने काहि कर्म करकेपछा स्वर्ग और पृथिवी पर कोई नहीं मिला बाँटने का रोना और पश्यतः एक प्राचीन ने कहा कि वही ईसा बाँटने काहा है, मनोबल यह है कि जिसका निम्न उक्त गीत, देखो ! ईसा ही के ऊपर सब महात्म्य मुख्यने जाते हैं । परन्तु मे बातें देखकर कन्धमात्र हैं ॥ ३८ ॥

३९—और मैंने यह भी और देखो सिंहासन के और चारों पक्षियों के बीच में और प्राचीनों के बीच में एक [मेष्य वैद्य वध किया हुआ कहा है ? जिसके सार सौम और सार नेत्र हैं जो सारी पृथिवी में मेरे हुए ईश्वर के सारों कायमा हैं ॥ वो प प २ । पा ६ ॥

समी०—अब देखिये ! इस बाँटने के लक्ष्य का मनोबलपर उस स्वर्ग के बीच में सब ईश्वर और ऊपर पशु लक्ष्य ईसा भी है और कोई नहीं यह वही अद्भुत बात हुई कि वही तो ईसा के दो नेत्र के और छींग का नाम भी व का और स्वर्ग में काने सार सौम और सार नेत्रका हुआ ! और वे सारों ईश्वर के कायमा ईसा के सौम और नेत्र का पने वे ! हाय ! देखी बातों को ईसाइयों ने क्यों मान लिया ? भला कुछ तो बुद्धि पाले ॥ ३९ ॥

१ —और अब उसने पुस्तक किया तब चारों माखी और चौबीसों प्राचीन मेमे के काग पिर पड़े और हर एक के पास बीच भी और रूप से करे हुए सोने के पिचले को पकित कोनों की धार्यवर्ण हैं ॥ वो प प २ । पा ८ ॥

समी०—भला अब ईसा स्वर्ग में न होय तब व निम्नर रूप हीन वैभव चर्चित काहि कुछ किस की करते हैं ? और वही प्रोफेटर ईसाई खेग सुपरस्टी (मूर्तिपूजा) का कबडन करते हैं और इनका स्वर्ग सुपरस्टी का कर वर रहा है ॥ १ ॥

१ १—और अब मेले जगहों में से एक को काहा तब मैंने यह भी चारों पक्षियों में स एक को कैसे मेव पर्वने के शम्भ को यह करते सुन कि आ और देख और मैंने यह भी और देखा एक स्नेह बोहा है और जो उस पर बैठ है उस पास धनुष है और उस मुकुट दिया गया और वह अब करता हुआ और अब करने को निकला । और जब उसने दूसरी जगह कोसी । दूसरा बोहा जो काय का निकला उसके यह दिया गया कि पृथिवी पर स मेले उक्त है । और जब उसने तीसरी जगह कासी दृष्ट वर काहा बोहा है । और अब उसका चौबीस जगह कासी और देखा एक पीछा स बोहा है और जो उस पर बैठ है उक्त नाम पशु है इत्यादि ॥ वो प प ३ । पा १—८ ॥

समी०—अब देखिये यह पुरायों स भी अधिक मिथ्या काहा है या नहीं ? भला पुस्तकों के कथनों का करने क पीछर काहा सचर क्योंकर रह सके होय ?

यह स्वप्ने का चरित्रान्तर निर्द्देश इसको भी सत्य माना है, उनमें जगिया ब्रिल्ली
कई उतनी पाकी है ॥ १ १ ॥

१ २ और वे बड़े शब्द से पुकारते थे कि ह स्वामी पवित्र और सत्य
कबलों नृन्मान नहीं करता है और शुक्ली क मिश्रसिद्धों य हमारे छोड़ का
पछटा नहीं जाता है और हर एक को उतका बक दिना गया और उनसे कहा गया
कि अबलों गुम्हार मन्त्री दास भी और गुम्हार भाई जो गुम्हारी माई बच बिले
जान पर है यह न हो लवलों और पाकी के विधान करो ॥ वा ॥ १ २ ॥
पा १ — ११ ॥

समी०—जो कोई इसाई होय व और सुपुर्ब हाकर ऐसा न्याय करने के लिये
राना करें जा बेदमार्ग का स्वीकार करण उसका न्याय होने में कुछ भी देर न
हामी । ईसाइयों से पूछना चाहिये क्या ईश्वर की कछहरी आत्मन्त्र बन्द है ?
और न्याय का काम भी नहीं होता न्यायाधीश विजयते बैठ है ? तो कुछ भी
कोक २ उतर न व सको और इनका ईश्वर कइक भी जाता है लीकि इनके
कदन से अब इनका शत्रु से पछटा सेमे सयता है और इतनीसे स्वभावसे है कि
मर पीढ़ स्वैर सिद्ध करते हैं शान्ति कुछ भी नहीं और जहां शान्ति नहीं वहां
दुःख का क्या पायावार होग ॥ १ २ ॥

१ ३ —और जैसा बड़ी कचार से दिखाना जान पर गृह्य क बृह से उसके
कहे गृह्य पवते हैं ठीक आकाश के तार शुक्ली पर गिर पड़े और आकाश पत्र
की माई जा सपटा जाता है अज्ञान हो गया ॥ वा ॥ १ ३ ॥ पा १३-१४ ॥

समी०—अब इन्होंने बोइन भविष्यहृत्ता ने अब सिद्ध नहीं है समी ता जेसी
अवदबवद क्या माई, मन्त्रा तार नभ भूपात्र है एक शुक्ली पर बस गिर सकते
हैं ? और मूर्खान्ति का आकर्षण उनका इधर उधर ली जान जाने द्य ? और
क्या आकाश को अर्थात् के समान समझता है ? वह आकाश सत्कार पदार्थ नहीं
ह मिश्रका कोई कपडे का इकट्ठा कर सक इसलिये वादन आदि सब जड़की मनुज
से उनका इन बातों की क्या खबर ? ॥ १ ३ ॥

१ ४—मैंने उनकी संख्या मुनी इच्छाएँ क सम्मानों क समस्त कुछ में स
एक लाख कचखीस सय्य पर धाव ही माई, विहृष्ट क कुछ में स करद सय्य
पर धाव ही माई ॥ वा ॥ १ ४ ॥ पा ४-५ ॥

समी०—क्या जो आह्वय में इधर सिद्ध है वह इच्छाएँ आदि कुछों का
समी है या सब संसार का ? जेसा न होता ता उन्हीं जड़खियों का साथ ली द्य ?
और उन्हीं का सहाय करता या दूनर का माय भिद्यन भी नहीं जाता इसन यह
ईश्वर नहीं और इच्छाएँ अर्थात् क मनुजों पर धाव सय्यका अय्यका अकय
वादन की मिथ्या कल्पना है ॥ १ ४ ॥

१ ५—इस करण व इधर क भिद्यन क जाय है और उनक मन्दिर में
एक और दिन उसकी सय्य भरत है ॥ वा ॥ १ ५ ॥ पा १५ ॥

समी०—क्या वह महादुःखरभी नहीं है ? अथवा उनका ईश्वर रहकारी
मनुज कुछ कइती नहीं है ? और ईसाइयों का ईश्वर तब में मात्र भी नहीं

है यदि सोचा है तो रात में पूजा सर्वोत्तर करते होंगे ? तथा उस की नींद भी उब जाती होगी और जो रात दिन आगता होगा तो बिबिस वा अति रभी होगी ॥ १ २ ॥

१ ६—और दूसरा वृत्त आपके बेदी के निम्न कक्षा हुआ जिस पास सोने की चूपाणी थी और उसको बहुत पूर दिया गया और पूर का बुँधा वसित बोरी की पर्येगाओं के सङ्ग वृत्त के हाथ में से ईश्वर के आगे चढ़ गया और वृत्त से वह चूपाणी उनके उस में बेदी की आग मर के उसे पृथिवी पर आका और सङ्ग और गर्जन और विद्रुधिनी और सुद्रोह हुए ॥ वा ५ ५ ८ । आ ३-२४

सर्मी०—यह देखिये स्वर्ग तक बेदी पूर दीन पैदा नुरही के शब्द होते हैं क्या कियेगों के अन्तर से इसाहनों का स्वर्ग कम है ? कुछ भूम घाम अधिक ही है ॥ १ ३ ॥

१ ७—परिच वृत्त ने नुरही कु की और जोहू से मिसे हुए आसे और आग हुए और से पृथिवी पर आके गये और पृथिवी की एक तिहार्ज जगहार्ज ॥ वा ५ ५ ८ । आ ७ ४

सर्मी०—आपने इसाहनों के अन्विष्टाह्वर ! ईश्वर, ईश्वर के वृत्त नुरही का शब्द और प्रत्यक्ष की जोका केवल कक्षों ही का एक दीकता है ॥ १ ७ ॥

१ ८—और पाँचवें वृत्त ने नुरही कु की और मैंने एक तारे को देखा था स्वर्ग में से पृथिवी पर गिरा हुआ था और जगह कुपक के रूप की कुप्री उसको ही गह और उसने जगह कुपक का रूप काया और रूप में से बड़ी मही के पुप की आई बुँधा उध और उस पुप में से दिद्रिनी पृथिवी पर निम्न गई और जिस पृथिवी के बीजुगी को अधिकतर होता है तेसा उन्ही अधिकतर दिना गया और उनका कहा गया कि उन अनुप्यों को जिनके माथ पर ईश्वर की छाप बनी है पाँच भास उन्ही बीका ही आप ४ वा ५ ५ ३ । आ १-२ ४

सर्मी०—क्या नुरही का शब्द मुनकर तार उन्ही वृत्तों पर और उसी स्वय में गिरे होंगे ? वहाँ तो वहीं गिरे । अच्छा वह रूप का दिद्रिनी भी प्रत्यक्ष के सिने ईश्वर न पायी होंगी और आप का एक बीच भी बनी होंगी कि आपकाओं को मत करो ? वह केवल आपके अनुप्यों को तरपा के ईसाह्वर का शब्द का भाव्य रूप है कि जो गुम इसाह्वर न होग तो गुमको दिद्रिनी कमेंगी पृथी वाले निप्यहीन रूप में चक सकती है आपकावरी में नहीं क्या वह प्रत्यक्ष की बात हा सकती है ? ॥ १ ८ ॥

१ ९—और बुँधनी की सत्याओं की संख्या बीस कराई थी ॥ वा ५ ५ ३ । आ १६ ॥

सर्मी०—अच्छा रतन वाले स्वय में कहाँ रहत कहाँ बात कहाँ रहत और कीतनी और करत ? और उसका पुर्णभ्य भी स्वर्ग में कितना हुआ होगा ? कम कम स्वयं, पुन ईश्वर और इस मत के सिने हम सब आत्मीय न तिकाकुधि है ही है जमा कर्मा इसाह्वरी के गिर पर से भी सर्ववर्धियान् की कृपा से नूर हो आच का बहुत चमका हो ॥ १ ९ ॥

११ —और मैंने दूसरे पराक्रमी दूत को स्वर्ग से उतारते देखा जो मेघ को छोड़े या और उसके गिर पर मेघ धनुष या और उसका मुह सूर्य की प्यार् और उसके पाँव आग के ज्वालों के ऐसे थे । और उसने अपना बाहिण पाँव समुद्र पर और बाँपा पृथिवी पर रक्खा ॥ वा प्र प १ । आ १—३ ॥

समी०—अब देखिये इन दूतों की कथा जो पुराणों या भाटों की कथाओं से भी बरकर है ॥ ११ ॥

१११—और जमी के समान एक नर्चट मुझे दिना गया और कहा गया कि उठ ईश्वर के मन्दिर और बेड़ी और उसमें के भजन करण हारों को गप ॥ वा प्र प ११ । आ १ ॥

समी०—यहाँ तो क्या परन्तु इसाहनों के तो स्वर्ग में भी मन्दिर बनावे और गये जाते हैं । अर्थात् है उनका विसा स्वर्ग है कैसी ही चर्च है, इसलिये यहाँ अनुमान में इस के शरीरावस्था मोक्ष कोह की आकाश करने जाते पाते हैं और मित्रा में भी क ह आवि का आकार कथना चाहि भी सुपरस्ती है ॥ १११ ॥

११२—और स्वर्ग में ईश्वर का मन्दिर बोलता गया और उसका निचम का संदूक उसका मन्दिर में दिखाई दिया ॥ वा प्र प ११ । आ १६ ॥

समी०—स्वर्ग में जो मन्दिर है सो हर समय बन्द रहता होगा कभी २ बोलता जाता होगा क्या परमेश्वर का भी कोई मन्दिर हो सकता है ? जो देवोक्त परमात्म्य सर्वव्यापक है उसका कहा भी मन्दिर नहीं होसकता । हाँ इसाहनों का जो परमेश्वर आकारवाला है उसका चाहे स्वर्ग में हो चाहे भूमि में हा और कैसी बोलता ह २ ५ २ की वहाँ होती है कैसी ही इसाहनों के स्वर्ग में भी और निचम का संदूक भी कभी २ इसाई लोग देखते होंगे उसका व जाने क्या अनुमान सिद्ध करते होंगे ? अब तो यह है कि ये सब बातें अनुमानों को सुमाने की हैं ॥ ११२ ॥

११३—और एक कहा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया अर्थात् एक की जो सूर्य पहिने है और चाँद उसके पाँवों तक है और उसके गिर पर बाण्य व्योम का मुकुट है । और वह गर्मबती होके चिन्ताती है क्योंकि प्रलय की पीड़ा उस जगो है और वा जगने को पीकित है । और दूसरा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया और देखा एक कहा आकाश अजगर है जिसके साथ गिर और दश सीमा है और उसके गिरों पर साथ राजमुकुट है और उसकी ५५ न आकार के व्योम की एक तिहाई का शीतल के उन्हें पृथिवी पर बाधा ॥ वा प्र प १२ । आ ३—४ ॥

समी०—अब देखिये कल्पे बीदे परोने । इनका स्वर्ग में भी किण्वी की चिन्ताती है उसका कुछ कोई नहीं मुकता न मित्रा सक्त है और उस अजगर की ५५ किण्वी नहीं थी जिसने व्योम की एक तिहाई पृथिवी पर बाधा ? मया पृथिवी तो पृथ्वी है और व्योम भी बने २ आकाश है इस पृथिवी पर एक भी नहीं समा सकता किन्तु वहाँ वहाँ अनुमान करना चाहिये कि ये व्योम की तिहाई इस व्योम के अन्तर्गत बाधे के पर पर गिर होंगे और जिस अजगर की ५५ इतनी नहीं

की जिह्वे सब तारों की तिहार्य खपेट कर भूमि पर गिरा दी वह अजगर भी उसी के कर में रह गया होगा ॥ ११३ ॥

११४—घोर स्वर्ग में कुछ हुआ मीनमेख और उसके तूत अजगर से कबे और अजगर और उसके तूत खड़े ॥ यो म प १२। पा ० ॥

समी०—जो कोई ईसाइयों के स्वर्ग में जाता होगा वह भी अर्द्धांग में हुआ पाता होगा, ऐसे स्वर्ग की वहाँ से आठ जोड़ हाथ जोड़ बड़ रहो वहाँ शान्ति मज और उपद्रव मज रहे वह ईसाइयों के योग्य है ॥ ११४ ॥

११५—घोर वह क्या अजगर गिराया गया। हाँ वह प्राचीन साँप जो विषालय और रैतान कहलाता है जो सारे संसार का भरमायेदारा है ॥ यो म प १२। पा ३ ॥

समी०—क्या सब वह रैतान स्वर्ग में वह सब लोगों को नहीं भरमाया था ? और उसको जन्म भर बन्धी में धिरा अपरा मार नहीं ब दावा ? उसको पृथिवी पर नहीं दावा दिया ? जो सब संसार को भरमायेदारा रैतान है तो रैतान को भरमानेवाला कौन है ? यदि रैतान स्वर्ग मजा है तो रैतान के बिना भरमानेवाले भर्मेगे और जो उसको भरमानेवाला परमेस्वर है तो वह ईश्वर ही नहीं बहरा। विदित तो वह होता है कि ईसाइयों का ईश्वर भी रैतान से बरता होगा क्योंकि जो रैतान से प्रबल है तो ईश्वर ने उसे अपनाय करते समय ही बरत नहीं ब दिया ? जगत् में रैतान का कितना राज्य है उसके सामने सृष्टिगत भी ईसाइयों के ईश्वर का राज्य नहीं इसीलिए ईसाइयों का ईश्वर उसे दया नहीं सकता होगा इससे वह सिद्ध हुआ कि जैसा इस समय के राज्याधिकारी इत्यादि दावदार आदि का राज्य बरत देते हैं वैसा भी ईसाइयों का ईश्वर नहीं, पुनः कौन ऐसा विद्वान् मनुष्य है जो वैदिकमत को जोड़ कपोलकल्पित ईसाइयों का मत स्वीकार करे ? ॥ ११५ ॥

११६—हाथ पृथिवी और समुद्र के निवासिवाँ ! क्योंकि रैतान तुम पास उतरा है ॥ यो म प १२। पा १२ ॥

समी०—क्या ईश्वर नहीं का रक्षक और स्वामी है ? पृथिवी मनुष्यादि प्राणियों का रक्षक और स्वामी नहीं है ? यदि भूमि का राजा है तो रैतान को नहीं ब मार सक्त ? ईश्वर देखता रहता और रैतान बहकता फिरता है तो भी उसको बर्मेता नहीं विदित तो वह होता है कि एक अजगा ईश्वर और एक समझे हुए दूसरा ईश्वर हाँ रहा है ॥ ११६ ॥

११७—घोर बग़ाबीस मास जो कुछ करण का अधिभार उस दिया गया। और उसका ईश्वर के सिद्ध निम्ना करने का अपरा मुह लावा कि उसके नाम की और उसके तंदू की ओर स्वर्ग में कस करनहारों की निम्न करे। घोर उसका वह दिया गया कि पवित्र लोगों से कुछ कर और उस पर जब कर और हर एक कुछ और मजद और दूध पर उसको अधिभार दिया गया ॥ यो म प १३। पा ५—० ॥

समी०—जहाँ जो पृथिवी के लोगों को बहकाने के लिये रैतान और पशु

चाहि को मेरे और पवित्र मनुष्यों से कुछ कराये वह कम बाहुलों के सर्दार के समान है क्या नहीं ? ऐसा कम ईश्वर के मर्कों का नहीं हो सकता ॥ ११० ॥

११८—और मैंने उहि की ओर देखो मेला सिनोव फर्त पर क्या है और उसके संग एक खाक क्वालीस सहस्र बर ने मिलके माथे पर उसका नाम और उसके पिता का नाम लिखा है ॥ यो ५ प १२। पा १॥

समी०—अब देखिये वहाँ ईसा का क्या रहता था वहीं उसी सिनोव पहाड़ पर उसका बचपन भी रहता था परन्तु एक खाक क्वालीस सहस्र मनुष्यों की गणना क्वॉलर की ? एक खाक क्वालीस सहस्र ही लोगों के कसी हुए । तो करोड़ों ईसाइयों के सिर पर न मोहर कगी ? क्या वे सब नरक में गये ? ईसाइयों को चाहिये कि सिनोव फर्त पर जाके देखें कि ईसा का क्या थाप और उसकी सेवा कहाँ है क्या नहीं ? जा हो तो यह केस डीक है वहीं तो मिथ्या बलि कहीं से वहाँ ध्याय तो कहीं से आता ? जो कहां कहां से तो क्या वे पछी हैं कि इतनी बड़ी सेवा और ध्याय उत्तर नीचे उड़कर आया जान्य करे ? बलि का आया आया करता है तो एक सिनो के न्यायाधीश के समान हुआ और वह एक हा का तीन हो तो वहीं सब समेता किन्तु न्यून से न्यून एक २ मूरोख में एक २ इन्कर चाहिये क्योंकि एक हो तीन बनेक मर्यादकों का न्याय करने और सर्वत्र पुण्यत् बूमने में समर्थ कभी नहीं हो सकते ॥ ११८ ॥

११९—आत्मा कहता है हो कि वे अपने परिभन से विभक्त किये परन्तु उनके कर्म उनके संग हो लेते हैं ॥ यो ५ प १२। पा १२ ॥

समी०—देखिये ईसाइयों का ईश्वर तो कहता है उसके कर्म उनके साथ रहेंगे अर्थात् कर्माकुसार फल सब को दिये जायेंगे और वह लोग कहते हैं कि ईसा पापों को से केस और चमा भी दिये जायेंगे, वहाँ बुद्धिमान् बिचारें कि ईश्वर का बचन क्या था ईसाइयों का ! एक बात में दोबो तो सन्ने हो ही नहीं सकते इन्में से एक कृम्य अवश्य होगा । हमको क्या कहे ईसाइयों का ईश्वर कृम्य हो या ईसाई लोग ॥ ११९ ॥

१२ —और उसे ईश्वर के कोप के कहे तब के कुम्ह में बाधा । और तब के कुम्ह को रीन्दन बरन के बाहर किया गया और तब के कुम्ह में से बोर्नी की क्षाम तक छोड़ एकली कोस तक वह निकला ॥ यो ५ प १४ । पा १४—२ ॥

समी०—अब देखिये इनके गपाड़े पुराणों से भी बककर हैं क्या नहीं ? ईसाइयों का ईश्वर कोप करते क्षमन बहुत दुःखित हो जाता इन्म और जो उसके कोप के कुम्ह भर हैं, क्या उसका काप बरन है ? या सम्य प्रमिष्ठ पदाव है कि जिसके कुम्ह भर है ? और सी कोस तक रुधिर बहना असम्भव है क्योंकि रुधिर कबु कमसे च भव जम जाता है कुम्ह क्वॉलर वह सकता है ? इच्छिब देसी यतें मिथ्या होती है ॥ १२ ॥

१२१—और क्वो तर्ष में पायी क तम्ह का अग्निद काया गया ॥ यो ५ प १२। पा २ ॥

समी०—जो ईसाइयों का ईश्वर सबज्ञ होता तो साक्षियों का क्या काम ? क्योंकि वह स्वयं सब कुछ जानता होता इससे सर्वथा बहरी निराश होता है कि इनका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं क्योंकि मनुष्यवत् भ्रष्ट है वह ईश्वर का क्या काम कर सकता है ? यदि यदि यदि और इसी प्रकार में तूटों की बड़ी २ असंभव बातें लिखी हैं । इनको सत्य कोई नहीं मान सकता । कहाँ तक कि वह इस प्रकार में सर्वथा ऐसी बातें मरी हैं ॥ १२१ ॥

१२२—और ईश्वर ने उसके पुत्रों को भर्त्सित किया है । जैसा तुम्हें उसने दिया है किन्तु उसको भर देओ । उसके कर्मों के अनुसार नृत्वा उसे दे देओ ॥ वो प्र प १८ । पृ २—६ ॥

समी —देखो प्रत्यक्ष ईसाइयों का ईश्वर भ्रम्यात्मकरी है क्योंकि स्वयं उसी को कहते हैं कि जिसने वैसा या मिलना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही पक्ष देना, उससे अधिक न्यून देना भ्रम्यात्म है । जो भ्रम्यात्मकरी की उपस्थिति करते हैं वे भ्रम्यात्मकरी क्यों न हों ? ॥ १२२ ॥

१२३—क्योंकि मेरे का किन्तु या पहुँचा है और उसकी की वे अपने को तैयार किया है ॥ वो प्र प १८ । पृ ७ ॥

समी —अब सुनिये ! ईसाइयों के स्वयं में किन्तु भी होता है ! क्योंकि ईसा का किन्तु ईश्वर ने नहीं किया । नृत्सुत चाहिये कि उसके अमुर अमुर शाखादि बीच में और उसके बाहे किन्तु हुए ? और बीच के बात होने से वह बुद्धि पराक्रम अमुर अमुर के भी न्यून होने से अब तक ईसा ने नहीं शरीर दिया किया होगा क्योंकि संयोगात्मक पदार्थ का मिश्रण अवश्य होता है, अब तक ईसाइयों ने उसके किन्तु में जोका दिया और न जाने कतक बोले में रहेंगे ॥ १२३ ॥

१२४—और उसने अमुर को अवात् प्रतीय साप को जो दिव्यता और शिष्टता है पक्ष के उसे सहज वर्षों वाप रखा । और उसके अमुर अमुर में अमुर और पक्ष करके उस अमुर ही मिलते वह अमुरों सहज वर्ष पू न हों तबलों फिर देनों के अमुरों को न भरमाने ॥ वो प्र प १ । पृ २-३ ॥

समी०—देखो मर १ करके शिष्टता को पक्ष और अमुर वर्ष तक पक्ष किया फिर भी अमुर का पक्ष फिर न भरमाने ? ऐसे हुए को तो कन्दीपूह म ही रखा या मर किया जोका ही नहीं । परन्तु वह शिष्टता का होना ईसाइयों का अमुरात्मक है अमुर में कुछ भी नहीं कमजोर अमुरों को दरा क अपने अमुर में जाने का अमुर रखा है । जैसा किन्तु पूर्व ने किन्तु अमुर मनुष्यों का कहा कि अमुर तुमको देता का दर्शन अमुर किन्तु पक्ष अमुर देर में वह अमुर पक्ष मनुष्य को अमुर अमुर रखा । अमुर में कहा करके कहा कि अमुर बीच को अब में अमुर अमुर और फिर अब अमुर तभी बीच को वो म मीकाय वह अमुर हो जाना । वैसी हल मत बाकी की बातें हैं कि जो हमारा मजहब न माफेय वह शिष्टता का अमुरात्मक हुआ है अब वह सामने अमुर तब कहा रखा

और पुनः शीघ्र कहा कि नीच को जब फिर भागी में किए गया तब कहा कोको ।
देखा बालाबाल को सब ने दर्शन किया । किसी कीका महामहिमी की है इसलिये
इन्की भाव में किसी को न बैसना चाहिये ॥ १२४ ॥

१२५—जिसने समुद्र से पृथिवी और वायुमय भाग गये और सबके
लिये कहा न मिछी । और मैंने क्या बोले क्या बने सब मृतकों को ईश्वर
के धर्मो वाले देखा और पुस्तक कोले गये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवन का
पुस्तक कोला गया और पुस्तकों में लिखी हुई बातों से मृतकों का विचार उनके
कर्मों के अनुसार किया गया ॥ यो म प २ । पा ११—१२ ॥

समी०—यह देखा अचक्यम की बात मका पृथिवी और वायुमय कते
भाग लकी ? वे किस पर उदरेंगे । जिनक सामने थे जो और उसका सिद्धान्त
और कह कहां उदर ? और मुझे परमेश्वर के सामने लगे किये गये तो परमेश्वर
भी क्या वा कहा होमा ? क्या कहां की कचहरी और दूधध के समान ईश्वर का
अन्वहार है जो कि पुस्तक खोजासुसार होता है ? और सब जीवों का हाथ ईश्वर
ने लिखा का उसके गुणमती ने ? ऐसी २ बातों से अजीब का ईश्वर और ईश्वर
का अजीब ईसाई पादि मत कहां ने क्या दिया ॥ १२५ ॥

१२६—उन्में से एक मेरे पास आया और मेरे सङ्ग [बात करके] बोला
कि या मैं दुःखदिव को अर्थात् मेम्मे की की को तुम्हें दिखाऊ या ॥ यो म
प २१ । पा ४ ॥

समी०—मका ईसा ने स्वर्ग में दुःखदिव अर्थात् की अच्छी पाई, मीन
करता होता को २ ईसाई कहां जाते होंगे उनके भी लिखा मिलती होगी और
सबके सबे होते होंगे और बहुत भीष के होबने से रोमैरपि होकर मरते भी
होंगे ऐसे स्वर्ग को दूर स हाथ ही जोषण अच्छा है ॥ १२६ ॥

१२७—और उसने उस बह से नगर को गया कि सारे सारथी कोश का
है उसकी कन्याई और बीबाई और कन्याई एक समान है । और उसने उसकी
भीत को मनुष्य के अर्थात् दूत के बाप से बाप कि एकसी अर्थात् हाथ की है ।
और उसकी भीत की कन्याई सूर्यमन्त्र की थी और नगर निर्मल सोने का था
जो निर्मल कांच के समान था । और नगर की भीत की केवें हरएक बहुमूल्य
फलर से संधारी हुई थी । पहिली ने सूर्यमन्त्र की थी दूसरी बीजमणि की
तीसरी काकड़ी की चौथी मरकत की । पाँचवीं ममेरु की छठीं माखिल की
सातवीं पीठमणि की आठवीं परोज की नवीं पुष्करा की दसवीं बहसलिये की
ग्यारहवीं भूजमन्त्र की बारहवीं मर्त्य की और बारह अटक बाह मोती ये,
एक २ मोती से एक २ अटक बना था और नगर की सबक स्वर्ण कांच के देश
निर्मल छाने की थी ॥ यो म प २१ । पा १६—२१ ॥

समी०—पुनः ईसाइयों के स्वर्ग का वर्णन ! यदि ईसाई मरत जय और
जम्मे जते हैं तो इतने बड़े शहर में क्या समझ लकी ? क्योंकि उसमें मनुष्यों का
बापम होमा है और उन्में निभकते नहीं । और जो वह बहुमूल्य रत्नों की कमी
हुई नगरी मानी है और सर्व सामे की है इत्यादि सब कलक माध २ मनुष्यों का

समी०—जो ईसाइयों का ईश्वर समझ होता तो साक्षिबों का क्या काम ? क्योंकि वह सर्व सब कुछ व्यापता होता इसके सर्वथा नहीं विज्ञान होता है कि इसका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं क्योंकि मनुष्यवत् जगत्पन्न है वह ईश्वरता का क्या काम कर सकता है ? नहीं नहीं नहीं और इसी प्रकार में मूर्खों की बड़ी २ असम्भव बातें सिद्धी हैं । उनको सदा कोई नहीं मग्न सकता । कहाँ तक जितने इस प्रकार में सर्वथा पेसी जाते मरी हैं ॥ १२१ ॥

१२२—और ईश्वर से उसके कुकर्मों को समझ लिया है । जैसा तुम्हें उसने दिया है कि उसको घर देखो । उसके कर्मों के प्रयुक्त हुए उसे दे देखो ॥ वो म प १८ । या २—४ ॥

समी —देखो प्रत्यक्ष ईसाइयों का ईश्वर जगत्पन्नकारी है क्योंकि जगत्पन्न उसी को कहते हैं कि जिसने जैसा का जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही पन्न देना उसके धर्मिक जगत्पन्न देना जगत्पन्न है । जो जगत्पन्नकारी की उपासना करते हैं वे जगत्पन्नकारी नहीं ब हैं ॥ १२२ ॥

१२३— क्योंकि मेरे का किया था पहुँचा है और उसकी जो वे अपने को दिया किया है ॥ वो म प १६ । या ७ ॥

समी०—अब सुनिये ! ईसाइयों के स्वर्ग में किया ही होते हैं ! क्योंकि ईसा का किया ईश्वर ने नहीं किया । पृथ्वी चाहिये कि उसके समुद्र समुद्र साक्षिबों के और उनके बाड़े पित्तों हुए ? और वीरों के बाढ़ होने से वह बुद्धि पराक्रम प्राप्त प्राप्ति के भी जगत्पन्न होने से जब तक ईसा ने कहा गरीर क्या किया होगा क्योंकि सत्ताजगत्पन्न पदार्थ का विरोध समस्त हाँटा है अब तक ईसाइयों ने उसके विचार में जोका जगत्पन्न और न जाने कबतक पोले में रहेंगे ॥ १२३ ॥

१२४—और उसने जगत्पन्न को जगत्पन्न प्राचीन ज्ञान को जो विनाश और विनाश है पन्न के उसे सहज सर्वज्ञों बाँध रक्का । और उसको जगत्पन्न कुल में बाँधा और पन्न करके उस काप ही जिससे वह जगत्पन्न सहज सर्व पन्न ब हैं तबलों फिर इसी के जगत्पन्न को न मरमाने ॥ वो म प २ । या २-३ ॥

समी०—देखो मक २ करके विनाश को पन्न और सहज सर्व तक पन्न किया फिर भी जगत्पन्न क्या फिर न मरमाने ? ऐसे कुछ को तो कभीगुह में ही रक्का या मारे किया जोड़ना ही नहीं । परन्तु वह विनाश का होता ईसाइयों का भ्रममात्र है जगत्पन्न में कुछ भी नहीं केवल जगत्पन्न को दया के अपने जगत्पन्न में दाने का उपाय रक्का है । जैसे किसी जगत्पन्न ने किसी मोक्ष मनुष्यों का कहा कि जगत्पन्न तुमका देवता का दर्शन कराऊ किसी पन्नगत देव में से जगत्पन्न एक मनुष्य को जगत्पन्न जगत्पन्न रक्का । जगत्पन्न में कहा करके कहा कि जगत्पन्न मोक्ष को जगत्पन्न में कर्तुं जोड़ना और फिर जगत्पन्न तभी मोक्ष का जो न मोक्षगत वह जगत्पन्न हो जगत्पन्न । किसी इस मत जगत्पन्न की बातें हैं कि जो हमारा मजहब न माक्षिक वह विनाश का जगत्पन्न हुआ है जब वह सामने जगत्पन्न तक कदा देको

अनुभूमिका (४)

जो यह ११ चौदहवां समुदास मुसलमानों के मतविषय में लिखा है, सो केवल कुतल के सम्प्रदाय से ज्ञान प्रप्य के मत से नहीं क्योंकि मुसलमान कुतल पर ही पूरा विश्वास रखते हैं यद्यपि फिरके होने के कारण किसी एक धर्म भादि विषय में विवाद बात है तथापि कुतल पर सब ऐकमत्य है। जो कुतल सभी मध्य में है उस पर मोघबियों के ऊर्ध्व में कार्य लिख्य है उस कार्य का देख-पान्सी अक्षर और आर्चनपात्रार कराके पचात् सभी क कये १ छिदावों से एक करण के लिखा गया है। यदि कोई कये कि वह कार्य हीन नहीं है तो उसके उचित है कि मौखिकी सबकों के ऊर्ध्वों का पहिले कबजल करे पचात् इस विषय पर लिखे ॥

क्योंकि यह लोक केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्तास्त्र के निर्माण के विषये सब मतों के विषयों का बोधा १ ज्ञान होने इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का कलकल कर गुणों का प्रशय करें न किसी अन्य मत पर न इस मत पर कूटमूठ कुतल या मन्दाई आद्यने का प्रयोजन है किन्तु जो १ मन्दाई है वही मन्दाई और जो कुतल है वही कुतल सब को विहित होने। न कोई किसी पर कूट नका सके और न सत्य को रोक सक और सत्ता-सत्ता विषय प्रवर्धित किने पर भी जिसकी हत्या हो वह न माने वा माने किसी पर कलकल नहीं किया जाता। और वही सबकों की रीति है कि अपने या पाले हाथों को दोष और गुणों को गुण जान कर गुणों को प्रशय और दोषों का त्यज करें और इन्हीं का हट, कुपमह मूल करें ज्ञान क्योंकि पचपात्र से क्या १ धर्म के मात् में न हुए और न होते हैं ॥

अब तो यह है कि इस अनिश्चित जलमल बीज्य में पचाई हानि करके ज्ञान से स्वयं रिक्त रहना और ज्ञान को रक्षण मनुष्य से बहिर्दे। इसमें जो कुछ विवाद लिखा गया हो उक्तके अन्तर्गत लोग विहित कर देंगे तथाप्य जो उचित दाय्य तो माया आप्या क्योंकि वह लोक हट, कुपमह ईप्सी दोष, याद विवाद और विरोध आने के विषये किया गया है न कि इनको बहाने के कार्य क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से इनक, यह परस्पर का ज्ञान पचपात्रा हमारा मुख्य कार्य है। अब यह चौदहवां समुदास में मुसलमानों का मतविषय सब सबकों के सामने निवेदन करता हूँ विचार कर यह का प्रशय समिह का परिणाम कीजिये ॥

असमतिविस्तरस्य सुखिमदृष्येषु ॥

इत्यनुभूमिका ॥

वाक्यका अंशाने की बीजा है। भला सम्पूर्ण बीजाई तो उस मगर की बिछी से हो सकती परन्तु अंशों सहित सातसौ कोय गनों कर हो सकती है ? यह सत्य मिथ्या अयोध अत्यन्त की बात है और इसने बड़े माती कहा से माने होना ! इस श्रेष्ठ के बिखने-बख के घर के बड़े में से, यह गणाङ्क पुराण का भी पाप है ॥ १२० ॥

१२०—और कोई अथर्विन् वस्तु अथवा धिनिष्ठ कर्म करने द्वारा अथवा मृत पर अथवा उद्यमों बिछी शक्ति से प्रकृत प्रकृत्य ॥ १० ॥ प्र १० ॥

समी०—आ ऐसी बात है या ईसाई लोग क्यों कहते हैं कि पानी बोम भी स्वर्ग में ईसाई होने से जा सकते हैं ? यह ठीक बात नहीं है बरि ऐसा है तो बाइबा स्वर्ग की मिथ्या बातों का करमदार स्वर्ग में प्रवेश करनी नहीं कर सका द्वारा और ईसा भी स्वर्ग में न गया होगा क्योंकि जब अकेला पानी स्वर्ग को दास नहीं हो सकता तो आ अनेक पापियों के पाप के भार से मुक्त है वह क्योंकर स्वर्ग करनी हो सकता है ? ॥ १२० ॥

१२१—और अब कोई धाप न होना और ईश्वर का और मेरे का सिद्धांत उसमें होना और उसके दास उसकी उपा करेगा। और ईश्वर का मुँह देखेंगे और उसका नाम उसके माते पर होगा और यही दास न होगी और उन्हें हीरा की अथवा स्वर्ण की उपाधि का प्रवाजन नहीं क्योंकि परमेश्वर ईश्वर उन्हें उपरि देण के साथ सर्वदा दास करेंगे। प्र १० ॥ प्र १२-२ ॥

समी०—देखिये यही ईसाईयों का स्वार्थस। क्या ईश्वर और ईसा सिद्धांत पर निरन्तर बैठे रहेंगे ? और उनके दास उनके सामने अथवा मुँह देखा करेंगे ? अब यह तो कहिये ! तुम्हारे ईश्वर का मुँह पुरास्मियन के सदृश गात्र का अथवा बच्चों के सदृश अथवा अथवा अन्य देव बच्चों के समान है ? यह तुम्हारा स्वर्ग भी अथवा है क्योंकि जहाँ बोय्यै कहाई है और उसी एक मगर में रहना अथवा है तो यहाँ तुम्हें क्यों न होना होगा ? जो मुक्त बाबा है वह ईश्वर सर्वज्ञ सर्वेश्वर करनी नहीं हो सकता ॥ १२१ ॥

१२ —देख मैं शीघ्र आया हूँ और मर प्रसिद्ध मेरे दास है जिससे हर एक को विश्व उसका अर्थ अथवा कैसा फल है ॥ प्र १० ॥ प्र १२ ॥

समी०—अब नहीं बात है कि कमोन्मुख फल पले हैं तो पानी की जमा करनी नहीं होती और जो जमा होती है तो ईजीज की बर्तें सूखी। बरि कोई कहे कि जमा करना भी ईजीज में किया है तो पूर्णतः निरुद्ध अर्थात् 'इरुद्धरोमी' हुई तो सूख है इसका अर्थ जो देणो। अब कहा तक किन्हीं इन्की बाइबा में बाबा बर्तें अथवा नहीं है। यह तो बोइया पिछमाई ईसाईयों की बाइबा पुस्तक का दिखलाया है इतने ही से इज्जियान् लोग बहुत अर्थ करेंगे। बोइयी बाबा को जोड़ संघ संघ सूख मरा है, जैसे सूख के संग से सल भी सूख नहीं पाए बिना ही बाइबा पुस्तक भी अथवा नहीं हो सकता किन्तु यह फल तो मेरी के अन्तर में गृहीत होना ही है ॥ १२ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकिरसस्वामीनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते कबीरमतविषये अयोध्या समुत्थास्य सम्पूर्ण ॥ १३ ॥

कृत्य करो' धर्मात् जो कुराव और पैगम्बर को न मानें वे नाक़िर हैं, ऐसा क्यों कहा ? इसलिये कुराव ईश्वरकृत नहीं शीकता ॥ २ ॥

१—साक्षिक दिन ज्ञापन का ॥ तुम ही को इस भक्ति करते हैं और तुम ही से सहाय चाहते हैं ॥ दिखाने हमको सीधा रास्ता ॥ मं १ । सि १ । सू १ । आ ३-४ ॥

समी०—क्या तुम निम्न ज्ञापन नहीं करता ? किसी एक दिन ज्ञापन करता है ? इससे तो अन्धेर बिदित होता है ! उन्ही की भक्ति करना और उसी से सहाय चाहना तो हीन परम्परा क्या पूरी बात का भी सहाय चाहना ? और तुम मार्ग एक सुखसमर्थ ही का है या दूसरे का भी ? नूवे मार्ग को सुखसमर्थ क्यों नहीं मान्य करते ? क्या तुम रास्ता तुम्हारे की ओर का तो नहीं चाहते ? यदि मन्दाई सब की एक है तो फिर सुखसमर्थ ही में कितने कुछ न रास्ता और जो दूसरों की मन्दाई नहीं मानते तो परपाटी हैं ॥ ३ ॥

१—दिखा उन लोगों का रास्ता कि जिस पर तु ने विद्यामय की और उनका मार्ग मत दिख कि जिसके ऊपर तु ने ग़ज़ब धर्मात् धारणा श्रेष्ठ की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा ॥ मं १ । सि १ । सू १ । आ ६ ॥

समी०—जब सुखसमर्थ लोग पूर्वजन्म और वर्तमान पाप पुण्य नहीं मानते तो किसी पर विद्यामय धर्मात् क़ज़ब या दया करने और किसी पर न करने से तुम परकपटी हो जायाग। क्योंकि क्या पाप पुण्य मुक्त दुःख देना केवल धर्मात् की बात है और क्या कारण किसी पर दया और किसी पर श्रेष्ठदृष्टि करना भी स्वभाव से बहिः है । वह दया अवश्य मो १ नहीं कर सकता और जब उनके पूर्व संकित पुण्य पाप ही नहीं तो किसी पर दया और किसी पर श्रेष्ठ करना नहीं हो सकता । और इस मूल की दिव्य "यह मूलः अस्माह सारेब ने मनुष्यों के मुक्त छ क़दमाई कि सदा इस प्रकार छ क़दमाई" जो यह बात है तो "अधिकार" धर्मात् अन्ध भी तुम ही ने पाये हैं। जो कहा कि क्या अदरमान के, इस मूलः को कैसे पर सके, क्या क़दम ही से तुमपा और बोधते मने ? जो ऐसा है तो सब कुराव ही क़दम से पाना होगा । इससे ऐसा समझना चाहिये कि जिस पुस्तक में परपात की बातें पाई जाय वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकती जैसा कि धारणी भाष्य में उल्लेख है परपातों को इसका बाना मुयस भाष्य भाषा बोधनेवालों को बहिः होता है इससे तुम में परपात काया है और तैस परमपर ने नृदिश सब दारुण मनुष्यों पर ज्ञापनहि न जब दारुणाधर्मा से विद्वत्स्य संकृत भाष्य कि जो सब दारुणों के लिये एक छ परिधम से बिरिन होनी है उसी में केरी का प्रकाश किया है करता तो यह दोष नहीं दाय ॥ ४ ॥

२—यह पुस्तक कि जिसमें सम्येह नहीं परदृष्टान्तों को मार्ग दिखाना है ॥ जो ईमान धारते हैं स्वयं तेष (परोक्ष) के नमाज़ करते और उस क़दम से जो हमने ही प्रवे करते हैं ॥ और वे ज्ञान जो हम कियाव वह ईमान धारते हैं जो रक्त है तेरी ओर का तुम से पहिने उठाती गई और दिव्य ज्ञानपर पर रक्त है ॥ ने

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ गहनमतविषय समीक्षिष्यामहे

इसके आग मुसलमानों के मतविषय में लिखेंगे ॥

१—आत्म स्वयं नाम अज्ञान के कर्म करनेवाला ब्रह्म ॥ मंत्रिष १ ।
सिध्दय १ । सूरत १ ॥

समी०—सुखसमय लोग ऐसा करते हैं कि वह ब्रह्म ब्रह्मा का क्या है परन्तु इस वचन से विरहित होता है कि इसका ब्रह्मनेवाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वर का कर्मका होता तो “आत्म स्वयं नाम अज्ञान के” ऐसा न करता किन्तु “आत्म ब्रह्म उपरेश्वर अनुष्ठी के” ऐसा करता । यदि अनुष्ठी को सिद्ध करता है कि तुम ऐसा करो तो भी इसे नहीं क्योंकि इससे पाप का आत्म भी ब्रह्म के नाम से होता उसका नाम भी वृत्ति हो जायगा । जो वह कर्म और दया करेगा तो तो करने अपनी वृत्ति में अनुष्ठी के सुखार्थ काम आदिनों को मार दान्य पीडा दिवान्न मरणा के मांस खाने की आज्ञा क्यों दी ? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के करने हुए नहीं हैं ? और यह भी कहा जा कि “परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आत्म” बुरी बातों का नहीं । इस कथन में गोबन्धन है क्या खोरी खरी मिथ्यामयवादों पर चर्च का भी आत्म परमेश्वर के नाम पर किया जाय ? इसी से देख लो कसाई यदि सुखसमय पाप आदि के लोभ करते हैं तो भी “विशिष्टाद्वैत” इस वचन को पढ़ते हैं जो नहीं इसका पूर्णतः अर्थ है तो ब्रह्मणों का आत्म भी परमेश्वर के नाम पर सुखसमय करते हैं और सुखसमयों का “ब्रह्म” ब्रह्म भी न रहेगा क्योंकि उसकी दया का पशुओं पर न रही ! और जो सुखसमय लोग इसका अर्थ नहीं जानते तो इस वचन का प्रकाश होगा अर्थ है यदि सुखसमय लोग इसका अर्थ नहीं करते हैं तो सृष्टा अर्थ क्या है ? इत्यादि ॥ १ ॥

२—सब वृत्ति परमेश्वर के करते हैं जो परमेश्वर चर्चा पावन करने द्वारा है सब संसार का ॥ कर्म करनेवाला ब्रह्म है ॥ मं १ । सि १ । सूरतकर्मविषय का १ । २ ॥

समी०—जो ब्रह्म का ब्रह्म संसार का पावन करनेवाला होता और सब पर कर्म और दया करता होता तो काम मत वाले और पशु आदि को भी सुखसमयों के साथ से मराने का ब्रह्म न देता । जो कर्म करने द्वारा है तो क्या पशुओं पर भी कर्म करेगा ? और जो कैला है तो अपने विषयों कि “अद्वितीयों की

॥

वहाँ और हं व भी कैस ही करिखे जादि होंग क्योंकि मही के शरीर
 मही के शरीर मोग नहीं हो सकत ॥ जब पार्थिव शरीर ह तो मृत्यु भी चरम
 मही के शरीर यदि मृत्यु होता है तो व वहाँ से कहीं जाता है ? और मृत्यु नहीं
 ॥ १२ ॥ अबका जन्म भी वहाँ हुआ जब जन्म है तो मृत्यु चरम ही है यदि
 तो कुरान में लिखा है कि बीबियों सर्वत्र बहिरत में रहती है तो मृत्यु
 य क्योंकि उनका भी मृत्यु चरम होमा जब मृत्यु है तो बहिरत में
 तो का भी मृत्यु चरम होमा ॥ १२ ॥

—उस दिन स करो कि जब कोई जीव किसी जीव व भ्राता व रक्तवत्
 ॥ सिद्धरिग स्वीकृत की जावगी व उससे कहका किया जावगा और व
 ॥ पावेंगे ॥ मं १ । सि १ । मृ २ । पा ४८ ॥

सी०—क्या बचमान दिनों में न करें ? पुणार्थ करने में सय दिन इत्या
 ॥ जब सिद्धरिग व जायी जावगी तो फिर पैगम्बर की गवाही व सिद्ध
 सुरा स्वी लेय वह बात क्वीकर सच हो सकगी ? क्या सुरा बहिरत
 का सवाक है दोहकवालों का नहीं ? यदि एसा है तो सुरा
 ॥ १३ ॥

—हमने मृत्यु का किताब और मजिहरे दिव ॥ हमने उनको कहा कि
 ॥ मृत कबर हा जाया ॥ वह एक मय दिया जो उनक सामने और पीछ
 ॥ और सिद्धा ईमानवालों को ॥ मं १ । सि १ । मृ २ ।
 ॥ १४ ॥ १५ ॥

सी०—आ मृत्यु को किताब ही तो कुरान का होना निरर्थक है और
 ॥ आभर्यकि ही वह काइक और कुरान में भी लिखा है ॥ मनु यह बात
 ॥ मनु मही क्योंकि जो मृत्यु होता तो अब भी होता जो अब कहीं छे
 ॥ म पा । जिस स्थानी साम पाठक भी अधिप्राचो क सामन दिवन् वन
 ॥ मनु उस समय भी कबर किया हाम्य क्योंकि सुरा और उसक सबक अब
 ॥ मनु है पुनः इन समय सुरा आभर्यकि क्वी नहीं दया ? और मही क
 ॥ मनु मृत्यु को किताब हो थी तो पुनः कुरान का क्या क्या आवश्यक था ?
 ॥ मनु भवाई कुराई कबर व कबर का उपरय सर्वत्र वृक म्य हा ता पुनः
 ॥ मनु पुनः कबर स पुनः कबर हा हा हा है ॥ क्या मृत्युकी धारि का ही गई
 ॥ मनु सुरा मृत्यु क्या था ? जो सुरा में निमित्त कबर हा जाया कबर मय
 ॥ मनु कहा था तो उसका कइय मिथ्या हुआ था एव किया । आ पसी
 ॥ मनु और जिस ॥ पसी बाने है वह व सुरा और व वह पुनः सुरा
 ॥ मनु हा घबरा है ॥ १४ ॥

—हम ताह सुरा मृत्यु का लिखा है और पुनः कबर निगर्नियों
 ॥ है कि पुन मयम्य ॥ मं १ । सि १ । मृ २ । पा २ ॥

सी०—क्या सुरी को सुरा लिखा था वा अब क्वी मही लिखा ॥ क्या
 ॥ को एक एक कबरो में रहे रह्य ? काइक रोमागुर्दे है ? क्या एसी ही

अथ चतुर्दशसमुह्नासारम्भः

अथ गव्यनमताविषय समीक्षिष्यामहे

इसके आग मुसलमानों के मतविषय में लिखेंगे ॥

१—आरम्भ साथ नाम अष्टाह के जमा करनेवाला द्वाहा ॥ मंत्रिका १ ।
सिपाय १ । सूत्र १ ॥

समी०—मुसलमान लोग ऐसा करते हैं कि वह कुल कुल का करता है परन्तु इस जगत् से निरित होता है कि इसका करनेवाला कोई द्वाहा है क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता हो 'आरम्भ साथ नाम अष्टाह के' ऐसा न करता किन्तु 'आरम्भ करते उपदेश मनुष्यों के' ऐसा करता । यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम देव्य करो तो भी ठीक नहीं क्योंकि इससे पता चल आरम्भ भी कुल के नाम से होकर उसका नाम भी दूजित हो जायगा । जो वह जमा और द्वाहा करेवाला है तो उसने अपनी संहिता में मनुष्यों के सुखार्थ जन्म प्राप्ति को मर दास्य पीका शिक्षाकर मात्रा के मंस काय की व्याख्या नहीं की ? क्या वे प्राणी अवस्था की और परमेश्वर के बनाने हुए नहीं हैं ? और वह भी करता था कि 'परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरम्भ' करी बातों का नहीं । इस कथन में मोक्षमात्र है क्या खोरी खोरी सिन्धुमाक्यादि आचर्य का भी आरम्भ परमेश्वर के नाम पर किया जाना ? इसी से देख को कसार्ह आदि मुसलमान पण जगति के गले करते में भी 'विधिमात्र' इस जगत् को पढ़ते हैं जो वही इसका पूर्णक धर्म है ता कुलकी का आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर मुसलमान करते हैं और मुसलमानों का 'कुल द्वाहा' भी न छोड़्य क्योंकि उसकी द्वाहा उन पद्यों पर न रही । और जो मुसलमान लोग इसका धर्म नहीं करते तो इस जगत् का प्रकाश होय नहीं है यदि मुसलमान लोग इसका धर्म और करते हैं तो द्वाहा धर्म क्या है ? इत्यादि ॥ १ ॥

२—साथ स्तुति परमेश्वर के करते हैं जो परमेश्वर आर्वात् पावन करने दता है सब संसार का ॥ जमा करनेवाला द्वाहा है ॥ मं १ । सि १ ।
श्रुतकृतिता जा १ । २ ॥

समी०—जो कुल का कुल संसार का पावन करनेवाला होता और सब पर जमा और द्वाहा करता होता तो जन्म मृत नहीं और पद आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवावे का हुक्म न देय । जो जमा करने दता है तो क्या प्राणियों पर भी जमा करेगा ? और जो दैत्य है तो जगत् किन्हीं कि "अद्विष्टों को

खोप अपने मादिक की सिखा पर है और वे ही सुरक्षा पालेच्छे है ॥ मित्र को
 व्यक्ति हुए और उन पर लेव डराना न डराना समान है वह ईमान न धार्ये ॥
 अन्तर्गत वे उनके दिखों कर्मों पर मोहर करही और उनकी बातों पर परो है
 और उनके बाते बड़ा अज्ञान है ॥ मं १ । सि १ । सूत्र १ । पा ४-७ ॥

समी०—क्या अपने ही मुख से अपनी किया की प्रशंसा करना सुरा की
 दम्भ की बात नहीं ? जब परदेहमार चर्चित धार्मिक लोग हैं वे तो स्वतः सत्ये
 मार्ग में है और जो मूढ़े मार्ग पर हैं उनको यह सुरा मार्ग ही नहीं दिखता
 अन्तर्गत फिर किस काम का रहा ? क्या पाप पुण्य और पुण्यार्थ के बिना सुरा
 अपने ही अज्ञान से प्रार्थ करने को देता है ? जो देता है तो सब को नहीं नहीं
 देता ? और मुसलमान लोग परिष्कृत नहीं करते हैं ? और जो बाइबल इस्वील
 आदि पर विश्वास करना योग्य है तो मुसलमान इस्वील आदि पर ईमान नैसा
 सुरा पर है वैसा क्यों नहीं करते ? और जो करते हैं तो सुरा * का होना
 किस्तिप ? जो कहें कि सुरा में अधिक पाते हैं तो पछी किया में किस्ति
 सुरा मूढ़ बना होगी ? और जो नहीं मूढ़ तो सुरा का क्या विमलोजन है ?
 और इस देखते हैं तो बाइबल और सुरा की कसे कोई १ न मिलती होंगी नहीं
 तो सब मिलती हैं । एक ही पुस्तक वैसा कि वे है क्यों न कल्प ? अन्तर्गत पर
 ही विश्वास रखना चाहिये ज्ञान पर नहीं ? क्या ईसाई और मुसलमान ही सुरा
 की सिखा पर है उनमें कोई भी पारी नहीं है ? क्या जो ईसाई और मुसलमान
 अन्तर्गत हैं वे भी सुरा पर पाते और दूसरे अन्तर्गत भी न पते तो कसे अन्तर्गत
 और अन्तर्गत की बात नहीं है ? और क्या जो खोप मुसलमानों मठ को न मानें
 उन्हीं को व्यक्ति कहना वह एकतरफ़ी किया नहीं है ? जो परमेवर ही ने उनके
 अन्तर्गत और कर्मों पर मोहर लगाई और अन्तर्गत वे पाप करते हैं तो उनका
 सुरा भी रोप नहीं, यह रोप सुरा ही का है फिर जब पर सुरा सुरा या पाप पुण्य
 नहीं हो सत्य पुनः उनको अज्ञान बना नहीं करता है ? क्योंकि उन्होंने पाप या
 पुण्य स्वतन्त्र से नहीं किया ॥ २ ॥

६—उनके दिखों में रोग है अन्तर्गत ने उनका रोग बना दिया ॥ मं १ ।
 सि १ । सू २ । पा १ ॥

समी —महा मित्र अन्तर्गत सुरा ने अन्तर्गत रोग बनाया क्या न चाहें उन
 दिखों को बड़ा दुःख हुआ होगा ? क्या वह रोग से कल्प रोगफल का काम
 नहीं है ? किसी के मन पर मोहर डालना किसी का रोग बनाया यह सुरा का
 काम नहीं हो सत्य क्योंकि रोग का बनाया अपने पापों से है ॥ ६ ॥

७—मित्रों तुम्हारे बाते पुकिनी विज्ञान और अन्तर्गत की कृत को
 बनाता ॥ मं १ । सि १ । सू २ । पा २२ ॥

* अन्तर्गत में यह शब्द 'अज्ञान' है परन्तु अन्तर्गत में लोगों के कोखों में
 अज्ञान आता है इसलिये ऐसा ही किया है ।

सुमी०—महा आसमान कृत किसी की हो सकती है ? यह प्रविष्ट की बात है अथवा का कृत के समान मानना इसी की बात है । यदि किसी प्रकार की प्रविष्टी को असम्यक् मानते हो तो उनके लक्ष की बात है ॥ ७ ॥

८—जो तुम उस वस्तु से सम्बन्ध में हो जो हमने अपने सम्बन्ध के अन्त उन्नीसी तो उस किसी एक सूरत का आधा और अपने साथी लोगों को पुष्पा आकाश के विषय तुम सन्ने हो जो तुम का और कभी न कहते तो उस आकाश से करा कि जिसका इन्धन मनुष्य है और अक्षरों के बाले पत्तन तैयार किये गये हैं ॥ मं १। सि १। सू ३। पा २३-२४ ॥

सुमी०—महा यह कोई बात है कि उसके सूरत कोई सूरत न बन ? क्या अक्षर आकाश के समान में मौलवी किसी न बिना ज्ञान का ज्ञान नहीं क्या सिद्ध था ! यह कौनसी होशियारी की बात है ? क्या इस आकाश से न अन्त आहिये ? इसका भी इन्धन जो कुछ पने कहा है । इस कुराव में सिद्ध है कि अक्षरों के बाले पत्तन तैयार किये गये हैं तो इस पुराणी में सिद्ध है कि अक्षरों के बाले पोट नरक क्या है ! यह कहिये किसी की बात साथी मापी जान ? अपने न अन्त स दानों स्वामिनी और इसका मत्त दानों वरकामिनी होते हैं इसलिये इन स्वामिनी का मत्त है किन्तु जो धार्मिक है वे सुख और जो पापी है वे सब मर्तों में दुःख पावेंगे ॥ ८ ॥

९—और अन्त का सम्बन्ध है उन लोगों का कि ईमान आया और काम किया अथवा यह कि उनके बाले विद्विष्टे हैं जिसका बीच न बलती हैं मर्तों का उसमें से मेनों के मोक्ष सिद्धे जावेंगे तब कहेंगे कि यह वो वस्तु है जो हमें पक्षि इससे दिये पने वे और उनके बाले पक्षि बीबिया सर्व्व यहां रहने चाहती हैं ॥ मं १। सि १। सू २। पा २२ ॥

सुमी०—महा यह ज्ञान का बहिरत संसार स बीबसी अन्त बात क्या है ? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं वे ही मुक्तकामों के स्वर्ग में हैं और इत्यादि सिद्ध है कि यहां जैसे पुराण अन्त में मरत और आकाश जाते हैं उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं किन्तु यहां की बिना सदा नहीं रहती और यहां बीबिया अन्त अन्त में सदा कम रहती हैं तो अन्तक ज्ञानमत की बात न आनेगी तबतक उन विचारियों के विषय कस बलतें होंगें ? जो जो लुगा की उन पर कृपा हातो हाती ? और लुगा ही का आशय समान आयाती होंगी तो हीक है । क्योंकि यह मुक्तकामों का स्वर्ग गांधुबिसे गुलाबों का आकाश और मन्दिर के सूरत दीकता है क्योंकि यहां बिनों का मान्य बहुत पुराणों का नहीं है ही लुगा के घर में बिनों का मान्य अधिक और उन पर लुगा का प्रेम भी बहुत है उन पुराणों पर नहीं क्योंकि बीबिया का लुगा वे बहिरत में सदा रहता और पुराणों को नहीं, वे बीबिया बिना लुगा की नहीं स्वर्ग में है ही दर सक्तों ? हा यह बात पूरी ही हा तो लुगा बिनों में कस आया ? ॥ ९ ॥

१ — आहम का धार नाम सिद्धांत फिर अक्षरों के समान करक क्या जो तुम सार हो मुझे उनके नाम बताओ ॥ क्या है आहम ! उनका नाम बताओ ॥

उसने बख दिने तो सुरा ने करिखों से कहा कि क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि निजप में धूमिली और आसमान की बिपी वस्तुओं को और प्रकट दिने कर्मों को मान्य हूँ ॥ मं १। सि १। सू १। भा ३१। ३३ ॥

समी०—महा पेश करिखों को बोला देख अपनी बड़ाई करवा सुरा का कम हा सकता है ? वह तो एक दम्भ की बात है, इसको कोई बिना नहीं मान सकता और न ऐसा अभिमान करता । क्या ऐसी बातें स ही सुरा अपनी सिखाई जमाना चाहता है ? हाँ बड़ाही लोगों में कोई ऐसा ही पाकबक बजा देने चाह सकता है जमानों में नहीं ॥ १ ॥

११—अब हमने करिखों से कहा कि क्या धारम को दखन्य करो देखा समी ने दखन्य किया परन्तु ईशान ने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी एक करिख था ॥ मं १। सि १। सू १। भा ३२ ॥

समी०—इसके सुरा सर्वज्ञ नहीं थायें सूत अभिन्नत् और वसेमान की पूरी बातें नहीं ज्ञान्य, जो मान्य हो तो ईशान को पैदा ही क्यों किया ? और सुरा में कुछ तेज नहीं है क्योंकि ईशान ने सुरा का हुस्म ही न माना और सुरा उलझ कुछ भी न कर सका ! और देखिये एक ईशान करिख ने सुरा का भी बड़ा सुरा दिया तो मुसलमानों के कन्हासुखार मित्र जहाँ क्यों करिख हैं वहाँ मुसलमानों के सुरा और मुसलमानों की क्या बख सकती है ? कमी १ सुरा भी किसी का रोग बख देखा किसी को गुमराह कर देता है, सुरा ने ने क्यों ईशान से सीखाई होगी और ईशान ने सुरा से क्योंकि बिना सुरा के ईशान का उलझ और कोई नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

१२—इसका कहा कि जो धारम ! व और तेरी जोरु बहिरस में रहकर धारम में जहाँ जहाँ जाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्ष के कि पापी हो जाओ ॥ ईशान ने उनको बिनाया कि और उनके बहिरस के धारम से कोरिया तब हमने कहा कि स्वरो तुम्हारे में कोई परस्पर शत्रु है तुम्हारा बिनाया धूमिली है और एक समान एक काम है ॥ धारम अपन मासिक की कुछ बातें सीखकर धूमिली पर धारम ॥ मं १। सि १। सू १। भा ३३। ३० ॥

समी०—अब देखिये सुरा की अल्पज्ञता अभी तो स्वयं में रहने का चमती बंद दिया और पुन बोड़ी वर में कहा कि निजको जा अभिन्नत् बातों को ज्ञान्य होता तो वर ही क्यों दया ? और यहकमनाके ईशान को दया देने में असमर्थ भी दीख पड़ता है और वह वृक्ष किसके बिने उलझ किया था ? क्या अपन बिने व दूधरे के बिने जा दूधरे के बिने तो नहीं राख ? इसबिने ऐसी बातें न सुरा की और न उसके कपारे पुलाक में हा सकती हैं । धारम सादेव सुरा से किन्ती बातें सीख धारे ? और जब धूमिली वर धारम जादेव धारे तब किस प्रभर धारे ? क्या वह बहिरस पहाक पर है या आकाश पर ? उस व वक्ष उलझ धार ? धारम कपी के मुक्त धार जधवा ईश ऊपर व कपक गिर पड़े ? इसमें वह बिदित होता है कि जब धारम सादेव नहीं थे कयाव धरे तो इसके स्वयं में भी मही होगी ?

और जिसने कहा और है वे भी ऐसा ही करिखे चादि होंग क्योंकि मही के शरीर बिना इन्द्रिय भोग नहीं हो सकता । जब पार्थिव शरीर है तो मृत्यु भी अवश्य होगा चादिने यदि मृत्यु होता है तो न कहा या कहा जात है ? और मृत्यु पारी होता तो उनका जन्म भी नहीं हुआ जब जन्म है तो मृत्यु अवश्य ही है यदि ऐसा है तो कुपान में सिखा है कि बीबियां सदैव बहिरत में रहती है सा मृत्यु हो जायगा क्योंकि उनका भी मृत्यु अवश्य होगा जब पंथा है तो बहिरत में जायेगाओं का भी मृत्यु अवश्य होगा ॥ १२ ॥

११—इस दिन य दरो कि जब कोई जीव किसी जीव से मरता न रक्ताग न उसकी सिद्धरित स्वीकार की जायगी न उससे कहा सिखा जायगा और न वे स्थाप पारो ॥ मं १ । सि १ । मू २ । प्य ४८ ॥

समी०—क्या बर्तमान दिनों में न करें ? कुदाई करने में इस दिन इत्या चादिने । जब सिद्धरित न मायी जायेगी तो फिर पैसावर की गमाही या सिद्धरित से कुरा स्वी देया यह बात क्योंकि सब हो सधगी ? क्या कुरा बहिरत पारो ही का सहायक है दोऊकयाओं का नहीं ? यदि ऐसा है तो कुरा पचपाती है ॥ १३ ॥

१४—हमने मूला को किया और मजिजे दिने ॥ हमने उनका कहा कि तुम विम्वित कर हो जाओ ॥ यह एक मय दिना जा उनके सामने और पीछे वे उनको और सिखा ईमानदारों को ॥ मं १ । सि १ । मू २ । प्य २३ । २४ । २५ ॥

समी०—जो मूला को किया ही तो कुपान का होना निरर्थक है और उसको आश्चर्यशक्ति ही यह काइक और कुराच में भी किया है परन्तु यह बात मानने पाय नहीं क्योंकि जो पन्था हाता तो जब भी हाता जो जब नहीं तो पहिच भी न था । जिस स्थानी जाम आश्चर्यशक्ति की बहिष्कारों के सामने विद्वान् बन जात है कि उस समय भी कपट किया होना क्योंकि कुरा और उसका सबक जब भी विम्वित है पुनः इस समय कुरा आश्चर्यशक्ति क्यों नहीं देता ? और नहीं कर सकते जा मूल को किया ही भी तो पुनः कुराच का क्या क्या आश्चर्यशक्ति या ? क्योंकि जा मजिजे कुदाई करने न करने का उपदेश सर्वत्र एक था ता पुनः भिन्न २ पुस्तक करने का पुनश्च होप हाता है । क्या मूलाजी चादि को ही गई पुस्तकों में कुरा मूला गया था ? जो कुरा ने मिश्रित पन्था हा जामा केवल मय देने के दिने कहा था तो उल्लभ कहना सिखा हुआ या पृथ किया । जो एसी क्यों करता है और जिस में ऐसी बातें हैं वह न कुरा और न वह पुस्तक कुरा का बनना हो सकता है ॥ १४ ॥

१५—इस तरह कुरा मुरों का जिघाता है और तुमका अपनी मिथानिवा रिषकाता है कि तुम समझ ॥ मं १ । सि १ । मू २ । प्य ३ ॥

समी०—क्या मुरों का कुरा जिघाता था तो जब क्यों नहीं जिघाता ? क्या अयमत्त की बात तक अबतों में पड़े रहेंगे ? आश्चर्यशक्ति हीनानुपूर्व है ? क्या इतनी ही

ईश्वर की विद्यामित्रा हैं ? तुमिनी लूई चन्द्रादि विद्यामित्रा नहीं हैं ? क्या संसार में जो विविध रत्न विरोध प्रपञ्च हीनता हैं वे विद्यामित्रा कम हैं ? ॥ १२ ॥

१६—वे सदैव कब बहिस्त बर्णात् वैकुण्ठ में वास करनेवाले हैं ॥ मं १
सि १। सू २। पा ८९ ॥

समी०—कह भी जीव जन्म पाप करने का सम्मर्थ नहीं रहता इसलिये सदैव स्वर्ग गुरु ही रह सकते और जो लूरा पुंसा का लो बह सम्मानकारी और अधिपति हो जाये । कथामत की रत्न ग्वाण होगा तो मनुष्यों का पाप पुण्य कायर होना उचित है । जो कर्म जन्म नहीं है उक्त फल जन्म कैसे हो सकता है ? और यदि हुए सत्त चरम हुआ क्यों स ईश्वर ही बतलाते हैं क्या इसके पूर्व लूरा निष्कम्मा देता था ? और जन्मागत के पीछे भी निष्कम्मा रहेगा ? वे बह सत्त कर्मात्त का सम्मान है क्योंकि परमेश्वर के काम सदैव बर्तमान रहते हैं और जिसने जिसके पाप पुण्य है उक्त ही उक्त का देता है इसलिये कुप्य का वह पाप सही नहीं ॥ १६ ॥

१०—कब हमने तुम से प्रतिज्ञा क्यार्ई व बर्तान काहु अर्चने चापस-० और किसी अपने चापस के कौं से न निष्कम्मा फिर प्रतिज्ञा की तुम व इस के तुम ही सही हो ॥ फिर तुम व लोग हो कि अपने चापस को मार बाधत हो एक फिरके को चाप में से नहीं बनके व निष्कम्मा देत हो ॥ मं १। सि १। सू २। पा ८९-८९ ॥

समी०—महा प्रतिज्ञा क्यानी और कभी कबलों की बात है या परमेश्वर की ? कब परमेश्वर कर्मात्त है तो देखो क्यार्हु संसारी मनुष्य के सम्मान नहीं क्यार् ? महा वह कोनसा मन्त्री बात है कि चापस का कोहु न क्यार् अपने मनुष्यों को व स निष्कम्मा क्यार् दूसरे सत्त कर्मात्त का कोहु क्यार् और क स निष्कम्मा देता ? वह सिन्हा सुर्वात और पक्षत की बात है ॥ क्या परमेश्वर प्रमत्त ही से नहीं जानता का कि वे प्रतिज्ञा से निष्कम्मा करती ? इसके विरुद्ध होता है कि मुसलमानों का लूरा भी ईसाईयों की बहुरती बपसा रहता है और वह कुप्य स्वतन्त्र नहीं कम सकता क्योंकि इसमें से कोनसी कर्मात्त को कोनका पात्री कम क्यार् बाधत की है ॥ १० ॥

१८—वे वे लोग हैं जिन्होंने चापस के क्यार् सिन्हा क्यार् की मोख कोही उक्त पाप क्यार् हकाम व क्यार् बाधत और न उक्तो क्यार्पात ही बाधती ॥ मं १। सि १। सू २। पा ८९ ॥

समी०—महा देखी ईसाई लूरा की बातें क्यार् ईश्वर की घोर से हो सकती है ? किन लोगों के पाप इसके क्यार् जन्मा का किनको सहायता ही बाधती व कीज हैं ? यदि व पात्री हैं और पात्री का बहुर दिने निगा इसके क्यार् जन्मा तो जन्मा होता । का सत्ता देकर इसके क्यार् बाधत तो निष्कम्मा क्यार् इस भाषण में है वे भी महा पापे इसके हो सकते हैं । और बहुर देकर भी इसके व

किये जायेंगे तो भी अन्त्याव हागा। जो पापों से हलके किये जाने चाहें। य प्रवाहन धर्माम्नाओं का है ता उनका पाप तो अप ही हलके हैं कुरा क्या कर्म ? इतना यह सेवा विशुद्ध का नहीं। और अस्तव में धर्माम्नाओं का सुख और अर्थमियों का दुःख उनका कर्मों के अनुसार सदैव होगा चाहिये ॥ १८ ॥

१६—विशेष हमने मूल्य का किया ही और उसके पीछे हम पैगम्बर को धार्य और मरिचम के पुत्र ईसा का प्रकट मजिद्वे अथवा देवीशक्ति और स्वमर्त्य रिप उसके साथ अनुकूलरूप ३ के जब मुम्हारे पास उस वक्त सहित पैगम्बर आया कि जिसका मुम्हारा जी चाहता नहीं फिर तुमसे अभिमान किया एक मत का अनुमान और एक का मार बाकत हो ॥ मं १ । सि १ । सू २ । आ = ० ॥

समी०—जब कुराव में साही है कि मूल्य को किया ही तो उसका मानवा मुसलमानों को आकर्षक हुआ और जो २ उस पुस्तक में था हैं वे भी मुसल मानों के मत में शामिल और 'मजिद्वे' अथवा देवीशक्ति की बातें सब धर्मवा है भावनाओं मनुष्यों का कहकाने के किये समूह चलाही है क्योंकि सृष्टिकर्म और विश्व स विद्वद सब अर्थें सूरी ही होती हैं का उस समय "मौजिद्वे" वे ता इस समय क्यों नहीं ? जो इस समय नहीं तो उस समय भी न ब इसमें कुछ भी समझ नहीं ॥ १६ ॥

२ —और इससे पहिले कफिरों पर विजय चाहते थे या कुछ पहिचान का जब उनका पास वह आया म्द कफिर हलाय कफिरों पर बाकत है अज्ञा की ॥ मं १ । सि १ । सू २ । आ ८६ ॥

समी०—क्या बैठ तुम अन्य मत वालों का कफिर कहते हा बैठ वे तुमका कफिर नहीं कहते हैं ? और उनका मत के इधर की ओर से बिहार देत हैं फिर कहा कौन सचा और कौन झूठ ? का विचार करके देखते हैं तो सब मतवालों में झूठ पचा जाता है और जा सच है तो सब में एकता वे सब खवाहपी मूर्खता की हैं ॥ २ ॥

२१—आमन्द का सन्देश-ईमानवालों को ॥ अज्ञाद 'कफिरों' पैगम्बरों विचारइह और मौकइह का जो राज है अज्ञाद भी फल कफिरों का राज है ॥ मं १ । सि १ । सू २ । आ ८७-८८ ॥

समी०—जब मुसलमान कहते हैं कि कुरा कायरीक है फिर वह कौन की कौन शरीक कहा हो कभी ? क्या जो पीछे का राज वह कुरा का जो राज है ? यदि देखा है तो ठीक नहीं क्योंकि इधर किसी का राज नहीं हा अन्त्या ॥ २१ ॥

२२—और कहा कि समा मांगते हैं हम क्या करेंगे मुम्हारे पाप और अधिक मकार करने चाहेंगे के ॥ मं १ । सि १ । सू २ । आ २८ ॥

३ अनुकूलरूप कहते हैं अकारइह को जो हरकम मसीह के साथ रहता था ॥

समी०—महा बह बुद्ध का उपदेश सब को पापी बनाने वाला है वह नहीं क्योंकि जब पाप समा होने का आशय मनुष्यों को मिलता है तब पापों से कर्म भी नहीं बरता इच्छिते ऐसा करनेवाला बुद्ध और महा बुद्ध का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता क्योंकि वह व्यावहारिक है अन्धधर्म नहीं करता और पाप समा करने में व्यावहारिक हो सकता है ॥ १२ ॥

२३—जब भूसा ने अपनी प्रीति के लिये पापी मांग हमने कहा कि अपना घसा (दण्ड) पत्थर पर मार उस में से बारह धरम बह निकले ॥ मं १ । सि १ । सू २ । पा १ ॥

समी०—जब देखिये जब आसन्नम्य बातों के तुल्य दूसरा कोई कहेगा ? एक पत्थर की ठिंछा में बड़ा मारने से बारह धरमों का निकलना सर्वथा असम्भव है हाँ उस पत्थर को मीठार से पोछा कर उसमें पानी भर बारह क्षिप्र करने से सम्भव है अन्धधर्म नहीं ॥ २३ ॥

२४—अज्ञात प्राप्त करता है जिसको चाहता है साध दण्ड अपनी के ॥ मं १ । सि १ । सू २ । पा १ ॥

समी०—क्या को मुक्त और दण्ड करने के योग्य न हो उसके भी प्रचलन बचता और उस पर दण्ड करता है ? हाँ ऐसा है तो बुद्ध क्या व्यवस्थित है क्योंकि फिर अज्ञात काम क्यों करेगा ? और तुरे कर्म क्यों कोहेगा ? क्योंकि बुद्ध की प्रसन्नता पर निर्भर करते हैं कर्म सब पर नहीं इससे सब को प्रसन्न होकर कर्मोपदेशप्रसंग होया ॥ २४ ॥

२५—देख न हो कि अज्ञात प्राप्त होता है कि तुम्हारे ईमान से केर देवें क्योंकि उनमें से ईमानवालों के बहुत से पोता हैं ॥ मं १ । सि १ । सू २ । पा १ ॥

समी०—जब देखिये बुद्ध ही उनके पिता हैं कि तुम्हारे ईमान को अज्ञात प्राप्त न किन्तु देवें क्या वह सर्वज्ञ नहीं है ? ऐसी बातें बुद्ध की नहीं हो सकती हैं ॥ २५ ॥

२६—तुम बिहार मुह को उपर ही मुह अज्ञात का है । मं १ । सि १ । सू २ । पा १ ॥

समी०—जो वह बात सही है तो मुसलमान क्रिश्च की घोर मुह क्यों करते हैं ? हाँ कोई कि हमको क्रिश्च की घोर मुह करने का बुद्ध है तो वह भी बुद्ध है कि अज्ञात बिहार की ओर मुह करो क्या एक बात सही और दूसरी झूठी होगी ? और जो अज्ञात का मुह है तो वह सब ओर ही ही नहीं सकता क्योंकि एक मुह एक ओर रहेगा सब ओर नहींकर यह संभव है इच्छिते यह संगत नहीं ॥ २६ ॥

२ —जो आसन्नम्य और भूमि का उत्पन्न करने वाला है जब को मुक्त करना चाहता है वह नहीं कि उसके करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि होना पस हो जाता है ॥ मं १ । सि १ । सू २ । पा १ ॥

समी०—महा गुरु ने दुष्टम दिया कि होना तो दुष्म किसने सुना ? और किसने सुनाया ? और क्यों बन गया ? किस कारण से बनाया ? जब वह बिल्लो दे कि यहि के पूर्व सिंहाय गुरु के कोह भी दूसरी बलु न थी तो वह संसार क्या से बना ? निरा कारण के कोह भी कार्य नहीं होता तो इतना बड़ा जगत कारण के बिना क्या से हुआ ? वह बात केवल अज्ञान की है ॥

पूर्वपक्षी—जहाँ २ गुरु की इच्छा से ॥

उत्तरपक्षी—क्या तुम्हारी इच्छा से एक मक्खी की टोंग भी बन जा सकती है ? जो करते हो कि गुरु की इच्छा से यह सब कुछ जगत् बन गया ?

पूव०—गुरु सर्वशक्तिमान् है इसलिये जा चाहे सा कर लेता है ॥

उत्तर०—सर्वशक्तिमान् का क्या कार्य है ?

पूव०—जो चाहे सो कर सके ॥

उत्तर०—क्या गुरु दूधरा गुरु भी बना सकता है ? अपन आप भर सकता है ? मूर्ख लोगी और अज्ञानी भी क्या सकता है ?

पूव०—एसा कभी नहीं बन सकता ॥

उत्तर०—इसलिये परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण कर्म, स्वभाव से विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता जिस संसार में किसी बलु के बनने बनाने में तीन परार्थ प्रथम प्रत्यक्ष होते हैं—एक बनानेवाला जिस कुम्हार दूसरी बड़ा बनने वाली मिट्टी और तीसरा उसका साधन जिसका बड़ा बनाव जगत् है जिस कुम्हार मिट्टी और साधन से बड़ा बनता है और बनने बच बने के पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं ब्रह्म ही जगत् के बनने से पूर्व जगत् का कारण प्रकृति और उनके गुण कर्म, स्वभाव आदि हैं । इसलिये वह कुम्हार की बात सर्वथा असम्भव है ॥ २० ॥

२८—जब हमन सोमों के द्विज करे को पवित्र स्थान गुरु ने कहा भी न बनाया था ? जो बनाया था तो कब के बनाने की कुछ आज्ञापकता न थी जो नहीं बनाया था तो विष्णु पूर्वमंडी को पवित्र स्थान के विना ही रक्खा था ? पवित्र स्थान को पवित्र स्थान बनाने का धर्मक न रहा होगा ॥ २८ ॥

समी०—क्या कहे के पवित्र पवित्र स्थान गुरु ने कहा भी न बनाया था ? जो बनाया था तो कब के बनाने की कुछ आज्ञापकता न थी जो नहीं बनाया था तो विष्णु पूर्वमंडी को पवित्र स्थान के विना ही रक्खा था ? पवित्र स्थान को पवित्र स्थान बनाने का धर्मक न रहा होगा ॥ २८ ॥

१६—ये तीन प्रमाण हैं जो इब्राहीम के शीन से फिर आवें परन्तु जिसने अपनी ज्ञान को मूर्ख बनाया और विषय हमन बुनिया में उड़ी का परमेश्वर किया और विषय साधारण में वा ही नक है ॥ अ १ । मि १ । मू २ । का १२ ॥

समी०—वह कम समझ है कि इब्राहीम के शीन को नहीं माफ़े वे सब मूर्ख हैं ? इब्राहीम को ही गुरु ने परमेश्वर किया इनका क्या कारण है ? यदि धर्मोपदेश दान के कारण से किया तो धर्मोपदेश और भी बहुत हो सकते हैं ? यदि

विना परमोद्योग होने के ही पञ्चम किया तो चम्पारण हुआ । हाँ वह तो ठीक है कि जो भ्रमोद्योग होता है वही ईश्वर को मिल होता है चापसी नहीं ॥ १६ ॥

३ —विजय हम तर मुख का चापसमान में फिरता देखते हैं चम्पारण हम तुम्हें उस क्रिये को करेंगे कि पञ्चम कर उसका बस अपना मुख मरिचकहराम की घोर पेर जहाँ नहीं तुम हाँ चापस मुख उसकी आर पेर जा ॥ मं १ । सि १ । पृ २ । पं १४४ ॥

समी०—क्या वह जोड़ी तुल्यरस्ती है ? नहीं नहीं ॥

पूर्व०—हम मुसलमान चाप तुल्यरस्त नहीं हैं किन्तु तुल्यरस्ती अर्थात् मूर्तों को तोड़नेहार हैं क्योंकि हम क्रिये को सुहा नहीं समझते ॥

उत्तर—क्रिये को तुम तुल्यरस्त समझते हो वे भी उच्च मूर्तों को ईश्वर वह समझते किन्तु उनके समझे परमेश्वर की भक्ति करते हैं यदि तुम्हें वे तोड़नेहार हो तो उस मरिचक क्रिये को तुम्हें क्यों नहीं म तोड़ा ?

पूर्व०—बाहरी ! हमारे तो क्रिये की चार मुख पेरने का कुत्तार में हुक्म है और हमारे के मं नहीं है फिर वे तुल्यरस्त क्यों नहीं ? और हम क्यों ? क्योंकि हमको सुहा का हुक्म मज्जाया अमर्य है ॥

उत्तर०—कैसे तुम्हारे बिने कुत्तार में हुक्म है कि हमारे बिने कुत्तार में चाप है । कैसे तुम कुत्तार को सुहा का चम्पारण समझते हाँ कैसे कुत्तार को कुत्तार के चम्पारण चम्पारण का चम्पारण समझते हैं । तुम में और हमें तुल्यरस्ती का कुछ भिन्नभाव नहीं है मनुष्य तुम वही तुल्यरस्त और वे जोड़े हैं । क्योंकि चाप एक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई किसी को निष्काशने लगे तब तक उसके घर में वह प्रविष्ट होता है किन्तु वही मुहम्मद चाप ने जोड़े तुम्हें मुसलमानों के मत से निष्काश परम्परा कहा तुम्हें । जो कि पञ्चम के चम्पारण मने की मरिचक है वह सब मुसलमानों के मत में प्रविष्ट कहावी । क्या वह जोड़ी तुल्यरस्ती है ? हाँ जो हम लोग वैदिक हैं किन्तु वही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ तो तुल्यरस्ती धारि कुत्तारों से सब चाप चम्पारण नहीं, तुम को चम्पारण अपना नहीं तुल्यरस्ती को न निष्काश हो तब तक दूसरे जोड़े तुल्यरस्ती के चम्पारण से चम्पारण हमें विहाय रहना चाहिये और अपने को तुल्यरस्ती से तुल्यरस्ती के पक्ष में पक्ष करने चाहिये ॥ ३ ॥

३१—जो चाप चम्पारण के मार्ग में मने जाते हैं उनके बिने वह मत कहा कि वे मनुष्य हैं किन्तु वे जीवित हैं ॥ मं १ । सि १ । पृ २ । पं १४४ ॥

समी —भला ईश्वर के मार्ग में मने मार्ग की क्या चापसमता है ? वह नहीं नहीं कहते हो कि वह चाप अपने मतकाच सिद्ध करने के बिने हैं कि वह लोग हों तो लोग सब करेंगे अपना विजय होया मने से न करेंगे सुत्तार करने से देखें मने होया पञ्चम विजयमने करेंगे इत्यादि स्वयंमने के बिने वह विजय मने मने किया है ॥ ३१ ॥

३२—और यह कि चम्पारण जोड़े तुम्हें वेने कहा है । विजय के पीछे मत कहा विजय को तुम्हारा चम्पारण मने है ॥ उसने विजय और कुछ नहीं कि तुम्हें

और विघ्नता की जाणा है और यह कि तुम क्यों अज्ञाह पर जा नहीं सकते ॥
मं १। सि २। सू २। आ १६२। १६८-१६९ ॥

समी०—क्या कठोर दुःख होनेवाला क्यातु सुख पापियों पुण्यमात्रों पर है
अप्य सुसखमात्रों पर क्यातु और अन्य पर क्याहीन है ? या ऐसा है तो वह
ईश्वर ही नहीं हो सकता । और पचपाती नहीं है तो जो मनुष्य क्यों धर्म करने
उस पर ईश्वर क्यातु और जो अधर्म करने उस पर क्यादशा होगी तो फिर
बीच में मुहम्मद साहेब और कुरान का मानना आवश्यक न रहा । और जो सब
की कुरान करनेवाला मनुष्यमात्र का शत्रु शिष्टाव है उमरके सुख न उत्पन्न ही क्यों
किया ? क्या वह मस्किन्तु की बात नहीं जानता था ? जो कहा कि आकता या
पत्तु परीक्षा के बिने क्याथा तो भी नहीं बन सकता क्योंकि परीक्षा करना
असम्भव का काम है सर्वज्ञ तो सब जोकों के अन्तः पुर कर्मों का सदा से ठीक से
आकता है और शिष्टाव सब का बहकता है तो शिष्टाव को किसने बहकना ? जो
कहा कि शिष्टाव आप बहकता है तो अन्य भी आप से आप बहक सकते हैं बीच
में शिष्टाव का क्या काम ? और जो सुख ही न शिष्टाव का बहकना तो कुरान शिष्टाव
का भी शिष्टाव इतराव, ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती और जो कोई बहकता
है वह कुल्ल तथ्य अवश्य स ज्ञान होता है ॥ ३२ ॥

३३—तुम पर सुधार आहू और गोस्त सुधार का हराम है और अज्ञाह के
बिना जिस पर कुछ पुकारा जाय ॥ मं १। सि २। सू २। आ १७३ ॥

समी०—यहाँ विचारना चाहिये कि सुखों काय काय से काय भर का किसी
के मारने से दोनों बरान्त हैं जो इसमें कुछ मर भी है तथापि सुखफल में कुछ मर
नहीं और एक सुधार का निषेध किया तो क्या मनुष्य का मांस जाना उचित है ?
क्या वह बात अचढ़ी है सफ़ती है कि परमेश्वर के काम पर शत्रु कायि का अमन्त
दुःख है के अन्तःहवा करवी ? इसका ईश्वर का नाम कदाचित्त हो जाता है जो
ईश्वर ने दिया पूज्यमान के अपराध के सुसखमात्रों के हाथ से दण्ड दुःख क्यों
दिखाया ? क्या अब पर क्यातु नहीं है ? उमरके पुत्रपत्नी क्यों मानता ? जिस वस्तु
से अधिक उत्पन्न हल उन गल अवधि के मारने का निषेध न करना ज्ञाना इत्या
करकर सुख जगत् का हाविअरक है । विधायक पाप से कदाचित्त भी हो जाता
है । यही क्यों सुख और सुख के पुलक की कमी नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥

३४—१०३ की बात मुहम्मद खिब हसाब की गई कि मरनाभस करवा अपवी
बीबियों से न मुहम्मद बाक पदा हैं और तुम अबक खिब पदा हो अज्ञाह न ज्ञानकि
तुम क्यों करते हैं अज्ञान् अविचार क्या कि अज्ञाह न ज्ञान कि तुम को बस
उमर मिला और उ हा जो अज्ञाह न मुहम्मद खिब खिल दिया है अज्ञान् सम्यक
अज्ञा पीछा कहीं तक कि उकट हो मुहम्मद खिब काय ताम से सुपर ताम का
रत से अब दिव निकल ॥ मं १। सि २। सू २। आ १८० ॥

समी०—यहाँ वह निमित्त होता है कि अब सुसखमात्रों का मर ज्ञान का
उपेध पहिच किसी न किसी पौराणिक का चरित्र हाथ कि अमन्तक मर जो एक

महीन पर कर होता है उसकी विधि क्या ? वह साक्षिविधि या कि मन्त्राद्य में चन्द्र को कड़ा करने करने के अनुष्ठान प्रतीकों के अन्तर्गत ब्रह्मण और मन्त्राद्य दिन में श्राद्ध है उसको न आनकर कहा होगा कि चन्द्रमा का दर्शन करके श्राद्ध उद्योगों इन सुखसमाल जायों ने इस प्रकार कर कर दिया परन्तु मत में स्वीकृतमात्र का कर्म है वह एक बात गुरा ने कहकर कहा कि तुम जिनकी का भी समागम भक्ष ही किया करो और रात में चाहे जनेक बार प्राणो । भक्षा यह मत क्या हुआ ? दिन को न श्राद्ध रात को प्राण रहे यह सृष्टिकर्म से विपरीत है कि दिन में न श्राद्ध रात में प्राण ॥ ३४ ॥

३५—प्रजापति के मार्ग में जाओ उब स जो तुम से कहते हैं ॥ मार उखा तुम उनके काँची प्राणो ॥ अतएव ये कुछ गुरा है ॥ यहाँ तक उब से जाओ कि कुछ न रह और होवे हीन प्रजापति का ॥ उन्होंने कितनी जिज्ञासुता की तुम पर उलटी ही तुम उनके साथ करो ॥ मं १ । सि १ । सू २ । या १४ - १४१ । १४३-१४४ ॥

समी०—जो कुराव में देखी बात न होती तो सुखसमाल जाय इतना कहा अपराध जो कि अन्त मत बाह्यो पर किया है न करते और किया अपराधियों को समझ उब पर कहा प्राण है । जो सुखसमाल के मत का प्रवचन न करता है उस को कुछ कहते हैं अर्थात् कुछ से अतएव को सुखसमाल जाय अर्थात् मानते हैं अर्थात् जो हमारे हीन को न माने उद्योगों हम अतएव करेंगे जो करते ही प्राण मन्त्राद्य पर कहते १ प्राण ही प्राण प्राण से वह होमये और उद्योग मत अन्त मत बाह्यो पर प्रति करो रहता है । क्या चोरी का बर्तन चोरी है ? कि कितना अपराध हमारा चोर प्राण करें क्या हम भी चोरी करें ? वह सर्वथा अन्वय की बात है, क्या कोई प्रजापति हमको गन्धर्वों से क्या हम भी उसको प्यारी देवें ? वह बात न ईश्वर की और न ईश्वर के भक्त विद्वत् की और न ईश्वरोक्त पुस्तक की हो सकती है वह तो केवल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्य की है ॥ ३५ ॥

३६—प्रजापति माने को मित्र नहीं रखता ॥ ये लोगो ! जो ईमान माने हो इसका मत में प्रवेश करो ॥ मं १ । सि १ । सू १ । या १२ । १३ ॥

समी०—का कर्म करने को सुना मित्र नहीं समझता तो क्यों प्राण ही सुखसमालों को कर्म करने में प्रेरणा करता ? और प्रजापति सुखसमालों से मित्रता क्यों करता है ? क्या सुखसमालों के मत में मित्रता से ही कुरा राखी है तो वह सुखसमालों ही का पक्षपाती है सब संसार का ईश्वर नहीं ईश्वर नहीं वह विहित होता है कि न कुराव ईश्वरकृत और न इसमें कहा हुआ ईश्वर हो सकता है ॥ ३६ ॥

३७—कुराव कितने चाहे अनन्त रिक्त देखे ॥ मं १ । सि १ । सू १ । या ११२ ॥

समी०—क्या बिना प्राण पुण्य के कुरा देखे ही रिक्त देखे है ? फिर प्रजापति कुराव का करना पक्षपाती ही कुराव नहीं कि कुराव हुआ मत्त होया उसकी हत्या पर

हे इससे बरम से विमुक्त होकर मुसलमान लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई ? इस कुरानोक्त पर विचार न करके धमाधमा भी करते हैं ॥ ३० ॥

३८—प्रश्न करते हैं तुम्हें राजस्वका को कद को अपवित्र है परन्तु पछे जगु समय में उनके समीप मत जाओ जब तक कि वे पवित्र न हों जब महा सेवे उनके पास उस कमान से जाओ सुरा ने आज्ञा दी है तुम्हारी बीबियां तुम्हारे धिये सेठियां हैं बस जाओ जिस तरह चाहो अपने सेठ में तुम्हें भडा कमान (बकर कर्ष) शपथ में नहीं पकड़ता ॥ मं १ । सि १ । सू १ । अ २२२-२२३ ॥

समी०—आ यह राजस्वका का स्वर्ण सङ्ग न करना सिखा है वह अपदी मत है परन्तु आ यह धियों को सेठी के तुम्हें सिखा और मिस जिस तरह स चहा जाया वह मनुष्यों को विपरी करके का करार है । जो सुरा केकर शपथ पर नहीं पकड़ता तो सब भूख बोझों शपथ तोड़ेंगे । इसल सुरा भूख का प्रवर्जक होग्य ॥ ३८ ॥

३९—तो कौन मनुष्य है जो अज्ञाह को उधार रूँ अन्ध बस अज्ञाह दिगुह कर उसके उसके बल ॥ मं १ । सि १ । सू १ । अ २२४ ॥

समी०—अज्ञा सुरा का कर्ज (उधार) * सेने स क्या प्रयोजन ? जिसने स्वर संस्वर का बचाना वह मनुष्य स कर्ज खता है ? कदापि नहीं । ऐसा ता विन्य समने कहा जा सकता है । क्या उसका प्रजाप कासी हागया था ? क्या वह हु की पुधियां व्यापारि में मम्म हावे से हरे में बंस गया का आ उधार खने खमा ? और एक का दो २ देवा स्वीकार करता है क्या यह साहूकारों का काम है ? किन्तु देवा काम तो दिव्यधियों का जर्न अधिक करवेयाह और आप न्यून होने वाली को करना पकता है ईश्वर को नहीं ॥ ३९ ॥

४ —उम में स कोई ईमान न जाय और कोई अकिर बुधा आ अज्ञाह चाहता न खपते जो चाहता है अज्ञाह करता है ॥ मं १ । सि १ । सू १ । अ २२५ ॥

समी०—क्या जितनी खपार्ह होती है वह ईश्वर ही की इच्छा स ? क्या वह अपर्म करवा चहे तो कर सकता है ? आ एसी मत है ता वह सुरा ही नहीं क्योंकि मछे मनुष्यों का वह कर्म नहीं कि शान्तिमय करक खपार्ह कावे इसल धिरित होता है कि यह कुरान न ईश्वर का कमाना और न किसी धार्मिक विद्वान का इच्छा है ॥ ४ ॥

* इसी आप्त के भाष्य में लफ्फीरबुधानी में लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहब के पास जाय उसने कहा कि ७ रगुलगाह सुरा कर्ज क्यों मांगता है ? उन्होंने उत्तर दिया कि तुमको बहिरत में स जान के भिये उमन कहा जा बार उमानत में ता में सू । मुहम्मद साहब न उसकी जमानत खेदी । सुरा का भालत न हुवा उसक दूध का हुवा ॥

४१—जो कुछ प्राप्तमान और धृतिवी पर है सब उसी के दिये है आरे उसकी कुरसी ने प्राप्तमान और धृतिवी को समझ दिये है ॥ मं १। सि ३। सू २। आ २२२ ॥

समी०—जो आत्मन्य भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के दिये परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं अपने दिये वही क्योंकि वह पूर्वकाम है उस को किसी पदार्थ की प्रतीक्षा नहीं जब उसकी कुरसी है तो वह एकदेखी है जो एकदेखी होय है वह ईश्वर नहीं करता क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है ॥ ४१ ॥

४२—अच्छा सूर्य को पूर्व से जाय है क्या सूर्य पश्चिम से होता क्या जो अक्षिर हैरात हुआ था निजय अच्छा पापियों को मार्ग नहीं दिखता ॥ मं १। सि ३। सू २। आ २२८ ॥

समी०—देखिये वह अविद्य की बात ! सूर्य व पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी जाता है वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है इससे विहित अन्य बात है कि कुरान के कर्ता को न जगोह और न भूगोह विद्य जाती थी । जो पदार्थों को मार्ग नहीं करवाता तो पुण्यपुण्यकों के दिये भी मनुष्यमनुष्यों के कुरा की पावनकथा नहीं क्योंकि मार्गात्मा तो घर्म मार्ग में ही होते हैं मार्ग तो घर्म से मूछे हुए मनुष्यों को करवाया होय है जो कर्मव्य के न करने से कुरान के कर्ता की बड़ी मूर्ख है ॥ ४२ ॥

४३—कहा था आनकों से वे उसकी सूरत पहिचान रहा फिर हर पक्ष पर उन में से एक २ दुष्का रहा है फिर उनको कुछा सौकसे तेरे पास चले आये ॥ मं १। सि ३। सू २। आ २६ ॥

समी०—कहा २ ! देखोमी मनुष्यमनुष्यों का कुरा भावमयी के समान बंध कर रहा है ! क्या पेसी ही कर्ता से कुरा की कुराई है ! इतिमन् कोय पेसे कुरा को विद्यामन्त्रि देकर दूर रहि और मूर्ख कोय बंधो इसके कुरा की बकाई के बंधे कुराई उछले फले पैसी ॥ ४३ ॥

४४—जिसको चाहे नीति देता है ॥ मं १। सि ३। सू २। आ २६३ ॥

समी०—जब जिसको चाहता है उसको नीति देता है तो जिसको नहीं चाहता है उसको नीति देता होय वह बात ईश्वरता की नहीं । किन्तु जो पक्षपक्ष कोय सब को नीति का बफेदा करता है वही ईश्वर और बात हो प्रकटा है अन्य नहीं ॥ ४४ ॥

४५—यह कि जिसको चाहेय समझ कोय जिसको चाहे दख देता क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान् है ॥ मं १। सि ३। सू २। आ २८४ ॥

समी०—क्या जमा के बोध पर जमा न करवा अपोन्व पर जमा करवा पक्षपक्ष रात के दुख वह कर्म नहीं है ? यदि ईश्वर जिसको चाहता प्राणी का दुखपक्ष कथता तो जीव को फल पुण्य न जगता चाहिये क्या ईश्वर ने उसको देता ही किया तो जीव को दुख दुख भी होय न चाहिये कैसे क्षेत्रपति की

प्राज्ञा से किसी मूल ने किसी को मारा या रचा की उसका कलमाणी यह नहीं होता जैसे वे जी नहीं ॥ ४२ ॥

४३—कह इससे बाबा और क्या परहेजगारों को ज़रूर है कि भज्जाह की ओर से बहिरों हैं जिसमें यहों बहती हैं उन्हीं में सर्व रहनेवाली छह बीबियां हैं भज्जाह की प्रसन्नता से भज्जाह उनको देखने बाबा है साथ कर्तों के ॥ मं १ । सि ३ । सू ३ । पा १४ ॥

समी०—महा यह स्वर्ग है किंवा अस्वर्ग ? इसको ईश्वर क्या क्या था स्वीक ? कोई भी बुद्धिमान् देसी बातें जिसमें हों उसको परमेश्वर का किया पुस्तक मान सकता है ? यह पचपात क्यों करता है ? जो बीबियां बहिर में सदा रहती हैं वे वहां जन्म पाके वहां गई हैं या वहीं जन्म हुई हैं ? यदि वहां जन्म पाकर वहां गई हैं और जो जन्ममत् की रात से पहिले ही वहां बीबियों को बुझा दिया तो उनके कर्मियों को क्यों न बुझा दिया ? और जन्ममत् की रात में सब का जन्म होगा इस नियम को क्यों तोड़ा ? यदि वहां जन्मी हैं तो जन्ममत् तक वे क्योंकर निबाह करती हैं ? जो उनके लिये पुरुष भी हैं तो वहां से बहिर में जानेवाले मुसलमानों को बुझा बीबियां वहां से रोग ? और जिस बीबियां बहिर में सदा रहने वाली क्यार्ई ब्रह्म पुरुषों को वहां सदा रहनेवाले क्यों नहीं बनाया ? इसलिये मुसलमानों का बुझा अन्धमन्धरी, बेसमक है ॥ ४६ ॥

४४—निजम भज्जाह की ओर से हीन इसकाम है ॥ मं १ । सि ३ । सू ३ । पा १८ ॥

समी०—क्या भज्जाह मुसलमानों ही का है औरों का नहीं ? क्या तोहसी बर्तों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं ? इससे बुरात ईश्वर का बनाया तो नहीं किन्तु किसी पचपाती का बनाया है ॥ ४७ ॥

४८—प्रत्येक जीव को पूरा दिया जायगा जो कुछ उसने जमाया और व न जमाया किये जायेंगे ॥ कह का भज्जाह न ही मुक्त का साक्षिक है जिसको चाह देया है जिसको चाहे पीमता है जिसको चाह प्रतिष्ठा रचा है जिसको चाह धर्मिष्ठ दता है सब कुछ तरे ही हाथ में है प्रत्येक वस्तु पर न ही बलवान् है ॥ रात को दिन में और दिन को रात में पीमता है और मूलक को जोरित से जोरित को मूलक से निष्काहत है और जिसको चाहे अकल रात देया है ॥ मुसलमानों का उक्ति है कि कश्चित् का मित्र न बनवें मिराच मुसलमानों के जो क्यार्ई कह का कह कह भज्जाह की ओर से नहीं । कह जो तुम चाहत हो भज्जाह को ता पच क्यो मरा भज्जाह चाहता तुमका और तुम्हारे पाप का जमा करग निजम कल्याणक है ॥ मं १ । सि ३ । सू ३ । पा २४-२७ । ३ ॥

समी०—जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा २ कह दिया जायगा तो जमाना ही किया जायगा और जो पचा किंवा जयगा ता पूरा कह नहीं दिया जायगा और जन्माव होगा, जब नियमकम कर्मों के राज्य तथा भी जन्मावकही हो जायगा भला उक्ति से बुद्ध और मूलक से उक्ति कभी हो सकता है ? क्योंकि ईश्वर की व्यवस्था धर्म,

४१—जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसी के बिये है चाहे उसकी कुरसी में आसमान और पृथिवी को समा लिया है ॥ मं १ । सि ३ । सू २ । पा २२२ ॥

समी०—जो आकाश भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के बिये परम्परा में उत्पन्न किये हैं अपने बिये नहीं क्योंकि वह पूर्वकाल में उस को किसी पदार्थ की प्रेरणा नहीं जब उसकी कुरसी है तो वह प्रकट होती है जो प्रकट होती होना है वह ईश्वर नहीं कहाता क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है ॥ ४१ ॥

४२—अच्छाह सूर्य को पूर्व से आता है अतः सूर्य पश्चिम से चला गया जो अक्षरि देशान्तर दुष्ट या निम्न अछाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता ॥ मं १ । सि ३ । सू २ पा २२८ ॥

समी०—देखिये वह आकाश की बात ! सूर्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता जाता है वह तो अपनी पृथिवी में घूमता रहता है इससे विक्षिप्त माना जाता है कि कुराव के कर्तों को न अयोध और न अयोध दिया जाता भी । जो पार्थिवों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यधर्मों के बिये भी सुखसमर्थों के कुरा की आवश्यकता नहीं क्योंकि धर्मधर्म तो धर्म मार्ग में ही होते हैं मार्ग तो धर्म से भूके हुए मनुष्यों का बतलाता होता है सो कर्तव्य के न करने से कुराव के कर्तों की बड़ी मूर्ख है ॥ ४२ ॥

४३—कदा चर आनवरो से से उनकी सूर्य पहिचान रक्त फिर हर पहाड़ पर उन में से एक २ टुकड़ा रक्त है फिर उनके कुछ बीजों से वेरे पास चले आये ॥ मं १ । सि ३ । सू २ । पा २३ ॥

समी०—याह २ । देखो जी सुखसमर्थों का कुरा धर्मधर्म के समान खेद कर रहा है । क्या देखी ही बातों से कुरा की कुराई है ? बुद्धिमान् लोग देख कुरा को विचारमग्न देख दूर रहिये और मूर्ख लोग अंधेरे इससे कुरा की बर्बर के बर्बर कुराई उसके पक्षे पड़ेगी ॥ ४३ ॥

४४—जिसको चाहे जीति देता है ॥ मं १ । सि ३ । सू २ । पा २४ ॥

समी०—जब जिसको चाहता है उसको जीति देता है तो जिसको नहीं चाहता है उसको जीति देता होगा वह बात ईश्वरता की नहीं । किन्तु जो पदपात लोग सब को जीति का उपदेश करता है वही ईश्वर और आज्ञा हो सत्य है अन्य नहीं ॥ ४४ ॥

४५—वह कि जिसको चाहे सब करे जिसको चाहे दण्ड देह क्योंकि वह सब सब पर बलवान् है ॥ मं १ । सि ३ । सू २ । पा २४७ ॥

समी०—क्या जमा के बीज पर जमा न करवा अर्थात् पर जमा करवा गहराई राजा के पुत्र वह कर्म नहीं है ? यदि ईश्वर जिसको चाहता प्रतीक रूपधर्म बनाता तो जीव को पाप पुण्य न करवा चाहिये जब ईश्वर ने उसको देता ही किया तो जीव को पुण्य पुण्य भी होना न चाहिये जैसे वेधपति की

बाबा से किसी मूल ने किसी को माता या रक्षा की उपाय प्रशस्ती पर नहीं होता कैसे वे भी नहीं ॥ ४२ ॥

४३—कह इससे प्रकृति और क्या परहेजगारों को प्रवर वृ कि प्रजापति की धोर से बहिरसे है जिसमें बहरे प्रजापति हैं उन्हीं में सदैव रहनेवाली दुष्ट बीबिया हैं प्रजापति की प्रशस्ती से प्रजापति उनको देखने बाबा है शायद कहीं के ॥ मं १ । सि ३ । सू ३ । पा १४ ॥

समी०—प्रजापति वह कर्ण है किंवा केवल्य ? इसको ईश्वर कह्यो या सौम्य ? कर्ण भी बुद्धिमान् पृथी पार्थ जिसमें ही उसको परमेश्वर का किंवा पुत्रक मान्य प्रशस्त है ? वह पक्षपक्ष क्यों करता है ? जो बीबिया बहिर में सदा रहती है वे क्यों कल्प लगे क्यों लगे हैं या नहीं उल्लेख हुई है ? यदि क्यों कल्प प्राण क्यों लगे हैं और जो कल्पमूल की रात से पक्षि ही क्यों बीबियों को पुत्रा किंवा तो उनके कल्पियों को क्यों व पुत्रा किंवा ? और कल्पमूल की रात में सब का ज्ञान होय इस विषय को क्यों लोका ? यदि क्यों कल्पी हैं तो कल्पमूल तक है क्योंकि निबोध करती है ? जो उनके सिधे पुत्र भी हैं तो क्या वे बहिर में जानेवाले मुद्रकमालों को कुरा बीबिया क्यों से देय ? और सिधे बीबिया बहिर में सदा रहने वाली कलाई के पुत्रों को क्यों कुरा रहनेवाले नहीं गयी कल्पना ? इसलिये मुद्रकमालों का कुरा प्रजापति की प्रशस्त है ॥ ४६ ॥

४०—विश्व प्रजापति की धोर से बीब प्रशस्त है ॥ मं १ । सि ३ । सू ३ । पा १८ ॥

समी०—क्या प्रजापति मुद्रकमालों की का है धीरों का नहीं ? क्या केहरी बर्ण के पूर्व ईश्वरीय मत का ही नहीं ? इसीसे कुरा ईश्वर का कल्प लगे क्यों किन्तु किसी पक्षपाती का कल्प है ॥ ४७ ॥

४८—प्रत्येक जीव को पूरा दिया जायदा जो कुछ उसने कल्पना और है व कल्पना किने बाबों ॥ कह का प्रजापति व ही मुद्रक का मासिक है जिसको चाह देय है जिसको चाह बीबिया है जिसमें चाह प्रविष्ट क्या है जिसको चाह प्रविष्ट देता है सब कुछ तो ही कल्प में है प्रत्येक पक्ष पर ही कल्प है ॥ रात का दिन में और दिन को रात में पैदाता है और मुद्रक को जीवित व जीवित को मृतक से निश्चयता है और जिसको चाह कल्पना सब क्या है ३ मुद्रकमालों को उचित है कि कल्पियों को मित्र व कल्पों निश्चय मुद्रकमालों के का कार्य पर जो कह वह प्रजापति की धोर से नहीं । कह जो तुम चाहते हो प्रजापति को तो वह को मेरा प्रजापति चाहय तुमको और तुम्हारे पाप को हय कल्प निश्चय कल्पामय है ॥ मं १ । सि ३ । सू ३ । पा २४-२७ । ३ ॥

समी०—जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा २ पक्ष दिया जायदा तो कल्पमालों किंवा कल्पमाल और जो क्या किंवा जायदा ता पूरा कल्प नहीं दिया जायदा और कल्पमाल कल्प, जब किन्तु उक्त कर्मों के राज्य देय तो भी कल्पमालों होयदा कल्प जीवित व मृतक और मृतक से जीवित कर्मों हो कल्प है । क्योंकि ईश्वर की कल्पना प्रत्येक

करेगा है । कभी बदल नही हो सकती । जब देखिये पक्षपात की बातें कि जो मुसलमानों के महाद्वेष में नहीं हैं उनके प्रति उद्धारणा उसमें श्रेष्ठों से भी मित्रता न रखने और मुसलमानों में दुष्टों से भी मित्रता रखने के बिना उपरत करण ईश्वर को ईश्वरता से बहिष्कार देता है । इससे वह कुराब कुराब न सुरु और मुसलमान लोग केवल पक्षपात अभिप्राय के मरे हुए हैं इसीबिने मुसलमान लोग अपने में हैं और देखिये मुहम्मद साहेब की बीबी कि जो तुम मेरा पक्ष करो तो सुरु तुम्हारा पक्ष करोगे और जो तुम पक्षपातपूर्ण पक्ष करो तो उसकी जमा भी करोगे इससे सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहेब न धन्ना-धन्ना छल नहीं था इसीबिने अपने मतकाय सिद्ध करने के लिए मुहम्मद साहेब ने कुराब बनाया था बचकाया ऐसा निर्दिष्ट होता है ॥ ३८ ॥

३८—जिस समय कहा करिस्तों ने कि वे सर्वत्र तुम्हारे अज्ञात ने पसन्द किया और पसन्द किया कुराब कुराब की क्षियों के ॥ मं १ । सि ३ । सू ३ । या ३३ ॥

समी०—महा जब धनकक सुरु के करिस्तों और सुरु किसी से बातें करने को नहीं करते तो प्रश्न कैसे करते हैं ? जो कहो कि पहिले के मनुष्य पुनरुत्थान के जब के नहीं तो वह बात मिथ्या है किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत कहा या उस समय जब देशों में अज्ञात और निष्पक्षिक मनुष्य अधिक थे इसीबिने ऐसे निष्पक्षिक मत बल गये । जब विद्वान् अधिक हैं इसीबिने नहीं बल सकता किन्तु जो २ ऐसे लोक महाद्वेष हैं वे भी जलत होते जाते हैं दुष्ट की तो कथा ही क्या है ॥ ३९ ॥

४—उसको कहा है कि जो कस होजाता है ॥ अक्षिओं ने बोला दिया ईश्वर ने बोला दिया, ईश्वर बहुत मकर करकेबचा है ॥ मं १ । सि ३ । सू ३ । या ३४ । २३ ॥

समी०—जब मुसलमान लोग सुरु के सिक्क इस्ती चीज नहीं मानते तो सुरु ने किछे कहा और उसके कहने से और होमना ? इसका उत्तर मुसलमान सदा कल्प में ही नहीं वे सर्वत्र नहीं किन्तु कपादान करण के करने कभी नहीं हो सकता किना करण के अर्थ कहा जानो अपने भी आप के बिना मेरा शरीर होमना ऐसी बात है । जो बोला देता जानात् कल और दम्भ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा कदम नहीं करता ॥ ४ ॥

४१—क्या तुम्हारे वह बहुत न होया कि अज्ञात तुम्हारे तीन हजार करिस्तों के साथ सहज रहे ॥ मं १ । सि ४ । सू ३ । या १२३ ॥

समी०—जो मुसलमानों की तीन हजार करिस्तों के साथ सहज देता था तो जब मुसलमानों की अज्ञात बहुत सी वह होजाई और होती जाती है नहीं सहज नहीं देता ? इसबिने वह बात केवल लोग ऐसे मूर्खों को बताने के बिने महा अज्ञान की बात है ॥ ४१ ॥

४२—और अक्षिओं पर हमको सहाय कर ॥ अज्ञात तुम्हारा उत्तम सहाय न कर और करेगा है ॥ जो तुम अज्ञात के मार्ग में मरे जाओ या मरजाओ

अष्टादश की दशा बहुत अच्छी है ॥ अं १ । सि ४ । सू० ३ । धा १७६ ।
१४३ । १४५ ॥

समी०—अब देखिये मुसलमानों की भूख कि जो अपने मत का भिक्ष है उनके मरने के लिये लुटा की प्रार्थना करते हैं। क्या परमेश्वर मोखा है वा इन्हीं का भक्षण करे ? यदि मुसलमानों का कब्रस्तान थाहाइ ही है तो फिर मुसलमानों के कबरे यह क्यों इतने हैं ? और लुटा भी मुसलमानों के ध्यान मोह से फंसा हुआ दीख पड़ता है वा ऐसा पक्का लुटा है तो अर्मात्मा पुरुषों का उपासनीय कभी नहीं हो सकता ॥ २३ ॥

२३—और अहाह तुमको परोखड क्यों करता परन्तु अपने शिगरी के निम्नको छोड़े पछान्द कर यस अहाह और उसके रसूख के साथ ईमान खाओ ॥

समी०—अब मुसलमान लोग सिबाब सुरा के किसी के साथ ईमान नहीं लाये और न किसी को सुरा का साक्षी मानते हैं तो पैगम्बर सल्लेह को क्यों ईमान में सुरा के साथ शरीक किया ? अल्लाह ने पैगम्बर क साथ ईमान आत्म शिष्य इसी से पैगम्बर भी शरीक होना पुनः कानूरीक कदम रोक न हुआ यदि इसका जवाब यह समझ जाय कि मुसलमान सल्लेह के पैगम्बर होने पर विनाश आत्म आदिने तो वह प्रस होना है कि मुसलमान सल्लेह के होने की कथ प्रत्यक्षबल्य है । यदि सुरा उसको पैगम्बर किये बिना अपना प्रतीति कर्म नहीं कर सकता तो प्रत्यक्ष असमर्थ हुआ ॥ ५३ ॥

४४—दे ईमानवालों ! अंतोष करो परस्पर बायें एकदो और बढ़ाई में करो
रहो अन्नद से करो कि तुम पुनश्च पाओ ॥ अ १। छि ४। सू ३।
आ ३ ॥

समी०—यह कुरान का लुहा और पैम्बर दोनों का बर्दाश्त है जो पदार्थ की प्रथा देता है यह शास्त्रिक करनेवाला होता है क्या मरम्मात लुहा से करने से कुम्भरा पाया जाता है ? या बाधपूर्ण पदार्थ यदि स करके स जो मरम्मा पद है तो कुरान न करवा कुरान और जो द्वितीय पद है तो शीश है ॥ २४ ॥

२६—ये प्रज्ञा की हरी है जो प्रज्ञा और उसके समूह का कदा मान्य
 वह बहिर में पूर्णतः जिसमें नहरे बहती है और बड़ी बड़ा प्रयोजन है ॥ जो
 प्रज्ञा की और उसके समूह की प्रज्ञा मज्जा भग्न और बसकी हरी। प्रज्ञा हो
 मान्य वह प्रज्ञा रहनेवाली प्रज्ञा में प्रज्ञा ज्ञान और उसके द्विजे का प्रज्ञा करने
 प्रज्ञा हुआ है ॥ मं १। सि ४। सु ४। प्र १३-१४ ॥

समी०—तुम ही मे मोहम्मद साहेब पैगम्बर को अपना शरीक कर लिया है और तुम कुतल ही में लिया है और देखो तुम पैगम्बर साहेब के साथ कैसे बातें है कि जिसने कहियत में राज्य का साम्य कर दिया है। किसी एक बात में भी मुसलमानों का तुम स्वतन्त्र नहीं तो साम्यरीक कहना जरूरी है, पृथी २ बायें ईश्वरीय पुस्तक में नहीं हो सकती ॥ २५ ॥

२९—और एक जसरेख भी बराबर भी चढ़ाह चढ़ाव नहीं करता और जो मचाई होवे उसका दुगुण करेगा उसको ॥ मं १। सि २। सू ४। अ ३ ॥

समी०—जो एक जसरेख भी लुटा चढ़ाव नहीं करता तो पुन्य को शिगुष नहीं देता ? और मुसलमानों का पचपात क्यों करता है ? वास्तव में शिगुष या म्पून जब क्यों का देने तो लुटा चढ़ावा ही हो जाय ॥ २९ ॥

२०—जब ठेरे पास से बाहर निकलते हैं तो ठेरे कदमे के सिचाप (विपरीत) सोफते हैं चढ़ाह उनकी सबाह को सिखता है ॥ चढ़ाह ने उनकी कमाई वस्तु के कारण से उनकी उकता किया क्या तुम चाहत हो कि चढ़ाह के गुमराह जिसे हुज को मार्ग पर खानो कस जिसको चढ़ाह गुमराह करे उसको कदापि मार्ग न पावेगा ॥ मं १। सि २। सू ३। अ ८१। अ ३ ॥

समी०—जो चढ़ाह बाँलों को सिखा नहीं करता बसता जाय है तो सर्वज्ञ नहीं ? जो सर्वज्ञ है तो सिखाने का क्या काम ? और जो मुसलमान कहते हैं कि रीतान ही सब को बहकाने से हुज हुआ है तो जब लुटा ही बाँलों को गुमराह करता है तो लुटा और रीतान में क्या भेद रहा ? हाँ इतना भेद कह सकते हैं कि लुटा बड़ा रीतान का छोटा रीतान क्योंकि मुसलमानों ही का झूठ है कि जो बहकाना है वही रीतान है तो इस मतिज्ञा से लुटा को भी रीतान कहा दिया ॥ २० ॥

२१—और अपने हाथों को न रोके ता उनको एकज जो और जहाँ पावो मारकको ॥ मुसलमान को मुसलमान का मारना बोल्य नहीं जो कोई सक्ताव से मारकको जब एक पर्यन्त मुसलमान का ? बोधना है और कल क्या उन दोनों की ओर से हुई जो उस झैम से होवे और दुम्हार किये जो दाव का देने जो दुरमन की झैम से है ॥ और जो कोई मुसलमान को जानकर मार कहे वह सदैव कल दोइरा में रहेगा उस पर चढ़ाह का श्रेष्ठ और बलवत है ॥ मं १। सि २। सू ३। अ ४१-४२ ॥

समी०—जब देखिये महा पचपात की बात है कि जो मुसलमान व हो उसको कहाँ पावो मारकको और मुसलमानों को व मारना । मूख से मुसलमानों को मारने में प्रवृत्त और जन्म को मारने से बहिरत सिद्धेन्द्र देवे उपदेश को रूप में बखाना चाहिये ऐसे १ पुस्तक ऐसे १ पैमाने ऐसे १ लुटा और ऐसे १ मत से सिचाप हाथ के काम हुज भी नहीं ऐसी का न होना जन्म और ऐसे प्रामाणिक मर्तों से बुद्धिमानों को समझा दखल केरोक सब कर्तों को मारना चाहिये क्योंकि इसमें जसम सिद्धिमान भी नहीं है और जो मुसलमान को मारे उसको दोइरा मिसे और दूसरे मत वाले कहते हैं कि मुसलमान को मारे तो स्वर्ग मिसे । अब कहाँ हज दोनों मर्तों में से किसको मार्गे किसको बोधें ? किन्तु ऐसे मूख प्रवृत्त मर्तों को बोधकर केरोक मत स्वीकार करने योग्य सब मनुष्यों के लिये है कि जिसमें प्रार्थना मार्ग जहाँ से प्रार्थना के मार्ग में बखाना और वस्तु जहाँ से हुज के मार्ग से बखाना दखल सिचा है अनौत्तम है ॥ २१ ॥

२३—और पिछा पकड़ होने के पीछे जिसने रसूख से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया अथवा हम उनको होज़र में भेजेंगे ॥ मं १ । सि २ । सू ४ । भा ११२ ॥

समी०—अब देखिये कुरा और रसूख की पकड़ाव की क्यों मुहम्मद साहेब आदि समझते थे कि जो कुरा के नाम से ऐसी हम में किलिये तो अपना मजहब न बनेगा और पक्ष न मिलेगा अथवा भाग न होना इसी से विरुद्ध होता है कि वे अपने मतकाय करने में पूरे थे और अन्ध के प्रयोजन बिनाहमें में इससे वे अन्ध से इन्हीं बात का प्रमाण प्राप्त विद्वानों के सामने कभी नहीं हो सकता ॥ २३ ॥

१ —अब बड़ा करिस्तों कियों रसूख और अन्धकार के साथ कुछ करे जिसका वह पुनराह है ॥ जिसका जो जग ईमान करने फिर अन्धकार हुए फिर २ ईमान जाने पुनः फिर गले और कुछ में अधिक करे बड़ाह इनको कभी जमा न करवा और न मार्ग दिखवाये ॥ मं १ । सि २ । सू ४ । भा ११२-११३ ॥

समी०—क्या अब भी कुरा सामरिक रह सकता है ? क्या सामरिक करते जग और उसके साथ बहुत से शरीक भी मानते जग वह परस्पर विरुद्ध बात नहीं है ? क्या तीन बार जमा के पश्चात् कुरा जमा नहीं करता ? और तीन बार कुछ करने पर रास्ता दिखवाता है ? अब चौथी बार से जमा नहीं दिखवाता, यदि बार २ बार भी कुछ सब छोड़ करें तो कुछ बहुत ही बड़ जाये ॥ १ ॥

२१—जिसका बड़ाह कुर जगों और अन्धकारों को जमा करवा होज़र में ॥ जिसका कुरे जग बोला रहे है बड़ाह को और उनको वह बोला देता है ॥ वे ईमानवादी ! मुसलमानों को जोड़ अन्धकारों को मित्र मत बनाओ ॥ मं १ । सि २ । सू ४ । भा १४ । १४२ । १४३ ॥

समी०—मुसलमानों के अहिंसक और अन्ध जगों के होज़र में जाने का क्या प्रमाण ? यह भी बाह । जो कुर जगों के बोले में जग और अन्ध को बोला देता है ऐसा कुरा हम से अलग रहे किन्तु जो बोलेवाह है उनसे अलग मक करे और वे इससे मेक करें क्योंकि—

(बाहरी शीतला दी लाला करवाहण)

जैसे जो ऐसा मिले सभी निर्बाह होता है जिसका कुरा बोलेवाह है उसके अपासक जोड़ बोलेवाह नहीं व हों ? क्या कुछ मुसलमान हो उसके मित्रता और अन्ध भेद मुसलमान मित्र का कुरा अथवा किसी को अहिंसक हो सकता है ? ॥ २१ ॥

२२—२ जगों ! जिसका पुनारे पास जग के साथ कुरा की और से पैदावर थाय वह तुम उन पर ईमान खाओ ॥ बड़ाह मान्य खेला है ॥ मं १ । सि १ । सू ४ । भा १० -१०१ ॥

समी०—क्या अब पैदावर पर ईमान जग दिख तो ईमान में पैदावर कुरा का शरीक अर्थात् थायी हुआ था नहीं ? अब बड़ाह एकदली है प्यारक नहीं सभी तो उसके पास का पैदावर थाय जग है ता वह ईश्वर भी नहीं हो

सक्य । कहीं सचिरी शिकते हैं कहीं पकनेकी इच्छा विधित होय है कि कुपय
पूक का बनाव कहीं किन्तु मनुष्यों ने बनाव है ॥ ६२ ॥

६३—तुम पर हराम किया गया सुर्गर कोहु, सुधर का मोस जिस पर
अच्छ के लिए कुछ और पर बांधे गया छोटे, खड़ी मारे कपूर से गिर पड़े
सींग मारे और रूढ़ि का बाधा हुआ ॥ मं १ । सि १ । सू २ । प १ ॥

समी०—क्या इतने ही पराई हराम हैं जन्म मनुष्य से पशु तथा सिर्षक जीव
कीकी यदि मुसलमानों को इच्छाक होंगे ? इस बाधे वह मनुष्यों की जन्म है
ईश्वर की नहीं इससे इसका प्रमाण भी नहीं ॥ ६३ ॥

६४—और अच्छाह को अच्छा उधार हो अकल्प में तुम्हारी पुराई दूर कर दिया
और तुम्हें अद्विष्टों में मेल गया ॥ मं २ । सि १ । सू २ । प १ ॥

समी०—बादगी ! मुसलमानों के लुरा के ल में कुछ भी कम कितने नहीं
रहा होगा जो कितने होय तो उधार क्यों मांगता ? और उन्को क्यों बदकता
कि तुम्हारी पुराई लुरा के तुम को ल में मेल गया ? कहां विधित होता है लुरा के
नाम से मुहम्मद खाने में अल्प मलख सखा है ॥ ६४ ॥

६५—जिसको चाहता है जमा करता है जिसको चाहे हुआ देता है ॥ जो
कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया ॥ मं १ । सि १ । सू २ ।
प १ ॥

समी०—जैसा किताब जिसको चाहता पापी बनाता किने ही मुसलमानों का
लुरा भी रिताब का काम करता है ? जो देता है तो फिर अद्विष्ट और दोषदा में
लुरा करने क्योंकि वह पाप पुन्य करने बाधा हुआ जीव पराधीन है, जैसी केच
अल्पति के अधीन रहा करती और किसी को मारती है उसकी भलाई पुराई
केचपति को होती है अल्प पर नहीं ॥ ६५ ॥

६६—आज्ञा मानो अच्छाह की और अच्छा माओ रख की ॥ मं १ ।
सि ० । सू २ । प १ ॥

समी०—देखिये वह लत लुरा के लीक होने की है फिर लुरा को
“आपरीक” मानना लार्थ है ॥ ६६ ॥

६७—अच्छाह ने माक किया जो हो पुन्य और जो कोई फिर अल्प अच्छाह
उच्छे बरखा लेय ॥ मं १ । सि ० । सू २ । प १ ॥

समी०—किने हुए पापों का जमा करना जानो पापों को करने की आज्ञा देक
बनाया है । पप जमा करने की बात जिस पुस्तक में हो वह न ईश्वर और न
किसी शिष्ट का बनाव है किन्तु पापकर्ता ही हां आपसी पप लुरा करने के लिये
किसी अल्पार्थ और स्वयं बांधने के लिये पुन्यार्थ पचापप करना उचित है
परन्तु केक पचापप करता रहे कोई नहीं तो भी कुछ नहीं हो सक्य ॥ १ ॥

६८—और उस मनुष्य लुरा पापी की है जो अच्छाह पर मूक बांध
गौर करता है कि मी । की गई परन्तु नहीं उच्छे मार नहीं की
१ जो करता है कि मी ॥ ६८ ॥

समी०—इस बात से सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहेब कहते थे कि मेरे पास सुरा की धोर से चापतेँ आती हैं तब किसी दूसरे ने भी मुहम्मद साहेब के लुप्त चीन्हा रही होगी कि मेरे पास भी चापतेँ उतरती हैं मुझको भी पैगम्बर मानो इसको इयाने और आपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिये मुहम्मद साहेब ने यह उपाय किया होगा ॥ १८ ॥

६६—जबकि हमने तुमको उत्पन्न किया फिर तुम्हारी धुरतें बनाई, फिर हमने करिश्ती से कहा कि अब्रहम को सिखाओ करो, बस उन्होंने सिखाया किया फलतः शिष्य सिखा करेबाजों में से न हुआ। कहा जब मैंने तुम्हें छाड़ा ही फिर किसीने रोकर कि तुम्हें सिखाया न किया कहा मैं उससे जल्पा हूँ तुम्हें मुझको छाप से और उसको मिट्टी से उत्पन्न किया ॥ कहा बस उसमें से उतर वह लगे बोले नहीं है कि तु उसमें शामिलान करे ॥ कहा उस दिन तक बीस दे कि कब्रों में से उदयने करें ॥ कहा विधाय तु बीस दिने नहीं से है ॥ कहा बस इसकी कसम है कि तुने मुझको गुमराह किया जबकि मैं उनके लिये तर सीने मार्ग पर बिदूष ॥ और प्राय तु उनके धन्यवाद करनेवाला न पाकेछ ॥ कहा दुर्दशा के साथ निष्कस जल्पर जो कोई इबमें से लेरा पच करेछ तुम सब से दोहाछ को मरुछ ॥ मं १। सि ८। पृ ७। पृ ११-१८ ॥

समी०—जब ज्ञान देकर तुम्हें सुरा और शिष्य के धारने को एक करिस्त्य बैठा कि जपरासी हो या कह भी सुरा से न रहा और सुरा उसके जल्पा को पवित्र भी न कर सक्य फिर ऐसे ज्ञानी को जो पापी बनकर मर करेबाज या उल्लेख सुरा ने जोक दिया। सुरा की यह बड़ी मूर्ख है। शिष्य को सबको बहकाने बाधा और सुरा शिष्य को बहकाने बाधा होने से यह सिद्ध होता है कि शिष्य का भी शिष्य सुरा है क्योंकि शिष्य जल्पर कहता है कि तुने मुझे गुमराह किया इससे सुरा में पवित्रता भी नहीं पाई जाती और सब सुराईयों का बहाने बाधा मूर्खकारक सुरा हुआ। ऐसा सुरा मुसलमानों ही का हो सकता है जल्पर जेद विद्वानों का नहीं और करिश्ती से मनुष्यत्वं धन्यवाद करने से देहधारी धन्यवाद धन्यवादित मुसलमानों का सुरा है। इसीसे बिद्वान् ज्ञान इसजान के मरुहव को पसेद नहीं करते ॥ १९ ॥

७ — विधाय तुम्हारा मासिक अन्न है जिसने जाधमानों और पुरिबी को का दिन में उत्पन्न किया फिर क्यार पकवा करों पर ॥ शीतल से अपने मासिक को पुकारो ॥ मं १। सि ८। पृ ७। पृ २३-२४ ॥

समी०—महा जो का दिन में जपत् को बनाते (जप) जपत् क्यार के जाधम में सिद्धासन पर आराम कर वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् और ध्यापक कभी हा सकता है ? इसके न होने से यह सुरा भी नहीं कहा सकता। क्या तुम्हारा सुरा बहिर है जो पुकारने से मुक्त है ? ने सब बातें धनीधारक है इससे कुरान ईश्वरकृत् नहीं हो सकता यदि का दिनों में जपत् कयाचा सारथि दिन भर पर आराम किया तो थक भी गया हाय और जपक सत्य है या जपक है ? यदि

कमला । कहीं सर्वदेवी विद्यते है कहीं एकदेवी इससे विदित होता है कि तुम
एक का बनाता नहीं किन्तु बहुतों से बनाया है ॥ ४३ ॥

६३—तुम पर हराम किया गया सुनार खोद, सूअर का मांस जिस पर
अज्ञान के बिना कुछ और पड़ा अपने गढा खोदे, खाली मारे अस्स से गिर पड़े
खीरा मारे और हरे के काया हुआ ॥ मं २ । सि १ । सू २ । आ ३ ॥

समी०—क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं जिनसे बहुत से पण्डितों ने जीव
की-की जानि मुसलमानों को हत्या करने को ? इस बातसे यह मनुष्यों की कल्पना है
ईश्वर की नहीं इससे इसका प्रमाण भी नहीं ॥ ६३ ॥

६४—और अज्ञान को अच्छा उधार दो अज्ञान में तुम्हारी कुर्तई दूर कर गये
और तुम्हें बहिरों में भेज द्या ॥ मं २ । सि १ । सू २ । आ १२ ॥

समी०—बहली ! मुसलमानों के कुरान के का में कुछ भी ब्रह्म विरोध नहीं
रहा होगा जो विरोध होता तो उधार नहीं मंगला ? और उनको क्यों बहलता
कि तुम्हारी कुर्तई कुरान के तुम को स्वर्ग में भेज द्या ? वहाँ विदित होता है कुरान के
नाम से मुहम्मद साहेब ने अपना मुसलमान साधा है ॥ ६४ ॥

६५—जिसको चाहता है समा करता है जिसको चाहे दुःख देता है ॥ जो
कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया ॥ मं २ । सि १ । सू २ ।
आ १८ । १ ॥

समी०—कैसा कैसा जिसको चाहता पापी कष्ट देते ही मुसलमानों का
कुरान भी कैसा का काम करता है ? जो देता है तो फिर बहिरों और दोऊक में
कुरान अपने स्वर्गिक यह पाप पुन्य करने वाला हुआ जीव पराधीन है, कैसी अन्ध
धेनूपति के आधीन रहा करती और किसी को मारती है उन्की मर्दाई कुर्तई
धेनूपति को होती है देना पर नहीं ॥ ६५ ॥

६६—आज्ञा मानो अज्ञान की और आज्ञा मानो रक्षक की ॥ मं २ ।
सि ७ । सू २ । आ २२ ॥

समी०—देखिये यह बात कुरान के सहीक होने की है, फिर कुरान को
'अध्यायीक' मानकर ली है ॥ ६६ ॥

६७—अज्ञान से आप किया जो हो तुम और जो कोई फिर कष्ट अज्ञान
हमसे करवा लेय ॥ मं २ । सि ७ । सू २ । आ २२ ॥

समी०—जिसे हुए पणों का समा करना जिनो पानी को करने की आज्ञा दूके
बनाया है । आप समा करने की बात जिस पुस्तक में हो वह न ईश्वर और न
किसी विद्वान् का कथन है किन्तु पापकर्ता है हां आधमी पाप पुन्य करने के लिये
किसी से दर्पना और स्वयं पापों के लिये पुन्यार्थ पयाचार करवा अर्चित है
परन्तु केवल पयाचार करता रहे कोरे नहीं तो भी कुछ नहीं हो सकता ॥ ६७ ॥

६८—और उस मनुष्य से अधिक पापी कीज है जो अज्ञान पर कुछ बोध
पता है और कहता है कि मेरी ओर नहीं की गई परन्तु बड़ी उन्की धार नहीं की
गई और जो कहता है कि मैं भी उन्की ग्य कि मेरी अज्ञान उन्की है ॥ मं २ ।
सि ७ । सू ६ । आ २३ ॥

समी०—कहीं २ पुराण में लिखा है कि यही आवाज़ से अपने मासिक को पुष्कर और कहीं २ और २ ईश्वर का स्मरण कर जब कहिये कौन सी बात सही ? और कौन सी बात झूठी ? जो एक दूसरी बात से विरोध करती है वह बात प्रमत्त मीत के समान होती है यदि कोई बात प्रमत्त किन्तु निश्चय जान उसको प्रमत्त से तो कुछ भिन्न नहीं । ७२ ॥

७३—प्रश्न करते हैं तुमको लुटों से कह लुटें बाले अज्ञात के और रसूख के और करो अज्ञात से ॥ मं २ । सि ३ । सू ८ । अ १ ॥

समी०—जो लुट मन्त्रों अज्ञ के कर्म करें कर्मात् और लुटा तथा पौष्कर और ईश्वरशर भी बनें, वह यही आवाज़ की बात है और अज्ञात का हर मतकाते और अकारि पुर कर्म भी करते जायें और 'उत्तम मत इत्यादि' करते अज्ञ भी नहीं । इस दोष के सम वेदमत्त का प्रमाण न करें इससे अधिक कोई पुराई दूसरी होती ? ॥ ७४ ॥

७५—और करते जब कठिनों की ॥ मैं तुमका सहाय दूँगा स्वयं सहज करिखों के दीव २ जानेबखे ॥ प्रकल्प में कठिनों के रिखों में सब हास्यगत सब मारो कपर गर्वों के मारो उन में से प्रत्येक पौरी (सन्धि) पर ॥ मं २ । सि ३ । सू ८ । अ ७ । ३ । १२ ॥

समी०—बाहरी यह ! कैसा लुटा और कैसे पौष्कर दयाहीन जो मुसल मानी सब से निज कठिनों की जब कट्याये और लुटा आवा देवे उनकी गर्व मारो और हाथ पम के जोड़ी को कटये का सहाय और सम्मति देवे ऐसा लुटा अज्ञ रा से क्या कुछ कम है ? वह सब प्रमत्त पुराण के कर्ता का है लुटा का नहीं यदि लुटा का हो तो ऐसा लुटा हम से दूर और हम उनसे दूर रहें ॥ ७६ ॥

७७—अज्ञात मुसलमानों के साथ है ॥ वे सोचें ! जो ईश्वर कावे हो पुष्करका स्वीकार करो बाले अज्ञात के और बाले रसूख के ॥ वे सोचें ! जो ईश्वर कावे हो मत जारी करो अज्ञात की रसूख की और मत जारी करो प्रमत्त कपटी को ॥ और मकर कल्प का अज्ञात और अज्ञात मला मकर कर्म बखों का है ॥ मं २ । सि ३ । सू ८ । अ १३ । २४ । २० । ३ ॥

समी०—क्या अज्ञात मुसलमानों का पुराणी है ? जो ऐसा है ना अज्ञात कल्प है । यही का ईश्वर सब गति भर का है । क्या लुटा सिध पुष्कर कहीं मुक्त मकल ? अधिर है ? और उससे साथ रसूख का शरीर करवा बहुत पुरी बात नहीं है ? अज्ञात का कौनसा प्रमाण मरा है जो जारी कल्प ? क्या रसूख और प्रमत्त प्रमाण की जारी पाइकर प्रमत्त सब की जमी किया का ? ऐसा उपदेश अधिार और अधर्मियों का हो सकता है । मला जो मकर कल्प और जो मकर कल्प का सही है वह लुटा कपटी पृथ्वी पार अधर्मों स्वी नहीं ? हर्षितवे यह पुराण लुटा का कल्पका दुष्ट नहीं है किन्ती कजरी पृथ्वी का कल्पका हान्य नहीं ना कभी कल्पका करने प्रियिउ स्वी होती ? ॥ ७८ ॥

७९—और कबो उमर पदा तक कि न वह निम्न अधर्म बल कठिनों का और हाथ हीन कल्पका बल अज्ञात ॥ और ज्ञान मुक्त वह कि जो कुछ मुक्त

आगत्य है तो अब कुछ काम करना है या विक्रमा छिन्न सपत्न और देव करत
फिरता है ॥ ७ ॥

७१—मत किरो पुनिही पर भगवा करते ॥ मं २ । छि ८ ।
सू ७ । अ ७४ ॥

समी०—यह बात तो अच्छी है परन्तु इससे विपरीत दूसरे स्थानों में
विचार करना और अधिकारों को मारना भी बिलकुल है । अब कहो एतापर बिन्द नहीं
है ? इससे यह सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहेब निर्बल हुए होने पर
उन्होंने यह उपाय रचा होगा और सबका दुये होने पर भगवा मन्थना होगा इसी
से वे अपने परस्पर बिन्द होने से होमो सका नहीं है ॥ ७१ ॥

७२—कस एक ही बार अपना सारा साध दिया और वह अजरार था
मन्थ ॥ मं २ । छि ६ । सू ७ । अ १० ॥

समी०—अब इससे सिद्ध है कि किसी मूर्खों को कुछ
और मुहम्मद साहेब भी मानते थे जो देखा है तो वे इन्होंने बिन्द नहीं थे क्योंकि
जैसे बांध से देखने को और बांध से मुचने को अन्धध कोई नहीं कर सकता
इसी से यह इन्तज्जह की बातें हैं ॥ ७२ ॥

७३—कस हमने उस पर मेह का तुम्हारे मेह दीदी बिचही और मैंने
और छोड़ ॥ कस उसके हमने बरखा बिच और उसके हुजोरिया हरिना में ॥
और हमने बनी इसराईल को हरियाण से पार उतार दिया । मन्थ यह बीन
मूय है कि जिसमें है और उबका करनी भी मूय है ॥ मं २ । छि ६ ।
सू ७ । अ १३३ । १३४ । १३८-१३९ ॥

समी —अब देखिये जिस कोई पावनही किसी को कपारे कि हम तुम्ह
पर अपने को मारने के बिये मेरिपे । ऐसी यह भी बात है, मन्थ को ऐसा एक
पादी कि एक जति को हुआ वे और दूसरे को पार उतारे वह अचर्मी कुछ नहीं
बनी ? को दूसरे मतों को कि जिसमें हजारों कोही मनुष्य ही मूय कलहारे और
अपने को अन्ध उससे परे मूय हुआ मत बीन हो सकता है ? क्योंकि किसी
मत में अन्ध मनुष्य दुरे और अन्ध नहीं हो सकते यह इन्तज्जह सिद्ध करना मन्थ-
मूर्खों का मत है । तथा तीरित जगुर का बीन जो कि उबका था मूय होगया ?
या उबका कोई अन्ध मजहब या कि जिसको मूय अन्ध औरको वह अन्ध मजहब
था तो बीनसा या कबो जिसका काम हुआ में हो ॥ ७३ ॥

७४—यह तुम्ह को अचर्य देख सकेय अब अचर्य किना उसके यदिक ने
पदय की और अचर्य परमाह २ किना मिर पवा मूय केही ॥ मं २ ।
छि ६ । सू ७ । अ १४३ ॥

समी०—जो देखने में आता है वह अचर्य नहीं हो सकता और ऐसे
अचर्य करत फिरत या तो कुछ इस अचर्य ऐसा अचर्य किसी को नहीं
बनी दिखता ? अर्थात् बिन्द होने से यह बात जानने योग्य नहीं ॥ ७४ ॥

७५—और अपने मन्थिक को बीनता और हर से मन्थ में पाव कर बीनो
आवाह से मुचने को और काम को ॥ मं २ । छि ६ । सू ७ । अ १४४ ॥

समी०—कहीं १ कुराव में लिखा है कि कहीं आत्माज्ञ से अपने मादिक को पुनर मोर कहीं २ धीरे ३ ईश्वर का स्मरण कर, पाव कहिये कौन सी बात सही ? और कौन सी बात गूढी ? जो एक दूसरी बात से विरोध करती है वह बात प्रत्यक्ष पीत के समान होती है यदि कोई बात भ्रम से भिन्न भिन्न रूप उसमें भाव से तो कुछ भिन्ना नहीं । ०२ ॥

०१—मध्य करते हैं तुम्हमें कौनों से वह सूँठे वाले अज्ञाह के और रसूख के और जो अज्ञाह से ॥ मं २ । सि ३ । सू ८ । पा १ ॥

समी०—जो सूँठ मर्चों बाह के कर्म करें कर्मों और सुता तथा शैम्बर और ईश्वरद्वार भी कर्म यह कहे आत्मा की बात है और अज्ञाह का उर कतबासे और आभारि हरे कर्म भी करते कर्मों और 'उत्तम मत्त इमराह' कहते अज्ञ भी नहीं । इस बोध के अन्त केवल का प्रत्यक्ष न करें इससे अधिक कोई कुराई दूसरी होती ? ॥ ०३ ॥

००—और कहे वह कर्मिणों की ॥ मैं तुम्हमें सहाय दूँय साथ सहज प्रसिद्धों के पीछे १ आनेवाले ॥ अन्तर में कर्मिणों के दिनों में मत्त बाह्य वत्त मारो कपर गर्मियों के मारो उर में से प्रत्येक पोरी (सन्धि) पर ॥ मं २ । सि ३ । सू ८ । पा १ । ०४ ॥

समी०—बाहरी वह ! कैसा सुता और कैसे शैम्बर इत्यादीय जो मुसक-मानी मत्त से निज कर्मिणों की वह कर्मवत्ते और सुता आत्मा देने उनकी गर्दन मारो और हाथ पद के जोड़ों को कर्मने का सहाय और अम्मति देने ऐसा सुता कहेत से क्या कुछ कम है ? वह सब प्रत्यक्ष कुराव के कर्ता का है सुता का नहीं यदि सुता का हो तो ऐसा सुता हम से दूर और हम उससे दूर रहें ॥ ०० ॥

०८—अज्ञाह मुसकमानों का साध है ॥ ये लोगो ! जो ईमान छाने हो पुनरमा स्वीकर करो वत्ते अज्ञाह के और वत्ते रसूख के ॥ ये लोगो ! जो ईमान छाने हो मत्त जोरी करो अज्ञाह की रसूख की और मत्त जोरी करो अम्मकत अपनी को ॥ और मकर कर्तव्य का अज्ञाह और अज्ञाह मका मकर करने वत्तों का है ॥ मं २ । सि ३ । सू ८ । पा १३ । १४ । १० । ११ ॥

समी०—क्या अज्ञाह मुसकमानों का पक्षपाती है ? जो ऐसा है तो अन्नमें करता है । नहीं तो ईश्वर सब छवि भर का है । क्या सुता बिना पुनरे नहीं तुम सकल ? यदि है ? और उसके साथ रसूख को शरीक करवा बहुत दुरी बात नहीं है ? अज्ञाह का कौनसा उद्भाग्य मत्त है जो जोरी करण ? क्या रसूख और अपने अम्मकत की जोरी जोड़कर अन्न सब की जोरी किया कर ? ऐसा उपर्युक्त अविद्या और आधर्मिकों का हो सकता है । अज्ञा जो मकर कर्तव्य और जो मकर करनेवाले का छात्र है वह सुता कपटी बुद्धी और अधर्मी नहीं नहीं ? इसलिये वह कुराव सुता का कर्तव्य हुआ नहीं है किसी कपटी बुद्धी का बनाया हुआ नहीं तो ऐसी अन्धधारा यहाँ विहित क्यों होती ? ॥ ०८ ॥

०१—और अबो उरसे पहा तक कि ब रहे कितना अर्थात् वह कर्मिणों का और दाने दीन तमाम वत्ते अज्ञाह के ॥ अतः जानो तुम वह कि जो कुछ तुम

हो किसी कण्ड से निम्न वाले अङ्गाह के द्वि पाँचवाँ हिस्सा उसका और कले
रसूख के ॥ मं १ । सि १ । सू ८ । अ १६-४१ ॥

समी०—ऐसे अन्त्या से कपड़े बनाने काय्य मुसलमानों के कुरा से निम्न
शान्तिमङ्गलों द्वारा कील होय ? अब देखिये मङ्गल अङ्गाह और रसूख के कले
अब काल् को कुरा कुराया लुटेरों का काम नहीं है ? और लुटेरों के माथ में
कुरा का दिखेतर बबल बाबो काल् काल् है और ऐसे लुटेरों का पचपली
बबल कुरा अपनी कुराई में बड़ा बनाता है । बड़े अन्त्यर्ण की बात है कि ऐसा
पुलक ऐसा कुरा और ऐसा पैम्बर संस्कार में ऐसी उपाधि और शान्तिमङ्गल कले
मुसलमानों को दुःख देवे के किये कहां से क्या ? जो ऐसे २ मल काल् में अचरित
व होले तो सब काल् अन्त्या में बड़ा रहता ॥ ७६ ॥

८ —और कभी ऐसे सब अचरितों को करिसे काल् कले हैं मरते हैं मुल
कले और पीछे उनकी और कले कलो अङ्गाह कले का ॥ हमने कले पाप सं
कले माथ और हमने अचरितों की काल् को कुरा दिया ॥ और ऐसी कले
कले कले को कुरा तुम का कले ॥ मं १ । सि १ । सू ८ । अ १ ।
२४ । १ ॥

समी०—क्योंकि अन्त्या कले के कले अचरित और कुरा के निम्न की
कुराई का कली करिसे कहां सो गये ? और अपने कले के कुराई को कुरा
कले माथ कुराई का कले कले कली हो तो अन्त्या भी ऐसा कले कले
कली होय कुराई के कले माथ को कले कली । अब देखिये कले कली कुरा
कुरा है कि जो कुरा तुम का कले कले निम्न मलकाई के कले कुराई का कले
कले । ऐसी कुराई कुराई कुराई कुराई कली हो कुराई । फिर कले हैं
कि कुरा कुराई और अन्त्या है ऐसी कले से मुसलमानों के कुरा से अन्त्या
और कुराई कुराई कुराई हैं ॥ ८ ॥

९—ये कली कुराई है तुम को अङ्गाह और कले कले मुसलमानों
से कुरा पच कुरा ॥ ये कली कुराई कुराई कले कले मुसलमानों को कुरा
कुराई के, जो ही तुम में से २ कुराई कुराई कले कले तो कुराई कुराई
कुराई का ॥ कले कुराई कले कले से कि कुराई है तुमने कुराई कुराई और कले
कुराई से कले कुराई कले कुराई कुराई है ॥ मं १ । सि १ । सू ८ ।
अ १७-१२ । १३ ॥

समी०—कुराई कली कुराई कुराई कुराई और कुराई की कुराई है कि जो
कुराई पच कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई
और जो कुराई में कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई
को कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई
को तो कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई
कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई
॥ ९ ॥

१०—कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई
को कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई कुराई

होस्त रत्न कुण्ड को कमर ईमान के ॥ फिर उत्तरी आकाश ने उसकी अपनी कमर
रख कर अपने के और कमर मुसलमानों के और उत्तर उत्तर नहीं देखा तुमने
उन्को और आकाश किया उभ जोनों को और यही सजा है कफिरों को ॥ फिर २
आकाश आकाश पीछे उसके कमर ॥ और आकाश करो उन जोनों से जो ईमान नहीं
करते ॥ मं २ । सि १ । सू ४ । पा २२-२३ । २४-२७ । २८ ॥

समी —महा जो बहिरतवालों के समीप आकाश रहता है तो सर्वभूषण
क्योंकर हो सकता है । जो सर्वभूषण नहीं तो वहिकर्ता और भूषणभीत
नहीं हो सकता । और अपने मां, चाप आई और मित्र का सुखदाता केवल
भूषण की बात है । हां जो वे बुरा उपदेश करें न मानना परन्तु उनकी सेवा
सदा करनी चाहिये । जो पहले बुरा मुसलमानों पर कहा समीपी का और उनके
सहाय के बिना उत्तरता का सब होता तो सब ऐसा क्यों नहीं करता ?
और जो प्रथम कफिरों को बपु देखा और पुनः उसके कमर आता या तो सब
कहा गया ? क्या किया आकाश के ईमान बुरा नहीं कहा सकता ? ऐसे बुरा को
हमारी ओर से सदा विज्ञापित है बुरा क्या है एक विज्ञापित है ? ॥ ८२ ॥

८३—और इस बात देखने वाले हैं करते तुम्हारे वह कि पहुँचने तुम्हारे
आकाश आकाश अपने पास से का हमारे हाथों से ॥ मं २ । सि १ ।
सू ६ । पा २२ ॥

समी०—क्या मुसलमान ही ईश्वर की पुष्टि कर गये हैं कि अपने हाथ
या मुसलमानों के हाथ से भग्न किसी मत वालों को पकड़ा देता है ? क्या दूसरे
जोनों मनुष्य ईश्वर को प्रार्थित हैं ? मुसलमानों में पापी भी मिले हैं ? यदि ऐसा है
तो कन्धे करी गन्तव्यता समा की सी भयानक होसती है । आकाश है कि जो
इतिमाद मुसलमान हैं वे भी इस निष्ठ का अनुक मत को मानते हैं ॥ ८३ ॥

८४—प्रतिष्ठा की है आकाश ने ईमान वालों से और ईमानवालों से बहिस्त
करती है भीचे उसके महर् सदिन रहनेवाली बीच उसके और पर पवित्र बीच
बहिस्तों अर्थ के और प्रकृता आकाश की आर बड़ी है और वह कि वह है
मुद्रा पदमा कहा ॥ बस दया करते हैं अपने दया किया आकाश ने उनके ॥ मं २ ।
सि १ । सू ६ । पा २२ । २३ ॥

समी०—वह बुरा के नाम से ही पुष्टों को अपने मतका के बिना सोम
देता है क्योंकि जो ऐसा प्रमाण न देते तो कोई मुहम्मद साहेब के आकाश में न
अंशता एवं ही भग्न मत वाले भी किया करते हैं । मनुष्य लोग तो ध्वंस में
रहा किया ही करते हैं परन्तु बुरा को किसी से दया करना अचित्त नहीं है । वह
प्रधान क्या है कहा लेक है ॥ ८४ ॥

८५—परन्तु रख और जो सोच कि साथ उनके इमान आने जिसर किया
उन्होंने आप सब अपने के तथा आप अपनी के और इन्हीं लोगों के बिना प्रचार
है ॥ और मोहर रखी आकाश ने ऊपर दिखो उनके क बस न नहीं जानते ॥
मं २ । सि १ । सू ६ । पा २२ । २३ ॥

समी०—अब देखिये मतलबअलिखु की बात कि ये ही भले हैं जो मुहम्मद साहेब के साथ ईमान लाये और जो यही जाने वे मुर हैं ! क्या यह बात पक्कात और अखिर से भरी हुई यही है ? जब कुरा ने मोहर ही कागरी छे उन्म अपराध पाप करने में कोई भी यही किन्तु कुरा ही का अपराध है क्योंकि अब बिचारी को मर्याद छे दिखो पर मोहर कगलकर रोक दिये यह कितना बड़ा अमान्य है !!! ॥ ८२ ॥

८३—ये मास उनके छे कैलात कि पवित्र करे तु उनके अर्थात् बाहरी और रुद कर तु उनके साथ उससे अर्थात् गुप्त में ॥ मिशन बाइबल ने मोह की है मुसलमानों छे अर्थे अपनी और मास उनके करके कि बाक्ये उनके अहित है अर्थे वे बीच मर्य बाइबल के बस मर्ये और मर बाक्ये ॥ मं २। सि ११। सू १। पृ १। १११ ॥

समी०—अबकी यह मुहम्मद साहेब ! आपने तो गोलुखिये गुस्साहों की कगली करली क्योंकि उन्म मास केवा और उनके पवित्र करना बही बात तो गुस्साहों की है । यह कुरानी । आपने अन्धी सौराणी कगल कि मुसलमानों के हाथ छे अन्म तरीकों के अन्म केवा ही कम समझ और उन अन्मों को मरवा कर उन निर्दोष मनुष्यों को मर्ये देवे छे इया और अन्म से मुसलमानों का कुरा हाथ को बैदा और अपनी कुराई में बड़ा अन्म के अहितार बाकिनी में कुरित हो गया ॥ ८३ ॥

८४—दे खोमो ! जो ईमान लाये हो कबो जब खोमों छे कि पास तुम्हारे है कदिरों छे और अखिये कि पाई बीच तुम्हारे इफ्त ॥ कथ यही केकते यह कि ये कगलों में अले जाते हैं हार्वे के एक कर का दो बार फिर ये यही तोबा करते और न वे विचर सकते हैं ॥ मं २। सि ११। सू १। पृ १२३। १२४ ॥

समी०—देखिये वे भी एक बिगलबात की अर्थे कुरा मुसलमानों को सिखाता है कि बादे पड़ोसी हो ना किसी के नीकर हो जब अक्सर पाई तमी अन्म का बात करें । ऐसी अर्थे मुसलमानों से बहुत कम गई है इसी कुरा के केवा छे । जब तो मुसलमान समझ के कुरागोत्र कुराहों को जोर दें तो बहुत अच्छा है ॥ ८४ ॥

८५—मिशन फरकदियर तुम्हारा बाइबल है जिससे पैदा किया आसमानों और पृथिवी को बीच का दिन के फिर ऊपर फका ऊपर अर्थे के तर्फीर करता है कम की ॥ मं १। सि ११। सू १। पृ ३ ॥

समी०—आसमान आकस एक और किया गया अन्मि है उन्म अन्म दिखने से विभन हुआ कि यह कुरावकर्ता परानैमिय को यही जानता था । क्या परमेवर के सामने का दिन तक कथवा पड़ता है ? तो जो 'हो मरे हुए से और हाता' जब कुरा में ऐसा किया है फिर का दिन कभी यही का अर्थे इफ्त का दिन अन्म मूड है जो यह अन्मक हाता तो ऊपर आकस के नहीं मरत ? और जब कम की तर्फीर करता है तो डीक तुम्हारा कुरा मनुष्य के अमान है

क्योंकि जो सर्वज्ञ है वह कैसे न बना लक्ष्मीर बना ? इससे विदित होता है कि ईश्वर को न बनानेवाले ब्रह्मकी कोशों में वह पुस्तक बनाया होगा ॥ ८८ ॥

८९—पिता और ब्रह्म वास्तव में सुसहस्रमूर्तों के ॥ मं ३ । सि ११ । सू ११ । आ २० ॥

समी०—क्या वह सुवा सुसहस्रमूर्तों ही का है ? दृष्टि का नहीं ? और पक्षपाती है । जो सुसहस्रमूर्तों ही पर बना करे अन्य मनुष्यों पर नहीं, यदि सुसहस्रमात्र ईश्वरवादी को मन्ते हैं तो उनके धिये पिता की भावनाका ही नहीं और सुसहस्रमूर्तों की मिथी को उपदेश नहीं करता तो सुवा की मिथी ही सर्व है ॥ ८९ ॥

९०—पिता अपने तुम से और तुम में से बना है कर्मों में जो उसे वृत्तमान उद्योगे बाधते तुम पीछे मनु के ॥ मं ३ । सि ११ । सू ११ । आ ७ ॥

समी०—जब कर्मों की परीक्षा करता है तो सर्वज्ञ ही नहीं और जो मनु पीछे उद्योग है तो ईश्वरसुपुर्ब रक्षक है और अपने नियम जो कि मनु हुए न बीजे उसके लोका है वह सुवा को ब्रह्म बनाया है ॥ ९० ॥

९१—और कहा गया ये पृथिवी अपना पापी मिश्रकाल और ये असमान बस कर और पापी लुप्त गया ॥ और ये क्रिम वह है मिश्रकाल उद्योगे ब्रह्म की वास्तव तुम्हारे बस जोड़ को उसके बीच पृथिवी ब्रह्म के बाती बिने ॥ मं ३ । सि ११ । सू ११ । आ ७९ । ९२ ॥

समी०—क्या ब्रह्मकाल की बात है ? पृथिवी और अक्षय कमी बस मनु मन्ते हैं ? ब्रह्मकी ब्रह्म ! सुवा के ब्रह्मकी भी है तो उद्योग भी होगा ? तो हाथी, घोड़े, पक्षे आदि भी होंगे ? और सुवा का ब्रह्मकी से लेल बिनाया क्या ब्रह्मकी बात है ? क्या ब्रह्मकी पर चलायी भी है ? जो पृथ्वी मन्ते हैं तो क्याही की सी ब्रह्म पक्ष सुवा के मं में भी हुई ॥ ९१ ॥

९२—और सर्व रहनेवाले बीच उसके बस तक कि रहें असमान और पृथिवी ॥ और जो ब्रह्म सुमंगी हुए बस ब्रह्म के सवा रहनेवाले हैं ब्रह्मकाल ही असमान और पृथिवी ॥ मं ३ । सि ११ । सू ११ । आ १ म-१ २ ॥

समी०—जब ब्रह्मकाल और ब्रह्म में ब्रह्ममात्र के पक्षकाल बस ब्रह्म बाधे बिने असमान और पृथिवी बिनायिने रहेगी ? और जब ब्रह्मकाल और ब्रह्म के पक्षे की असमान पृथिवी के रहने तक ब्रह्मकी हुई तो सवा रहें ब्रह्मकाल ब्रह्मकाल में वह बात मन्ती हुई, ऐसा काल अविद्याओं का होता है ईश्वर का बिनायी का नहीं ॥ ९२ ॥

९३—जब पुरुष ने अपने बस से कहा कि ये बस ? मेरे मैंने एक स्थान में देखा -- ॥ मं ३ । सि १२ । १३ । सू १२ । १३ । आ ७१ । १४ ॥

समी०—इस प्रमाण में पिता पुत्र का संबंधकाल बिनाया ब्रह्मकी मन्ती है इच्छिने कुराव ईश्वर का बनाया नहीं किसी मनुष्य ने मनुष्यों का इतिहास बिना दिया है ॥ ९३ ॥

समी०—अब देखिये मतलबसिन्धु की बात कि ये ही मछे हैं जो मुहम्मद साहेब के साथ ईमान लाये और जो नहीं लाये वे मुरे हैं ! क्या यह बात पक्कत और अविष्य से पूरी हुई नहीं है ? अब कुरान में मोहर ही छापाही तो अबअ अपराध पाप करने में कोई भी नहीं किन्तु कुरान ही अब अपराध है क्योंकि अब निश्चयी अब मलाई छ दिखों पर मोहर अगमकर रोक दिये यह किताब कहा सम्पाद है !!! ॥ ८२ ॥

८१—ये मात्र उनके से किरात कि बलिब करे वृ उनके चर्चात बाहरी और छत्र कर वृ उनके साथ उसके अर्थात् गुप्त में ॥ मिश्रण बाह्यह ने मोक्ष की है मुसलमानों से बाह्ये उनकी और मात्र उनके बच्चे कि कल्ले उनके बहिस्त है अर्धमे बीच मर्म बाह्यह के वस आर्ये और मर बाह्ये ॥ मं २। सि ११। सू ४। पा १३। १११ ॥

समी०—बाह्यी अब मुहम्मद साहेब ! आपने तो मोकुबिने मुसलमानों की कराहरी करली क्योंकि उनका मात्र केना और उनके पवित्र करम पही बात तो मुसलमानों की है । अब कुरानी ! आपने अच्छी सीखारी समझ कि मुसलमानों के हाथ से अन्य तरीकों के प्रत्य केना ॥ कम समझ और अब अच्छी को मरवा कर अब दिईनी मनुजों को स्कॉ देवे स दृष्य और न्याय से मुसलमानों का कुरान हाथ जो वेद और अपनी कुराई में कल्ले अन्य के मुहिमाए धार्मिकों में वृक्षित हो पया ॥ ८१ ॥

८०—ऐ लोगो ! जो ईमान लाये हो अबो अब खोयीं से कि पास तुम्हारे हैं अकिरीं स और अदिने कि पासे बीच तुम्हारे दृष्य ॥ क्या वही देखते यह कि वे बहायीं में राज जाते हैं हरकत के एक बार व जो बार फिर वे नहीं तोबा करते और व वे गिरा पकवत है ॥ मं २। सि ११। सू २। पय १२३। १२४ ॥

समी०—देखिये वे भी एक कितासकत की पासे कुरान मुसलमानों को सिखवात है कि यह परोसी हों वा किसी के नीकर हों अब अकसर पासे लमी खड़ाई का पय करें । ऐसी अर्धे मुसलमानों से बहुत कम पाई है इसी कुरान के खेख से । अब तो मुसलमान समझ के कुरानोऊ कुरानों को जोर हैं तो बहुत अच्छा है ॥ ८० ॥

८२—निमय परकदिगार तुम्हारा बाह्यह है जिसने पैश किता अस्तमाओं और वृक्षि की बीच का दिव के फिर अरार पकवा ऊपर अर्थ के तद्बीर करता है कम की ॥ मं २। सि ११। सू १। पा ३ ॥

समी०—अस्तमाय अकमय एक और निमय कहा अकमदि है अस्तम अकमय अिअन स निमय कुरान ॥ यह पुरानकती पुराधेनिम को नहीं जानता था । क्या परमेवर क मरमने पुरा दिन तक कमाया पकवा है तो जो "हा मर कुरम स और हाकम" अब कुरान में पुरा खिरा है फिर पुरा दिव कभी नहीं खग सक्ते हमसे पुरा दिन अममा मूठ है जो यह ज्ञापक हाता का अरार आकरा क नहीं दराता ? और अब कम की तद्बीर करता है तो हीक तुम्हारा कुरान मनुज क अमान है

प्रपन्ना सदा हीनोते हि इन्द्रिये देसी यत ईश्वरकृत पुण्यक की नहीं हो सकती ॥ १० ॥

१८—कत टोक कर्क में उसको और पुँक वू बीच उसके वह अपनी से बस मिर पदा यस्त उसके सिद्धा करते हुए कदा पुरण मेरे इस करण कि गुमराह किया तुने मुझको बकरण जीवत दूया में बस्ते उनके बीच पृथिवी के और गुमराह ककया ॥ मं ३। सि १७। सू १२। प्या २३-२४ ॥

समी०—जो लुहा ने अपनी वह धारम साहब में काही तो वह भी लुहा हुआ और जो वह लुहा व या तो सिद्धा बनान् कमलपरादि भक्ति करने में अपना शरीर क्यों किया ? अब रीयाज को गुमराह करनेवाला लुहा ही है तो वह रीयाज का भी रीयाज क्या भाई गुह क्यों नहीं ? क्योंकि तुम लोग कहकरनेवाले को रीयाज मानते हो तो लुहा ने भी रीयाज को कहकरना और प्रमथ रीयाज ने कहा कि मैं कहकरना फिर भी उसको दसक देकर कैद क्यों न किया ? और मार क्यों न बजा ॥ १८ ॥

१९—और निजय मेरे हमने बीच हर उम्मत के सिद्धा ॥ अब चाहते हैं हम उसको वह कहते हैं हम उसको हो बस हो जाती है ॥ मं ३। सि १७। सू १३। प्या २४। ७ ॥

समी०—जो सब ज़मीनों पर प्याम्बर मेरे हैं तो सब लोग जो कि प्याम्बर की राय पर चलते हैं वे कठिण क्यों ? क्या वृत्ते प्याम्बर का मान्य नहीं सिद्धा तुम्हारे प्याम्बर के ? वह सर्वथा पुराणत की बात है जो सब देश में प्याम्बर मेरे तो साम्प्रदायिक में कौनसा मेला ? इन्द्रिये वह बात मानने योग्य नहीं। अब लुहा चाहता है और कहता है कि पृथिवी हो अब वह जक कमी नहीं मुब सकती लुहा का हुस्म क्योंकर बन सकेगा ? और सिद्धा लुहा के दूसरी चीज़ नहीं मानते तो मुबा किसने ? और हो कौनसा गया ? वे सब इन्द्रिय की बातें हैं देसी बातों को अनन्यद्वय लोग मान लेते हैं ॥ १९ ॥

१ —और निपत करते हैं बस्ते बजाह के बेरियां पवित्रता है उसको और बस्ते उनके हैं जो कुछ नहीं ॥ प्रथम बजाह की बखल मेरे हमने प्याम्बर ॥ मं ३। सि १७। सू १४। प्या २०। १३ ॥

समी०—बजाह पहिलों से क्या करण ? बेरियां ता किसी मनुष्य को चाहिए । क्यों बटे निपत नहीं किये जात और पहिलों निपत की जाती है ? इसका क्या करण है ? कहावै ? प्रथम प्याम्बर मुझे का कम है लुहा की बात नहीं क्योंकि बहुतों संसार में ऐसा देखने में आता है कि जो मृत्यु होता है वही प्रथम काय है सदा सौगन्ध क्यों प्यारे ? ॥ १ ॥

१ १—वे लोग वे हैं कि माहर रणजी बजाह ने ऊपर दिखों उनके और क्यों उनके और आँखों उनकी के और वे लोग वे हैं बेप्रवर ॥ और पूरा दिवा ज्योग्य हर जीव को जो कुछ किया है और व जन्माव न किये जायेंगे ॥ मं ३। सि १७। सू १४। प्या १८। १११ ॥

११—आज्ञाह यह है कि जिसने कहा किया आसमान को बिना कामे के
देकरे हो तुम उसको फिर और ऊपर चढ़ा के आकाश करनेवाला किया सूरज और
चंद्र को २ और बड़ी है जिसने जिसका पृथिवी को ॥ अथवा आसमान से पानी
बस बड़े बड़े साथ आकाश अपने के ॥ आज्ञाह आकाश है भोजन को चाने मिट
के चारे और यह करता है ॥ मं ३। सि १३। सू १३। अ १।
३। १०। १६ ॥

समी०—सुखसमाप्ति का सुख पदार्थविषय कुछ भी नहीं जानता या जो
जानता तो सुख न होने से आसमान को कामे बनाने की क्या कहानी कुछ भी
न कहता यदि सुख अर्थात् एक काम में रहता है तो वह अर्थविषय और
सर्वव्यापक नहीं हो सकता । और जो सुख अर्थविषय जानता तो जानता है पानी
अथवा बिना पुनः वह नहीं न किता कि पृथिवी से पानी ऊपर चढ़ाया । इससे
जिज्ञासु पूछा कि कुत्राव का बनानेवाला मेघ को बिना को भी नहीं जानता या ।
और जो बिना अपने हरे कर्मों के कुछ कुछ देता है तो पचपत्ती सम्मानकारी
भिरवर भू है ॥ ६४ ॥

१२—यह विज्ञान आज्ञाह गुमराह करता है जिसको चाहता है और मर्मा
दिखाता है उन्हें अपनी उस मनुष्य को कल करता है ॥ मं ३। सि १३।
सू १३। अ १० ॥

समी०—जब आज्ञाह गुमराह करता है तो सुख और शैतान में क्या भेद
हुआ ? जब कि शैतान दूसरों को गुमराह चर्चात् बहकाने से सुख कहता है तो
सुख भी कहा ही काम करने से सुख शैतान नहीं नहीं ? और बहकाने के पाप से
दोषही नहीं बड़ी होना चाहिये ? ॥ ६५ ॥

१३—इसी प्रकार अथवा हमने इस कुत्राव को चर्चा में जो पद कोस्य ए
जन्म ही कह्य का पीछे इसके कि जाई तेरे पास किया है ॥ बस सिद्ध इच्छा नहीं
कि ऊपर तेरे सिद्धात् पञ्चाना है और ऊपर हमारे है दिखाने देता ॥ मं ३।
सि १३। सू १३। अ ३०। ४ ॥

समी०—कुत्राव किधर की चार से अथवा ? क्या सुख ऊपर रहता है ?
जो यह बात सच है तो यह पकड़ेगी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता क्योंकि
ईश्वर सब सिद्धात् एकरा व्यापक है सिद्धात् पञ्चाना इच्छारे का काम है और
इच्छारे की आवश्यकता उसी को होती है जो मनुष्यत् पकड़ेगी हो और दिखाने
को देता भी मनुष्य का काम है ईश्वर का नहीं क्योंकि वह सर्वज्ञ है । यह विधान
होता है कि किसी मनुष्य मनुष्य का कथा कुत्राव है ॥ ६६ ॥

१४—और किया पूर्व कल को चर्चा फिरनेवाले २ विज्ञान आदमी आकर
सम्मान और पाप करने चला है ॥ मं ३। सि १३। सू १०। अ ३३ ३४ ॥

समी०—क्या कल पूर्व सदा चित्ते और पृथिवी नहीं चित्ती ? जो इच्छा
नहीं चित्ते तो कई वर्षों का दिन रात होवे । और जो मनुष्य विज्ञान सम्मान और
पाप करनेवाला है तो कुत्राव से सिद्ध करता कथा है क्योंकि जिज्ञासु स्वभाव पाप
ही करने का है तो अब में पुनरात्मा कभी न होया और अंधार में पुनरात्मा और

पपाप्मा सदा शीघ्रते है इसलिये ऐसी बात ईश्वरकृत पुस्तक की नहीं हो सकती ॥ ३० ॥

३८—किस टीक कर्क में उसको और पूँक हू बीच उसके वह अपनी वे बस फिर पक्षी बाले उसके सिखाया करते हुए कहा पुराण में इस प्रकार कि गुमराह किया तुने मुझको आकर बोलना बूँगा मैं बाले उनके बीच प्रियी के और गुमराह कह गया ॥ मं ३। सि १४। सू १२। पा २३-४६ ॥

समी०—जो लुटा ने अपनी वह आदम समझ में आती तो वह भी लुटा हुआ और जो वह लुटा न था तो सिखाया अपना मरणादि मलि करने में अपना तरीक क्यों किया ? जब रीतान को गुमराह करनेवाला लुटा ही है तो वह रीतान का भी रीतान बड़ा माहे गुह क्यों नहीं ? क्योंकि तुम छोटा बहकानेवाले को रीतान मानते हो तो लुटा ने भी रीतान को बहकाना और प्रसन्न रीतान ने कहा कि मैं बहकानेवाले फिर भी उसको एकदम लेकर कह क्यों न किया ? और मर क्यों न गया ॥ ३८ ॥

३९—और सिखाव भेजे हमने बीच हर उम्मत के फैसल ॥ जब चाहते है हम उसको वह कहते है हम उसको हा बस हो जाती है ॥ मं ३। सि १४। सू १६। पा ३६। ४ ॥

समी०—जो सब ज़मीनों पर फैसल भेजे है तो सब काम को कि फैसल को सब पर कहते है वे कठिण क्यों ? क्या दूसरे फैसल का मान्य नहीं सिखाव तुम्हारे फैसल के ? वह सर्वथा पक्षपात की बात है जो सब देश में फैसल भेजे तो आस्थावत में कीसता भेजा ? इसलिये वह बात मानने योग्य नहीं । जब लुटा आहवा इ और कहता है कि प्रियी हो जा वह जब कभी नहीं मुन सकती लुटा का दूसरा क्योंकर बन सकेगा ? और सिखाव लुटा क दूसरी चीज़ नहीं मानते तो मुचा किशने ? और हो कीसता गया ? वे सब प्रियी की बातें है ऐसी बातों को जनमान्य लोग मान लेते है ॥ ३९ ॥

१ —और निपट करत है बाले बड़ाह क बरिनी परिव्रज है उसको और बाधे उनके है जो कुछ चाहें ॥ अग्रम बड़ाह की अवस्था भजे हमने फैसल ॥ मं ३। सि १४। सू १६। पा २०। २३ ॥

समी०—बड़ाह बरिनी क क्या कराव ? बरिनी ता किसी मनुष्य को चाहिये । क्यों वह निपट नहीं किये जस्त और बरिनी निपट की जाती है ? हमका क्या कराव है ? बड़ाह ? अग्रम आन्य मूर्खों का काम है लुटा की बात नहीं क्योंकि बहुधा संसार में ऐसा करने में आता है कि जो मूर्ख हाथ है यदि अग्रम आन्य है घरा समग्र नहीं पावे ? ॥ १ ॥

१ १—वे लोग वे है कि माहुर रानी बड़ाह ने ऊपर दिखो उनक और कभी उनक और बाधों उनकी क और वे लोग वे है मरणा ॥ और चार दिना आहवा हर जीव को जो कुछ किया है और व अन्याय व किद जायेंगे ॥ मं ३। सि १४। सू १६। पा १। २। १११ ॥

समी०—क्या कुरा ही ने मोहर खण्ड ही तो ने विचारे किया अपराध मारे गये क्योंकि उनको पराधीन कर दिया वह कितना बड़ा अपराध है ? और फिर कहते हैं कि जिसने कितना किया है उसका ही उसको दिया आपण न्यायिक नहीं मखा उन्होंने स्वतन्त्रता से पाप किये ही नहीं किन्तु कुरा के कान्हे से किये पुनः उनका अपराध ही न हुआ । उनको फल न मिलना चाहिये इसका फल कुरा को मिलना उचित है और जो पाप दिया जाता है तो कमा किन्तु पाप की की जाती है और जो कमा की जाती है तो न्याय उचित जाता है । देख गुरुब्रह्मनाथ ईश्वर का कमी नहीं हो सकता किन्तु बिबुधि जोरों पर होता है ॥ १ ॥

१ २—और किया हमने होत्राज को बाधे कफिरों के भेरे से बचा कल्प ॥ और हर आत्मी को बाध दिया हमने उसको समझना उसका बीच मर्याद उसकी के और निषेधों से हम बाधे उसके दिन ब्रह्मसत् के एक किरण कि देखेगा उसको कुरा हुआ ॥ और बहुत मारे हमने कुराख से पीछे गुरु के ॥ मं ४ । सि १२ । सू १० । पा ८ । १३ । १० ॥

समी०—बदि कफिर ने ही है कि जो कुरा पेशावर और कुरा के कहे कुरा बाधों आसमान और कमाज बाधों को न मारें और कुरा के बिले होत्राज होने तो यह बात केवल पक्षपात की दूर क्योंकि कुरा ही के मारने बाधे सब बाधों और कल्प के मारने बाधे सब गुरे कमी हो सकते हैं ? यह बड़ी अवगणन की बात है कि प्रत्येक की गर्जन में कर्मसुखक इस तो किसी एक की भी गर्जन में नहीं देखते । यदि इसका प्रयोग कमी का यह देखा है तो फिर मनुष्यों के किसी बेटों बाधों पर मोहर रखना और पापी का कमा करना क्या बंध मर्यादा है ? ब्रह्मसत् की रात को किरण बिम्बलेगा कुरा तो ब्रह्म कल कल किराव कुरा है ? क्या स्वहृत्तर की बही समान बिम्बले रहा है ? यहाँ यह विचारना चाहिये कि जो पूर्व कल्प नहीं तो जीवों के कर्म ही नहीं हो सकते फिर कर्म की रक्षा क्या सिद्धी ? और जो निष्क कर्म के सिद्धी तो अब पर ब्रह्मसत् किया क्योंकि निष्क बाधों गुरे कर्मों के उनको दुःख मुक्त नहीं दिया ? जो कुरा कि कुरा की मरजी तो जो उसने ब्रह्मसत् किया ब्रह्मसत् उस को कहते हैं कि निष्क गुरे मले कर्म किये दुःख मुक्त का फल न्यायिक देना और उसी समय कि कुरा ही किराव बाधेय का कोई छरिस्तेयार सुचारण ? जो कुरा ही ने हीरकजाल समझी जीवों को निष्क अपराध मता तो वह ब्रह्मसत्कारी होयना को ब्रह्मसत्कारी होता है यह कुरा ही नहीं हो सकता ॥ १ २ ॥

१ ३—और दिया हमने समूह को बंधनी प्रसाध ॥ और बहुत निष्क के पक्ष से ॥ किन्तु दिन गुजारेंगे हम सब लोगों को साथ पेशावरों उनके के पक्ष को कोई दिया गया ब्रह्मसत्कामा उसका बीच चाहने हान उसके के ॥ मं ४ । सि १२ । सू १० । पा २४ । १४ । ११ ॥

समी —बादगी । किन्तु कुरा की बाधने मिशाली है उनमें से एक अंधवी भी कुरा के हाथ में प्रमाण ब्रह्मसत् पीछा में बाधक है । बदि कुरा ने निष्क को पक्षसे का दुःख दिया तो कुरा ही निष्क का सरदार और सब पाप कान्हेयता

उत्तर । ऐसे को सुदा बुद्धि केवल कमसमान की बात है । जब क्रियात्मक को धर्मात् प्रत्यक्ष ही में व्याप करने कपाने के लिये पितृम्बर और उनके उपरान्त माननेवालों को सुदा बुद्धिकेन्द्र तो अवतक प्रत्यक्ष न होगी तबतक सब दीपसुपुर्न रौंने और दीपसुपुर्न सब को बुद्धिप्रत्यक्ष ही अवतक व्याप न किया जाय । इसलिये भीम व्याप करना व्यापधीरा का उत्तम काम है यह तो पोपाबाई का व्याप उदरा कसे कोई व्यापधीरा कहे कि अवतक पचास वर्ष तक के और और साहस्यर इन्द्र न हों तब तक उनके बुद्धि का प्रतिष्ठा न करनी चाहिये कैसा ही यह बुद्धि कि एक तो पचास वर्ष तक दीपसुपुर्न रहा और एक मात्र ही पञ्चा पचा ऐसा व्याप का काम नहीं हो सकता व्याप तो वेद और मनुस्मृति देखो जिसमें चरा मात्र भी विद्यमान नहीं होता और अपने २ कर्मोबुद्धि रपक का प्रतिष्ठा उदा पाते रहते हैं, दूसरा वैष्णवों को गन्दाही के तुल्य रखने से ईश्वर की सर्वज्ञता की हानि है मन्त्र ऐसा पुस्तक ईश्वरकृत और ऐसा पुस्तक का उपदेश करनेवाला ईश्वर कभी हो सकता है ? कभी नहीं ॥ १ ३ ॥

१ २—ये लोग बाधे उनके हैं बाधा हमेशा रहने के अवती हैं नीचे उनके से मरें ग्रहिया परदाय बाधेंगे बीच उसके कङ्कन सोने के से और पोशाक पहिनेंने सब हरित छाही की से और ताकते की से तकिने किये बुद्ध बीच उसके कपर कपों के अच्छा है पुस्तक और अच्छी है बहिरत काम करने की ॥ मं ३ । सि १२ । सू १८ । भा ३१ ॥

समी०—बाधही यह ! क्या कुत्राव का कर्ण है जिसमें बाधा करने कपने मही तकिने घालम्ब के लिये है । मन्त्र कोई बुद्धिमान् यही विचार करे तो यही से यही सुखदमाओं के बहिरत में अधिक कुछ भी नहीं है सिधाय चन्दाव के । यह यह है कि कर्म उनके चान्तवाले और फल उनके चान्त और जो मीमा विश्व काये तो बाधे दिव में विव के समान प्रतीत होता है जब सदा वे सुख भोगोंमें तो उनके सुख ही दुःखरूप हो जायगा इसलिये महाकर्म पर्यन्त सुखि सुख भोग के पर्यन्त पाया ही सम सिद्धाव्य है ॥ १ ३ ॥

१ २—और यह बसितर्पा है कि मारा हमने उनके जब चन्दाव किन्त उन्हींने और हमने उनके मारने की प्रतिज्ञा कयाव की ॥ मं ३ । सि १२ । सू १८ । भा ३३ ॥

समी०—मन्त्रा सब फली पर पापी भी हो सकती है । और भीये स प्रतिष्ठा करने से ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा क्योंकि जब उनका चन्दाव देखा तो प्रतिज्ञा की परिसे नहीं जानता था इसल रपाहीन भी उदरा ॥ १ २ ॥

१ २—और यह जो सबका सब ये मा व्याप उसके ईमान बाधे बध करे हम यह कि पक्ष उनके अरकरी में और कुछ में ॥ यही तक कि पक्षका उमाह दूधन मूर्त्य की बाध उसके दूधन या बीच काम कीचक के ॥ यदा । उनमें पृथक्कर विव निश्चय कयज्ञ मान्य निश्चय करने बाध ई बीच पृथिवी के ॥ मं ३ । सि १२ । सू १८ । भा ३८ । पृष्ठ २७ ॥

समी०—महा यह सुना की मिठावी बेसमझ है। लड़ा हो गया कि बहकों के मर पाप नहीं मेरे भाई से बहका कर उठारे व कर दिये बहों यह कभी ईश्वर की बात नहीं हो सकती। अब प्रागे की प्रविष्ट की बात देखिये कि इस विद्या के ब्रह्मनेश्वर सूर्य को एक भीख में रात्रि को हूय जायता है फिर प्रत्यक्ष मिश्रित है, महा सूर्य तो प्रमिषी से बहुत बड़ा है वह बड़ी या भीख का समुद्र में कैसे हूय सकेगा ? इससे यह सिद्ध हुआ कि कुतान के ब्रह्मनेश्वर को सूर्य को ब्रह्मनेश्वर की विद्या नहीं की को होती तो ऐसी विद्याविद्वत् बात क्यों दिये देता ? और इस पुस्तक के माथे बहकों को भी दिये नहीं है जो होती तो ऐसी मिश्रित बातों से पुन पुन को क्यों माथे ? अब देखिये ब्रह्मनेश्वर का प्रमिषी को ब्रह्मनेश्वर रात्रि न्यायाधीश है और ब्रह्मनेश्वर को प्रमिषी में प्रमिषी की करने देता है। यह ईश्वरता की बात से सिद्ध है इससे ऐसी पुस्तक को ब्रह्मनेश्वर को माथे हैं सिद्ध नहीं ॥ १ ६ ॥

१ ७—और यह करो बीच कितान के मर्मों को जब यह पढ़ी बोलों अपने से मर्मों की ॥ यह पढ़ा उसके हृदय परी यह मेरा हमने यह प्रमिषी को ब्रह्मनेश्वर करित्य कत सूरत पकड़ी बोलो उसके आदमी पुन की ॥ करने बड़ी विद्या में रात्रि पकड़ी हं रात्रि की तुम से जो है तुमनेश्वर ॥ करने बड़ी विद्या इसके नहीं कि मैं ऐसा हुआ हूं माथि के के के कि वे बाल में तुमको बहका पकित ॥ क्या कैसे होय बाले मेरे ब्रह्मनेश्वर की रात्रि ब्रह्मनेश्वर मुझको आदमी ने नहीं मैं ब्रह्मनेश्वर करने बहकी ॥ यह प्रमिषी होय रात्रि उसके और यह पढ़ी बाल उसके मर्मों ब्रह्मनेश्वर प्रमिषी में ॥ मं ७ । सि १६ । सू १६ । भा १६-२ । १२ ॥

समी — अब ब्रह्मनेश्वर विचारों कि करित्य सब सुन की यह है तो ब्रह्मनेश्वर पढ़ा नहीं हो ब्रह्मनेश्वर यह ब्रह्मनेश्वर कि वह मर्मों कुतारी के बहका होय किसी का संम करना नहीं ब्रह्मनेश्वर की प्रमिषी सुन के हृदय से करित्य ने उसके मर्मों की विद्या यह ब्रह्मनेश्वर से सिद्ध कत है। ब्रह्मनेश्वर की ब्रह्मनेश्वर की बहों बहुत विद्या है उनके विद्या उचित नहीं समझ ॥ १ ७ ॥

१ ८—यह नहीं देखा तुने यह कि मेरा हमने शिवाजी को फिर ब्रह्मनेश्वर के बहकाते हैं उनके बहकाते कर ॥ मं ७ । सि १६ । सू १६ । भा १६ ॥

समी०—अब सुन ही शिवाजी को बहकाते के ब्रह्मनेश्वर है तो बहकाते बहों का कुछ दोष नहीं हो सकता और न उनके हृदय हो ब्रह्मनेश्वर न शिवाजी को क्योंकि यह सुन के हृदय से सच होता है। इसका यह सुन को होय ब्रह्मनेश्वर जो सच ब्रह्मनेश्वर है तो उसका यह ब्रह्मनेश्वर आप ही मेरे और जो ब्रह्मनेश्वर को दोष के ब्रह्मनेश्वर को कर तो ब्रह्मनेश्वर को ब्रह्मनेश्वर ही प्रमिषी ब्रह्मनेश्वर है ॥ १ ८ ॥

१ ९—और विद्या ब्रह्मनेश्वर हूं बाले उस मर्मों के तोय की और ईश्वर ब्रह्मनेश्वर किने ब्रह्मनेश्वर फिर मर्मों ब्रह्मनेश्वर ॥ मं ७ । सि १६ । सू १६ । भा १६ ॥

समी०—जो लोग स पाप समा करने की बात कुराव में है वह सब को बापी करनेवाली है क्योंकि पापियों को इससे पाप करने का साहस बहुत बढ़ जाता है इससे वह पुच्छक और इसका बनानेवाला पापियों को पाप करने में हीसजा बनानेवाले हैं इससे वह पुच्छक परमेश्वरकृत और इसमें क्या कुछ परमेश्वर भी नहीं हो सकता ॥ १ ४ ॥

११ —और किये हमने बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि दिख जाये ॥ मं ४ । सि १० । सू २१ । पा ३१ ॥

समी०—बढ़ि कुराव का बनानेवाला पृथिवी का नमना यदि जगत्ता तो वह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ों के घरने स पृथिवी नहीं दिखती । शक्य है कि जो पहाड़ नहीं भरता तो दिख जाती इतने कहने पर भी भूकम्प में क्यों कमि जाती है ॥ १ ४ ११ ॥

१११—और शिवा ही हमने उस औरत को और रवा की उसने अपने पुत्र बच्चों को बस कुछ दिया हमने बीच उसके कह अपनी को ॥ मं ४ । सि १० । सू २१ । पा ३१ ॥

समी०—देवी सरस्वीज बातें कुरा की पुच्छक में कुरा की क्या और सत्य मनुष्य की भी नहीं होती जब कि मनुष्यों में देवी बातों का बिलक्षण बच्चा नहीं तो परमेश्वर के सामने क्योंकर बच्चा हो सकता है ? देवी बातों स कुराव इच्छि होता है यदि बच्ची बात होती तो बलि मरता होती जैसे वेदों की ॥ १११ ॥

११२—क्या नहीं ऐसा तुने कि बछाह को सिजरा करते हैं जो कोई बीच बालमयों और पृथिवी के है सूर्य और चन्द्र तारे और पहाड़ बृह और जम्बर ॥ पहिनाये जहेंगे बीच उसके कज्ज साने के और माली और पहिनाया उबका बीच उसके ऐसी है ॥ और पवित्र रात भर भर को बाले गिरि चिन्नेवालों के और कने रहनवालों के ॥ फिर चाहिने कि नूर करें मिला अपने और पूरी करें मरें अपनी और चारों घाट धिरे भर कदीम के ॥ तो कि गम बछाह का बन्द करें ॥ मं ४ । सि १० । सू २२ । पा १४ । २३ । २४ । २५ । २६ ॥

समी०—महा जो उह वस्तु है परमेश्वर को जान ही नहीं सकत फिर के उसकी मक्ति क्योंकर कर सकते है ? इससे वह पुच्छक ईश्वरकृत तो कभी नहीं हो सकता किन्तु किमी भ्रान्त का बयान कुछा हीमय है । यह ! पहा बच्चा स्वयं है जहाँ साने माली क पवन और रानी कपड़े पहिरने का मिछें पद बहिरन बहाँ के रायचों के घर स अधिक नहीं हीम पदता । और जब परमेश्वर का घर है तो वह उसी घर में रहता भी हमस फिर कुरावली क्यों नहुई ? और दूसर कुरावली का बयान क्यों करत है ? जब कुरा भर जेता जवन घर की परिमया करने को बाजा रवा है और पहाचों को मारव के बिछाया है तो वह कुरा मन्त्रि वाले और पिरव कुरा क मरत कुछा और महाकुरावली का बयान क्या कुछा क्योंकि मूर्खों स मन्त्रि बहा पुन है इससे कुरा और मुखमयन बने कुरावली और कुरावली बया जेनी बूझे कुरावली है ॥ ११२ ॥

११३—और विषय तुम दिन इषामत के उद्योगे जाओगे ॥ मं ३ ।

सि १८ । सू २३ । अ १६ ॥

समी०—इषामत तक मुझे कबल में रहेंगे या किसी जन्म इषाह ? जो उन्हीं में रहेंगे तो सबेरे बुद्धिबल शरीर में रह कर पुनरात्मा भी बुद्धि भोग करेंगे ? वह जन्म अन्त्य है और बुद्धिबल अधिक होकर योगोत्पत्ति करने से शुरु और सुखदयक पापमयी होंगे ॥ ११३ ॥

११४—इस दिन की गवाही देंगे कबल उनके जन्ममें उनकी और हाथ उनके और पाँव उनके साथ उस वस्तु के कि वे करते ॥ अज्ञात मूर है आसमानों का और पृथिवी का मूर उसके कि आग्नि तल की है बीच उसके बीच हो और बीच बीच कंदीक दीपों के है वह कंदीक माओ कि तल है कमकम रोधन किना काया है बीचक बुद्ध सुधारिक जैतुन के से व पूर्व की ओर है न पश्चिम की समीर है तब उसका रोधन हो जाये जो न कबे कबल रोधनी के मार्ग दिखाने है अज्ञात मूर अपने के जिस को चाहता है ॥ मं ४ । सि १८ । सू २४ । अ २४ । १२ ॥

समी०—हाथ पय आदि सब होने से गवाही कभी नहीं दे सकते वह बात छिन्नम से निरुद्ध होने से मिथ्या है । क्या शुरु आग मिथ्या है ? कैसा कि पछान के हैं ऐसा पछान ईश्वर में नहीं कर सकता । हाँ किसी आकार वस्तु में कर सकता है ॥ ११४ ॥

११५—और अज्ञात ने उत्पन्न किना हर आकार को पायी से वस कोई उस में से वह है कि जो कहता है पेट अपने के ॥ और जो कोई आज्ञा पावन कर अज्ञात की रसूख उसके की ॥ वह आज्ञा पावन कर शुरु की रसूख उसके की ॥ और आज्ञा पावन करो रसूख की व्यक्ति बना किने जाओ ॥ मं ५ । सि १८ । सू २४ । अ २५ । १२ । १० - ०१ ॥

समी०—वह कीमती किनासकी है कि जिन जानकी के शरीर में सब तल होकर हैं और कहा कि केवल पायी से उत्पन्न किना ? वह केवल अविद्य की बात है । अब अज्ञात के साथ साक्षर की आज्ञा पावन करना होता है तो शुरु का शरीर होम्मा या नहीं ? यदि ऐसा है तो क्यों शुरु को साक्षरीक कृत्य में विद्य और करते हो ? ॥ ११५ ॥

११६—और जिस दिन कि यह आकेय आसमान साथ बढ़ी के और उठारे अर्थमें फरिते ॥ वह मत कहा मान कश्चित् का और धन्या कर उनके साथ आता बहा ॥ और बहल आता है अज्ञात बुराई की उन्की को बुराई की से ॥ और जो कोई सोचः कर और कर्म कर अण्ड यस विषय आता है तब अज्ञात की ॥ मं ६ । सि १८ । सू २५ । अ २६ । १२ । १० । ०१ ॥

समी०—वह नाम कभी सब पही हो सकती है कि आकृत बहनों के साथ यह पावे । यदि आकार कोई सुखिमान् पदार्थ हो तो यह सकता है । वह सुखदयकों का कृत्य साविद्य कर मूर धन्या मचाने बसा है इच्छासे

धार्मिक विद्वत् लोग इसको नहीं मानते । वह भी अच्छा ज्ञान है कि जो पाप और पुण्य का बदला बदला होनाप ! क्या वह सिद्ध और उद्बुद्ध की सी बात को पकड़ ही पाये ? जो लोग कहते थे पाप बूरे और ईश्वर मिठे तो कोई भी पाप करने से बच कर इसलिये वे सब बातें विषय से विरह्य हैं ॥ ११६ ॥

११७—वही की हमने तर्क मूस्य की वह कि से वह रात को कर्मों मेरे को विजय तुम पीछा किने जाओगे ॥ वस मेरे लोग किरण ने बीच नगरी के जमा करनेवाले ॥ और वह पुण्य कि जिससे पैदा किया मुझको वस वही मार्ग दिख-
जाया है ॥ और वह जो विद्याया है मुझ को विद्याया है मुझको ॥ और वह पुण्य कि जगता रकता हूं मैं वह कि जमा को राते मेरे अपराध मेरा दिन जग्यमत के ॥ मं ५ । सि १६ । सू २६ । जा २२ । २३ । ७८ । ७९ । ८२ ॥

समी०—जब सुना ने मूस्य की और वही मेरी पुण्य वाक्य, ईसा और मुहम्मद सारेब की और कियाव लीं मेरी ? क्योंकि परमेस्वर की बात सदा एकही और बेमूढ होती है । और उसके पीछे कुपान एक पुस्तकों का मेजबान पहिली पुस्तक को अपने धूलबुल माना जान्या । यदि वे तीन पुस्तक सन्ने हैं तो वह कुपान मूम होग्य । चारी का जो कि परस्पर गाना विरोध रखते हैं उनका सर्वथा सन्न होना नहीं हो सकता । यदि कुरा वे कह अपराध जीव पैदा किने हैं तो वे मर भी जर्रमे अपराध उनका कमी अभ्यास भी होग्य ? जो परमेस्वर ही मजुल्पादि प्राणिनों को विद्याया विद्याया है तो किसी को रोमा होमा न चाहिये और सन्ने मूस्य मोझल देना चाहिये । पचपन्न से एक को उत्तम और दूसर को निम्न वैसा कि राज्य और कंगले को ओठ निम्न मोझल सिद्धता है न होना चाहिये । जब परमेस्वर ही विद्याया विद्याया और पुण्य कपाने बाधा है तो रोम ही न होना चाहिये परन्तु मुसलमान प्राणि को भी रोम होते हैं, यदि कुरा ही रोम कुवाकर धाराम करने बाधा है तो मुसलमानों के शरीर में रोम न रहना चाहिये । यदि रहता है तो कुरा पूरा वैध नहीं है । यदि पूरा वैध है तो मुसलमानों के शरीर में रोम क्यों रहते हैं ? यदि वही मरता और विद्याया है तो उन्ही कुरा को पाप पुण्य जगता होग्य । यदि कर्म कर्मामान्य के कर्मामुसार व्यवस्था करता है तो कर्म कर्म भी अपराध नहीं । यदि वह पाप जमा और जग्य कर्मामान्य की रात में करता है तो कुरा पाप नहाने बाधा होकर पापपुण्य होमा यदि जमा नहीं करता तो वह कुपान की बात कूटी होने से क्या नहीं सकती है ॥ ११७ ॥

११८—वही तु मावली सगिमिह हमारी वस से या कुज मियाबी जो है तु सही से ॥ कहा यह खोजी है बाते उसके पानी पीया है एक बार ॥ मं ५ । सि १६ । सू २६ । जा १२७-१२८ ॥

समी०—महा इस बात को कोई मान सकता है कि पाप से कर्मों निकले । वे लोग बहुतों से कि जिन्होंने इस बात को मान लिया और खोजी की मियाबी देना देना जग्यी व्यवहार है ईश्वरकृत नहीं । यदि वह किया ईश्वरकृत होती तो देखी कर्मों बाते हुएमें न होती ॥ ११८ ॥

११४—ये मूख बात यह है कि निम्न में बताया है तादिस ७ और यह है अस्त व्यस्त यह वह कि देखा उसको दिखाय था मानो कि वह खाए है ॥ ये मूख मत कर निम्न नहीं करते समीप मेर पैगम्बर ॥ बताया नहीं कोई मन्त्र परन्तु यह मासिक बातें बने कर ॥ यह कि मत सरकारी करो ऊपर मेरे और बड़े भाओ मेरे पाछ मुसलमान होकर ॥ मं २। सि १४। ए २०। भा २। १०। २६। ३३ ॥

समी०—और भी देखिये अपने मुख आप बताया बड़ा इकररत बनता है, अपने मुख से अपनी मर्यादा करना भेद पुरुष का भी कम नहीं तो सुरा का क्योंकर हो सकता है ? समी ता इन्तजाब का कदम दिखाया ज़रूरी मनुष्यों को बतकर आप बख़्शक सुरा बन बैठा । ऐसी बात ईश्वर के पुस्तक में कभी नहीं हो सकती । यदि वह बड़े बातें अपनाएँ सख्तों आसमान का मासिक है तो वह एकदम ही होने से ईश्वर नहीं हो सकता है । यदि सरकारी करना ठुप है तो सुरा और मुहम्मद साहेब ने अपनी स्तुति से पुस्तक क्यों भर दिने ? मुहम्मद साहेब ने अपनेको को मरे इससे सरकारी हुई या नहीं ? वह कुरान पुनरुक्त और एवोपर सिद्ध बातों का मरा हुआ है ॥ ११४ ॥

१२ —और देखिये ए पढ़ाई को धनुमान करता है उनको कसे हुए और वे बड़े बड़े हैं मानिये कबने बाइबल की करिमी बताया कि जिसने यह किया हर वस्तु को निम्न यह उकरदार है उस वस्तु के कि करते हो ॥ मं २। सि २। ए २०। भा २२ ॥

समी०—बाइबल के समान पढ़ाई का कबना कुनाम बचानेवालों के देर में होता होना अन्तर्गत नहीं और सुरा की इकरदारी पैदाय वाली को न पकड़ने और न बचक देने से ही विहित होती है । जिस एक पन्नी को भी अन्तर्गत न पकड़ पाया न बचक दिया इससे अधिक आसामाली क्या होती ? ॥ १२ ॥

१२१—किस मुर मारा उसको मूख ने कम पूरी की बालु बखली ॥ क्या ये सब मेरे निम्न में अन्तर्गत किया कब आपकी का कस जमा कर मुफ्तको बस जमा कर दिया उसको निम्न यह जमा करने बाका बचाव है ॥ और मासिक तेरा कनक कस्य है जो कुछ बाइबल है और पकड़ करण है ॥ मं २। सि २। ए २२। भा १२-१६। २८ ॥

समी०—जब कब भी देखिये । मुसलमान और ईसाइयों के पैगम्बर और सुरा कि मूख पैगम्बर मनुष्य की हल्य किया करे और सुरा जमा किया करे वे दोनों अन्तर्गतारी हैं या नहीं ? क्या अपनी हक़्क ही से किया बाइबल है पैदा बखलि करण है ? क्या उसने अपनी हक़्क ही से एक को राजा दूसरे को कंगर और एक को निज़ाम और दूसरे को बूँदें प्राप्ति किया है ? यदि ऐसा है तो न कुरान कम और न अन्तर्गारी होने से सुरा ही हो सकता है ॥ १२१ ॥

१२२—और बाइबल ही इसने मनुष्य को साध जो आप के भलाई करना और जो पकड़ा करे हुए से दोनों यह कि बारीक काने ए अन्तर्गत मेरे सब वस्तु को कि

नहीं बाले तेरे साथ उसके साथ उस मल कहा माय उम होनों क्य तर्क मेरी है ॥
और अवरुध मेरा हमने मूह को तर्क और उसके कि कस रहा बीच उनके
हजार वर्ष परन्तु पचास वर्ष कम ॥ मं २ । सि २ । सू १४ । पा ० । १३ ॥

समी०—माया पिता की सेवा करना अच्छा ही है जो लुप्त के साथ शरीर
करने के दिने कहे ता उन्मत्त कहा म माया वह भी ठीक है । परन्तु यदि माया
पिता मिथ्याभाष्यदि करने की आज्ञा करें तो क्या माय सेवा चाहिये ? इसदिने
वह बात चापी अच्छी और आधी बुरी है । क्या नुह आदि पैगम्बरों ही को लुप्त
संसार में भेजता है ? तो अन्य जीवों को भौन भेजता है ? यदि सब को यही
भेजता है तो सभी पैगम्बर क्यों नहीं ? और प्रथम मनुष्यों की हजार वर्ष की जातु
होती थी तो अब क्यों नहीं होती इसदिने वह बात ठीक नहीं ॥ १२१ ॥

१२२—अज्ञात पहिली बार करता है उत्पत्ति फिर दूसरी बार करना उसको
फिर उसी की ओर केर आओगे ॥ और जिस दिन वर्षा वर्षात् करी होगी
अन्तर्गत निरन्त होगे पापी ॥ वस जो खोता कि ईमान खाने और कम किने
अच्छे वस वे बीच का के सिद्ध किने आओगे ॥ और जो मेजों हम एक बार
कस देव उस कोतो को पीछी हुई ॥ इस प्रकार मोहर रखता है अज्ञात अमर दिनों
उन लोगों क कि नहीं जानते ॥ मं २ । सि २१ । सू ३ । पा ११-१२ ।
१२ । २१ । २२ ॥

समी०—यदि अज्ञात दो बार उत्पत्ति करता है तीसरी बार नहीं तो उत्पत्ति
की आदि और दूसरी बार के अन्त में विषमता ब्रह्म रहता । होता ? और एक तथा
दो बार उत्पत्ति के पश्चात् उसका सामर्थ्य विषमता और अन्त होअसमा यदि अन्त
करने के दिन पापी खान निराश होतो अच्छी बात है परन्तु इसका प्रयोजन
वह तो नहीं नहीं है कि मुसलमानों क सिद्धान्त सब पापी समस्त कर निरन्त किने
आवें ? क्योंकि दुष्टान में कई स्थानों में पापियों के चरीरों का ही प्रयोजन है । यदि
शरीरों में रक्त और अन्न पहिराना ही मुसलमानों का स्वर्ग है तो इस संसार
क मुक्त हुआ और वहाँ साखी और सुनार भी होगा अथवा लुप्त ही मखी और
मुन्धर आदि का काम करता होय । यदि किसी को कम गहना मित्रता होय ता
चारी भी होती होगी और कहिरत स चारी करनधरों का राजन में भी अखान
हय यदि ऐसा होता होय तो अज्ञात कहिरत में रहता वह बल मूह हा आपपी ।
आ किसीकी की मेरी पर भी लुप्त की छि है सो वह दिव्य ग्नी करने के
अनुभव ही स हाजी है और यदि मानाअन कि लुप्त ने अपनी दिव्य स सब बल
अनखी है तो इस अन्त अन्त अपना समस्त प्रसिद्ध करना है । यदि अज्ञात न
जीवों क दिनों पर मोहर अमा पाप अमा का उम पाप का भगी नहीं होने
जीव नहीं हो सकते । जिस अन्त पराजय समधीत का हाता है कम वे सब पाप
लुप्त ही को पक्ष हारें ॥ १२३ ॥

१२४—म जानते हैं किताब हिरमतखान की ॥ अथवा बिना आसमानों
के बिना मुगल आधी लम्ब के दन्ते हा गुम उसका और अन्त बीच भुविरो क
२८

पढ़ाव देता न हो कि शिक्षा आए ॥ क्यों वही देखो तुने यह कि भगवान् प्रवेश करता है रात का बीच दिन के और प्रवेश करता है कि दिन को बीच रात के ॥ क्या वही देखो कि निरिच्छा जलती है बीच क्यों के समय विद्यामयी भगवान् के कि शिक्षा देने तुमको निदानियां अपनी ॥ मं ५ । सि २१ । सू ३१ ।
आ २ । १ । २२ । ३१ ॥

समी०—यह भी यह ! शिक्षाप्रदायी विद्याप ! कि जिस में सर्वथा विद्या सं विद्या प्रकाश की उत्पत्ति और इस में जैसे ज्ञान के की संख्या और प्रकृति को फिर रखने के विषये पढ़ाव रखना । बोली सी विद्या यथा भी देता केवल कभी नहीं करता और न भावना और विद्यमान देखो कि वही दिन है वही रात वही और वही रात है वही दिन वही उसको एक दूसरे में प्रवेश करता है विद्या है यह के प्रविष्टियों की बात है । इसलिये वह कुशल विद्या की पुस्तक नहीं हो सकती । क्या यह विद्याविद्या बात नहीं है कि बीच मनुष्य और विद्या कौशलानि से जलती है या बुद्धा की कृपा से ? यदि सोचें या फलनों की बीच बगल समुद्र में बगलें तो बुद्धा की निदानियां बुद्ध ज्ञान का वही ? इसलिये वह पुस्तक न विद्या और न ईश्वर का ज्ञाना बुद्ध हो सकता है ॥ १५५ ॥

१५६—तब और करता है ज्ञान की वास्तव्य से तब प्रकृति को फिर वह करता है तब उस की बीच एक दिन के कि है प्रत्यक्ष उसको प्रकाश वरें उभ क्यों से कि दिखते हो तुम ॥ यह है ज्ञानकेवाला बीच का और प्रकाश का प्रविष्टि प्रकाश ॥ फिर पुन विद्या उसको बीच प्रकाश बीच उसको रूढ़ अपनी से ॥ यह ज्ञान केवल तुमको प्रविष्टि मीत का यह जो विद्या विद्या क्या है स्वयं तुम्हारे ॥ और जो चाहते हम प्रकाश देते हम प्रकाश बीच के विद्या उत्तरी परन्तु विद्या हुई बात मेरी ओर से कि प्रकाश प्रकाश में प्रकाश को विद्याओं और प्रविष्टियों से हक ॥ मं ५ । सि २१ । सू ३२ । आ २-३ । १ । ११ । १२ ॥

समी०—अब ठीक सिद्ध होगया कि मनुष्यमयीं का बुद्धा मनुष्यमय प्रकृति है, क्योंकि जो ज्ञापक होता है तो एक देश से प्रकाश करता और उत्तरता प्रकाश नहीं हो सकता । यदि बुद्धा प्रविष्टि को प्रकाश है तो भी आप प्रकृतिहीन होगया । आप वास्तव्य पर ईश्वर विद्या है और प्रविष्टियों को वीरता है । यदि प्रविष्टि रिक्त केवल कोई मामला विद्याओं या किसी मुर्ते को जो कर्तव्य तो बुद्धा को क्या माहुर्य हो सकता है ? माहुर्य तो उसको हो कि जो सर्वज्ञ तथा सर्वज्ञापक हो सो तो है ही नहीं होता तो प्रविष्टियों के मेकने तथा कई लोगों की कई प्रकाश से प्रकाश देने का क्या काम था ? और एक हजार क्यों में तथा प्रकाश करने प्रकाश करने से प्रकाशविद्या भी नहीं । यदि मीत का प्रविष्टि है तो उस प्रविष्टि का मारने यथा बीमता प्रकाश है ? यदि वह विद्या है तो प्रकाश में बुद्धा के प्रकाश शरीर बुद्धा । एक प्रविष्टि एक समय में प्रकाश करने के विषये वीरों को विद्या नहीं कर सकता और उसको विद्या आप किने अपनी मर्ती से प्रकाश में पर के उसको बुद्धा केवल प्रकाश देकर है तो यह बुद्धा आपी प्रकाशकारी और प्रकाशीन है । देती

यहाँ जिस पुस्तक में हों न वह विद्या और न ईश्वरकृत और जो दया म्यानहीन है वह ईश्वर भी कभी नहीं हो सकता ॥ १२२॥

१२१—यह कि कभी न क्षाय वेद्य व्यापना तुम्हारा जो भागो तुम धृष्टु या इच्छा से ॥ दे बीबियों ! कभी की जो कोई आये तुम में स निर्द्वन्द्व प्रत्यक्ष के पुण्या किम्य आनेवा यको उद्योगे अज्ञान और है वह ऊपर अज्ञान के सहज ॥ मं २। सि २१। सू ३३। आ १९। ३ ॥

समी०—यह सुहृद्मत् साहच ने इसलिये किया शिक्षायाप्य होय कि कदाई में कोई न छोड़े इमारा विज्ञान होने मरने से भी न करे धर्म्य करे मज्जह वप्य खड़े ! और यदि बीबी निर्द्वन्द्वता स न आये तो क्या पैम्बर साहच निर्द्वन्द्व होकर पावें ? बीबियों पर अज्ञान हो और पैम्बर साहच पर अज्ञान न आवे यह किस पर का व्याप है ? ॥ १२१ ॥

१२०—और चहकी द्यो बीब की अपने कं 'आज्ञा पावन करा अज्ञान और रसूख की सिखाय इसके नहीं ॥ उस जब अज्ञा कबकी ज़ेद ने हाजित उससे अज्ञान दिया हमने तुम्हसे उसको ताकि न होवे ऊपर ईमान बाधों के संगी बीब बीबियों स से पावनकी उनके क जब अज्ञा कबसे उसका हाजित और है आज्ञा तुम्ह की कीमती ॥ नहीं है ऊपर नहीं के कुछ द्यो बीब कस्तु के ॥ नहीं है सुहृद्मत् वप किसी मर्हो का ॥ और इबाक की बी इमानवाली जो दूब दिया मिह्र के ज्ञान अपनी बास्त नहीं के ॥ बीब दूब स जिसका चाह उनमें स और अज्ञान दूब तर्फ अपनी जिसको चह नहीं पाप कसर कर ॥ ए खोम्हो ! जो ईमान बाधे हो मत प्रेरण करो नहीं में पैम्बर क ॥ मं २। सि २२। सू ३३। आ ३०-३८। ४। २१। २३ ॥

समी०—यह बड़े अन्वय की बात है कि बीबी पर में ज़ेद ६ समाप्त रहे और पुस्तक तुम्हसे द्यो क्या दिलों का बिल दूख कस्तु दूख दूख में भ्रमय कबया लुहि के अनेक पराई दूखय नहीं बाधता होय ? इसी अन्वय स मुसलमानों के अथक किम्बर सनवाली बीब बिबियों होत हैं । अज्ञान और रसूख की एक अविद्वत् आशय है या भिन्न २ किन्तु ? यदि एक है तो इमों की आज्ञा पावन करा कबया प्रथे है और या भिन्न २ किन्तु है ता एक सही और दूसरी भूली ? एक तुम्ह दूखत रीतान हो अन्वय और गरीक भी इमया । यह कुरान का तुम्ह और पैम्बर तथा कुरान को ' जिस दूसर का मतलब यह कर अपना मतलब सिद्ध कबया है ही पसी बीबा अन्वय रकता है । इससे यह भी सिद्ध हुआ कि सुहृद्मत् साहच बड़े दिव्यी य यदि न इत ता (अन्वयक) पर की बीबी का जो पुत्र की बीबी अपनी बीबी को कर लेते ? और फिर कृती बतों करवायक का तुम्ह भी पचवाली क्या और अन्वय को व्याप अज्ञान । अन्वयों में या ज़रूरी भी इमया यह भी बीबी की बीबी को दूखता है और यह किन्तु बीबी अन्वय की क्या है कि नहीं की दिव्यताकि की बीबा करने में कुछ भी अन्वय नहीं होय । यदि नहीं किसी का बाप न या ता ज़ेद (अन्वयक) क्या किम्बर का ? और नहीं बिबा ? यह इसी मतलब की बात है कि जिस पर की को का भी पर में

काम्ये से पैगम्बर साहेब न बने काम्य से क्योंकर बने होंगे ? ऐसी कुराई से भी कुरी बात में किसी हान्य कमी नहीं हुई सकती । क्या जो पराई की भी कमी से प्रसन्न होकर बिकार करता चाहे तो भी इच्छा है ? और यह महा अचरम की बात है कि कभी तो जिस की को चाहे जोक देव और मुहम्मद साहेब की भी खोग यदि पैगम्बर अफगानी भी हो तो कमी न जोक लगे ! जैसे पैगम्बर के घरों में काम्य कोई धर्मिन्धार यहि से प्रवेश न करें तो ऐसे पैगम्बर साहेब भी किसी के घर में प्रवेश न करें । क्या कभी जिस किसी के घर में चाहे निराला प्रवेश करें और सामग्री भी रहे ? अन्धा कर्म ऐसा इराद कर काम्य है कि जो इस कुरान को ईश्वरकृत और मुहम्मद साहेब का पैगम्बर और कुरानाक ईश्वर को परमेश्वर मान लेंगे ? बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे मुक्तिमूल्य बर्मिन्धार वालों से कुछ इस मत का अर्थवैतनिकवादी आदि मनुष्यों ने मान लिया । ॥ १९० ॥

१९०—यही लोग कहते तुम्हारे यह कि दुःख दो रसूख को यह कि बिकार करो बीबियों उसकी को पीके उसके कमी निम्न यह है समीप अज्ञान के बड़ा पाप ॥ निम्न जो खोग कि दुःख दो है अज्ञान को और रसूख उसके को साक्ष्य की है उसमें अज्ञान ने ज्ञान ने खोग कि दुःख दो है मुसलमानों को और मुसल मान औरतों को बिना इसके कुरा निम्न है ऊर्ध्वीने बस निम्न अन्धा ऊर्ध्वीने बोहदाय अर्थात् बूढ़ और अल्प पाप ॥ साक्ष्य सारे जहाँ पाये जायें पन्धे जयें अन्ध किने जयें बूढ़ मारा जाना ॥ ये सब हमारे है उनकी शिष्ट अज्ञान और साक्ष्य से कही साक्ष्य कर ॥ सं २ । सि २९ । सू ३३ । आ २३ ६०—६५ । ६१ । ६८ ॥

समी०—कह क्या सुदा अफगानी कुराई को कर्म के साथ दिखता रहा है ? जैसे रसूख को दुःख देने का निम्न करता तो ठीक है परन्तु दूसरे को दुःख देने में रसूख को भी राकबा लोग का खो कमी न रोज ? क्या किसी के दुःख देने से अज्ञान भी दुखी हो जाता है ? यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता । क्या अज्ञान और रसूख को दुःख देने का निम्न करत हो यह कही सिद्ध होता कि अज्ञान और रसूख जिसको चाहे दुःख दें ? काम्य सबको दुःख देना चाहिये ? जैसा मुसलमानों और मुसलमानों की शिष्टों का दुःख देना कुरा है ता इसके सम्य मनुष्यों को दुःख देना भी अचरम कुरा है । जो ऐसा न माने तो उसकी यह बात भी पचपत की है । कह गहर मन्थन चाहे सुदा और कभी ! जैसे वे निर्दोष अज्ञान में है पैस और बहुत चाहे होंगे । जैसा यह कि काम्य खोग जहाँ पाये जायें सारे जयें पन्धे जयें शिष्ट है कही ही मुसलमानों पर कोई अज्ञान होने तो मुसलमानों का यह बात कुरी कामगी का नहीं ? कह क्या जिसक पैगम्बर आदि है कि जो परमेश्वर का अर्थना करके अपने से सुधरों को दुःख दुःख होने के शिष्टे अर्थना करना शिष्ट है । यह भी पचपत मतव्यसिन्धुपन और महा अचरम की बात है इसके अन्धक भी मुसलमान कोर्मी में स बहुत स यह खोग ऐसा ही कर्म करने में नहीं रहत । यह ठीक है कि शिष्टा के बिना मनुष्य कुरा क समान रहता है ॥ १९५ ॥

१२१—और यह सब पुरुष है कि मेजता है इन्हीं को सब उद्योग है बाहरों को सब हाथ लेते हैं ठाँव बाहर मुँहों की सब भीषित किया हमने स्याप उसके पृथिवी के पीछे पुरुष उसकी के इन्हीं प्रथम क्रमों में ये निश्चयना है । जिसने उद्योग बीच पर सदा रहने के दया प्रपत्नी से नहीं सगती हमको बीच उसके मंदकत और नहीं सगती बीच उसके माँगी ॥ मं २ । सि २२ । सू ३२ । आ ४ । ३२ ॥

समी०—यह क्या कितासफती सुना की है ! मेजता है पशु को यह उद्योग किया है बाहरों को और सुना उसके सुनों को निश्चय किया है । यह बात ईश्वर सम्पत्ती कमी नहीं हो सगती क्योंकि ईश्वर का काम निरन्तर पक्का होता रहता है । जो घर ईश्वर ने दिया वधापन के नहीं हो सगते और का क्वाष्ट का है यह सदा नहीं रह सगता । जिसके करीर है यह परिग्रम के किया हुआ होता और करीर बाधा रोमी हुए किया कमी नहीं सगता । जो एक की सं समताम करता है वह किया रोम के नहीं सगता तो जो बहुत कियों सं विषममोग करता है उसकी क्या ही हुर्यय हमी होगी ? इसलिये मुसलमानों का रहना बहिस्त में भी मुकदावक सदा नहीं हो सगता ॥ १२१ ॥

१२ — इसमें है कुत्राव दण की । जिसका तू मेरे सुधी सं है । उस पर माग सीधे के । उतारा है । जिसका इच्छान् ने ॥ मं २ । सि २३ । सू ३३ । आ २—२ ॥

समी०—यह देखिये यह कुत्राव सुना का बनाया होता तो यह इसकी सीगन्ध नहीं जाता ? यदि वही सुना का मेजा होता तो (केपुत्रक) बड़े की की पर मोहित नहीं होता ? यह कथन मात्र है कि कुत्राव के मानने वाले सीधे मार्ग पर हैं । क्योंकि सीधा मार्ग नहीं होता है जिसमें कम मतनका कम बोझना कम करवा पक्षपक्षरहित न्यायधर्म का आधारका करवा यदि है और इसका विनोद का साग करना तो व कुत्राव में व मुसलमानों में और व इनके सुना में देखा सम्भव है । यदि सब पर प्रकट फामन मुहम्मद साहब होते तो उसके अधिक विद्यमान और समगुणबुद्ध नहीं न होत ? इसलिये मैत्री नृजही अपने दोनों का कहा नहीं सगताही मैत्री यह बात भी है ॥ १२ ॥

१२१—और पूरा धारणा बीच सूर के सब गताही यह क्रमों में सं मधिक अपने की और देखेंगे । और पक्की हों पाँच उनके स्याप उस पशु के क्मस्त वे । सिवाय इसके नहीं कि बाधा उसकी जब यदि उद्योग करवा किसी पशु का यह कि कहाय वालो उनके कि हो जा कम हो जाता है ॥ मं २ । सि २३ । सू ३३ । आ २१ । ३२ । ८२ ॥

समी०—यह सुनिये कल्पयोग वालें ! पग कमी पक्की है लकटे हैं ? सुना के सिवाय उस समय बीच का जिसको धारणा हो ? जिसने सुना ? और बीच बन गया ? यदि न भी तो यह बात मूढ़ी और का भी तो यह बात जो सिवाय सुना के कुछ चीज नहीं की और सुना वे सब कुछ क्या दिया यह मूढ़ी ॥ १२१ ॥

१२२—धियाया बाधेय उसके ऊपर विधाया सदाय दण का । सीधे मया देने वाली बाधे पीने वाली के ॥ समीप उनके मैत्री होगी पीने बांध रहने

करावे सं पैसावर साहच न बने अन्ध सं नर्तकर बने होंगे ? ऐसी बहुराई से भी तुरी बात में भिन्ना हाथ कमी नहीं कूट सकता । क्या जो पसले की भी कमी से प्रसन्न होकर भिन्न करवा आवे तो भी हवाका है ? और वह महा धर्म की बात है कि कमी से भिन्न की का आवे जोड़ देने और मुहम्मद साहेब की भी खोप बहि पैसावर अपराधी भी हो तो कमी न जोड़ सकें ! जैसे पैसावर के कर्म में अन्ध कोई अभिचार दहि सं प्रवेश न करें तो पैसा पैसावर साहच की भिन्नी के कर में प्रवेश न करें । क्या नवी भिन्न भिन्नी के मन में आवे भिन्न प्रवेश करें और मत्तवीन भी रहें ? अन्ध कीन ऐसा दुष्ट का अन्ध है कि जो इस दुष्ट का ईश्वर और मुहम्मद साहच का पैसावर और मुन्नाकोई ईश्वर को परमेश्वर मान सके ? बने आदर्श की बात है कि ऐसे बुद्धिमान धर्मविद्वत् बानी से कुछ इस मत को धर्मिकभित्ती आवि मनुष्यों ने मान लिया । ॥ १२० ॥

१२०—वही योग्य बाले दुष्टाने यह कि दुष्ट दो रसूख को यह कि भिन्न करी बीबियों उसकी को पीछे उसके कमी भिन्न यह है समीप अन्ध के बड़ा पाप ॥ भिन्न को लोग कि दुष्ट के हैं अन्ध को और रसूख उससे को अन्ध की है उसको अन्ध ने और ने लोग कि दुष्ट होते हैं मुसलमानों को और मुसल मान औरतों को भिन्न इसके बुरा भिन्न है अन्धों ने यह भिन्न अन्ध अन्धों ने मोहयान अन्धों में रसूख और अन्ध पाप ॥ अन्ध मारे बड़ी पाने आवे पाने आवे अन्ध भिन्न अन्धों बुरा माया अन्ध ॥ ये सब हमारे ने कमी भिन्न अन्ध और अन्ध से कमी अन्ध कर ॥ मं ५ । सि ११ । सू ३१ । भा ५१ ५०—५८ । ५१ । ५८ ॥

समीप—यह क्या बुरा अन्धी बहुराई को धर्म के अन्ध दिखता था है ? जैसे रसूख को दुष्ट देने का विषय अन्ध तो ठीक है परन्तु बहुराई को दुष्ट देने में रसूख को भी रोक्का लोग या सो नहीं न रोक्का ? क्या भिन्नी के दुष्ट देने से अन्ध भी बुरा हो जाता है ? यदि ऐसा है तो यह ईश्वर ही नहीं हो सकता । क्या अन्ध और रसूख को दुष्ट देने का विषय करने से यह नहीं दिख होता कि अन्ध और रसूख भिन्नको आवे दुष्ट दें ? अन्ध सबको दुष्ट देना चाहिये ? जैसा मुसलमानों और मुसलमानों की भिन्नी का दुष्ट देना बुरा है तो इससे अन्ध मनुष्यों को दुष्ट देना भी अन्ध बुरा है । जो अन्ध न मारे तो अन्धी यह बात भी पचपात की है । यह अन्ध मचाने वाले बुरा और नवी ! जैसे ने बिदेवी संसार में है पैसा और बहुत कोड़े होंगे । जैसा यह कि अन्ध लोग बड़ी पापे आवे मारे आवे पाने आवे भिन्न है भिन्नी ही मुसलमानों पर कोई अन्ध देने तो मुसलमानों को यह बात तुरी आवेगी या नहीं ? यह क्या भिन्न पैसावर आवि है कि जो परमेश्वर से प्रार्थना करके अपने से बुरा को दुष्ट दुष्ट देने के विषय प्रार्थना करना भिन्न है । यह भी पचपात मयखण्डिमुपन और महा धर्म की बात है इससे अन्ध भी मुसलमान लोगों में से बहुत स अन्ध लोग ऐसा ही कर्म करने में नहीं करते । यह ठीक है कि भिन्न के भिन्न मनुष्य पाने के अन्ध रहता है ॥ १२० ॥

बहिर्वा सुन्दर आखी बहिर्वा ॥ भावी कि ये भयते हैं विपत्तये हुप ॥ क्या बस हम नहीं मरेंगे ॥ और भयत्य बूत विषय पैसम्बरों से बा ॥ जबकि मुक्ति ही हमने उसको और कोनों उल्लेख को सब को ॥ परन्तु एक दुविधा पीछे रहने पड़ी है ॥ फिर माया हमने औरों को ॥ मं ६ । सि २३ । सू ३० । आ ४६-४९ । ४८-४९ । ५८ । १३३-१३४ ॥

समी०—क्योंकी वहाँ तो सुखसमाप्त्य लोग शराब को सुरा बतलाते हैं परन्तु हमने तर्कों में तो बहिर्वा की गतिना बतली है ॥ इतना अच्छा है कि वहाँ तो किसी प्रकार मय पीया सुखाता परन्तु वहाँ के बचने वहाँ उल्लेख तर्कों में बड़ी कठानी है ! सारे किन्हीं के वहाँ किसी का बिना स्थिर नहीं लक्ष्य होगा ! और बड़े २ रोग भी होते होंगे ! बहि शरीर बाधे होते होंगे तो भयत्य मरेंगे और जो शरीर बाधे न होंगे तो योगविद्यात्मा ही न कर सकेंगे । फिर उल्लेख तर्कों में बाधा तर्कों है ॥ बहि बूत को पैसम्बर मानते हो तो वा वाहक में लिखा है कि उससे उसकी बहिनियों ने समाप्त्य करके जो बचने पैदा किने इस बात को भी मानते हो न बहीं ! जो मानते हो तो ऐसे को पैसम्बर मानना तर्कों है और जो ऐसे और ऐसी के सखियों को सुरा मुक्ति देता है तो वह सुरा भी कैसा ही है क्योंकि दुविधा को कदाभी बचने बाधा और पक्षपात से बूझों को मारने बाधा बुरा कभी नहीं हो सकता । ऐसा सुरा सुखसमाप्त्य ही के बर में रह सकता है सम्भव नहीं ॥१३२॥

१३३—बहिनियों हैं सुरा रहने की सुने हुप हैं हर उनके बाले उनके ॥ तकिने किने हुप बीच उनके मंगलयोगी बीच इसके मेने और पीने की वस्तु ॥ और समीप होंगी उनके बीच रखनेबहिर्वा छि और वृष्टों से समाप्त्य बस बचता किना फरित्तों ने सब ने ॥ परन्तु पैसम्बर ने न माया अमिमाल किना और प्य बहिनियों से ॥ ये पैसम्बर किस वस्तु ने रोकत तुम्ह को यह कि सिखाया करे बास्त उस वस्तु के कि बचता मेंने सत्य दोषों द्वारा अपने के क्या अमिमाल किना तुने बा --- अने अधिकार बाधों से ॥ कहा कि मैं अच्छा हू उस वस्तु छेउत्पन्न किना तुने मुक्त्य क्रम से उसको मही से ॥ कहा बस विषय हू आसमाप्त्य में से बस विषय न बचा गया है ॥ विषय फल से सम्भव है मेरी दिव जज्ञा तक ॥ कहा ये मासिक मेर डीक दे उस दिव तक कि उल्लेख बाधों ने मुने कहा कि कल विषय न डीक दिने नहीं स है ॥ उस दिव समय प्राप्त तक ॥ कहा कि बस कसम है अतिवा लेनी कि भयत्य गुमनाह कक ग्य उनको मैं हक ॥ मं ६ । सि २३ । सू ३० । आ ४६-४९ । ४८-४९ । ५८-५९ ॥

समी०—बहि वहाँ बूझ कि सुरा में काय कमीने नहरें भयत्यबहि विज्ञ हैं 'कैसे है तो है न सुरा स ने न सुरा रह सकते हैं' क्योंकि जो संयोग स पक्षार्थ होता है वह संयोग क पूर्व न था भयत्य भावी नियोग के जन्म में न रहेगा । जब वह बहिन ही न रहगी तो उसमें रहने बाधे सुरा क्योंकि रह सकते हैं ! क्योंकि लिखा है कि गरी तकिने मेने और पीने के पक्षार्थ वहाँ मिश्रिते इससे वह छिद होता है कि जिस समय सुखसमाप्त्य का मग्नत्व बचा उस समय भर्ष देर क्रोष पचाइय न था इसलिये गुहम्मर छविने ने तकिने जादि की कथ मुनाकर भावी

को अपने मठ में कुछ दिया और जहाँ दिया है वहाँ गिराने सुख कहा ? ये
 जिन्हीं को कहा है ? जपना बहिरत की रहने बाकी है ? यदि कार्य है तो
 जपनी और जो वही की रहने बाकी है तो जपानत के पूर्व क्या करती थी ? क्या
 निष्कामी अपनी उमर का कहा रही थी ? अब देखिये लुरा का ठेक कि जिसका
 दुष्मन् धन्य सब क्रूरियों ने माना और आरम साहस को नमस्कार किया और
 शिष्य ने व माना । लुरा ने शिष्य से पूछा कहा कि मैंने उसको अपने दोबों
 हाथों से क्या तो अभिमान मठ कर । इससे सिद्ध होता है कि लुरा का लुरा
 दो हान बाधा मनुष्य, इसलिये वह व्यापक का सर्वशक्तिमान् सभी हाँ लकटा
 और शिष्य ने समझा कि मैं आरम से उचम हूँ इस पर लुरा ने गुस्ता क्यों
 किया ? क्या आसमान ही मैं लुरा का घर है पृथिवी में नहीं ? तो कब को लुरा
 का घर प्रथम क्यों किया ? क्या परमेश्वर अपने में से वह सृष्टि में से प्रथम कैस
 निष्कल सकता है ? और वह सृष्टि सब परमेश्वर की है इससे चिह्नित हुआ कि
 लुरा का लुरा बहिरत का निम्नेश्वर था । लुरा ने उसको जानत धिक्कर दिया
 और कैस कर दिया । और शिष्य ने कहा कि हे मादिक ! मुझको जपानत तक
 दोह दे । लुरा ने लुरामर से जपानत के दिन तक बोध दिया । अब शिष्य कुछ
 हाँ लुरा से कहा है कि अब मैं सब बहकल्य और गहर मध्यकल्य । तब लुरा
 ने कहा कि जितने को तु बहकल्य मैं उसको दोहका मैं अब दूँगा और तुम्ह को
 भी । अब शिष्य बोले ! विचारिये कि शिष्य को बहकल्य बाधा लुरा है व
 आपस वह बहकल्य ? यदि लुरा ने बहकल्य तो वह शिष्य का शिष्य दूरा । यदि
 शिष्य स्वयं बहकल्य तो शिष्य जीव भी स्वयं बहकल्य शिष्य की अकल्य गरी और
 निष्कल इस शिष्य धारी को लुरा न लुरा बोध दिया इससे चिह्नित हुआ कि वह
 भी शिष्य का शरीर अचम करने में हुआ । यदि स्वयं चारी कराके दूरा रहे तो
 उसका जपानत का कुछ भी पारधर नहीं ॥ १३३ ॥

१३४—अज्ञात जमा करना है पाप सार विधायक वह है जमा करने बाधा
 दयातु ॥ और पृथिवी चारी मूढी में है उसकी दिन जपानत के और आसमान
 चरत हुए है बीच रहित हाव उसका ॥ और जपानत चरती पृथिवी शिष्य
 प्रथम मादिक अपने के और लकल जाते कर्मपत्र और शिष्य जपानत फैलाने को
 बाद मगहों को और फैलवा किया आकाश ॥ मं १ । सि २४ । सू ३३ ।
 वा २३ । १० । १३ ॥

समीक्षा—यदि समस्त पापों का लुरा जमा करता है तो जपानत सब संसार
 का चारी कल्य है और स्वाहीन है क्योंकि एक दुह पर दया और जमा करने से
 वह अधिक दुहल्य कल्य और शिष्य बहुत जपानतको को दुह पदुचरण । यदि
 शिष्य की अपराध जमा किया जावे तो अपराध ही अपराध अमल में पा जावे ।
 क्या जपानत अदिक प्रथमकाहा है ? और कर्मपत्र कहाँ जमा रहत है ? और
 कोन शिष्य है ? यदि शिष्य की और मगहों के भरोस लुरा शिष्य करता है तो
 वह जपानत और जपानत है । यदि वह जपानत गरी करता शिष्य ही करता है तो

कर्मों के अनुसार करता होना । ये कर्म पूरापर बच मान जन्मों के हो सकते हैं ।
तो फिर जमा करना बिछों पर लाधा जग्यना और शिक्षा न कर्मना रीतान से
करकर्मना रीतानपुर रक्य केदक जग्यना है ॥ १३० ॥

१३.२—इतारव्य कितान् कय अहम् राखिअ जगने बाधे की ओर से है ॥
जमा करबेबाधा प्यरी कय हबीबर करबेबाधा सोचा कय ॥ मं ६ । सिं- २३ ।
पू ४ । अा २-३ ॥

समो०—यह बात इसलिये है कि मोक्षे जोय धन्य है वे मरत त इस पुस्तक को मरत सेवे कि जिसमें मोक्षता सत्य जोय धन्य मरत है और यह सत्य भी धन्य के धन्य मित्रकर किम्वत्ता है । इसलिये पुनः धन्य और पुनः धन्य और पुनः धन्य माननेवाले पाप कर्मवाहारे और पाप करने करने वाले हैं ॥ क्योंकि पाप धन्य कर्म कर्म धन्य धन्य धन्य है किन्तु इसीसे मुक्तधन्य जोय पाप और धन्य करने में धन्य करते हैं ॥ ११५ ॥

१३१—बस निम्नलिखित किया उसको सत्य भासमात्र बीच दो दिन के और बढ़ दिया हमने बीच उसको क्या कहा ॥ वहाँ तक कि जब कहीं उसको पास सज्जी होते ऊपर उनके कान उनके और आंख उनकी और हमारे उनके, उनके कर्म से ॥ और कहीं कस्तु हमारे अपने के लीं सज्जी दो हमारे ऊपर हमारे कहीं कि सुखाना है हमारी बजाह ने लिखने सुखाना हर कस्तु को ॥ अद्वय निम्नलिखित बजाह है सुखों को ॥ अ. १. सि. १०. सु. ११. आ. ११. २-२१. ३२. ॥

समीप—बाहरी यह मुसलमानों ! तुम्हारा सुरा किसको तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो तो यह बात आसमानों को हो बिना में क्या खरा ? अस्तुता जो सर्वशक्तिमान् है वह सबमात्र में सब को क्या सकता है । मर्यादाय आह और हमारे को ईश्वर ने जड़ बनाया है वे साही कैसे वे सर्वज्ञ ? यदि साही दिखारें तो उसके प्रथम जड़ क्यों बनाये ? और बापरा पुरोपर भिन्न विद्वत् क्यों किया ? एक दूसरे भी जड़कर मिथ्या बात यह है कि सब चीजों पर साही ही एक सब चीज बनने ? हमारे से पहले ज्ञेय कि तुने हमारे पर साही क्यों ही ? हमका बोधेया कि सुरा ने दिखारें मैं क्या करूँ मर्यादा यह बात कभी हो सकती है ? कैसे कोई कहे कि बापरा के पुत्र का मुक्त मैंने देखा । यदि पुत्र है तो बन्य क्यों ? जो बन्य है तो उसके पुत्र ही हाथ आसम्भव है । इसी प्रकार की यह भी सिद्ध बात है यदि यह मुर्दा को विद्यात् है तो प्रथम मर्यादा ही क्यों ? क्या बाप भी मुर्दा हो सकता है या नहीं ? यदि नहीं हो सकता है तो मुर्देपन को सुरा क्यों समझता है ? और ज्ञानमय की बात एक मूलक चीज किन्तु मुसलमान के घर में रहने ? और सुरा ने किया बापराय क्यों औरतपुत्रों रक्षा ? यदि ज्ञान नहीं व किया ? देखी व बातों से ईश्वरता में बात बनता है ॥ १३५ ॥

१३.—पादो उसके कृत्रिम हैं पादमयों की और पृथिवी की खोजता है भांग्य विस्तरे पादो पादता है और तंग करता है व जलज करता है जो ऊपर पादता है और देता है मिश्रणों पादो वेदियों और देता है मिश्रणों पादो धरे ॥ व मिश्रण देता है उन्मो वेदों और वेदियों और कर देता है मिश्रणों पादो भांग्य ॥

और वही है शक्ति किसी ज्ञानमी को कि बात कर उसके अज्ञात परन्तु भी मैं
 ब्रह्मने कर बा पीछे परदे ४ के से बा मेरे करिते वैष्णव जाने ब्रह्मा ४ में ६।
 सि २२। मू ४२। बा १२। ४४-२१ ॥

समी०—सुधा के पास कुशियों का भयकर मरा होमा। क्योंकि सब विषयों
 के लक्ष्य को करने होते हैं। यह ब्रह्मण्य की बात है। क्या जिसको चाहता है
 उसको किणु पुण्य कर के ऐक्य देता है? और तब करता है? यदि ऐसा है तो
 यह बड़ा ब्रह्मण्यकारी है। जब देखिये कुराण क्याने बाधे की चतुर्धा कि विषय
 जीवन भी मोहित होके उसे यदि जो कुछ चाहता है उपलब्ध करता है तो दूसरे
 कुरा को भी उत्पन्न कर सकता है या नहीं? यदि नहीं कर सकता तो सर्वव्यक्ति-
 मय यहां पर अटक गई। मन्त्रा मनुष्यों को तो जिसका चाहे वेद देदिता सुधा
 देता है परन्तु मुरो मन्त्री भूकर प्रादि किसी बहुत कथ देदिता होती है और
 क्या है? और जो पुण्य के असाध्य विषय क्यों नहीं देता? किसी का अपनी इच्छा
 से बौद्ध रत्न के पुण्य क्यों देता है? यह क्या कुरा देखती है कि उसके सामने
 कोई बात ही नहीं कर सकता? परन्तु उसने पहिचे कहा है कि पररा राज के बात
 कर सकता है या करिते लोग सुधा से बात करते हैं अथवा वैष्णव जो देसी
 बात है तो करिते और वैष्णव लूण अपना मतझन करत हैं। यदि कोई कहे
 सुधा सर्वत्र सर्वव्यपक है तो परदे से बात करवा अथवा राज के पुण्य प्रकर मय
 के अथवा विषय मय है और जो ऐसा है तो यह सुधा ही नहीं किन्तु कोई
 असाध्य मनुष्य होमा इसलिये वह कुराण ईश्वरकृत कमी नहीं हो सकता ॥३०॥

१३८—और जब आता हैसा बाध प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष के ४ में ६। सि २२।
 मू ४३। बा १३ ॥

समी०—यदि इस भी मेला हुआ सुधा का है तो उसके उपदेश से निन्द
 कुराण सुधा ने नहीं कहा? और कुराण से निन्द अन्वीय है इसलिये व किन्हीं
 ईश्वरकृत नहीं हैं ॥ १३८ ॥

१३९—एकही उसको बस बलीरो इसको बीबी बीच राजा के ४ दूसरी
 प्रकर रंगे और अथवा जंगे इनको बाध मोरियों अन्वी बाध बाधियों के ४
 में ६। सि २२। मू ४४। बा १४। ४०। २४ ॥

० इस अथवा के माय 'तत्तत्तीरद्वितीय' में लिखा है कि मुहम्मद स्पष्ट
 हो पड़ीं में वे और सुधा की आवाज सुनी। एक पररा मरी का प्य कुराण रकेत
 मालियों का और दोनों पक्षों के बीच में उत्तर बने ब्रह्मने बाध मायी बा?
 उद्दिमान् लोग इस बात का विचारें कि वह सुधा है या परदे की मोर बात
 अन्वीय ही? इन दोनों में तो ईश्वर ही की पुरस्सा कर सकती। कदाचित् एका
 उपनिषद्दि सत्त्वों में प्रतिपादित ब्रह्म परमात्मा और कदा कुराणोक्त परदे की
 मोर बात करेयथा सुधा! सब तो यह है कि पररा के अविश्व बाध के
 उत्तम बात करते किसी के से?

कर्मों के अनुसार करता होया । वे कर्म पूर्वापर वच मान जन्मों के हो सकते हैं । तो फिर जन्म करना दिनों पर ताका लाग्यवा और सिद्धा न करना सिद्धा न वे बहक्यवा बीरभुपुर्द रक्या केवख धान्या है ॥ १३४ ॥

१३५—उत्तराय कियान का बहक्य द्यखिब जालने बखे की ओर छे है ॥ जन्म करमेवख धान्या का लीकार करमेवख धान्या का ॥ मं ६ । सि २७ । पृ ४ । पृ २-३ ॥

समी०—यह बात इसलिये है कि मोक्षे लोग बहक्य के नाम से इस पुस्तक को मध्य छेवें कि जिसमें मोक्षता सत्य होव अक्षय भव है और वह क्षय भी अक्षय के सत्य मिथकर मिथ्याता है । इसलिये कुराव और कुराव का कुरा और इसको माननेवाले पाप बहक्येद्वारे और पाप करने करने वाले हैं ॥ क्योंकि पाप का जन्म करमेव धान्या अक्षय है किन्तु इसीसे मुक्तमानव कोय पाप और उपद्रव करने में कम करते हैं ॥ १३५ ॥

१३६—वच निष्क किय उसको कस्त आसमाव बीच हो दिव के और बाव दिवा हमने बीच उसके कम उरक्य ॥ वहां तक कि जब बाँकी उसके पास छाड़ी हैंगे ऊपर उसके कम उरके और बाँकी उरकी और कमरे उरके, उसके कर्म छे ॥ और कहीं कस्त कमरे आपने के कहीं छाड़ी ही तुमने कम हमने कहीं कि कुरावा है हमको बहक्य ने मिथने कुरावा हर कस्त को ॥ अक्षय मिथाने बाँका है मुर्दों को ॥ मं ६ । सि २७ । पृ ४ । पृ १९ । पृ २-३ । ३६ ॥

समी०—बाहरी यह मुक्तमानव । तुम्हारा कुरा जिसको तुम सर्वसक्तिमान् मानते हो तो वह सत्य आसमावों को हो दिव में क्या सत्य । वस्तुता को सर्व-सक्तिमान् है यह बहक्यमान में सत्य को क्या सत्यता है । मन्त्रा नाम बाँका और कमरे को ईश्वर ने बह कस्त है वे छाड़ी कैसे वे सर्वो ? यदि छाड़ी दिखारें तो उसके प्रथम बह कहीं कमरे ? और आपना पूर्वापर निष्क मिथने कहीं किन्तु । एक इससे भी बहकर मिथ्या बात यह है कि जब बाँकी पर छाड़ी ही एक सत्य बीच आपने २ कमरे छे पुत्रने कयो कि तुने हमारे पर सत्य कहीं ही ? कमरे कोय कि कुरा ने दिखारें में क्या कम मन्त्रा यह बात कमी हो सत्यता है ? जैसे कहीं कहीं कि बहक्य के पुत्र का मुक्त मैंने देखा । यदि पुत्र है तो बहक्य कहीं ? जो बहक्य है तो उसके पुत्र ही होना असम्भव है । इसी प्रकार की यह भी मिथ्या बात है यदि वह मुर्दों को मिथ्याता है तो प्रथम माता ही कहीं ? क्या आप भी मुर्दो हो सत्य है या नहीं ? यदि नहीं हो सत्यता है तो मुर्दों का कुरा कहीं समझता है ? और जन्मान्त की एक एक सत्य बीच निष्क मुक्तमानव के पर मैं रहेंगे ? और कुरा ने निष्क अपराध कहीं बीरभुपुर्द रक्या ? यदि सत्य कहीं न किन्तु ? ऐसी २ कस्तों से ईश्वरता में बहक्यता है ॥ १३६ ॥

१३७—बहक्ये बहक्ये कुरा निष्क है आसमावों की और पृथिवी की कोयता है प्रथम निष्कने बहक्ये आसमाव है और तंग करवा है न अक्षय करवा है जो कुरा आसमाव है और देव है निष्कने बाहे केदिया और देव है जिसको बाहे केदे ॥ न मिथ्या देव है उरकी केदे और केदिया और कर देव है निष्कने बाहे बाँका ॥

और नहीं है तबकि किसी चापसी को कि बात कर उससे अज्ञात परन्तु भी मैं
छात्रने कर वा पीछे परे ० के से वा भेजे फिरले पैगाम जाने क्या ॥ मं ६ ।
सि २२ । मू ३२ । पा १२ । ३२-२१ ॥

समी०—तुम्हारे पास कुत्तियों का व्यवहार भरा होगा । क्योंकि सब किसानों
के लिये कोहने होते होंगे । वह सबकुछन की बात है । क्या जिसको चाहता है
उसको किता पुस्तक कर्म के प्रेरण देता है ? और तब करता है ? यदि ऐसा है तो
कह क्या सम्भवकारी है । जब किसीने कुराव बनाने वाले की चुराई कि जिससे
अन्तिम की मोहित होके चले यदि का कुछ चाहता है उत्पन्न करता है तो दूसरे
तुम्हारे को भी उत्पन्न कर सकता है वा नहीं ? यदि नहीं कर सकता तो सर्वप्रति-
मत्त नहीं पर धरक पड़े । मन्त्रा मनुष्यों को तो जिसको चाहे वेद वेदिका तुम्हारे
द्वारा है परन्तु मुरगे मन्त्री मूषर धादि जिनके बहुत क्या वेदिका होती है और
द्वारा है ? और की पुस्तक के सम्मान किता क्यों नहीं देता ? किसी का अपनी हृष्टा
वा बीज रख के हुनक क्यों देता है ? यह क्या तुम्हारे संस्कारी है कि उसके सम्मान
कोई बात ही नहीं कर सकता ? परन्तु उससे पहिले क्या है कि परादा दाक के बात
कर सकता है वा फिरले लोग तुम्हारे से बात करते हैं अपना सम्मान को देनी
कत है तो फिरले और पैगामर कृप आपका मतलब करते होंगे । यदि कोई कह
तुम्हारे सर्वप्र सर्वप्रपक है तो परसे से बात करवा अपना दाक के पुस्तक उत्पन्न मंग
के सम्मान सिद्धता लभे है और जो ऐसा है तो वह तुम्हारे ही नहीं किन्तु कोई
अज्ञात मनुष्य होगा इसलिये यह कुराव ईश्वरकृत कमी नहीं हो सकता ॥ १२० ॥

१२०—और जब आपका ऐसा साथ प्रमाण प्रत्यक्ष के ॥ मं ६ । सि २२ ।
मू ३२ । पा १२ ॥

समी०—यदि इस की मेधा हुआ तुम्हारे का है तो उसके उपदेश से निन्द
कुराव तुम्हारे से क्यों बनया ? और कुराव से निन्द प्रमाणीक है इसलिये वे किताबें
ईश्वरकृत नहीं हैं ॥ १२० ॥

१२१—एकको उसको बस बलीको उसको बीचों बीच होनका के ॥ इसी
प्रकार रहेंगे और अज्ञात होंगे उनको साथ धोरिका आपकी आज्ञा पाधिका ॥
मं ६ । सि २२ । मू ३३ । पा ३० । २२ ॥

० इस जायत के भाष्य "तद्वसीरुत्तुमिनी" में लिखा है कि सुहम्मा म्हादेव
हो परों में के और तुम्हारे की आपाज भुनी । एक परादा जरी का वा मृत्तय रक्त
माथिका का और होनी परों के बीच में सत्तर वर्ष बचने वाग्य मार्ग का ?
उद्दिमान् लोग इस बात को विचारें कि यह तुम्हारे वा करे की बात वाक
करनेवाली की ? इस बागी के तो ईश्वर ही की पुर्वदा कर रखी । कहां वेद तथा
उपनिषदादि धर्मग्रन्थों में प्रतिपादित हुए परमात्मा और कहां कुरानाक परसे की
कोई बात करनेवाला तुम्हारे ! सच तो यह है कि भारत का अधिपति बाग व
उत्तम बात छाते किताबे पर से ?

समी०—बह न्या सुहा ज्ञानकारी होकर प्रविष्टों को एकदम और बसविष्ट है ? जब सुखसम्पत्तों का सुहा ही ऐसा है तो उसके उपरान्त सुखसम्पन्न धर्मात् निर्बन्धों का पकड़ें बसविष्ट तो इसमें न्या आश्चर्य है ? और वह संसारी मनुष्यों के समान विषय भी करता है आगे कि सुखसम्पत्तों का पुरोहित ही है ॥ १२३ ॥

१४ —कस जब तुम मिठा उम खोमों स कि अंधिर हुए बस मरो पर्यंत जबको वहां तक कि बस बर कर हो जबको बस एक को कैद करना ॥ और बहुत बलिष्ठा है कि ये बहुत बलिष्ठा थी शक्ति में बसती तेरी से जिससे विषय दिया तुम्हें मारा हमने इसको कस न कोई हुआ सदाय देनेवाला उनकी ॥ तापीर उस बलिष्ठा की कि प्रविष्टा किये यने है परहजगर बीच उसके गहरें है कि विगने पानी को और गहरें है दूध की कि वही बहका मजा उमका और गहरें है शराब की मजा देने वाली बसने पीनेवालों के और राह्य छाक किये यने कि और बसने उनके बीच उसके मेरे है ज्येक प्रकार से बाप मांकिर उनके से ॥ मं १ । सि २६ । सू ४० । आ ४ । १३ । १५ ॥

समी०—इससे वह कुशल कुरा और सुखसम्पन्न इतर मन्त्रने सब को दुःख देने और मन्त्रा मन्त्रण साधनेवाले क्याहीन हैं । वैया वही विद्या है वैया ही दूसरा कोई दूसरा मत बाबा सुखसम्पत्तों पर करे तो सुखसम्पत्तों को वैया ही दुःख वैया कि धाम को देते हैं हो या नहीं ? और सुहा बड़ा पकड़ती है कि किन्हींने सुहसम्पत्तों साधने को निकाल दिया उनको सुहा ने मारा । मन्त्रा जिसमें छन्द पानी दूध मद्य और राह्य की गहरें हैं वह संसार से अधिक हो सकता है ? और दूध की गहरें कभी हो सकती है ? क्योंकि वह बोड़े सम्य में किन्हीं जाता है इसकिने बुद्धिमान् लोग कुशल के मत को वही मानते ॥ १४ ॥

१४१—जब कि दिखाई जायेगी बुद्धिही दिखावे जाये कर ॥ और उपाय बाजेयें पहाय उपाये जान कर ॥ बस हो ज्येगी सुहा दुःखने १ ॥ बस साधन राह्यी और बसने न्या है साधन बहिषी बाप के ॥ और बाई बाप बसने न्या है बाई और के ॥ कसर कसल सोने के धारी से कुने हुए हैं ॥ तकिने किये हुए हैं कसर उनके धामने सामने ॥ और किसे कसर उनके कसने सहा रहनेवाले ॥ धाय धामखोरी के और मन्त्रज्यो के और धामों के शराब छाक से ॥ नहीं माया दुःखने ज्येगी उससे और न निकल बोहेसे ॥ और मेने उस किस्म से कि पसन्द करें ॥ और पोस्त धामकर पविषी के उस किस्म से कि पसन्द करें ॥ और बासी उनके औरते हैं धाम्यी बासी बसती ॥ मांकिर मोहिनी क्षिपने बुद्धों की ॥ और बिहोंने कने ॥ विजय हमने उत्तर किन्हीं है औरतों को एक प्रकार का उत्तर करना है ॥ बस किया है हमने उपको कुमारी ॥ सुहायविष्ठा बराबर बसने बलिष्ठा बस मन्त्रेवाले हो उससे पेटी का ॥ बस कसम जाता हैं में साव निम्ने तारी के ॥ मं ७ । सि २ । सू २६ । आ ४-६ । १२-२४ । २५-३० । २३ । २ ॥

समी०—अब देखिये कुमार क्यानेवाले की बीछा को ! मर्यादित तो दिखती ही रहती है उस समय भी दिखती रहेगी । इससे यह सिद्ध होय है कि कुमार बनाने वाला पृथिवी को फिर व्यापक था । मर्यादित को क्या पकड़कर उड़ा देया ? यदि सुपुत्र हो जायेंगे तो भी सूक्ष्म शरीरधारी रहेंगे तो फिर उनका दूसरा जन्म क्यों पड़ेगा ? बाहरी जो सुखा शरीरधारी न होता तो उसके बाहरी धोर और बाह्य धोर कैसे करे हो सकने ? अब यहां पक्षधर होने के तारी से हुने हुए हैं तो क्यों सुधार भी यहां रहते होंगे और कर्मका कर्म होंगे जो उनके रात्रि में जाने भी पड़ी देते होंगे । क्या वे तन्मित्र जगत्कर निकम्मे बहिरत में बैठे ही रहते हैं या कुछ कर्म किया करते हैं ? यदि बैठे ही रहते होंगे तो उनको अब पकड़ न होने से वे रोगी होकर शीघ्र मर भी सकते होंगे ? और जो काम किया करते होंगे तो जैसे मेहनत मजदूरी यहां करते हैं वैसे ही यहां परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे, फिर यहां से यहां बहिरत में विरोध क्या है ? कुछ भी नहीं यदि यहां सबके साथ रहते हैं तो उनके भी साथ भी रहते होंगे और साथ बसुर भी रहते होंगे, तब तो क्या मर्यादा शहर बसला होगा फिर मजदूरधरि के बहुर से रोम भी बहुत स होते होंगे । क्योंकि मेव कर्मसे गिहस्तों में पानी पीवंग और पान्यों में मद्य पिबेगी न उनका फिर वृक्षेय और न कोई पिक्र वाहेया । बनेह मेव कर्मों और कामधरों तथा पक्षधरों के मांस भी कर्मों से ता अनेक प्रकार के दुःख पड़ी जानका यहां होंगे इत्यादि होगी और हाक यहां यहां बिकर रहेंगे और कर्मधरों की बुद्धि में भी होगी । यह क्या कहना इनके बहिरत की प्रत्यक्ष कि वह धरमेश्वर न भी बरकर दीखती है !!! और जो मद्य मांस पी कर के उन्मत्त होते हैं इत्यादि सबही २ क्षिप्रा और क्षिप्रा भी यहां प्रत्यक्ष रखे चाहिये नहीं तो ऐसे नयेवालों के तिर में समी बहक प्रत्यक्ष होयेंगे । अत्यन्त बहुत ही पुष्पों के बनेह सोने के क्षिप्रा बिछौने बने २ चाहियें अब सुदा कुमारियों को बहिरत में उत्पन्न करता है तभी तो कुमार क्षिप्रा को भी उत्पन्न करता है । मर्यादित कुमारियों का तो विचार जो यहां से उन्मत्तधर हाकर गये हैं उनके साथ सुदा वे क्षिप्रा पर उन सब रहनेवाले क्षिप्रा में भी किन्हीं कुमारियों के साथ विचार न क्षिप्रा ता क्या वे भी उन्हीं उन्मत्तधरों के साथ कुमारिक २ दिने जायंग ? इसकी प्रत्यक्ष कुछ भी न क्षिप्रा यह सुदा में बड़ी भूष क्यों हुए ? यदि बराबर प्रत्यक्ष कर्म सुदागिब क्षिप्रा पक्षियों को पाके बहिरत में रहती हैं तो डीक नहीं हुआ क्योंकि क्षिप्रा से पुष्प का आयु नृप्य बाह्यगुण चाहिये । यह तो सुसहमायी के बहिरत की क्या है और मर्यादित क्षिप्रा अर्थात् धोर के वृक्षों को पक्ष पर भयेंगे ता कर्मका बह भी बाह्यत में होंय ता कर्म भी खलते होंग और यम पानी निवंग इत्यादि दुःख बाह्यत में चाहिये । प्रत्यक्ष का लया प्रत्यक्ष भूरी का कर्म है सभी का नहीं यदि सुदा ही प्रत्यक्ष काय है तो वह भी कुछ का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता ॥ १४३ ॥

१४३—विश्व ब्रह्मा विभक्त रजस्य है उन लोगों को कि बहुत है बीच मर्म उच्छेद के ३ म ० १ मि १८ १ लू २१ १ प्य ३ ३

समी०—यह डीक है ऐसी २ बातों का उपदेष्टा करके बिचर जरब दूध बासियों को सब छ डबाके गल्लू बचाकर बरस्पर कुछ दिखाना और मजहब का भयप्र कबा करके डबाई फैलाने पड़े को कोई बुद्धिमान ईश्वर कभी नहीं मान सकते। जो अति में विरोध बढाने वही सबको बुझावाता होता है ॥ १४२ ॥

१४३—ये मबी ? क्यों हराम करता है उस वस्तु को कि इच्छा किमा है सुरा ने लेने दिये चाहता है तू प्रसन्नता बाँधियों आपसी की और मजहब बना करकेवाला बचाव है ॥ जल्दी है माझिक उसका जो वह तुमको झोक दे तो वह कि उसको तुमसे अच्छी मुसलमान और ईमान बाँधिया बाँधिया बरख दे दण्ड करने बाँधिया ठानाः करने बाँधिया भक्ति करने बाँधिया रोजा रखने बाँधिया, पुक देवी हुई और कि देवी हुई ॥ मं ७ । सि २८ । सू ९६ । जा १ । २ ॥

समी०—जबल देकर देकरा चाहिय कि सुरा क्या हुआ मुहम्मद साहेब के कर कर भीतरी और बाहरी सम्बन्ध करनेवाला दुम्न कर ॥ प्रथम आपत पर दो कदाकियाँ हैं एक तो यह कि मुहम्मद साहेब को यहद का शर्कत दिव था । उनकी कई बाँधिया वी उनमें छ एक के कर बीमे में देर लगी तो दूसरियों को प्रसन्न प्रतीत हुआ उनके कहन सुनने के पीछ मुहम्मद साहेब सौमन्ध का मने कि हम न पीछे । दूसरी यह कि उनकी कई बाँधियों में छ एक की बारी थी उसके यहाँ रात्रि को गले तो यह न थी अपने बाप के यहाँ गई थी । मुहम्मद साहेब ने एक बीबी धर्मात् दासी को बुलाकर पकित किया जब बीबी को इसकी प्रवर मित्री तो प्रसन्न होगी । तब मुहम्मद साहेब ने सौमन्ध लाई कि मैं देता न कर पा । और बीबी से भी कह दिया कि तुम किसी से यह बात मत कहना । बीबी ने स्वीकार किया कि न कहूंगी । फिर उन्होंने दूसरी बीबी से का कहा । इस पर वह आपत सुरा ने उतारी 'बिच वस्तु को हमने लेने पर इच्छा किमा उसको तू हराम क्यों करता है' ? बुद्धिमान लोग विचारें कि यका कहीं सुरा भी किसी के घर का बिलेय करता फिरता है ? और मुहम्मद साहेब के तो घरपर यह बारी से प्रगट हो है क्योंकि जो अनेक बियों को अपने यह ईश्वर का भक्त का पालन कैसे हो सके ? और जो एक की का पक्षपात से अपमान कर और दूसरी का मान्य कर वह पक्षपाती होकर अचर्या क्यों नहीं ? और जो बहुत ही बियों से भी सम्पुष्ट न होकर बाँधियों के साथ कभी उनको जमा भव और घने कहीं से रहे ? किसी ने क्या है कि—

कामालुराया न भय न लज्जा ॥

का कभी मनुष्य है उसको अथर्म से भय का कज्य नहीं होती और इनका सुरा भी मुहम्मद साहेब की बियों और पैगम्बर के भगाने का फैलावा करने में मानो प्रपन्न क्या है । अब बुद्धिमान लोग विचारें कि वह कुलम विद्वान् का ईश्वरकृत है का किसी अविद्वान् मतवादीका का कल्पना ? लख विदित हो कायम और दूसरी आपत से प्रतीत होता है कि मुहम्मद साहेब छ उनकी कई बीबी प्रसन्न होगी होगी अब पर सुरा ने वह आपत उतार कर उसको बमकन्य होगी

कि यदि तु मन्त्रण करेमी और मुहम्मद साहेब तुम्हें बोध देंगे तो उनको उनका लुरा तुम्ह से अच्छी बीकिया देगा कि जो पुरुष से न मिळी हों । जिस मनुष्य को तमिळ्सी बुद्धि है वह विचार से सकता है कि वे लुरा लुरा के कम हैं वा अपने प्रभाव सिद्धि के । ऐसी २ बातों से ठीक सिद्ध है कि लुरा कोई नहीं कहता था । कबल देल कबल देखकर अपने प्रभाव के सिद्ध होने के लिये लुरा की तर्क से मुहम्मद साहेब कह देत थे । जो लोग लुरा ही की तर्क कापते हैं उनको हम क्या सब बुद्धिमान् नहीं कहेंगे कि लुरा क्या उह्रा मना मुहम्मद साहेब के लिये बीकिया अपने कबल बाई उह्रा ॥ १४३ ॥

१४४—हे मनी ! क्याहा कर काठिरों और गुप्त मनुष्यों से और सखी कर कर उनसे ॥ मं ० । सि २५ । सू ६६ । आ ६ ॥

समी०—इलिये मुसलमानों के लुरा की बीकिया कबल मल बाई से लकने के लिये पैगम्बर और मुसलमानों को उकसाता है इसलिये मुसलमान बाबा उकसाव करने में प्रवृत्त रहते हैं । परमात्मा मुसलमानों पर कुप्रवृत्ति करे जिससे वे बाबा उकसाव करना जोड़ के सब से मित्रता से हों ॥ १४४ ॥

१४५—कल ज्ञानका प्राप्तमान कल वह उस दिव मुक्त होय ॥ और करिते होय कर किनारी उनके के और उकसे लल मासिक ले के क कर अपने उस दिव काज जन ॥ उस दिव सामने बाये बाजोय तुम न क्षिपी रहगी कोई कल क्षिपी हुई ॥ कल जो कोई दिवा गया कर्मपत्र अपया बीच बाहिने हाव अपने के कल कहय जो पक्ष कर्मपत्र मेरा ॥ और जो कोई दिवा गया कर्मपत्र बीच बाये हाव अपने के कल कहय हाव न दिवा गया होता मैं ॥ कर्मपत्र अपया ॥ मं ० । सि २६ । सू ६६ । आ १६-१७ । १५ ॥

समी०—कह क्या किताबतही और न्याय की बात है ! मला काकय भी कमी का सकता है ? क्या वह कल के समान है जो का जाने ? यदि ऊपर के काक का प्राप्तमान कल है तो वह कल विद्या के विरुद्ध है । कल कुरान का लुरा शरीरधारी होने में कुछ सम्मिलन न रह्य, क्योंकि लल पर वेदय । कल कहारी से उकसाय किन मूर्खिमान् के कुछ भी नहीं हो सकता । और समने का पीर भी काय जाय मूर्खिमान् हो का हो सकता है । जब वह मूर्खिमान् है तो एकदली होने से सर्वज्ञ सर्वज्ञापक, सर्वविद्वान् नहीं हो सकता और सब जीवों के सब कर्मों को कमी नहीं जान सकता । वह बड़े माकर्म की बात कि पुरुष मायों के बाइने हाव में पत्र गुना कलकाय विदित में भेजय और पत्रपत्रों के बाये हाव में कर्मपत्र का गुण नरक में भेजय कर्मपत्र बीच के न्याय करना मला वह व्यवहार कल का हो सकता है ? कदापि नहीं वह सब बीकिया कलकपत्र की है ॥ १४५ ॥

१४६—कल है करिते और कल तर्क उसकी वह काजय होय बीच उस दिव के कि है परिमाय उसका पचाय इजल नई ॥ कल निष्कषेय करों में क

बोवते हुए मगधों कि वह बुतों के खाली की ओर बोवत हैं ॥ मं ७ । सि १३ ।
 पृ ७ । पा ४ । १३ ॥

स्मृती०—यदि पचास हजार वर्ष दिए का परिमाण है तो पचास हजार वर्ष की रात्रि क्यों नहीं ? यदि उतनी नहीं रात्रि नहीं है तो उतना क्या दिन कमी नहीं हो सकता क्या पचास हजार वर्षों तक लुहा फेरिते और कर्मपत्र बांधे करते हैं बैठे अथवा खान्ते ही रहेंगे ? यदि ऐसा है तो सब रोपी होकर पुनः मर ही जाएंगे । क्या कर्मों से निकल कर लुहा की कचहरी की ओर चले जाएंगे ? उनके पास सम्मान कर्मों में क्योंकर पावेंगे ? और अब विचारों को जो कि पुनरावृत्ति या पापवृत्ति है इतने समय तक सभी को कर्मों में और सुपुर्ब क्यों रखे ? और आज का लुहा की कचहरी कम होगी और लुहा तथा फेरिते निकले कैसे होंगे ? अथवा क्या कम करते होंगे ? अपने २ खालों में बैठे हुए ऊपर बूमते सोते नाच तमाशा देखते या देव आराधन करते होंगे । ऐसा कालेर किसी के राज्य में न होय, ऐसी २ बातों को विचार लक्ष्मियों के बीच दूसरा माने ॥ १४६ ॥

१४७—विचार उत्पन्न किया तुमको कर्त्त प्रकर से ॥ क्या नहीं कहा तुमने कैस उत्पन्न किया अज्ञान से सत्य आसमाओं को ऊपर लखे ॥ और किया चांद को उसके प्रकाशक और किया सूर्य को दीपक ॥ मं ७ । सि १३ । पृ १ ।
 पा १४-१६ ॥

स्मृती —यदि बीनों को लुहा ने उत्पन्न किया है तो वे भिन्न ऊपर कमी नहीं रह सकते ? फिर यहिल्ल में लुहा क्योंकर रह सकते ? जो उत्पन्न होता है वह कुछ ऊपरन नष्ट हो जाता है । आसमाओं को ऊपर लखे कैसे क्या सकता है ? क्योंकि वह निराकार और निरु पदार्थ है यदि दूसरी बीच का काम आत्मक रहते हो तो भी उत्पन्न आत्मक काम रहना जरूर है यदि ऊपर लखे आसमाओं को बनाया है तो अब सब के बीच में चांद सूर्य कमी नहीं रह सकते । जो बीच में रहना जान तो एक ऊपर और एक नीचे का पदार्थ प्रदर्शित है दूसरे से ऊपर सब में आत्मकर रहना चाहिये ऐसा नहीं दीकत इच्छिये वह बात सर्वथा निम्ना है ॥ १४७ ॥

१४८ - यह कि मरिचों करते अज्ञान के हैं बस मत पुकारो सत्य अज्ञान के किसी को ॥ मं ७ । सि १३ । पृ ७२ । पा १८ ॥

स्मृती०—यदि यह बात सत्य है तो सुखसमाज लोग 'बादका इच्छिया सुहम्भरार्थका' इस कथने में लुहा के छापी सुहम्भर साहेब को क्यों पुकारते हैं ? यह बात कुरान से निकल है और जो निकल नहीं करते तो इस कुरान की बात को फूट करते हैं । अब मरिचों लुहा के कर हैं तो सुखसमाज महाद्वेषण हुए, क्योंकि जैसे पुरानी जैसी छोटीसी मूर्ति को ईश्वर का पर मानने से कुत्तरण करते हैं तो वे क्यों क्यों नहीं ? ॥ १४८ ॥

१४९—इच्छा किया अनेक सूर्य और चांद ॥ मं ७ । सि १३ ।
 पृ ७२ । पा ४ ॥

समी०—महा सूर्य की कमी इच्छा हो सकती है ? देखिये वह किसी
वेतमन की बात है । और सूर्य चन्द्र ही के इच्छा करने में क्या प्रयोजन का
प्राप्त सब कामों को इच्छा करवाने में क्या पुक्ति है ? ऐसी २ असम्भव बातें
परमेश्वर की कमी हो सकती हैं ? विषय अभिप्रायों के प्राप्ति किसी विद्वान् को भी
नहीं होती ॥ १४६ ॥

१२ — और फिर ऊपर उनके सबके साथ रहनेवाले सब दशात्मा तू उनके
अनुसार करण तू उनको मोटी बिछाई हुए ॥ और पहला सब आर्षों के समान बाँधी
के और बिछावेगा उनको सब उनके द्वारा प्रेषित ॥ मं ० । सि २६ ।
मृ ०६ । अ १६ । २१ ॥

समी०—स्वामी माता के कार्य से सबके किन्हीं वहाँ लगे जाते हैं ? क्या
किसी काम साथ का कोसल उनका लुप्त नहीं कर सकती ? क्या प्राप्ति है किन्हीं सब
महा बुद्धि के सबके के साथ बुद्धिमान करते हैं उसका सब कभी कुरान का वचन
हो । और बहिरत में स्वामी संकल्पमान होने से स्वामी को प्राप्ति और केवल को
परिग्रह होने से बुद्धि तथा पक्षपात क्यों है ? और जब लुप्त ही सब बिछावेगा
ता वह भी उनका सबका सब दशात्मा फिर लुप्त की वहाइ क्योंकर रह सकती ? और
वहाँ बहिरत में ली पुनः का समग्रता और सम्पत्ति और सबके साथ भी होते हैं
का क्यों ? यदि वही बात तो उनका निष्पक्षता करण प्रार्थ बुद्धि और जा हल्ले
है तो वे जीव क्यों से जाते ? और किन्हीं लुप्त की लुप्त के बहिरत में क्यों जन्मे ?
यदि जन्मे तो उनके किन्हीं ईमान जाने और लुप्त की भक्ति करण से बहिरत
मुक्त मित्र तथा किन्हीं किन्हीं को ईमान जाने और किन्हीं को विना धर्म के
मुक्त मित्र जाव इससे बुद्धि वहा जन्माप कीलता हाथ ? ॥ १२ ॥

१२१ — वरदा विषयार्थ का अनुसार ॥ और लुप्त है मर हुए ॥ जिस दिन
वही हों सब और क्रिस्तो सब बाँधकर ॥ मं ० । सि ३ । मृ ०८ ।
अ २६ । २० । ३८ ॥

समी०—यदि कर्मानुसार सब विषय जाव ता सब बहिरत में रहनेवाले
हैं क्रिस्तो और माता के द्वारा सबको को बीच कर के अनुसार सब के लिये
बहिरत मित्रा ? जब लुप्त मर २ शब्द विनियोग तो मर हाकर क्यों न लगे ?
कह नाम वहाँ एक क्रिस्तो का है जा सब क्रिस्तों से वहा है । क्या लुप्त सब
तथा अन्य क्रिस्तों को पक्षपात करे कर के पक्षपात बाँधेगा ? क्या पक्षपात से सब
जीवों को सदा विहायेगा ? और लुप्त उस समय लुप्त होगी या वैद्य ? यदि
अपमान सब लुप्त अपनी सब पक्षपात एकत्र करके ईमान को लुप्त से ता उनका
एक निष्पक्षता हो जाव इसका नाम लुप्त है ॥ १२१ ॥

१२२—जब कि लुप्त करेया जावे ॥ और जब कि लुप्त लुप्त हा जावे ॥
और जबकि पक्षपात बाँधे जाव ॥ और जब अपमान की लुप्त उधारी जावे ॥
मं ० । सि ३ । मृ ०१ । अ १-३ । ११ ॥

समी०—वह वही अन्तमय की बात है कि लुप्त लुप्त करेया जावेया ?
और लुप्त लुप्त लुप्त हा सकते ? और पक्षपात लुप्त होने से लुप्त लुप्त ? और

आत्मन को क्या पट्ट समझ कि उसकी छात्र निम्नही आवेगी ? यह बड़ी ही वसमय और आश्चर्य की बात है ॥ १२९ ॥

१२९—और जब कि आश्चर्य कर जाये ॥ और जब तारे यह आवें ॥ और जब हवा चोरे आवें ॥ और जब हवा चोरे आवें ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । अ १-४ ॥

समी०—आश्चर्य कुरान के बनावेवाले फिदासफर ! आत्मन को क्योंकर यह समझ ? और क्यों को कैसे यह समझ ? और क्यों क्या ज्ञानी है जो और समझ ? और क्यों क्या मुझे है जो सिखा समझ ? वे सब बात सबको के समझ है ॥ १२९ ॥

१२९—इसमें है आश्चर्य कुरान की ॥ किन्तु यह कुरान है बड़ा ॥ और जोह महकुर (रहा) के ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । अ १।२।३२ ॥

समी०—इस कुरान के बनावेवाले ने मूषोह कयेवा कुछ भी नहीं पढ़ा था नहीं तो आत्मन को किये के समझ कुरान का क्या नहीं समझता ? यदि मेवादि राशिवाँ के कुरान समझ है तो आत्मन कुरान नहीं ? इसलिये ने कुरान नहीं है किन्तु सब तारे कोह है । क्या यह कुरान कुरान के पास है ? यदि यह कुरान उल्लभ किन्तु है तो यह भी किन्तु और बुद्धि से बिना अविश्व से अधिक मरा होवा ॥ १२९ ॥

१२९—किन्तु ने मकर करते हैं एक मकर ॥ और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । अ १२-१६ ॥

समी०—मकर करते हैं आपन को क्या कुरान भी उम है ? और क्या चोरी का ज्ञान चोरी और मूह का ज्ञान मूह है ? क्या कोई चोर मने आत्मन के घर में चोरी करे तो क्या मने आत्मन को अविश्व कि उसके घर में आवे चोरी करे ? यह ! बहानी ॥ कुरान के बनावेवाले ॥ १२९ ॥

१२९—और जब आत्मन माकिन तो और करिसे पंक्ति बांधने ॥ और आत्मा ज्ञानेव उस विष बांधक के ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । अ २२ २३ ॥

समी०—क्यों की कैसे कोटयावाजी सेनात्मक अपनी सत्य को लेकर पंक्ति बांध फिर कर कैसे ही इतना सुझा है ? क्या बांधक को बनावेवा समझ है कि जिसने उम के जहाँ आवे वहाँ कोटने ? यदि इतना कोट है तो अस्मन केरी उसमें कैसे भना धर्म ? ॥ १२९ ॥

१२९—यस कहा था बांध उनके पाम्बर सुझ के ने रवा करो अंदरी सुझ की मे और पानी पिशाचा उसके को ॥ यह सुझावा उसको यह पान करे उसके यह मरी बांधी ऊपर उनके रण उनके ने ॥ मं ० । सि ३ । सू ८१ । अ १६-१७ ॥

समी०—क्या सुझ भी अंदरी पर यह के लिए किन्तु करता है ? नहीं तो किसलिये रानी और बिना आत्मन के अपनी विषय सोझ उम पर मरी रोग नहीं बांधा ? यदि बांध तो उनके इतना किन्तु फिर आत्मन की रात में ज्ञान और

उस रात का होना मूढ़ समझा जायेगा। इसी उल्टी के जेब से वह अनुमन होता है कि घरबंदी में उल्टी के सिवाय दूसरी धमकी कम होती है। इससे सिद्ध होता है कि किसी घरबंदी ने कुल नवाया है ॥ १२० ॥

१२०—यों जो न बनें जलकर बसोंगे उसको हम समझाओं मने के ॥ यह माना कि मूढ़ है और अपराधी ॥ हम बुद्धिमान करिख बाज्र के को ॥ मं ०। सि ३। सू ६६। पा १२—१६। १८ ॥

समी०—इस बीच अपराधियों के काम फटने से भी सुरा न बच। मन्ना माना भी कभी मूढ़ है और अपराधी हो सकता है। सिवाय जीव के, मन्ना यह कभी सुरा हो सकता है कि जैसे जेबकावे के दरोया को बुद्धिमान मेने ? ॥ १२८ ॥

१२१—मिशन उल्टा हमने कुल को बीच रात जल के ॥ और नवा जाने लू नवा है रात जल ॥ कतरने हैं करिख और पकिश्या बीच उसके साथ आजा म्यकि अपने के बसो हर काम के ॥ मं ०। सि ३। सू ६०। पा १—२। ४ ॥

समी०—यदि एक ही रात में कुल उल्टा तो वह आवाज भर्खा उस समय उल्टी और जोड़े २ कतरा वह बात सम क्योंकर हो सकेगी ? और यदि कन्धेरी है इसमें क्या पूछा है हम बिना जाने हैं कपर बीचे कुछ भी नहीं हो सकता और यहां बिच्छे हैं कि करिख और पकिश्या सुरा के बुझ से संभर का प्रकल्प करने के बिचे जाते हैं इससे स्पष्ट हुआ कि सुरा मनुष्य एक-देरी है। अतएव देखा था कि सुरा करिख और पकिश्या बीच की क्या है अब एक पकिश्या बीच बिच्छ पका। अब न जाने वह बीच पकिश्या क्या है ? यह तो ईश्वरी के मत भर्खा पिया पुत्र और पकिश्या बीच के मानने से बीच भी बह गया। यदि कहो कि हम इन तीनों को सुरा नहीं मानते ऐसा भी हो परन्तु अब पकिश्या पुष्प है तो सुरा करिख और पकिश्या को पकिश्या कहा जायेंगे या नहीं ? यदि पकिश्या हैं तो एक ही का नाम पकिश्या क्यों ? और जोड़े यदि आकर रात दिन और कुल आवि की सुरा ज्यों काय है। इसमें क्या मने खोमी का काम नहीं ॥ १२६ ॥

अब इस कुल के बिच को बिच्छे बुद्धिमानों के समुच्च स्थापित करता है कि यह पुष्पक कैसा है ? मुझे पता तो वह बिच्छ न बिच्छ की बगई और न बिच्छ की हो सकती है। यह तो बहुत बोझाता दोष प्रकट किया इच्छिने कि अन्य बांधों में पड़कर अपना काम ज्वर न मारा। जो कुछ इसमें भावता सम है वह वेदवि विद्यापुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको प्यार है जैसे मान भी मजहब के हक और वक्तावहित विज्ञानों और बुद्धिमानों को प्यार है। इसके बिना जो कुछ इसमें है वह अब बबिच भ्रमबाध और मनुष्य के बाप्य को पठाय पकाकर सांतिमक करके उपद्रव मन्ना मनुष्यों में बिद्रोह किया परस्पर दुःखवति करेयका बिच्छ है। और पुनरुक्त दोष का तो कुल आवि भयकर ही है। परमात्मा अब मनुष्यों पर कृपा कर कि सब स अब प्रीति, परस्पर मेघ

धन्यमय ॥ क्या यह समझ कि उसकी काह निकली बागेरी ? यह वही ही बेसमझ और जड़धीन्य की बात है ॥ १२२ ॥

१२३—और जब कि आसमान यह जावे ॥ और जब तारे यह जावें ॥ और जब हवा चोरे जावें ॥ और जब ज्वरें जिह्वा कर उमार् जावें ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । पद्य १-४ ॥

समी०—यहनी कुराव के बनावेबाबे फिदासकर ! आनन्द को नवीन्य यह सकेय ? और तारी को कैसे यह सकेय ? और हवा तथा जड़की है जो और बायेय ? और ज्वरें तथा मुहें है जो जिह्वा सकेय ? वे सब बात जड़कों के सत्य है ॥ १२३ ॥

१२४—इसमें है आसमान दुर्गो बाको की ॥ किन्तु यह कुराव है वहा ॥ बीच बोह मरुज्ज (रघु) के ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । पद्य १११ १२४ ॥

समी०—इस कुराव के बनावेबाबे वे मृगोह कगोह कुछ भी वही पहा वा वही तो आनन्द को जिह्वा के अमान दुर्गो बाका नवीन्य कस्य ? यदि मेवहि एमिनी को दुर्ग कस्य है तो धन्य दुर्ग नवीन्य ? इसलिये वे दुर्ग वही है किन्तु सब तारे कोह है । क्या यह कुराव कुरा के पास है ? यदि यह कुराव असम्भ किना है तो यह भी किन्तु और बुद्धि से विरह बाकिय वे अधिक मर होमा ॥ १२४ ॥

१२५—किन्तु वे मकर करते हैं एक मकर ॥ और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । पद्य १२-१६ ॥

समी०—मकर कहते हैं अगव को क्या कुरा भी का है ? और क्या चोरी का अगव चोरी और फूट का अगव फूट है ? क्या कोई चोर मके आदमी के घर में चोरी करे तो क्या मके आदमी को चाहिये कि उसके घर में जाने चोरी करे ? यह ! यहनी ॥ कुराव के बनावेबाबे ॥ १२५ ॥

१२६—और जब आनन्द मासिक लेय और करिस्ते पंक्ति बांके ॥ और कस्या बायेय उस दिन होजाय को ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । पद्य ११ १२ ॥

समी०—क्यों की जैसे कोट्याबाजी सेवामन्य अपनी सेवा को केन्द्र पंक्ति बांके बिना करे कैय ही इन्क कुरा है ? क्या होजाय को कस्या समझ है कि जिह्वाके उम के उमारे वही केकले ? यदि इतय बोय है तो असम्भ कैरी उसमें कैसे समझ सके ? ॥ १२६ ॥

१२७—यस कहा था बाते उनके पैमान कुरा के वे रघु करो डंडनी कुरा की ओ और पानी फिदाय उसको को ॥ क्या मुम्माया उसको यस पंथ करे उसके यह मरी बाकी कपूर उनके रन उनके ने ॥ मं ० । सि ३ । सू ४१ । पद्य १३-१४ ॥

समी०—क्या कुरा भी डंडनी पर यह के रीक किना करय है ? कहीं तो फिदायिने रन्धी और किना अमान्य के अगवा किन्तु तोह अब घर मरी रोम नवी बाका ? यदि बाका तो उनका वच किन्तु फिर अमान्य की रात में न्यान और

इस रात का होना मूढ़ समझ जायेगा। इसी जंजीर के खेज से वह कतुमार
हवा है कि धरम देव में जंजीर के शिष्य बूझरी सपारी कम होती है। इससे
सिद्ध होता है कि किसी धरम देवी ने कुरल बनाया है ॥ १२० ॥

१२८—मैं जो य कहता अवरण मसीहिंगे उच्छब्दो हम साधकबो मने के ॥
 यह मना कि मूय है और अपराधी ॥ हम बुझावते करिख दोऊन के ॥
 मं ॥ मि ३ । सु ४३ । पं १२-१३ । १५ ॥

सम्राट—इस बीच आपराधियों के काम बसिये व भी तुला व कच। मछा
माच भी कमी सूझ है और आपराधी हो सक्ता है ? सिवाय भी व, मछा व
कमी तुला हो सक्ता है कि पीछे जेबकाने के दरांग को दुबला मने ? ॥ १२८ ॥

१२१—विष्णु उवाच हमने कुराव को बीच एवं ऊपर के ॥ और क्या अपने
 पृथ्वी के एवं ऊपर ॥ उठते हैं ऊपरिसे और परिश्रमा बीच उद्यम एवं
 मन्त्रिक अपने के वासो हर काम के ॥ मं ७ । सि १ । पृ १७ ।
 अ १—१ । ४ ॥

सूत्री—यदि एक ही रात में कुम्हार उठकर तो वह चम्पक प्रसन्न
उठ प्रसन्न उठती और पीरे २ उठकर वह बात समझ ल्योंकर हो सही ? और
यदि चम्पकी है इसमें क्या प्रश्न है हम जिस माने हैं कपूर बीजे कुछ भी नहीं
हो चम्पक और यहाँ जिसमें है कि करिखे और परिश्रम्य सुरा क हुनम स
संसार स प्रसन्न करने के लिये बात है इसमें स्पष्ट हुआ कि सुरा मनुष्य एक
ही है । चम्पक देखा था कि सुरा करिख और शिखर तीन की कथा है सब
एक परिश्रम्य बीज विकसत रहा ! सब स मान वह चौथा परिश्रम्य क्या है ?
पर हो ईश्वरी के मत प्रमाण पितृ पुत्र और परिश्रम्य तीन के मानने स चौथा
की वह क्या । यदि कहा कि हम इन तीनों को सुरा नहीं मानते देखा भी हो
प्रमाण सब परिश्रम्य हुआ है तो सुरा करिखे और शिखर के परिश्रम्य कथन
करिखे स नहीं ? यदि परिश्रम्य है तो एक ही स मान परिश्रम्य ल्यों ? और
यदि यदि प्रमाण एक दिन और कुम्हार जाहि को सुरा प्रमाण माने है । प्रमाण
कथन मने सभी स कथन नहीं है १२६ ॥

यह इस कृत्य के विषय का विवेक। बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता है कि यह उत्तर वैसा ही। मुख्यतः पूर्णता का यह विचार न विज्ञान की वस्तु और न विवेक की हो सकती है। यह का बहुत धावासा दोष 'अज्ञ' किता दृष्टिकोण कि ज्ञान ज्ञान के लक्षण अथवा ज्ञान व्यर्थ न समझें। या कुछ इसमें वास्तव ज्ञान है यह देखने विज्ञानवादी के अनुकूल होने से जैसे मुख्यतः प्रत्यक्ष है जैसे ज्ञान की वास्तव के इस और प्रत्यक्षतादित विज्ञानों और बुद्धिमानों को प्रत्यक्ष है। इसके अर्थ का कुछ इसमें है यह ज्ञान अविद्या अज्ञान का और मनुष्य के प्रत्यक्ष को ज्ञान प्रत्यक्ष अविद्या का उद्भव मध्य मनुष्यों में विद्वेह किता पराजित दुःखार्थ अविद्या का विवेक है। और पुनः दोष का का कृत्य ज्ञानो यथार्थ हो है। वास्तव ज्ञान मनुष्यों पर कृत्य का कि ज्ञान का ज्ञान अविद्या, अज्ञान में

आकाश को क्या पशु समझ कि उसकी बाह निकली जायेगी ? वह बड़ी ही संसमझ और ज्ञानीपन की बात है ॥ १२२ ॥

१२३—और जब कि आसमान पट जाय ॥ और जब तारे मग जायें ॥ और जब वर्षा और जलें ॥ और जब ऊपरें जिला कर उमार् जायें ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । पृ १-४ ॥

समी०—बहनी कुत्तल के बगानेवाले फिसलतपर । आकाश को लोभ्य पक्ष छोड़ें ? और तारों को कैसे मग सके ? और वर्षा क्या छोड़ो है जो और उमारे ? और ऊपरें क्या मुर्छे हैं जो जिला सकें ? वे सब बात सबको के सत्य हैं ॥ १२३ ॥

१२४—अपन है आसमान तुजों बाहो की ॥ किन्तु वह कुत्तल है बड़ा ॥ बीच छोड़ महकत (रवा) के ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । पृ १११ २२ ॥

समी०—इस कुत्तल के बगानेवाले ने मूकोड़ छोड़ कुत्तल भी नहीं पहा ना नहीं तो आकाश को जिसे के समान तुजों बाहो लोभ्य कइता ? यदि मेहनत राखियों को तुजें कइता है तो अपन तुजें लोभ्य नहीं ? इसलिये वे तुजें नहीं हैं किन्तु सब तारे लोभ्य हैं । क्या वह कुत्तल तुझ के पास है ? यदि वह कुत्तल इसका किया है तो वह भी लिय और तुम्हें से बिकर अधिक हो जाय ॥ १२४ ॥

१२५—मिलन व मकर करते हैं एक मकर ॥ और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर ॥ मं ० । सि ३ । सू ८२ । पृ १२-१३ ॥

समी०—मकर करते हैं आपन को क्या तुझ भी कर है ? और क्या चोरी कर जइय चोरी और मूक का बगान मूक है ? क्या कोई चोर यसे आदमी के घर में चोरी करे तो क्या भले आदमी को चाहिये कि उसके घर में जाके चोरी करे ? बाह ! बहनी ॥ कुत्तल व बगानेवाले ॥ १२५ ॥

१२६—और जब आयेगा मासिक ठेरा और करिये पंक्ति बांधके ॥ और बाधा जकेय उच दिव होतक को ॥ मं ० । सि ३ । सू ८३ । पृ २२ २३ ॥

समी०—कहो जी तैले कोट्याकजी लनाजक अपनी सेवा कर सेवर पंक्ति बांध फिर करे किसे ही इन्कम तुझ है ? क्या होतक को बहादा समझ है कि जिसको उम के उहाँ चाहें वहाँ छोड़ने ? यदि इतना छोड़ है तो असंभव कैरी उक्तमें कैसे समा सकेंगे ? ॥ १२६ ॥

१२ —बस कहा था कहते उनके पैगम्बर तुझ के मे रच करे उरनी तुझ की व और पानी पिछाया उसके को ॥ बस सुझाया उसको बस पंथ करते उसके बस मरी बाधी ऊपर उनके हक उमारे वे ॥ मं ० । सि ३ । सू ४१ । पृ १३—१४ ॥

समी०—क्या तुझ भी उरनी पर बस व मिला किया करता है ? नहीं तो बिछलिये रानी और विना अन्धमन के अपना बिकस लोक उच पर मरी राग लो बाधा । यदि बाधा था उनके हक किया फिर अन्धमन को रात में म्यान और

इसके मित्रा वरुणा दिव्यनि घसे) इत्यादि में जो कि दण्ड याद में लिखा है वैसे-
इसमें (अस्माकां धीर इत्ये) धरणी धीर (मित्रा वरुणा दिव्यनि घसे) यह
संस्कृत यह लिखे हैं वैसे ही सर्वत्र देखने में आने से किसी संस्कृत धीर धरणी के
परे हुए ने बनाई है । यदि इसका अर्थ देखा जाता है तो यह कृत्रिम अथवा बेद धीर
आभरण रीति से बिरुद्ध है । वैसे यह उपनिषद् बनाई है वही बहुतसी उपनिषद्
मठमठान्तरवाले पक्षपातियों ने बनायी है वैसे कि कलापनिषद्, नृसिंहतापनी
रामदासनी योगसूत्रतापनी बहुत सी बनायी है ॥

प्र०—आज तक किसी ने ऐसा नहीं कहा जब तुम कहते हो हम तुम्हारी
कत कैसे माँगे ?

उ०—तुम्हारे मागने का न मानने से हमारी बात मूढ़ नहीं हो सकती है
जिस प्रकार से मैंने इसको अथवा कहा है उसी प्रकार से जब तुम अपरिचित
योग का इसकी छायाओं से प्राचीन लिखित पुस्तकों में वैसे का वैसे कुछ
लिखाया हो धीर अर्थसंगति से भी शुद्ध करो तब तो सम्मत्त हो सकती है ॥

प्र०—देखो हमारा मत क्या अच्छा है कि जिसमें सब प्रकार का सुख और
अन्य में मुक्ति होती है ॥

उ०—ऐसे ही अपने १ मत वाले सब कहते हैं कि हमारा ही मत अच्छा
है बाकी सब बुरे । किन्तु हमारे मत के दूसरे मत में मुक्ति नहीं हो सकती । जब
हम तुम्हारी कत को सही मानें या ठीकी ? हम तो नहीं मानते हैं कि सत्य-
मात्र ही सत्य, दण्ड ही दण्ड, गुण ही गुण सब मनों में अच्छा है बाकी धरुविचार
इत्यादि देव, मिथ्यामत्तव्यादि, कर्म सब मनों में बुरे हैं । यदि तुमको सत्यमत सत्य
की इच्छा हो तो वैदिकमत को ग्रहण करो ॥

इसके आगे सम्मत्तव्याप्तमत्तव्य का प्रकाश संक्षेप से लिखा आया ॥
इति धर्मसूत्रानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मित सत्यार्थप्रकाश सुभाषणविभूषित
पञ्चममहाविषय चतुर्थः समुद्रासः सम्पूर्णः ॥ १५ ॥

अथैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
 न्याय्यात्पयः प्रविशन्मिति पयः न भीरुः ॥१॥ भव इति ॥
 न जातु कमाश मयाद्य जोमातु
 धर्मं त्यजेत्प्रीतिरस्यापि हेतोः ।
 धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वमित्ये,
 जीवो नित्यो हेतुरस्यत्वमित्य ॥ २ ॥ महामते ॥
 एक एव सुखधर्मो निधनव्यनुयाति यः ।
 शरीरेण समं नारां सर्वमप्यसि गच्छति ॥ ३ ॥ मनु ॥

सत्यमेव जयत नानृतं सत्येन फल्गु विततो देवयानः ।
 येनाहमस्त्यपयो ह्यासकस्मा यव तस्तत्पस्य परमं विधानम् ॥ ४ ॥
 नहि सत्यात्परो धर्मा नानुतात्पातकं परम् ।

नहि सत्यात्परे ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाखरत् ॥ ५ ॥ उ मि ॥

इन्हीं महाशक्तों के शक्तियों के समीप के अनुकूल सब को मित्र बनाना चाहिये । सब में जिस २ पक्षों को जैसा २ मायता हूँ उन २ का सर्वत्र संबंध स्थापित करता हूँ कि जिसका विशेष व्याख्यान इस प्रश्न में आपने २ प्रकरण में कर दिया है इसमें से—

१—प्रथम 'ईश्वर' कि जिसके अनेक परमात्म्यादि नाम हैं जो सच्चिदानन्द्यादि लक्षणयुक्त हैं जिसके गुण कर्म स्वभाव पवित्र हैं जो सर्वज्ञ, विशाल सर्वव्यापक प्रज्ञा, अमल सर्वशक्तिमान्, ब्रह्मात्मा व्यापकारी सब सृष्टि का कर्ता, बर्ता हर्ता, सब जीवों के कर्मानुसार सब व्याप से फलदाता आदि लक्षणयुक्त हैं उसी को परमेश्वर मानता हूँ ॥

२—द्वितीय 'देवों' (जिसे धर्मयुक्त ईश्वरमूर्ति कहिता मान्यमान) को विशेषतः स्वयं प्रमाण मायता हूँ वे स्वयं प्रमाणक हैं कि जिस के प्रमाण होने में किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं । जैसे सूर्य का प्रदीप अपने स्वयं से स्वयं प्रमाण और बुद्धिआदि के भी प्रमाणक होते हैं ऐसे चारों देव हैं और चारों देवों के प्रमाण का प्रमाण का उपपन्न बात उपर्युक्त और ११२० (ग्याहसी सचाईस) देवों की याचना को कि देवों के व्याख्यानक प्रमाणों महर्षियों के बचने प्रमाण हैं उनके परमा प्रमाण धर्मों देवों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो हममें वर किन्तु वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ ॥

३—जो पक्षपातहित न्यायवाचक समभाववादि युक्त ईश्वरदेवों से प्रविष्ट है उसको "धर्म" और जो पक्षपातहित अन्धभाववादि मिथ्याभाव्यादि ईश्वरार्थव्यतिरेक है उसको "अधर्म" मानता हूँ ॥

४—जो इच्छा, श्रेय सुख, दुःख और शान्ति गुणयुक्त अवस्था जिस है उसी को "जीव" मानता हूँ ॥

५—जीव और ईश्वर स्वयं और विषय से मित्र और व्यापक व्यापक और सार्वभौम से समित्त हैं अर्थात् जैसे व्यापक से मूर्तिमान् रूप कहीं मित्र न था न

॥ ओम् ॥

[illegible]

अथैष वा मरुत्समस्तु युगान्तरं वा,
 न्याय्यात्पथं प्रविशन्नस्ति पदं न धीरा ॥ १ ॥ मरुद्भिरि ॥
 न खलु कामाक्ष मयाच लोभाद्,
 धर्मो त्यजेत्कीर्तिरस्यापि हेतोः ।
 धर्मो नित्यं सुखबुद्धौ त्वमित्ये,
 जीवो नित्यो हेतुस्तत्त्वमित्य ॥ २ ॥ महाभारते ॥
 एक एव सुहृदयो निधनेष्वनुयाति यः ।
 शरीरं च समं नारा सर्वमन्यदि गच्छति ॥ ३ ॥ मनु ॥

सत्यमेव ज्येष्ठं मानुतं सत्येन पन्था विततो देवयान ।
 येनात्मस्तत्पुपयो ह्यासकस्मा यत्र तत्सत्यस्य परमं विधानम् ॥ ४ ॥
 नहि सत्यात्परो धर्मो मानुतात्पत्तकं परम् ।

नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥ ५ ॥ ३ नि ॥

इन्हीं महाशक्तों के सोयी के समित्य के अनुकूल सब को निज स्वयं
 योग है । इस में जिन १ पद्यों को जैसा १ मानता हूँ इस १ का सर्वत्र संशेप से
 यों करता हूँ कि निजके मिलेव ज्ञानका इस ज्ञान में अपने १ प्रत्यक्ष में कर
 दिया है इसमें दो—

१—पथ “ईश्वर” कि जिसके महा परमेश्वरि नाम है जो सविद्यात्मन्त्रदि
 ब्रह्मबुद्ध है जिसके गुण कई स्वभाव पवित्र हैं जो सर्वत्र निराकार सर्वमपक,
 प्रकृता ज्ञान सर्वशक्तिमान्, दयालु न्यायकारी सब छवि का कर्ता, धर्ता,
 इत्ता सब बीजों के कर्ताबुद्ध सब ज्ञान के प्रकाशता आदि ब्रह्मबुद्ध है उसी
 को जगन्महामुखा हूँ ॥

२—धर्ता “देवी” (विद्या धर्मबुद्ध ईश्वरप्रतीक संहिता मन्त्रमन्त्र) को
 विज्ञान स्वभाव प्रमाण मानता हूँ वे सर्व प्रमाणस्वरूप हैं कि जिन के प्रमाण होने
 में किसी अन्य प्रमाण की जरूरत नहीं । जैसे सूर्य का प्रदीप अपने स्वयं से स्वता
 प्रकाशक और बुद्धिबुद्धि के भी प्रकाशक होते हैं किन्तु धर्ता देव है और धर्ता देवी
 के प्रकाश का प्रकाश का प्रकाश का प्रकाश और १११० (स्वातन्त्र्य सत्यदेव)
 देवी की शक्ति जो कि देवी के ज्ञानप्रकाश प्रकाश मूर्तिबुद्धों के ज्ञान प्रमाण है
 उनके परमा प्रमाण धर्ता देवी के अनुकूल होने का प्रमाण और जो इसमें देव-
 विद्या ब्रह्म है उनका प्रमाण करता हूँ ॥

३—जो पञ्चतन्त्रद्वित न्यायचरक समभाष्यदिबुद्ध ईश्वरदेवी का समित्य
 है उसको “धर्म” और जो पञ्चपातद्वित धर्मन्यायचरक मित्यायपथादि
 ईश्वरानाम देवविद्या है उसको “जगन्म” मानता हूँ ॥

४—जो इष्ट, ज्ञेय सुख, दुःख, और ज्ञानादि गुणबुद्ध स्वयं निज है
 इसी को “जीव” मानता हूँ ॥

५—जीव और ईश्वर स्वयं और ईश्वर से मिल और ज्ञान न्यायक और
 स्वयं से समित्य है धर्ता जैसे प्रकाश का मूर्तिमान् ज्ञान कभी निज का का ॥

है न होग्य और न कभी एक वा न है न होग्य इसी प्रकार परमेवर और जीव को व्याप्य व्यापक उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्धबुद्धि मानता हूँ ॥

१—“अर्थात् पदार्थ” तीव्र है । एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का करण इन्हीं को भिन्न भी कहते हैं जो भिन्न पदार्थ हैं उनसे गुण कर्म, स्वभाव भी भिन्न हैं ॥

२—“प्रत्यक्ष से अर्थात्” जो संयोग से ज्ञान गुण कर्म उत्पन्न होते हैं वे विभोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह स्वमर्थ उनमें अर्थात् है और उससे पुनरपि संयोग होया तथा विभोग भी इन तीनों को प्रत्यक्ष से अर्थात् मानता हूँ ॥

३—“छद्म” उसको कहते हैं जो प्रत्यक्ष ज्ञानों का ज्ञान बुद्धि पूर्वक वेक होकर व्यापक्य बनता ॥

४—“छद्म का प्रयोग” यही है कि जिसमें ईश्वर के छद्मविमिश्र गुण कर्म स्वभाव का उत्पन्न होया । जैसे किसी ने किसी से पूछा कि वेक किसद्विधे हैं ? उसने कहा देखने के द्विधे । कैसे ही छद्म करने के ईश्वर के स्वमर्थ की सप्रत्यक्ष छद्म करने में है और जीवों के कर्मों का वशात् मोम करना आदि भी ॥

१ — “छद्मिच्छात्क” है इसका कर्ता पूर्वोक्त ईश्वर है, क्योंकि छद्म की रचना देखने और पदार्थ में अपने आप वशात् मोम आदि स्वक्य बनने का स्वमर्थ न होने से छद्म का “कर्ता” अन्तर है ॥

११—“कर्म” छद्मविमिश्र अर्थात् अविमिश्र से है । जो १ पाप कर्म ईश्वर निरोपसथा अज्ञानादि सब बुद्धि का करने वाले हैं इसद्विधे यह “कर्म” है कि जिसकी इच्छा नहीं और मोक्षदा प्रकृत है ॥

१२—“मुक्ति” अर्थात् कर्म बुद्धि से कृत्स्न बन्धनहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी छद्म में स्वेच्छा से निष्करण विपद समस्त पर्यन्त मुक्ति के व्यापक को मोम के पुनः संसार में जाना ॥

१३—“मुक्ति के व्यापक” ईश्वरोपासना अर्थात् योगबन्धन वशात् बुद्धि प्रसाधन से निष्पद्यति ज्ञान विज्ञानों का संग प्रकृतिय मुक्तिपर और पुनर्यत् आदि है ॥

१४—“अर्थ” यह है कि जो कर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अर्थ से सिद्ध होता है उसको अर्थ कहते हैं ॥

१५—“अर्थ” यह है कि जो कर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय ॥

१६—“अर्थोपपन्न” गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ ॥

१७—“राज्य” उन्हीं को कहते हैं जो ह्यगुण गुण कर्म स्वभाव से प्रत्यक्षमान पञ्चापरहित व्यापकर्म की सेवा प्रदाता में निरुणत् वसे और उनको पुनर्यत् मान के उनकी उन्नति और गुण वसावे में प्रद्युक्त किया करे ॥

१८—“प्रजा” इसको कहते हैं कि जो पवित्र पुत्र, कर्म स्वर्ग के धारण करने पक्षपात रहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजनिष्ठ रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्ते ॥

१६—जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का प्रवृत्त रहे, सम्पूर्ण व्यक्तियों को हटावे और अत्यन्तव्यक्तियों को बनावे अपने आख्या के समान सब का पुत्र रहे सो “अत्यन्तव्यक्ती” है इसको मैं भी डीक मानता हूँ ।।

१ — “देव विद्याओं को और अविद्याओं को ‘अमृत’ पदार्थों को ‘दुग्ध’ अवाचरिणों को ‘पिप्पल’ भावता है ॥

११—इन्हीं मूर्तियों में से पिता आचार्य चतुर्विध आत्मिकता तथा और बसोझा कर, पतिव्रता की और कीर्ति पति का सम्मान करना “इष्टपूजा” कहती है इसमें विपरीत कार्यपद्धति है। इनकी मूर्तियों को पूज्य और इतर पाश्चात्य मूर्तियों को उन्नत अपूज्य समझता है ॥

२२— 'विषा' शिष्टसे विषय सम्पत्ता धर्मायम्त्या शितम्भ्रिक्यादि की बढ़ती है और अनियमिदि होकर उन्हें उस्तकमे विषा क्यते हैं ॥

१३—“पुराण” को ऋषादि के वचन पंथों के पुराण पुस्तक हैं जहाँ को पुराण, इतिहास कथा, गाथा और वादार्थों की गम से मान्य हैं अन्य मान्यतादि को नहीं ॥

१४— 'तीर्थ' जिससे दुःखसागर से पार उतर कि जो समस्यपथ, विषय
सम्बन्ध बन्धनदि बोगप्रसङ्ग, पुनरावृत्ति विषयान्तरदि शुभ कर्म हैं उन्हीं को तीर्थ
समस्य हैं इतर जलस्यवादि को नहीं ॥

२२ - 'पुण्यार्थं प्रारब्धं से वधा' इसका अर्थ है कि जिससे संबंधित प्रारब्ध करते जिससे सुखरसे से सब सुखरसे और जिससे विपश्यने से सब विपश्यते हैं इसीसे प्रारब्ध की अनेक पुण्यार्थ वधा है ॥

२१—“मनुष्य” को सब से पर्याप्ततम स्वयम्भू सुख, सुख, धर्म, धाम में वर्ण्य मेह, भव्य वर्ण्य कुरा समझता हूँ ॥

१४— 'संस्कार' इसको कहते हैं कि जिससे शरीर मग और अस्थि उत्पन्न होते वह विभिन्नवि रमशास्त्रों से प्राप्त होता है, इसको कर्तव्य समझना है और यह के पश्चात् शरीर के किये कुछ भी न करना चाहिये ॥

१८—“बहु” उसको कहते हैं कि जिसमें विद्याओं का सम्मिलन ब्यापक
विश्व धर्मोत्तरात्मक हो कि परार्थ विषय उससे उपयोग और विध्यदि शुभ
गुणों के नाम धर्मोत्तरादि मिलने वायु, बुद्धि, मल, ग्रीवदि की पवित्रता करके
उन जीवों को मुक्त पहुँचाना है, उसको उत्तम समझता है ।

११—बैद्य "आयुर्वेद" मोह और "असु" दुष्ट मनुष्यों को ब्रह्म है ब्रह्म हो मे
जी मान्यता है ॥

१ — “आर्यावर्त” देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इसमें आर्य
वर्ष से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी वास्तु उत्पत्ति में हिमालय,

पश्चिम में विष्णुपक्ष पश्चिम में अष्टम और पूर्व में अष्टम नदी है, इन चारों के बीच में त्रिभुजा देव है उनके 'आचार्य' कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनके भी आचार्य कहते हैं ॥

११—जो साधोपाध वैदिकियों का धर्मपक्ष सहाय्य का प्रवृत्त और विष्णुपक्ष का अर्थ करने वह 'आचार्य' कहा जाता है ॥

१२—'शिव' इसको कहते हैं कि जो सहाय्य और विष्णु को प्रवृत्त करने योग्य धर्मपक्ष विष्णुपक्ष की इच्छा और आचार्य का अर्थ करनेवाला है ॥

१३—'गुरु' माता पिता और जो सदा को प्रवृत्त कराते और अष्टम को बुझाने वह भी 'गुरु' कहा जाता है ॥

१४—"पुरोहित" जो ब्रह्मण्य का हितकारी समोपदेश्य होते ॥

१५—"उपनिषत्" जो वेदों का एकदेश का अर्थ को पढ़ता हो ॥

१६—"विष्णुपक्ष" जो धर्मपक्ष (वर्णन) अष्टम को विष्णुपक्ष का अर्थ करने प्रमाणाँ से अष्टमपक्ष का अर्थ करने अष्टम का प्रवृत्त अष्टम का परिचय करना है जो विष्णुपक्ष और जो इसको करता है वह विष्णु कहा जाता है ॥

१७—अष्टमपक्ष आठ 'प्रमाणाँ' को भी मानता है ॥

१८—"अष्ट" जो धर्मपक्ष धर्मपक्ष सब के अष्ट के अर्थ प्रवृत्त करता है अष्ट को 'अष्ट' कहा जाता है ॥

१९—"परीक्षा" पांच प्रश्न की है इसमें से प्रश्न को ईश्वर अष्ट के अष्ट करने अष्टम और वैदिक अष्टम अष्टमपक्ष आठ प्रमाणाँ तीसरी अष्टमपक्ष चौथी अष्टमपक्ष और चौथी अष्टमपक्ष आठ प्रमाणाँ की परिचय विष्णु अष्ट पांच परीक्षाओं से अष्टमपक्ष का निर्माण करने अष्टम का प्रवृत्त अष्टम का परिचय करना चाहिये।

२०—"परोपकार" जिससे सब मनुष्यों के दुष्टकार दुष्ट हटें, अष्टमपक्ष और दुष्ट को अष्ट के करने को परोपकार कहा जाता है ॥

२१—"स्वतन्त्र" "स्वतन्त्र" और अपने अर्थों में स्वतन्त्र और अष्टमपक्ष मोक्ष में ईश्वर की अष्टमपक्ष से स्वतन्त्र है ही ईश्वर अपने अष्टमपक्ष आदि अष्टम करने में स्वतन्त्र है ॥

२२—"स्वयं" अष्टम अष्टम अष्टम और अष्टमपक्ष आठ प्रमाणाँ की अष्टमपक्ष है ॥

२३—"स्वयं" जो अष्टम अष्टम और अष्टमपक्ष आठ प्रमाणाँ की अष्टमपक्ष है ॥

२४—"स्वयं" जो अष्टम अष्टम और अष्टमपक्ष आठ प्रमाणाँ की अष्टमपक्ष है ॥

२५—"स्वयं" जो अष्टम अष्टम और अष्टमपक्ष आठ प्रमाणाँ की अष्टमपक्ष है ॥

२६—"स्वयं" जो अष्टम अष्टम और अष्टमपक्ष आठ प्रमाणाँ की अष्टमपक्ष है ॥

४०— विधायक विवाह के पश्चात् पति के मरवाने आदि विधायक में व्यवस्था करने के लिए लोगों में जो या व्यवस्था में पुनः व्यवस्था या अपने से उत्तम व्यवस्था को या पुनः के साथ व्यवस्थानोत्पत्ति करना ॥

४१— “सुति” गुण कीर्तन अथवा और जान होना इसका एक प्रीति आदि होते हैं ॥

४२— “प्रवर्ण” अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बंध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके विषये ईश्वर से वाचना करना और इसका एक विरमिमान आदि होता है ॥

४३— “उपासना” ईश्वर ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हैं विसे अपने करना ईश्वर को सर्वलोक्य अपने को व्याप्य जानने ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निम्न वाच्यमात्र से साक्षात् करना उपासना कहती है इसका एक नाम की उक्ति आदि है ॥

४४— “सुगुणितु सुसुति प्रार्थनायासना” जो २ गुण परमेश्वर में हैं उनसे पुनः और जो २ पदों है उनसे पुनः मातृका प्रार्थना करना “सुगुणितु सुसुति” इन गुणों के प्रवर्ण की इच्छा और दोष सुधार के विषये परमात्मा का सहायक अथवा “सुगुणितु सुसुति” और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मातृका अपने आत्मा को उसके और इसकी आज्ञा का अर्पण कर तथा “सुगुणितु सुसुति” होती है ॥

ये संक्षेप से स्वस्तिमान्त विज्ञानादि हैं । इनकी विधि व्यवस्था इसी “समस्तध्यात्मतन्त्र” के प्रकरण १ में है तथा “समस्तध्यात्मतन्त्र” में भी प्रवर्णों में भी लिखी है । अर्थात् जो २ बात सब के सामने मातृका है इनको मननता अर्थात् जिस सब बोधना सब के सामने अच्छा और मित्र बोधना पुरा है, ऐसा विज्ञानों को भीकर करता है और जो मत्तमन्तर के परस्पर विज्ञान अथवा है इनको मैं प्रवर्ण नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत्त बाह्यों ने अपने मत्तों का प्रचार कर मनुष्यों को प्रवर्ण का परस्पर शत्रु बना दिये हैं । इस बात को यदि सर्वसत्त्व का प्रचार कर सब का एकमत में करा होय तब परस्पर में २५ प्रीतियुक्त कर के सब का सब को पुनः काम पहुँचाने के विषये मत्त प्रवर्ण और अभिप्राय है । सर्वसत्त्व-मात्र परमात्मा की कृपा सहाय और आज्ञाओं की सहाय्यता से “सह सिद्धान्त सर्वसत्त्व भूतप्रज में शीघ्र प्रवृत्त होना” जिससे सब लोग सहज से परमार्थ नाम मातृका की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मत्त मुख्य प्रवर्ण है ॥

असमतिविस्तरण युद्धिमदर्थेषु ॥

ओम् शम्भो मित्रः शं परुषः । शम्भो भवत्वर्यमा ॥ शम्भु
इन्द्रो वृषस्पतिः । शम्भो विष्णुरुक्तप्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे । नमस्त

वेदिक पुस्तकालय से पुस्तकों की सूची

	रु. पैसे		रु. पैसे
परिमलपत्रमिका मूल्य २-२		बहालपत्रमिकाभारत भारती ० १२	
केवल संस्कृत १		" अंग्रेजी १२	
यात्री मूल्य ०-६२		आश्विनिकारण ३२	
काशी व्यास बहिरा खण्ड ५ ०		सीकर पत्र ४	
" सुदरा खण्ड ४-००		स्वामिप्रियानन्दनप्रकाश भारती ५	
पापप्रतिषेध ०-२		" अंग्रेजी	
उद्योगप्रयोग ० १२		अमेरिसंहिता सञ्चित १०-	
हारमनु ०-१२		मंत्र सूची सहित	
पद्मपुराण १		अथर्ववेद संहिता सञ्चित ८-	
अमापद्मपुराण १		मंत्र सूची सहित	
अमोघफल (मेला बांकापुर) ०-१२		अथर्ववेदसंहिता सञ्चित ६	
एकमासा नामगो २		बहुवेदसंहिता सञ्चित ४-०	
" मास्यी		यजुर्वेदमूल गुटका २	
" चर्मन्दी ०-१		सामवेद संहिता सञ्चित २	
विधि वडा आकार १		" सञ्चित १	
" दोस्त आकार ०-१		अतोरेडों की अनुक्रमिका २ ५	
एकपदठपचक्र २२		सम्प्रदायोपनिषद् भाष्य १ ००	
" गुटका ४		शिष्टकर्म्मविधि ०-९	
रोटे वक्तों की ०२		इक्ष्वाकुना साधारण ५	
सञ्चित बहिष् १ ५		इक्ष्वाकुना विद्या ०-१	
सञ्चित बहिष् १-०		Life of Swami Dayanand	
" छात्र ०-८२		Sara wati (English) by	
		Har Bilas Darda Rs. 12-00	
		Dayanand Commemora-	
राजाधर ४		tion Volume (English)	
को २		superior Pz 10-00	
पद्मपुराण ३२		Do antique paper Rs 5-0 0	

किमहं सय का मूल्य स अलग हागा । वेदभाष्य, वशात्
यं अथ पुनर्यो कस्यि सूर्याय अथिय या पय निमिष ।

प्रपञ्चरूपा—वैदिक पुस्तकालय अक्षरम् ।